

पद्मपुराण

आचार्य रविषेण

[द्वितीय भाग]

तावन्नाद्याजगतिनिर्विकल्मषं जनिर्त॥ विमुक्तान्यासंगारविरुचकरं यातं मुक्तं ॥ ६७३ ॥ ६८ ॥ तत्रार्थे रविषेणोचो
नाम द्वादशमं पर्वः ॥ ११२ ॥ ततः शक्रस्य संमताः ॥ स्वाभिदुःखसमाकुलाः ॥ पुरस्कृति सहस्राः ॥ प्राप्ता रावण मे
चेताः ॥ प्रणम्य चक्षित दत्ते ॥ आसनेषु यद्योचितं ॥ २ ॥ दृष्टो यगौरवे नैवै ॥ सहस्रारोदज्ञाननां ॥ जितस्तात ब्रह्मा
दत्ते ॥ सामर्थ्यं दर्शितं ब्रह्मा ॥ परबार्तावसादं हि ॥ समीहं तेन रीक्षितं ॥ ४ ॥ द्रुपदे लोकापालानां ॥ ब्रह्मणेभ्यः समुत्थितः
॥ लोकपालानथोवाव ॥ विहस्योद्दामितो ततः ॥ समयोस्ति विमुचामि ॥ येन नार्थं दिवोक्तसौ ॥ ६ ॥ अथ प्रचक्षते मे स
॥ सर्वमंतर्बहिः पुरः ॥ ७ ॥ पुरीये सांप्रतं कृत्वा ॥ नृवक्षिः प्रतिवामरं ॥ पराण्युचिया घाणा ॥ एणकैरुच्यते क्वचित् ॥
॥ मही सिंचतु कर्कटं ॥ मस्य लोके प्रकीर्त्यते ॥ १० ॥ येन वरेण्यं कुर्वेत्तु ॥ पुष्पैर्मधमनोहरैः ॥ संज्ञिताः प्रकरं दे
नायुक्ता ॥ यदि तिष्ठति सादराः ॥ विमुचामिततः शक्रैः ॥ कुतो निमुक्तिरन्यथा ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वा वीक्ष्यमाणो सौ ॥
ता उच्ये पाणिना करौ ॥ १२ ॥ ततो विनयनघ्नः सन् ॥ सहस्रारमवोचत ॥ मुना हृदयहारिण्या ॥ क्षरन्निव गिरामृतं
मम ॥ अधिकं वाततः कुर्यां ॥ कथमाज्ञा विलेघने ॥ १४ ॥ गुरवः परमार्थेन ॥ यदि न सुनिर्वाहं दत्ताः ॥ अधस्तते
एवान्मिष्यन्त्युज्ये ॥ ददाति मम त्रासनां ॥ न वदधि धनियोगानां ॥ न पटं पुण्यवर्जिताः ॥ १६ ॥ तदद्वारं न्यसं चिं
यते मम च प्रजौ ॥ १७ ॥ अथैव शक्रैर्मम ज्ञाता ॥ पुरीयः सांप्रतं वली ॥ ऐणं प्राप्यै कोरिष्यामि तुरीये ॥ सांप्रतं वली ॥ १८ ॥
॥ लोकपालास्तथैवास्म्य ॥ तच्चैराज्यं यथा पुरा ॥ ततो धिकं वा गृह्णातु ॥ विवेकेन किमावयोः ॥ २० ॥ अज्ञान
नेऽज्ञा हि सेवे च ॥ प्रक्षालेकारकारणी ॥ २१ ॥ आस्मतामिह वाहंदा ॥ दथवारथं नृपुरे ॥ यत्र वेत्तत कञ्चामि नृ
वे ॥ समादीकृतमानसः ॥ अवाचत सहस्रारं ॥ स्ततोपिमधुरं वचः ॥ २३ ॥ नूनं न इस्सुत्यतिः ॥ सज्जनानां न वाह
॥ २४ ॥ असुभ्रान्मस्योर्ध्वं ॥ विनयोयंतं बोधमः ॥ अलेकारममस्तेस्मि ॥ नुवने क्षाद्यतो गतः ॥ २५ ॥ न वतो दुर्
तोतौ ॥ त्रयाद्यो कारणीकृतौ ॥ २६ ॥ क्षमावता समर्थेन ॥ कुंदनिर्मल कीर्तिना ॥ दोषाणां सेनवासंका ॥ ब्रह्मार्थो
दातेन च ॥ ककुप्रकरिकराकरो ॥ कुरुतः किं नते चुरौ ॥ २८ ॥ किं उभाते वनो शक्रात्पुं नमवसुंधरा ॥ सहिद

सम्पादन-अनुवाद

डॉ० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

पद्मपुराण

जैन परम्परा में मर्यादापुरुषोत्तम राम की मान्यता त्रेषठ शलाकापुरुषों में है। उनका एक नाम पद्म भी था। जैन-पुराणों एवं चरितकाव्यों में यही नाम अधिक प्रचलित रहा है। जैन काव्यकारों ने राम का चरित्र पउमचरियं, पउमचरिउ, पद्मपुराण, पद्मचरित आदि अनेक नामों से प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्रस्तुत किया है।

आचार्य रविषेण (सातवीं शती) का प्रस्तुत ग्रन्थ पद्मपुराण संस्कृत के सर्वोत्कृष्ट चरितप्रधान महाकाव्यों में परिगणित है। पुराण होकर भी काव्यकला, मनोविश्लेषण, चरित्रचित्रण आदि में यह काव्य इतना अद्भुत है कि इसकी तुलना किसी अन्य पुराणकाव्य से नहीं की जा सकती है। काव्य-लालित्य इसमें इतना है कि कवि की अन्तर्वाणी के रूप में मानस-हिमकन्दरा से निःसृत यह काव्यधारा मानो साक्षात् मन्दाकिनी ही बन गयी है। विषयवस्तु की दृष्टि से कवि ने मुख्य कथानक के साथ-साथ प्रसंगवश विद्याधरलोक, अंजना-पवनजय, हनुमान्, सुकोशल आदि का जो चित्रण किया है, उससे ग्रन्थ की रोचकता इतनी बढ़ गयी कि इसे एक बार पढ़ना आरम्भ कर बीच में छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती।

पुराणपारगामी डॉ. (पं.) पन्नालाल जैन साहित्याचार्य द्वारा प्रस्तावना, परिशिष्ट आदि के साथ सम्पादित और हिन्दी में अनूदित होकर यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ से तीन भागों में प्रकाशित है। विद्वानों, शोधार्थियों और स्वाध्याय-प्रेमियों की अपेक्षा और आवश्यकता को देखते हुए प्रस्तुत है ग्रन्थ का यह एक और नया संस्करण।

श्रीमद्रविषेणाचार्यप्रणीतम्

पद्मपुराणम्

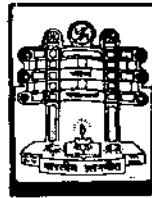
[पद्मचरितम्]

द्वितीयो भागः

हिन्दी अनुवाद, प्रस्तावना तथा श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादन-अनुवाद

डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य



भारतीय ज्ञानपीठ

सप्तम संस्करण १९९९ □ मूल्य १२०.०० रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ६; वीर नि. सं. २४७०; विक्रम सं. २०००; १८ फरवरी १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में

स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित

एवं

उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक : (प्रथम संस्करण)

डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ.ने. उपाध्ये

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

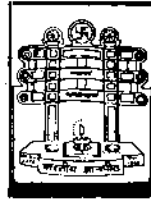
१८, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक : विकास ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११० ०३२

© भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

RAVIṢEṆĀCĀRYA'S
PADMAPURĀṆA
[PADMACARITA]
Vol. II

Edited and Translated by
Dr. Pannalal Jain, Sahityacharya



BHARATIYA JNANPITH

Seventh Edition : 1999 □ Price Rs. 120.00

BHARATIYA JNANPITH

(Founded on Phalguna Krishna 9; Vira N. Sam. 2470; V-krama Sam. 2000; 18th Feb. 1944)

MOORTIDEVI JAINA GRANTHAMALA

FOUNDED BY

Late Sahu Shanti Prasad Jain

In Memory of his late Mother Smt. Moortidevi

and

promoted by his benevolent wife

late Smt. Rama Jain

In this Granthamala critically edited Jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc., are being published in original form with their translations in modern languages.

Also being published are catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies on art and architecture by competent scholars and also popular Jain literature.

•

General editors : (First edition)

Dr. Hiralal Jain and Dr. A.N. Upadhye

Published by

Bharatiya Jnanpith

18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003

Printed at : Vikas Offset, Naveen Shahdara, Delhi-110 032

© All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith.

विषयानुक्रमणिका

छब्बीसवाँ पर्व

विषय

पृष्ठ

राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें स्थित सीता और भामण्डलके पूर्वभयोंका वर्णन । सीता चित्तोत्सवा थी और भामण्डल कुण्डलमण्डित । कुण्डलमण्डितने चित्तोत्सवाका हरण किया था जिससे उसका पति पिङ्गल बहुत दुखी होता हुआ मरकर महाकाल नामका असुर हुआ । पूर्व वैरके कारण वह कुण्डलमण्डितको नष्ट करनेके प्रयत्नमें तत्पर रहने लगा । रानी विदेहाके गर्भसे एक साथ पुत्र और पुत्रीका जन्म हुआ । महाकाल असुर अश्विजानसे पुत्रको अपनी स्त्रीका हरण करनेवाला—कुण्डलमण्डित जानकर रोपसे उचल पड़ा और उत्पन्न होते ही उसने उसका अपहरण कर पश्चात् दयासे द्रवीभूत हो उसे आकाशसे नीचे गिरा दिया । साथ ही उसे दिव्य कुण्डलांसे अलंकृत भी कर दिया ।

१--१०

चन्द्रगति विद्याधरने आकाशसे पड़ते हुए पुत्रको फेला और अपनी अपुत्रवती पुष्पवती रानीको सौंप दिया । पुत्र जन्मका उत्सव मनाया गया और पुत्रका भामण्डल नाम रक्खा गया ।

११-१२

पुत्रापहरणके कारण राजा जनककी रानी विदेहाका कष्ट विलाप और राजा जनकके द्वारा सान्त्वनाका वर्णन ।

१३-१४

सीता-पुत्रीका बाल्यकाल तथा सौन्दर्यका वर्णन ।

१४

सत्ताईसवाँ पर्व

भ्लेच्छ राजाओंके द्वारा राजा जनकके देशमें उपद्रव होना । सहायताके लिए राजा जनकका दशरथको बुलाना । दशरथका तत्काल वहाँ जाना और भ्लेच्छोंको परास्त करना । दशरथके इस अभूतपूर्व सहायोगसे प्रसन्न होकर राजा जनकका, दशरथके पुत्र रामके लिए अपनी पुत्री सीताके देनेका निश्चय करना ।

१५-२२

अट्ठाईसवाँ पर्व

नारद सीताके महलमें पहुँचे । सीता उस समय दर्पणमें मुख देख रही थी । नारदकी प्रतिकृति दर्पणमें देख सीता भयभीत हो उठी । नारद और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके बीच होहल्ला मचाने के लिए सीतासे बदला लेनेका विचार कर उसका चित्रपट बनाते हैं और उसे ले जाकर विजयार्थ पर्वत पर स्थित रथनूपुर नगरके राजाके उद्यानमें छोड़ दिये हैं । चित्रपटको देखकर भामण्डल उसपर मोहित हो उठता है । नारदने चित्रपटका परिचय दिया जिससे भामण्डलका व्यामोह बढ़ता गया ।

२३-३०

राजा चन्द्रगतिकी संमतिसे चपलवेग नामका विद्याधर अश्वका रूप रख भिथिलासे राजा जनकको हरकर रथनूपुर नगर ले गया । राजा जनक वहाँका वैभव देखकर प्रसन्न हुआ । विद्याधरोंने राजा जनकके सामने भामण्डलके लिए सीता देनेका प्रस्ताव किया परन्तु राजा जनकने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया कि मैं दशरथके पुत्र रामके लिए पहलेसे देना निश्चित कर चुका हूँ । विद्याधरों द्वारा भूमिगोचरियोंकी निन्दा सुन राजा जनकने करारा उत्तर दिया । अन्तमें 'यदि राम वज्रावर्त धनुष चढ़ा देंगे तो सीता ले सकेंगे अन्यथा भामण्डल लेगा' इस शर्त

परजनक मिथिलामें वापिस आये। मिथिलामें स्वयंवर हुआ और रामने धनुष चढ़ाकर सीताको रत्नमाला प्राप्त की। लक्ष्मणने भी दूसरा धनुष चढ़ाकर अठारह कन्याएँ प्राप्त कीं। भरतका राजा जनकके भाई कनककी पुत्री लोक-सुन्दरीके साथ विवाह हुआ।

३०-४४

उनतीसवाँ पर्व

आषाढी अष्टाह्निकामें राजा दशरथने भगवान्का अभिषेक कर गन्धोदक, सब रानियोंके पास भेजा। सुप्रभा रानीके पास एक वृद्ध कञ्चुकी ले गया इसलिए वह देरसे पहुँचा। अन्य रानियोंके पास तरुण दासियाँ ले गई थीं इसलिए जल्दी पहुँच गया। सुप्रभाने इसे अपना अपमान समझ प्राणघात करनेके लिए विष मँगाया।

४५-४७

कञ्चुकी विष लेकर सुप्रभाके पास पहुँचा ही था कि उसी समय राजा दशरथ उसके पास पहुँच गये। राजा तथा अन्य रानियाँ जब तक उसे समझाती हैं तब तक वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक लेकर आ पहुँचा।

४७-४८

प्रसन्न होकर सुप्रभाने गन्धोदक शिर पर धारण किया। राजा दशरथने कञ्चुकीसे विलम्ब का कारण पूछा तो उसने अपनी वृद्ध अवस्थाको ही उसका कारण बतलाया। उसकी जर्जर अवस्था देख राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया। उसी समय अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमें सर्वभूतहित नामक मुनिराजका आगमन हुआ।

४८-५३

तीसवाँ पर्व

विद्याधरोने यथार्थ बात भामण्डलसे छिपा रखी थी इसलिए वह सीताके मिलनेमें विलम्ब देख विह्वल हो उठा। निदान, एक दिन लज्जा छोड़ उसने पिताके समक्ष ही अपने मित्र वसन्त-ध्वजको उपालम्भ दिया। तब विद्याधरोने सब बात स्पष्ट कर दी। भामण्डल उत्तेजित हो उठा और सीताहरणकी भावनासे सेना लेकर अयोध्याकी ओर चला। विदग्ध नामक देशके मनोहर नगर पर जब उसकी दृष्टि पड़ी तब उसे पूर्वभवका स्मरण हो आया जिससे मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर अपने कुविचारोंके प्रति उसे बहुत घृणा हुई। उसने चन्द्रयान विद्याधरको बताया कि मैं पूर्वभवमें यहाँका राजा कुण्डलमण्डित था। धर्मके प्रभावसे राजा जनकका पुत्र हुआ। उत्पन्न होते ही मेरा हरण हुआ। और आपके यहाँ पलकर मैं पुष्ट हुआ। जिस सीताके व्यामोहसे मैं उन्मत्त हो रहा था वह तो मेरी सगी बहिन है। अन्तमें भामण्डल सब लोगोंके साथ अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमें स्थित सर्वभूतहित मुनिराजके पास जाता है। चन्द्रयान विद्याधर दीक्षा लेनेका भाव प्रकट करता है। भामण्डलका विरदगान होता है जिसे सुनकर सीता जागती है। सर्वभूतहित मुनिके पास सबका मिलन होता है। सीता अपने भाईसे मिलती है। दशरथ राजा जनकको खबर देते हैं। राजा जनक सपरिवार आकर अपने जन्मदूत पुत्रसे मिलकर परम आनन्दका अनुभव करते हैं। राजा जनक अपना राज्य अपने भाई कनकको सौंपकर भामण्डलके साथ विजयार्थ चले जाते हैं।

५४-६६

इकतीसवाँ पर्व

सर्वभूतहित मुनिराजके द्वारा दशरथके पूर्व भवोंका वर्णन।

६५-७२

पूर्वभवोंका वर्णन सुन राजा दशरथका विरक्त हृदय और भी अधिक विरक्त हो जाता है। वे मन्त्रियोंके समक्ष अपना अर्हार्य निश्चय प्रकट कर रामके राज्याभिषेककी घोषणा करते हैं। समय पाकर भरतकी माँ केकया, अपना पूर्वस्वीकृत वर माँगकर भरतके लिए राज्य माँगती है। राजा दशरथ असमञ्जसमें पड़ जाते हैं। रामके समक्ष वे अपनी इस दुरवस्थाको प्रकट

करते हैं। राम दृढ़ताके साथ कहते हैं कि आप भरतको राज्य देकर अपने सत्यवचनको रक्षा कीजिये मेरी चिन्ता छोड़िये। इसी बीच भरत संसारसे विरक्त हो दीक्षाके लिए महलसे नीचे उतरता है तब राजा दशरथ और राम उसे जिस किसी तरह समझा बुझाकर रोकते हैं। भरतका राज्याभिषेक होता है।

७३-७८

पिताके पाससे उठकर राम अपनी माता अपराजिता (कौशल्या) के पास जाते हैं और उसे समझाकर तथा सान्त्वना देकर वनको जानेके लिए उद्यत होते हैं। सीता और लक्ष्मण उनके साथ हो जाते हैं। राम लक्ष्मणके साथ प्रजाके अनेक लोग थे। सूर्यास्तका समय आया और राम लक्ष्मण तथा सीता तीनों ही नगरके बाहर श्री जिनमन्दिरमें ठहर गये। दशरथकी अन्य रानियोंने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि आप राम लक्ष्मणको लौटाकर शोकसागरमें डूबते हुए इस कुलकी रक्षा करो परन्तु दशरथके विरक्त हृदयने अब इस प्रपञ्चमें पड़ना उचित नहीं समझा।

७९-८५

बत्तीसवाँ पर्व

राम लक्ष्मण, सीताको साथ ले मध्यरात्रिके समय जब कि सब लोग बाह्यमण्डपमें सो रहे थे मन्दिरके पश्चिम द्वारसे निकलकर दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। प्रातः जागनेपर कितने ही लोग उनके पीछे दौड़े तथा कुछ दूर तक साथ गये। अन्तमें परियात्रा नामक वनके बीचमें पड़नेवाली भयंकर नदीको राम लक्ष्मण तैरकर पार कर गये परन्तु सामन्त एवं अन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर सके। फलस्वरूप कितने ही घर लौट गये और कितने ही दीक्षित हो गये। तदनन्तर राजा दशरथने सर्वभूतहित मुनिराजके पास दीक्षा धारण कर ली। कौशल्या और सुमित्रा पति एवं पुत्रके विना बहुत दुःखी हुईं। भरतकी माता केकया इन दोनोंकी दुःखपूर्ण अवस्था देख भरतसे कहती है कि तू राम लक्ष्मणको लौटानेके लिए जा। मैं भी पीछेसे आती हूँ। तदनन्तर सघन वनमें एक सरोवरके तीरपर भरतने राम लक्ष्मणको देखा। सबका मित्राप हुआ। केकया और भरतने वापिस चलनेका बहुत आग्रह किया परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। राम वापिस नहीं लौटे। भरत निराश हो वापिस लौट आया और राज्यका पालन करने लगा। उसने द्युतिमहारकके समक्ष प्रतिज्ञा ली कि मैं राम के दर्शनमात्रसे मुनिदीक्षा ले लूँगा। द्युतिमहारकने सबको धर्मका यथार्थ उपदेश दिया।

८६-१००

तैंतीसवाँ पर्व

क्रम-क्रमसे राम लक्ष्मण विचित्रकूट वनको पारकर अवन्ति देशमें पहुँचे। वहाँ एक ऊँड़ देशको देख तत्रागत दीनहीन मनुष्यसे उसका कारण पूछा। उसने इसी प्रकरणमें दशाङ्गपुरके राजा वज्रकर्णका वृत्तान्त सुनाया। तदनन्तर सिंहोदरकी उद्दण्डताका वर्णन सुनाया। सिंहोदर और वज्रकर्णके पारस्परिक संघर्षका निरूपण किया और यह बताया कि सिंहोदरने कुपित होकर इस हरे-भरे देशको ऊँड़ किया है।

१०१-११३

राम लक्ष्मण आहार प्राप्त करनेकी इच्छासे आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मणके सौन्दर्यसे आकृष्ट हो राजा वज्रकर्ण उसे उत्तमोत्तम भोज्यपदार्थ देता है। लक्ष्मण उन सबको लेकर रामके पास आता है। वज्रकर्णके इस आतिथ्य सत्कारका रामके हृदयमें भारी प्रभाव पड़ता है और वे लक्ष्मणको वज्रकर्णका रक्षाके लिए भेजते हैं। लक्ष्मण भरतका सेवक बनकर सिंहोदरकी अश्ल ठिकाने लगाता है और उसे परास्तकर वज्रकर्णकी रक्षा करता है। अन्तमें वज्रकर्ण और सिंहोदरकी मित्रता कराकर राम लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं।

११४-१२४

चौतीसवाँ पर्व

राम वनमें विराजमान हैं और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए एक सरोवरके किनारे जाते हैं। वहाँ हाथी पर चढ़ा एक युवराज अपने सेवकोंके द्वारा लक्ष्मणको बुलाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करता है। लक्ष्मणके यह कहने पर कि प्रथम मुझे अपने भाईके पास भोजन सामग्री भेजना है। यह सुन उस युवराजने अपने पास उत्तमोत्तम भोजन सामग्री बुलाकर प्रधान द्वारपाल द्वारा राम और सीताको अपने मण्डपमें बुलाया। लक्ष्मण वहाँ विद्यमान था ही सीता और राम भी वहाँ पहुँच गये। सबका आतिथ्य सत्कार करनेके बाद युवराजने अपना असली रूप प्रकट किया। वह कन्या होने पर भी अतक कुमारके वेषमें रह रहा था। पूछने पर उसने इसकी आश्चर्यकथा कह सुनाई। मेरा पिता बालिविल्व मेरे जन्मके पूर्वसे ही स्लेच्छ राजाके यहाँ कैद हैं। उनके अभावमें मैं कुमारका वेष रख राज्यका पालन कर रही हूँ मेरा नाम कल्याणमाला है। राम-लक्ष्मण-सीताने उसे सान्त्वना दी। तदनन्तर आगे चलकर उन्होंने स्लेच्छ-राजाकी आज्ञाकारी बनाकर बालिविल्वको बन्धन-मुक्त कराया।

१२५-१३२

पैंतीसवाँ पर्व

वन विहार करते-करते सीता थक जाती है। प्याससे उसका मुख सूख जाता है। जिस किसी तरह सान्त्वना देकर राम-लक्ष्मण उसे समीपवर्ती गोंधमें ले जाते हैं और सब क्रमप्राप्त कपिल ब्राह्मणकी यज्ञशालामें ठहर जाते हैं। ब्राह्मणोंके द्वारा दिया ठण्डा पानी पीकर सीताका हृदय शान्त हो जाता है परन्तु उसी समय लकड़ियोंका भार शिर पर रखे हुए कपिल ब्राह्मण आता है और इन्हें अपनी यज्ञशालामें ठहरा देता ब्राह्मणोंके प्रति रोषसे उग्र उठता है। वह सबका तिरस्कार कर उन्हें घरसे निकलनेके लिए बाध करता है। उत्तेजित लक्ष्मणको शान्त कर राम और सीता वनमें एक बट वृक्षके नीचे पहुँच कर विश्राम करते हैं। आकाशमें घनघटा उमड़ आती है। जारदार वर्षा होने लगती है तथा राम-लक्ष्मण सीता असहायकी तरह पानीसे भीगने लगते हैं। यज्ञवति अपने अविज्ञानसे उन्हें बलभद्र और नारायण जानकर नगरीकी रचना करता है और उसमें सबको ठहराता है। अचानक कपिल ब्राह्मण उस नगरीके पास जाकर जैन धर्म धारण करता है और रामकी दान-वीरतासे प्रबुद्ध चित्त हो ब्राह्मणोंके साथ उनके दरबारमें जाता है। वहाँ लक्ष्मणको देख भयसे भागनेका प्रयत्न करता है पर सान्त्वना मिलने पर धीरेसे बैठकर रामका स्तवन करना है। राम उसे अपरिमित धनधान्य-सम्पदासे परिपूर्ण करते हैं। अन्तमें बदले उपकारका अनुभव कर ब्राह्मण लज्जासे नतमस्तक हो गया। अन्तमें ब्राह्मणने गृहस्थीका भार स्त्रीके लिए सौंप जिन-दीक्षा धारण कर ली।

१३३-१४६

छत्तीसवाँ पर्व

वर्षाकाल गीतने पर जब राम उस यज्ञ निर्मित रामपुरीसे चलने लगे तब युवराजने उनसे क्षमा माँगी। महावनको पारकर राम, वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे। रात्रिके समय एक वृक्षके नीचे ठहर गये। वैजयन्तपुरके राजा पृथिवीधर और रानी इन्द्राणीकी वनमाला नामक पुत्री प्रारम्भसे लक्ष्मणको चाहती थी पर उनके वन भ्रमणका समाचार सुन राजा पृथिवीधर उसका अन्य कुमारके साथ विवाह करनेके लिए उद्यत हुआ। यह देख, वनमाला आत्म-घातकी भावना लेकर रात्रिके समय अपनी सखियोंके साथ वनदेवीकी पूजाका वहाना कर वनमें गई और साथके सब लोगोंके सो जाने पर वह उत्तरीय वस्त्रकी पैंसी बना मारनेके लिए तैयार हुई। लक्ष्मणने छिपे छिपे उसके पास पहुँच कर उसकी प्राण-रक्षा की।

अपने आपको प्रकट किया। रामके पास सब लोग पहुँचे। राजा पृथिवीधर रानी इन्द्राणीके साथ सज-धजकर उनके पास गये। आमोद-प्रमोदसे लक्ष्मणका वनमालाके साथ विवाह हुआ।

१४७-१५४

सैंतीसवाँ पर्व

राजा पृथिवीधरके सभामण्डपमें राम सुखासीन हैं उसी समय राजा अतिवीर्यका दूत एक पत्र राजा पृथिवीधरको देता है। उसमें लिखा था कि मैं अयोध्याके राजा भरतके प्रति अभियान कर रहा हूँ अतः सहायताके लिए सद्गल बल शीघ्र पधारो। रामके पूछने पर दूतने भरतके प्रति होनेवाले अभियानका कारण भी बताया। रामका संकेत पाकर राजा पृथिवीधरने दूतको आश्वासन देकर बिदा किया। तदनन्तर परस्परके विचार-विमर्शके बाद, राम लक्ष्मण-सीता और पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ अतिवीर्यकी राजधानीकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़ी गम्भीरताके साथ कर्तव्य मार्गका निर्णय कर, राम-लक्ष्मण सीताकी आर्थिकाओंके पास छोड़ नर्तकियोंके वेषमें अतिवीर्यके दरबारमें गये। वहाँ उन्होंने अपने अनुपम संगीतों और कलापूर्ण नृत्योंसे उसे मन्त्र-मुग्धकी तरह वशीभूत कर लिया। रङ्ग जमा हुआ देख नर्तकीने डैट दिखते हुए कहा कि तू भरतके प्रति जो अभियान कर रहा है यह तेरी मृत्युका कारण है अतः यदि जीवित रहना चाहता है तो भरतको प्रणाम कर। इस प्रकार अपनी तर्जना और भरतकी प्रशंसा सुन क्रुद्ध हो अतिवीर्यने नर्तकियोंको मारनेके लिए जो तलवार ऊपर उठाई थी लक्ष्मणने उसे लपक कर छीन लिया और उससे ही सब राजाओंको भयभीत कर अतिवीर्यको जीवित पकड़ लिया। नर्तकियोंकी यह विचित्र शक्ति देख आगत राजा-महाराजा पलायमान हो गये। राम-लक्ष्मणने बन्धनबद्ध अतिवीर्यको ले जाकर सीताके सामने रख दिया। उसकी दुःखपूर्ण अवस्था देख सीता दयासे द्रवोभूत हो गई। फलस्वरूप उसने उसे छुड़ा दिया। अतिवीर्यने सब मान छोड़ कर जिनदीक्षा धारण कर ली। राम-लक्ष्मण रात्रिमेघकी तरह अव्यक्त रूपसे भरतकी रक्षा कर आगे बढ़ गये।

१५५-१६६

अड़तीसवाँ पर्व

रामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका राज्याभिषेक किया। अतिवीर्यके मुनि होनेका समाचार सुन भरत उनके दर्शन करनेके लिए गया। दर्शन कर क्षमा माँगी, मुनिराजकी स्तुति की। भरतको नर्तकियोंका पता नहीं था अतः वह आश्चर्यसागरमें निमग्न था। वनमालाको आश्वासन दे राम-लक्ष्मण आगे बढ़े। क्षेमाञ्जलिपुर नगरके बाहर सब ठहरे। भोजनोपरान्त लक्ष्मण, रामकी आज्ञासे नगरमें प्रविष्ट हुए और वहाँके राजा शत्रुदमनकी शक्तिको भेल कर उसकी पुत्री जिनपद्माको अपने पर आसक्त किया। जिनपद्माका पिता राजा शत्रुदमन सेनाके साथ राम और सीताके पास गया। राम सेनाको आती देख पहले तो आश्चर्यमें पड़े परन्तु बादमें यथार्थ बातका पता चलने पर निश्चिन्त हुए। लक्ष्मणका जिनपद्माके साथ विवाह हुआ।

१६७-१७७

उनतालीसवाँ पर्व

राम-लक्ष्मण तथा सीताका वंशस्थद्युति नगरमें जाना, भागते नगरवासियोंके द्वारा पर्वतसे आते हुए भयङ्कर शब्दकी सूचना तथा रामके द्वारा उसका अनुसरण। देशभूषण तथा कुलभूषण नामक मुनियोंके दर्शन करके उनका अग्निप्रभ देवके द्वारा किये हुए उपसर्गको दूर करना। तथा मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न होना। मुनियों द्वारा पश्चिमीनगरीके राजा विजय-पर्वत तथा रानी धारिणीके दूत अमृतस्वरके पुत्र उदित तथा मुदितकी कथाका भवान्तर सहित वर्णन, भवान्तर सहित देशभूषण तथा कुलभूषण मुनियोंका वर्णन।

१७८-१८४

चालीसवाँ पर्व

वंशस्थलपुरके राजा सुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी रामका अभिवादन, रामचन्द्रका दण्डक वन प्रस्थान तथा रामगिरिका वर्णन ।

१६५-१६८

इकतालीसवाँ पर्व

राम-लक्ष्मण तथा सीताका कर्णारवा नदीको प्राप्त कर उसमें अवगाहन तथा सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनियोंको आहार दान देनेसे पञ्चाश्वर्यकी प्राप्ति । मुनिराजके दर्शनसे यष्ट पत्नीका पूर्वभव ज्ञान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दनाके कारण दिव्य शरीरकी प्राप्ति, मुनि द्वारा यष्टके पूर्वभवका कथन, मुनिराज द्वारा अपने पूर्वभवका वर्णन कर अपने स्थानको प्रस्थान, राम द्वारा यष्टका 'जटायु' नाम करण तथा उसका रामके आश्रममें निवास ।

१६९-२१०

बयालीसवाँ पर्व

पात्र दानके प्रभावसे राम-लक्ष्मण रत्न तथा सुवर्णादि सम्पदासे सम्पन्न हो गये । तदनन्तर वे मनोरथ रथ पर आरुढ़ हो दण्डक वनमें स्वेच्छानुसार भ्रमण करने लगे । नाना छन्दोमें दण्डक वनका अद्भुत वर्णन । वनके सौन्दर्यसे प्रसन्न हो राम पहले तो लक्ष्मणसे कहते हैं कि जाओ अपनी माताओंको ले आओ फिर कुछ रुक कर कहते हैं कि नहीं अभी वर्षा ऋतु है अतः यातायातमें कष्ट होगा । शरद् ऋतुके सुनहले दिन आने पर मैं स्वयं जाऊँगा ।

२११-२२१

तैंतालीसवाँ पर्व

शरद् ऋतुकी निर्मल चाँदनी आकाशमें छिटकने लगी । एक दिन लक्ष्मण वनमें भ्रमण करते-करते दूर निकल गये । उन्हें एक ओरसे अद्भुत गन्ध आई उसी गन्धसे आकृष्ट हो वे उस ओर बढ़ते गये । श्रेणिकके पूछने पर गौतम स्वामीने राजस वंश तथा लंकाका वर्णन किया । एक बाँसके भिड़ेमें शम्भूक सूर्यहास खड्ग सिद्ध कर दिया था । देवोपनीत खड्ग आकाशमें लटक रहा था । उसीकी मुगन्धि सर्वत्र फैल रही थी । लक्ष्मणने लयकर सूर्यहास खड्ग हाथमें ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसे उन्होंने उसी बाँसोके भिड़े पर चला दिया । चलाते ही बाँसोका भिड़ा कट गया और साथ ही उसके भीतर स्थित शम्भूक भो कट कर दो टुक हो गया । शम्भूक, रावणकी बहिन चन्द्रनखाका पुत्र था । वह प्रतिदिन पुत्रको भोजन देनेके लिए आती थी । उस दिन पुत्रके दो टुक देख उसके दुःखका पार नहीं रहा । उसका करुण विलाप आकाशमें गूँजने लगा । कुछ समय बाद राम-लक्ष्मणके सौन्दर्यसे उसका मन हरा गया और वह उन्हें प्राप्त करनेके लिए छलसे कन्या बन गई । राम-लक्ष्मण उसकी मायासे विचलित नहीं हुए ।

२२२-२३१

चवालीसवाँ पर्व

कामेच्छा पूर्ण न होनेपर चन्द्रनखाको पुत्रशोकने फिर धर टबाया जिससे विलाप करती हुई वह अपने पति खरदूषणके पास गई । खरदूषणने स्वयं आकर पुत्रको मरा देखा । उसका क्रोध उबल पड़ा । वह राम लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ । खरदूषणने रावणको भी इस घटनाकी खबर दी थी । खरदूषणका इधर लक्ष्मणके साथ घमासान युद्ध होता है उधर रावण उसकी सहायताके लिए आता है सो बीचमें सीताको देख मोहित हो उठता है । छलसे सिंहनाद कर रामको लक्ष्मणके पास भेज देता है और सीताको एकाकिनी देख हर ले जाता है । जटायु शक्ति भर प्रयत्न करता है पर सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है । रणभूमिमें रामको देख लक्ष्मण घटित घटनाकी आशंकासे दुःखी हो उन्हें तत्काल वापिस भेजते हैं । पर राम वापिस आनेपर सीताको नहीं पाते हैं । उसके बिना कदण विलाप करते हैं । २३२-२४३

पैतालीसवाँ पर्व

लक्ष्मण खरदूषणको निष्प्राणकर जब रामके पास आते हैं तब उन्हें सीतारहित देख बहुत दुःखी होते हैं। लक्ष्मण अपने उपकारी विराधित विद्याधरका रामको परिचय देते हैं। उसी समय विराधित सेना सहित रामके समीप आ पहुँचता है। रामकी बहुत स्तुति करता है। लक्ष्मण उससे सीता हरणकी बात कहते हैं। विराधितने अपने मन्त्रियोंको सीताका पता लगानेका आदेश दिया। अर्कजटीका पुत्र रत्नजटी सीताका रोदन सुन रावणके पीछे दौड़ा परन्तु रावणने उसकी आकाशगामिनी विद्या छीनकर उसे नीचे गिरा दिया। वह समुद्रके मध्य कम्बु नामक द्वीपमें पड़ा। विद्याधरको सीताका पता नहीं लगा। अनन्तर विराधितके कहनेसे राम अलंकार पुर (पाताल लंका) गये। वहाँ सीताकी विरहानलमें झुलसते रहे। २४४-२५१

छियालीसवाँ पर्व

रावण सीताको लेकर लंकामें पहुँचा। वहाँ पश्चिमोत्तर दिशामें स्थित देवारण्य नामक उद्यानमें सीताको ठहराकर उससे प्रेम याचना करने लगा। शीलवती सीताने उसकी समस्त प्रार्थनाएँ ठुकरा दीं। रावणने माया द्वारा सीताको भयभीत करनेका प्रयत्न किया परं वह कर्तव्य पथसे रञ्जमात्र भी विचलित नहीं हुई।

रावणकी विप्रलम्भजन्य दुर्दशा देख मन्दोदरीने उसे बहुत समझाया पर सब व्यर्थ हुआ। रावण की दुर्दशासे दुखी हो मन्दोदरी सीताको समझानेके लिए गई पर सीताने ऐसी फटकार दी कि मन्दोदरीको उत्तर नहीं सूझ पड़ा। प्रातःकाल होने पर रावण पुनः सीताके पास गया पर सीताको अनुकूल नहीं कर सका। मन्त्रियों-द्वारा प्रकृत बातपर गम्भीर विचार विमर्श हुआ और लंकाकी रक्षाके उपाय किये गये। २५२-२६८

सैंतालीसवाँ पर्व

विट सुग्रीवके द्वारा उपद्रुत होनेके कारण किष्किन्धापुरीका स्वामी सुग्रीव दुःखी होकर इबर-उघर भ्रमण करता फिरता था। उसी समय वह विराधितकी पाताललंकामें आया। विराधितने उसका सन्मान किया। वहाँ रामके साथ उसका परिचय हुआ। मन्त्रियोंने रामसे सुग्रीवकी दुःखद दशाका वर्णन किया जिसे सुनकर रामने उसकी सहायता करना स्वीकृत किया। रामने जाकर कृत्रिम सुग्रीव साहसगति विद्याधरको निष्प्राण किया। सुग्रीवकी तेरह कन्याओंने रामको बरा...। २६९-२८०

अड़तालीसवाँ पर्व

राम सीताके विरहसे संतप्त हैं। सीताका पता चलानेमें सुग्रीवको विलम्ब युक्त देख लक्ष्मण उसके प्रति कुपित होते हैं। सुग्रीव रामके पास आकर क्षमा मांगता है और अपने सेवकोंको सीता का पता लगानेका आदेश देता है। रत्नजटीने पता दिया कि सीताको लंकाधिपति रावण हर कर ले गया है। रावणका नाम सुन विद्याधरके होश ठण्डे पड़ जाते हैं। रामके प्रबल आग्रह वश वानर यह कहकर सहयोग देनेको तत्पर होते हैं कि रावणकी मृत्यु कोटिशिला उठाने वालेके द्वारा होगी ऐसा अनन्तवीर्य मुनीन्द्रने कहा था सो यदि आप लोग कोटिशिला उठा सकें तो हम रावणके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हो सकते हैं। लक्ष्मणने उसी समय जाकर कोटिशिला उठा दी। वानर उनकी शक्तिका विश्वास कर युद्धके लिए तैयार हुए। २८१-२९८

उनचासवाँ पर्व

सुग्रीवने हनूमान्को बुलानेके लिए अपना कर्मभूति नामका दूत भेजा । इसने हनूमान्से खरदूषण की मृत्युका समाचार कहा जिससे उसके अन्तःपुरमें शोक छा गया । विट सुग्रीवके नाशका समाचार सुन हनूमान्की दूसरी स्त्री पद्मरागा प्रसन्न हुई । रामकी महिमा सुन हनूमान् उनके समीप आया और विनीत भावसे उनकी स्तुति कर सीताके पास राम संदेश भेजनेके लिए लंका गया ।

२६६-३०७

पचासवाँ पर्व

लंका जाते समय हनूमान् मार्गपतित मातामह महेन्द्रके नगरमें पहुँचा वहाँ उसके द्वारा किये हुए माताके अपमानका स्मरण होनेसे उसे बहुत रोष उत्पन्न हुआ जिससे उसने उसे बलपूर्वक परास्त किया । हनूमान्का आदेश पाकर राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अञ्जनाके साथ मिला । ३०८-३१२

इक्यावनवाँ पर्व

दक्षिमुख द्वीपमें स्थित सुनिशोके ऊपर दावानलका उपसर्ग हनूमान्ने दूर किया । समीप स्थित गन्धर्व-कन्याओंने विद्यासिद्ध हो जानेके कारण हनूमान्के प्रति कृतज्ञता प्रकट की । रामको गन्धर्व-कन्याओंकी प्राप्ति हुई ।

३१३-३१६

बावनवाँ पर्व

अचानक अपनी सेनाकी गति रुक जानेसे हनूमान् आश्चर्यमें पड़ा । आगे बढ़ कर उसने मायामय कोटको ध्वस्त कर दिया । और थोड़ी देरमें ही वज्रायुधको प्राणरहित कर दिया । तदनन्तर उसकी पुत्री लंकामुन्दरीके साथ हनूमान्का विवाह हुआ ।

३१७-३२३

त्रेपनवाँ पर्व

हनूमान् लंकामें जाकर सर्व प्रथम विभीषणसे मिलता है और रावणके दुष्कृत्यका उसे उपालम्भ देता है । तदनन्तर विभीषणकी विवशताका विचार कर प्रमदीयानमें जाता है । वहाँ अशोक वृक्षके नीचे सीताको देख अपने जन्मको सफल मानता है । वह उसकी गोदमें रामप्रदत्त अंगूठी छोड़ता है । सीता उसे बुलाती है । वह प्रकट होकर विनीतभावसे सीताके समक्ष आता है और सीताके लिए रामका संदेश सुनाता है । ग्यारहवें दिन रामका संदेश पाकर सीता आहार ग्रहण करती है । मन्दोदरी आदिके साथ हनूमान्का संवर्ष होता है । हनूमान् उद्यानको क्षति ग्रस्त करता है । बन्धन बद्ध होने पर रावणके समक्ष उपस्थित होता है परन्तु अन्तमें बन्धन तोड़ तथा लंकाको नष्ट-अष्ट कर रामके पास वापिस आ जाता है । ३४२-३४३

चौवनवाँ पर्व

वापिस आकर हनूमान्ने रामको सीताका सब समाचार सुनाया उसका चूड़ामणि उन्हें अर्पित किया । साथ ही सीताकी दयनीय दशाका भी वर्णन किया । चन्द्रमरीचि विद्याधरकी प्रेरणासे उत्तेजित हो सब विद्याधरोने रामको साथ ले लंकाकी ओर प्रस्थान किया ।

३४४-३५०

पचपनवाँ पर्व

लंकाके समीप पहुँचने पर राक्षसोंमें क्षोभ उत्पन्न हो गया । इन्द्रजित् और विभीषणमें पर्याप्त वाक्संघर्ष हुआ । रावणसे तिरस्कार प्राप्तकर विभीषण लंका छोड़ कर रामसे आ मिला । ३५१-३५७

छप्पनवाँ पर्व

रावणकी अक्षौहिणी आदि सेनाका वर्णन ।

३५८-३६०

सत्तावनवाँ पर्व

लंका निवासिनी सेनाकी तैयारी तथा लंकासे बाहर निकलनेका वर्णन ।

३६१-३६६

अट्ठावनवाँ पर्व

नल और नीलके द्वारा हस्त और प्रहस्तका मारा जाना ।

३६७-३७०

उनसठवाँ पर्व

श्रेणिकके पूछने पर गौतम स्वामी द्वारा हस्त-प्रहस्त और नल-नीलके पूर्वभवोंका वर्णन ।

३७१-३७३

साठवाँ पर्व

अनेक राज्ञोंका मारा जाना तथा राम लक्ष्मणको दिव्यास्त्र तथा सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन ।

३७४-३८४

इकसठवाँ पर्व

सुग्रीव और भामण्डलका नागपाशसे बाँधा जाना तथा राम-लक्ष्मणके प्रभावसे उनका बन्धन-मुक्त होना ।

३८५-३८७

बासठवाँ पर्व

वानर और राजसवंशी राजाओंका युद्ध, विभीषण और रावणका संवाद, योद्धाओंकी रणोन्मादिनी चेष्टाएँ और रावणके द्वारा शक्तिका चलाया जाना । शक्तिके लगनेसे लक्ष्मणका मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ना ।

३८८-३९५

तिसठवाँ पर्व

शक्ति निहत लक्ष्मणको देख राम विलाप करते हैं ।

३९६-३९८

चौसठवाँ पर्व

इन्द्रजित् मेघवाहन तथा कुम्भकर्णके मरनेकी आशंकासे रावण दुखी होता है । लक्ष्मणके घायल होनेका समाचार सुन सीता भी बहुत दुखी हुई । एक अपरिचित मनुष्य द्वारा लक्ष्मणकी शक्ति निकालनेका उपाय बताया जाता है, वह अपना परिचय देता है । विशल्याके पूर्वभवों तथा उसके वर्तमान प्रभावका वर्णन कर वह रामको सान्त्वना देता है ।

३९९-४०७

पैंसठवाँ पर्व

उस अपरिचित प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचनोंसे हर्षित हो रामने हनुमान् भामण्डल तथा अंगदको तत्काल अयोध्या भेजा । अयोध्यामें द्रोण फैल जाता है । अनन्तर द्रोणमेघके पास भरतकी मा स्वयं गई और विशल्याको लंका भेजनेकी व्यवस्था की । विशल्याके लंका पहुँचते ही लक्ष्मणके वक्षःस्थलसे शक्ति निकल कर दूर हो गई और रामकी सेनामें हर्ष छा गया । विशल्याका लक्ष्मणके साथ विवाह हुआ ।

४०८-४१४

पद्मपुराणम्

[पद्मचरितम्]

द्वितीयो भागः

श्रीमद्रविषेणाचार्यकृतम्

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षड्विंशतितमं पर्व

अतो जनकसम्बन्धं शृणु श्रेणिक ते परम् । निवेदयामि यद्बृत्तं भवावहितमानसः^१ ॥१॥
भामिनी जनकस्यासीद् विदेहा नाम सुन्दरी । गर्भनिर्वेदनं तस्याः प्रत्यैक्षत्^२ चिरं सुरः ॥२॥
जगद् श्रेणिको नाथ तं गर्भं केन हेतुना । देवो ररक्ष विज्ञातुमेतदिच्छामि^३ शिष्यताम् ॥३॥
उवाच गौतमो राजा नास्ति चक्रध्वजोऽभवत् । स्थाने चक्रपुराभिख्ये भार्या तस्य मनस्विनी ॥४॥
तयोश्चित्तोत्सवापद्यं कन्या गुरुगृहे च सा । ररात्र सितमृत्तेशैलैखनी वर्णपूरिका ॥५॥
राज्ञः पुरोहितस्यास्य धूमकेशस्य पिङ्गलः । स्वाहाकुत्तिभवोऽधीते सुतस्तत्रैव पाठके ॥६॥
विद्यालाभस्तयोर्नासीदन्योन्यहृतचेतसोः । विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽवहितात्मनाम् ॥७॥
पुरा संसर्गतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते । प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ता रतेविश्रम्भसंभवः ॥८॥
सद्भावात् प्रणयोत्पत्तिः प्रेमैव पञ्चहेतुकम् । दुर्मोचं बध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥९॥

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब राजा जनकका वृत्तान्त कहता हूँ सो तुम सावधान चित्त होकर सुनो ॥१॥ राजा जनककी विदेहा नामकी सुन्दरी स्त्री थी । उसके गर्भ रहा, सो एक देव चिरकालसे उसके गर्भकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कहा कि नाथ ! वह देव किस कारणसे विदेहाके गर्भकी रक्षा करता था ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥३॥ इसके उत्तरमें गौतमस्वामीने कहा कि चक्रपुरनामा नगरमें एक चक्रध्वज नामका राजा था । उसकी स्त्रीका नाम मनस्विनी था ॥४॥ उन दोनोंके चित्तोत्सवा नामकी कन्या उत्पन्न हुई । वह कन्या गुरुके घर अर्थात् चाटशालामें खड़िया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखती हुई सुशोभित होती थी ॥५॥ उसी गुरुके घर राजाके पुरोहित धूमकेशकी स्वाहा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न पिङ्गल नामका पुत्र भी अध्ययन करता था ॥६॥ चित्तोत्सवा और पिङ्गल इन दोनोंका चित्त परस्परमें हरा गया इसलिए उन्हें विद्याकी प्राप्ति नहीं हो पाई । सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्मकी प्राप्ति स्थिरचित्तवालोंकी ही होती है ॥७॥ आचार्य कहते हैं कि पहले स्त्री पुरुषका संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वाससे प्रणय उत्पन्न होता है । इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे उत्पन्न होता है । जिस प्रकार हिंसादि पाँच पापोंसे जो छूट न सके ऐसे कर्मका बन्ध होता है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे प्राणियोंके गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥८-९॥

१. मानस म० । २. प्रत्यैक्षित म० । ररक्ष । ३. मेतमिच्छामि म०, ज०, ख० । ४. राज्ञो म० ।

अथासौ ज्ञातसद्भावा तेन चित्तोत्सवा रहः । द्वियतेस्म महारूपा कीर्तिर्दुर्धससा यथा ॥१०॥
 दूरं देशं यदानायि तदाज्ञायि सुबन्धुभिः । हता प्रमाददोषेण मोहेन सुगतिर्यथा ॥११॥
 कन्यया मुदितश्चौरः पिङ्गलो धनवर्जितः । न विभाति यथा लोभी तृष्ण्या धर्मवर्जितः ॥१२॥
 विदग्धनगरं चाप दुर्गमं परराष्ट्रिणाम् । बहिः कृत्वा कुटीं तत्र तस्थौ निःस्वकपाटके ॥१३॥
 ज्ञानविज्ञानरहितस्तृणकाष्ठादिविक्रियात् । अनुरक्षति तां पत्नीं मग्नो दारिद्र्यसागरे ॥१४॥
 पुत्रः प्रकाशसिंहस्य परराष्ट्रमयंकरः । जातोऽत्र प्रवरावलीं राजा कुण्डलमण्डितः ॥१५॥
 तेन दृष्टान्यदा बाला निर्यातेन कथंचन । हतश्च पञ्चभिर्बाणैर्मारस्याभूत् सुदुःखितः ॥१६॥
 प्रच्छन्नं प्रेषिता दूती तथा रात्रौ नृपालयम् । यथासीत् कमलामेला सुमुखस्य प्रवेशिता ॥१७॥
 तथा सह सुखं रेमे प्रीतः कुण्डलमण्डितः । उर्वंश्या सह संरक्तो यथासीन्नलकूरः ॥१८॥
 ततः स पिङ्गलाख्योऽपि श्रान्तः स्वगृहमागमत् । तामपश्यन् विशालार्क्षीं मग्नो वैधुर्यसागरे ॥१९॥
 विस्तीर्णेन किमुक्तेन सोऽयं विरहदुःखितः । न कचिल्लभते सौख्यं चक्रारूढ इवाकुलः ॥२०॥
 हतभार्यो द्विजो दीनस्तं राजानमुपागमत् । ऊचे चान्विष्य मे राजन् पत्नी केनापि चोरिता ॥२१॥
 भीषितानां दरिद्राणामातार्तां च विशेषतः । नारीणां पुरुषाणां च सर्वेषां शरणं नृपः ॥२२॥

अथानन्तर जब पिङ्गलको चित्तोत्सवाके अभिप्रायका पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूप-वतीको एकान्त पाकर हर ले गया । जिस प्रकार अपयशके द्वारा कीर्तिका अपहरण होता है उसी प्रकार पिङ्गलके द्वारा चित्तोत्सवका हरण हुआ ॥१०॥ जब वह उसे बहुत दूर देशमें ले गया तब बन्धुजनोंको उसका पता चला । जिस प्रकार मोहके द्वारा उत्तम गतिका हरण होता है उसी प्रकार प्रमादके द्वारा उस कन्याका हरण हुआ था ॥११॥ इधर कन्याको चुरानेवाला पिङ्गल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होनेके कारण वह उससे उस प्रकार सुशोभित नहीं हो रहा था जिस प्रकार कि धर्महीन लोभी मनुष्य तृष्णासे सुशोभित नहीं होता है ॥१२॥ पिङ्गल कन्याको लेकर जहाँ दूसरे देशके लोगोंका प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विदग्ध नगरमें पहुँचा और वहाँ नगरके बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वही कुटी बनाकर रहने लगा ॥१३॥ वह ज्ञान-विज्ञानसे रहित था साथ ही दरिद्रतारूपी सागरमें भी निमग्न था इसलिए तृण, काष्ठ आदि वेंचकर अपनी उस पत्नीकी रक्षा करता था ॥१४॥ उसी नगरमें राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानीका पुत्र राजा कुण्डलमण्डित रहता था जो कि शत्रुओंके देशको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥१५॥ एक दिन वह नगरके बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टिमें आयी । देखते ही वह कामके पाँचों बाणोंसे ताड़ित होकर अत्यन्त दुःखी हो गया ॥१६॥ उसने गुप्तरूपसे चित्तोत्सवाके पास दूती भेजी सो उस दूतीने उसे रात्रिके समय राजमहलमें उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिन प्रकार कि पहले राजा सुमुखकी दूतीने कमलामेलाको उसके महलमें प्रविष्ट कराया था ॥१७॥ जिस प्रकार अनुरागसे भरा नलकूर उर्वंशीके साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीतिसे भरा कुण्डलमण्डित उस चित्तोत्सवाके साथ रमण करने लगा ॥१८॥

तदनन्तर जब वह पिङ्गल थका-माँदा अपने घर आया तो उस विशाललोचनाको न देखकर दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि अधिक कहनेसे क्या ? उसके विरहसे दुःखी हुआ वह चक्रारूढकी तरह आकुल होता हुआ किसी भी जगह मुख प्राप्त नहीं करता था ॥२०॥ तदनन्तर जिसकी भार्या हरी गयी थी ऐसा वह दीनहीन ब्राह्मण राजाके पास गया और जिस किसी तरह राजाका पता चलाकर बोला कि हे राजन् ! किसीने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥२१॥ राजा ही सबका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भयभीत, दरिद्र तथा

अमात्यं धूर्तमाहूय समाय^१ पार्थिवोऽब्रवीत् । विराय मा कृथा माम जायास्यान्विष्यतामिति ॥२३॥
जगदंति च तत्रैकः सविकारेण चक्षुषा । सा दृष्टा पथिकैर्देव पौदनस्थानवर्मनि ॥२४॥
क्षान्त्यार्यावृन्दमध्यस्थो तपः कर्तुं समुद्यता^२ । विनिवर्तय तां क्षिप्रं किं विरौषि व्रज द्विज ॥२५॥
को वा प्राव्रज्यकालोऽस्या दधत्यास्तरुणीं तनुम् । वरस्त्रीगुणपूर्णाया हरन्त्यास्तरुणं जनम् ॥२६॥
इत्युक्ते द्विज उत्थाय बद्ध्वा परिकरं दृढम् । दध्वाव रंहसा विद्धो अष्टाश्वतरको यथा ॥२७॥
पौदने नगरेऽन्विष्य चैत्येषूपवनेषु च । अदृष्ट्वा पुनरागच्छद् विदग्धनगरं द्रुतम् ॥२८॥
नृपाज्ञया नरैः क्रूरैर्गलघातैः स तर्जनैः । यथिलोष्टप्रहारैश्च दूरं निर्वासितो भृशम् ॥२९॥
स्थानभ्रंशं परिकलेशमवमानं वर्धं तथा । अनुभूय परं दीर्घमध्वानं स प्रपञ्चयान् ॥३०॥
रतिं न लभते कापि रहितः प्रियया तथा । शुष्यत्यहनि रात्रौ च पतितोऽग्नाविधोरगः ॥३१॥
विशालः कङ्कजवनं दावाग्निमिव पश्यति । सरोऽपि गाहमानोऽसौ दह्यते विरहाग्निना ॥३२॥
एवं सुदुःखितमतिः पर्यटन् पृथिवीतले । नगरस्य स्थितं द्वारं ददर्श गगनाम्बरम् ॥३३॥
आचार्यमार्यगुप्तं च समेत्य रचिताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसा हृष्टो धर्मं शुभ्राव तत्त्वतः ॥३४॥
श्रुत्वा धर्मं मुनेः प्राप्तः स वैराग्यमनुत्तमम् । प्रशंसं जिनेन्द्राणां शासनं शान्तमानसः ॥३५॥
अहो परममाहात्म्यो मार्गोऽयं जिनदेशितः । ममान्धकारयातस्य यो भास्कर इत्रोदितः ॥३६॥

दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥२२॥ यह सुन राजाने एक धूर्त मन्त्रीको बुलाकर मायासहित कहा कि विलम्ब मत करो, शीघ्र ही इसकी स्त्रीका पता चलाओ ॥२३॥ तब एक मन्त्रीने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन् ! उस स्त्रीको तो पथिकोंने पोदनपुरके मार्गमें देखा था ॥२४॥ वह आर्यिकाओंके समूहके बीचमें स्थित थी तथा शान्तिपूर्वक तप करनेके लिए तत्पर जान पड़ती थी । अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला । इधर क्यों रो रहा है ? ॥२५॥ जब कि वह यौवनपूर्ण शरीरको धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियोंके गुणोंसे परिपूर्ण है तथा तरुण जनोंको हरनेवाली है तब उसका यह तप करनेका समय ही कौन-सा है ? ॥२६॥ मन्त्रीके ऐसा कहते ही वह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेगसे इस प्रकार दौड़ा जिस प्रकार कि बन्धनसे छूटा घोड़ा दौड़ता है ॥२७॥ वहाँ जाकर उसने पोदनपुरके मन्दिरों तथा उपवनोंमें अपनी स्त्रीको बहुत खोज की । जब नहीं दिखी तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगरमें वापस आ गया ॥२८॥ राजाकी आज्ञासे दुष्ट मनुष्योंने उसे गलेमें धिच्चा देकर नाना प्रकारकी डांट दिखाकर तथा लाठी और पत्थरोंसे मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥२९॥ स्थानभ्रंश, अत्यन्त क्लेश, अपमान और मारका अनुभव कर उसने लम्बा रास्ता पकड़ लिया अर्थात् वह बहुत दूर चला गया ॥३०॥ स्त्रीके बिना वह कहीं भी रतिको प्राप्त नहीं होता था । वह अग्निमें पड़े हुए साँपके समान रात-दिन सूखता जाता था ॥३१॥ वह कमलोंके विशाल वनको दावानलके समान देखता था और सरोवरमें प्रविष्ट होता हुआ भी विरहाग्निसे जलने लगता था ॥३२॥ इस प्रकार दुःखितहृदय होकर वह पृथिवीपर घूमता रहा । एक दिन उसने नगरके द्वारपर स्थित आर्यगुप्त नामक दिग्म्बर आचार्यको देखा । उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिरसे प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्मका यथार्थ स्वरूप सुना ॥३३-३४॥ मुनिराजसे धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्यको प्राप्त हुआ तथा शान्त-चित्त होकर इस प्रकार जिनशासनकी प्रशंसा करने लगा ॥३५॥ कि अहो ! जिन-भगवान्के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उत्कृष्ट प्रभावसे सहित है । मैं अन्धकारमें पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्यके समान ही उदित हुआ है ॥३६॥

१. मायासहितं यथा स्यात्तथा । २. मध्यस्थां म. । ३. समुद्यतां म. । ४. गाहमानो म. । ५. दूरे ज., क., ख. । दूरं म. । ६. दिग्म्बरमुनिम् । ७. -मर्यादुत्ति च म. ।

प्रपद्येऽहं जिनेन्द्राणां शासनं पापनाशनम् । देहं निर्वापयाम्यद्य दग्धं विरहवह्निना ॥३७॥
 ततः संवेगमापद्य^१ गुरुणाभ्यनुमोदितः । कृत्वा परिग्रहस्यागं दीक्षां दैगम्बरीमितः^२ ॥३८॥
 तथापि विहरन् क्षोणीं सर्वसंगविवर्जितः । चित्तोत्सवासमुत्कण्ठो जातुचित्प्रस्यपद्यते^३ ॥३९॥
 सरित्पर्वतदुर्गेषु श्मशानेष्वटवीषु च । वसन् स परमं चक्रे तपो विग्रहशोषणम् ॥४०॥
 न यस्य जलदध्वान्ते काले खेदं गतं मनः । हेमन्ते हिमपङ्केन वपुर्यस्य न कम्पितम् ॥४१॥
 पूष्णो यस्य करैरुग्रैस्तापोऽगुरपि नो कृतः । स्मृत्वासीदत् सतां जातु स्नेहस्य किमु दुष्करम् ॥४२॥
 दह्यमानं तथाप्येष शरीरं विरहाग्निना । पुनर्विध्यापयन् जैनवचनोदकसीकरैः ॥४३॥
 अर्धदग्धतरुच्छायं तत्तस्य वपुरागतम् । रमणीस्मरणेनोग्रतपसा च निरन्तरम् ॥४४॥
 आस्तां तावदिदं वक्ष्ये मण्डितस्याधुनेहितम्^४ । कथा ह्यन्तरयोगेन स्थिता रत्नावली यथा ॥४५॥
 अनरण्ये च राज्यस्थे वृत्तमेतन्निबुध्यताम् । कथानुक्रमयोगेन कथ्यमानमतः शृणु ॥४६॥
 स्थानं दुर्गं समाश्रित्य मण्डितेन वसुन्धरा । विराधितानरण्यस्य कुशीलेन यथा स्थितिः^५ ॥४७॥
 देशा उद्वासिता तेन दुर्जनेन गुणा यथा । विरोधिताश्च सामन्ताः कषाया^६ इव योगिता ॥४८॥
 नाशकनोदनरण्यस्तं ग्रहीतुं क्षुद्रमप्यलम् । आखोगिरिविलस्यस्य किं करोतु^७ मृगाधिपः ॥४९॥

मैं पापको नष्ट करनेवाले जिनशासनको प्राप्त होता हूँ और विरहरूपी अग्निसे जले हुए उस शरीरको आज शान्त करता हूँ ॥३७॥ तदनन्तर संवेगको प्राप्त हो तथा गुरुकी आज्ञा लेकर उसने परिग्रहका त्याग कर दिया और दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली ॥३८॥ यद्यपि वह समस्त परिग्रहसे रहित हो पृथिवी पर विहार करता था तथापि जब कभी भी चित्तोत्सवाके विषयमें उत्कण्ठित हो जाता था ॥३९॥ नदी, पर्वत, दुर्ग, श्मशान और अटवियोंमें निवास करता हुआ वह शरीरको सुखानेवाला परम तपश्चरण करता था ॥४०॥ मेघोंसे अन्धकारपूर्ण वर्षाकालमें उसका मन खेदको प्राप्त नहीं होता था और न हेमन्त ऋतुमें हिमके पंकेसे उसका शरीर कम्पित होता था ॥४१॥ सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे उसे थोड़ा भी सन्ताप नहीं होता था । वह सदा सत्पुरुषोंका स्मरण करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहके लिए कौन-सा कार्य दुष्कर अर्थात् कठिन है ? ॥४२॥ यह सब था तो भी उसका शरीर विरहाग्नि से जलता रहता था जिसे वह जिनेन्द्र भगवान्के वचनरूपी जलके छोटोंसे पुनः-पुनः शान्त करता था ॥४३॥ इस प्रकार निरन्तर होनेवाले स्त्रीके स्मरण तथा उग्र तपश्चरणसे उसका वह शरीर अधजले वृक्षके समान काला हो गया था ॥४४॥ अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि अब यह कथा रहने दो । इसके बाद कुण्डलमण्डितकी कथा कहता हूँ सो सुनो ! यथार्थमें जिस प्रकार रत्नावली बीच-बीचमें दूसरे रत्नोंके अन्तरसे निर्मित होती है उसी प्रकार कथा भी बीच-बीचमें दूसरी-दूसरी कथाओंके अन्तरसे निर्मित होती है ॥४५॥ जिस समय राजा अनरण्य राज्यमें स्थित थे अर्थात् राज्य करते थे उस समयकी यह कथा है सो कथाके अनुक्रमसे कही जानेवाली इस अवान्तर कथाको सुनो ॥४६॥ कुण्डलमण्डित दुर्गम गढ़का अवलम्बन कर सदा अनरण्यकी भूमिको उस तरह विराधित करता रहता था जिस प्रकार कि कुशील मनुष्य कुलकी मर्यादाको विराधित करता रहता है ॥४७॥ जिस प्रकार दुर्जन गुणोंको उजाड़ देता है उसी प्रकार उसने अनरण्यके बहुत-से देश उजाड़ दिये और जिस प्रकार योगी कषायोंका अवरोध करते हैं उसी प्रकार उसने बहुत-से सामन्तोंका अवरोध कर दिया ॥४८॥ यद्यपि वह क्षुद्र था तो भी अनरण्य उसे पकड़नेके लिए समर्थ नहीं हो सका ।

१. गुरुणाभ्यनुमोदितः म. । २. प्राप्तः । ३. चित्तोत्सवां समुत्कण्ठो म. । ४. प्रतिपद्यत म. । ५. जलधध्वान्ते म. । ६. पूष्णोर्यस्य म. । ७. वचनोत्कर -म. । ८. कुण्डलमण्डितस्य । ९. हितः ख. । १०. विरोधिता-नरण्यस्य । ११. स्थितेः म. । १२. कषाय इव म. । १३. मूषकस्य । १४. करोति म. ।

नक्तं दिवमशुष्यत् स^१ तत्पराजयचिन्तया । अनादरेण शरीरमपि कर्म प्रपन्नवान् ॥५०॥
 ततोऽसौ बालचन्द्रेण सेनान्या जारयभाष्यत । उद्विग्न इव कस्मात्त्वं सततं नाथ लक्ष्यसे ॥५१॥
 उद्वेगकारणं मद्र मम मण्डितकः परम् । इत्युक्ते बालचन्द्रेण प्रतिज्ञेयं समाश्रिता ॥५२॥
^२राजन्नसाधयित्वा तं^३ पापं मण्डितकं तव । सकाशं नागमिष्यामि व्रतमेतन्मया कृतम् ॥५३॥
 इति राज्ञः पुरः कृत्वा संगरं रोषमुद्रहन् । बलेन चतुरङ्गेण सेनानीर्गन्तुमुद्यतः ॥५४॥
 चित्तोत्सवासमायुक्तचित्तो मुक्तान्यचेष्टितः । प्रमादबहुलो मित्रमूलभृत्पक्षतायतिः ॥५५॥
 अज्ञातलोकवृत्तान्तो मण्डितः खण्डितोद्यमः । हेलया बालचन्द्रेण गत्वा बद्धो मृगो यथा ॥५६॥
 गृहीतबलराज्यं तं निर्वास्य^४ विषयात् कृती । बालचन्द्रोऽनरण्यस्य समीपं पुनरागमत् ॥५७॥
 ततस्तेन सुभृत्येन कृतसुस्थवसुन्धरः । परं प्रमोदमापन्नोऽनरण्यः सुखमन्वभूत् ॥५८॥
 शरीरमात्रधारी तु मण्डितः पादचारकः । पर्यटन् धरणीं दुःखी पश्चात्ताप-समाहतः ॥५९॥
 परिप्राप्याश्रमपदं श्रमणानां महात्मनाम् । नत्वा च शिरसाचार्यं धर्मं पप्रच्छ भावतः ॥६०॥
 दुःखितानां दरिद्राणां वर्जितानां च बान्धवैः । व्याधिसंपीडितानां च प्रायो भवति धर्मधीः ॥६१॥
 प्राप्त्रये यस्य भगवन् शक्तिर्जन्तोर्न विद्यते । परिग्रहपरस्यास्य धर्मः कश्चिन्न विद्यते ॥६२॥

सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़के बिलमें स्थित चूहेका सिंह क्या कर सकता है ? ॥४९॥ वह रात-दिन उसीके पराजयकी चिन्तासे सूखता जाता था । भोजन, पान आदि शरीर-सम्बन्धी कार्य भी वह अनादरसे करता था ॥५०॥

तदनन्तर किसी दिन उसके बालचन्द्र नामा सेनापतिने उससे कहा कि हे नाथ ! आप सदा उद्विग्न-से क्यों दिखाई देते हैं ? ॥५१॥ इसके उत्तरमें राजा अनरण्यने कहा कि हे भद्र ! मेरे उद्वेगका परम कारण कुण्डलमण्डित है । राजाके यह कहनेपर बालचन्द्र सेनापतिने यह प्रतिज्ञा की कि हे राजन् ! 'पापी कुण्डलमण्डितको वश किये बिना मैं आपके समीप नहीं आऊँगा' मैंने यह व्रत लिया है ॥५२-५३॥ इस प्रकार राजाके सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ सेनापति चतुरंग सेनाके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥

उधर चित्तोत्सवामें जिसका चित्त लग रहा था ऐसा कुण्डलमण्डित अन्य सब चेष्टाएँ छोड़कर प्रमादसे परिपूर्ण था । उसके मन्त्री आदि मूल पक्षके सभी लोग उससे भिन्न हो चुके थे । लोकमें कहाँ क्या हो रहा है ? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था । सब प्रकारका उद्यम छोड़कर वह एक स्त्रीमें ही आसक्त हो रहा था । सो अनरण्यके सेनापति बालचन्द्रने जाकर उसे मृगकी भाँति अनायास ही बाँध लिया ॥५५-५६॥ चतुर बालचन्द्र उसकी सेना और राज्यपर अपना अधिकार कर तथा उसे देशसे निकालकर अनरण्यके समीप वापस आ गया ॥५७॥ इस प्रकार उस उत्तम सेवकके द्वारा जिसकी वसुधामें पुनः सुख-शान्ति स्थापित की गयी थी ऐसा अनरण्य परम हर्षको प्राप्त होता हुआ सुखका अनुभव करने लगा ॥५८॥

कुण्डलमण्डितका सब राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसके पास बचा था । ऐसी दशामें वह पैदल ही पृथिवीपर भ्रमण करता था, सदा दुःखी रहता था और पश्चात्ताप करता रहता था ॥५९॥

एक दिन वह भ्रमण करता हुआ दिगम्बर मुनियोंके तपोवनमें पहुँचा । वहाँ आचार्य महाराजको शिरसे नमस्कार कर उसने भावपूर्वक धर्मका स्वरूप पूछा ॥६०॥ सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी, दरिद्री, भाई-बन्धुओंसे रहित और रोगसे पीड़ित मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः धर्ममें लगती ही है ॥६१॥ उसने पूछा कि हे भगवन् ! जिसकी मुनिदीक्षा लेनेकी शक्ति नहीं है उस

१. तत्परो जय म. । २. हे राजन् ! असाधयित्वा = तं स्ववशमकृत्वा । ३. पापमहितकं ख. । ४. देशात् ।

कथं वा मुच्यते पापैश्चतुःसंज्ञापरायणः । एतदिच्छामि विज्ञातुं प्रसीद व्याकुरुष्व मे ॥६३॥
 गुरुः प्रोवाच वचनं धर्मः प्राणिदया स्मृता । मुच्यन्ते देहिनः पापैरात्मनिन्दाविगर्हणैः ॥६४॥
 हिंसायाः कारणं धीरं शुक्रशोणितसंभवम् । पिशितं मा भक्षय त्वं शुद्धं चेद्धर्मेच्छसि ॥६५॥
 प्राणिनां मृत्युभीरूणां मांसैश्चर्मप्रसेविकाम् । पूरयित्वा ध्रुवं याति नरकं पापमानवः ॥६६॥
 शिरसो मुण्डनैः स्नानैर्विलिङ्गग्रहणादिभिः । नास्ति संधारणं जन्तोर्मांसभक्षणकारिणः ॥६७॥
 तीर्थस्नानानि दानानि सोपवासानि देहिनः । नरकान्न परित्राणं कुर्वन्ति पिशिताशिनः ॥६८॥
 सर्वजातिगता जीवा बान्धवाः पूर्वजन्मसु । स्युरमी भक्षितास्तेन मांसभक्षणकारिणा ॥६९॥
 पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति परिपन्थं च तिष्ठति । यो नरोऽस्मादपि क्रूरां मधुमांसाद् गतिं व्रजेत् ॥७०॥
 न वृक्षाजायते मांसं नोद्विग्न धरणीतलम् । नाम्भसः पञ्चवन्नापि सद्द्रव्येभ्यो यथौषधम् ॥७१॥
 पक्षिमत्स्यमृगान् हत्वा वराकान् प्रियजीवितान् । क्रूरैस्त्वाद्यते मांसं तन्नाशनं दयापराः ॥७२॥
 स्तन्येन वधितं यस्या शरीरं तां मृतां सतीम् । सहिषीं मातरं कष्टं भक्षयन्ति नराधमाः ॥७३॥
 माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः । भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ॥७४॥
 इतः क्षमापटलं मेरोरधस्तात् सप्तकं स्मृतम् । तत्र रत्नप्रभामिख्ये देवा सवनवासिनः ॥७५॥
 सकषायं तपः कृत्वा जायन्ते तत्र देहिनः । देवानामधमास्ते तु दुष्टकर्मसमन्विताः ॥७६॥

परिग्रही मनुष्यके लिए क्या कोई धर्म नहीं है ? ॥६२॥ अथवा चारों संज्ञाओंमें तत्पर रहनेवाला गृहस्थ पापोंसे किस प्रकार छूट सकता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइए ॥६३॥

तदनन्तर मुनिराजने निम्नांकित वचन कहे कि जीवदया धर्म है तथा अपनी निन्दा गृही आदि करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाते हैं ॥६४॥ यदि तू शुद्ध अर्थात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिंसाका भयंकर कारण तथा शुक्र और शोणितसे उत्पन्न मांसका कभी भक्षण नहीं कर ॥६५॥ जो पापी पुरुष मृत्युसे डरनेवाले प्राणियोंके मांससे अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ॥६६॥ शिर मुँडाना, स्नान करना तथा नाना प्रकारके वेष धारण करना आदि कार्योंसे मांसभक्षी मनुष्यकी रक्षा नहीं हो सकती ॥६७॥ तीर्थक्षेत्रोंमें स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मांसभोजी मनुष्यको नरकसे बचानेमें समर्थ नहीं हैं ॥६८॥ समस्त जातियोंके जीव इस प्राणीके पूर्वभवोंमें बन्धु रह चुके हैं । अतः मांसभक्षण करनेवाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई-बन्धुओंको खाता है यह समझना चाहिए ॥६९॥ जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और मृगोंको मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांसभक्षी मनुष्य इन पक्षी आदिसे भी अधिक क्रूर गतिको प्राप्त होता है ॥७०॥ मांस न वृक्षसे उत्पन्न होता है, न पृथिवीतलको भेदन कर निकलता है, न कमलकी तरह पानीसे उत्पन्न होता है और न औषधिके समान किन्हीं उत्तम द्रव्योंसे उत्पन्न होता है । किन्तु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पक्षी, मत्स्य, मृग आदि दीन-हीन प्राणियोंको मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं । इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ॥७१-७२॥ जिसके दूधसे शरीर पुष्ट होता है तथा जो माताके समान है ऐसी भैंसके मरनेपर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने कष्टकी बात है ? ॥७३॥ जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयोंका ही भक्षण किया है ॥७४॥ यहाँसे मेरु पर्वतके नीचे सात पृथिवियाँ हैं उनमेंसे रत्नप्रभानामक पृथिवीमें भवनवासी देव रहते हैं । जो मनुष्य कषायसहित तप करते हैं वे उनमें उत्पन्न होते हैं । भवनवासी देव सब देवोंमें नीच देव

१. -मृच्छसि म. । २. उदरदरोम् । ३. त्रिविधलिङ्गधारणः । ४. अमार्गं प्रतिकूलप्रवृत्तिमिति यावत् ।
 ५. क्रूरान् म. । ६. शून्येन म. । ७. यस्यां म. ।

अधस्तस्याः क्षितेरन्या दाहणः षट् च भूमयः । नारका यासु पापस्य भुञ्जन्ते कर्मणः फलम् ॥७७॥
 कुरुपा दाहणारावा दुःस्पर्शा ध्वान्तपूरिताः । उपभोक्षितदुःखानां कारणीभूतविग्रहाः ॥७८॥
 कुम्भीराकाख्यमाख्यातं नरकं भीमदर्शनम् । नदी वैतरणी घोरा शात्मली क्रूरकण्टका ॥७९॥
 असिपत्रवनच्छन्नाः क्षुरधाराश्च पर्वताः । ज्वलद्गनिनिमास्तीक्ष्णलोहकीला निरन्तराः ॥८०॥
 तेषु ते तीव्रदुःखानि प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् । प्राणिनो मधुमांसादां घातकाश्चासुधारिणाम् ॥८१॥
 नास्त्यर्धाङ्गुलमात्रोऽपि प्रदेशस्तत्र दुःखितैः । क्रियते नारकैर्यत्र निमेषमपि विश्रमः ॥८२॥
 प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम इति ध्वात्वा पलायिताः । हन्यन्ते निर्दयैरन्यैर्नारकैरमरैश्च ते ॥८३॥
 ज्वलद्गङ्गाकुटिले दग्धा मस्त्या इवानिले । विरसं विहिताक्रन्दा विनिःसृत्य कथंचन ॥८४॥
 नारकाग्निभयग्रस्ताः प्राप्ता वैतरणीजलम् । चण्डक्षारोर्मिभिर्मूयो दहन्ते बह्वितोऽधिकम् ॥८५॥
 असिपत्रवनं याताश्छायाप्रत्याशया द्रुतम् । पतद्भिस्तत्र दार्यन्ते चक्रखड्गगदादिभिः ॥८६॥
 विच्छिन्ननासिकाकर्णस्कन्धजङ्घादिविग्रहाः । कुम्भीपाके^१ नियुज्यन्ते^२ वान्तशोणितवर्षिणः ॥८७॥
 प्रपौज्यन्ते च यन्त्रेषु^३ क्रूरारवेषु विह्वलाः । पुनः शैलेषु भिद्यन्ते तीक्ष्णेषु विरसस्वराः ॥८८॥
 उल्लङ्घ्यन्तेऽसितुङ्गेषु पादपेङ्गवन्धकारिषु । ताड्यन्ते मुद्गराधातैर्महद्भिर्मस्तके तथा ॥८९॥
 जलं प्रार्थयमानानां नृणां तानां प्रदीयते । ताव्नादिकललं तेन दग्धदेहाः सुदुःखिताः ॥९०॥

कहलाते हैं तथा ये दुष्ट कार्य करनेवाले होते हैं ॥७५-७६॥ रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे छह भयंकर पृथिवियाँ और हैं जिनमें नारकी जीव पाप कर्मका फल भोगते हैं ॥७७॥ वे नारकी कुरूप होते हैं, उनके शब्द अत्यन्त दाहण होते हैं, वे अन्धकारसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखोंके कारण हैं ॥७८॥ उन पृथिवियोंमें कुम्भीपाक नामका भयंकर नरक है, भय उत्पन्न करनेवाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण काँटासे युक्त शात्मली वृक्ष है ॥७९॥ असिपत्र वनसे आच्छादित तथा क्षुरोंकी धारके समान तीक्ष्ण पर्वत हैं और जलती हुई अग्निके समान निरन्तर लोहेकी तीक्ष्ण कीलें वहाँ व्याप्त हैं ॥८०॥ मधु मांस खानेवाले तथा प्राणियोंका घात करनेवाले जीव उन नरकोंमें निरन्तर तीव्र दुःख पाते रहते हैं ॥८१॥ वहाँ अर्ध-अंगुल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेषमात्रके लिए भी विश्राम कर सकें ॥८२॥ 'हम यहाँ छिपकर रहेंगे' ऐसा सोचकर नारकी भागकर जाते हैं पर वहीँपर दयाहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव उनका घात करने लगते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंसे कुटिल अग्निमें जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं उसी प्रकार नारकी भी अग्निमें पड़कर विरस शब्द करते हैं । यदि अग्निके भयसे भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदीके जलमें पहुँचते हैं तो अत्यन्त खारी तरंगोंके द्वारा अग्निसे भी अधिक जलने लगते हैं ॥८४-८५॥ यदि छायाकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर असिपत्र वनमें पहुँचते हैं तो वहाँ पड़ते हुए चक्र, खड्ग, गदा आदि शस्त्रोंसे उनके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ॥८६॥ जिनके नाक, कान, स्कन्ध तथा जंघा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए खूनकी मानो वर्षा करते हैं ऐसे उन नारकियोंको कुम्भीपाकमें डाला जाता है अर्थात् किसी घड़े आदिमें भरकर उन्हें पकाया जाता है ॥८७॥ जिनसे क्रूर शब्द निकल रहा है ऐसे कोलहलोंमें उन विह्वल नारकियोंको पेल दिया जाता है फिर तीक्ष्ण नुकीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥८८॥ अन्धा कर देनेवाले बहुत ऊँचे वृक्षोंपर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा बड़े-बड़े मुद्गरों की चोटसे उनका मस्तक पीटा जाता है ॥८९॥ जो नारकी प्याससे पीड़ित होकर पानी मांगते

१. शात्मली क्रूरकण्टका क. । २. मांसादिघातका म. । ३. चन्द्र म. । तीव्र ब. । ४. पाकेन युज्यन्ते । ५. चान्त म. । वात ब. ।

ब्रुवते नास्ति मृणा न इत्यतोऽपि बलादमी ।^१ पारयन्ते तदतिक्रूरैः संदंशव्यावृताननाः^२ ॥९१॥
 प्रपात्य भूतले भूयो वक्षस्याक्रम्य^३ दीयते । पादः क्रूरवचोभिस्तेषां कलमषकर्मणाम्^४ ॥९२॥
 तेषां निर्दग्धकण्ठानां दह्यते हृदयं पुनः । निष्कामन्ति पुरीतन्नि^५ निर्भिद्य जठरं सह ॥९३॥
 परस्परकृतं दुःखं तथा भवनवासिभिः । नरका यत्प्रपद्यन्ते कस्तदवर्णयितुं क्षमः ॥९४॥
 इति ज्ञात्वा महादुःखं नरके मांससंभवम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन विदुषा मांसभक्षणम् ॥९५॥
 अत्रान्तरे जगादैवं कुण्डलच्छस्तमानसः । नाथाणुव्रतयुक्तानां का गतिर्दृश्यते वद ॥९६॥
 गुरुरूचे न यो मांसं खादत्यतिदुःखतः । तस्य वक्ष्यामि यत्पुण्यं सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥९७॥
 उपवासोऽदिहीनस्य दरिद्रस्यापि धीमतः । मांसभुक्तेर्निवृत्तस्य सुगतिर्हस्तवर्तिनी ॥९८॥
 यः पुनः शीलसंपन्नो जिनशासनमावितः । सोऽणुव्रतधरः प्राणो सौधर्मादिषु जायते ॥९९॥
 अहिंसा प्रवरं मूलं धर्मस्य परिकीर्तितम् । सा च मांसाशिवृत्तस्य जायतेऽत्यन्तनिर्मला ॥१००॥
 दयावान् सङ्गवान् योऽपि म्लेच्छश्चाण्डाल एव वा । मधुमांसाशिवृत्तः सन् सोऽपि पापेन मुच्यते ॥१०१॥
 मुक्तमात्रः स पापेन पुण्यं गृह्णाति मानवः । जायते पुण्यबन्धेन सुरः सन्मनुजोऽथवा^६ ॥१०२॥
 सम्यग्दृष्टिः पुनर्जन्तुः कृत्वाणुव्रतधारणम् । लभते परमान्भोगान् ध्रुवं^७ स्वर्गनिवासिनाम् ॥१०३॥

हैं उनके लिए तामा आदि धातुओंका कलल (पिघलाया हुआ रस) दिया जाता है जिससे उनका शरीर जल जाता है तथा अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं ॥९०॥ यद्यपि वे कहते हैं कि हमें प्यास नहीं लगी है तो भी जबर्दस्ती सडाशीसे मुँह फाड़कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥९१॥ पाप करनेवाले उन नारकियोंको जमीनपर गिराकर तथा उनकी छातीपर चढ़कर दुष्ट वचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हें पैरोंसे रूँदते हैं ॥९२॥ पूर्वोक्त कललपानसे उन नारकियोंके कण्ठ जल जाते हैं तथा हृदय जलने लगते हैं । यही नहीं पेट फोड़कर उनकी आँते भी बाहर निकल आती हैं ॥९३॥ इसके सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दुःख प्राप्त कराते हैं उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥९४॥ इस तरह मांस खानेसे नरकमें महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समझदार पुरुषको प्रयत्नपूर्वक मांसभक्षणका त्याग करना चाहिए ॥९५॥

इसी बीचमें जिसका मन अत्यन्त भयभीत हो रहा था ऐसे कुण्डलमण्डितने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंकी क्या गति होती है सो कहिए ॥९६॥ इसके उत्तरमें गुरु महाराजने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यन्त दृढ़तासे व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दृष्टि मनुष्यको जो पुण्य होता है उसे कहना है ॥९७॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मांस-भक्षणसे दूर रहता है भले हो वह उपवासोऽदिसे रहित हो तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथमें रहती है ॥९८॥ और जो शीलसे सम्पन्न तथा जिनशासनकी भावनासे युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गोंमें उत्पन्न होता है ॥९९॥ धर्मका उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गयी है । जो मनुष्य मांस-भक्षणसे निवृत्त रहता है उसीके अत्यन्त निर्मल अहिंसा-धर्म पलता है ॥१००॥ जो परिग्रही म्लेच्छ अथवा चाण्डाल भी क्यों न हो यदि दयालु है और मधु-मांस-भक्षणसे दूर रहता है तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है ॥१०१॥ ऐसा जीव पापसे मुक्त होते ही पुण्य-बन्ध करने लगता है और पुण्य-बन्धके प्रभावसे वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥१०२॥ यदि सम्यग्दृष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह निश्चित ही देवोंके उत्कृष्ट भोग

१. अस्माकम् । २. व्यावृताननः म. । ३. प्रयात्य म. । ४. वक्षस्याक्रम म. । ५. ९२-९३ श्लोकयोरयं पाठः 'ब' पुस्तकसंमतः । पुस्तकान्तरेषु त्वित्थं पाठोऽस्ति 'प्रपात्य भूतले भूयो वक्षस्याक्रमदीयते । तेषां निर्दग्ध-कण्ठानां दह्यते हृदयं पुनः ॥९२॥ निष्कामन्ति पुरीतन्ति निर्भिद्य जठरं सह । ज्वलता कल्लेनाशु तेषां कलप-कर्मणाम् ॥९३॥ ६. अन्त्राणि । ७. यथा म. । ८. विभुः क., ख., ग. ।

इत्याचार्यस्य वचनं श्रुत्वा कुण्डलमण्डितः । मन्दभाग्यतया शक्यः रहितोऽणुव्रतेष्वपि ॥१०४॥
 प्रणिपत्य गुरुं मूर्ध्ना मधुमांसविवर्जनम् । जग्राह शरणोपेतं समीचीनं च दर्शनम् ॥१०५॥
 कृत्वा चैव नमस्कारं गुरोर्दिग्वाससां तथा । निष्क्रान्तः स ततो देशादिति चिन्तामुपागतः ॥१०६॥
 मातुः सहोदरो आता कृतान्तसमविक्रमः । भ्रुवं मे सीदतः सोऽयं भविष्यत्यवलम्बनम् ॥१०७॥
 राजा भूत्वा पुनः शत्रुं जेष्यामीति सुनिश्चितः । आशां वहन् प्रवृत्तोऽसावातुरो दक्षिणापथम् ॥१०८॥
 श्रमादिदुःखपूर्णस्य व्रजतोऽस्य शनैः शनैः । उदीयुर्न्याधयो देहे पापैरन्यभवाजितैः ॥१०९॥
 सन्धिषु च्लिद्यमानेषु मिद्यमानेषु मर्मसु । सर्वस्य जगतोऽन्त्राणं मरणं तस्य दौर्घितम् ॥११०॥
 मुञ्चते समये यस्मिन् जीवं कुण्डलमण्डितः । तत्रैव च्यवते देवः शेषपुण्यादिवश्च्युतः ॥१११॥
 गर्भं च तौ विदेहाया विधिना परियोजितौ । पश्य कर्मानुभावस्य विचित्रमिति चेष्टितम् ॥११२॥
 एतस्मिन्नस्तरे साधु कालं कृत्वा स पिङ्गलः । तपोबलान्महातेजा महाकालोऽसुरोऽभवत् ॥११३॥
 मवनेऽवधिना स्मृत्वा धर्मस्य च फलोदयम् । दध्यौ चित्तोत्सवा क्वेति तावज्ज्ञे यथाविधि ॥११४॥
 दुष्ट्या किं तथा कृत्यं काशौ कुण्डलमण्डितः । येनाहं प्रापितोऽवस्थां विधुरां विरहार्णवे ॥११५॥
 पत्न्या जनकराजस्य गर्भमाश्रित्य मण्डितः । साकमन्येन जीवेन विवेद स्थित इत्यसौ ॥११६॥
 सूतां तावदियं देवी युगलं किं ममानया । गर्भद्वितययोगिन्या मृतयास्ति प्रयोजनम् ॥११७॥

प्राप्त करता है ॥१०३॥ इस प्रकार आचार्यके वचन सुनकर कुण्डलमण्डित मन्द भाग्य होनेसे अणुव्रत धारण करनेके लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥१०४॥ अतः उसने शिरसे गुरुको नमस्कार कर मधुमांसका परित्याग किया और शरणभूत सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१०५॥

तदनन्तर जिन-प्रतिमा और दिग्म्बराचार्यको नमस्कार कर वह ऐसा, विचार करता हुआ उस देशसे बाहर निकला कि मेरी माताका सगा भाई यमराजके समान पराक्रमका धारी है सो वह विपत्तिमें पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा । मैं फिरसे राजा होकर निश्चित ही शत्रुको जीतूँगा । ऐसी आशा रखता हुआ वह कुण्डलमण्डित दुःखी हो दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥१०६-१०८॥ वह थकावट आदि दुःखोंसे परिपूर्ण होनेके कारण धीरे-धीरे चलता था । बीचमें पूर्वभवमें संचित पाप कर्मके उदयसे उसके शरीरमें अनेक रोग प्रकट हो गये ॥१०९॥ उसकी सन्धियां छिन्न होने लगीं और मर्म स्थानोंमें भयंकर पीड़ा होने लगी । अन्तमें समस्त संसार जिससे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण आ पहुँचा ॥११०॥ जिस समय कुण्डलमण्डितने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवाका जीव जो स्वर्गमें देव हुआ था शेष पुण्यके प्रभावसे स्वर्गसे च्युत हुआ ॥१११॥

भाग्यवश वे दोनों ही जीव राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें उत्पन्न हुए । गौतमस्वामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक ! कर्मोदयकी यह विचित्र चेष्टा देखो ॥११२॥ इसी बीचमें वह पिङ्गल ब्राह्मण अच्छी तरह मरण कर तपके प्रभावसे महातेजस्वी महाकाल नामका असुर हुआ ॥११३॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे धर्मके फलका विचार किया और साथ ही इस बातका ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहाँ उत्पन्न हुई है ? वह अपने अवधिज्ञानसे इन सब बातोंको अच्छी तरहसे जान गया ॥११४॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टासे क्या प्रयोजन है ? वह कुण्डलमण्डित कहाँ है जिसने मुझे विरहरूपी सागरमें गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त करायी थी ॥११५॥ उसने अवधिज्ञानसे यह जान लिया कि कुण्डलमण्डित राजा जनककी पत्नीके गर्भमें चित्तोत्सवाके जीवके साथ विद्यमान है ॥११६॥ उसने विचार किया

१. चैत्यनमस्कारं व. । २. सततं ख. । ३. न विद्यते त्राणं यस्मात्तत्, व. पुस्तके टिप्पणम् । ४. तस्मिन् म. । ५. देवी शेषपुण्यादिवः सती व. । ६. चित्तो म. । ७. यस्य म. ।

ततो निर्लुडितं सन्तं पापं मण्डितकं ध्रुवम् । नेष्यामि यदहं दुःखं तत्तमेव दुरीहितम् ॥११८॥
 इति संचिन्तयन् क्रुद्धः पूर्वकर्मनुबन्धतः । देवो रक्षति तं गर्भं संमृदन्पाणिना करम् ॥११९॥
 इति ज्ञात्वा क्षमं कर्तुं दुःखं जन्तोर्न कस्यचित् । कालव्यवहितं तद्धि कृत्वामात्मन एव हि ॥१२०॥
 कालेनाथ सुतं देवो प्रसूता युगलं शुभम् । सुतं दुहितरं चान्ते जहार पृथुकं सुरः ॥१२१॥
 आस्फाल्य मारयाभ्येन शिलायां पूर्वमण्डितम् । इति ध्यातं पुरा तेन पुनरेवमचिन्तयत् ॥१२२॥
 धिङ्मया चिन्तितं सर्वं संसारपरिवर्धनम् । जायते कर्मणा येन तत्कुर्वीत कथं बुधः ॥१२३॥
 तृणस्यापि पुरा दुःखं श्रामण्ये न कृतं मया । सर्वाग्भनिवृत्तेन तपोवीवधवाहिना ॥१२४॥
 गुरोस्तस्य प्रसादेन कृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । ईदृशीं द्युतिमाप्सोऽस्मि करोमि दुरितं कथम् ॥१२५॥
 स्वल्पमप्यर्जितं पापं व्रजत्युपचयं परम् । निमग्नो येन संसारे चिरं दुःखेन दृश्यते ॥१२६॥
 निर्दोषभावनो यस्तु दयावान् सुसमाहितः । स्थितं करतले तस्य रत्नं सुगतिसंज्ञकम् ॥१२७॥
 घृणावान् संप्रधार्येदं तमलंकृत्य बालकम् । कुण्डले कर्णयोरस्य चक्रे दीप्तांशुमण्डले ॥१२८॥
 पर्णलघ्वीं ततो विद्यां संक्रमय्य शिशौ सुरः । सुखदेशे विमुच्यैतं गतो धाम मनीषितम् ॥१२९॥

कि यदि गर्भमें ही इसे मारता हूँ तो रानी विदेहा मरणको प्राप्त होगी इसलिए यह युगल सन्तान-को उत्पन्न करे पीछे देखा जायेगा । दो गर्भको धारण करनेवाली इस रानीके मारनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भसे निकलते ही इस पापी कुण्डलमण्डितको अवश्य ही भारी दुःख प्राप्त कराऊँगा ॥११७-११८॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्मके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथसे हाथको मसलता हुआ उस गर्भकी रक्षा करने लगा ॥११९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसीको दुःख पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि कालान्तरमें वह दुःख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानन्तर समय आनेपर रानी विदेहाने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल सन्तान उत्पन्न की । सो उत्पन्न होते ही असुरने पुत्रका अपहरण कर लिया ॥१२१॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुण्डलमण्डितके जीवको मैं शिलापर पछाड़कर मार डालूँ । फिर कुछ देर बाद वह विचार करने लगा ॥१२२॥ कि मैंने जो विचार किया है उसे धिक्कार है । जिस कार्यके करनेसे संसार (जन्म-मरण) की वृद्धि होती है उस कार्यको बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥१२३॥

पूर्वभवमें मुनि अवस्थामें जब मैं सब प्रकारके आरम्भसे रहित था तथा तपरूपी काँवरको धारण करता था तब मैंने तृणको भी दुःख नहीं पहुँचाया था ॥१२४॥ उन गुरुके प्रसादसे अत्यन्त निर्मल धर्म धारण कर मैं ऐसी कान्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अतः अब ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ ॥१२५॥ संचित किया हुआ थोड़ा पाप भी परम बुद्धिको प्राप्त हो जाता है जिससे संसार-सागरमें निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दुःखसे जलता रहता है ॥१२६॥ परन्तु जिसकी भावना निर्दोष है, जो दयालु है और जो अपने परिणामोंको ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतलमें स्थित रहता है ॥१२७॥ ऐसा विचार करके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी जिससे उसने उस बालकको मारनेका विचार छोड़ दिया तथा उसके कानोंमें देदीप्यमान किरणोंके धारक कुण्डल पहनाकर उसे अलंकृत कर दिया ॥१२८॥ तदनन्तर वह देव उस बालकमें पर्णलघ्वी विद्याका प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थानमें छोड़कर इच्छित स्थानपर चला गया ॥१२९॥

१. बालकं 'पोतः पाकोर्जाको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । २. श्रामण्येन म. । ३. तपो-विविध -म. ।

नक्तं शक्या स्थितेनासावुद्याने नभसः पतन् । विद्याभृतेन्दुगतिना ददृशे सुखभाजनम् ॥१३०॥
उडुपातः किमेष स्याद् विद्युत्खण्डोऽथवा च्युतः । वितर्क्यति समुत्पत्य ददृशे पृथुकं शुभम् ॥१३१॥
गृहीत्वा च प्रमोदेन देव्याः पुष्पवतीश्रुतेः । वरशय्याप्रसुप्ताया जङ्घादेशे चकार सः ॥१३२॥
ऊचे^१ चैतां^२ हुतस्वान उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुन्दरि । किं शेषे बालकं पश्य संप्रसूतासि शोभनम्^३ ॥१३३॥
ततः कान्तकरस्पर्शसौख्यसंपत्प्रबोधिता । शय्यातः सहस्रोत्तस्थौ सा विवृणितलोचना ॥१३४॥
अर्मकं च ददर्शातिसुन्दरं सुन्दरानना । तस्यास्तदंशुजालेन निद्राशेषो निराकृतः ॥१३५॥
परं च विस्मयं प्राप्ता प्रपच्छ प्रियदर्शना । कथायं जनितो नाथ पुण्यवत्था स्त्रिया शिशुः ॥१३६॥
सोऽवोचद्विधिते जातस्तवायं प्रवरः सुतः । प्रतीहि संशयं मा गास्त्वत्तो धन्या परा तु का ॥१३७॥
सावोचद्विषय वन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसंभवः । प्रतारितास्मि दैवेन किं मे भूयः प्रतार्यते ॥१३८॥
सोऽवोचदेवि मा शङ्का कार्षीः कर्मनियोगतः । प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणां जायते गर्भसंभवः ॥१३९॥
सावोचदस्तु नामैवं कुण्डले त्वत्तिचारुणी^४ । इंदुशो मर्त्यलोकेऽस्मिन् सुरले भवतः कुतः ॥१४०॥
सोऽवोचददेवि नानेन विचारेण प्रयोजनम् । शृणु तथ्यं पतन्नेप गगनादाहृतो मया ॥१४१॥
मयानुमोदितस्तेऽयं सुतः सुकुलसंभवः । लक्षणानि वदन्त्यस्य महापुरुषभूमिकम् ॥१४२॥
श्रमं कृत्वापि भूयांसं भारमूढ्वा च गर्भजम् । फलं तनयलामोऽत्र तत्ते जातं सुखं प्रिये ॥१४३॥

तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर रात्रिके समय अपने उद्यानमें स्थित था सो उसने आकाशसे पड़ते हुए सुखके पात्रस्वरूप उस बालकको देखा ॥१३०॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है ? अथवा कोई बिजलीका टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा संशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ज्योंही आकाशमें उड़ा त्योंही उसने उस शुभ बालकको देखा ॥१३१॥ देखते ही उसने बड़े हर्षसे उस बालकको बीचमें ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करनेवाली पुष्पवती रानीकी जाँघोंके बीचमें रख दिया ॥१३२॥ यही नहीं, ऊँची आवाजसे वह रानीसे बोला भी कि हे सुन्दरि ! उठो, क्यों सो रही हो ? देखो तुमने सुन्दर बालक उत्पन्न किया है ॥१३३॥ तदनन्तर पतिके हस्त-स्पर्शसे उत्पन्न सुखरूपी सम्पत्तिसे जागृत हो रानी शय्यासे सहसा उठ खड़ी हुई और इधर-उधर नेत्र चलाने लगी ॥१३४॥

ज्योंही उस सुन्दरमुखीने अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, त्योंही उसकी किरणोंके समूहसे उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गयी ॥१३५॥ उस सुन्दरीने परम आश्चर्यको प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती स्त्रीने उत्पन्न किया है ? ॥१३६॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे प्रिये ! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है । विश्वास रखो, संशय मत करो, तुमसे बढ़कर और दूसरी धन्य स्त्री कौन हो सकती है ? ॥१३७॥ उसने कहा कि हे प्रिय ! मैं तो वन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? मैं दैवके द्वारा ही प्रतारित हूँ—ठगी गयी हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं ? ॥१३८॥ उसने कहा कि हे देवि ! शंका मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोगसे स्त्रियोंके प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥१३९॥ रानीने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह बताओ कि इसके कुण्डल लोकोत्तर क्यों है ? मनुष्य लोकमें ऐसे उत्तम रत्न कहाँसे आये ? ॥१४०॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे देवि ! इस विचारसे क्या प्रयोजन है ? जो सत्य बात है सो सुनो । यह बालक आकाशसे नीचे गिर रहा था सो बीचमें ही मैंने प्राप्त किया है ॥१४१॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उच्चकुलमें उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरुषसे उत्पन्न सूचित करते हैं ॥१४२॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भका

१. प्रसुप्तायां म. । २. चैतां क. म. । ३. हुतस्वान म. । ४. शोभनम् म. । ५. भूप म. । ६. त्वत्ति-चारिणी म. । ७. मया तु मोदित म. ।

कुक्षिजातोऽपि पुत्रस्य यः कृत्स्नं कुरुते न ना^१ । अपुत्र एव कान्तेऽसौ जायते रिपुरेव वा ॥१४४॥
 तव सौख्यमपुत्रायाः सति पुत्रो भविष्यति ।^२ अन्तयानेन किं कृष्यमत्र वस्तुनि शोभने ॥१४५॥
 एवमस्त्विति संभाष्य देवी सूतिगृहं गता । प्रभाते सुतजन्मास्यास्तुष्ट्या लोके प्रकाशितम् ॥१४६॥
 ततो जन्मोत्सवस्तस्य पुरेऽस्मिन् रथनूपुरे । संप्रवृत्तः समागच्छद् विस्मिताशेषबान्धवः ॥१४७॥
 रत्नकुण्डलभानूनां मण्डलेन यतो वृतः । प्रमामण्डलनामास्य पितृभ्यां निर्मितं ततः ॥१४८॥
 अर्पितः पोषणायास्तौ धान्या लीलामनोहरः । सर्वान्तःपुरलोकस्य करपद्ममधुव्रतः ॥१४९॥
 विदेहा तु हते पुत्रे कुररीवत् कृतस्वभा । बन्धून्पातयत् सर्वान् गम्भीरे शोकसागरे ॥१५०॥
 परिदेवनमेवं च चक्रे चक्राहतेव सा । हा वत्स केन नीतोऽसि मम दुष्करकारिणा ॥१५१॥
 विष्णुस्य कथं तस्य पापस्य प्रसूतौ करौ । अज्ञानं जातमात्रं त्वां प्रहीतुं त्रायचेतसः ॥१५२॥
 पश्चिमाया इवाशायाः संध्येयं सुता मम । स्थिता स तु परिप्राप्तो मन्दायाः पूर्ववत्सुतः ॥१५३॥
 ध्रुवं भवान्तरं कोऽपि मया बालो वियोजितः । तदेव फलितं कर्म न कार्यं बीजवर्जितम् ॥१५४॥
 मारितास्मि न किं तेन पुत्रचोरणकारिणा । पुरु प्राप्तास्मि यद्दुःखं समागत्यार्द्धवैशसम्^३ ॥१५५॥
 इति तां कुर्वन्तीमुच्चैर्विह्वलां परिदेवनम् । समाश्वासयदागत्य जनको निगदन्निदम् ॥१५६॥
 प्रिये मा गाः परं शोकं जीवत्येव शरीरजः^४ । हतः केनाप्यसौ जीवन् द्रक्ष्यसे ध्रुवमेव हि ॥१५७॥

भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है वह पुत्रलाभ रूप ही होता है । सो हे प्रिये ! तुम्हें यह फल अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥१४३॥ जो मनुष्य कुक्षिसे उत्पन्न होकर भी पुत्रका कार्य नहीं करता है हे प्रिये ! वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥१४४॥ हे पतिव्रते ! तुम्हारे पुत्र नहीं है अतः यह तुम्हारा पुत्र हो जायेगा । इस उत्तम वस्तुके भीतर जानेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१४५॥

तदनन्तर ऐसा ही हो इस प्रकार रानी प्रसूतिकागृहमें चली गयी और प्रातःकाल होते ही इसके पुत्र-जन्मका समाचार लोकमें बड़े हर्षसे प्रकाशित कर दिया गया ॥१४६॥ तदनन्तर रथनूपुर नगरमें पुत्रका जन्मोत्सव किया गया । इस उत्सवमें आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भाई-बन्धु-रिश्तेदार सम्मिलित हुए ॥१४७॥ चूँकि वह बालक रत्नमय कुण्डलोंकी किरणोंके समूहसे घिरा हुआ था इसलिए माता-पिताने उसका भामण्डल नाम रक्खा ॥१४८॥ अपनी लीलाओंसे मनको हरनेवाला तथा समस्त अन्तःपुरके करकमलोंमें भ्रमरके समान संचार करनेवाला वह बालक पोषण करनेके लिए धायको सौना गया ॥१४९॥

इधर पुत्रके हरे जानेपर कुररीके समान विलाप करती हुई रानी विदेहाने समस्त बन्धुओंको शोकरूपी सागरमें गिरा दिया ॥१५०॥ चक्रसे ताड़ित हुईके समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाय वत्स ! कठोर कार्य करनेवाला कौन पुरुष तुझे हर ले गया है ? ॥१५१॥ जिसे उत्पन्न होते देर नहीं थी ऐसे तुझ अश्लोघ बालकको उठानेके लिए उस निर्दय पापीके हाथ कैसे पसरे होंगे ? जान पड़ता है कि उसका हृदय पत्थरका बना होगा ॥१५२॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशामें आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और सन्ध्या रह जाती है उसी प्रकार मुख अभागिनीका पुत्र तो अस्त हो गया और सन्ध्याकी भाँति यह पुत्री स्थित रह गयी ॥१५३॥ निश्चित ही भवान्तरमें मैंने किसी बालकका वियोग किया होगा सो उसी कर्मने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीजके कोई कार्य नहीं होता ॥१५४॥ पुत्रकी चोरी करनेवाले उस दुष्टने मुझे मार ही क्यों नहीं डाला । जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दुःख प्राप्त कराया है ॥१५५॥ इस प्रकार विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करती हुई रानीके पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे प्रिये ! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है, कोई उसे हरकर

दृश्यते नेक्ष्यते भूयः पुनर्जात्वलोक्यते । पूर्वकर्मानुभावेन जाये रोदिषि किं वृथा ॥१५८॥
 व्रज स्वास्थ्यमिमं लेखं सुहृदो नाययाम्यहम् । वार्ता दशरथस्येमां परिवेदयितुं प्रिये ॥१५९॥
 स चाहं च सुतस्याशु करिष्यामि गवेषणम् । प्रच्छाद्य धरणीं सर्वां चरैः कुशलचेष्टितैः ॥१६०॥
 दयितां सान्त्वयिष्वैद्यं लेखं मित्राय दत्तवान् । तं प्रवाच्य सशोकेन पूरितोऽतिगरीयसा ॥१६१॥
 भद्रामन्वेषितस्ताभ्यां नासौ दृष्टो यदार्भकः । मन्दीकृत्य तदा शोकमस्थुः कृच्छ्रेण बान्धवाः ॥१६२॥
 नासावासीजनस्तत्र पुरुषः प्रमदाधवा । यो न बाष्पपरीताक्षस्तच्छोकेन वशीकृतः ॥१६३॥
 शोकविस्मरणे हेतुर्बभूव सुमनोहरा । जानकी बन्धुलोकस्य शुभशैशवचेष्टिता ॥१६४॥

मालिनीवृत्तम्

प्रमदमुपगतानां योपितामङ्गदेशे
 पृथुतनुभवकान्त्या लिम्पती दिक्समूहम् ।
 विपुलकमलयाता श्रीरिवासौ सुकण्ठा
 शुचिहसितसितास्या वर्धताम्भोजनेत्रा ॥१६५॥
 प्रमवति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्धं
 भजदखिलजनानां सौख्यसंभारदानम् ।
 तदतिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्मान्विताङ्गा
 जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥१६६॥
 वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छायपाणिः
 शितिमणिसमतेजः केशसंवातरम्या ।

ले गया है और निश्चित ही तुम उसे जीवित देखोगी ॥१५६-१५७॥ इष्ट वस्तु पूर्व कर्मके प्रभावसे अभी दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनन्तर फिर कभी दिखाई देने लगती है । इसलिए हे प्रिये ! व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? ॥१५८॥ तुम स्वस्थताको प्राप्त होओ । हे प्रिये ! मैं यह समाचार बतलाने-के लिए मित्र राजा दशरथके पास पत्र भेजता हूँ ॥१५९॥ वह और मैं दोनों ही चतुर गुप्तचरोंसे समस्त पृथिवीको आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्रकी खोज करेंगे ॥१६०॥ इस प्रकार स्त्रीको सान्त्वना देकर उसने मित्रके लिए पत्र दिया । उस पत्रको बाँचकर राजा दशरथ अत्यधिक शोकसे व्याप्त हो गये ॥१६१॥ उन दोनोंने पृथिवीपर पुत्रकी खोज की । पर जब कहीं पुत्र नहीं दिखा तब सब बन्धुजन शोकको मन्द कर बड़े कष्टसे चुप बैठ रहे ॥१६२॥ उस समय न कोई ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्रसम्बन्धी शोकके कारण अश्रुओंसे व्याप्त नहीं हुए हों ॥१६३॥ उस समय बन्धुजनोंका शोक भुलानेका कारण यदि कुछ था तो अत्यन्त मनोहर और शुभ बालचेष्टाओंको धारण करनेवाली जानकी ही थी ॥१६४॥

वह जानकी हर्षको प्राप्त होनेवाली स्त्रियोंकी गोदमें निरन्तर वृद्धिगत हो रही थी । वह अपने शरीरकी विशाल कान्तिसे दिशाओंके समूहको लीप्त करती थी । वह विपुल कमलोंको प्राप्त लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, उसका कण्ठ सुन्दर था, पवित्र हास्यसे उसका मुख झुल्ल हो रहा था और कमलके समान उसके नेत्र थे ॥१६५॥ समस्त भक्तजनोंके लिए सुखका समूह प्रदान करनेवाला गुणरूपी धान्य, चूँकि उस जानकीमें अत्यन्त समृद्धिके साथ उत्पन्न होता था, अतः अत्यन्त मनोहर और उत्तम लक्षणोंसे युक्त उस जानकीको लोग भूमिकी समानता रखनेके कारण सीता भी कहते थे ॥१६६॥ उसने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया था, उसके

१. नीययाम्यहम् म. । २. पाता म. । ३. सितमणि म. । ४. शितमणिसमतेजाः ब. ।

जितसमदनहंसस्त्रीगतिः सुन्दरभू-
 र्वकुलसुरभिवक्त्रामोदबद्धालिवृन्दा ॥१६७॥
 अतिमृदुभुजमाला शक्रशस्त्राणुमध्या
 प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरुः ।
 स्थलकमलसमानोत्तुङ्गपृष्ठोज्ज्वलाहिम्नः
 प्रमवदतिविशालच्छायवक्षोजयुग्मा ॥१६८॥
 प्रवरभवनकुक्षिष्वत्युदारेषु कान्त्या
 विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा परं सा ।
 सततमुपगतान्तःसप्तकन्याशताना-
 मतिशयरमणीयं शास्त्रमार्गेण रेभे ॥१६९॥
 अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः
 सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुमद्रा ।
 यदि भजति तदीयासङ्गशोभां कथंचि-
 न्नियतमतिमनोज्ञास्तास्ततो वेदनीयाः ॥१७०॥
 विधिरिव रतिदेवीं कामदेवस्य बुद्ध्या
 दशरथतनयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य ।
 जनकनरपतिस्तां सर्वविज्ञानयुक्तां
 ननु रविकरसङ्गस्थोचिता पद्मलक्ष्मीः ॥१७१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीतामामण्डलोत्पत्त्यभिधानं नाम षड्विंशतितमं पर्व ॥२६॥



हाथ पल्लवके समान लाल कान्तिके धारक थे, वह नील मणिके समान कान्तिके धारक केशोंके समूहसे मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हंसिनीकी चालको जीत लिया था, उसकी भौंहें सुन्दर थीं तथा मौलिश्रीके समान सुगन्धित उसके मुखके सुवाससे उसके पास भौरोंके समूह में डराते रहते थे ॥१६७॥ उसकी भुजाएँ अत्यन्त सुकुमार थीं, उसकी कमर वज्रके समान पतली थी, उसकी जाँघें उत्तम सरस केलेके स्तम्भके समान सुन्दर थीं, उसके पैर स्थल-कमलके समान उन्नत पृष्ठभागसे सुशोभित थे और उसके उठते हुए स्तनयुगल अत्यधिक कान्तिसे युक्त थे ॥१६८॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजमहलोंके विशाल कोष्ठोंमें अपनी कान्तिसे विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओंके मध्यमें स्थित हो बड़ी सुन्दरताके साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ॥१६९॥ यदि सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी चाँदनी, इन्द्रकी इन्द्राणी, और चक्रवर्तीकी पट्टरानी सुमद्रा किसी तरह जानकीके शरीरकी शोभा प्राप्त कर सकतीं तो वे निश्चित ही अपने पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक सुन्दर होतीं ॥१७०॥ जिस प्रकार विधाताने रतिको कामदेवकी पत्नी निश्चित किया था, उसी प्रकार राजा जनकने सर्व प्रकारके विज्ञानसे युक्त सीताको राजा दशरथके प्रथम पुत्र रामकी पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलोंकी लक्ष्मी सूर्यकी किरणोंके साथ सम्पर्क करने योग्य ही है ॥१७१॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा प्रोक्त पद्मचरितमें सीता और मामण्डलकी उत्पत्तिका कथन करनेवाला उन्नीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥



सप्तविंशतितमं पर्व

ततो मगधराजेन्द्रश्चास्त्वृत्तान्तविस्मितः । पप्रच्छ गणिनामग्र्यं नूतनप्रश्रयान्वितः ॥१॥
 किं पुनस्तस्य माहात्म्यं दृष्टं जनकभूभृता । रामस्य येन सा तस्मै तेन बुद्ध्या निरूपिता ॥२॥
 ततः करतलासङ्गद्विगुणीभूतदन्तभाः । जगौ गणधरो वाक्यं चित्तप्रह्लादनावहम् ॥३॥
 शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्याकिलष्टकर्मणः । यतः प्रकल्पिता कन्या जनकेन सुबुद्धिना ॥४॥
 दक्षिणे विजयादस्य कैलासाद्रेस्तथोत्तरे । अन्तरेऽस्थन्तवहवः सन्ति देशाः सहान्तराः ॥५॥
 तत्रार्धवर्वरो देशो निःसंयमनमस्कृतिः । निर्विदग्धजनो घोरम्लेच्छलोकसमाकुलः ॥६॥
 मयूरमालनगरे कृतान्तनगरोपमे । आन्तरङ्गतमो नामेत्यर्धवर्वरचारिणाम् ॥७॥
 पूर्वापरायतक्षोण्या यावन्तो म्लेच्छसंभवाः । कपोतशुककाम्बोजमङ्गनायाः सहस्रशः ॥८॥
 गुप्ता बहुविधैः सैन्यैर्भीषणैर्विचिधायुधैः । आन्तरङ्गतमं प्रीत्या परिवार्य ससाधनाः ॥९॥
 आयनेताञ्जनपदान् प्रचण्डान्तररंहसः । उद्धासयन्त आजगमुरिति कारुण्यवर्जिताः ॥१०॥
 देशं जनकराजस्य ततो व्याप्तुं समुद्यताः । शलमा इव निःशेषमुपप्लवविधायिनः ॥११॥
 जनकेन च साकेतां युवानः प्रेषितां द्रुतम् । आन्तरङ्गतमं प्राप्तमृचुर्दशरथस्य ते ॥१२॥
 विशापयति देव स्वां जनको जनवत्सलः । पौलिन्दपरचक्रेण समाक्रान्तं महीतलम् ॥१३॥

अथानन्तर भामण्डलके सुन्दर वृत्तान्तसे आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिकने नूतन विनयसे युक्त हो अर्थात् पुनः नमस्कार कर गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन् ! राजा जनकने रामका ऐसा कौन-सा माहात्म्य देखा कि जिससे उसने रामके लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देनेका निश्चय किया ? ॥१-२॥ तदनन्तर करतलके आसंगसे जिनके दाँतोंकी कान्ति दूनी हो गयी थी ऐसे गौतम गणधर चित्तको आह्लादित करनेवाले वचन बोले ॥३॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुनो, संक्लेशहीन कार्यको करनेवाले रामचन्द्रके लिए अत्यन्त बुद्धिमान् जनकने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मैं कहता हूँ ॥४॥ विजयाद पर्वतके दक्षिण और कैलास पर्वतके उत्तरकी ओर बीच-बीचमें अन्तर देकर बहुत-से देश स्थित हैं ॥५॥ उन देशोंमें एक अर्धवर्वर नामका देश है जो असंयमी जनोके द्वारा मान्य है, धूर्तजनोंका जिसमें निवास है तथा जो अत्यन्त भयंकर म्लेच्छ लोगोंसे व्याप्त है ॥६॥ उस देशमें यमराजके नगरके समान एक मयूरमाल नामका नगर है । उसमें आन्तरंगतम नामका राजा राज्य करता था ॥७॥ पूर्वसे लेकर पश्चिम तककी लम्बी भूमिमें कपोत, शुक, काम्बोज, मङ्गना आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकारके शस्त्र तथा नाना प्रकारके भीषण अस्त्रोंसे युक्त हो अपने सब साधनोंके साथ प्रीतिपूर्वक आन्तरंगतम राजाकी उपासना करते थे ॥८-९॥ जिनका गमन बीच-बीचमें अत्यन्त वेगसे होता था तथा जो दयासे रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशोंको उजाड़ते हुए यहाँ आये ॥१०॥ तदनन्तर टिड्डियोंके समान उपद्रव करनेवाले वे म्लेच्छ राजा जनकके देशको व्याप्त करनेके लिए उद्यत हुए ॥११॥ राजा जनकने शीघ्र ही अपने योद्धा अयोध्या भेजे । उन्होंने जाकर राजा दशरथसे आन्तरंगतमके आनेकी खबर दी ॥१२॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! प्रजावत्सल राजा जनक

१. नूतनप्रश्रयान्वितः क., ख. । २. तत्रार्धवर्वरोदेशे ब. । ३. मयूरमालानगरे क., ख. । ४. आन्तरङ्गमे क., ख. । ५. मङ्गल्यायाः ब. । ६. प्रेषिता क., ख., ब. । ७. आतासन्तजना तेन द्रुतस्तेन वदन्त वै (?) क., ख. । ८. प्राप्नु ब. । ९. पौलिन्द म. ।

आर्यदेशाः परिध्वस्ता म्लेच्छैरुद्धासितं जगत् । एकवर्णां प्रजां सर्वां पापाः कर्तुं समुद्यताः ॥१४॥
 प्रजासु विप्रनष्टासु जीवामः किं प्रयोजनाः^१ । चिन्त्यतामिति किं कुर्मो व्रजामो वा कमाश्रयम् ॥१५॥
 किं वा दुर्गं समाश्रित्य तिष्ठामः समुहजनाः । नन्दीकालिन्दभागान् वा गिरिं वा विपुलाह्वयम् ॥१६॥
 अथवा सर्वसैन्येन निकुञ्जगिरिमाश्रिताः । सन्निरुध्मः^२ समागच्छत् परसैन्यं मयानकम् ॥१७॥
 साधुगोश्रावकाकीर्णां प्रजामेतां सुविह्वलाम् । सम्यक् संधारयिष्यामस्त्यक्त्वा जीवं सुदुस्तहम् ॥१८॥
 अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां यत्त्वया पाल्यते मही । तव राज्यं महाभाग त्वमेव हि जगत्पतिः ॥१९॥
 यजन्ते^३ भावतः सन्तो चावन्तः श्रावकादयः । पञ्चयज्ञान् विधानेन^४ ब्रोह्माद्यैर्यद्वीजकैः^५ ॥२०॥
 मुक्तिक्षान्तिगुणैर्युक्ता यच्च ध्यानपरायणाः । तप्यन्ते सुतपो मोक्षसाधनं गगनाम्बराः ॥२१॥
 महान्तश्च पुरस्कारा यच्चैव्यभवनादिषु । विधीयन्तेऽभिषेकाश्च जिनानां क्षीणकर्माणाम् ॥२२॥
 प्रजासु रक्षितास्वेतस्त्वं भवति रक्षितम् । ततश्च धर्मकामार्थाः प्रेत्य चेह च भूभृताम् ॥२३॥
 बहुकोपो नरेशो यः प्रीतः पाठयति क्षितिम् । परचक्राभिभूतश्च नावसादं^६ समश्नुते ॥२४॥
 हिंसाधर्मविहीनानां यच्छतां यागदक्षिणाम् । कुरुते पालनं यश्च तस्य भोगाः^७ पुनर्भुवः ॥२५॥
 धर्मार्थकाममोक्षानामधिकारा महीतले । जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा कुतः ॥२६॥
 नृपबाहुबलच्छायां समाश्रित्य सुखं प्रजाः । ध्यायन्त्यात्मानमव्यग्रास्तथैवाश्रमिणो बुधाः ॥२७॥

आपसे निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजाकी सेनासे आक्रान्त हो चुका है ॥१३॥
 उन म्लेच्छोंने आर्य देश नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत्को उजाड़ दिया है । वे पापी समस्त
 प्रजाको एक वर्णकी करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१४॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए
 जीवित रह रहे हैं ? विचार कीजिए कि इस दशामें हम क्या करें ? अथवा किसकी शरणमें
 जावें ? ॥१५॥ हम मित्रजनोंके साथ किस दुर्गका आश्रय लेकर रहें अथवा नन्दी, कलिन्द या
 विपुलगिरि इन पर्वतोंका आश्रय लें ? ॥१६॥ अथवा सब सेनाके साथ निकुञ्जगिरिमें जाकर शत्रुकी
 आती हुई भयंकर सेनाको रोकें ॥१७॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर
 भी साधु, गौ तथा श्रावकोंसे व्याप्त इस विह्वल प्रजाकी रक्षा कर सकेंगे ॥१८॥ इसलिए हे राजन् !
 मैं आपसे कहता हूँ कि चूँकि आप ही पृथिवीकी रक्षा करते रहे, अतः यह राज्य आपका ही है
 और हे महाभाग ! आप ही जगत्के स्वामी हैं ॥१९॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भाव-
 पूर्वक पूजा करते हैं । अंकुर उत्पन्न होनेकी शक्तिसे रहित पुराने धान आदिके द्वारा विधिपूर्वक
 पाँच प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥२०॥ निर्ग्रन्थ मुनि मुक्ति क्षान्ति आदि गुणोंसे युक्त होकर ध्यानमें
 तत्पर रहते हैं तथा मोक्षका साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥२१॥ जिनमन्दिर आदि स्थलोंमें
 कर्मोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्की बड़ी-बड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥२२॥ प्रजाकी
 रक्षा रहनेपर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होनेपर ही इस लोक तथा
 परलोकमें राजाओंके धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥२३॥ बहुत बड़े खजानेका
 स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नतासे पृथिवीकी रक्षा करता है और परचक्रके द्वारा अभिभूत होनेपर
 भी जो विनाशको प्राप्त नहीं होता तथा हिंसाधर्मसे रहित एवं यज्ञ आदिमें दक्षिणा देनेवाले
 लोगोंकी जो रक्षा करता है उस राजाको भोग पुनः प्राप्त होते हैं ॥२४-२५॥ पृथिवीतलपर
 मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकार है सो राजाओंके द्वारा सुरक्षित मनुष्योंको ही ये
 अधिकार प्राप्त होते हैं अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२६॥ राजाके बाहुबलकी छायाका

१. कि प्रयोजनम् म. । २. नदीकोलीन्द्रभागान्वा म. । ३. सन्निरुद्धाः म. । ४. राजंस्त्वम् म. । ५. जयन्ते
 क., ख. । ६. प्रधानेन म. । निधानेन ब. । ७. यवबीजकैः ब. । ८. युक्तिः म. । ९. प्रजाः सुरक्षितास्वेतत्
 म. । १०. समश्रुतम् म. । ११. पुनरपि प्राप्या भवन्ति ।

यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः । षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥२८॥
 अथैवमिति तत्सर्वमुपश्रुत्य नराधिपः । द्रुतं रामं समाहूय राज्यं दातुं समुद्यतः ॥२९॥
 सुदितैः किङ्करैर्भेरीघनानन्दा समाहृतः । आजग्मुः सचिवाः सर्वे गजवाजिसमाकुलाः ॥३०॥
 जाम्बूनदमयान् कुम्भान् गृहीत्वा वारिपूरितान् । बद्ध्वा परिकरं शूरा मासमानाः समागताः ॥३१॥
 चारुनूपुरनिस्वाना दधाना वेषमर्चितम् । वस्त्रालङ्कारमादाय पटलेष्वागताः स्त्रियः ॥३२॥
 आटोपमीदृशं दृष्ट्वा किमेतदिति शब्दितम् । रामं दशरथोऽवोचत् पालयेमां सुत क्षितिम् ॥३३॥
 रिपुचक्रमिहायातं यदेवैरपि दुर्जयम् । विजेष्ये तदहं गत्वा प्रजानां हितकाम्यया ॥३४॥
 ततो राजीवनयनो रावधो नृपमब्रवीत् । किमर्थं तात संरम्भमस्थाने प्रतिपद्यसे ॥३५॥
 किं कार्यं पशुसंज्ञैस्तैरसमापैर्दुरात्मभिः । येषामभिमुखीभावं प्रयासि रणकाङ्क्षया ॥३६॥
 न ह्याखूनां विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणाः । न चापि तूलदाहार्थं सन्नहति विभावसुः ॥३७॥
 तत्र प्रयातुमस्माकं युज्यते यच्छ शासनम् । इत्युक्ते हर्षिताङ्गस्तं परिष्वज्य पिताब्रवीत् ॥३८॥
 त्वं बालः सुकुमारः पञ्च पद्मनिभेक्षणः । कथं तान् सहसे जेतुं न प्रत्येस्यहमर्भकः ॥३९॥
 सोऽवोचत् सद्य उत्पन्नो भृशमल्पोऽपि पावकः । कथं दहति विस्तीर्णं महग्निः किं प्रयोजनम् ॥४०॥
 बालः सूर्यस्तमो घोरं युतीरक्षगणस्य च । एको नाशयति क्षिप्रं भूतिभिः किं प्रयोजनम् ॥४१॥

आश्रय लेकर प्रजा सुखसे आत्माका ध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं ॥२७॥ जिस देशका आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षाके कारण राजा तपका छठवां भाग प्राप्त करता है ॥२८॥

अथानन्तर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही रामको बुलाकर राज्य देनेके लिए उद्यत हो गये ॥२९॥ किंकरोंने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनन्द देनेवाली भेरी बजायी । हाथी और घोड़ोंसे व्याकुल समस्त मन्त्री लोग आ पहुँचे ॥३०॥ देदीप्यमान शूरवीर जलसे भरे हुए सुवर्ण कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥३१॥ जिनके नूपुरोंसे सुन्दर शब्द हो रहा था तथा जो उत्तमोत्तम वेष धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियाँ पिटारोंमें वस्त्रालङ्कार ले-लेकर आ गयीं ॥३२॥ यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है ? तब राजा दशरथने कहा कि हे पुत्र ! तुम इस पृथिवीका पालन करो ॥३३॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवोंके द्वारा भी दुर्जय है । मैं प्रजाके हितकी बांछासे जाकर उसे जीतूँगा ॥३४॥ तदनन्तर कमललोचन रामने राजा दशरथसे कहा कि हे तात ! अस्थानमें क्रोध क्यों करते हो ? ॥३५॥ आप रणकी इच्छासे जिनके सम्मुख जा रहे हैं, उन पशुस्वरूप भाषाहीन दुष्ट मनुष्योंसे क्या कार्य हो सकता है ? ॥३६॥ चूहोंके विरोध करनेसे उत्तम गजराज क्षोभको प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रूईको जलानेके लिए तत्पर होता है ॥३७॥

वहाँ जानेके लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिए । ऐसा कहनेपर हर्षित शरीरके धारी पिताने रामका आलिङ्गन कर कहा ॥३८॥ कि हे पञ्च ! अभी तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमार है तथा नेत्र कमलके समान हैं, इसलिए हे बालक ! तुम उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥३९॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वनको जला देती है इसलिए बड़ोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥४०॥ बालसूर्य अकेला ही घोर अन्धकारको तथा नक्षत्र-समूहको कान्तिको नष्ट कर देता है इसलिए विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥

१. -मुपश्रित्य ज., ब., क., ख. । २. दातुं राज्यम् म. । ३. समाहृताः म. । ४. पटलेष्वागताः म. । ५. तत्परो भवति । ६. हे राम । ७. प्रत्ययं करोमि । ८. अर्भकः म. । ९. सद्यमुत्पन्नो क., ख., म. ।

ततः सहृष्टरोमाङ्गो नृपो दशरथः पुनः । प्रमोदं परमं प्राप्तो विषादं च सत्त्वाप्यदृक् ॥४२॥
 सत्त्वत्यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामिथं स्थितिः । उत्सहन्ते प्रयातुं यद्विहातुमपि जीवितम् ॥४३॥
 अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नाश्नुते । मरणं गहनं प्राप्तः परं यद्यपि जायते ॥४४॥
 इति चिन्तयतस्तस्य कुमारौ रामलक्ष्मणौ । पितुः पादाब्जयुगलं प्रणम्योपगतौ बहिः ॥४५॥
 ततः सर्वास्त्रकुशलौ सर्वशास्त्रविशारदौ । सर्वलक्षणसंपूर्णौ सर्वस्य प्रियदर्शनौ ॥४६॥
 चतुरङ्गबलोपेतौ पर्यमाणौ विभूतिभिः । संप्रयातौ रथारूढौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥४७॥
 पूर्वमेव तु निर्यातो जनकः सोदरान्वितः । अन्तरं योजने द्वे च परसैन्यस्य तस्य च ॥४८॥
 शत्रुशब्दममृष्यन्तो जनकस्य महारथाः । विविशुल्लेच्छसंघातं मेघवृन्दमिव ग्रहाः ॥४९॥
 प्रवृत्तश्च महाभीमः संप्रामो रोमहर्षणः । बृहत्पहरणाटोप आर्यल्लेच्छमटाकुलः ॥५०॥
 जनकः कनकं दृष्ट्वा परं गहनमागतम् । अचोदयदतिक्रुद्धो दुर्वारकरिणां घटाम् ॥५१॥
 वर्वरैस्तु महामैत्र्यैर्मग्नैर्मग्नैः पुनः पुनः । भीमैर्जनकराजोऽपि दिक्षु सर्वासु वेष्टितः ॥५२॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः पञ्चः सौमित्रिणा सह । अपारं गहनं सैन्यमपश्यच्चारुलोचनः ॥५३॥
 दृष्ट्वा तस्य सितच्छत्रं विशीर्णं शत्रुवाहिनी । तमत्पां सन्ततिः स्फीता पौर्णमासीविधुं यथा ॥५४॥
 आश्वासितश्च बाणौघैर्जनको ध्वस्तकङ्कटः । तेन जन्तुर्यथा दुःखी धर्मेण जगदायुषा ॥५५॥

तदनन्तर जिनका शरीर रोमांचित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुनः परम प्रमोद और विषादको प्राप्त हुए । उनके नेत्रोंसे आंसू निकल पड़े ॥४२॥ सत्त्व त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियोंका यही स्वभाव है कि वे युद्धमें प्रस्थान करनेके लिए अथवा जीवनका भी त्याग करनेके लिए सदा उत्साहित रहते हैं ॥४३॥ उन्होंने विचार किया कि जबतक आयु क्षीण नहीं होती है तबतक यह जीव परम कष्टको पाकर भी मरणको प्राप्त नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम-लक्ष्मण दोनों कुमार उनके चरण-कमलको नमस्कार कर बाहर चले गये ॥४५॥

तदनन्तर जो सर्व शस्त्र चलानेमें कुशल थे, सर्व शास्त्रोंमें निपुण थे, सर्व लक्षणोंसे परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरंग सेनासे सहित थे, विभूतियोंसे परिपूर्ण थे तथा आत्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनों कुमार रथपर आरूढ़ होकर चले ॥४६-४७॥ राजा जनक अपने भाईके साथ पहले ही निकल पड़ा था । जनक और शत्रुसेनाके बीचमें दो योजनका ही अन्तर रह गया था ॥४८॥ जिस प्रकार सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रह मेघसमूहके बीच में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनकके महारथी योद्धा शत्रुके शब्दको सहन नहीं करते हुए ल्लेच्छसमूहके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥४९॥ दोनों ही सेनाओंके बीच जिसमें बड़े-बड़े शस्त्रों का विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा ल्लेच्छ योद्धाओंसे व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करनेवाला महा-भयंकर युद्ध हुआ ॥५०॥ राजा जनकने देखा कि भाई कनक संकटमें पड़ गया है तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियोंकी घटाको प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥५१॥ ल्लेच्छोंकी सेना बहुत बड़ी तथा भयंकर थी इसलिए उसने बार-बार भग्न होनेपर भी राजा जनकको सब दिशाओंमें घेर लिया ॥५२॥ इसी बीचमें सुन्दर नेत्रोंको धारण करनेवाले राम लक्ष्मणके साथ वहाँ जा पहुँचे । पहुँचते ही उन्होंने शत्रुकी अपार तथा भयंकर सेना देखी ॥५३॥ रामके सफेद छत्रको देखकर शत्रुकी सेना इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गयी जिस प्रकार कि अन्धकारकी सन्तति पूर्णिमाके चन्द्रमाको देखकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥५४॥ बाणोंके समूहसे जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनकको रामने उसी तरह आश्वासन दिया—धैर्य बँधाया जिस प्रकार कि जगत्के प्राणस्वरूप धर्मके

राघवो रथमारूढो युक्तं चपलवाजिभिः । कवचोद्योतितवपुः हारकुण्डलमण्डितः ॥५६॥
 धनुरायतमास्थाय शरपाणिर्हरिध्वजः । प्रकीर्णकोलवणच्छत्रो धरणीधीरमानसः ॥५७॥
 प्रविशन् विपुलं सैन्यं लीलया लोकवत्सलः । सुभटैः पूर्यमाणः सन् मात्यर्क इव रश्मिभिः ॥५८॥
 संरक्ष्य जनकं प्रीतः कनकं च यथाविधि । बलं व्यध्वंसयच्छत्रोरिभवत् कदलीवनम् ॥५९॥
 तथैव लक्ष्मणस्तत्र बाणानाकर्णसंहतान् । ववर्ष वायुना नुशः सागरे जलदो यथा ॥६०॥
 निशितानि च चक्राणि शर्त्तांश्च कनकानि च । शूलैर्ऋकचनिर्घातान्येवमाद्यान्यचिक्षिपत् ॥६१॥
 सौमित्रिभुजनिर्मुक्तैस्तैः पतद्गिरितस्ततः । म्लेच्छदेहां न्यक्त्यन्त द्रुमाः परशुभिर्यथा ॥६२॥
 भटाः शबरसैन्येऽस्मिन् बाणैर्निभिन्नवक्षसः । केचिच्छिन्नभुजग्रीवा निपतन्ति सहस्रशः ॥६३॥
 ततः पराङ्मुखोभूता लोककण्टकवाहिनी । तथापि लक्ष्मणस्तेषामनुधावति पृष्ठतः ॥६४॥
 अनिवार्यं समालोक्य तं सौमित्रि मृगाधिपम् । अपरे म्लेच्छशार्दूलः समन्तात् क्षोभमागताः ॥६५॥
 बृहद्वादित्रनिर्घोषैः कुर्वाणा भैरवं रत्रम् । चापासिचक्रबहुलाः कृतसंघातपङ्क्तयः ॥६६॥
 रक्तवस्त्रशिरस्त्राणाः केचिद्वर्धधारिणः । असिधेनुकराः क्रूरा नानावर्णाङ्गधारिणः ॥६७॥
 केचिज्जिह्वाअनच्छायाः शुक्रपत्रत्विषोऽपरे । केचित्कर्दमसंकाशाः केचित्ताम्रसमत्विषः ॥६८॥
 कटिसूत्रमणिप्रायोः पत्रचीवरधारिणः । नानाधातुविलिसाङ्गा मञ्जरीकृतशेखराः ॥६९॥

द्वारा दुःखी प्राणीको आश्वासन दिया जाता है ॥५५॥ रामचन्द्र चंचल घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार थे, उनका शरीर कवचसे प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५६॥ वे एक हाथमें लम्बा धनुष और दूसरे हाथमें बाण लिये हुए थे । उनकी ध्वजामें सिंहका चिह्न था, शिरपर विशाल छत्र फिर रहा था तथा उनका मन पृथिवीके समान धीर था ॥५७॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल राम, लीलापूर्वक विशाल सेनाके बीच प्रवेश करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किरणोंसे सहित सूर्य ही हो ॥५८॥ प्रसन्नतासे भरे रामने जनक और कनक दोनों भाइयोंकी विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेनाको उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी केलाके वनको नष्ट कर देता है ॥५९॥ जिस प्रकार वायुसे प्रेरित मेघ समुद्रपर जल-वर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मणने शत्रुदलपर कान तक खिंचे हुए बाण बरसाये ॥६०॥ वह अत्यन्त तीक्ष्ण चक्र, शक्ति, कनक, शूल, ऋकच और वज्रदण्ड आदि शस्त्रोंकी खूब वर्षा कर रहा था ॥६१॥ जिस प्रकार पड़ते हुए कुल्हाड़ोंसे वृक्ष कट जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मणकी भुजासे छूटकर जहाँ-तहाँ पड़ते हुए पूर्वोक्त शस्त्रोंसे म्लेच्छोंके शरीर कट रहे थे ॥६२॥ म्लेच्छोंकी इस सेनामें बाणोंसे कितने ही योद्धाओंका वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गया था, और हजारों योद्धा भुजा तथा गरदन कट जानेसे नीचे गिर गये थे ॥६३॥ यद्यपि लोकके शत्रुओंकी वह सेना लक्ष्मणसे पराङ्मुख हो गयी थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥६४॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगराजको देखकर म्लेच्छरूपी तेन्दुए सब ओरसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥६५॥ उस समय वे म्लेच्छ बड़े भारी बाजोंके शब्दसे भयंकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलतासे लिये थे और झुण्डके-झुण्ड बनाकर पंक्तिरूपमें खड़े थे ॥६६॥ कितने ही म्लेच्छ लाल वस्त्रका साफा बांधे हुए थे, कोई छुरी हाथमें लिये थे और नाना रंगके शरीर धारण कर रहे थे ॥६७॥ कोई मसले हुए अंजनके समान काले थे, कोई सूखे पत्तोंके समान कान्तिवाले थे, कोई कीचड़के समान थे और कोई लाल रंगके थे ॥६८॥ अधिकतर वे कटिसूत्रमें मणि बांधे हुए थे, पत्तोंके वस्त्र पहने हुए थे, नाना धातुओंसे उनके शरीर लित थे, फूलकी मंजरियोंसे उन्होंने सेहरा बना रखा था ॥६९॥

१. शूल ऋकच म. । २. म्लेच्छदेहानि कृत्यन्ते म. । ३. न्यपत्यन्त । ४. शुष्क म., ज. ।

वराटकामदशना विशालपिठरोदराः । विरेजुः सैन्यमध्ये^१ तु कुटजा इव पुष्पिताः ॥७०॥
 अपरे शबरा रेजुर्भीषणायुधपाणयः । पीनजङ्घामुजस्कन्धा असुरा इव दर्पिताः ॥७१॥
 निर्दयाः पशुमांसदो मूढाः प्राणिबधोद्यताः । आरभ्य जन्मनः पापा^२ सहसार्भकारिणः ॥७२॥
 वराहमहिषन्याप्रवृक्ककङ्कादिकेतवः । नानायानच्छदच्छत्रास्तत्सामन्ताः सुमीषणाः ॥७३॥
 नानाबुद्धकृतध्वान्ता महावेगपदातयः । सागरोर्मिनिमाश्रण्डा^३ नानाभीषणनिस्वनाः ॥७४॥
 लक्ष्मणक्षमाधरं वज्रुः क्षुब्धाः शबरनीरदाः । निजसामन्तवातेन प्रेरिताः पुररहसः ॥७५॥
 अधावल्लक्ष्मणस्तेषां निपाताय समुद्यतः । यथानद्भुतसमूहानां महावेगो गजाधिपः ॥७६॥
 मृद्यमाना निपेतुस्ते स्वैरेव वसुधातले । विदुदुबुरसंख्याश्च मीत्या विक्षतमूर्तयः^४ ॥७७॥
 ततः संधारयन् सैन्यमान्तरङ्गतमो नृपः । समं सकलसैन्येन लक्ष्मणानिमुखं स्थितः ॥७८॥
 तेनाभ्यागतमात्रेण प्रवृत्ते मैत्रेयं मृधे । लक्ष्मणस्य धनुश्छिन्नं बाणैः संततवर्षिभिः ॥७९॥
 कृपाणं यावदादत्ते लक्ष्मणो विरथीकृतः । समीरणज्वं तावत्पद्मो रथमचोदयत् ॥८०॥
 लक्ष्मणस्योपनीतश्च रथोऽन्यः क्षेपवर्जितः । अपारमदहत् सैन्यं रामः कक्षमिवानलः ॥८१॥
 कांश्चिच्चिच्छेद बाणौघैः कांश्चित्कनकतोमरैः । चक्रैः शिरांसि केषांचित्कुञ्चितौष्ठान्यपातयत् ॥८२॥

कौडियोंके समान उनके दाँत थे, बड़े मटकाके समान उनके पेट थे और सेनाके बीच वे फूले हुए कुटज वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ जिनके हाथोंमें भयंकर शस्त्र थे, और जिनकी जाँघें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे ऐसे कितने ही म्लेच्छ गर्वीले असुरोंके समान जान पड़ते थे ॥७१॥ वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओंका मांस खानेवाले थे, मूढ़ थे, पापी थे और सहसा अर्थात् बिना विचार किये काम करनेवाले थे ॥७२॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कंक आदिके चिह्न उनकी पताकाओंमें थे, उनके सामन्त भी अत्यन्त भयंकर थे तथा नाना प्रकारके वाहन, चद्दर और छत्र आदिसे सहित थे ॥७३॥ नाना युद्धोंमें जिन्होंने अन्धकार उत्पन्न किया था, जो समुद्रकी लहरोंके समान प्रचण्ड थे, और नाना प्रकारका भयंकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥७४॥ अपने सामन्तरूपी वायुसे प्रेरित होनेके कारण जिनका वेग बढ़ रहा था ऐसे उन क्षोभको प्राप्त हुए म्लेच्छरूपी मेघोंने लक्ष्मणरूपी पर्वतको घेर लिया ॥७५॥ जिस प्रकार बैलोंके समूहको नष्ट करनेके लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसी प्रकार उन सबको नष्ट करनेके लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥७६॥ लक्ष्मणके दौड़ते ही उनमें भगदड़ मच गयी जिससे वे अपने ही लोगोंसे कुचले जाकर पृथिवीपर गिर पड़े। तथा भयसे जिनके शरीर खण्डित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा इधर-उधर भाग गये ॥७७॥

तदनन्तर आन्तरंगतम राजा सेनाको रोकता हुआ सब सेनाके साथ लक्ष्मणके सम्मुख खड़ा हुआ ॥७८॥ उसने आते ही भयंकर युद्ध किया और निरन्तर बरसते हुए बाणोंसे लक्ष्मणका धनुष तोड़ डाला ॥७९॥ लक्ष्मण जबतक तलवार उठाता है तबतक उसने उसे रथरहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला। यह देख रामने वायुके समान वेगवाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥८०॥ लक्ष्मणके लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि बनको जलाती है, उसी प्रकार रामने शत्रुकी सेनाको जला दिया ॥८१॥ उन्होंने कितने ही लोगोंको बाणोंके समूहसे छेद डाला, कितने ही लोगोंको कनक और तोमर नामक शस्त्रोंसे काट डाला तथा जिनके ओठ टेढ़े हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगोंके शिर चक्ररत्नसे नीचे गिरा दिये ॥८२॥

१. सैन्यमध्यं म. । २. सहसार्भकारिणः म. । ३. चन्द्रा म. । ४. शरदनीरदाः म. । ५. यथा नदसमूहानां म. । ६. विदुदुमूर्तयः म. । ७. साधरयन् म. । ८. आन्तरङ्गतमः एतन्नामा म्लेच्छनृपः । ९. समीरण-जवात्तावत् म. ।

ननावा भयपूर्णा च यथाशं म्लेच्छवाहिनी । विध्वस्तचामरच्छत्रध्वजचापसमाकुला ॥८३॥
 निमिषान्तरमात्रेण रामेणाक्लिष्टकर्षणा । म्लेच्छा निराकृताः सर्वे कषाया इव साधुना ॥८४॥
 आगतो यश्च सैन्येन निष्पारेणोदधिर्यथा । भीतोऽश्वैर्दशभिः सोऽयं म्लेच्छराजो विनिःसृतः ॥८५॥
 पराङ्मुखीकृतैः क्लीबैः किमेभिर्मिह तैरिति । सौमित्रिणा समं रामः कृती निववृते सुखम् ॥८६॥
 अमी भयाकुला म्लेच्छा विहाय त्रिजिगीषुताम् । आश्रित्य सह्यविन्ध्याद्वीन् समयेनावतस्थिरे ॥८७॥
 कन्दमूलफलाहारास्तस्य जू रौद्रकर्मताश्च । राववाद् भयसापन्ना वैनतेयादिवोरगाः ॥८८॥
 ३ सानुजः १ सानुजं पद्मो विग्रहे शान्तविग्रहः । विसर्ज्य १ जनकं हृष्टं १ जनकामिमुखोऽगमत् ॥८९॥
 प्रजातपरमानन्दा रेमे विस्मितमानसा । रराज पृथिवी सर्वा भूत्या कृतयुगे यथा ॥९०॥
 धर्मार्थकामसंसक्तैः पुरुषैर्भूषितं जगत् । व्यतीतहिमसंरोधैर्नक्षत्रैरम्बरं यथा ॥९१॥
 माहात्म्यादमुतो राजन् दुहिता लोकसुन्दरी । जनकेन प्रसन्नेन रावदस्य प्रकल्पिता ॥९२॥

टूटे-फूटे चमर, छत्र, ध्वजा और धनुषोंसे व्याप्त म्लेच्छोंकी वह सेना भयभीत होकर इच्छानुसार नष्ट हो गयी—इधर-उधर भाग गयी ॥८३॥

जिस प्रकार साधु कषायोंको क्षण-भरमें नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करनेवाले रामने निमेष मात्रमें ही समस्त म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया ॥८४॥

जो म्लेच्छ राजा समुद्रके समान अपार सेनाके साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दस घोड़ोंके साथ बाहर निकला था ॥८५॥

इन विमुख नपुंसकोंको मारनेसे क्या प्रयोजन है ऐसा विचारकर कृतकृत्य राम लक्ष्मणके साथ सुखपूर्वक युद्धसे लौट गये ॥८६॥

भयसे घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजयकी इच्छा छोड़ सन्धि कर सह्य और विन्ध्य पर्वतोंपर रहने लगे ॥८७॥

जिस प्रकार साँप गरुड़से भयभीत रहते हैं उसी प्रकार म्लेच्छ भी रामसे भयभीत रहने लगे । वे कन्द-मूल, फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होंने सब दुष्टता छोड़ दी ॥८८॥

तदनन्तर युद्धमें जिनका शरीर शान्त रहा था ऐसे सानुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मणसहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई जनकसहित हर्षित जनकको छोड़कर जनक अर्थात् पिताके सम्मुख चले गये ॥८९॥

तदनन्तर जिसे परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और जिसका मन आश्चर्यसे विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनन्दसे क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी कृतयुगके समान वैभवसे सुशोभित होने लगी ॥९०॥

जिस प्रकार हिमके आवरणसे रहित नक्षत्रोंसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म-अर्थ-काममें आसक्त पुरुषोंसे संसार सुशोभित होता है ॥९१॥

गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! राजा जनकने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोक-सुन्दरी पुत्री जानकी रामके लिए देना निश्चित की थी ॥९२॥

१. यथावाञ्छम् यथासंम्लेच्छ म. । २. विनिःस्मृतः म. । ३. लक्ष्मणः । ४. अनुजसहितं जनकसहितमिति यावत् । ५. पद्मोविग्रहः ब. । ६. मियिलाधिपम् । ७. पित्रभिमुखम् । ८. रोमविस्मित- म. ।

उपजातिवृत्तम्

किं वात्र कृत्यं बहुभाषितेन श्रीश्रेणिक स्वं ननु कर्म पुंसाम् ।
 समागमे गच्छति हेतुभावं वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥१३॥
 सोऽहं महात्मा भुवने समस्ते गतः प्रतापं परमं सुभाग्यः ।
 गुणैरनन्यप्रमितैरुपेतो रविर्यथोद्भाति^१ परो मयूखैः ॥१४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते भ्लेच्छपराजयसंकीर्तनं नाम सप्तविंशतितमं पर्व ॥२७॥



इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्योंका अपना किया कर्म ही उत्तम पुरुषोंके साथ संयोग अथवा वियोग होनेमें कारणभावको प्राप्त होता है ॥१३॥

परम प्रतापको प्राप्त भाग्यशाली एवं असाधारण गुणोंसे युक्त महात्मा रामचन्द्र समस्त संसारमें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥१४॥

इस प्रकार धार्पणामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भ्लेच्छोंके पराजयका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२७॥



अष्टाविंशतितमं पर्व

ईदृक्पराक्रमादुद्यो नारदः पुरुविस्मयः । धृतिं न लभते कापि रामसंकथया विना ॥१॥
 श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो रामस्य किल मैथिली । पिता दातुमभीष्टेति प्रकटा सर्वविष्टे ॥२॥
 अचिन्तयच्च पश्यामि कन्थां तामद्य कीदृशीम् । शोभनैर्लक्षणैर्येन रामस्य परिकल्पिता ॥३॥
 पद्मगर्भदलं यस्मिन् कृत्वा स्तनतटे रहः । मत्कान्त्या सदृशं नेदमिति बुद्ध्यावलोकते ॥४॥
 समये नारदस्तस्मिन् सीतालीकनलालसः । विशुद्धहृदयः प्रापदारुहो च तद्गृहम् ॥५॥
 ततो दर्पणसंक्रान्तं जटामुकटभीषणम् । नारदीयं वपुर्वीक्ष्य कन्या त्राससमाकुला ॥६॥
 हा मातः कोऽयमत्रेति कृत्वा प्रस्खलितस्वनम् । विदेश गर्भभवनं वेपमानशरीरिका ॥७॥
 नारदोऽनुपदं तस्या विशन्नतिकुतूहलः । नारीमिद्वारपालीभिः सावष्टम्भमरुध्यत ॥८॥
 यावत्तस्य च तासां च कलहो वर्तते महान् । तावच्छब्देन संप्रापुर्नरा खड्गधनुर्धराः ॥९॥
 गृह्यतां गृह्यतां कोऽयं कोऽयमित्युद्धतस्वनाः । कुञ्चितौघाज्जनान् दृष्ट्वा सशस्त्रान् हन्तुमुद्यतान् ॥१०॥
 नारदः परमं विश्रद्भयमुत्कटवेपथुः । ऊर्ध्वरोमा खमुत्पत्य विश्रान्तोऽष्टापदाचले ॥११॥
 अचिन्तयच्च हा कष्टं प्राप्तोऽस्मि जननं पुनः । निष्क्रान्तोऽस्मि महादावात् पक्षी ज्वालाहतो यथा ॥१२॥

अथानन्तर जो इस प्रकारके पराक्रमसे आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त था
 ऐसा नारद युद्धकी चर्चकि बिना कहीं भी सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था ॥१॥ उसने समाचार
 सुना कि समस्त संसारमें प्रसिद्ध अपनी सीता नामकी पुत्री उसके पिता राजा जनकने रामचन्द्रके
 लिए देनेकी इच्छा की है ॥२॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उस कन्याको देखूँ
 तो सही कि वह शुभ लक्षणोंसे कैसी है जिससे रामचन्द्रके लिए उसका देना निश्चित किया गया
 है ॥३॥ ऐसा विचारकर नारद उस समय सीताके महलमें पहुँचा जब कि वह एकान्त स्थानमें
 कमलकी भीतरी कलिकाको अपने स्तनतटके समीप करके इस बुद्धिसे उसे देख रही थी कि यह
 मेरी कान्तिके समान है या नहीं ॥४॥ जिसे सीताके देखनेकी लालसा थी तथा जिसका हृदय
 अत्यन्त शुद्ध अर्थात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीताके महलमें ऊपर जा चढ़ा ॥५॥
 तदनन्तर जिसका दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुटसे भीषण था ऐसा
 नारदका शरीर देखकर सीता भयसे व्याकुल हो गयी ॥६॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा
 है ? इस प्रकार अर्धोन्चारित शब्द कर वह महलके भीतर घुस गयी । उस समय उसका शरीर
 कम्पित हो रहा था ॥७॥ अत्यन्त कुतूहलसे भरा नारद भी उसीके पीछे महलमें भीतर प्रवेश
 करने लगा तो द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंने उसे बलपूर्वक रोक लिया ॥८॥ जबतक नारद
 तथा उन स्त्रियोंके बीच बड़ा कलह होता है तबतक उनका शब्द सुनकर तलवार और धनुषकी
 धारण करनेवाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥९॥ वे पुरुष पकड़ो-पकड़ो कौन है ? कौन है ? इस प्रकार-
 का जोरदार शब्द कर रहे थे । जो ओठ चाब रहे थे, शस्त्रोंसे युक्त थे तथा मारनेके लिए उद्यत थे
 ऐसे उन पुरुषोंको देखकर नारद अत्यन्त भयभीत हो उठा । उसके शरीरसे अत्यधिक कँपकँपी
 छूट रही थी, और रोमांच खड़े हो गये थे । खैर, जिस किसी तरह वह आकाशमें उड़कर कैलास
 पर्वतपर पहुँचा और वहीं विश्राम करने लगा ॥१०-११॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं बड़े
 कष्टमें पड़ गया था । बचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है । जिस प्रकार

शनैः शनैस्ततः कम्पं तद्दिग्यस्तैश्चणोऽमुचत् । ममार्जं च ललाटस्थान् स्वेदविन्दून् स्थवीयसः ॥१३॥
 समादधे स्खलन्पाणिजटाभारं समाकुलम् । मुहुः स्मृता च निःश्वासान्मुमुचे दीर्घवेगिनः ॥१४॥
 ततः स्वैरं भयाद् अष्टो दध्यावेवं प्रकोपवान् । निश्चलस्थितशेषाङ्गो मूर्धानं कम्पयन् मनाक् ॥१५॥
 अदुष्टमानसः पश्यन् यातो रूपदिदृक्षया । रामानुरागतः प्रापमवस्थां मृत्युगोचराम् ॥१६॥
 अहो प्रौढकुमार्यास्त्वच्चेष्टितं दुष्टविभ्रमम् । गृहीतोऽस्मि नयेनैव कृतान्तसदृशैरैः ॥१७॥
 क मे पापाधुना याति व्यसने पातयामि ताम् । नृत्थाम्यातोद्यमुकोऽपि किमुतातोद्यसंयुतः ॥१८॥
 विचिन्त्यैवं द्रुतं गत्वा नगरं रथनूपुरम् । सीतारूपं पटे न्यस्य प्रत्यक्षमिव सुन्दरम् ॥१९॥
 चक्रारोपवने चन्द्रगतेः क्रीडनसम्पन्नि । उत्सृज्य च बहिस्तस्थौ पुरस्याप्रकटात्मकः ॥२०॥
 अन्यदाथ समुद्देशं कुमारैर्बहुभिः समम् । भामण्डलकुमारोऽसौ रममाणः समायथौ ॥२१॥
 तत्राज्ञानात् समालोक्य स्वसारं चित्रगोचराम् । द्विश्रुतिस्मृतिमुक्तात्मा द्राक् प्रभामण्डलोऽभवत् ॥२२॥
 ततः शोचति निश्वासान्मुञ्चतेऽत्यन्तमायतान् । शुष्यति क्षिति स्वस्तं गात्रं यत्र क्वचिद् द्रुतम् ॥२३॥
 न रात्रौ न दिवा निद्रां लभते ध्यानतत्परः । उपचारेण कान्तेन न जातु सुखमश्नुते ॥२४॥
 पुण्याणि गन्धमाहारं द्वेष्टि द्वैवै^१ यथा भृशम् । करोति लोठनं भूयः संतापी जलकुट्टिमे ॥२५॥

ज्वालाओंसे झुलसा पक्षी किसी बड़े दावानलसे बाहर निकलता है उसी प्रकार मैं भी उस कष्टसे बाहर निकला हूँ ॥१२॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशामें लग रहे थे । तदनन्तर धीरे-धीरे उसने शरीरकी कँपकँपी छोड़ी और ललाटपर स्थित पसीनेकी बड़ी-बड़ी बूँदें पोंछीं ॥१३॥ उसने काँपते हुए हाथसे अपनी बिलारी हुई जटाएँ ठीक कीं । यह करते हुए जब उसे बार-बार पिछली घटनाका स्मरण हो आता था तब वह लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगता था ॥१४॥ तत्पश्चात् जब भय दूर हुआ तो क्रोधमें आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा । विचार करते समय उसके समस्त अंग निश्चित रूपसे स्थिर थे केवल वह भस्तकको कुछ-कुछ हिला रहा था ॥१५॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मनमें कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचन्द्रके अनुरागसे सीताका रूप देखनेकी इच्छासे ही वहाँ गया था परन्तु ऐसी दशाको प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तककी आशाका हो गयी ॥१६॥ आश्चर्य है कि उस प्रौढ कुमारीकी वह चेष्टा कितनी दुष्टतासे भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराजकी समानता करनेवाले मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया गया ॥१७॥ वह पापिनी अब जायेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही संकटमें डालूँगा । मैं तो बाजेके बिना ही नाचता हूँ फिर यदि बाजे मिल जायें तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ ऐसा विचारकर उसने एक पटपर प्रत्यक्षके समान सीताका सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥१९॥ वहाँ जाकर उसने उपवनमें जो अत्यन्त उत्तुंग क्रीडाभवन था उसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगरके बाहर रहने लगा ॥२०॥

अथानन्तर किसी दिन अनेक कुमारोंके साथ क्रीडा करता हुआ भामण्डल कुमार वहाँ आया ॥२१॥ सो चित्रमें अंकित बहन सीताको देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, ज्ञान तथा स्मृतिसे रहित हो गया अर्थात् सीताके चित्रको देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबको भूल गया ॥२२॥ वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीरको वह चाहे जहाँ उपेक्षासे डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ उठने-बैठने लगा ॥२३॥ उसे न रात्रिमें नींद आती थी न दिनमें चैन पड़ता था । वह रात-दिन उसीके ध्यानमें निमग्न रहता था । सुन्दर उपचारोंसे उसे कभी भी सुख नहीं मिलता था ॥२४॥ वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहारसे ऐसा द्वेष करता था

१. निश्चितस्थित म. । २. चन्द्रगतः ज. । ३. रम्येण । ४. विपनिमितम् ।

मौनमाचरति स्मिन्वा करोति च कथां मुहुः । सहस्रोत्तिष्ठति व्यर्थं याति भूयो निवर्तते ॥२६॥
 ततो ग्रहगृहीतस्य सदृशैस्तैर्विचेष्टितैः । ज्ञातं तदातुरश्वस्य कारणं मतिशालिभिः ॥२७॥
 जगद्गुरुचैवमन्योन्यं कन्येयं केन चित्रिता । पटोऽत्र निहितो गेहे स्याद् वा नारदचेष्टितम् ॥२८॥
 ततः श्रुत्वा कुमारं तमाकुलं स्वेन कर्मणा । नारदस्तस्य बन्धूनां विस्मयो दर्शनं ददौ ॥२९॥
 आदरेण च तैः पृष्टः कृतपूजानमस्कृतिः । मुने कथय कन्येयं दृष्टा क भवतेदृशी ॥३०॥
 महोरगाङ्गना किं स्याद् भवेत् किं वा विमानजा । भर्त्यलोकं समायाता त्वया दृष्टा कथंचन ॥३१॥
 अवद्वारस्ततोऽवोचद् विनयं परमं बहन् । भूयो भूयः स्वयं गच्छन् विस्मयं कम्पयन् शिरः ॥३२॥
 अस्त्यत्र मिथिला नाम पुरो परमसुन्दरी । इन्द्रकेतोः स्तुतस्तत्र जनको नाम पार्थिवः ॥३३॥
 विदेहेति प्रिया तस्य मनोबन्धनकारिणी । गोत्रसर्वस्वभूतेयं सीतेति दुहिता तयोः ॥३४॥
 निवेशैवमसौ तेभ्यः कुमारं पुनरुक्तवान् । बाल मा याः विषादं त्वं तवेयं सुलभैव हि ॥३५॥
 रूपमात्रेण यातोऽसि किमस्या भावमीदृशम् । ये तस्या विभ्रमा भद्र कस्तान् वर्णयितुं क्षमः ॥३६॥
 तथा चित्तं समाकृष्टं तवेति किमिहाहुतम् । धर्मध्याने दृढं बद्धं मुनीनामपि सा हरेत् ॥३७॥
 आकारमात्रमत्रैतत्तस्या न्यस्तं मया पटे । लावण्यं यत्तु तत्तस्यास्तस्यामेवैतदीदृशम् ॥३८॥
 नवयौवनसंभूतकान्तिसागरवीचिषु । सा तिष्ठति तरन्तीव संसक्ता स्तनकुम्भयोः ॥३९॥

मानो उन्हें विषमय ही समझता हो । वह सन्तापसे युक्त होकर बार-बार जलसे सींचे हुए फर्शपर लोटता था ॥२५॥ वह मौन बैठा रहता था, कभी हँसकर बार-बार चर्चा करने लगता था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगता था और फिर लौट आता था ॥२६॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गयीं मानो उसे भूत लग गया हो । तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषोंने उसकी आतुरताके कारणोंका पता लगाया ॥२७॥ वे परस्परमें इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है ? इस महलमें यह चित्रपट किसने रखा है ? जान पड़ता है कि यह सब नारदकी चेष्टा है ॥२८॥

तदनन्तर जब नारदने सुना कि हमारे कार्यसे भामण्डल कुमार अत्यन्त आकुल हो रहा है तब उसने निःशंक होकर उसके बन्धुओंके लिए दर्शन दिया ॥२९॥ उन सबने बड़े आदरसे नारदकी पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने ! कही आपने यह ऐसी कन्या कहाँ देखी है ? ॥३०॥ यह कोई नागकुमार देवकी अंगना है या पृथिवीपर आयी हुई किसी कल्पवासी देवकी स्त्री आपने किसी तरह देखी है ? ॥३१॥ तदनन्तर परम विनयको धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्यको प्राप्त हो बार-बार शिर हिलाता हुआ नारद कहने लगा ॥३२॥ कि इसी मध्यमलोकमें अत्यन्त मनोहर मिथिला नामकी नगरी है । उसमें इन्द्रकेतुका पुत्र जनक नामका राजा रहता है ॥३३॥ उसके मनको बाँधनेवाली विदेहा नामकी प्रिया है । उन दोनोंकी ही यह सीता नामकी कन्या है । यह कन्या उन दोनोंके गोत्रका मानो सर्वस्व ही है ॥३४॥ भामण्डलके भाई-बन्धुओंसे ऐसा कहकर उसने भामण्डलसे कहा कि हे बालक ! तू विषादको प्राप्त मत हो । यह कन्या तुझे सुलभ ही है ॥३५॥ तू इसके रूपमात्रसे ही ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३६॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वह तो धर्मध्यानमें सुदृढ़ रूपसे निबद्ध मुनियोंके चित्तको भी आकृष्ट कर सकती है ॥३७॥ मैंने चित्रपटमें उसका यह केवल आकारमात्र ही अंकित किया है । उसका जो लावण्य है वह तो उसीमें है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥३८॥ वह नवयौवनसे उत्पन्न कान्तिरूपी समुद्रकी तरंगोंमें ऐसी जान पड़ती है मानो स्तनरूपी कलशोंके सहारे तैर ही

तस्याः श्रोणी वरारोहा कान्तिसंस्लावितांशुका । वीक्षितोन्मूलयेत्^१ स्वान्तं समूलमपि योगिनाम् ॥४०॥
 मुक्त्वा भवन्तमन्यस्य सेयं कस्योचिता भवेत् । यत्नं वस्तुनि कुर्वन्ना^२ जायतां योग्यसंगमः^३ ॥४१॥
 इत्युक्त्वा चरितार्थः सन्नारदोऽगाम्भनीषितम् । दध्यौ भामण्डलोऽप्येवं स्मरसायकताडितः ॥४२॥
 क्षेपिष्ठं प्रमदाश्चर्यं न लभेयं यदीदृशम् । न जीवेयं तदावश्यं स्मराकुलितमानसः ॥४३॥
 धारयन्ती परां कान्तिभिर्यं मे^४ हृदयस्थिता । कथं न^५ कुरुते तापमग्निज्वालेव सुन्दरी ॥४४॥
 दहति त्वचमेवाको बहिरन्तश्च मन्मथः । अन्तर्द्विरस्ति सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥४५॥
 द्वयमेव ध्रुवं मन्ये प्रासव्यमधुना मया । तथा वा संगमः साकं मरणं वा स्मरेषुभिः ॥४६॥
 अनारतमिति^६ ध्यायन्नशने शयने न च । न प्रासादे न चोद्याने धृतिं भामण्डलोऽगमत् ॥४७॥
 स्त्रियोऽथ नारदं मत्वा कुमारसुखकारणम् । ससंभ्रमं समुद्विग्नाः^७ पितुरस्य न्यवेदयन्^८ ॥४८॥
 नाथानर्थसमुद्गेन^९ नारदेनाहता पटे । चित्रीकृत्याङ्गना कापि^{१०} रूपातिशययोगिनी ॥४९॥
 समालोक्य कुमारस्तां विह्वलीभूतमानसः । धृतिं न लभते कापि त्रपया दूरमुज्झितः ॥५०॥
 मुहुस्तामोक्षते कन्यां सीताशब्दं समुच्चरन् । करोति विविधां चेशं वायुनेव वशीकृतः ॥५१॥
 उपायश्चिन्त्यतामाशु तस्योत्पादयितुं धृतिम् । यावन्न मुच्यते प्राणैर्मौजनादिपराङ्मुखः ॥५२॥

रही हो ॥३९॥ कान्तिसे वस्त्रको तिरोहित करनेवाले उसके नितम्ब यदि देखनेमें आ जावें तो निश्चित ही वह योगियोंके मनको भी समूल उखाड़कर फेंक दें ॥४०॥ आपको छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकती है ? इस कार्यमें यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ॥४१॥ इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थानपर चला गया पर इधर भामण्डल कामके बाणोंसे ताड़ित हो इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥४२॥ चूँकि मेरा मन कामसे इतना आकुल हो रहा है कि यदि मैं शीघ्र ही इस स्त्रीरत्नको नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जोवित नहीं रह सकूँगा ॥४३॥

परम कान्तिको धारण करनेवाली यह सुन्दरी प्रमदा मेरे हृदयमें स्थित है फिर अग्निकी ज्वालाके समान सन्ताप क्यों कर रही है ॥४४॥ सूर्य सिर्फ बाहरी चमड़ेको जलाता है पर काम भीतरी भागको जलाता है । इतनेपर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नहीं होता ॥४५॥ इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा दो ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं—एक तो उस स्त्रीरत्नके साथ समागम और दूसरा कामके बाणोंसे मारा जाना ॥४६॥ इस प्रकार निरन्तर उसीका ध्यान करता हुआ भामण्डल न भोजनमें, न शयनमें, न महलमें और न उद्यानमें—कहीं भी धैर्यको प्राप्त हो रहा था ॥४७॥

अथानन्तर जब स्त्रियोंको पता चला कि कुमारके दुःखका कारण नारद है तब उन्होंने उद्विग्न होकर शीघ्र ही कुमारके पितासे यह समाचार कहा ॥४८॥ कि इस समस्त अनर्थका पिटारा नारद ही है । वही कहींकी एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको चित्रपटपर अंकित करके लाया था ॥४९॥ उसे देखकर जिसका मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तुमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा है । लज्जाने उसे दूरसे ही छोड़ दिया है ॥५०॥ वह सीता शब्दका उच्चारण करता हुआ बार-बार उसी कन्याको देखता रहता है तथा वायुके वशीभूत हुएके समान नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता रहता है ॥५१॥ वह भोजनादि समस्त कार्योसे विमुख हो गया है अर्थात् उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया है । इसलिए जबतक प्राण इसे नहीं छोड़ते हैं तबतक

१. -न्मूलयत् म. । २. पुमान् । ३. योग्यसमागमसहितः । ४. शीघ्रम् । ५. हृदयं स्थिता म., ज. । ६. च म. । ७. -मतिध्यायन् म. । ८. समुद्विग्ना म. । ९. न्यवेदयत् म. । १०. तथानर्थसमुद्गेन म., नार्थानर्थ-ब. । अनर्थसमुद्गेन = अनर्थकरण्डकेन । ११. क्वापि म. ।

ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा वातमितां समाकुलः । आगत्य कान्तया साकं सुतमेवमभाषत ॥५३॥
 भज सर्वाः क्रियाः पुत्र सुचेता भोजनादिकाः । अयं वृणोमि तां कन्यां भवतो मनसि स्थिताम् ॥५४॥
 'परिशान्त्य सुतं कान्तां रहश्चन्द्रोपयोऽवदत् । प्रमोदं च विषादं च विस्मयं च वहन्निदम् ॥५५॥
 आर्ये विद्याभृतां कन्याः संत्यज्य प्रतिमोक्षिताः । भूगोचरामित्वं बन्धः कथमस्मासु युज्यते ॥५६॥
 क्षमागोचरस्य निलयं गन्तुं वा युज्यते कथम् । यदा वा तेन नो दत्ता सुखच्छाया तदा तु का ॥५७॥
 तस्मान् केनाप्युपायेन कन्यायाः पितरं प्रियम् । इहैव^३ नाययाम्याशु नान्यः पन्था विराजते ॥५८॥
 नाथ युक्तमयुक्तं वा त्वमेव ननु मन्यसे । तथापि तावकं वाक्यं ममापि हृदयंगमम् ॥५९॥
 तत्तत्प्रलवेगाख्यं भृत्यमाहूय सादरम् । कर्णजापेन विज्ञातवृत्तान्तमकरोन्मुपः ॥६०॥
 आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ मिथिलां त्वरितो ययौ । हृष्टहंसयुवामोदसूचितामिव पद्मिनीम् ॥६१॥
 अवतीयन्निवाराचारु^४ सतिवेषमुपाश्रितः । विप्रासयितुमुद्युक्तो गोमहिष्य^५ इव वारणान् ॥६२॥
 'देशघाते यथा जातः समाक्रन्दस्तदापरः । शुश्राव च जनौघेभ्यो जनकस्तद्विचेष्टितम् ॥६३॥
 निर्ययौ च पुरायुक्तः प्रमोदोद्वेगकौतुकैः । ईक्षांचक्रे च तं ससिं नवयौवनसंगतम् ॥६४॥
 'उद्दामानं मनोवेगं मास्वत्प्रवरलक्षणम् । प्रदक्षिणमहावतं तनुवक्त्रोदरं चलम्^६ ॥६५॥

उसके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न करानेके लिए कोई उपाय सोचा जाये ॥५२॥ तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर इस समाचारको सुनकर धबड़ाया हुआ स्त्रीके साथ आकर पुत्रसे इस प्रकार बोला कि हे पुत्र ! स्वस्थचित्त होकर भोजनादि समस्त क्रियाएँ करो । मैं तुम्हारे मनमें स्थित उस कन्याको वरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥५३-५४॥ इस प्रकार पुत्रको सान्त्वना देकर चन्द्रगति विद्याधर हर्ष, विषाद और विस्मयको धारण करता हुआ एकान्तमें अपनी स्त्रीसे बोला कि ॥५५॥ हे आर्य ! विद्याधरोकी अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगोंका भूमिगोचरियोंसे साथ सम्बन्ध करना कैसे ठीक हो सकता है ? ॥५६॥ इसके सिवाय एक बात यह है कि भूमिगोचरीके घर जाना कैसे ठीक हो सकता है ? याचना करनेपर भी यदि उसने कन्या नहीं दी तो उस समय मुखकी क्या कान्ति होगी ? ॥५७॥ इसलिए कन्याके प्रिय पिताको किसी उपायसे शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ । इस विषयमें कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥५८॥ स्त्रीने उत्तर दिया कि हे नाथ ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते हैं पर इतना अवश्य कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥५९॥

तदनन्तर राजाने चपलवेग नामक भृत्यको आदरपूर्वक बुलाकर उसके कानमें सब वृत्तान्त सूचित कर दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् स्वामीकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही उस प्रकार मिथिलाकी ओर चला जिस प्रकार कि हर्षसे भरा तरुण हंस सुगन्धिसे सूचित कमलिनीकी ओर चलता है ॥६१॥ उसने आकाशसे उतरकर सुन्दर घोड़ेका रूप बनाया और वह गाय, भैंसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओंको भयभीत करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६२॥ वह जिस देशके घात करनेमें प्रवृत्त होता था उसी ओरसे रोनेका प्रबल शब्द उठ खड़ा होता था । राजा जनकने भी जनसमूहसे उस घोड़ेकी चेष्टाएँ सुनीं ॥६३॥ सुनीं ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग और कौतुकसे युक्त हो उस घोड़ेकी चेष्टाएँ देखनेके लिए नगरसे बाहर भी आया और उसने नवयौवनसे युक्त उस घोड़ेको देखा ॥६४॥ वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मनको अपनी ओर खींचनेवाला था, उसके शरीरमें अच्छे-अच्छे लक्षण देदीप्यमान हो रहे थे, दक्षिण अंगमें महान् आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त बलवान् था, टापोके अग्रभागसे वह पृथिवीको ताड़ित कर रहा था ।

१. परिशान्त्य म. । २. चन्द्रगतिः । ३. नययाम्याशु म. । ४. मन्यते म. । ५. हयवेषम् । ६. महिषाश्व क. ख. । ७. देशघातो ख. । ८. उद्दामानं म. । उद्दामानं ज. । ९. मनोयोगं म. । १०. बलम् म., ज. ।

सुशाफाग्रैर्मृदङ्गानां कुर्वाणमिव ताडनम् । पृथग्जनैर्दुरारोहं दधत्^१ प्रोथवेपथुम् ॥६६॥
 ततः^२ शुद्धप्रमोदः सन् जगाद जनको मुहुः । ज्ञायतामेष कस्याश्वः प्राप्नो निर्दामतामिति ॥६७॥
 ततो द्विजगणा ऊचुः प्रियोद्योयतचेतसः^३ । राज्ञस्य न नाकेऽपि तुरङ्गो विद्यते समः ॥६८॥
 कैव वार्तां पृथिव्यां तु राज्ञामीदृशं भवेदिति । अथवा किं न कालेन नृप दृष्टस्त्वयेयता ॥६९॥
 रथे दिवाकरस्थापि श्रुतिविभ्रमगोचरः । विद्यते नेति जानीमः स्थूरीपृष्ठोऽमुना समः ॥७०॥
 नूनं भवन्तमुद्दिश्य कृतवन्तं परं तपः । सृष्टोऽयं विधिना सस्त्रितः स्वीक्रियतां प्रभो ॥७१॥
 ततोऽसौ विनयी निन्ये प्रग्रहद्वयसंयुतः । मन्दुरां कुङ्कुमाद्रङ्गिः प्रवलच्चारुचामरः ॥७२॥
 संवृतो मासमात्रोऽस्य ययौ कालो गृहीतितः^४ । उपचारैरलंयोगैः सेव्यमानस्य संततम् ॥७३॥
 पाशकोऽन्त्रान्तरे नत्वा जनकाय न्यवेदयत् । नाथ नागस्य सदेशे ग्रहणं दृश्यतामिति ॥७४॥
 ततोऽसौ मुदितस्तुङ्गमास्तु वरवारणम् । उद्दिष्टपादविस्तेन विवेश सुमहद्वनम् ॥७५॥
 दूरे च सरसो दुर्गे स्थितं दृष्ट्वा वरं द्विपम् । जगादानय तत्क्षिप्रं कंचिदश्वं महाजवम् ॥७६॥
 दौकितश्च स मायाश्वः सद्यः स्फुरितविग्रहः । आरुरोह स तं यातश्चोत्पत्य तुरगो नभः ॥७७॥
 हाहाकारं नृपाः कृत्वा वहन्तः शोकमुद्धतम् । निवृत्ताः सहसा भीता विस्मयव्यासमानसाः ॥७८॥

उससे ऐसा जान पड़ता था मानो मृदंग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उसपर चढ़नेमें असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था ॥६५-६६॥ तदनन्तर विशुद्ध हर्षको धारण करनेवाले राजा जनकने बार-बार उपस्थित लोगोंसे कहा कि मालूम किया जाये कि यह किसका घोड़ा बन्धनमुक्त हो गया है ? ॥६७॥ तत्पश्चात् प्रिय वचन कहनेमें जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे ब्राह्मणोंने कहा कि हे राजन् ! इस घोड़ेके समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥६८॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवीमें जितने राजा हैं उनमें किसीके ऐसा घोड़ा नहीं होगा । अथवा हे राजन् ! आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥६९॥ हम तो समझते हैं कि सूर्यके रथमें भी इस घोड़ेकी समानता करनेवाला घोड़ा नहीं होगा ॥७०॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करनेवाले आपको लक्ष्य कर ही विधाताने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करो ॥७१॥

तदनन्तर उस विनयवान् घोड़ेको दुहरी रस्सीसे बांधकर घुड़शालमें ले जाया गया । उस समय उसका शरीर केशरके विलेपनसे गीला हो रहा था और उसपर सुन्दर चमर हिल रहे थे ॥७२॥ घुड़शालमें निरन्तर योग्य उपचारोंसे इसकी सेवा होती थी । इस तरह जिस दिनसे घोड़ा पकड़कर लाया गया था उस दिनसे एक मासका समय व्यतीत हो गया ॥७३॥ इस बीचमें वनके एक कर्मचारीने नमस्कार कर राजा जनकसे निवेदन किया कि हे नाथ ! अपने देशमें हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥७४॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे भरे राजा जनक उत्तुंग गजराज-पर सवार होकर चले । वनका कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था । इस तरह राजा जनक किसी बड़े वनमें प्रविष्ट हुए ॥७५॥ वहाँ उन्होंने सरोवरके दूसरी ओर दुर्गम स्थानमें खड़े हुए उत्तम हाथीको देखकर सारथीसे कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़ेको लाओ ॥७६॥ कहनेकी देर थी कि जिसका शरीर फड़क रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनकके समीप खड़ा कर दिया गया । राजा जनक उसपर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हें लेकर आकाशमें उड़ गया ॥७७॥ यह देख जो सहसा भयभीत हो गये थे तथा जिनमें चित्त आश्चर्यसे व्याप्त

१. प्रोथु म. । २. शुद्धः प्रमोदः ज., म. । ३. प्रियभाषणपरमानसाः । ४. न ना कोऽपि म. । ५. तु म. । ६. अश्वः स्थूरीपृष्ठो ज. । ७. विनयैर्निन्ये ब. । ८. मन्दुराकुङ्कुमाद्रङ्गिः प्रचलच्चारुचामरः म. । ९. संवृतो म. । १०. गृहीतितः ब. । ११. सदेशे म., क. । संदेशे ख. ।

ततो^१ नदीगिरीन् देशानरण्यानि च भूरिशः । प्रयाति लङ्घयन् सतिः मनोवदनिवारणः ॥७९॥
 नातिदूरे ततो दृष्ट्वा^२ प्रासादं तुङ्गमुज्ज्वलम् । द्वियमाणः स शाखायां दृढं लग्नो महातरोः ॥८०॥
 अवतीर्य ततो वृक्षाद् विश्रस्य च सविस्मयः । चरणाभ्यां परिक्रामन् प्रययौ स्तोत्रसन्तरम् ॥८१॥
 ददर्श च महातुङ्गं शालं चामीकरात्मकम् । गोपुरं च सुरलेन तोरणेनातिशोभितम् ॥८२॥
 नानाजातीश्च वृक्षाणां लताजालकयोगिनाम् । फलपुष्पसमृद्धानां नानाविहगशोभिनाम् ॥८३॥
 संध्याभ्रकूटसंकाशान् प्रासादान् मण्डलस्थितान् । सेवां प्रासादराजस्य^३ कुर्वाणामिव^४ तत्परम् ॥८४॥
 ततोऽस्तौ खड्गमालाम्ब्य दक्षिणो दक्षिणे करे । केसरीवातिनिःशङ्कः प्रविशेत् स गोपुरम् ॥८५॥
 अपश्यच्च परिस्फीताः पुष्पजातीर्बहुवृषः । मणिकान्धनसोपाना वापीश्च स्फटिकाम्बसः ॥८६॥
 रमणांश्च महामोदान् विशालान् कुन्दमण्डपान् । चलत्पल्लवसंघातान् कृतसंगीतधट्पदान् ॥८७॥
 ततश्च माधवीतुङ्गजालकान्तरयोगिना । विस्फारितप्रसन्नेन चक्षुषा चारुकान्तिना ॥८८॥
 रत्नवातायनैर्युक्तं मन्त्रजालकशोभितैः । शातकौम्भमहास्तम्भसहस्रकृतधारणम् ॥८९॥
 नानारूपसमाकीर्णं मेरुशृङ्गसमप्रभम् । वज्रवद्धमहापीठमद्राक्षीद् भवनं नृपः ॥९०॥
 अचिन्तयच्च किं न्वेतद्विमानं पतितं खतः । वासवस्य हतं किं वा दैत्यैः क्रीडागृहं भवेत् ॥९१॥

हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोकको धारण करते हुए वापस लौट आये ॥७८॥

अथानन्तर मनके समान जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता था ऐसा वह छोड़ा अनेक नदी, पहाड़, देश और पर्वतोंको लाँघता हुआ आगे बढ़ता गया ॥७९॥ तदनन्तर पास ही में एक ऊँचा उज्ज्वल भवन देखकर राजा जनक एक महावृक्षकी शाखामें मजबूतीसे झूम गये ॥८०॥ तदनन्तर वृक्षसे नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विश्राम किया फिर पैरोंसे पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥८१॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त ऊँचा सुवर्णमय कोट और उत्तमोत्तम रत्नोंसे युक्त तोरणसे समुद्रासित गोपुर देखा ॥८२॥ लताओंके समूहसे युक्त, फल और फूलोंसे समृद्ध तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे सुशोभित वृक्षोंकी नाना जातियाँ देखी ॥८३॥ जिनके शिखर सन्ध्याके बादलोंके समान सुशोभित थे, जो गोलाकारमें स्थित थे तथा जो भवनोंके राजा अर्थात् राजभवनकी बड़ी तत्परतासे सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे ऐसे महलोंको भी उन्होंने देखा ॥८४॥

तदनन्तर अतिशय चतुर राजा जनकने दाहिने हाथमें तलवार लेकर सिंहके समान निःशंक हो गोपुरमें प्रवेश किया ॥८५॥ वहाँ जाकर उन्होंने जहाँ-तहाँ फैले हुए रंग-बिरंगे अनेक प्रकारके फूल देखे । जिनकी सीढ़ियाँ मणि और स्वर्णकी बनी हुई थी तथा जिनमें स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी बावड़ियाँ देखी ॥८६॥ जिन्हें देखकर आनन्द उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल रही थी, जिनके पल्लवोंके समूह हिल रहे थे, और जहाँ भ्रमर संगीत कर रहे थे ऐसे कुन्द पुष्पोंके विशाल मण्डप भी उन्होंने देखे ॥८७॥ तदनन्तर राजा जनकने खुले हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ नेत्रसे माधवी लताओंकी ऊँची जालीके बीच झाँककर एक ऐसा सुन्दर मन्दिर देखा जो मोतियोंकी जालीसे सुशोभित रत्नमय झरोखोंसे युक्त था, जो सुवर्णनिर्मित हजारों बड़े-बड़े खम्भे धारण कर रहा था, नाना प्रकारके रूपसे व्याप्त था, मेरुकी शिखरके समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिका) वज्रनिवद्धके समान अत्यन्त मजबूत थी ॥८८-९०॥ उसे देखकर वे विचार करते

१. नदीगिरेदेशान् म. । २. प्रसादं तुङ्गमुज्ज्वलम् म. । ३. कुर्वाणामिव ब. । ४. तत्परम् ब., ज. । ५. वापी च म. । ६. पीठ म. । ७. किन्वेतद्विमानं म. । ८. आकाशात् ।

पातालादुत्थितः किं वा नागेन्द्रस्यायमालयः । कुतोऽपि कारणात् सूर्यमरीचिकृतखण्डनः ॥९२॥
 अहो मे ययुना^१ तेन भद्रेणोपकृतं परम् । अदृष्टपूर्वमेतद् यत् साधु वेश्मावलोकितम् ॥९३॥
 विवेश चिन्त्यश्रेवं भवनं तन्मनोहरम् । संकुलवदनाम्भोजो ददर्श च जिनप्रियम् ॥९४॥
 हुताशनशिखागौरं पूर्णचन्द्रनिभाननम् । पद्मासनस्थितं तुङ्गं जटामुकुटधारिणम् ॥९५॥
 प्रातिहार्यसमायुक्तं हेमतामरसार्चितम्^३ । चित्ररत्नकृतच्छायं तुङ्गसिंहासनस्थितम् ॥९६॥
 ततोऽञ्जलिपुटं मूर्ध्नि कृत्वा हृष्टतनूरुहः । प्रणामं प्रयतः कुर्वन् भक्त्या मूर्च्छामुपागतः ॥९७॥
 क्षणेन प्राप्य संज्ञां च स्तुतिं कृत्वा सुसंस्कृतम् । विस्त्रब्धं जनकस्तस्थौ विस्मयं परमुद्वहन् ॥९८॥
 कृती चपलवेगश्च मायां संहृत्य सत्वरः । खड्गविद्याधरो भूत्वा संप्राप रथनूपुरम् ॥९९॥
 स्वामिने चावदन्त्वा तुष्टो जनकमाहृतम् । रम्यकाननसंवीते स्थापितं जिनवेश्मनि ॥१००॥
 आगतं जनकं ज्ञात्वा परं हर्षमुपागमत् । आसवर्गेण संयुक्तश्चन्द्रयानो महामनाः ॥१०१॥
 गृहीत्वा च परां पूजां नानावाहनसंकुलः । मनोरथरथारूढो ययौ जिनवरालयम् ॥१०२॥
 दृष्ट्वा तत्सुमैहसैन्यमागच्छत्परमोज्ज्वलम् । तूर्यशङ्खमहानादमाविग्नो जनकोऽभवत् ॥१०३॥
 ततो हरिगजद्वीपिनागहंसादिवाहिनाम् । पुरुषाणामिदं मध्ये विमानं स व्यलोकयत् ॥१०४॥

लगे कि क्या यह आकाशसे गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्योंके द्वारा हरण किया हुआ इन्द्रका क्रीड़ागृह है ? ॥९१॥ अथवा किसी कारणवश सूर्यकी किरणोंसे जिसके खण्ड हो गये थे ऐसा पातालसे निकला हुआ नागेन्द्रका भवन है ? ॥९२॥ अहो ! उस भले घोड़ेने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मैं इस अदृष्टपूर्व सुन्दर मन्दिरको देख सका ॥९३॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनेन्द्र भगवान्के दर्शन किये । जिनदर्शनके प्रभावसे उनका मुखकमल खिल उठा था ॥९४॥ मन्दिरमें विराजमान जिनेन्द्रदेव अग्निकी शिखाके समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, वे पद्मासनसे विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुटको धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्योंसे युक्त थे, स्वर्ण कमलोंसे उनकी पूजा की गयी थी, नाना प्रकारके रत्नोंसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासनपर विराजमान थे ॥९५-९६॥

तदनन्तर जिसके शरीरमें रोमांच उठ रहे थे ऐसे राजा जनकने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये और बड़ी सावधानीसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया । नमस्कार करते-करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेकसे मूर्च्छित हो गया ॥९७॥ क्षण-भरके बाद पुनः चेतना प्राप्त कर उसने सुन्दर सुसंस्कृत स्तुति की । तदनन्तर वह परम आश्चर्यको धारण करता हुआ निःशंक हो वहीं बैठ गया ॥९८॥

इधर चपलवेग नामका विद्याधर जो घोड़ेका रूप धरकर जनकको हर ले गया था अपने कार्यमें सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रतासे सब माया समेटकर तथा खड्गधारी विद्याधर बनकर रथनूपुर नगर पहुँचा ॥९९॥ उसने सन्तुष्ट होकर अपने स्वामीके लिए नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके हैं तथा सुन्दर वनसे वेष्टित जिनमन्दिरमें उन्हें ठहरा दिया गया है ॥१००॥ राजा जनकको आया जानकर चन्द्रगति परम हर्षको प्राप्त हुआ । तदनन्तर उदार चित्तको धारण करनेवाला एवं नाना वाहनोंसे युक्त चन्द्रगति आसवर्गके साथ पूजाकी उत्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथपर सवार हो जिनमन्दिर गया ॥१०१-१०२॥ जिसमें तुरही और शंखोंका विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेनाको आती देख जनक कुछ भयभीत हुआ ॥१०३॥ तदनन्तर उसमें सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस आदि नाना

१. अश्वेन । २. तुङ्गजटा-ज., क., ख. । ३. सुवर्णकमलपूजितम् । ४. मनोहरोद्यानवेष्टिते । ५. सुमहासैन्य ब. ।

अचिन्तयन्ते ते नूनमेते विद्याभृतो जनाः । विजयाद्धगिरेरुध्वं ये वसन्तीति मे श्रुतम् ॥१०५॥
 मध्येऽयमस्य सैन्यस्य स्वविमानकृतस्थितिः । शोभते परमो दीप्त्या कोऽपि विद्याधराधिपः ॥१०६॥
 एवं चिन्तापरे तस्मिन्नुपतौ दैत्यपुङ्गवः । संप्रापच्चैत्यभवनं सम्मदो नतविग्रहः ॥१०७॥
 दृष्ट्वा दैत्याधिपं प्राप्तं भीमसौम्यपरिग्रहम् । जनकः किमपि ध्यायंस्तस्थौ सिंहासनान्तरे ॥१०८॥
 भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि कृत्वा पूजामनुत्तमाम् । प्रणम्य विधिना चक्रे जिनानां परमस्तुतिम् ॥१०९॥
 विपद्भ्यो च विधायाङ्गे सुखरूपां प्रियामिव । महाभावनाया युक्तो जगौ जिनगुणात्मकम् ॥११०॥

चतुष्पदिकावृत्तम्

त्रिभुवनवरदमभिष्टुतमतिशयपूजाविधानविनिहितचित्तैः ।
 प्रणतं सुरवृषभगणैः प्रणमत नाथं जिनेन्द्रमक्षयसौख्यम् ॥१११॥
 ऋषभं सततं परमं वरदं मनसा घञ्जसा शिरसा सुजनाः ।
 भजत प्रवरं विलयं प्रगतं विहितं सकलं दुरितं भवति ॥११२॥
 अतिशयपरमं विनिहतदुरितं परमगतिगते नमत जिनवरम् ।
 सर्वसुरासुरपूजितपादं क्रोधमहारिपुनिर्मितमङ्गम् ॥११३॥
 उत्तमलक्षणलक्षितदेहं नौमि जिनेन्द्रमहं प्रयतात्मा ।
 भक्त्या विनमितसर्वजनौघं नतिमात्रविनाशितमक्तमयम् ॥११४॥

वाहनोंपर स्थित पुरुषोंके मध्यमें एक विमान देखा ॥१०४॥ उसे देखकर वह विचार करने लगा कि निश्चय ही वे विद्याधर हैं जो कि विजयाद्ध पर्वतपर वास करते हैं ॥१०५॥ इस सेनाके बीचमें अपने विमानमें बैठा हुआ जो कान्तिमात् पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरोंका राजा है ॥१०६॥ राजा जनक इस प्रकारकी चिन्तामें तत्पर थे ही कि हर्षसे भरा तथा नम्रोभूत शरीरको धारण करनेवाला वह चन्द्रगति जिनमन्दिरमें आ पहुँचा ॥१०७॥ जिसका परिग्रह कुछ तो भीम अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाला था और कुछ सौम्य अर्थात् शान्ति उत्पन्न करनेवाला ऐसे दैत्यराजको आया देख कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराजके सिंहासनके नीचे बैठ गया ॥१०८॥ राजा चन्द्रगतिने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम स्तुति की ॥१०९॥ और प्रियाके समान जिसका स्वर अत्यन्त सुखकारी था ऐसी वीणाको गोदमें रख बड़ी भावनासे युक्त हो जिनराजका गुणगान करने लगा ॥११०॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो तीनों लोकोंके लिए वर देनेवाले हैं, अतिशय-पूर्ण पूजाके करनेमें चित्त धारण करनेवाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते हैं, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, तथा जो अक्षय—अविनाशी सुखके धारक हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेवको हे भव्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥१११॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन ऋषभदेव भगवान्को मनसे, वचनसे शिर झुकाकर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, वर देनेवाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अविनाशी हैं और उत्तम ज्ञानसे युक्त हैं तथा जिन्हें नमस्कार करनेसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥११२॥ तुम उन जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करो जो कि अतिशयोंसे उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया है, जो परमगति—सिद्ध गतिको प्राप्त हो चुके हैं, समस्त सुर और असुर जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रुको पराजित कर दिया है ॥११३॥ मैं भक्तिपूर्वक बड़ी सावधानीसे उन जिनेन्द्र भगवान्की स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणोंसे युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्योंके समूहको नम्रोभूत कर दिया है और जिन्हें नमस्कार

अनुपमगुणधरमनुपमकायं विनिहतमवभयसकलकुचेष्टम् ।

कलमलघनपटविनयनदक्षं प्रणमत जिनवरमतिशयपूतम् ॥११५॥

इति गायति दैत्येन्द्रे जिनसिंहासनान्तरात् । निर्ययौ मयमुत्सृज्य जनको नाम शोभनः ॥११६॥

ततश्चन्द्रायणोऽवोचदीपचलितमानसः । को भवान् विजने देशे वसत्यत्र जिनालये ॥११७॥

उरगाणां पतिः किं स्यात् किं वा विद्याधराधिपः । सखे वद कुतः प्राप्सो भवान् किं संज्ञकोऽपि वा ॥११८॥

मिथिलानगरीतोऽहं प्राप्सो जनकसंज्ञकः । हृतो मायातुरङ्गेण नभश्चरमहीपते ॥११९॥

इत्युक्ते जनकेनैतावन्योन्य^१ प्रीतमानसौ । इच्छाकाराञ्जलिं^२ कृत्वा सुखासीनौ बभूवतुः ॥१२०॥

क्षणं स्थित्वा च वृत्तान्तैरन्योन्यविनिवेदितैः । जनिवान्योन्यसंमानौ तौ विश्रम्भं समीयतुः ॥१२१॥

ततश्चन्द्रायणोऽवोचद्वीमान् कृत्वा कथान्तरम् । पुण्यवानस्मि येन त्वं मिथिलापतिरीक्षितः ॥१२२॥

अस्ति ते दुहिता राजन् लक्षणैरन्विता शुभैः । कर्णगोचरमायाता मम भूरिजनाननात् ॥१२३॥

सा भामण्डलसंज्ञाय मत्पुत्राय प्रदीयताम् । त्वया विहितसंबन्धं मन्ये त्वं परमोदयम् ॥१२४॥

सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात् कृतं विद्याधराधिप । किंतु^३ दशरथेर्बाला ज्येष्ठस्य परिकल्पिता ॥१२५॥

सुहृच्चन्द्रगतिरुचे सा कस्मात्तस्य कल्पिता । सोऽवोचच्छ्रूयतामस्ति सवतां चेत् कुतूहलम् ॥१२६॥

करने मात्रसे भक्तोंका भय नष्ट हो जाता है ॥११४॥ हे भग्यजन ! तुम उन जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणोंको धारण करनेवाले हैं, जिनका शरीर उपमारहित है, जिन्होंने संसार-रूपी समस्त कुचेष्टाओंको नष्ट कर दिया है, जो कलिकालके पापरूपी सघन पटको दूर करनेमें समर्थ हैं तथा जो अतिशयोंसे पवित्र हैं अथवा अत्यन्त पवित्र हैं ॥११५॥

तदनन्तर दैत्यराजके इस प्रकार गानेपर सुन्दर शरीरको धारण करनेवाला राजा जनक भय छोड़ जिनेन्द्रदेवके सिंहासनके नीचेसे बाहर निकल आया ॥११६॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चन्द्रगति बोला कि आप कौन हैं ? जो इस निर्जन स्थानमें जिनालयके बीच रहते हैं ॥११७॥ आप नागकुमार देवोंके स्वामी हैं ? या विद्याधरोंके अधिपति हैं ? अथवा किस नामको धारण करनेवाले हैं ? और यहाँ कहाँसे आये हैं ? हे मित्र ! यह सब मुझसे कहो ॥११८॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरीसे आया हूँ । जनक मेरा नाम है और एक मायामयी घोड़ा मुझे हरकर लाया है ॥११९॥ जनकके इतना कहनेपर दोनोंके हृदय परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों ही एक दूसरेके लिए हाथ जोड़कर सुखसे बैठ गये ॥१२०॥ क्षण-भर ठहरकर दोनोंने एक दूसरेके लिए अपना वृत्तान्त सुनाया और परस्पर एक दूसरेका सम्मान किया । इस तरह वे परस्पर विश्वासको प्राप्त हुए ॥१२१॥ तदनन्तर बीचमें ही बात काटकर चन्द्रगतिने कहा कि अहो ! मैं बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिलाके राजाका दर्शन किया ॥१२२॥

हे राजन् ! मैंने अनेक लोगोंके मुखसे सुना है कि आपके शुभ लक्षणोंसे युक्त कन्या है ॥१२३॥ सो वह कन्या मेरे भामण्डल नामक पुत्रके लिए दीजिए । आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मैं अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूँगा ॥१२४॥ इसके उत्तरमें राजा जनकने कहा कि हे विद्याधरराज ! यह सब हो सकता था परन्तु वह कन्या राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामके लिए निश्चित की जा चुकी है, अतः विवशता है ॥१२५॥ मित्र चन्द्रगतिने कहा कि वह कन्या रामके लिए किस कारण निश्चित की गयी है ? इसके उत्तरमें जनकने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥१२६॥

१. नागशोभनः ज. । २. प्रीतिमानसौ ज. । प्रतिमानसौ म. । ३. -ञ्जलि कृत्वा म. । ४. दशरथसुतस्य रामचन्द्रस्य ।

धनगोरस्तसंपूर्णा मदीया मिथिलापुरी । अर्द्धवर्वरकैर्लेच्छैरवाध्यत सुदारुणः ॥१२७॥
 अपीडयन्त प्रजाः सर्वाः स्वहियन्त धनोत्कराः । धर्मयज्ञा न्यवर्तन्त श्रावकाणां महात्मनाम् ॥१२८॥
 ततो महाहवे जाते रक्षित्वा मां सहानुजम् । पद्मेन विजिता म्लेच्छा ये सुरैरपि दुर्जयाः ॥१२९॥
 लक्ष्मणश्चानुजस्तस्य शक्रोपमपराक्रमः । कुरुते शासनं विरथं महाविनयसंयुतः ॥१३०॥
 यदि नाम न तस्मैन्यं ताभ्यां स्याद् विजितं द्विषा । म्लेच्छलोकेन संपूर्णा ततः स्यादखिला मही ॥१३१॥
 विवेकरहितास्ते हि लोकपीडामया इव । महोत्पाता इवात्यन्तभीषणा विषदारुणाः ॥१३२॥
 प्राप्य तौ गुणसंपूर्णौ सुपुत्रौ लोकवत्सलौ । इन्द्रवज्रवने राज्यं सुखं दशरथोऽभजत् ॥१३३॥
 तस्य राज्येऽधुना जाते नयशौर्यविलासिनः । वातोऽपि नाहरत् किञ्चित् प्रजानां पुरुषंपदाम् ॥१३४॥
 ततः प्रत्युपकारं कं करोमीति समाकुलः । न रात्रौ न दिवा निद्रां संप्राप्तोऽस्मि विचिन्तयन् ॥१३५॥
 रक्षिता येन मे प्राणास्तस्य रामस्य नो समः । कश्चित् प्रत्युपकारोऽस्ति किमुताधिव्यगोचरः ॥१३६॥
 हतं महोपकारेण प्रतीकारविवर्जितम् । मन्ये तृणमिवात्मानं भोगैर्प्रीतिपराङ्मुखः ॥१३७॥
 नवयौवनसंपूर्णं दृष्ट्वा दुहितरं शुभम् । गतो विरलतां शोकः शोकस्थानेऽपि मे ततः ॥१३८॥
 तथा कल्पितया तस्य रामस्य पुरस्तेजसः । नावेव शोकजलधेस्तारितोऽहं सुजातया ॥१३९॥
 ततो नमश्चरा उच्चरन्धकारीकृताननाः । अहो प्रानुषमाग्रस्य बुद्धिस्तव न शोभता ॥१४०॥

अर्ध-राक्षसोंके समान अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छोंने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्न-
 से परिपूर्ण मिथिला नगरीको बाधा पहुँचाना शुरू किया ॥१२७॥ समस्त प्रजा पीड़ित होने लगी,
 धन-धान्यके समूह चुराये जाने लगे, और महानुभाव श्रावकोंके धार्मिक पूजा-विधान आदि अनु-
 ष्ठान नष्ट किये जाने लगे ॥१२८॥ तदनन्तर उनके साथ मेरा महायुद्ध हुआ । सो उस महायुद्धमें
 रामने मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी रक्षा कर देवोंसे भी दुर्जेय उन समस्त म्लेच्छोंको पराजित
 किया ॥१२९॥ रामका छोटा भाई लक्ष्मण भी इन्द्रके समान महापराक्रमी तथा महा विनयसे
 सहित है । वह सदा रामकी आज्ञाका पालन करता है ॥१३०॥ यदि उन दोनों भाइयोंके द्वारा
 म्लेच्छोंकी वह सेना नहीं जीती जाती तो निश्चित था कि यह समस्त पृथिवी म्लेच्छोंसे भर
 जाती ॥१३१॥ वे म्लेच्छ विवेकसे रहित तथा लोगोंको पीड़ा पहुँचानेके लिए रोगोंके समान थे
 अथवा महा उत्पातके समान अत्यन्त भयंकर और विषके समान दारुण थे ॥१३२॥ गुणोंसे सम्पूर्ण
 तथा लोगोंसे स्नेह करनेवाले उन दोनों पुत्रोंको पाकर राजा दशरथ अपने भवनमें इन्द्रके समान
 राज्यसुखका उपभोग करते हैं ॥१३३॥ नय और शूरवीरतासे सुशोभित राजा दशरथके राज्यमें
 इस समय हवा भी सम्पत्तिशाली प्रजाका कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य मनुष्योंकी तो
 बात ही क्या है ? ॥१३४॥

इस उपकारके बदले मैं उनका क्या उपकार करूँ इसी बातकी आकुलतासे चिन्ता करते
 हुए मुझे न रातमें नींद है न दिनमें ही ॥१३५॥ रामने मेरे प्राणोंकी जो रक्षा की है उस समान
 भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिककी तो चर्चा ही क्या है ? ॥१३६॥ जो महान् उपकारसे
 दबा हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ है, ऐसे अपने आपको मैं तृणके
 समान तुच्छ समझता हूँ । मैं केवल भोगोंके भयसे पराङ्मुख हो रहा हूँ ॥१३७॥ तदनन्तर जब
 मेरी दृष्टि नवयौवनसे सम्पूर्ण अपनी शुभ पुत्री पर पड़ी तब शोकके स्थानमें भी मेरा शोक
 विरलताको प्राप्त हो गया ॥१३८॥ मैंने अतिशय प्रतापी रामचन्द्रजीके लिए उसको देना संकल्पित
 कर लिया और नावकी भाँति इस पुत्रीने मुझे शोकरूपी सागरसे पार कर दिया ॥१३९॥

तदनन्तर जिनके मुखोंपर अन्धकार छा रहा था ऐसे विद्याधर बोले कि अहो ! तुम एक

१. रामेण । २. पुरसम्पदाम् ख. । ३. भोगभीति भ. ।

म्लेच्छैः किं ग्रहणं क्षुद्रैर्यदि तेषां पराजये । प्रशंससि परां शक्तिं भूमिगोचरिणो^१ बुध ॥१४१॥
 म्लेच्छनिर्घाटनात् स्तोत्रं त्वया पद्मस्य कुर्वता । कृता प्रत्युत निन्देयमहो हास्यमिदं परम् ॥१४२॥
 शिशोर्विषफले प्रीतिर्निःस्वस्य^२ बदरादिषु । ध्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ॥१४३॥
 कुसंबन्धं परित्यज्य क्षितिगोचरिणां मतम् । कुरु विद्याधरेन्द्रेण संबन्धमधुना सह ॥१४४॥
 क महामपदो देवैः सदृशो व्योमचारिणः । क भूमिगोचराः क्षुद्राः सर्वथैवातिदुःखिताः ॥१४५॥
 जनकोऽवोचदत्यन्तविपुलः^३ क्षारसागरः । न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोकस्वादुपयोभृतः ॥१४६॥
 अत्यन्तघनघन्धेन तमसा भूयसापि किम् । अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकेष्टितम् ॥१४७॥
 असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वन्ते न तत् । केशरी यत्किशोरः संश्रमद्भनिर्मलैकेशरः ॥१४८॥
 इत्युक्ते^४ कोऽपि नोऽन्यथं समं कृतमहारथाः । भूमिचैष्टां समाख्या निन्दितं गगनायनाः^५ ॥१४९॥
 विद्यामाहात्म्यनिमुक्ता नित्यं स्वेदसमन्विताः । शौर्यसंपत्परित्यक्ताः शोचनीया धराचराः ॥१५०॥
 वद तेषां पशूनां च को भेदो जनक त्वया । दृष्टो येन अपां त्यक्त्वा दुर्बुद्धिस्तान् विकत्यसे ॥१५१॥
 उवाच जनको धीरः हा कष्टं किं श्रुतं मया । वसुधाराजरत्नानां निन्दितं पापकर्मणा ॥१५२॥
 कथं त्रिभुवनख्यातो वंशो नाभेयसंभवः । कर्णगोचरमेतेषां न प्राप्तो लोकपावनः ॥१५३॥

साधारण मनुष्य ही, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है ॥१४८॥ रामने म्लेच्छोंको पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त तो क्षुद्र मनुष्य भी कर सकते हैं फिर क्यों तुम बुद्धिमान् होकर भूमि-गोचरियोंकी परम शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हो ॥१४९॥ म्लेच्छोंको निकालने मात्रसे ही तुम रामकी स्तुति कर रहे हो सो यह उनकी स्तुति नहीं किन्तु निन्दा है। अहो ! यह बड़ी हँसीकी बात है ॥१४९॥

बालकी विषफलमें, दरिद्रकी बैर आदि तुच्छ फलोंमें और कौएकी सूखे वृक्षमें प्रीति होती है। सो कहना पड़ता है कि प्राणीका स्वभाव कठिनाईसे छूटता है ॥१४३॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियोंका खोटा सम्बन्ध छोड़कर इस समय विद्याधरोंके राजाके साथ सम्बन्ध करो ॥१४४॥ महासम्पत्तिमान् तथा देवोंके समान आकाशमें चलनेवाले विद्याधर कहाँ ? और सर्वप्रकारसे अत्यन्त दुःखी क्षुद्र भूमिगोचरी कहाँ ? ॥१४५॥

तदनन्तर जनकने उत्तर दिया कि अत्यन्त विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नहीं करता जो कि थोड़ेसे मधुर जलको धारण करनेवाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥१४६॥ अत्यन्त सघन अन्धकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटेसे दीपकके द्वारा लोककी चेष्टा उत्पन्न होती है अर्थात् सब काम सिद्ध होते हैं ॥१४७॥ मदको झरानेवाले असंख्य हाथी भी वह काम नहीं कर पाते जो कि चन्द्रबिम्बके समान उज्ज्वल जटाओंकी धारण करने-वाला सिंहका एक बच्चा कर लेता है ॥१४८॥ ऐसा कहनेपर कितने ही विद्याधर 'ऐसा नहीं है' इस प्रकार जोरसे एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियोंकी निन्दा करने लगे ॥१४९॥ वे कहने लगे कि भूमिगोचरी विद्याके माहात्म्यसे रहित हैं, निरन्तर पसीनासे युक्त रहते हैं, शूर-वीरता और सम्पत्तिसे रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं ॥१५०॥ अरे जनक ! बता तूने उनमें और पशुओंमें क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोड़कर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥१५१॥

तदनन्तर धीरवीर जनकने कहा कि हाय ! बड़े कष्टकी बात है कि मुझ पापीको भूमि-गोचरी उत्तमोत्तम राजाओंकी निन्दा सुननी पड़ी ॥१५२॥ क्या त्रिजगत्में प्रसिद्ध तथा लोकको

१. प्रशंस म. । २. गोचरिणोबुधः म., गोचरिणो बुधः ब. । ३. दरिद्रस्य । निःस्वस्य म. । ४. गोचरिणामतः म. । ५. लवणसागरः । ६. चन्द्रमण्डल- म. । ७. केऽपि नोऽन्यथं (?) । ८. विद्याधराः ।

अहेन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः । उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥१५४॥
 पञ्चकल्याणसंप्राप्तिः पुंसां वदत खेचराः । स्वप्नेऽपि जातु किं दृष्टा भवद्भिः खेचरावनौ ॥१५५॥
 इक्ष्वाकुवंशसंभूता गोपपदीकृतविष्टपाः । अनीक्षितपरच्छत्रा महारत्नसमृद्धयः ॥१५६॥
 सुरेन्द्रकीर्त्तितोदारकीर्तयो गुणसागराः । व्यतीता बहवो भूमौ कृतकृत्या नरोत्तमाः ॥१५७॥
 पुत्रोऽनरण्यराजस्य तत्र वंशे महात्मनः । जातः सुमङ्गलाकुक्षौ नृपो दशरथोऽभवत् ॥१५८॥
 यो लोकहितमुद्दिश्य विरहेऽपि जीवितम् । मूर्ध्ना वहति यस्याज्ञां शेषामिव जनोऽखिलः ॥१५९॥
 चतस्रो यस्य संपन्नाः सर्वशोभागुणोज्ज्वलाः । आशा इव महादेव्यः सुभावाः सुप्रसाधिताः ॥१६०॥
 शतानि वरनारीणां पञ्च यस्य सुचेतसः । वक्त्रनिर्जितचन्द्राणां हरन्ति चरितैर्मनः ॥१६१॥
 पद्मो नाम सुतो यस्य पद्मालिङ्गितविग्रहः । दीप्तिनिर्जिततिग्मांशुः कीर्त्तिनिर्जितशीतगुः ॥१६२॥
 स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः शोभाजितपुरन्दरः । शौर्येण यो महापद्मं जयेदपि सुविभ्रमः ॥१६३॥
 अनुजो लक्ष्मणो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । द्रवन्ति शत्रवो मीता दृष्ट्वा यस्य शरासनम् ॥१६४॥
 वायसा अपि गच्छन्ति नमसा तेन किं भवेत् । गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन को गुणः ॥१६५॥
 ग्रहणं वा भवद्भिः किं यत्र देवाधिपा अपि । क्रियन्ते भूमिसंभूतैर्मनस्तः क्षितिमस्तकाः ॥१६६॥
 इत्युक्ते रहसि स्थित्वा संमनस्य गगनायनाः । ऊचुर्न वेत्सि कार्याणि जैनकैकाग्रमानसाः ॥१६७॥

पवित्र करनेवाला भगवान् ऋषभदेवका वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥१५३॥ त्रिजगत्के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र-जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निन्दनीय कैसे हो सकती है ? ॥१५४॥ हे विद्याधरो ! कहो, विद्याधरोंकी भूमिमें पुरुषोंको पंच कल्याणकोंकी प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगोंने स्वप्नमें भी देखी है ? ॥१५५॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंशमें हुई थी, जिन्होंने संसारको गोष्पदके समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरे-का छत्र नहीं देखा, महारत्नोंकी समृद्धि जिनके पास थी, इन्द्र जिनकी उदार कीर्तिका वर्णन करता था, और जो गुणोंके सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवीपर हो चुके हैं ॥१५६-१५७॥ उसी इक्ष्वाकु वंशमें महानुभाव राजा अनरण्यकी सुमंगला रानीकी कुक्षिसे राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं ॥१५८॥ जो लोकहितके लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञाको शेषाक्षतके समान शिरसे धारण करते हैं ॥१५९॥ जिसके सर्व प्रकारकी शोभा और गुणोंसे उज्ज्वल, उत्तम अभिप्रायकी धारक तथा उत्तम अलंकारोंसे युक्त चार दिशाओंके समान चार महादेवियाँ हैं ॥१६०॥ यही नहीं, अपने मुखसे चन्द्रमाको जीतनेवाली पाँच सौ स्त्रियाँ और भी अपनी चेष्टाओंसे जिसके मनको हरती रहती हैं ॥१६१॥ जिसके पद्म (राम) नामका ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीरका आलिंगन करती है, जिसने अपनी दीप्तिसे सूर्यको, कीर्त्तिसे चन्द्रमाको, धीरतासे सुमेरुको और शोभासे इन्द्रको जीत लिया है, जो शूरवीरतासे महापद्म नामक चक्रवर्तीको भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रमको धारण करनेवाला है ॥१६२-१६३॥ जिसका शरीर लक्ष्मीका निवासस्थल है और जिसके धनुषको देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस रामका छोटा भाई है ॥१६४॥ विद्याधर आकाशमें चलते हैं यह कहा सो आकाशमें तो कौए भी चलते हैं । इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणोंमें मन लगाना चाहिए अर्थात् गुणोंका विचार करना चाहिए । इन्द्रजालमें क्या सार है ? ॥१६५॥ अथवा आप लोगोंकी तो बात ही क्या है ? जबकि भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन्द्रोंको भी नम्रीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवीपर रगड़ने पड़ते हैं ॥१६६॥

अथानन्तर जनकके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंने एकान्तमें बैठकर पहले सलाह की फिर

पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चैर्गजितं वहसे वृथा । अथ विप्रैस्तयः कश्चित्ततोऽस्माद्वज्र निश्चयम् ॥१६८॥
 समर्थं शृणु भूनाथ वज्रावर्तमिदं धनुः । इदं च सागरावर्तममरैः कृतरक्षणम् ॥१६९॥
 इमे वाणासने कर्तुमपिजये यदि तौ क्षमौ । अन्वेयैव तयोः शक्तिं ज्ञास्यामः किं बहुदिव्यं ॥१७०॥
 वज्रावर्तं समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम् । अस्माभिः प्रसभं पश्य तामानीतामिहान्यथा ॥१७१॥
 ततः परममिष्युक्त्वा धनुषी वीक्ष्य दुर्ग्रहे । मनकाद् व्याकुलीभावं जनको मनसागमत् ॥१७२॥
 ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां स्तोत्रं तु भावतः । गदासीरादिसंयुक्ते पूजां भीते शरासने ॥१७३॥
 उपादाय च ते शूरा जनकं च नमश्चराः । मिथिलाभिमुखं जम्बुधन्वोऽपि रथनूपुरम् ॥१७४॥
 ततः कृतगहाशीर्षं सगङ्गलम्हाजनम् । विवेश जनको वैश्वं पौरलोकावलोकितः ॥१७५॥
 विधायायुधशालां च समं कृत्वा नमश्चराः । वहन्तः परमं गर्वं नगरस्य बहिःस्थिताः ॥१७६॥
 जनकस्तु सखेदाङ्गः कृत्वा किञ्चित्प भोजनम् । चिन्तयाकुलितो भजे तत्पुस्तलाहवर्जितः ॥१७७॥
 तत्र चोत्तमनारीभिर्विनीताभिः सुविभ्रमम् । चन्द्रांशुचयसंकाशैश्चामरैरमिवीजितः ॥१७८॥
 उष्णदीर्घातिनिःश्वासान् विमुञ्चन् विषमान् ॥ दृष्ट्या विविधं भावमभाष्यत विदेह्यै ॥१७९॥
 का क कामिस्त्वया दृष्ट्वा नारी यातेन लक्षिता । तद्वियोगकथामेतामवस्थामसि संश्रितः ॥१८०॥

कहा कि हे जनक ! तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥१६७॥ 'राम और लक्ष्मण उत्कृष्ट हैं' इस गर्जनाको तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो । यदि मेरे इस कहनेमें कुछ संशय हो तो इससे उसका निश्चय कर लो ॥१६८॥ हे राजन् ! हमारी शर्त सुनो । यह वज्रावर्त नामका धनुष है, और यह सागरावर्त नामका धनुष है । देव लोग इन दोनोंकी रक्षा करते हैं ॥१६९॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषोंकी डोरीसहित करनेमें समर्थ हो जावेंगे तो इसीसे हम उनकी शक्ति जान लेंगे । अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? ॥१७०॥ राम वज्रावर्त धनुषको चढ़ाकर कन्या ग्रहण कर सकते हैं । यदि वे उक्त धनुष नहीं चढ़ा सकेंगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आवेंगे ॥१७१॥

तदनन्तर 'ठीक है' ऐसा कहकर जनकने विद्याधरोंकी शर्त स्वीकार तो कर ली परन्तु उन दुर्गाह्य धनुषोंकी देखकर चित्तमें वह कुछ आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१७२॥ तदनन्तर भावपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा और स्तुति कर चुकनेके बाद गदा, हल आदि शस्त्रोंसे युक्त उन दोनों धनुषोंकी भी पूजा की गयी ॥१७३॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनकको लेकर मिथिलाकी ओर चल पड़े और चन्द्रगति विद्याधर भी रथनूपुरकी ओर चल दिया ॥१७४॥ तदनन्तर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गयी थी, और जिसमें महाजन लोग मंगलाचारसे सहित थे, ऐसे अपने भवनमें राजा जनकने प्रवेश किया । प्रवेश करते समय नागरिकजनोंने जनकके अच्छी तरह दर्शन किये थे ॥१७५॥

बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले विद्याधर नगरके बाहर आयुधशाला बनाकर तथा उसीको घेरकर ठहर गये ॥१७६॥ जिसका शरीर खेद-खिन्न था ऐसे जनकने कुछ थोड़ा-सा भोजन किया और इसके बाद वह चिन्तासे व्याकुल हो शय्यापर पड़ रहा । उस्ताह तो उसे था ही नहीं ॥१७७॥ यद्यपि वहाँ विनयसे भरी उत्तम स्त्रियाँ, हाव-भाव दिखाती हुई, चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमरोसे उसे हवा कर रही थीं तथापि वह अत्यन्त विषम, उष्ण और लम्बे-लम्बे अत्यधिक श्वास छोड़ रहा था । उसकी यह दशा देख विविध प्रकारके भावको धारण करती हुई रानी विदेहाने कहा ॥१७८-१७९॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन-सी कामिनी आपने देखी है जिसके वियोगसे इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥१८०॥

१. विरोधः । २. मनकाष्वाकुली -म. । ३. एतन्नाम्या जनकपत्न्या । ४. या तेन लक्षितः म. ।

प्राकृता कापि सा नारी कामिनीगुणरिक्तिका । इति या स्मरसंतसं भवन्तं नानुकम्पते ॥१८१॥
 नाथ वेद्य मे स्थानं येन ताम्रानशामि ते । भवद्दुःखेन मे दुःखं जनस्य सकलस्य वा ॥१८२॥
 उदारे सति सौभाग्ये कथमिष्टोऽसि नो तथा । आवमानसया येन घृतिं न लभसे भृशम् ॥१८३॥
 उत्तिष्ठ भज निःशेषाः क्रिया राजजनोचिताः । शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनोषिताः ॥१८४॥
 इत्युक्ते पार्थिवोऽद्योचत् कान्तां प्राणगरीयसीम् । अन्यथा खेदितस्यास्य किं मे चित्तस्य खेद्यते ॥१८५॥
 शृणु देवि यतोऽवस्थानीदृशीमहमागतः । अपरिज्ञातवृत्तान्ता किमर्थमिति भाषसे ॥१८६॥
 तेन सायातुरङ्गेन नीतोऽहं विजयाचलम्^१ । समयेनामुना तत्र युक्तः पत्न्या खगामिनाम् ॥१८७॥
 वज्रावर्तमधिज्यं वेदनुः पद्मैः करिष्यति । ततः स्वात्तस्य कन्येयं तनयस्य ममान्यथा ॥१८८॥
 कर्मानुभावतस्तच्च मया साध्वसतोऽपि वा । प्रतिपन्नं भाग्येन बन्धावस्थामुपेयुषा ॥१८९॥
 समुद्रावर्तसंज्ञेन^२ तच्चापेन समन्वितम् । आनीतं खेचरैरुग्रैर्बहिःस्थानस्थ तिष्ठति ॥१९०॥
 मन्ये तस्य सुरेशोऽपि न शक्तोऽधिज्यताकृतौ । वज्रज्वलनं तु^३ यस्य दुर्निरीक्ष्यस्य तेजसा ॥१९१॥
^४ कृतान्तमेव निरुद्धमनाकृष्टमपि स्वनत् । अनधिज्यमपि स्वैरं भोष्मं तिष्ठत्यनारतम् ॥१९२॥
^५ अधिज्ये न कृते तस्मिन् पद्मेन^६ मयि^७ ध्रुवम् । हरिष्यते खगैः कन्या मांसपेशीव जम्बुकात् ॥१९३॥
 विंशतिर्वसराणां च वस्तुन्यत्र कृतोऽवधिः । बलाज्जीता वराकीयं भूयोऽस्माभिः क्व वीक्षिता ॥१९४॥

जान पड़ता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्रीके योग्य गुणोंसे रिक्त है जो इस तरह कामसे सन्तप्त हुए आपपर दया नहीं करती है ॥१८१॥ हे नाथ ! आप वह स्थान बतलाइए जिससे मैं उसे ले आऊँ क्योंकि आपके दुःखसे मुझे तथा समस्त लोगोंको दुःख हो रहा है ॥१८२॥ उत्कृष्ट सौभाग्यके रहते हुए भी उस पाषाणहृदयाने आपको क्यों नहीं चाहा है जिससे कि आप अत्यन्त अधीर हो रहे हैं ॥१८३॥ उठिए और राजाओंके योग्य समस्त क्रियाओंका सेवन कीजिए । यदि शरीर है तो अनेक इच्छित स्त्रियाँ हो जावेंगी ॥१८४॥

विदेहाके ऐसा कहनेपर राजाने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय वल्लभासे कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारणसे खिन्न हो रहा है । उसे इस तरह खेद क्यों पहुँचा रही हो ? ॥१८५॥ हे देवि ! सुनो, मैं जिस कारणसे ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ । तुम वृत्तान्तको जाने बिना इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? ॥१८६॥ मैं उस मायामय अश्वके द्वारा विजयार्ध पर्वतपर ले जाया गया था । वहाँ विद्याधरोंके राजाने मुझे इस शर्तपर छोड़ा है कि यदि राम वज्रावर्त धनुषको डोरी-सहित कर देंगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुत्रकी होगी ॥१८७-१८८॥ कर्मके प्रभावसे समझो अथवा भयसे समझो बन्धन अवस्थाको प्राप्त हुए मुझ मन्दभाग्यने उसकी वह शर्त स्वीकार कर ली ॥१८९॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुषके साथ उस धनुषको उग्र विद्याधर ले आये हैं और वह नगरके बाहर स्थित है ॥१९०॥ वह धनुष वज्राग्निके समान है तथा तेजके कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है । इसलिए मैं तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करनेमें इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा ॥१९१॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यन्त क्रुद्ध यमराज ही हो । बिना खींचे भी वह शब्द करता है और बिना डोरीके भी वह अत्यन्त भयंकर है ॥१९२॥ यदि राम उस धनुषको डोरीसहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्याको विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हरकर ले जावेंगे जिस तरह कि पक्षी किसी शृगालके मुखसे मांसकी डलीको हर ले जाते हैं ॥१९३॥ इस

१. पामरी । २. स्मरसंसक्तं म. । ३. पाषाणवत्कठोरचेतसा । ४. इष्टाः । ५. विजयार्धगिरिम् । ६. रामः । ७. स्वीकृतम् । ८. संख्येन म. । ९. दिग्ज्वालानल-ज., ख., क. । १०. कृतान्तायैव तत्क्रुद्ध-म., ख. । ११. अधिज्येन क्षते यस्मिन् म. । १२. मत् मत्सकाशात् ।

एवमुक्तेऽस्त्रमं पूर्णलोचना सहसामवत् । विदेहापहृतं बालमस्मरन् प्रसङ्गतः ॥१९५॥
 अतीतानामिशोकाभ्यामभितः पीडितेन सा । चकार वारिनेत्राभ्यां कुरसीव कृतस्वना ॥१९६॥
 परिदेवनमंत्रं च चक्रे विह्वलमानसा । कुर्वती परिवर्गस्य द्रवणं^१ चेतसामलम् ॥१९७॥
 कीदृश्यामं सया नाथ दैवस्यापकृतं भवेत् । पुत्रेण यन्न संतुष्टं हतुं कन्यां समुद्यतम् ॥१९८॥
 स्नेहालम्बनमेकैव बालिकेयं सुचेष्टिता । मम ते बान्धवानां च प्रेमभावो जनस्य च ॥१९९॥
 दुःखस्य यावदेकस्य^२ नान्तं गच्छामि पापिनी । द्वितीयं तावदेतन्मे^३ कृतसन्निधिं वर्तते ॥२००॥
 शोकवर्तनमग्नां तां करुणं रुदतीमिति । निग्रम्यास्तु^४ प्रियोऽवोचदतः शोकसमाकुलः ॥२०१॥
 अलं कान्ते रुदित्वा ते ननु कर्माजितं पुरा । नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥२०२॥
 अथवा मयि विश्वस्ते हतो दुष्टेन बालकः । अप्रमत्तस्य बालां नु हतुं शक्तोऽस्ति को भम ॥२०३॥
 आसप्रधारणन्यायमपरित्यजता मया । पृष्टासि दग्निने वस्तु जानाम्येतत् सुखावहम् ॥२०४॥
 सारैर्विधैर्विधैः कान्तेन कृतसान्त्वना^५ । विदेहा विरलीकृत्य शोकं कृच्छ्रादवस्थिता ॥२०५॥
 ततो धनुर्गृह्णन्ते विशाला रचितावनिः । स्वयंवराधमाहूताः पार्थिवाः सकलाः क्षितौ ॥२०६॥
 प्रेषितः कोशलं दूतः^६ पद्माद्याः समुपागताः । मातापित्रादिसंयुक्ता जनकेनाभिपूजिताः ॥२०७॥

कार्यके लिए बीस दिनकी अवधि निश्चित की गयी है । इसके बाद यह कन्या जबरदस्ती ले जायी जावेगी । फिर इस बेचारीको हम कहाँ देख सकेंगे ? ॥१९४॥

जनकके ऐसा कहते ही विदेहाके नेत्र सहसा आँसुओंसे भर गये और इस प्रसंगसे उसे अपने अपहृत बालकका स्मरण हो आया ॥१९५॥ वह अतीत और आगामी शोकके द्वारा दोनों ओरसे पीड़ित हो रही थी । इसलिए कुररीकी तरह शब्द करती हुई नेत्रोंसे जल बरसाने लगी ॥१९६॥ विह्वल चित्तकी धारक विदेहा परिजनोंके चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैंने दैवका कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिससे वह पुत्रके द्वारा सन्तुष्ट नहीं हुआ अब कन्याको हरनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१९७-१९८॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली यही एक बालिका मेरे और आपके स्नेहका आलम्बन है तथा भाई-बान्धव एवं परिवारके लोगोंका प्रेमभाजन है ॥१९९॥ मैं पापिनी जबतक एक दुःखका अन्त नहीं प्राप्त कर पाती हूँ तबतक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है ॥२००॥ राजा जनक स्वयं शोकसे आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आवर्तमें फँसकर करुण रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने आँसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है । निश्चयसे पूर्व जन्ममें अर्जित कर्म ही समस्त लोकको नचा रहा है । यही सबसे बड़ा नर्तकाचार्य है ॥२०१-२०२॥ अथवा मेरे निश्चित असावधान रहनेपर किसी दुष्टके द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मैं सावधान हूँ । देखूँ मेरी कन्याको हरनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२०३॥ हे प्रिये ! 'आसजनोंके साथ कार्यका विचार करना चाहिए' इस न्यायको न छोड़ते हुए ही मैंने तुमसे पूछा था । मैं तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुखको धारण करनेवाली ही होगी ॥२०४॥ पतिके इस प्रकार सारपूर्ण वचनोंसे जिसे सान्त्वना दी गयी थी ऐसी विदेहा बड़े कष्टसे शोकको हलका कर चुप हो रही ॥२०५॥

तदनन्तर जहाँ धनुष रखा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनायी गयी और उसमें स्वयंवरके लिए समस्त राजा बुलाये गये ॥२०६॥ अयोध्याको भी दूत भेजा गया जिससे राम आदि चारों भाई माता-पिता आदिके साथ आये और राजा जनकने उन सबका सन्मान किया ॥२०७॥

१. द्रविणं म. । २. -देतस्य म. । ३. तावदेतन्मे म. । ४. नियम्यास्तु म. । ५. सान्त्वया ज. । ६. रामाद्याः । ७. मातृपित्रा-ज., क., ख., ब. ।

ततो हर्षतले कान्ते स्थिता परमसुन्दरी । कन्यासप्तशतान्तस्था सीता शूरभटावृता ॥२०८॥
 प्रान्तेषु सर्वसामन्ता वेश्मनोऽस्यावतस्थिरे । कुर्वाणा विविधां लीलां महाविभववर्तिनः ॥२०९॥
 ततः स्थित्वा पुरस्तस्य कञ्चुकी सुवहुश्रुतः । जगद् तारशब्देन हेमवेत्रलताकरः ॥२१०॥
 राजपुत्रि परीक्षस्व पद्मोऽसौ पद्मलोचनः । अयोध्याधिपतेराद्यः पुत्रो दशरथश्रुतः ॥२११॥
 लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चायमनुजोऽस्य महाद्युतिः । सस्तोऽयं महाबाहुः शत्रुघ्नोऽयं सुचेष्टितः ॥२१२॥
 सुतैर्दशरथोऽमीभिर्गुणसागरमानसैः । वसुधां शास्ति निर्दग्धमयाङ्कुरसमुद्भवाम् ॥२१३॥
 हरिवाहननामायं धीमानेव घनप्रभः । अयं चित्ररथः कान्तो दुर्मुखोऽयं प्रभाववान् ॥२१४॥
 श्रीसंजयो जयो भानुः सुप्रभो मन्दरो बुधः । विशालः श्रीधरो वीरो बन्धुर्भद्रबलः शिखी ॥२१५॥
 एतेऽन्ये च महासत्त्वा महाशोभासमन्विताः । विशुद्धवंशसंभूताश्चन्द्रनिर्मलकान्तयः ॥२१६॥
 कुमारः परमोत्साहा गुणभूषणधारिणः । महाविभवसंपन्ना भूरिविज्ञानकोविदाः ॥२१७॥
 गजोऽयमस्य शैलामस्तुरङ्गोऽस्यायमुन्नतः । रथोऽस्यायं महाभोगो मयोऽस्यायं कृताद्भुतः ॥२१८॥
 सांकाश्यपुरनाथोऽयमयं रन्ध्रपुराधिपः । गवीधुमद्वीशोऽयमयं नन्दनिकाधिपः ॥२१९॥
 विभुः सूरपुरस्यायमेष कुण्डपुराधिपः । अयं मगधराजेन्द्रः काम्पिल्यविभुरेष च ॥२२०॥
 अयमिक्ष्वाकुसंभूतो नृपोऽयं हरिवंशजः । अयं कुरुकुलानन्दो भोजोऽयं वसुधापतिः ॥२२१॥
 इत्यादिवर्णनायुक्ता श्रूयन्तेऽमी महागुणाः । इदं त्वदर्थमेतेषां समारब्धं परीक्षणम् ॥२२२॥

तदनन्तर परम सुन्दरी सीता सात सौ अन्य कन्याओंके साथ महलकी सुन्दर छतपर बैठी । शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे ॥२०८॥ उस महलके चारों ओर नाना प्रकारकी लीलाकी करते हुए समस्त सामन्त बड़े ठाट-बाटसे अवस्थित थे ॥२०९॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रोंको जाननेवाला तथा हाथमें सुवर्णकी छड़ी धारण करनेवाला कंचुकी सीताके सामने खड़ा होकर उच्च स्वरसे बोला कि हे राजपुत्रि ! देखो यह कमल-लोचन, अयोध्याके अधिपति राजा दशरथका आद्य पुत्र पद्म (राम) है ॥२१०-२११॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कान्तिको धारण करनेवाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है । यह बड़ी-बड़ी भुजाओंको धारण करनेवाला भरत है और यह सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाला शत्रुघ्न है ॥२१२॥ जिनके हृदय गुणोंके सागर हैं ऐसे इन पुत्रोंके द्वारा राजा दशरथ पृथिवीका पालन करते हैं । इनकी पृथिवीमें भयके समस्त अंकुरोंकी उत्पत्ति भस्म कर दी गयी है ॥२१३॥ यह अत्यधिक कान्तिको धारण करनेवाला बुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुन्दर चित्ररथ है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है ॥२१४॥ यह श्रीसंजय है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मन्दर है, यह बुध है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बन्धु है, यह भद्रबल है और यह शिखी अर्थात् मयूरकुमार है ॥२१५॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं । ये सभी महापराक्रमी, महा शोभासे युक्त, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिके धारक, परमोत्साही, गुणरूपी आभूषणोंके धारक, महा विभवसे सम्पन्न तथा अत्यधिक विज्ञानमें निपुण हैं ॥२१६-२१७॥ यह पर्वतके समान आभावाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा घोड़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला इसका सुभट—योद्धा है ॥२१८॥ यह सांकाश्यपुरका स्वामी है, यह रन्ध्रपुरका अधिपति है, यह गवीधुमद देशका अधीश है, यह नन्दनिकाका नाथ है ॥२१९॥ यह सूरपुरका विभु है । यह कुण्डपुरका अधिप है, यह मगध देशका राजा है, और यह काम्पिल्यपुरका स्वामी है ॥२२०॥ यह राजा इक्ष्वाकु-वंशमें उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंशमें उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुलका आनन्ददायक है और यह राजा भोज है ॥२२१॥ ये सभी

१. महाभागो म. । २. रन्ध्रपुराधिपः म. । ३. गवीकमद ज. । गवाशुमद म. ।

वज्रावर्तमिदं चापमारोपयति यो नरः । कुमारि वरणीयोऽसौ भवत्या पुरुषोत्तमः ॥२२३॥
 क्रमेण मानिनस्ते च कुर्वाणाः स्वविकथनम् । वज्रावर्तधनुस्तेन दौकित्याश्चारुविभ्रमाः ॥२२४॥
 आसीदत्सु कुमारेषु धनुर्मुञ्चति पावकम् । विद्युत्सटासमाकारं निश्वसद्दीपणोरगम् ॥२२५॥
 चक्षुस्तत्र द्रुतं केचिद्भुज्वालासमाहृतम् । त्रस्ताः पिधाय पाणिभ्यां पराचीनैस्त्वमाश्रिताः ॥२२६॥
 तस्थुर्दूरं एवान्ये दृष्ट्वा स्फुरितपद्मान् । कम्पमानसमस्ताङ्गा निर्मलितविलोचनाः ॥२२७॥
 केचिज्ज्वराकुलाः पेतुः क्षितावन्ये गिरोऽश्रिताः । द्रुतं पलायिताः केचिदेके मूर्छामुपागताः ॥२२८॥
 केचिपद्मगवातेन क्षिप्ता मर्मरपत्रवत् । अपरे स्तम्भमायाताः स्थिताः शान्तद्वयोऽपरे ॥२२९॥
 केचिद्भुज्यदि स्थानं गलिष्यामो निजं ततः । जं वदानानि दास्यामश्चरौ देहि देवते ॥२३०॥
 ऊचुरन्येऽन्यनारीभिः सेवां मानसवातिनः । ध्रियमाणाः करिष्यामो रुषिष्यापि किमेतया ॥२३१॥
 अन्ये जगुरिष्यं नूनं केनापि क्रूरचेतसा । प्रयुक्ता परमा माया वधार्थं पृथिवीक्षिताम् ॥२३२॥
 अन्ये जगुः किमस्माकं कामेनास्ति प्रयोजनम् । ब्रह्मचर्येण नेष्यामः समयं साधवो यथा ॥२३३॥
 ततः पतः समुत्तस्थौ परलार्मुकलालसः । दुष्टौ के च महानागमन्थरां गतिमुद्वहन् ॥२३४॥
 आसीदतिशुभे तस्मिन् रूपे भजे धनुर्निजम् । सुचारुारमं सौम्यमन्तेवासी १० गुराविव ॥२३५॥

राजा इत्यादि वर्णनासे युक्त तथा महागुणवान् मुने जाते हैं । तुम्हारे लिए इन सबका यह परीक्षण प्रारम्भ किया गया है ॥२२२॥ हे कुमारि ! जो पुरुष इस वज्रावर्त धनुषको चढ़ा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा वरा जाना है ॥२२३॥

तदनन्तर जो मानसे सहित थे, अपनी प्रशंसा अपनेआप कर रहे थे, और सुन्दर विलाससे सहित थे ऐसे उन सब राजाओंको वह कंचुकी वज्रावर्त धनुषके पास ले गया ॥२२४॥ जिसका आकार बिजलीकी छटाके समान था तथा जिसमें भयंकर साँप फुंकार रहे थे ऐसा वह धनुष राज-कुमारोंके पास आते ही अग्नि छोड़ने लगा ॥२२५॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुषकी ज्वालाओंसे ताड़ित चक्षुको दोनों हाथोंसे ढँककर शीघ्र ही वापिस लौट गये ॥२२६॥ जिनके समस्त अंग कम्पित हो रहे थे तथा नेत्र बन्द हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए साँपोंको देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥२२७॥ कितने ही लोग ज्वरसे आकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े, कितने ही लोगोंकी बोलती बन्द हो गयी, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्छाको प्राप्त हो गये ॥२२८॥

कितने ही लोग साँपोंकी वायुसे सूखे पत्रके समान उड़ गये, कितने ही अकड़ गये और कितने ही लोगोंकी ऋद्धि शान्त हो गयी अर्थात् वे शोमारहित हो गये ॥२२९॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो जीवोंको दान देंगे । हे देवते ! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागनेकी पैरोंमें शक्ति प्रदान करो ॥२३०॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियोंसे कामकी सेवा कर लेंगे । भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है ? ॥२३१॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्तने राजाओंके वधके लिए दस मायाका प्रयोग किया है ॥२३२॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमें कामसे क्या प्रयोजन ? हम तो साधुओंके समान ब्रह्मचर्यसे समय बिता देंगे ॥२३३॥

तदनन्तर जिन्हें उस उत्कृष्ट धनुषकी लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदोन्मत्त गजराजके समान मन्थर गतिको धारण करते हुए उसके पास पहुँचे ॥२३४॥ पुण्यशाली रामके

१. चारुविभ्रमा म. । २. शीघ्रम् । ३. पराङ्मुखत्वम् । ४. केचिद्वराकुला म., केचित्ज्वराकुला ज. ।
 ५. वाण्या रहिताः । ६. देवि ज. । ७. ऊचुरन्येन नारीभिः म. । ८. कामस्य । ९. महागजमन्थरां ।
 १०. छात्रः ।

ततो विस्रब्धमादाय धनुरुद्वेष्ट्य चांशुकम् । समारोपयदभ्युच्चैर्ध्वनितं विपुलप्रभम् ॥२३६॥
 महाजलधरध्वानशङ्किभिः शिखिभिः कृतम् । सुककेकारवैर्नृत्यं बद्धविस्तीर्णमण्डलैः ॥२३७॥
 अलातचक्रसंकाशः संजातो दिवसाधिपः । सुवर्णरजसाच्छन्ना हवासन् व्योमबाहवः^१ ॥२३८॥
 साधु साध्विति देवानां बभूव नभसि स्वनः । ननृतुर्व्यन्तराः केचिन्मुञ्चन्तः पुष्पसंहतीः ॥२३९॥
 ततोऽटनिजटङ्कारवधिरौकृतविष्टम् । आचकर्ष धनुः पद्मः संप्राप्तं चक्रताविभ ॥२४०॥
 विकलीभूतनिर्देशेषहृषीकः सकलो जनः । तदावर्तमिव प्राप्नो भ्राम्यति त्रस्तमानसः ॥२४१॥
 प्रजातधूर्णिताम्भोजपलाशाधिककान्तिना । चक्षुषा स्मरचापेन सीता रामं निरैक्षत ॥२४२॥
 रंसाञ्चार्षितसर्वांगा दधती परमस्रजम् । प्रीता रामं दुदौके सा व्रीडाविनमितानना ॥२४३॥
 पार्श्वस्थया तथा रेजे स तथा सुन्दरो^२ यथा । यथायमिति दृष्टान्तं यो गदेत् स गतत्रयः ॥२४४॥
 अवतारितमौर्वीकं स कृत्वा सायकासनम् । तस्थौ विनयसंपन्नः स्वासने सीतया सह ॥२४५॥
 सकम्पहृदया सीता रामाननदिदृक्षया । मावं कम्पि संप्राप्ता नवसंगमसाध्वसा ॥२४६॥
 क्षुब्धाकृपारनिस्वानं सागरावर्तकामुक्तम् । तावच्च लक्ष्मणोऽधिर्ज्यं कृत्वास्फालयदुन्नतम् ॥२४७॥
 शरे निहितदृष्टिं तं समालोक्य नभश्चराः । वदन्तो देव मा भेति मुमुक्षुः कुसुमोत्करान् ॥२४८॥
 आकृष्य कामुक्तं क्रूरं मौर्वीसंरावमूर्जितः^३ । अवतार्य च पद्मस्य पार्श्वं सुविनयस्थितः ॥२४९॥

समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूपको उसी तरह प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरुके समीप आते ही विद्यार्थी अत्यन्त सुन्दर सौभाग्यरूपको प्राप्त हो जाता है ॥२३५॥ तदनन्तर रामने वस्त्र ऊपर चढ़ाकर निःशंक हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर विपुल गर्जना की ॥२३६॥ मयूर उस गर्जनाको मेघोंकी महागर्जना समझ हर्षसे केकाध्वनि छोड़ने लगे और अपनी पिच्छोंका मण्डल फैलाकर नृत्य करने लगे ॥२३७॥ सूर्य अलातचक्रके समान हो गया और दिशाएँ सुवर्णकी परागसे ही मानो व्याप्त हो गयीं ॥२३८॥ आकाशमें 'साधु' 'साधु'—'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवोंका शब्द होने लगा और फूलोंके समूहकी वर्षा करते हुए कितने ही व्यन्तर नृत्य करने लगे ॥२३९॥

तदनन्तर अटनीकी टंकारसे जिसने समस्त विश्वको बहिरा कर दिया था तथा जो चक्राकारताको मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुषको रामने खींचा ॥२४०॥ जिनकी समस्त इन्द्रियाँ विकल हो गयी थीं तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सब लोग भँवरमें पड़े हुएके समान घूमने लगे ॥२४१॥ वायुसे हिलते हुए कमलदलसे भी अधिक जिसकी कान्ति थी, तथा जो कामदेवके धनुषके समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्रसे सीताने रामको देखा ॥२४२॥ जिसका समस्त शरीर रोमांचोंसे सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट मा प धारण कर रही थी, तथा लज्जासे जिसका मुख नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो रामके समीप पहुँची ॥२४३॥ पासमें खड़ी सीतासे सुन्दर राम इस तरह सुशोभित हो रहे थे कि उनकी उपमामें 'वे इस तरह सुशोभित थे' ऐसा जो कहता था वह निलंज्ज जान पड़ता था अर्थात् वे अनुपम थे ॥२४४॥

तदनन्तर धनुषकी डोरी उतार कर वे विनयवान् राम सीताके साथ अपने आसनपर बैठ गये ॥२४५॥ जो नव समागमके कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदयमें कम्पन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता रामका मुख देखनेकी इच्छासे किसी अद्भुत भावको प्राप्त हो रही थी ॥२४६॥ इतनेमें ही क्षुभित समुद्रके समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त नामक धनुषको लक्ष्मणने प्रत्यंचासहित कर जोरसे उसकी टंकार छोड़ी ॥२४७॥ तदनन्तर बाणपर दृष्टि लगाये हुए लक्ष्मणको देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए विद्याधरोंने फूलोंके समूह छोड़े अर्थात् पुष्प वर्षा की ॥२४८॥ तदनन्तर जिसकी डोरीसे विशाल शब्द हो रहा था ऐसे धनुषकी

१. दिशाः । २. सुन्दरा म. । ३. बलवान् ।

विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्याभृच्चन्द्रवर्धनः । अष्टादश ददौ कन्या धियैवाप्रौढिका इति ॥२५०॥
 विद्यार्थैः समागत्य परमं भयपूरितैः । वृत्तान्ते कथिते तस्मिंश्चन्द्रश्चिन्तापरः स्थितः ॥२५१॥
 वृत्तान्तमिममालोक्य भरतः पुरुविस्मयः । अशोचदेवभास्मानं मनसा संप्रबुद्धवान् ॥२५२॥
 कुलमेकं पितापत्येक एतयोर्मम चेदृशम् । प्राप्तमद्भुतमेताभ्यां न मया मन्दकर्मणा ॥२५३॥
 अथवा किं मनो व्यर्थं परलक्ष्म्याभितप्यसे । पुरा चारुणि कर्माणि न कृतानि ध्रुवं त्वया ॥२५४॥
 पद्मगर्भदलच्छाया साक्षालक्ष्मीरिवोज्ज्वला । ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंसो भवति मामिनी ॥२५५॥
 कलाकलापनिष्णाता विज्ञाना केकया ततः । विज्ञाय तनयाकृतं कर्णं प्रियमभाषत ॥२५६॥
 भरतस्य मया नाथ शोकवल्लभितं मनः । तथा कुरु यथा नाथं निर्वेदं परमृच्छति ॥२५७॥
 अस्त्यत्र कनको नाम जनकस्यानुजो नृपः । सुप्रभायां ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥२५८॥
 स्वयंवराभिधं भूयः समुद्घोष्य नियोजयताम् । तथार्थं यावदायाति नान्यं तं भावनान्तरम् ॥२५९॥
 ततः परममित्युक्त्वा वार्ता दशरथेन सा । कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुचेतसः ॥२६०॥
 यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्यवासरे । समाहूता नृपाः क्षिप्रं गता ये निलयं निजम् ॥२६१॥
 ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमध्यगम् । नक्षत्रगणमध्यस्थशर्वरीवरविभ्रमम् ॥२६२॥
 उपात्तसुमनोदामा ^१कानकी कनकप्रभा । सुप्रभा भरतं वद्रे सुमद्भा भरतं यथा ॥२६३॥

खींचकर और फिर उतारकर बलवान् लक्ष्मण रामके समीप ही बड़ी विनयसे आ बैठा ॥२४९॥
 इस प्रकार शूरवीरता दिखानेवाले लक्ष्मणके लिए चन्द्रवर्धन विद्याधरने अत्यन्त बुद्धिमती अठारह
 कन्याएँ दीं ॥२५०॥ भयसे अतिशय भरे हुए विद्याधरोंने वापस आकर जब यह समाचार कहा तब
 चन्द्रगति विद्याधर चिन्तामें निमग्न हो गया ॥२५१॥

अथानन्तर यह वृत्तान्त देखकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था, जिसे मनमें प्रबोध
 उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषयमें इस प्रकार शोक करने लगा ॥२५२॥ कि देखो
 हम दोनोंका एक कुल है, एक पिता हैं । पर इन दोनों अर्थात् राम-लक्ष्मणने ऐसा आश्चर्य प्राप्त
 किया और पुण्यकी मन्दतासे मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥२५३॥ अथवा दूसरेकी लक्ष्मीसे
 मनको व्यर्थ ही क्यों सन्तप्त किया जाये ? निश्चित ही तूने पूर्वभ्रममें अच्छे कार्य नहीं किये ॥२५४॥
 कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीके समान उज्ज्वल स्त्री अत्य-
 धिक पुण्यके धारक पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है ॥२५५॥

तदनन्तर कलाओंके समूहमें निष्णात एवं विशिष्ट ज्ञानको धारण करनेवाली केकयाने
 पुत्रकी चेष्टा जानकर कानमें हृदयवल्लभ राजा दशरथसे कहा कि हे नाथ ! मुझे भरतका मन
 शोकयुक्त दिखाई देता है । इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्यको प्राप्त न हो जाये ॥२५६-
 २५७॥ यहाँ जनकका छोटा भाई कनक है । उसकी सुप्रभा रानीसे उत्पन्न हुई लोक-सुन्दरी नामा
 कन्या है ॥२५८॥ सो स्वयंवर विधिकी पुनः घोषणा कर उसे भरतके लिए उसी तरह स्वीकृत
 कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावनाको प्राप्त नहीं हो सके ॥२५९॥ तदनन्तर 'बहुत
 ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथने यह बात विचारवान् राजा कनकके कान तक पहुँचायी
 ॥२६०॥ राजा कनकने भी 'जो आज्ञा' कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे उन्हें
 शीघ्र ही बुलाया ॥२६१॥

तदनन्तर जो यथायोग्य स्थानोंपर बैठे हुए राजाओंके मध्यमें स्थित था और नक्षत्रोंके
 समूहके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ऐसे भरतको पुष्पमाला धारण
 करनेवाली एवं सुवर्णके समान कान्तिसे संयुक्त, राजा कनककी पुत्री लोकसुन्दरीने उस तरह

अत्यन्तविषमीभावं पश्य श्रेणिक कर्मणाम् । यतोऽसौ संप्रबुद्धः सन् कन्यया मोहितः पुनः ॥२६४॥
विलक्षाः पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्थानं यथाग्रथम् । अस्थुश्च विकथाशक्त्वा बन्धुवर्गसमागमे ॥२६५॥
यादृक् येन कृतं कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् । ननुसान् कोद्रवान् कश्चिदश्नुते शालिसंपदम् ॥२६६॥
केतुतोरणमालाभिगण्डितायां महाद्युतौ । आगुल्फकुसुमापूर्णविशालापणवर्त्मनि ॥२६७॥
सशंखतूर्यनिस्वानपुरिताखिलवेश्मनि । मिथिलायां तथोच्चक्रे विवाहः परमोत्सवः ॥२६८॥

द्रविणेन तथा लोकः सकलो परिपूरितः ।

महाप्रलयमायातं देहीति ध्वनितं यथा ॥२६९॥

ये विवाहोत्सवं द्रष्टुं स्थिता भूषाः सुचेतसः ।

परमं प्राप्य सम्मानं यद्युस्ते स्वं स्वमालयम् ॥२७०॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः परमरूपपयोनिधिवर्तिनः ।

पितृजनार्पितसंमदसंपदः परमरत्नविभूषितविग्रहाः ॥२७१॥

विविधयानसमाकुलसैनिका जलनिधिस्वनतूर्यनिनादिताः ।

त्रिविधुरभ्युदयेन सुकोशला दशरथस्य सुता वधुके तथा ॥२७२॥

समवलोकितुमुत्तमविग्रहे पुरि तद्वा वधुके सकलो जनः ।

रहितसामिकृतस्वमनःक्रियः श्रयति राजपथं भृशमाकुलः ॥२७३॥

वरा जिस तरह कि उत्तम कान्तिको धारण करनेवाली सुभद्राने पहले भरत चक्रवर्तीको वरा था ॥२६२-२६३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मोंकी अत्यन्त विषमता देखो कि प्रबोध-को प्राप्त हुआ भरत कन्याके द्वारा पुनः मोहित हो गया ॥२६४॥ सब राजा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानोंपर चले गये और अपने बन्धुवर्गके बीचमें विकथा करते हुए रहने लगे ॥२६५॥ कितने ही कहने लगे कि जिस जीवने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है । क्योंकि जिसने कोदों बोये हैं वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥२६६॥

तदनन्तर जो पताका तोरण और मालाओंसे सजायी गयी थी, जो महाकान्तिको धारण कर रही थी, जिसके बाजारके लम्बे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलोंसे व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शंख एवं तुरहीके मधुर शब्दोंसे भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरीमें दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह किया गया ॥२६७-२६८॥ उस समय धनसे सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि अर्थात् देओ' यह शब्द महाप्रलयको प्राप्त हो गया था अर्थात् बिलकुल ही नष्ट हो गया था ॥२६९॥ उत्तम चित्तको धारण करनेवाले जो राजा विवाहोत्सव देखनेके लिए रह गये थे वे परम सम्मानको प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ॥२७०॥

अथानन्तर जिनकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही थी, जो परम सौन्दर्यरूपी सागरमें निमग्न थे, जिन्होंने माता-पिताके लिए हर्षरूप सम्पदा समर्पित की थी, जिनके शरीर उत्कृष्ट रत्नोंसे अलंकृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकारकी सवारियोंसे व्यग्र थे, और जिनके आगे समुद्रके समान विशाल शब्द करनेवाली तुरही बज रही थी ऐसे दशरथके पुत्रों तथा बहुओंने बड़े वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२७१-२७२॥ उस समय उत्तम शरीरको धारण करनेवाली बहुओंकी देखनेके लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ी व्यग्रतासे राजमार्गमें आ गये ॥२७३॥

१. अगुल्फकुसुमापूर्णाविशालापणवर्त्मनि म. । २. धनेन । ३. वध्वी एव वधुके स्वार्थे कः ।

कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः पुण्यगुणस्तवसन्नतमूर्तयः ।
 स्वनिर्लयेषु महासुखभोगिनो दशरथस्य सुताः सुधियः स्थिताः ॥२७४॥
 समदग्म्य जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
 कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ॥२७५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामलक्ष्मणरत्नमालाभिधानं नामाष्टाविंशतितमं पर्व ॥२८॥



जिन्होंने सब लोगोंका सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणोंके स्तवनसे जिनका शरीर विनम्र हो रहा था अर्थात् लज्जाके भारसे झुक रहा था ऐसे दशरथके वृद्धिमात्र पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलोंमें रहने लगे ॥२७४॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे भव्यजनो ! 'शुभ कर्मका फल अच्छा होता है और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है' ऐसा जानकर विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्यसे भी अधिक कान्तिके धारक होओ ॥२७५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें राम-लक्ष्मणको स्वयंवरमें रत्नमालाकी प्राप्ति होनेका वर्णन करनेवाला अट्ठाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२८॥



एकोनविंशतमं पर्व

आषाढशुक्लपञ्चम्याः प्रभृत्यथ नराधिपः । महिमानं जिनेन्द्राणां प्रयतः कर्तुमुद्यतः ॥१॥
 सर्वाः प्रियास्तदा तस्य तनया बान्धवस्तथा । विश्रुतं जिनविम्बानामिति कर्तव्यमुद्यताः ॥२॥
 पिनष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्चूर्णानि सादरः । कश्चिद् ग्रथ्नाति मात्यानि लब्धवर्णः सुमन्त्रिषु ॥३॥
 चास्ययद्युदकं कश्चिद्भवत्यपरः क्षितिम् । पिनष्टि परमात् गन्धान् कश्चिद्बहुविधच्छवीम् ॥४॥
 द्वारशोभां करोत्यन्यो दासोभिरतिभासुरैः । नानाधातुरसैः कश्चिद्विरुते मिसिमण्डनम् ॥५॥
 एवं जनः परं भक्तिं बहन् प्रसदपूरितः । जिनपूजासमाधानात् पुण्यं भार्जयदुत्तमम् ॥६॥
 ततः सर्ववम्बुद्वीनां कृतसंभारसन्निधिः । चकार स्नपनं राजा जिनानां तूर्यनादितम् ॥७॥
 अष्टाहोपोषितं कृत्वाभिषेकं परमं नृपः । चकार महतीं पूजां पुष्पैः सज्जकृत्रिमैः ॥८॥
 यथा नन्दीश्वरे द्वीपे शकः सुरसमन्वितः । जिनेन्द्रमहिमानन्दं कुरुते तद्वदेव सः ॥९॥
 ततः सद्वयातानां महिषीणां नराधिपः । प्रजिघास महापूतं शान्तिगन्धोदकं कृती ॥१०॥
 तिमृणां तरुणीस्त्रीभिर्नीतं शान्त्युदकं द्रुतम् । प्रतीता मस्तके चक्रुस्ततो दुरितनोदनम् ॥११॥
 वृद्धकन्धुकिनो हस्ते दत्तं जिनचरोदकम् । अग्राप्य सुभभा कोपं शोकं च परमं गता ॥१२॥
 अचिन्तयच्च नो साध्वी बुद्धिरेषा महीभृतः । यदेता मानिता नाहं शान्तिवारिसिखर्जनात् ॥१३॥

अथानन्तर आषाढ शुक्ल अष्टमीसे आष्टाह्निक महापर्व आया । सो राजा दशरथ जिनेन्द्र भगवान्की महिमा करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियाँ, पुत्र तथा बान्धवजन जिन-प्रतिमाओंके विषयमें निम्नांकित कार्य करनेके लिए तत्पर हुए ॥२॥ कोई मण्डल बनानेके लिए बड़े आदरसे पाँच रंगके चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकारकी रचना करनेमें निपुण कोई मालाएँ गूँथने लगा ॥३॥ कोई जलको सुगन्धित करने लगा, कोई पृथिवीको सींचने लगा, कोई नाना प्रकारके उत्कृष्ट सुगन्धित पदार्थ पीसने लगा ॥४॥ कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रोंसे जिनमन्दिरके द्वारकी शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओंके रससे दीवालोंको अलंकृत करने लगा ॥५॥ इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिको धारण करनेवाले एवं आनन्दसे परिपूर्ण भक्तजनोंने जिनेन्द्र-देवकी पूजा कर उत्तम पुण्यका संचय किया ॥६॥

तदनन्तर सब प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियोंको एकत्र कर राजा दशरथने जिसमें तुरही-का विशाल शब्द हो रहा था ऐसा जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक किया ॥७॥ आठ दिनका उपवास कर उत्कृष्ट अभिषेक किया तथा सहज अर्थात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् स्वर्ण, रजत आदिसे बनाये हुए पुष्पोंसे महापूजा की ॥८॥ जिस प्रकार इन्द्र देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमें जिनेन्द्रपूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथने भी सब परिवारके साथ जिनेन्द्रपूजा की ॥९॥ तदनन्तर जब रानियाँ घर पहुँच गयीं तब बुद्धिमान् राजा दशरथने सबके लिए महापवित्र, शान्तिकारक गन्धोदक पहुँचाया ॥१०॥ सो तीन रानियोंके लिए तो वह गन्धोदक तरुण स्त्रियाँ ले गयीं इसलिए जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पापको नष्ट करनेवाला वह गन्धोदक शीघ्र ही बड़ी श्रद्धासे मस्तक-पर धारण कर लिया ॥११॥ परन्तु सुप्रभाके लिए तो वह गन्धोदक हाथ भेजा था इसलिए उसे शीघ्र नहीं मिला अतः वह अत्यधिक क्रोध और शोकको प्राप्त हुई ॥१२॥ वह विचार करने लगी कि राजाकी यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे गन्धोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥१३॥

१. विचक्षणः, चतुरः इत्यर्थः । २. वस्त्रैः । ३. पुष्पमर्जय म. । ४. प्रेषयामास । ५. शान्त म. ।

को वात्र नृपतेर्दोषः प्रायः पुण्यं पुरा मया । नार्जितं येन संप्राप्ता^१ निकारमिदमीदृशम् ॥१४॥
 पुण्यवत्य इमाः श्लाघ्या महासौभाग्यसंयुताः । पूतं यासां जिनेन्द्राम्बु प्रीत्या प्रहितमुत्तमम् ॥१५॥
 अपमानेन दग्धस्य हृदयस्यास्य मेऽधुना । शरणं मरणं मन्ये तापः शाम्यति नान्यथा ॥१६॥
^२विशाखसंज्ञमाहूय भाण्डागरिकमेककम् । जगाद् भद्र नाख्येयं त्वयेदं वस्तु कस्यचित् ॥१७॥
 विषेणात्यन्तपरमं मम जातं प्रयोजनम् । तदानय द्रुतं भक्तिर्मयि चेत्तत्र विद्यते ॥१८॥
 गत्वा स यावदन्विष्यंश्चिरयत्यतिशङ्कितः । तावत्तत्पगृहं गत्वा सातिष्ठत् स्वस्तगात्रिका ॥१९॥
 नृपतिश्चागतो वीक्ष्य प्रियास्तिस्वस्तया विना । समन्विष्यः गमत्तस्याः समीपं स्वरितक्रमः ॥२०॥
 अपश्यच्च मनश्चौरीमंशुकच्छन्नविग्रहाम् । अनादरेण सत्तल्पं शक्यष्टिमिव स्थिताम् ॥२१॥
 गृहाण तदिदं^३ देवि क्ष्वेडमित्यवदच्च सः । प्रेक्ष्यो दक्षरथश्चैतं देशं प्राप्याश्विनोदं ध्वनिम् ॥२२॥
 हा देवि किमिदं मुग्धे प्रारब्धमिति च ब्रुवन् । स निराकरोद्^४ भुजिष्यं तं तत्तल्पे चोपविष्टवान् ॥२३॥
 राजानमागतं ज्ञात्वा सहसा सन्नपोत्थिता । क्षितानुपविचिक्षन्तो कान्तेनाङ्गे निवेशिता ॥२४॥
 अवाचि च प्रिये कस्मात् कोपं प्राप्ता त्वमीदृशम् । सर्वतो दयिते येन जीवितेऽप्यसि निस्पृहा ॥२५॥
 सर्वतो मरणं दुःखमन्यस्मादुदुखतः परम् । प्रतिकारस्तु यद्यस्य तद्दुःखं वद कीदृशम् ॥२६॥
 त्वं मे हृदयसर्वस्वं दयिते वद कारणम् । क्षणेनापनय^५ यस्य करिष्यामि वरानने ॥२७॥
 श्रुतं वेत्सि जिनेन्द्राणां सदसद्गतिकारणम् । तथापि मतमीदृक् ते धिक्कोपं ध्वान्तमुत्तमम् ॥२८॥

अथवा इसमें राजाका क्या दोष है? प्रायःकर मैंने पूर्व भवमें पुण्यका संचय नहीं किया होगा जिससे मैं ऐसे तिरस्कारको प्राप्त हुई हूँ ॥१४॥ ये तीनों पुण्यवती तथा महासौभाग्यसे सम्पन्न हैं जिनके लिए राजाने प्रेमपूर्वक पवित्र एवं उत्तम गन्धोदक भेजा है ॥१५॥ अपमानसे जले हुए मेरे इस हृदयके लिए इस समय मरण ही शरण हो सकता है ऐसा मैं मानती हूँ। अन्य प्रकारसे मेरा सन्ताप शान्त नहीं हो सकता ॥१६॥ यह विचारकर उसने विशाख नामक एक भाण्डारीसे कहा कि हे भद्र ! तुम यह बात किसीसे कहना नहीं ॥१७॥ मुझे विषकी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ी है। इसलिए यदि तेरी मुझमें भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥१८॥ विषके नामसे अत्यन्त शंकित होता हुआ भाण्डारी उसे खोजता हुआ जबतक कुछ विलम्ब करता है तबतक वह शयनगृहमें जाकर तथा शरीरको शिथिल कर पड़ रही ॥१९॥ इतनेमें ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओंको देखकर खोज करते हुए शीघ्र ही उसके समीप जा पहुँचे ॥२०॥ उन्होंने देखा कि मनको चुरानेवाली सुप्रभा वस्त्रसे शरीर ढँककर शय्यापर अनादरसे इन्द्रधनुषके समान पड़ी है ॥२१॥

इसी समय उस भाण्डारीने आकर कहा कि हे देवि ! यह विष लो। भाण्डारीके इस शब्दको वहाँ जाकर राजाने सुन लिया ॥२२॥ सुनते ही राजाने कहा कि हे देवि ! यह क्या है ? मूर्ख ! यह क्या प्रारम्भ कर रखा है ? ऐसा कहते हुए राजाने उस भाण्डारीको वहाँसे दूर हटाया और स्वयं सुप्रभाकी शय्यापर बैठ गये ॥२३॥ राजाको आया जान वह लजाती हुई सहसा उठी और पृथिवीपर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोदमें बैठा लिया ॥२४॥ राजाने कहा कि प्रिये ! तुम इस प्रकारके क्रोधको क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने जीवनसे भी निःस्पृह हो रही हो ॥२५॥ मरणका दुःख सब दुःखोंसे अधिक दुःख है। सो जिस अन्य दुःखसे दुःखी होकर तुमने मरणको उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह तो बताओ ॥२६॥ हे दयिते ! तुम मेरे हृदयकी सर्वस्व हो, अतः हे सुमुखि ! शीघ्र ही वह कारण बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥२७॥ सुगति और दुर्गतिके कारणोंका निरूपण करनेवाले जिनशास्त्रको

प्रसीद देवि कोऽद्यापि कोपस्यावसरस्तव । प्रसादध्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ॥२९॥
 तयोक्तं नाथ कः कोपस्त्वयि मे दुःखमीदृशम् । समुत्पन्नं न यद्याति शान्तिं पञ्चतया^१ विना ॥३०॥
 देवि तत्कतरद्दुःखमिष्युक्तैवमभाषत । शान्त्यम्बुदानमन्यासां मम नेति कुतो वद ॥३१॥
 वृष्टेन केन कार्येण हीनाहं विदिता त्वया । यदवञ्चितपूर्वास्मि वञ्चिता पण्डिताधुना ॥३२॥
 यायादेवं वदयेया तावदायाति कञ्चुकी । देवि जैताम्बु नाथेन तुभ्यं दत्तमिति ब्रुवन् ॥३३॥
 अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता इतरास्तामिदं जगुः । अयि सुगधे प्रसादस्य स्थाने प्राप्तासि किं रुपा ॥३४॥
 पश्यास्माकं जुगुप्साभिर्दासीमिर्जलमाहृतम् । वरिष्ठेन पवित्रेण तव कञ्चुकिनामुना ॥३५॥
 ईदृशी नाम नाथस्य संप्रीतिर्भवती प्रति । यतोऽयं जनितो भेदः किमकाण्डे^२ प्रकुप्यसि ॥३६॥
 प्रसीद दयितस्यास्य लग्नस्यैव प्रयत्नतः । प्रणयादपराधेऽपि ननु तुष्यन्ति योषितः ॥३७॥
 दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे । तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ॥३८॥
 विपादयितुमस्माकमात्मानमुचितं ननु । किंत्वत्र जिनचन्द्राणां^३ वारिणा नः प्रयोजनम् ॥३९॥
 सपत्नीभिरपि प्रीतमिति सान्त्वितया तया । चक्रे शान्त्युदकं सूध्नि रोमाञ्चाञ्चितगात्रया ॥४०॥
 ततः प्रकुपितोऽवोचद् राजा कञ्चुकिनं तकम् । व्याक्षेपः क्व नु ते जातो वदापसदं^४ कञ्चुकिन् ॥४१॥
 ततो भयाद्विशेषेण कम्पिताखिलविग्रहः । कञ्चुकी कथमप्यूचे भित्तिजानुशिरोऽञ्जलिः ॥४२॥

तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हो गयी ? इस प्रगाढ़ अन्धकारस्वरूप क्रोधको धिक्कार हो ॥२८॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ । इस समय भी क्या तुम्हारे क्रोधका कोई अवसर है क्योंकि जो महास्त्रियाँ होती हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक ही रहता है ॥२९॥

सुप्रभाने कहा कि हे नाथ ! आपपर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐसा दुःख उत्पन्न हुआ है कि जो मरणके बिना शान्त नहीं हो सकता ॥३०॥ राजाने पूछा कि हे देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तरमें सुप्रभाने कहा कि आपने अन्य रानियोंके लिए तो गन्धोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥३१॥ आपने ऐसा कौन-सा कार्य देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है । हे सुविज्ञ ! जिसे पहले कभी धोखा नहीं दिया उसे आज क्यों धोखा दिया गया ? ॥३२॥ सुप्रभा जबतक यह सब कह रही थी कि तबतक वृद्ध कंचुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजाने तुम्हें यह गन्धोदक दिया है ॥३३॥ इसी बीचमें दूसरी रानियाँ आकर उससे कहने लगीं कि अरी भोली ! तू प्रसन्नताके स्थानको प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥३४॥ देख, हम लोगोंके लिए तो निन्दनीय दासियाँ गन्धोदक लायी हैं पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कंचुकी लाया है ॥३५॥ तेरे प्रति स्वामीकी ऐसी उत्तम प्रीति है इसीसे यह भेद हुआ है फिर असमयमें क्यों कुपित हो रही है ? ॥३६॥ फिर स्वामी तेरे पीछे बड़े प्रयत्नसे लग रहे हैं । अतः इनपर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेहके कारण स्त्रियाँ अपराध होनेपर भी सन्तुष्ट हो रहती हैं ॥३७॥ हे कठोरहृदये ! जबतक पतिपर क्रोध किया जाता है तबतक हे शोभने ! सांसारिक सुखमें विघ्न हो जानना चाहिए ॥३८॥ वास्तवमें तो हम लोगोंका मरना उचित था पर हमें तो गन्धोदकसे प्रयोजन था । इसलिए सब अपमान सहन कर लिया ॥३९॥ इस प्रकार सपत्नियोंने भी जब उसे सान्त्वना दी तब उसका शरीर रोमांचसे मुशोभित हो गया और उसने गन्धोदक मस्तकपर धारण किया ॥४०॥

तदनन्तर राजाने कुपित होकर उस कंचुकीसे कहा कि हे नीच कंचुकी ! बता तुझे यह विलम्ब कहाँ हुआ ? ॥४१॥ भयसे जिसका समस्त शरीर विशेषकर कांपने लगा था ऐसा कंचुकी-

हृदये स्थापिताः कृच्छ्रादानीता वक्त्रगोचरम् । औष्ट्रे प्रणिहिता वर्णा व्यलीयन्तेऽस्य भूरिशः ॥४३॥
 सखत्कारं मुहुः कुर्वन् स्फुरयन्नधरो^३ मुहुः । हृदयं संस्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥४४॥
 पञ्चान्मस्तकभागस्थश्चन्द्रांशुसितमूर्धजः । मन्दचाताहतधेतवामरोपमकूर्चकः ॥४५॥
 मक्षिकाच्छदनच्छातस्वकिरीहितवैकसः । धवलभ्रूवलच्छन्नशोणप्रभनिरक्षणः ॥४६॥
 अमिलश्चशिराजालसंवेष्टितचलत्तनुः । अस्पर्शितपुस्तामः कृच्छ्राद्वारोऽपि धारयन् ॥४७॥
 हिमाहत इवात्थं कपोलौ कम्पयन् इत्यौ । विनक्षया मुहुर्जिह्वां स्थानानि स्खलितानि नयन् ॥४८॥
 अप्येकाक्षरनिष्पत्तिं मन्यमानो महोत्सवम् । वर्णान्तरामिसंधानान् वर्णमन्यं समुच्चरन् ॥४९॥
 संधानतज्जितान् वर्णान् परमश्रमकरिणः । कण्टकानि च कृच्छ्रेण सुमोच परिजर्जरान् ॥५०॥
 जरार्थीतस्य मे नाथ किमागो भृत्यवत्सल । संप्राप्तोऽसि यतः कोपं देव विज्ञातभूषण ॥५१॥
 पुरा करिकराकारभुजं कर्कशभुजतम् । पीनोत्तुङ्गं महोरस्कमालानसदृशोरुकम् ॥५२॥
 आसीन् मम वपुः शैलराजकूटसमाकृति । कर्मणामिति चित्राणां कारणं परमोदयम् ॥५३॥
 अभूतां चूर्णये देव शक्तौ^४ हस्तिकपाटयोः । करौ पाणिप्रहारश्च पर्वतस्यापि भेदकः ॥५४॥
 उच्चावचां क्षितिं वेगात् पुराहं परिलङ्घयन् । राजहंस इवावातं नाथ स्थानमभीप्सितम् ॥५५॥
 आसीत् दृष्टेरष्टम्भस्तादृशो मम पार्थिव । आमन्येऽपि क्षित्तेरीशं यादृशेन तृणोपमम् ॥५६॥

पृथिवीपर घुटने और शिरपर अंजलि रखकर किसी तरह बोला ॥४२॥ उसके हृदयमें जो अक्षर थे वे मुख तक बड़ी कठिनाईसे आये और जो ओठोंपर रखे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं विलीन हो गये ॥४३॥ वह बार-बार खकारता था, बार-बार ओठ चलाता था, और बड़ी कठिनाईसे उठाकर पास ले जाये गये हाथसे हृदयका स्पर्श करता था ॥४४॥ उसके मस्तकके पिछले भागमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद बाल स्थित थे तथा सफेद चरमके समान उसकी दाढ़ीके बाल मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे थे ॥४५॥ मक्खीके पंखके समान पतली त्वचासे उसकी हड्डियाँ ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफेद-सफेद भ्रुकुटियोंकी वलिसे आच्छादित थे ॥४६॥ उसका चंचल शरीर स्पष्ट दिखाई देनेवाली नसोंके समूहसे वेष्टित था, मिट्टीके अधबने खिलौनेके समान उसकी आभा थी। वह वस्त्र भी बड़ी कठिनाईसे धारण कर रहा था, हिमसे ताड़ित हुएके समान दोनों शिथिल कपोलोंको कम्पित कर रहा था, बोलनेकी इच्छासे लड़खड़ाती जिह्वाको तालु आदि स्थानोंपर बड़ी कठिनाईसे ले जा रहा था, यदि एक अक्षरका भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था। कुछ वर्ण बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वर्ण बोल जाता था, जिनके बोलनेका विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रमको करनेवाले हूटे-फूटे वर्णोंको वह जीर्ण-शीर्ण काँटेके समान बड़ी कठिनाईसे छोड़ता था अर्थात् उसका उच्चारण करता था ॥४७-५०॥

हे भृत्यवत्सल, स्वामिन् ! मुझ बुड्डेका क्या अपराध है ? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषणको धारण करनेवाले हे देव ! आप क्रोधको प्राप्त हुए हो ॥५१॥ पहले मेरे शरीरकी भुजाएँ हाथीकी सूँडके समान थीं, शरीर अत्यन्त कठोर और ऊँचा था। सीना विशाल था, जंघाएँ आलान अर्थात् हाथी बाँधनेके सम्भेके समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरुके शिखरके समान आकृतिवाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्योंका सशक्त कारण था ॥५२-५३॥ हे देव ! हमारे ये हाथ पहले सुदृढ़ किवाड़ोंके चूर्ण करनेमें समर्थ थे, हमारे पैरकी ठोकर पर्वतके भी टुकड़े कर डालती थी, ऊँची-नीची भूमिको मैं वेगसे लाँघ जाता था, हे स्वामिन् ! मैं राजहंस पक्षीके समान मनचाहे स्थानको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥५४-५५॥ हे राजन् ! मेरी दृष्टिमें इतना

१. हृदयस्थापिता म. । २. खखत्कारं ख. । ३. -नधरं म. । ४. हस्तिकपाटयोः म. ।

अङ्गनाजनदृष्टीनां मनसां स महास्थिरम् । आलानमेतदासीन्मे शरीरं चारुविभ्रमम् ॥५७॥
 लालितं परमैर्भोगैः प्रसादेन पितुस्तव । विसंवदितमेतन्मे कुमित्रमिव सांप्रतम् ॥५८॥
 अधत्त यः पुरा शक्तिं रिपुदारणकारिणीम् । करेण यष्टिमालम्ब्य तेन श्राभ्यामि साम्प्रतम् ॥५९॥
 विक्रान्तपुरुषाकृष्टशरामनसमं मम । पृष्ठास्थिस्थितमाक्रान्ते मूर्ध्नि मृत्योरिवाङ्घ्रिणा ॥६०॥
 दन्तस्थानमवा वर्णाश्रिरं कापि गता मम । ऊष्मवर्णोष्मणा तापमशक्ता इव सेवितुम् ॥६१॥
 आलम्ब्ये यदि नो यष्टिमेतां प्राणगरीयसीम् । क्षितौ पतेत्ततः पकमिदं हतशरीरकम् ॥६२॥
 बलीनां वर्तते वृद्धिरुत्साहस्य परिक्षयः । राजन् श्वसिभि देहेन यदेतेन तदद्भुतम् ॥६३॥
 अद्यश्चीनममुं कार्यं अरया जर्जररीकृतम् । नाथ धनुं न शक्नोमि बाह्ये वस्तुनि का कथा ॥६४॥
 नितान्तपटुतामाञ्जि हृषीकाणि पुरा मम । संप्रत्युद्देशमात्रेण स्थितानि जडचेतसः ॥६५॥
 पदमन्यत्र यच्छामि पतत्यन्यत्र दुर्घटम् । श्याममेवाखिलं दृष्ट्वा पश्यामि धरणीतलम् ॥६६॥
 गोत्रक्रमसमायातमिदं राजकुलं मम । यतः शक्नोमि न त्यक्तुमपि प्राप्येदृशीं दशाम् ॥६७॥
 पक्वं फलमिवैतन्मे शरीरं कापि वासरे । नेष्यत्याहारतां मृत्युर्मर्भरच्छदनोपमाम् ॥६८॥
 न तथासन्नमृत्योर्मे स्वामिन् संजायते भयम् । भवचरणसंसेवाविरहाद् भाविनो यथा ॥६९॥
 व्यक्षेपो मे कुतः कश्चिदधतस्तनुमीदृशीम् । भवदाज्ञा प्रतीक्ष्यैव यस्य जीवितकारणम् ॥७०॥

बल था कि जिससे मैं राजाको भी तृणके समान तुच्छ समझता था ॥५६॥ अत्यन्त स्थविर और सुन्दर विलाससे युक्त मेरा यह शरीर स्त्रीजनोंकी दृष्टि और मनको बांधनेके लिए आलानके समान था ॥५७॥ आपके पिताके प्रसादसे मैंने इस शरीरका उत्तमोत्तम भोगोंसे लाड़-प्यार किया था पर इस समय कुमित्रके समान यह विघट गया है ॥५८॥ मेरा जो हाथ पहले शत्रुओंको विदारण करनेकी शक्ति रखता था अब उसी हाथसे लाठी पकड़कर चलता हूँ ॥५९॥ मेरी पीठकी हड्डी शूरवीर मनुष्यके द्वारा खींचे हुए धनुषके समान झुक गयी है और मेरा शिर यमराजके पैरसे आक्रान्त हुऐके समान नम्र हो गया है ॥६०॥ दाँतोंके स्थानसे उच्चरित होनेवाले मेरे वर्ण (लृ तवर्गं ल और स) कहीं चले गये हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो ऊष्मवर्णों (श ष स ह) की ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न सन्तापको सहनेमें असमर्थ होकर ही कहीं चले गये हैं ॥६१॥ यदि मैं प्राणोंसे भी अधिक प्यारी इस लाठीका सहारा न लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वीपर गिर जावे ॥६२॥

शरीरमें बलि अर्थात् सिकुड़नोंकी वृद्धि हो रही है और उत्साहका हास हो रहा है । हे राजन् ! इस शरीरसे मैं साँस ले रहा हूँ यही आश्चर्यकी बात है ॥६३॥ हे नाथ ! आज-कलमें नष्ट हो जानेवाले इस जराजर्जरित शरीरको ही धारण करनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ फिर दूसरी बाह्य वस्तुकी तो कथा ही क्या है ? ॥६४॥ पहले मेरी इन्द्रियाँ अत्यन्त सामर्थ्यको प्राप्त थीं पर इस समय नाममात्रको ही स्थित हैं । मेरा मन भी जड़रूप हो गया है ॥६५॥ पैर अन्य स्थानपर रखता हूँ पर संभल नहीं सकनेके कारण अन्य स्थानपर जा पड़ता है । मैं समस्त पृथ्वीतलको अपनी दृष्टिसे काला ही काला देखता हूँ ॥६६॥ चूँकि यह राजकुल मेरी वंश-परम्परासे चला आ रहा है इसलिए ऐसी दशाको प्राप्त होकर भी इसे छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६७॥ मेरा यह शरीर पके हुए फलके समान है सो यमराज सूखे पत्रके समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥६८॥ हे स्वामिन् ! मुझे निकटवर्ती मृत्युसे वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्य-में होनेवाली आपके चरणोंकी सेवाके अभावसे हो रहा है ॥६९॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके जीवित रहनेका कारण है ऐसे इस शरीरको धारण करते हुए मुझे विलम्ब अथवा कार्य-

१. अद्य श्वो भवम् अद्यश्चीनं भङ्गुरमित्यर्थः ।

स त्वं नाथ जराधीनं मम ज्ञात्वा शरीरकम् । कोपमहंसि नो कर्तुं धीर धत्स्व प्रसन्नताम् ॥७१॥
 निशम्य तद्वचो राजा गण्डं कुण्डलमण्डितम् । वामे करतले न्यस्य चिन्तामेवमुपागमत् ॥७२॥
 जलबुद्बुदनिस्सारं कष्टमेतच्छरीरकम् । संध्याप्रकाशसंकाशं यौवनं बहुविभ्रमम् ॥७३॥
 सौदामिनीत्वरस्यास्य कृते देहस्य मानवाः । आरम्भन्ते न किं कृत्यं नितान्तं दुःखलाघनम् ॥७४॥
 अतिमत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गतुल्याः प्रतारकाः । भोगिभोगसमामोगास्तापोपचयकारिणः ॥७५॥
 विषयेषु यदायत्तं दुष्प्रापेषु विनाशिषु । दुःखमेतद्विमूढानां सुखत्वेनावभासते ॥७६॥
 आपातरमणीयानि सुखानि विषयादयः । किंपाकफलतुल्यानि चित्रं प्रार्थयते जनः ॥७७॥
 पुण्यवन्तो महोत्साहाः प्रबोधं परमं गताः । विषवद् विषयान् दृष्ट्वा ये तपस्यन्ति सज्जनाः ॥७८॥
 कदा नु विषयास्त्यक्त्वा निर्गतः स्नेहचारकात् । आचरिष्यामि जनेन्द्रं तपो निर्वृत्तिकारणम् ॥७९॥
 सुखेन पालिता क्षोणी भुक्ता भोगा यथोचिताः । विक्रान्ता जनिता पुत्राः किमपि प्रतीक्ष्यते^३ ॥८०॥
 अन्वयव्रतमस्माकमिदं यत्सूनवे श्रियम् । दत्त्वा संवेगिनो धीराः प्रविशन्ति तपोवनम् ॥८१॥
 चिन्तयित्वाप्यसावेवं राजा कर्मानुभावतः । भोगेषु शिथिलासक्तिगृह एव रतिं ययौ ॥८२॥
 यत्प्राप्तव्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा । तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥८३॥
 कियत्यपि ततोऽतीते काले मगधसुन्दर । पर्यटन् विधिना क्षोणीं सङ्गेन महता वृतः ॥८४॥

न्तरमें आसंग कैसे हो सकता है ? ॥७०॥ इसलिए हे नाथ ! मेरे शरीरको जराके आधीन जानकर आप क्रोध करनेके योग्य नहीं हैं । हे धीर ! प्रसन्नताको धारण करो ॥७१॥

कंचुकीके वचन सुनकर राजा कुण्डलसे सुशोभित कपोलको वाम करतलपर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥७२॥ कि अहो, बड़े कष्टकी बात है कि यह अधम शरीर पानीके बबूलेके समान निःसार है और अनेक विभ्रमों—विलासीसे भरा यह यौवन सन्ध्याके प्रकाशके समान भंगुर है ॥७३॥ बिजलीके समान नष्ट हो जानेवाले इस शरीरके पीछे मनुष्य न जाने अत्यन्त दुःखके कारणभूत क्या-क्या कार्य प्रारम्भ नहीं करते हैं ? ॥७४॥ ये भोग अत्यन्त मत्त स्त्रीके कटाक्षोंके समान ठगनेवाले हैं, साँपके फनके समान भयंकर हैं और सन्तापकी वृद्धि करनेवाले हैं ॥७५॥ कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयोंमें जो दुःख प्राप्त होता है वह मूर्ख प्राणियोंके लिए सुख जान पड़ता है ॥७६॥ ये जो विषयादिक हैं वे प्रारम्भमें ही मनोहर सुखरूप जान पड़ते हैं फिर भी आश्चर्य है कि लोग किम्पाक फलके समान इन सुखोंकी चाह रखते हैं ॥७७॥ जो सज्जन इन विषयोंको विषके समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोधको प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥७८॥ मैं कब इन विषयोंको छोड़कर तथा स्नेह-रूपी कारागृहसे छूटकर मोक्षके कारणभूत जनेन्द्र-प्रोक्त तपका आचरण करूँगा ॥७९॥ सुखसे पृथिवीका पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बातकी प्रतीक्षा की जा रही है ॥८०॥

यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीर-वीर वंशज विरक्त हो पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवनमें प्रवेश कर जाते हैं ॥८१॥ राजा दशरथने इस प्रकार विचार भी किया और भोगोंमें आसक्ति कुछ शिथिल भी हुई तो भी कर्मोंके प्रभावसे वे घरमें ही प्रीतिको प्राप्त होते रहे अर्थात् गृहत्याग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥८२॥ सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उतना ही कार्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥८३॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगध देशके आभूषण ! कितना ही काल व्यतीत

सर्वभूतहितो नाम सर्वभूतहितो मुनिः । नगरीं तां समायासीन्मनःपर्ययवेदकः ॥८५॥
 'सरस्वाश्च तटे कालं श्रान्तं सङ्गमतिष्ठिपत् । पितेव पालयन् न्यस्तकायवाहमानसक्रियः ॥८६॥
 प्राग्भागेषु स्थिताः केचिद् गुहास्वन्ये तपस्विनः । केचिद् विविक्तगोहेषु केचिज्जैनेन्द्रवेश्मसु ॥८७॥
 नवानां कोटरेष्वन्ये यथाशक्तिसमुद्यताः । तपांसि चक्रुराचार्यादधिगम्यानुमोदनम् ॥८८॥
 आचार्यस्तु विविक्तैषो पुर्या उत्तरपश्चिमाम् । तपःसमुचितक्षेत्रं विशालमतिमुन्दरम् ॥८९॥
 उद्यानं सुमहावृक्षं सयूथ इव वारणः । प्रचिवेशात्मदशमो महेन्द्रोदयकीर्तनम् ॥९०॥
 तस्मिन् शिलातले रम्ये विपुले निर्मले समे । पशूनामङ्गनानां च पण्डुकानां च दुर्गमे ॥९१॥
 द्वेषिलोकविमुक्तैः सौ सूक्ष्मप्राणिविवर्जिते । दूरावष्टमिशालस्य स्थितो नागतरोरधः ॥९२॥
 मातङ्गमण्डलच्छाया गम्भीरः प्रियदर्शनः । वर्षाः क्षपयितुं तस्थौ कर्माणि च महामनाः ॥९३॥
 संप्राप्तश्च महाकालः प्रवासिजनभैरवः । प्रस्फुरद्विद्युदुग्धोऽष्ट क्रूरधाराधरध्वनिः ॥९४॥
 तर्जयन्निव लोकस्य कृततापं दिवाकरम् । भयात् पलायितं कापि स्थूलधारान्धकारतः ॥९५॥
 जातमुर्वीतलं सम्यक् कञ्चुकेन कृतावृत्ति । वर्द्धन्ते सुमहानद्यो वीचिपातितरोधसः ॥९६॥
 जायते प्राप्तकम्पानां चित्तोद्भ्रान्तिः प्रवासिनाम् । असिधाराव्रतं जैनी जनोऽसक्तं निषेवते ॥९७॥

होनेपर बड़े भारी संघसे आवृत, सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले, तथा मनःपर्यय ज्ञानके धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, विधिपूर्वक पृथिवीमें विहार करते हुए अयोध्या नगरीमें आये ॥८४-८५॥
 जिनके मन-वचन-कायकी चेष्टा समीचीन थी और जो पिताकी तरह संघका पालन करते थे ऐसे उन मुनिराजने अपने थके हुए संघको सरयू नदीके किनारे ठहराया ॥८६॥ संघके कितने ही मुनि, आचार्य महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर वनके सघन प्रदेशोंमें, कितने ही गुफाओंमें, कितने ही शून्य गृहोंमें, कितने ही जिनमन्दिरोंमें और कितने ही वृक्षोंकी कोटरोंमें ठहरकर यथाशक्ति तपश्चरण करने लगे ॥८७-८८॥ तथा आचार्य एकान्त स्थानके अभिलाषी थे इसलिए उन्होंने नगरीकी उत्तर पश्चिम दिशा अर्थात् वायव्य कोणमें जो महेन्द्रोदय नामका उद्यान था उसमें यूथसहित गजराजके समान प्रवेश किया । उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें तपके योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यन्त सुन्दर और अनेक बड़े-बड़े वृक्षोंसे सहित था । आचार्यके साथ अधिक भौड़ नहीं थी । अपने आपको मिलाकर कुल दस ही मुनिराज थे । वह उद्यान पशुओं, स्त्रियों और नपुंसकोंके लिए दुर्गम था, द्वेषी मनुष्योंसे रहित था तथा सूक्ष्म जन्तुओंसे शून्य था । ऐसे उस उद्यानमें जिसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल रही थीं ऐसे एक नाग वृक्षके नीचे सुन्दर, विशाल, निर्मल एवं समान शिलातलपर विराजमान हुए ॥८९-९२॥ आचार्य महाराज सूर्यबिम्बके समान देदीप्यमान, गम्भीर, प्रिय-दर्शन और उदारहृदय थे तथा कर्मोंका क्षय करनेके लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे ॥९३॥

तदनन्तर जो विदेशमें जानेवाले मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाला था, चमकतो हुई बिजलीसे उग्र था तथा जिसमें आठों दिशाओंके मेघोंकी कठोर गर्जना हो रही थी ऐसा वर्षाकाल आ पहुँचा । वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगोंको सन्ताप पहुँचानेवाले सूर्यको डाँट हो रहा हो और बड़ी मोटी धाराओंके अन्धकारसे भयभीत हो कहीं भाग गया हो ॥९४-९५॥ पृथिवीतल ऐसा दिखाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कञ्चुक ही धारण कर रखी हो । तरंगोंसे तटोंको गिरानेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बढ़ने लगीं ॥९६॥ और जिन्हें कँपकँपी छूट रही थी ऐसे प्रवासी मनुष्योंके चित्तमें भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी । ऐसे वर्षाकालमें जैनी लोग निरन्तर

१. सरयूनद्याः । २. प्राग्भागेषु म. । ३. तपःसमुचितं क्षेत्रं म., क. । ४. कीर्तितं ज. ।
 ५. नपुंसकानाम् । ६. मण्डलोच्छाया गम्भीरप्रिय ख. । ७. दुर्गोष्ठ म. ।

भूरिशोऽवग्रहांश्चक्रमुनयः क्षितिगोचराः । खदानलब्धयश्चैते पान्तु त्वा मगधाधिप ॥९८॥
 अथ भेरीनिनादेन शङ्खनिस्वनशोभिना । दोषान्ते कोशलानाथो विबुद्धो^१ भास्करो यथा ॥९९॥
 ताम्रचूडाः खरं रेणु^२ दम्पतीनां वियोजकाः । सारसाश्चक्रवाकाश्च सरसीषु नदीषु च ॥१००॥
 भेरीपणववीणाघर्गातैश्च सुमनोहरैः । व्यावृत्तश्चैत्यगेहेषु जायते विपुलो जनः ॥१०१॥
 विष्णूर्णामानयनः सकलारुणलोचनः । विमुञ्चते जनो निद्रां प्रियामिव हियान्वितः ॥१०२॥
 प्रदीपाः पाण्डुरा जाता शशाङ्कश्च गतप्रमः । विकासं धान्ति पद्मानि कुमुदानि निमीलनम् ॥१०३॥
 ध्वस्ता ग्रहादयः सर्वे दिवाकरमरीचिभिः । जिनप्रवचनज्ञस्य वचनैर्वादिनो यथा ॥१०४॥
 एवं प्रभातसमये संपन्नेऽस्थान्तनिर्मले । कृत्वा प्रत्यङ्गकर्माणि नमस्कृत्यार्चितं जिनम् ॥१०५॥
 आरुह्य वैसितां भद्रां कुथापटविराजिताम् । शतैरवनिनाथानां सेव्यमानोऽमरत्विषाम् ॥१०६॥
 देशे देशे नमस्कृत्वं मुनींश्चैत्यालयोस्तथा । महेन्द्रोदयमुर्वोशो ययौ छत्रोपशोमितः ॥१०७॥
 विष्टपानन्दजननीविभूतिस्तस्य भूभृतः । राजन् संवत्सरेणापि शक्यं कथयितुं न सा ॥१०८॥
 मुनिरायातमात्रः सन् गुणरत्नपथोनिधिः । श्रोत्रयोगोचरं तस्य संप्राप्तस्तत्र मण्डले ॥१०९॥
 करणोरवतीर्यासौ राजामितपरिच्छदः । महाप्रमोदसंपूर्णो विवेशोद्यानमेदिनीम् ॥११०॥
 विन्यस्य सक्तिपंक्तः पादयोः कुसुमाञ्जलिम् । सर्वभूतहिताचार्यं शिरसा स नमोऽकरोत्^३ ॥१११॥

खड्गधारारके समान कठोर व्रत धारण करते हैं ॥९७॥ जो पृथिवीपर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाशमें चलनेकी ऋद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकारके नियम धारण करते थे । गीतमस्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! ये सब मुनिराज तुम्हारी रक्षा करें ॥९८॥

अथानन्तर प्रातःकाल होनेपर शंखके शब्दसे सुशोभित भेरीके नादसे राजा दशरथ सूर्यके समान जागृत हुए ॥९९॥ स्त्री-पुरुषोंका वियोग करनेवाले मुर्गे तथा सरोवर और नदियोंमें विद्यमान सारस और चक्रवाक पक्षी जोर-जोरसे शब्द करने लगे ॥१००॥ भेरी, पणव तथा वीणा आदिके मनोहर गीतोंसे आकर्षित हो बहुत-से मनुष्य जिनमन्दिरोंमें उपस्थित होने लगे ॥१०१॥ जिस प्रकार लज्जासे युक्त मनुष्य प्रियाको छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र धूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल-लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्राको छोड़ रहा था ॥१०२॥ दीपक पाण्डुवर्ण हो गये थे और चन्द्रमा फीका पड़ गया । कमल विकासको प्राप्त हुए और कुमुद निमीलित हो गये ॥१०३॥ जिस प्रकार जिनशास्त्रके ज्ञाता मनुष्यसे वादी परास्त हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे समस्त ग्रह परास्त हो गये अर्थात् छिप गये ॥१०४॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल प्रभात-काल होनेपर राजा दशरथने शरीर-सम्बन्धी कार्य कर पूजनीय जिनेन्द्रभगवात्को नमस्कार किया । तदनन्तर मनोहर झूलसे सुशोभित हस्तिनीपर सवार हो वह मुनिराजकी वन्दनाके लिए चला । देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥१०५-१०६॥ इस प्रकार छत्रसे सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनियों और जिनचैत्यालयोंको नमस्कार करता हुआ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें पहुँचा ॥१०७॥ गीतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राजा दशरथकी लोकको आनन्दित करनेवाली जो विभूति थी वह एक वर्षमें भी नहीं कही जा सकती है ॥१०८॥ गुणरूपी रत्नोंके सागर मुनिराज जब देशमें पधारे थे तभी उसके कानोंमें यह समाचार आ पहुँचा था ॥१०९॥ तदनन्तर हस्तिनीसे उतरकर अपरिमित वैभवके धारक एवं महान् हर्षसे परिपूर्ण राजाने उद्यानकी भूमिमें प्रवेष्ट किया ॥११०॥ तत्पश्चात् भक्तिसे युक्त हो चरणोंमें पुष्पाञ्जलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्योंको शिरसे नमस्कार किया ॥१११॥

१. निशान्ते प्रभाते इत्यर्थः । २. विबुद्धो म. । ३. रराण, रेणुतुः, रेणुः-शब्दं चक्रुः । ४. करिणीम् । ५. नमस्करोत् (?) म. ।

ततः सिद्धान्तसंबद्धामशृणोद् गुरुतः कथाम् । अनुयोगान्वतीतानां भाविनां च महात्मनाम् ॥११२॥
लोकं द्रव्यानुभावांश्च युगानि च यथाविधि । स्थितिं कुलकराणां च वंशांश्च बहुधागतान् ॥११३॥
पदार्थान् सर्वजीवादीन् पुराणानि च सादरम् । श्रुत्वा प्रणम्य संवेशं नगरं पार्थिवोऽविशत् ॥११४॥

मन्दाक्रान्ताच्छन्दः

दत्त्वा स्थानं क्षणमवनिमृन्मन्त्रिणां स क्षितीशां
कृत्वा जैनीं गुणगणकथां विस्मयेनातिपूर्णः ।
अन्तर्गोहं प्रविशति तदा मञ्जनादिक्रियाश्च
प्रीतश्चक्रे विपुलविभवः स प्रजापत्यमिल्यः ॥११५॥
संपूर्णानां परममहसा चन्द्रकान्ताननानां
चक्षुश्चेतोहरणनिपुणैर्विभ्रमैर्मण्डितानाम् ।
श्रीतुल्यानां परमविनयं विभ्रतीनां प्रियाणां
पद्मालीनां रविरिव रतिं तत्र कुर्वन् स तस्थौ ॥११६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पञ्चचरिते दशरथवैराग्यसर्वभूतहितागमाभिधानं नाम एकोनविंशत्तमं पर्व ॥२९॥



सिद्धान्तसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषोंके चरित सुने, लोक, द्रव्य, युग, कुलकरोंकी स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणोंको बड़े आदरसे सुना । तदनन्तर संघके स्वामी सर्वभूतहित आचार्यको नमस्कार कर राजाने नगरमें वापस प्रवेश किया ॥११२-११४॥

तदनन्तर मन्त्रियों और राजाओंको क्षण भरके लिए स्थान देकर अर्थात् उनके साथ वार्तालाप कर जिनराज सम्बन्धी गुणोंकी कथा कर आश्चर्यसे भरे हुए राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया । वहाँ विपुल वैभव तथा प्रजापतिकी शोभा धारण करनेवाले राजाने बड़ी प्रसन्नतासे स्नानादिक्रियाएँ कीं ॥११५॥ तदनन्तर जो उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त थीं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंको धारण कर रही थीं, नेत्र और हृदयको हरनेमें निपुण विभ्रमोंसे सुशोभित थीं, लक्ष्मीके तुल्य थीं और परम विनयको धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियोंको, कमलिनियोंको सूर्यकी भाँति आनन्द उपजाता हुआ वह उसी अन्तःपुरमें ठहर गया ॥११६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पञ्चचरितमें राजा दशरथके वैराग्य और सर्वभूत आचार्यके आगमनका वर्णन करनेवाला उन्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२९॥



त्रिंशत्तमं पर्व

ततः कालो गत कापि घनौघडमरो^१ नृप । प्रोद्ययौ पुष्करं धौतमण्डलाग्रसमप्रमम् ॥१॥
 पद्मोत्पलादिजलजपुष्पमुन्मादकृद् बभौ । साधूनां हृदयं यद्वद् बभूव विमलं जलम् ॥२॥
 शरत्कालः परिप्राप्तः प्रकटं कुमुदैर्हसन् । नष्टमिन्द्रधनुर्जाता धरणी पङ्कवर्जिता ॥३॥
 विद्युत्संभावनायोग्यास्तूलराशिसमखिषः । क्षणमात्रमदृश्यन्त घनलेशा कचिक्कचिन् ॥४॥
 सन्ध्यालोकललामोघी ज्योत्स्नातिविमलाम्बरा । निशानववधूभाति चन्द्रचूडामणिस्तदा ॥५॥
 चक्रवाककृतच्छाया मत्तसारसनादिताः । बाप्यः पद्मवनभ्राम्यद्राजहंसैर्विराजिरे ॥६॥
 भामण्डलकुमारस्य सीतां चिन्तयतस्तु तत् । ऋतुनार्चितमप्येवं जातमग्निममं जगत् ॥७॥
 अरत्याकर्षिताङ्गोऽसौ परित्यज्यान्यदा त्रपा । पितुः पुरः परं मित्रं वसन्तध्वजमवबोत् ॥८॥
 दीर्घसूत्रो भवानेवं परकार्येषु शीतलः^२ । गणरात्रमिदं दुःखं तस्यां मे गतचेतसः^३ ॥९॥
 उद्वेगविपुलावर्ते प्रत्याशाजलधौ मम । निमज्जनः सखे कस्माद्दीयते नावलम्बनम् ॥१०॥
 इत्यार्तध्यानयुक्तस्य निशम्य गदितं बुधाः । सर्वे^४ गतप्रभीभूता विषादं परमं ययुः ॥११॥
 तान् वीक्ष्य शोकसंतप्तान् वारणानिव शुष्यतः । आवर्जितशिराघ्नीडो^५ क्षणं भामण्डलोऽगमत् ॥१२॥

अथानन्तर मेघोंके आडम्बरसे युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश मांजि हुए कृपाणके समान निर्मल प्रभाका धारक हो गया ॥१॥ कमल उत्पल आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प कामीजनोंको उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओंके हृदयके समान निर्मल हो गया ॥२॥ कुमुदोंके सफेद पुष्पोंसे प्रकट रूपसे हँसता हुआ शरदकाल आ पहुँचा, इन्द्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचड़से रहित हो गयी ॥३॥ जिनमें बिजली चमकनेकी सम्भावना नहीं थी और जो रुईके समूहके समान सफेद कान्तिके धारक थे ऐसे मेघोंके खण्ड कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥४॥ सन्ध्याका लाल-लाल प्रकाश जिसका सुन्दर ओंठ था, चाँदनी ही जिसका अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र था और चन्द्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नववधू उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, और मदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएँ कमलवनमें घूमते हुए राजहंसीसे सुशोभित हो रही थीं ॥६॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरदऋतुसे सुशोभित था तो भी सीताकी चिन्ता करनेवाले भामण्डलके लिए अग्निके समान जान पड़ता था ॥७॥

अथानन्तर अरतिसे जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामण्डल एक दिन लज्जा छोड़ पिताके आगे अपने परममित्र वसन्तध्वजसे इस प्रकार बोला कि ॥८॥ आप बड़े दीर्घसूत्रो हैं—देरसे काम करनेवाले हैं और दूसरेके कार्य करनेमें अत्यन्त मन्द हैं । उस सीतामें जिसका चित्त लग रहा है ऐसे मुझे दुःख उठाते हुए अनेक रात्रियाँ व्यतीत हो गयीं । फिर भी तुझे चिन्ता नहीं है ॥९॥ जिसमें उद्वेगरूपी बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्रमें मैं डूब रहा हूँ । सो हे मित्र ! मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है ॥१०॥ इस प्रकार आर्तध्यानसे युक्त भामण्डलके वचन सुनकर सभी विद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विषादको प्राप्त हुए ॥११॥ तदनन्तर उन सबको शोकसे सन्तप्त तथा हाथियोंके समान सूखते हुए देख भामण्डल शिर नोचा कर क्षणभरके लिए

१. नृपः म. । २. उज्ज्वलकृपाणतुल्यप्रभम् । ३. मेघलेशाः, घनलेश्याः म., ख., ब. । ४. विलम्बेन कार्य-
 कारी । ५. मन्दः । ६. बहूनां रात्रौणां समूहः । ७. गतवेगतः म. । ८. निसर्गतः म. । ९. गतप्रभाभूताः म. ।

वृहत्केतुस्ततोऽबोचत् किमद्याप्युपगृह्यते । निवेद्यतां कुमारस्य निराशो येन जायते ॥१३॥
ततस्ते कथायाञ्चक्रुस्तस्मै सर्वं यथाविधि । चन्द्रयानं पुरस्कृत्य कथमप्युज्जिताक्षराः ॥१४॥
जनको बाल कन्यायां हर्षास्माभिराहृतः । याचितश्चातियत्नेन पद्मस्योचे प्रकल्पिताम् ॥१५॥
उक्तप्रत्युक्तमालाभिरस्मामिस्तेन निर्जितैः । धनूरन्नावधिश्रक्ते कृतसंमन्त्रणैः किल ॥१६॥
धनूरन्लता तस्य रामस्याकिलष्टकर्मणः । शार्दूलस्य क्षुधार्तस्य मांसपेशी यथार्पिता ॥१७॥
कन्या स्वयंवरा साध्वी कथा हृदयहारिणी । नवयौवनलावण्यपरिपूरितविग्रहा ॥१८॥
अवालम्बुमुखा बाला मदनेन समन्विता । वैदेही रामदेवस्य श्रीसमा वनिताभवत् ॥१९॥
न चापे सांप्रतं जाते गदासोरादिसंयुते । अमराधिष्ठिते नापि कन्या त्रैलोक्यसुन्दरी ॥२०॥
अपि द्रष्टुं न ये शक्ये सुपर्णोत्तरादानवैः । रामलक्ष्मणवीराभ्यामाकृष्टे ते शरासने ॥२१॥
प्रसह्य साधुना हर्तुमशक्या त्रिदशैरपि । किमुतात्यन्तमस्माभिर्निस्सरैर्धनुषी विना ॥२२॥
पूर्वमेव हृता कस्माप्तेति चेन्मन्यते शिशो । यज्जामाता दशास्यस्य जनकस्य सुहृन्मधुः ॥२३॥
अत्रगम्य कुमारैवं विनीतः स्वस्थतां मज । शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥२४॥

लज्जाको प्राप्त हुआ ॥१२॥ तब वृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अबतक इस बातको क्यों छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषयमें निराश हो जावे ॥१३॥

तदनन्तर उन सबने चन्द्रयानको आगे कर लड़खड़ाते अक्षरोंमें सब समाचार भामण्डलसे कह दिया ॥१४॥ उन्होंने कहा कि हे कुमार ! हम लोग कन्याके पिताको यहाँ ही ले आये थे और उससे यत्नपूर्वक कन्याकी याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मैं उस कन्याको रामके लिए देना संकल्पित कर चुका हूँ ॥१५॥

उत्तर-प्रत्युत्तरसे जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मन्त्रणा कर धनुषरत्नकी अवधि निश्चित की अर्थात् राम और भामण्डलमेंसे जो भी धनुष-रत्नको चढ़ा देगा वही कन्याका स्वामी होगा ॥१६॥ हम लोगोंने धनुषकी शर्त इसलिए रखी थी कि राम उसे चढ़ा नहीं सकेगा अतः अगत्या तुम्हें ही कन्याकी प्राप्ति होगी परन्तु वह धनुषरत्नरूपी लता पुण्याधिकारी रामके लिए ऐसी हुई जैसे भूखसे पीड़ित सिंहके लिए मांसकी डली अर्पित की गयी हो अर्थात् रामने धनुष चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयंवरमें रामकी स्त्री हो गयी । वह कन्या अपने वचनोंसे हृदयको हरनेवाली थी, नवयौवनसे उत्पन्न लावण्यसे उसका शरीर भर रहा था, तरुण चन्द्रके समान उसका मुख था, लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली थी और कामसे सहित थी ॥१७-१९॥

वे सागरावर्त और वज्रावर्त नामा धनुष आजकलके धनुष नहीं थे किन्तु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रोंसे सहित थे, देवोंसे अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जातिके दैत्योंके कारण उनकी ओर देखना भी सम्भव नहीं था । फिर भी राम-लक्ष्मणने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकसुन्दरी कन्या प्राप्त कर ली ॥२०-२१॥ इस समय वह कन्या देवोंके द्वारा भी जबरदस्ती नहीं हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषोंके निकल जानेसे अत्यन्त सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगोंकी तो बात ही क्या है ॥२२॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि रामके स्वयंवरके पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावणका जमाई राजा मधु जनकका मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ? ॥२३॥ इसलिए यह सब जानकर हे कुमार ! स्वस्थताको प्राप्त होओ, तुम तो अत्यन्त विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥२४॥

१. चण्डयानं म. । २. दिदैव म. । ३. समर्पिता म. ।

ततः स्वयंवरोदन्तं श्रुत्वा भामण्डलो हिया । विषादेन च संपूर्णः कुच्छं चिन्तान्तरं गतः ॥२५॥
 निरर्थकमिदं जन्म विद्याधरतया समम् । यतः प्राकृतवत् कश्चिन्न संप्राप्तोऽस्मि तां प्रियाम् ॥२६॥
 ईर्ष्याक्रोधपरीतश्च सभामाह हसन्नसौ । का वः खेचरता^१ भीतिं मज्जतां भूमिगोचरात् ॥२७॥
 आनयायेष्वेव सत्कन्यां स्वयं निजित्य भूचरान् । न्यासापहारिणां कुर्वे यक्षाणां च विनिग्रहम् ॥२८॥
 इत्युक्त्वासौ सुसज्जं विमानं विद्यदुदगतः । पुरकाननसंपूर्णं पृथिवीतलमैक्षत ॥२९॥
 ततो दृष्टिगता तस्य विदग्धविषये क्रमात् । महीध्रसंकटे रम्ये नगरे चास्मसेविते ॥३०॥
 दृष्टं मया कदाप्येतदिति चिन्तामुपागतः । जातिस्मरत्वमासाद्य समवाप्य स भूर्जनम् ॥३१॥
 पितुरन्ते ततो नीतः सचिवैराकुलात्मकैः । चन्दनद्रवसिक्ताङ्गः प्रमदाभिः प्रबोधितः ॥३२॥
 अन्योन्यं दत्तनेत्रं च हसित्वा ताभिरौच्यत । कुमार युक्तमेतत्ते कातरत्वमनुत्तमम् ॥३३॥
 अदृष्ट्वावनिचर्यार्थं निशेषरहितत्रयः^३ । गुरुणामग्रतो मोहं यत्प्राप्तोऽसि विचक्षणं^४ ॥३४॥
 भज खेचरनाथानां कन्या देव्यधिकप्रभाः । जनजलवनकं व्यर्थं वृत्तं सुन्दर मा कृथाः ॥३५॥
 ततोऽसावब्रवीदेवं ग्रीडाशोकनताननः । धिग्मया घनमोहेन विरुद्धं चिन्तितं महत् ॥३६॥
 नीचानामपि नात्यन्तमीदृशं कर्म युज्यते । अहो कर्मभिरत्यर्थमशुभैरभिचेष्टितः ॥३७॥
 एकस्मिन्नुपितः कुशौ कापि सार्धमहं तथा । दुष्कर्मविगमाज्ज्ञाता कथंचित् साधुना मया ॥३८॥
 ततस्तं शोकमारेण पीडितं चन्द्रविक्रमः । अङ्गसारोप्य तुम्बित्वा पप्रच्छ पुरुविस्मयः ॥३९॥

तदनन्तर स्वयंवरका वृत्तान्त सुनकर भामण्डल लज्जा और विषादसे युक्त होता हुआ दुःख-
 के साथ यह विचार करने लगा कि ॥२५॥ अहो ! मेरा यह विद्याधर जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं
 साधारण मनुष्यकी तरह उस प्रियाको प्राप्त नहीं कर सका ॥२६॥ ईर्ष्या और क्रोधसे युक्त होकर
 उसने हँसते हुए सभासे कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरीसे भी भय रखते हो तब आपका
 विद्याधर होना किस कामका ? ॥२७॥ मैं भूमिगोचरियोंको जोतकर स्वयं ही उस उत्तम कन्याको
 ले आता हूँ तथा धनुषरूपी धरोहरका अपहरण करनेवाले यक्षोंका निग्रह करता हूँ ॥२८॥ ऐसा
 कहकर वह तैयार हो विमानमें बैठकर आकाशमें जा उड़ा । वहाँसे उसने पुर और वनसे भरा
 पृथ्वीतल देखा ॥२९॥ तदनन्तर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतोंसे युक्त विदग्ध नामक देशमें अपने
 पूर्वभ्रमके मनोहर नगरपर पड़ी ॥३०॥ यह नगर मैंने कभी देखा है—इस प्रकार चिन्ता करता
 हुआ वह जातिस्मरणको प्राप्त होकर भूर्चिन्त हो गया ॥३१॥ तदनन्तर घबड़ाये हुए मन्त्री उसे
 पिताके समीप ले आये । वहाँ स्त्रियोंने चन्दनके द्रवसे उसका शरीर सींचकर उसे सचेत
 किया ॥३२॥ स्त्रियोंने परस्पर नेत्रका इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी
 यह कातरता अच्छी नहीं ॥३३॥ जो तुम बुद्धिमान् होकर भी भूचर्याका समस्त प्रयोजन बिना देखे
 ही गुरुजनोंके आगे इस तरह मोहको प्राप्त हुए हो ॥३४॥ देवियोंसे भी अधिक कान्तिको धारण
 करनेवाली विद्याधर राजाओंकी अनेक कन्याएँ हैं सो उन्हें तुम प्राप्त होओ । हे सुन्दर ! इस तरह
 व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥३५॥

तदनन्तर लज्जा और शोकसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामण्डलने इस प्रकार
 कहा कि मुझे धिक्कार हो, जो मैंने तीव्र मोहमें पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तवन किया ॥३६॥
 ऐसा कार्य तो अत्यन्त नीच कुलवालोंको भी करना उचित नहीं है । अहो, मेरे अत्यन्त अशुभ
 कर्मोंने कैसी चेष्टा दिखायी ? ॥३७॥ मैंने उसके साथ एक ही उदरमें शयन किया है । आज पाप-
 कर्मका उदय मन्द हुआ इसलिए किसी तरह उसे जान सका हूँ ॥३८॥ तदनन्तर शोकके भारसे
 पीड़ित भामण्डलको गोदमें रखकर बहुत भारी आश्चर्यसे भरा चन्द्रगति चुम्बन कर पृच्छने लगा

१. वाचः खेचरता (?) म. । २. तत्परो भूत्वा । ३. रहितां नयः म. । ४. विचक्षणः म. ।

वद पुत्रक किं न्वेतदीदृशं भाषितं त्वया । सोऽवोचत्तात वक्तव्यं चरितं शृणु मामकम् ॥४०॥
 पूर्वजन्मनि वास्येऽस्मिन् विदग्धे नगरे नृपः । अभूवं परराष्ट्राणां ध्वंसको मण्डितध्वनिः ॥४१॥
 सर्वस्यामवन्नो ख्यातः सततं विग्रहप्रियः । पालको निजलोकस्य महाविभवसंयुतः ॥४२॥
 हता तत्र मया जाया विप्रस्याशुभकर्मणा । माययाऽपाकृतश्चासौ गतः काप्यतिदुःखितः ॥४३॥
 ततोऽनरण्यसेनान्या गमितस्तनुशेषताम् । पर्यटन् धरणीं कापि प्राप्नोऽस्मि मुनिसंश्रयम् ॥४४॥
 यत्र त्रिलोकपूज्यानां सर्वज्ञानां महात्मनाम् । मतं भगवतां प्राप्तमर्हतां पावनं मया ॥४५॥
 तत्र बान्धवभूतस्य गुरोः शासनतो मया । अनामिषं व्रतं शुद्धं गृहीतं शुद्धशक्तिना ॥४६॥
 शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् । तथापि यन्महापापो नावतोर्णोऽस्मि दुर्गतिम् ॥४७॥
 अन्यशरणत्वेन व्रतेन नियमेन च । सममन्येन जीवेन विदेहाकुक्षिमागमत् ॥४८॥
 सुखेन च प्रसूता सा कन्यया सहितं तुकम् । केनाप्यपहृतश्चायं गृध्रेण पिशितं यथा ॥४९॥
 नक्षत्रगोचरातीतं तेन नीतोऽस्मि मुष्करम् । असौ नूनं स यस्यासौ हता जाया मया पुरा ॥५०॥
 मारयामीति तेनोक्त्वा भूयः कृत्वानुकम्पनम् । शनैरस्मि विमुक्तः खात् कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् ॥५१॥
 पतन् वीक्ष्य तदा राजाबुद्धाने परमे तथा । गृहीत्वा तात दत्तोऽस्मि जायायै करुणावता ॥५२॥
 सोऽहं भवत्पसादेन तदङ्गे वृद्धिमागतः । परं विद्याधरत्वं च कृतदुर्लभितक्रियः ॥५३॥
 इत्युत्वा विररामासौ विस्मयं च जनो गतः । हाकारबहुलं शब्दं कुर्वन् कम्पितमस्तकः ॥५४॥

॥३९॥ कि हे पुत्र ! कह, तूने ऐसा कथन किसलिए किया ? इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे तात ! मेरा कहने योग्य चरित मुनि ॥४०॥

पूर्वजन्ममें मैं इसी देशके विदग्ध नगरमें दूसरे देशोंको लूटनेवाला, समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध, युद्धका प्रेमी, अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाला तथा महाविभवसे संयुक्त कुण्डलमण्डित नामका राजा था ॥४१-४२॥ वहाँ मैंने अशुभ कर्मके उदयसे एक ब्राह्मणकी स्त्री हरी और ब्राह्मणको मायापूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यन्त दुःखी होकर कहीं चला गया ॥४३॥ तदनन्तर राजा अनरण्यके सेनापतिने मेरी सब सम्पत्ति हरकर मेरे पास केवल मेरा शरीर ही रहने दिया । अन्तमें अन्यन्त दरिद्र हो पृथिवीपर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियोंके आश्रममें पहुँचा ॥४४॥ वहाँ मैंने तीनों लोकसे पूज्य, सब पदार्थोंको जाननेवाले तथा महान् आत्माके धारक अरहन्त भगवान्का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥४५॥ और समस्त जीवोंके बान्धवभूत श्री गुरुके उपदेशसे निरतिचार मांसत्याग व्रत धारण किया । मैं अत्यन्त क्षुद्र शक्तिका धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका ॥४६॥ अहो ! जिन शासनका बड़ा माहात्म्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ श्री जिनधर्मकी शरण होनेसे तथा व्रत और नियमके प्रभावसे मेरा जीव किसी अन्य जीवके साथ राजा जनककी विदेहा रानीके उदरमें पहुँचा ॥४८॥ रानी विदेहाने सुखपूर्वक कन्याके साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गीध मांसके टुकड़ेको हर लेता है उसी प्रकार किसीने उस पुत्रको हर लिया ॥४९॥ वह व्यक्ति उस बालकको नक्षत्रोंसे भी अधिक ऊँचे आकाशमें ले गया । यथार्थमें व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥५०॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे मारता हूँ परन्तु फिर दया कर उसने कुण्डलोंसे अलङ्कृत कर धीरे-से आकाशसे छोड़ दिया ॥५१॥ उस समय तुम परम उपवनमें विद्यमान थे सो रात्रिमें पड़ता देख तुमने मुझे ऊपरसे ही पकड़ लिया और दयालु होकर अपनी रानीके लिए सौंपा ॥५२॥ आपके प्रसादसे रानीकी गोदमें वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओंका धारक हुआ और बहुत ही लाड़-प्यारसे मेरा पालन हुआ ॥५३॥ यह कहकर भामण्डल चुप हो रहा तथा उपस्थित समस्त लोग

१. गमितस्तनुशेषतां म. । २. पुत्रं 'तुक्' लोकं चात्मजः प्रजा' इत्यमरः । ३. गगनम् ।

इमं चन्द्रगतिः श्रुत्वा वृत्तान्तमतिचित्रितम् । लोकधर्मतरुं^१ वन्ध्यं विदित्वा भवबन्धनम् ॥५५॥
 भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा सुनिश्चित्यात्मकमर्णाम् । परं प्रबोधमायातः संवेगं च सुदुर्लभम् ॥५६॥
 आत्मीयं राज्यमाधाय तत्र पुत्रे यथाविधि । सर्वभूतहितस्यागात् पादमूलं त्वरान्वितः ॥५७॥
 भगवान् स हि सर्वत्र विष्टो प्रथितात्मकः । गुणरश्मिसमूहेन भव्यान्न्दविधायिना ॥५८॥
 महेन्द्रोदययौतं तमभ्यर्च्य प्रणिपत्य च । स्तुत्वा च भावतोऽवादीदेवं मूर्धाहिताञ्जलिः ॥५९॥
 भगवत्स्वप्नसादेन संप्राप्य जिनदीक्षणम् । तपोविधातुमिच्छामि निर्विण्णो गृहवासतः ॥६०॥
 एवमस्त्विति तेनोक्ते तारं भेर्यः^२ समाहिताः । भामण्डलः परं चक्रे महिमानं च भावतः ॥६१॥
 कलं प्रवरनारीभिर्गीतं वंशस्वनानुगम् । जगर्जं तूर्यसङ्घातः करतालसमन्वितः ॥६२॥
 श्रीमान् जनकराजस्य तनयो जयतीति च । इत्युच्चैर्वन्दिनां नादः संजज्ञे प्रतिनादवान् ॥६३॥
 तेनोद्यानसमुत्थेन नादेन श्रोत्रहारिणा । नक्तं कृतो विनीतायां कृत्स्नद्रोऽखिलो जनः ॥६४॥
 ऋषिसंघं धमुद्ध्वानं श्रुत्वा जनाः प्रमोदिनः । जाता जना विषैष्णाश्च मिथ्यादर्शनपूरिताः ॥६५॥
 रोमाञ्छाञ्चितसर्वाङ्गा विस्फुरद्दामलोचना । सीता सिक्कामृतेनेव बुबुधे ध्वनिनामुना ॥६६॥
 अचिन्तयच्च को न्वेष जनको यस्य नन्दनः । जयतीति मुहुर्नादः श्रूयतेऽत्यन्तमुन्नतः ॥६७॥
 कनकस्याग्रजो राजा ममापि जनकः पिता । जातमात्रश्च मे भ्राता हतो यः किं न्वसौ भवेत् ॥६८॥

हाहाकार करते तथा मस्तक हिलाते हुए आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५४॥ राजा चन्द्रगति यह अत्यन्त आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यन्त दुर्लभ संवेगको प्राप्त हुआ । उसने लोक-धर्म अर्थात् स्त्री-सेवनरूपी वृक्षको सुखरूपी फलसे रहित तथा संसारका बन्धन जाना, इन्द्रियोंके विषयोंमें जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्यका ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्रके लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और बड़ी शीघ्रतासे सर्वभूतहित नामक मुनिराजके चरणमूलमें प्रस्थान किया ॥५५-५७॥

भगवान् सर्वभूतहित भव्य जीवोंको आनन्द देनेवाले गुणरूपी किरणोंके समूहसे समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे ॥५८॥ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराजकी पूजा कर नमस्कार कर तथा भावपूर्वक स्तुति कर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर राजा चन्द्रगतिने इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! मैं गृहवाससे विरक्त हो चुका हूँ इसलिए आपके प्रसादसे जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना चाहता हूँ ॥५९-६०॥ 'एवमस्तु' ऐसा कहनेपर भामण्डलने भावपूर्वक परम प्रभावना की । जोर-जोरसे भेरियाँ बजने लगीं, उत्तम स्त्रियोंने बाँसुरीकी ध्वनिके साथ मनोहर गीत गाया, करतालके साथ-साथ अनेक वाद्योंके समूह गर्जना करने लगे । 'राजा जनकका लक्ष्मीशाली पुत्र जयवन्त हो रहा है' बन्दीजनोंका यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ गूँजने लगा ॥६१-६३॥ उद्यानसे उठे हुए इस श्रोत्रहारी शब्दने रात्रिके समय अयोध्यावासी समस्त लोगोंको निद्रारहित कर दिया ॥६४॥ ऋषियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस हर्षध्वनिको सुनकर जैन लोग परम हर्षको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि लोग विषादसे युक्त हो गये ॥६५॥ उस शब्दको सुनकर सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृतसे ही सींची गयी हो, उसके समस्त अंग रोमांचसे व्याप्त हो गये तथा उसका बायाँ नेत्र फड़कने लगा ॥६६॥ वह विचारने लगी कि यह जनक कौन है जिसका कि पुत्र जयवन्त हो रहा है । यह अत्यन्त उन्नत शब्द बार-बार सुनाई दे रहा है ॥६७॥ राजा जनक कनकका बड़ा भाई और मेरा पिता है । मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा गया था सो यह वही तो नहीं है ? ॥६८॥

१. वध्यं म. । वन्ध्या क. । २. भूतमात्रमति म. । ३. यात्यन्त ब. । ४. उच्चैः । ५. नारंभे स., म. ।
 ६. वंशस्वनानुगं म. । ७. विपन्नाश्च म. ।

ध्यात्वेति सोदरस्नेहसुसंस्लावितमानसा । मुक्तकण्ठं रुरोदासौ परिदेवनकारिणी ॥६९॥
 ततो रामोऽभिरामाङ्गः प्रोवाच मधुराक्षरम् । कस्माद् रोदिति वैदेहि भ्रातृशोकेन कर्षिता ॥७०॥
 भवत्या यद्यसौ भ्राता श्रो ज्ञातास्मो न संशयः । अथवान्यः कश्चित् कोऽपि पण्डिते शोचितेन किम् ॥७१॥
 कारणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् । हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ॥७२॥
 कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च । न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च ॥७३॥
 एवं तयोः समालापं दम्पत्योः कुर्वतोः क्षया । कृपयैव गता शीघ्रं जातमङ्गलनिस्वना ॥७४॥
 ततो दशरथः कृत्वा प्रत्यङ्गं वस्तु सादरः । नगरीतो विनिष्क्रान्तः ससुतः साङ्गनाजनः ॥७५॥
 इतश्चेतश्च विस्तीर्णं पश्यन् खेचरवाहिनीम् । ययौ स विस्मयापन्नः सामन्तशतपूरितः ॥७६॥
 ईक्षाचक्रे च देवेन्द्रपुस्तुल्यं विनिर्मितम् । क्षणाद्विद्याधरैः स्थानं तुङ्गप्रकारगोपुरम् ॥७७॥
 पताकातोरणेश्चित्रं रत्नैश्च कृतमण्डनम् । प्रविवेश तदुद्यानं साधुलोकसमाकुलम् ॥७८॥
 नत्वा स्तुत्वा च तत्रासौ गुहं गुणगुहं नृपः । ददर्शोदयने मानोश्चन्द्रायानस्य दीक्षणम् ॥७९॥
 नमश्चरैः समं पूजां कृत्वा सुमहतीं गुरोः । एकपार्श्वे निविष्टोऽसौ सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८०॥
 श्रीप्रमामण्डलोऽप्येकं पार्श्वमाश्रित्य खेचरैः । समस्तैः सहितस्तथो किञ्चिच्छोकमिवोद्बुधम् ॥८१॥
 खेचरा भूचराश्चैते मुनयश्चान्तिकं स्थिताः । शुश्रुवुर्गुरुतो धर्ममनगारं तथेतरम् ॥८२॥
 चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमीहितम् । शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रमयावहम् ॥८३॥

ऐसा विचार कर भाईके स्नेहसे जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥६९॥

तदनन्तर सुन्दर शरीरके धारी रामने मधुर अक्षरोंमें कहा कि वैदेहि ! भाईके शोकसे विवश हो क्यों रही हो ॥७०॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करेंगे इसमें संशय नहीं है और यदि कहीं कोई दूसरा है तो हे पण्डिते ! शोक करनेसे क्या लाभ है ? ॥७१॥ क्योंकि जो चतुर जन हैं वे बीते हुए, मरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजनका शोक नहीं करते हैं ॥७२॥ हे वल्लभे ! विषाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धिहीन होता है। इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान् होता है उसका विषाद नहीं किया जाता ॥७३॥ इस प्रकार दम्पतीके वार्तालाप करते-करते रात्रि बीत गयी सो मानो दयासे ही शीघ्र चली गयी और प्रातःकाल सम्बन्धी मंगलमय शब्द होने लगे ॥७४॥

तदनन्तर राजा दशरथ अंगसम्बन्धी कार्य कर आदरसहित पुत्रों और स्त्रीजनोंके साथ नगरीसे बाहर निकले ॥७५॥ सैकड़ों सामन्त उनके साथ थे । वे जहाँ-तहाँ फैली हुई विद्याधरोंकी सेनाको देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥७६॥ उन्होंने क्षण-भरमें ही विद्याधरोंके द्वारा निर्मित ऊँचे कोट और गोपुरोंसे सहित इन्द्रपुरीके समान स्थान देखा ॥७७॥ तदनन्तर उन्होंने पताकाओं और तोरणोंसे चित्रित, रत्नोंसे अलंकृत एवं मुनिजनोंसे व्याप्त उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें प्रवेश किया ॥७८॥ वहाँ जाकर राजा दशरथने गुणोंसे श्रेष्ठ सर्वभूतहित नामा गुरुको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदयके समय राजा चन्द्रगतिना दीक्षामहोत्सव देखा ॥७९॥ उन्होंने विद्याधरोंके साथ गुरुकी बहुत बड़ी पूजा की और उसके बाद वे समस्त भाई-बन्धुओंके साथ एक ओर बैठ गये ॥८०॥ कुछ शोकको धारण करता हुआ भामण्डल भी समस्त विद्याधरोंके साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥८१॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेवसे मुनि तथा गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुन रहे थे ॥८२॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियोंका धर्म शूरवीरोंका धर्म है, अत्यन्त शान्त दशारूप है, मंगलरूप है, अत्यन्त

अव्यजीवा यमासाद्य लभन्ते संशयोऽक्षितम् । सम्यग्दर्शनसंपन्ना गीर्वाणेन्द्रसुखं महत् ॥८४॥
 केचित् केवलमासाद्य लोकालोकप्रकाशदम् । लोकप्रागमारमारुह्य मज्जन्ते नैर्वृत्तं सुखम् ॥८५॥
 तिर्यग्नरकदुःखाग्निज्वालाभिः परिपूरितः । संसारो मुच्यते येन तं पन्थानं महीतमम् ॥८६॥
 सर्वप्राणिहितोऽवोचन्मन्दराजितनिस्वनः । प्रह्लादं सर्वचित्तानां जनयन्विदिताखिलः ॥८७॥
 संदेहतापविच्छेदि तद्वचोऽमुं मुनीन्द्रजम् । कर्णाञ्जलिपुटैः पीतं प्राणिभिः प्रीतमानसैः ॥८८॥
 ततो दशरथोऽपृच्छत् संजाते वचनान्तरे । चन्द्रकीर्तः खगेन्द्रस्य वैराग्यं नाथ किंकृतम् ॥८९॥
 सीता तत्र विशुद्धाक्षी ज्ञातुमिच्छुः सहोदरम् । शुश्रूषया मनश्चक्रे विनीतात्यन्तनिश्चलम् ॥९०॥
 शुद्धात्मा भगवानुचे शृणु राजन् विचित्रताम् । जीवानां निर्मितामेतां^१ कर्मभिः स्वयमर्जितैः ॥९१॥
 संसारे सुचिरं भ्रान्त्वा जीवाऽयमतिदुःखितः । कर्मानिलेरितः प्राप्तश्चन्द्रेण^२ शुक्तिमण्डलः ॥९२॥
 अपितः पुष्पवत्यै च स्त्रीचिन्ताकुलतारकः । स्वसारं च समालोक्य गाढाकल्पकमागतः ॥९३॥
 जनकः कृत्रिमाश्वेन हतश्चापस्वयंवरा । जाता विदेहजा चिन्तां परां भामण्डलोऽगमत् ॥९४॥
 अस्मरन् भवं पूर्वं मूर्च्छितः पुनरवसीत् । पृष्ठश्चन्द्रेण चावोचदिति पूर्वमवक्रियाम् ॥९५॥
 भरतस्थे विदग्धाख्ये पुरे कुण्डलमण्डितः । अधार्मिकोऽहरत् कान्तां पिङ्गलस्य मनःप्रियाम् ॥९६॥

दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और क्षुद्रजनोंको भय उत्पन्न करनेवाला है ॥८३॥ इस मुनिधर्मको पाकर सम्यग्दृष्टि भव्यजीव निःसन्देह स्वर्गका महासुख प्राप्त करते हैं ॥८४॥ और कितने ही लोक-अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त कर लोकके अप्रभागपर आरुढ़ हो मोक्षका सुख प्राप्त करते हैं ॥८५॥ तिर्यच और नरक गतिके दुःखरूपी अग्निकी ज्वालाओंसे भरा हुआ यह संसार जिससे छूटता है वही मार्ग सर्वोत्तम है ॥८६॥ ऐसे मार्गका कथन उन मुनिराजने किया था । वे मुनिराज समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले थे, गम्भीर गर्जनाके समान स्वरको धारण करनेवाले थे, समस्त जीवोंके चित्तमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाले थे तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले थे ॥८७॥ जिनके चित्त प्रसन्नतासे भर रहे थे ऐसे समस्त लोगोंने सन्देहरूपी सन्तापको नष्ट करनेवाले मुनिराजके वचनरूपी जलका अपने-अपने कर्णरूपी अंजलिपुटसे खूब पान किया ॥८८॥

तदनन्तर जब वचनोंमें अन्तराल पड़ा तब राजा दशरथने पूछा कि हे नाथ ! विद्याधरोंके राजा चन्द्रगतिका वैराग्य किस कारण हुआ है ? ॥८९॥ वहीं पासमें बैठी निर्मल दृष्टिकी धारक सीता अपने भाईको जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करनेकी इच्छासे नम्र हो उसने मनको अत्यन्त निश्चल कर लिया ॥९०॥ तब विशुद्ध आत्माके धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन् ! अपने द्वारा अर्जित कर्मोंके द्वारा निर्मित जीवोंकी इस विचित्रताको सुनो ॥९१॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ यह भामण्डलका जीव दीर्घकाल तक संसारमें भ्रमण कर अत्यन्त दुःखी हुआ है । अन्तमें जब भामण्डल पैदा हुआ तब वह राजा चन्द्रगतिको प्राप्त हुआ । चन्द्रगतिने पालन-पोषण करनेके लिए अपनी पुष्पवती भार्याको सौंपा । जब यह तरुण होकर स्त्रीविषयक चिन्ताको प्राप्त हुआ तब अपनी बहन सीताका चित्रपट देख अत्यन्त व्यथाको प्राप्त हुआ ॥९२-९३॥ सीताकी मैंगनी करनेके लिए मायामयी अश्वके द्वारा राजा जनकका हरण हुआ अन्तमें सीताका धनुष-स्वयंवर हुआ और उसने स्वयंवरमें राजा दशरथके पुत्र रामको वर लिया । इस घटनासे भामण्डल परम चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥९४॥ अकस्मात् इसे पूर्व भवका स्मरण हुआ, जिससे यह मूर्च्छित हो गया । सचेत होनेपर राजा चन्द्रगतिने इसका कारण पूछा तब वह अपने पूर्व भवकी वार्ता इस प्रकार कहने लगा ॥९५॥ कि मैं भरत क्षेत्रके विदग्धनामा नगरमें कुण्डल-

१. निर्वाणसंबन्धि । २. निजित-ज । ३. मेकां म. । ४. भामण्डलः । ५. गाढव्ययाम् ।

बालेन्दुहृतसर्वस्वो विषयात् स निराकृतः । श्रमणाश्रममासाद्य प्राप व्रतसनामिषम् ॥९७॥
 धर्म्यध्यानगतः कृत्वा कालं कलुषवर्जितः । जनकस्य विदेहायाः ससहायस्तनुं श्रितः ॥९८॥
 अरण्यात् पिङ्गलः प्राप्नो दृष्ट्वा शून्यकुटीरकम् । कोटरानलजीर्णाङ्गादाहदुःखं समासवान् ॥९९॥
 यदर्थं दुःखितोऽप्राक्षीञ्चेन्नाम्बुकृतदुर्दिनः । दृष्ट्वा स्यात् पुण्डरीकाक्षो ममेत्युन्मत्तविभ्रमः ॥१००॥
 हा कान्त इति कूजंश्च विलापमकरोदिति । प्रभावती सवित्री तां तातं चक्रध्वजं च तम् ॥१०१॥
 विभूतिमतिमुक्तां च बान्धवांश्च सुमानसान् । परित्यज्य मयि प्रीत्या विदेशमसि सङ्गता ॥१०२॥
 रूक्षाहारकुवस्त्रत्वं मदर्थं सेवितं त्वया । मामुत्सृज्य क यातासि सर्वावयवमुन्दरि ॥१०३॥
 खिन्नोऽसौ धरणीं दुःखं भ्रान्त्या सगिरिकाननम् । वियोगवह्निना दग्धः सौकण्ठस्तपसि स्थितः ॥१०४॥
 ततो देवत्वमासाद्य चिन्तामेवमुपागमत् । तिर्यग्योनिं किमेता सा कान्ता सम्यक्स्ववर्जिता ॥१०५॥
 स्वभावार्जवसंपन्ना भूयो वा मानुषी भवेत् । जीवितान्ते जितं स्मृत्वा किं वा देवत्वमागता ॥१०६॥
 इति ध्यायन् विजिज्ञिष्य स्तब्धदृष्टिः प्रकोपवान् । कालौ शत्रुदुरात्मेति ज्ञात्वा कुक्षिममाश्रितम् ॥१०७॥
 प्रसूतमेककं कृत्वा शान्तः कर्मनियोगतः । बालं मुमोच जीवेहि वदन् विद्यालघूकृतम् ॥१०८॥

मण्डित नामका राजा था, मैं बड़ा अधर्मी था इसलिए मैंने उसी नगरमें रहनेवाले पिङ्गल नामक ब्राह्मणकी मनोहर स्त्रीका हरण किया था ॥९६॥ मैं राजा अनरण्यके राज्यमें उपद्रव किया करता था इसलिए उसके सेनापति बालचन्द्रने मेरी सर्व सम्पदा छीनकर मुझे देशसे निकाल दिया । अन्तमें मैं भटकता हुआ मुनियोंके आश्रममें पहुँचा और वहाँ मैंने अनामिष अर्थात् मांसत्यागका व्रत धारण किया ॥९७॥ उसके फलस्वरूप धर्मध्यानसे सहित हो तथा कलुषतासे रहित होकर मैंने मरण किया और मरकर राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें जन्म धारण किया । जिस स्त्रीका मैंने हरण किया था भाग्यकी बात कि वह भी उसी विदेहाके गर्भमें उसी समय आकर उत्पन्न हुई ॥९८॥ पिङ्गलने जब जंगलसे लौटकर कुटिया सूनी देखी तो उसे इतना तीव्र दुःख हुआ कि मानो उसका शरीर कोटरकी अग्निसे झुलस ही गया हो ॥९९॥ वह उसके बिना पागल-जैसा हो गया, उसके नेत्रोंसे लगातार दुर्दिनकी भाँति आँसुओंकी वर्षा होने लगी तथा दुःखी होकर वह जो भी दिखता था उसीसे पूछता था क्या तुमने मेरी कमललोचना प्रिया देखी है ? ॥१००॥ वह हा कान्ते ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ विलाप करने लगा तथा कहने लगा कि तुम मुझमें प्रीति होनेके कारण प्रभावती माता, चक्रध्वज पिता, विशाल विभूति और प्रेमसे भरे भाइयोंको छोड़कर विदेशमें आयी थीं ॥१०१-१०२॥ तुमने मेरे पीछे रूखा-सूखा भोजन और अशोभनीय वस्त्र ग्रहण किये हैं फिर भी हे सर्वावयवमुन्दरि ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो ? ॥१०३॥ खेदखिन्न तथा वियोगरूपी अग्निसे जला हुआ पिङ्गल पहाड़ों और वनोंसे सहित पृथिवीमें दुःखी होकर चिर-काल तक भटकता रहा । अन्तमें तप करने लगा परन्तु उस समय भी उसे स्त्रीकी उत्कण्ठा सताती रहती थी ॥१०४॥

तदनन्तर देवपर्यायको पाकर वह इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि क्या मेरी वह प्रिया सम्यक्त्वेसे रहित होकर तिर्यच्योनिको प्राप्त हुई है ॥१०५॥ अथवा स्वभावसे सरल होनेके कारण पुनः मानुषी हुई या आयुके अन्त समयमें जितेन्द्रदेवका स्मरण कर देव पर्यायको प्राप्त हुई है ? ॥१०६॥ ऐसा विचार कर तथा सब निश्चय कर उसने अपनी दृष्टि स्थिर की तथा कुपित होकर यह विचार किया कि इसे अपहरण करनेवाला दुष्ट शत्रु कहाँ है ? कुछ समयके विचारके बाद उसे मालूम हो गया कि वह शत्रु भी इसीके साथ विदेहा रानीकी कुक्षिमें ही विद्यमान है ॥१०७॥ रानी विदेहाने बालक और बालिकाको जन्म दिया सो बैरका बदला लेनेके

ज्योत्स्नाकृताट्टहासायां राज्ञौ प्राप्तः पतस्त्वया । तदा स्मरसि किं नेदं पुष्पवत्यै समर्पितः ॥१०९॥
 प्राप्नो भवत्प्रसादेन विद्याधरविधिर्मया । नूनं माता विदेहा मे सा च सीता सहोदरी ॥११०॥
 इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता सर्वा बैद्याधरी सभा । चन्द्रायणश्च संविग्नो न्यस्य भामण्डले श्रियम् ॥१११॥
 माता पिता च वे वत्स दुःखं शोकेन तिष्ठति । तथोर्नोत्रोत्सवं यच्छेत्स्वैवमुक्त्वा समागतः ॥११२॥
 जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थितिः पुनः । इति भीतो भवादेष चन्द्रः प्राव्रज्यमासवान् ॥११३॥
 अत्रान्तरे विदेहाजः संशयं परिपृच्छति । स्नेहश्चन्द्रायणादीनां मयि कस्मात् परः प्रभो ॥११४॥
 ततः सर्वहितोऽबोचन्निबोध द्युतिमण्डल । यथा पिता च माता च तव पूर्वमेवे स्थितौ ॥११५॥
 दारुग्रामे तु विप्रोऽभूद् विमुचिस्तस्य भामिनी । अनुकोशातिभूतिश्च तनयः सरसा स्तुषा ॥११६॥
 ऊर्या मात्रा सहप्राप्तः कयानाख्योऽन्यदा द्विजः । अहरत् सरसां सारं धनमन्तर्गतं च यत् ॥११७॥
 अतिभूतिश्च तद्धेतोः शोकी बभ्राम मेदिनीम् । ततो निष्पुरुषे गेहे शेषं स्वमपि लुण्ठितम् ॥११८॥
 विमुचिर्दक्षिणाकाङ्क्षी देशान्तरगतः पुरा । श्रुत्वा कुलकुटं भग्नं निवृत्तस्त्वरयान्वितः ॥११९॥
 जीर्णवस्त्रावशेषाङ्गामनुकोशां सुविह्वलाम् । सान्त्वयित्वा तथा सार्धमुर्या चान्वेष्टमुद्यतः ॥१२०॥
 प्रजाभिः पृथिवीपृष्ठे कथ्यमानं समन्ततः । अवधिज्ञानकरणैर्जगद् येनावभासेतम् ॥१२१॥

लिए वह देव बालकको उठा ले गया परन्तु कर्मोदयसे उसके परिणाम शान्त हो गये जिससे उसने उस बालकको लघुपर्णी विद्यासे लघु कर 'जीते रहो' इन शब्दोंका उच्चारण कर आकाशसे छोड़ा ॥१०८॥ जिसमें चाँदनी अट्टहास कर रही थी ऐसी रात्रिमें आकाशसे पड़ते हुए उस बालकको आपने पकड़ा था और अपनी रानी पुष्पवतीके लिए सौंपा था। क्या यह आपको स्मरण नहीं है? ॥१०९॥ मैंने आपके प्रसादसे विद्याधरपना प्राप्त किया। यथार्थमें विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी बहन है ॥११०॥ भामण्डलके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंकी समस्त सभा आश्चर्यकी प्राप्त हुई तथा चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो भामण्डलके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कहकर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे माता-पिता शोकके कारण दुःखसे रह रहे हैं सो उनके नेत्रोंको आनन्द प्रदान कर ॥१११-११२॥ तदनन्तर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है वह गर्भमें स्थित होता है, ऐसा विचारकर चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो वैराग्यकी प्राप्त हुआ ॥११३॥ इसी बीचमें भामण्डलने सर्वभूतहित मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! चन्द्रगति आदिका मुझपर बहुत भारी स्नेह किस कारण था ॥११४॥ इनके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि हे भामण्डल ! तेरे माता-पिता पूर्व भवमें जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥११५॥ दारुग्राममें एक विमुचि नामका ब्राह्मण था। उसकी स्त्रीका नाम अनुकोशा था और पुत्रका नाम अतिभूति था। अतिभूतिकी स्त्रीका नाम सरसा था ॥११६॥ किसी समय उसके घर अपनी ऊरी नामक माताके साथ कयान नामका एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूतिकी स्त्री सरसा तथा घरके भीतरका सारभूत धन दोनोंका हरण किया अर्थात् सरसा और धनको लेकर कहीं भाग गया ॥११७॥ इस निमित्तसे अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्रीकी खोजमें पृथिवीपर भ्रमण करने लगा। इधर उसके चले जानेसे घर पुरुषरहित हो गया सो बाकी बचा धन भी चोर ले गये ॥११८॥ विमुचि ब्राह्मण दक्षिणाकी इच्छा करता हुआ पहले ही देशान्तर चला गया था। वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल-परम्परासे चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापस आया ॥११९॥ आकर उसने देखा कि उसकी स्त्री अनुकोशा अत्यन्त विह्वल हो रही है और उसके शरीरपर जीर्ण-शीर्ण फटे चिथड़े हो शेष रह गये हैं। तब उसने उसे सान्त्वना दी और कयानकी माता ऊरीके साथ पुत्रको ढूँढ़नेके लिए गया ॥१२०॥ उसने पृथिवीतलपर

तमाचार्यं परिप्राप्तः पुरे सर्वारिनामनि । प्रष्टुं किल महाशोको नष्टचित्तस्तुषात्मजः ॥१२२॥
 दृष्ट्वा गणेशरोमृद्धिं श्रुत्वा च विविधां स्थितिम् । तीव्रं संवेगमासाद्य विमुचिर्मुनितां गतः ॥१२३॥
 पाश्वे कमलकान्ताया आर्याया सुसमाहिता । सममूर्यानुकोशापि प्रव्रज्य तपसि स्थिता ॥१२४॥
 त्रयोऽपि ते शुभध्यानाः कृत्वा कालमलोलुपाः । लौकान्तिकं गता लोकं नित्यालोकमनाकुलम् ॥१२५॥
 अतिभूतिप्रभृतयो हिंसावादस्य शंसकाः । द्वेषकाः संयतानां च कुध्याना दुर्गतिं गताः ॥१२६॥
 मृगोत्वं सरसा प्राप्ता बलाहकनगोरसि । व्याघ्रभीता च्युता यूथान्मृता दावानलाहता ॥१२७॥
 जाता मनस्विनीदेव्याः सुता चित्तोत्सवाह्वया । दुःखदानप्रवीणस्य प्रशमात् पापकर्मणः ॥१२८॥
 कयानः क्रमशो भूत्वा पारसीकः क्रमेलकः । मृत्वा पिङ्गलनामाभूद्धूमकेशस्य नन्दनः ॥१२९॥
 हंसस्ताराक्षसरसि सोऽतिभूतिः क्रमादभूत् । ज्येनैर्विलुप्तसर्वाङ्गश्चैत्यस्य पतितोऽन्तके ॥१३०॥
 अध्याप्यमानं गुरुणा यशोमित्रं पुनः पुनः । अश्रौषीदहर्ता स्तोत्रं मुक्तवानथ जीवितम् ॥१३१॥
 दशवर्षसहस्रायुः किन्नरोऽभून्नगोत्तरे । विदग्धनगरे च्युत्वा जातः कुण्डलमण्डितः ॥१३२॥
 अहरत् पिङ्गलः कन्यां तथा कुण्डलमण्डितः । यदत्रायं पुरावृत्तः संबन्धः परिकीर्तितः ॥१३३॥
 योऽसौ विमुचिरित्यासीत् सोऽथं चन्द्रगतिर्नृपः । अनुकोशा तु जायास्य जाता पुष्पवती पुनः ॥१३४॥
 कयानोऽथं सुरो हर्ता सरसा हृदयोत्सवा । ऊरी जाता विदेहा तु सोऽतिभूतिः प्रमाह्वयः ॥१३५॥

भ्रमण करते हुए लोगोंसे सुना कि सर्वास्तिपुर नामा नगरमें एक आचार्य है जिन्होंने अपने अवधि-
 ज्ञानसे इस जगत्को प्रकाशित कर रखा है सो वह उनसे पुत्रकी वार्ता पूछनेके उद्देश्यसे उनके पास
 गया । विमुचि महाशोकसे भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधूका पता न लगनेसे अत्यन्त दुःखी
 था ॥१२१-१२२॥ वह आचार्य महाराजकी तपऋद्धि देखकर तथा संसारकी नाना प्रकारकी
 स्थिति सुनकर तीव्र वैराग्यको प्राप्त हुआ और उन्हींके पास दीक्षा लेकर मुनि हो गया ॥१२३॥
 विमुचिकी स्त्री अनुकोशा और कयानकी माता ऊरी इन दोनों ब्राह्मणियोंने भी कमलकान्ता
 नामक आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥१२४॥ विमुचि, अनुकोशा और ऊरी
 ये तीनों प्राणी महान्तिस्पृह, धर्मध्यानसे मरकर निरन्तर प्रकाशसे युक्त तथा आकुलत्परहित
 ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥१२५॥ अतिभूत तथा कयान दोनों ही हिंसा धर्मके समर्थक
 तथा मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले थे । इसलिए छोटे ध्यानसे मरकर दुर्गतिमें गये ॥१२६॥ अतिभूति-
 की स्त्री सरसा बलाहक नामक पर्वतकी तलहटीमें मृगी हुई सो व्याघ्रसे भयभीत हो मृगोंके झुण्डसे
 बिलुड़कर दावानलमें जल मरी ॥१२७॥ तदनन्तर दुःख देनेमें प्रवीण पापकर्मके शान्त होनेसे
 मनस्विनी देवीके चित्तोत्सवा हुई ॥१२८॥ और कयान मरकर क्रमसे घोड़ा तथा ऊँट हुआ । फिर
 मरकर धूम्रकेशका पुत्र पिंगल हुआ ॥१२९॥ अतिभूति भवभ्रमण कर क्रमसे ताराक्ष नामक
 सरोवरके तीरपर हंस हुआ सो किसी समय ज्येन अर्थात् बाज पक्षियोंने इसका समस्त शरीर नोंच
 डाला जिससे घायल होकर जितमन्दिरके समीप पड़ा ॥१३०॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्यको
 बार-बार अहन्त भगवान्का स्तोत्र पढ़ा रहे थे उसे सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥१३१॥ उसके फल-
 स्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वतपर दश हजार वर्षकी आयुवाला किन्नर देव हुआ और वहाँसे
 च्युत होकर विदग्धनगरमें राजा कुण्डलमण्डित हुआ ॥१३२॥ पूर्वभवके संस्कारसे चित्तोत्सवा
 कन्याका पिंगलने अपहरण किया और उसके पाससे कुण्डलमण्डित राजाने अपहरण किया । इन
 सबका जो पूर्वभवका सम्बन्ध था वह पहले कहा जा चुका है ॥१३३॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण
 था वह चन्द्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नामकी जो स्त्री थी वही पुष्पवती नामकी फिरसे
 स्त्री हुई ॥१३४॥ कयान अपहरण करनेवाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, ऊरी विदेहा और
 अतिभूति भामण्डल हुआ ॥१३५॥

ततो दशरथः श्रुत्वा तं वृत्तान्तमशेषतः । भामण्डलं समाश्लिष्य वाष्पपूर्णनिरीक्षणः ॥१३६॥
 अद्भुतैर्जितमूर्धानो जातरोमोद्गमा मृशम् । आनन्दवाष्पलोलाक्षा समायामभवज्जनाः ॥१३७॥
 उद्गोर्णमाननेनैव प्रीत्या तं वीक्ष्य सोदरम् । मृगीव रुदती स्नेहाद्भावोद्भूतबाहुका ॥१३८॥
 हा आतः प्रथमं दृष्टो मयाद्यासीतिशब्दिनी । तमाश्लिष्य चिरं सीता रुदित्वा धृतिमागता ॥१३९॥
 संसाधितः स रामेण संभ्रमालिङ्गितश्चिरम् । लक्ष्मणेन तथान्येन बन्धुलोकेन सादरम् ॥१४०॥
 नयस्कृष्य सुनि श्रेष्ठं ततः खेचरभूचराः । उद्यानात् प्रमदापूर्णा निरीयुः सुविराजिताः ॥१४१॥
 भामण्डलेन संमन्थ्य द्रुतं दशरथो ददौ । लेखं जनकराजस्य नीतं गगनयायिना ॥१४२॥
 प्रेषितं मानुसाग्रेण तस्य हंसधृतं वरम् । यानं विद्याधरैर्वीरैर्मूर्ध्निः परिवारितम् ॥१४३॥
 प्रभामण्डलमादाय ततो भूत्यातिक्रान्तया । तुष्टो दशरथोऽयोध्यां सुगमसदृशोऽविशत् ॥१४४॥
 अक्षीणसर्वबोशोऽस्त्युपचारं परं नृपः । प्रीतो भामण्डले चक्रे सर्वलोकसमन्वितः ॥१४५॥
 रम्ये सुविपुले तुङ्गे वायुद्यानविमूषिते । गृहे दशरथोद्दिष्टे तस्थौ भामण्डलः सुखम् ॥१४६॥
 दारिद्र्यान्मोचितो लोकः परमोत्सवजन्मना । दानेन धान्छिताधिक्यं प्राप्तेन धरणीतले ॥१४७॥
 गन्धः पवनवेगेन जनको लेखहारिणा । सहसा वर्द्धितो दिप्लव्य पुत्रागमनजन्मना ॥१४८॥
 प्रवाच्य चार्पितं लेखं सुदृढप्रत्ययः परम् । प्रमोदं जनकः प्राप रोमाञ्जलितविग्रहः ॥१४९॥
 यद् किं किमयं स्वप्नः स्याज्जाग्रत्प्रत्ययोऽथवा । एहि ढौकस्व ढौकस्व तौवत्वाद्य परिष्वजे ॥१५०॥

तदनन्तर इस समस्त वृत्तान्तको सुनकर जिनके नेत्र आँसुओंसे भर गये थे ऐसे राजा दशरथने भामण्डलका आलिंगन किया ॥१३६॥ उस समय सभामें जितने लोग बैठे थे सभीके मस्तक आश्चर्यसे चकित रह गये, सभीके शरीरमें बहुत भारी रोमांच निकल आये और सभीके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे चंचल हो उठे ॥१३७॥ मुखकी आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाईको बड़े प्रेमसे देखकर सीता स्नेहवश मृगीकी तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दीड़ी और हे भाई ! मैं तुझे आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गयी और चिरकाल तक रुदन कर धैर्यको प्राप्त हुई ॥१३८-१३९॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुओंने भी सहसा उठकर भामण्डलका आलिंगन किया तथा आदरसहित उससे वार्तालाप किया ॥१४०॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजको नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उपवनसे बाहर निकले । उस समय वे हर्षसे परिपूर्ण थे तथा अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४१॥ भामण्डलके साथ सलाह कर राजा दशरथने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधरके हाथ राजा जनकके पास पत्र भेजा ॥१४२॥ भामण्डलका उत्तम विमान आकाश-मार्गसे आ रहा था, हंसोंके द्वारा धारण किया गया था तथा बहुत-से विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥१४३॥ तदनन्तर भामण्डलको लेकर राजा दशरथने इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे अयोध्यामें प्रवेश किया ॥१४४॥ अक्षीण कोशके धनी राजा दशरथने भामण्डलके आनेपर प्रसन्न हो सब लोगोंके साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥१४५॥ भामण्डल राजा दशरथके द्वारा बताये हुए रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा वापी और बगीचासे सुशोभित महलमें सुखसे ठहरा ॥१४६॥ उस परमोत्सवके समय राजा दशरथने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतलके दरिद्र मनुष्य इच्छासे अधिक धन पाकर दरिद्रतासे मुक्त हो गये ॥१४७॥ उधर पवनके समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधरने पुत्रके आगमनका समाचार सुनाकर राजा जनकको सहसा हर्षित कर दिया ॥१४८॥ राजा जनक दिये हुए पत्रको बाँचकर तथा उसकी सत्यताका दृढ़ विश्वास कर परम प्रमोदको प्राप्त हुए । उनका सारा शरीर हर्षसे रोमांचित हो गया ॥१४९॥ वे उस विद्याधरसे पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या यह स्वप्न है ? अथवा

१. इन्द्रतुल्यः । २. सुदृढः प्रत्ययः म. । ३. तावत् + त्वा + अय ।

इत्युक्त्वानन्दवाष्पेण तरत्तारकलोचनः । साक्षात्पुत्रमिव प्राप्तं लेखहारं स सन्वजे ॥१५१॥
 नगनतापरिहारेण देहस्थं वस्त्रभूषणम् । ससंभ्रमं ददौ तस्मै मुदा नृत्तमिवाचरन् ॥१५२॥
 समेति बन्धुलोकोऽस्य यावद्विष्टयोऽभिवर्द्धकः । तावत्तद्यानमायातं छादयद्गगनं रुचा ॥१५३॥
 अपृच्छत्तस्य वृत्तान्तमनृत्तश्च पुनः पुनः । उक्तं विद्याधरैस्तस्य यथावदतिविस्तरम् ॥१५४॥
 ततो यानं समारुह्य सभस्तैर्वन्धुभिः समम् । निमेषेण परिप्राप्तो विनीतां तूर्यनौदिताम् ॥१५५॥
 अद्यतीर्थम्बरादाञ्च पुत्रमालिङ्ग्य निर्भरम् । सुखमीलितनेत्रोऽसौ क्षणं मूर्च्छासुपागतः ॥१५६॥
 प्रबुध्य च विशालेन चक्षुषा वाष्पवारिणा । आसेचनकमैक्षिष्ट तनयं पाणिना स्पृशन् ॥१५७॥
 माता तं मूर्छिता दृष्ट्वा परिश्वस्य प्रबोधिनी । आचक्रन्द सुकारुण्यं तिरश्चामपि कुर्वतो ॥१५८॥
 परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रक हा कथम् । हतोऽसि जातमात्रस्त्वं केनाप्युत्तमवैरिणा ॥१५९॥
 त्वदीक्षाचिन्तया देहो दग्धोऽयं वह्नितुल्यया । भवदर्शनतोयेन विराजिर्वापितोऽद्य मे ॥१६०॥
 धन्या पुष्पवती सुखी या तेऽज्ञानि शैशवे । क्रीडता धूसराण्यङ्गे निहितानि सुचुम्बितम् ॥१६१॥
 चन्दनेन धिलिप्तस्य कुङ्कुमस्थासकाञ्चितम् । दधतः शैशवं दृष्टं कौमारं ते तथा वपुः ॥१६२॥
 नेत्राभ्यामसुस्तुज्य स्तनाभ्यां च पयश्चिरम् । सुपुत्रसङ्गमानन्दं विदेहा परमं गता ॥१६३॥

जागृत दशमं होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान है, आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिंगन करूँ ॥१५०॥ इतना कहकर आनन्दके आँसुओंसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ चंचल हो रही थीं ऐसे राजा जनकने उस पत्रवाहक विद्याधरका ऐसा आलिंगन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥१५१॥ उन्होंने इस हर्षसे नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधरके लिए अपने शरीरपर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये । शरीरपर केवल उतने ही वस्त्र शेष रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिखें ॥१५२॥ हर्षकी वृद्धि करनेवाले राजा जनकके बन्धुवर्ग जबतक इकट्ठे होते हैं तबतक अपनी कान्तिसे आकाशको आच्छादित करता हुआ भामण्डलका विमान वहाँ आ पहुँचा ॥१५३॥ राजा जनकने अतृप्त हो बार-बार भामण्डलका वृत्तान्त पूछा और विद्याधरोंने सब वृत्तान्त ज्योंका-त्यों बड़े विस्तारसे कहा ॥१५४॥

तदनन्तर राजा जनक समस्त भाई-बन्धुओंके साथ विमानपर आरुढ़ हो निमेष मात्रमें अयोध्या जा पहुँचे । उस समय अयोध्या तुरहीके मधुर शब्दसे शब्दायमान हो रही थी ॥१५५॥ आकाशसे शीघ्र ही उतरकर उन्होंने पुत्रका गाढ़ आलिंगन किया । आलिंगनजन्य सुखसे उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षण भरके लिए वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥१५६॥ सचेत होनेपर उन्होंने जिससे अश्रु-जल झर रहा था ऐसे विशाल लोचनोंसे तृप्तिकर पुत्रका अवलोकन किया तथा हाथसे उसका स्पर्श किया ॥१५७॥ माता विदेहा भी पुत्रको देखकर तथा आलिंगन कर हर्षातिरेकसे मूर्च्छित हो गयी और सचेत होनेपर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यचोंको भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१५८॥ वह विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरीके द्वारा क्यों अपहृत हो गया था ? ॥१५९॥ मेरा यह शरीर अग्निके समान तेरे देखनेकी चिन्तासे अब तक जलता रहा है । आज चिरकालके बाद तेरे दर्शनरूपी जलसे शान्त हुआ है ॥१६०॥ पुष्पवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्थामें क्रीड़ासे धूल-धूसरित तेरे अंग अपनी गोदमें रखे हैं तथा चन्दनसे लिप्त और केशरके तिलकसे सुशोभित तेरे मुखका चुम्बन किया है एवं शैशव अवस्थाको धारण करनेवाले तेरे कुमारकालीन शरीरको देखा है ॥१६१-१६२॥ माता विदेहाके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे चिरकाल तक दूध निकलता रहा ।

१. वृत्तमिवा-म. । २. यावद्विष्टाभिवर्धकः म. । ३. तूर्यनौदितां ख. । ४. 'तदासेचनकं तृप्तेर्नास्त्यन्तो

अहंछासनदेवीव जृम्भैरावतनामनि । सा तत्र लोचने कृत्वा तस्थौ मग्ना सुखाम्बुधौ ॥१६४॥
 मासमात्रमुषित्वातो बन्धुसङ्गममोदिना । पद्मो भामण्डलेनोत्ते विनयं विभ्रता^१ परम् ॥१६५॥
 वैदेह्याः शरणं देव त्वमेवोत्तमबान्धवः । छन्देऽस्या वर्ततां येन नो यात्युद्वेगमेषका ॥१६६॥
 स्वसारं च समालिङ्ग्य स्नेहादेनां^२ सुचेष्टिताम् । उपादिशदसौ भूयो भूयः प्रवरमानसः ॥१६७॥
 मातालिङ्ग्यागदत् सीतां सुते श्वसुरयोः प्रिये । परिवर्गे च तत्कुर्याः श्लाघ्यतां येन गच्छसि ॥१६८॥
 सर्वानामन्य विन्यस्य कनके मिथिलेक्षिताम् । गृहीत्वा पितरौ यातः स्थानं भामण्डलो निजम् ॥१६९॥

इन्द्रवज्रा

वीक्षस्व माहात्म्यमिदं कृतस्य धर्मस्य पूर्वं मगधाधिराज ।
 विद्याधरेन्द्रो यदवापि बन्धुः सीता च पत्नी गुणरूपपूर्णा ॥१७०॥

उपजातिः

अधिष्ठते देवगणैश्च चापे सकंकटे सीरगदादियुक्ते ।
 लब्धे सुरैरप्यतिदुर्लभे ये पद्मेन लक्ष्मीनिलयश्च श्रुत्यः ॥१७१॥

उपेन्द्रवज्रा

इदं जनो यः सुविशुद्धचेताः शृणोति भामण्डलबन्धुयोगम् ।
 अभीष्टयोगानरुजश्चिराय रविप्रभोऽसौ लभते शुभात्मा ॥१७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते भामण्डलसमागमाभिधानं नाम त्रिशत्तमं पर्व ॥३०॥

वह उत्तम पुत्रका संग पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१६३॥ जिस प्रकार ऐरावत क्षेत्रमें जृम्भा नामकी जितशासनकी सेवक देवी रहती है उसी प्रकार वह भामण्डलपर दृष्टि लगाकर अर्थात् उसे देखती हुई सुखरूपी सागरमें निमग्न होकर रहने लगी ॥१६४॥ तदनन्तर एक मास तक अयोध्यामें रहनेके बाद भाई-बन्धुओंके समागमसे प्रसन्न एवं परम विनयको धारण करनेवाले भामण्डलने श्रीरामसे कहा कि ॥१६५॥ हे देव ! सीताके आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम बान्धव हो । आप इसके हृदयमें इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्वेगको प्राप्त न हो ॥१६६॥ उत्कृष्ट हृदयके धारक भामण्डलने उत्तम चेष्टाओंसे सुशोभित बहनका स्नेहवश आलिङ्गन कर उसे बार-बार उपदेश दिया ॥१६७॥ माता विदेहाने भी सीताका आलिङ्गन कर कहा कि हे बेटी ! तू अपने सास-ससुरको प्रिय हो, तथा परिजनके साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसाको प्राप्त हो ॥१६८॥ तदनन्तर भामण्डल सब लोगोंसे पूछकर तथा मिथिलाका राज्य कनक-के लिए सौपकर माता-पिताको साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥१६९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! पूर्वं भवमें किये हुए धर्मका यह माहात्म्य देखो । धर्मके माहात्म्यसे ही रामने विद्याधरोंका राजा भामण्डल-जैसा बन्धु प्राप्त किया, गुण तथा रूपसे परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवोंके समूहसे अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदिसे युक्त एवं देवोंके द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये । लक्ष्मीका भण्डार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥१७०-१७१॥ जो मनुष्य अत्यन्त विशुद्ध हृदयसे भामण्डलके इस इष्ट समागमको सुनता है सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्टजनोके साथ समागम और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भामण्डलके समागमका वर्णन करनेवाला तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३०॥



एकत्रिंशत्तमं पर्व

उवाच श्रेणिको भूपः सबन्धुरत्नैरण्यजः । इमां विभूतिं संप्राप्य चक्रे किं गणनायक ॥१॥
पुरातनं च वृत्तान्तं रामलक्ष्मणयोस्तयोः । तवैव विदितं सर्वं तन्नो ब्रूहि महायशः ॥२॥
इति पृष्ठो महातेजा जगाद् मुनिपुङ्गवः । निरवद्यं तथा तत्त्वं यथा सर्वज्ञमाश्रितम् ॥३॥
स्वसंशयमशेषज्ञं राजा दशरथोऽन्यदा । प्रणम्य साधुमप्राश्नीत् सर्वभूतहितं हितम् ॥४॥
मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि यानि तु । वेद्येकमपि नो तेषां तत्सर्वं विदितं त्वया ॥५॥
तान्यहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति । भवत्प्रसादतो मोहं निराकर्तुमहं यजे ॥६॥
श्रोतुं समुद्यतस्यैवं भवान् दशरथस्य तु । सर्वभूतहितः साधुरिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छसि सन्मते । त्वया पर्यट्य संसारे मतिरासादिता यथा ॥८॥
न त्वयैकेन संसारो भ्रान्तोऽन्यैरपि संसृतः । चिन्वानैः कर्मभिः कर्म दुःखसंजननो महान् ॥९॥
अस्मिन् जगत्त्रये राजन् जन्तूनां स्वहितैषिणाम् । स्थितयस्तिस्र उद्दिष्टा उत्तमाधममध्यमाः ॥१०॥
^१अभाव्यी च तथा ^२भाव्यी सैद्धी च गतिपूत्तमा । पुनरावृत्तिनिर्मुक्ता कल्याणी जिनदेशिता ॥११॥
सेयं सिद्धगतिः शुद्धा सनातनसुखावहा । इन्द्रियव्रणरोगार्तमोहेनान्धैर्न दृश्यते ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनोंसे सहित, राजा अनरण्यके पुत्र राजा दशरथने इस विभूतिको पाकर क्या किया ? ॥१॥ हे महायशके धारक ! राम और लक्ष्मणका पुरातन वृत्तान्त आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए ॥२॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराजने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तान्त सर्वज्ञदेवने कहा है वैसा कहता हूँ तू सुन ॥३॥ वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथने समस्त पदार्थोंको जाननेवाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराजको प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥४॥ उन्होंने कहा कि हे स्वामिन् ! मैंने बहुत-से जन्म धारण किये हैं पर मैं उनमें-से एक भी भवको नहीं जानता जब कि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मैं उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए । आपके प्रसादसे मोह नष्ट करनेके लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ ॥६॥ इस प्रकार भवान्तर सुननेके लिए उद्यत राजा दशरथसे सर्वभूतहित मुनि निम्नांकित वचन कहने लगे ॥७॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुन । हे सद्बुद्धिके धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा ! तुमने इस संसारमें समन्तात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूँगा ॥८॥ दुःख देनेवाले इस महान् संसारमें केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किन्तु कर्मोंका संचय करनेवाले अन्य लोगोंने भी कर्मोदयसे इसमें भ्रमण किया है ॥९॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रयमें अपना हित चाहनेवाले प्राणियोंकी दशाएँ उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी वर्णित की गयी हैं ॥१०॥ उनमें-से अभव्य जीवकी दशा जघन्य है, भव्यकी मध्यम है और सिद्धोंकी उत्तम है । जिनेन्द्रभगवान्ने सिद्धगतिको पुनरागमनसे रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥११॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुखको देनेवाली है । इन्द्रियरूपी व्रणरोग-

१. दशरथः । २. विहितं म. । ३. समुद्यतस्यैव म. । ४. पूर्वपर्यायान् । ५. संसरणविषयीकृतः । ६. अभव्य-
स्येयम् अभाव्यी । ७. भव्यस्येयं भावी । ८. सिद्धानामियं सैद्धी ।

श्रद्धासंगेहोनानां हिंसादिष्वनिवर्तिनाम् । चतुर्गतिकसंवर्ता गतिरुग्रतमोरजाः ॥१३॥
 अभव्यानां गतिः क्लिष्टा विनाशपरिवर्जिता । भव्यानां तु परिज्ञेया गतिर्निर्वृतिमाविनी ॥१४॥
 धर्मादिद्रव्यपर्यन्तं लोकालोकमशेषतः । पृथिवीप्रभृतीन् काथानाश्रिताश्रतनाभृतः ॥१५॥
 जीवराशिरनन्तोऽयं विद्यते नास्य संक्षयः । दृष्टान्तः सिकताकाशचन्द्रादित्यकरादिकः ॥१६॥
 'अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । स्वकर्मनिचयोपेतं नानायोगिकृतादृतम् ॥१७॥
 सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते । जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथंचन ॥१८॥
 यः संदेहकलङ्केन निश्चितः पापकर्मणा । 'अमावितस्य धर्मेण का तस्य श्रद्धाधानता ॥१९॥
 कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च । अत्यन्तदुःखमज्ञानं^१ सम्यक्स्वरहितात्मनाम् ॥२०॥
 अत्युग्रकर्मनिर्मोक्तैर्वेष्टितानां समन्ततः । मिथ्याधर्मानुरक्तानां स्वाहितादूर्वतिनाम् ॥२१॥
 सेनापुरेऽथ दीपिन्या उपास्तिनाम्^२ मावनः । सा च मिथ्याभिमानेन परिपूर्णा निर्गलम् ॥२२॥
 'अश्रद्धाणां संरमत्सरश्चेदधारिणी । दुर्भावा सततं साधुनिन्दनासक्तशब्दिका ॥२३॥
 प्रयच्छति स्वयं नाशं यच्छन्तं नानुमन्यते । निवारयति यत्नेन विद्यमानं सुमर्यपि ॥२४॥

से पीड़ित तथा मोहसे अन्ये मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य श्रद्धा और संवेगसे रहित है तथा हिंसादि पांच पापोंसे निवृत्त नहीं हैं उनकी चतुर्गतिमें भ्रमण करानेवाली गति अर्थात् दशा होती है । उनकी यह गति अत्यन्त उग्र तमोगुण और रजोगुणसे युक्त रहती है ॥१३॥ अभव्य जीवोंकी गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाशसे रहित है और भव्य जीवोंकी गति मोक्ष प्राप्त करनेवाली है अर्थात् अभव्य जीव सदा चतुर्गतिमें ही भ्रमण करते हैं और भव्य जीवोंमें किन्हींका निर्वाण भी हो जाता है ॥१४॥ जहाँ तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और बाकी समस्त आकाश अलोक कहलाता है । संसारके समस्त प्राणी पृथिवी आदि षट्कायको धारण करनेवाले हैं ॥१५॥ यह जीवराशि अनन्त है । इसका क्षय नहीं होता है । इसके लिए बालूके कण, आकाश अथवा चन्द्रमा, सूर्य आदिकी किरणें दृष्टान्त हैं अर्थात् जिस प्रकार बालूके कणोंका अन्त नहीं है, आकाशका अन्त नहीं है और चन्द्र तथा सूर्यकी किरणोंका अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशिका भी अन्त नहीं है ॥१६॥ चर-अचर पदार्थों अर्थात् त्रस-स्थायर जीवोंसे सहित ये तीनों लोक अनादि, अनन्त हैं, स्वकीय कर्मोंके समूहसे सहित हैं तथा नाना योनियोंके जीव इनमें भ्रमण करते रहते हैं ॥१७॥ आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, जो वर्तमानमें सिद्ध हो रहे हैं और जो अनन्त काल तक सिद्ध होंगे वे जिनेन्द्रदेवके द्वारा देखे हुए धर्मोंके द्वारा ही होंगे अन्य किसी प्रकारसे नहीं ॥१८॥ जो पापकर्मोंके कारण संशयरूपी कलंकसे व्याप्त है तथा धर्मकी भावना अर्थात् संस्काररहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है? ॥१९॥ जो मनुष्य श्रद्धासे रहित है उसके धर्म और धर्मके फल कहाँसे प्राप्त हो सकते हैं? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे रहित है, जो अत्यन्त उग्र कर्मरूपी कांचलीसे सब ओरसे वेष्टित हैं, जो मिथ्या धर्ममें अनुरक्त हैं और जो आत्महितसे दूर रहते हैं उन प्राणियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥२०-२१॥

अथानन्तर हस्तिनापुर नगरमें एक उपास्ति नामका गृहस्थ था । उसकी दीपिनी नामकी स्त्री थी । वह दीपिनी मिथ्या अभिमानसे पूर्ण थी, श्रद्धासे रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विषको धारण करनेवाली थी, दुष्ट भावोंसे युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते थे । वह न कभी स्वयं किसीको आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरेकी

१. अनादिमन्त- म. । २. असंस्कृतस्य धर्मभावनारहितस्येति यावत् । ३. विज्ञानं म. । ४. निर्मोक्तैर्वेष्टितानां म. । ५. दुःखवर्तिनां । ६. गृहस्थः इति । ७. अश्रद्धाणां म. ।

एवमादिमहादोषा कुतीर्थपरिभाविता । कालमेत्याश्रमजीमे निष्पारे मवसागरे ॥२५॥
 उपास्तिर्देहि देहीति समभ्यस्याक्षरद्वयम् । पुण्यकर्मानुभावेन पुरेऽन्द्रकपुराह्वये ॥२६॥
 सुतोऽभूद् भद्रधारिण्योर्भाग्यवान् बहुबान्धवः । धारणो नामतस्तस्य पत्नी नयनसुन्दरी ॥२७॥
 देशकालप्रप्लेभ्य साधुभ्यः शुद्धभावतः । दत्त्वासौ पारणां सम्यकाले संत्यज्य विग्रहम् ॥२८॥
 विदेहे धातकीखण्डे मेरोरुत्तरतः कुरौ । भुक्त्वा पत्यत्रयं भोगं समारूढस्त्रिविष्टपम् ॥२९॥
 च्युतोऽतः पुष्कलावत्यां नगर्यां नन्दिघोषतः । वसुधायां समुत्पन्नो नामतो नन्दिवर्धनः ॥३०॥
 नन्दिघोषोऽन्यदा धर्मं श्रुत्वोद्यानं प्रबुद्धवान् । नन्दिवर्धनमाधाय पृथिवीपरिपालने ॥३१॥
 यशोधरमुनेः पार्श्वे प्रव्रज्य सुमहत्तपः । कृत्वा स्वर्गं समारूढस्तनुं त्यक्त्वा यथाविधि ॥३२॥
 गृहिधर्मसमाप्तो नमस्कारपरायणः । पूर्वकोटीं महाभोगान् भुक्त्वा श्रीनन्दिवर्धनः ॥३३॥
 संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा प्रयातः पञ्चमं दिवम् । ततश्च्युतो विदेहेऽस्मिन् गिरिराजस्य पश्चिमे ॥३४॥
 ख्याते शशिपुरे स्थाने विजयाद्धनगोत्तमे । सूर्यजयोऽभवद् विद्युल्लतायां रत्नमालिनः ॥३५॥
 अन्यदा सिंहनगरं रत्नमाली महाबलः । प्रस्थितो विग्रहं कतुं यन्नासौ वज्रलोचनः ॥३६॥
 रथैः प्रमास्वरैर्दिव्यैः पदातिगजवाजिमैः । नानाशस्त्रकृतध्वान्तैः सामन्तैः सुगहाबलैः ॥३७॥

अनुमोदना करती थी । यदि कोई दानादि सत्कार्योंमें प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी । इत्यादि अनेक महादोषोंसे युक्त थी और कुतीर्थकी भावनासे युक्त थी । इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयंकर तथा पाररहित संसार सागरमें भ्रमण करने लगी ॥२२-२५॥ इसके विपरीत उपास्ति 'देहि' 'देहि' अर्थात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरोंका अच्छी तरह अभ्यास कर—अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्मके प्रभावसे अन्द्रकपुरनामा नगरमें भद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्रीके धारण नामका भाग्यशाली एवं अनेक बन्धुजनोसे युक्त पुत्र हुआ । उसकी नयनसुन्दरी नामकी स्त्री थी ॥२६-२७॥

वह योग्य देश तथा कालमें प्राप्त हुए साधुओंके लिए शुद्धभावसे आहार देता था । जिसके फलस्वरूप अन्तमें समाधिपूर्वक शरीरका त्याग कर धातकीखण्डद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रमें मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें विद्यमान कुरुक्षेत्रमें आर्य हुआ । वहाँ तीन पत्य तक भोग भोगकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥२८-२९॥ वहाँसे च्युत होकर पुष्कलावती नगरीमें राजा नन्दिघोष और वसुधा रानीके नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ एक दिन राजा नन्दिघोष उत्कृष्ट धर्म श्रवण कर प्रबोधको प्राप्त हुआ और नन्दिवर्धनको पृथिवी-पालनका भार सौंप यशोधर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा । तथा अन्तमें विधिपूर्वक शरीर त्याग कर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥३१-३२॥

इधर नन्दिवर्धन गृहस्थका धर्म धारण करनेमें लीन एवं पंच-नमस्कार मन्त्रकी आराधना करनेमें तत्पर था । वह एक करोड़ पूर्व तक महाभोगोंको भोग कर तथा संन्याससे शरीर छोड़कर पंचम स्वर्गमें गया । वहाँसे च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्रमें सुमेरु पर्वतके पश्चिमकी ओर विजयाधर्म पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगरमें राजा रत्नमाली और रानी विद्युल्लताके सूर्यजय नामका पुत्र हुआ ॥३३-३५॥

अथानन्तर एक समय महाबलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करनेके लिए उस सिंहपुर नगरकी ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥३६॥ वह देदीप्यमान सुन्दर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अन्धकार उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त बलवान्

१. चन्द्रपुराह्वये म. । २. भद्रनामा पुरुषः, तस्य धारिणी नाम्नी स्त्री तयोः । ३. प्रयत्नेभ्यो म. । ४. स्वर्गम् । ५. पृथुलावत्यां ज. । ६. सुमेरोः ।

तं दष्टोष्ठं धनुःपाणिं कवचावृतविग्रहम् ।^१ दग्धुकामसरिस्थानं क्रोधादाग्नेयविद्यया ॥३८॥
 रथाग्राखण्डमायान्तं वेगिनं भीषणाकृतिम् । नभस्थं सहसा कश्चिदमरोऽभिदधौविति ॥३९॥
 रत्नमालिन् किमाश्रममिदं संरंभमुत्सृज । विबुध्यस्व वदाम्येष वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥४०॥
 इहासीद् भारते वास्ये मांसादोऽधमकर्मकृत् । गान्धार्या भूतिस्वींष्टदुपमन्युः पुरोहितः ॥४१॥
 साधोः कमलगर्भस्य श्रुत्वा व्याकरणं च सः । नाचरामि पुनः पापमिति व्रतमुपाददे ॥४२॥
 पञ्चपत्न्योपमं स्वर्गं तेनायुः समुपार्जितम् । उपमन्यूपदेशेन^३ भस्मसाद्भावमाहृतम् ॥४३॥
 मुञ्चते सुकृतं चासाववस्कन्देन चारिमिः । प्रपत्य हिंसितः साकमुपमन्यु^४ पुरोधसा ॥४४॥
 पुरोहितो गजो जातो युद्धेऽसौ जर्जरीकृतः । संप्राप्य^५ जाप्यमप्राप्तमितरैर्दुःखमाजनैः ॥४५॥
 पुनस्तत्रैव गान्धार्या भूतिपुत्रस्य धीमतः । देव्यां योजनगन्धायां पुत्रोऽभूदरिसूदनः ॥४६॥
 दृष्ट्वा कमलगर्भं च पूर्वं जन्म समस्मरत् । प्रव्रज्यासौ ततो मृत्वा शतारं^६ सुरोऽभवत् ॥४७॥
 स त्वं^७ भूतिमृगो जातो मन्दारण्ये दुराकृतिः । अकामनिर्जरा तस्य दावदग्धस्य^८ भूकुना^९ ॥४८॥
 कम्बोजेन सताकारि यत्त्वया कर्म दारुणम् ।^{१०} किल ज्ञाख्येन मृतस्त्वासीच्छर्करानरकं गतः ॥४९॥
^{११} मया स्नेहानुबन्धेन ततस्त्वं संप्रबोधितः । अयमुद्भूत्य जातोऽसि खमाली खगेश्वरः ॥५०॥

सामन्तोसि सहित था ॥३७॥ जो क्रोधके कारण ओंठ डेंस रहा था, जिसके हाथमें धनुष था, जिसका शरीर कवचसे आच्छादित था, जो आग्नेयविद्यासे शत्रुका स्थान जलाना चाहता था, जो रथके अग्रभागपर आरूढ़ था, जो वेगशाली था एवं भयंकर आकारका धारक था । ऐसे उस रत्नमालीको आकाशमें स्थित देख सहसा किसी देवने इस प्रकार कहा ॥३८-३९॥ कि हे रत्नमालिन् ! तूने यह क्या आरम्भ कर रखा है ? क्रोधको छोड़ और स्मरण कर, मैं तेरा पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ ॥४०॥

‘इसी भरत क्षेत्रकी गान्धारीनामा नगरीमें एक भूति नामका राजा था । उपमन्यु उसके पुरोहितका नाम था । राजा और पुरोहित दोनों ही मांसभोजी तथा नोचकार्य करनेवाले थे ॥४१॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनिका व्याख्यान सुनकर राजा भूतिने व्रत लिया कि अब मैं ऐसे पापका आचरण फिर कभी नहीं करूँगा ॥४२॥ इस व्रतके प्रभावसे उसने इतने पुण्यका संचय किया कि उससे स्वर्गकी पाँच पत्य प्रमाण आयुका बन्ध हो सकता था, परन्तु उपमन्यु पुरोहितके उपदेशसे उसका यह सब पुण्य भस्म-भावको प्राप्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया । उसने उस पुण्यभावको छोड़ दिया । उसी समय शत्रुओंने आक्रमण कर पुरोहितके साथ-साथ उसे मार डाला ॥४३-४४॥ पुरोहितका जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्धमें घायल हो अन्य दुःखी जीवोंको जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पंच तमस्कार मन्त्रको पाकर उसी गान्धारीके राजा भूतिके बुद्धिमान् पुत्रकी योजनगन्धा नामा स्त्रीके अरिसूदन नामका पुत्र हुआ ॥४५-४६॥ कमलगर्भ मुनिराजके दर्शन कर अरिसूदनको पूर्व जन्मका स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्गमें देव हुआ । इस तरह मैं वही पुरोहितका जीव देव हूँ और तू राजा भूतिका जीव मरकर मन्दारण्यनामा वनमें मृग हुआ सो वहाँ दावानलमें जलकर उसने अकाम-निर्जरा की उसके फलस्वरूप वह किलज नामका नीच पुरुष हुआ । उस पर्यायमें तूने जो दारुण कार्य किये—तीव्र पाप किये उनके फलस्वरूप तू शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया ॥४७-४९॥ तदनन्तर स्नेहके संस्कारसे मैंने वहाँ जाकर तुझे सम्बोधा जिसके प्रभावसे निकलकर तू यह

१. दग्धु कामं 'तु काममनसोरपि' इति मलोपः । दग्धकाम म. । २. जगाद । ३. व्याख्यानम् । ४. उपमन्यूपदेशेन व्रतं त्यक्तम् । ५. उपमन्युः पुरोधसा म. । ६. जय्य म. । ७. शतारस्वर्गं । ८. भूतिनामनृपः । ९. दावदग्धस्य म., ख. । १०. नीचपुरुषेण । ११. किलज्जाख्ये वने मृतः सन् शर्करानामनरकं प्राप्तः । १२. महा- म. ।

पर्याप्तानि न किं तानि दुःखानीत्युदितश्च सः । सूर्यजयसुतं राज्ये निधाय कुलनन्दनम् ॥५१॥
वृत्तान्तश्रवणात्तस्मात्परं निर्वेदमीयुषा । सूर्यजयेन सहितं सत्कर्मोदयचेतसा ॥५२॥
रत्नमाली पुनर्नानादुर्गतिरस्तमानसः । ययौ शरणमाचार्यं सौम्यं तिलकसुन्दरम् ॥५३॥
सूर्यजयस्तपः कृत्वा महाशुक्रमुपागमत् । च्युतोऽनरण्यराजर्षेः सुतो दशरथोऽभवत् ॥५४॥
स्वल्पेन सुकृतेन त्वमुपास्तिप्रमुखैर्भवेः । न्यग्रोधबीजवद्वृद्धिं संप्राप्तोऽसि शुभोदयात् ॥५५॥
नन्दिवर्धनकाले ते नन्दिवर्धनपिता च यः । सोऽहं प्रवेयकाद् भ्रष्टः सर्वभूतहितोऽभवम् ॥५६॥
यो भूतिरूपमन्युश्च तावेतौ तद्वशानुगौ । जनको कनकश्चेति जातौ सुकृतचेतसा ॥५७॥
संसारे न परः कश्चिन्नात्मीयः कश्चिद्वज्रसा । सैषा शुभाशुभैर्जन्तोरुद्धर्तपरिवर्तना ॥५८॥
उदाहृतमिदं श्रुत्वा विनोतो वीतसंशयः । अनरण्यसुतो जातः प्रबुद्धः संयमोन्मुखः ॥५९॥
सर्वादरसमेतश्च संपूज्य चरणौ गुरोः । प्रणम्य च विशुद्धात्मा प्रविवेश सुकोशलम् ॥६०॥
एवं च मानसे चक्रे सार्वभूमेश्वरं पदम् । पश्चाद्य सुधिये दत्त्वा साधवीयां श्रये गतिम् ॥६१॥
धर्मात्मा सुस्थिरो रामस्त्रिसमुद्रां वसुन्धराम् । अनुपालयितुं शक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥६२॥
चिन्तयत्येवमेवास्मिन् राज्यमोहपराङ्मुखे । मुक्त्यर्थाहितचेतस्के श्रीमद्दशरथे नृपे ॥६३॥
तिरोधानं गता क्वापि स्वच्छज्योत्स्नापटा शरत् । चन्द्रास्याहिमभीतेव सरीरुहनिरीक्षणा ॥६४॥
प्राप्तः प्रालेयसंपार्तेविच्छायाकृतनीरजः । हेमन्तो जडवातेन व्याकुलीकृतविष्टपः ॥६५॥

रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥५०॥ तूने क्या वे दुःख नहीं पाये हैं ?' इस प्रकार देवके कहते ही रत्न-मालीका मन नाना दुर्गतियोंसे भयभीत हो गया । इस वृत्तान्तके सुननेसे रत्नमालीका पुत्र सूर्यजय भी परम वैराग्यको प्राप्त हो गया इसलिए उस पुण्यात्माके साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यजय-के पुत्र कुलनन्दको राज्य देकर तिलकसुन्दरनामा प्रशान्त आचार्यकी शरणमें पहुँचा ॥५१-५३॥ तदनन्तर सूर्यजय तपकर महाशुक्र स्वर्गमें गया और वहाँसे च्युत हीकर राजर्षि अनरण्यके दशरथ नामका पुत्र हुआ ॥५४॥ सर्वभूतहित भुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्यके द्वारा उपास्ति आदि भवोंमें वटबीजकी तरह शुभोदयसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥५५॥ तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है और नन्दिवर्धनकी पर्यायमें जो तेरा पिता नन्दिवर्धन था वह तप कर प्रवेयक गया और वहाँसे च्युत होकर मैं सर्वभूतहित हुआ हूँ ॥५६॥ तथा उसके अनुकूल रहनेवाले जो भूति और उपमन्युके जीव थे वे पुण्यके प्रभावसे क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥५७॥ वास्तवमें इस संसारमें न तो कोई पर है और न अपना है । शुभाशुभ कर्मोंके कारण जीवका यह जन्म-मरण-रूप परिवर्तन होता रहता है ॥५८॥ इस प्रकार पूर्वभवका वृत्तान्त सुन अनरण्यका पुत्र राजा दशरथ प्रतिबोधको प्राप्त हुआ तथा सब प्रकारका संशय छोड़ विनोत हो संयम धारण करनेके सम्मुख हुआ ॥५९॥ सम्पूर्ण आदरके साथ उसने गुरुके चरणोंकी पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर निर्मल हृदय हो नगरमें प्रवेश किया ॥६०॥ उसने मनमें विचार किया कि यह महामण्डलेश्वरका पद बुद्धिमान् रामके लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥६१॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्तका धारक राम अपने भाइयोंके साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत क्षेत्रकी पृथ्वीका पालन करनेमें समर्थ है ॥६२॥ इस प्रकार राज्यके मोहसे विमुख और मुक्तिके लिए चित्त धारण करनेवाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चाँदनी ही जिसका वस्त्र थी, चन्द्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरदऋतुरूपी स्त्री हिमसे डरकर ही मानो कहीं जा छिपी ॥६३-६४॥ और लगातार हिमके पड़नेसे जिसने कमलोंको कान्तिरहित कर दिया था तथा शीतल वायुसे जिसने समस्त संसारको

स्फुटिताधरपादान्ताः पृष्ठन्यस्तपटञ्चराः । दन्तवीणाकृतस्वाना रुक्म्याकुलमूर्धजाः ॥६६॥
 तित्तिरच्छदन्च्छायक्रोडजङ्घा विभावसोः । सततासेवनात् कुक्षिपूरणायूनचेतसः ॥६७॥
 शरीरच्छायया तुल्याः प्रपक्वत्रपुषत्वचः । दुर्गेहिनीवचःशस्त्रैस्त्यन्तं तष्टमानसाः ॥६८॥
 काष्ठानयनयनासक्ता दिवामास्करतापिताः । कुठारादिधराः स्कन्धौ दधानाः किण्कर्कशौ ॥६९॥
 शाकाम्लखलकाद्यन्तपरिपूरितकुक्षयः । दुःखं नयन्ति तत्कालं दुष्कुटीषु धनोज्झिताः ॥७०॥
 वरप्रासादयातास्तु शीतसङ्गमहारिभिः । संवीताङ्गा वरैर्वस्त्रैर्धूपामोदानुबन्धिभिः ॥७१॥
 षड्रसं स्वादुसंपन्नं हेमरुक्मादिपात्रगम् । सुञ्जानाः सुरमिसिन्धुमाहारं निजलीलया ॥७२॥
 कुङ्कुमप्रविलिताङ्गा असितागुरुधूपिताः । अक्षीणधननिश्चिन्ता गवाक्षकृतवीक्षणाः ॥७३॥
 गीतनृत्यादिसंप्राप्ता विनोदं परमं सदा । माल्यभूषणसंपन्नाः सुभाषितकथोद्यताः ॥७४॥
 विनीताभिः कलाज्ञाभिः सुरूपाभिः समं नराः । क्रीडन्ति वरनारीभिः तदा पुण्यानुभावतः ॥७५॥
 पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुण्येन च दुःखिताः । कर्मणामुचितं लोकः सर्वं फलमुपाप्नुते ॥७६॥
 तदा दशरथो भीतो भृशं संसारवासतः । निर्वृत्यालिङ्गनाकाङ्क्षी विरक्तो भोगवस्तुतः ॥७७॥
 द्वाःस्थमाशापयद्भूमिन्व्यस्तजानुकरं द्रुतम् । भद्राह्वय स्वसामन्तान् मन्त्रिभिः सहितानिति ॥७८॥
 नियुज्यात्मसमं द्वारे शासनं तेन तत्कृतम् । आगतास्ते नमस्कृत्य यथास्थानमवस्थिताः ॥७९॥

व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमन्त काल आ पहुँचा ॥६५॥ जिनके ओठ तथा पैरोंके किनारे फट गये थे, जो पीठपर पुराने चिथड़े धारण किये हुए थे, जिनके दन्त वीणाके समान शब्द कर रहे थे, जिनके मस्तकके बाल रुखे तथा बिखरे हुए थे, निरन्तर अग्निके तापनेसे जिनकी गोद तथा जाँघें तीतरके पंखके समान मटमैली हो गयी थीं, जिनका चित्त पेट भरनेकी चिन्तासे दुःखी रहता था, जो शरीरकी कान्तिसे पके हुए त्रपुषफलके वल्कलके समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भार्याके वचनरूपी शस्त्रोंसे जिनका हृदय छिल गया था, जो लकड़ी आदिके लानेमें लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्यके द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारोंको धारण करते थे तथा जो भट्ट पड़ जानेसे कठोर कन्धोंको धारण करते थे तथा जो शाकभाजी आदिसे पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण-शीर्ण कुटियोंमें उस हेमन्त कालको बड़े कष्टसे व्यतीत करते थे ॥६६-७०॥ और इनसे विपरीत जो अक्षीण धनके कारण निश्चिन्त थे वे उत्तमोत्तम महलोंमें रहते थे, शीतके समागमको हरनेवाले तथा धूपकी सुगन्धिसे सुवासित उत्कृष्ट वस्त्रोंसे उनके शरीर ढके रहते थे, स्वर्ण तथा चाँदी आदिके पात्रमें रखे हुए, छह रसके स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा स्निग्ध आहारको लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशरसे लिप्त तथा कालागुरुकी धूपसे सुवासित रहते थे, उनके नेत्र झरोखोंको ओर झाँका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोदको प्राप्त होते रहते थे, माला तथा आभूषणोंसे युक्त रहते थे, सुभाषितोंके कहनेमें तत्पर रहते थे और विनीत, कलानिपुण तथा सुन्दर रूपकी धारक उत्तम स्त्रियोंके साथ पुण्योदयसे क्रीड़ा करते थे ॥७१-७५॥ आचार्य कहते हैं कि इस संसारमें पुण्यसे सुख प्राप्त होता है और पापसे दुःख मिलता है। प्राणी अपने कर्मोंके अनुरूप ही सब प्रकारका फल प्राप्त करते हैं ॥७६॥

तदनन्तर उस समय संसारवाससे अत्यन्त भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गनकी आकांक्षा करते हुए भोगवस्तुओंसे विरक्त हो गये ॥७७॥ जिसने पृथिवीपर घुटने और हस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपालको उन्होंने तत्काल आज्ञा दी कि हे भद्र ! मन्त्रियोंसे सहित अपने सामन्तोंको बुला लाओ ॥७८॥ द्वारपालने द्वारपर अपने ही समान दूसरे पुरुषको

१. नष्ट-ख. । २. काष्ठानयनयनाशक्त्या म. । ३. तत्कालं म. । ४. दुःखिनो भावो दुःखिता । ५. मुक्तिकान्ता-
 श्लेषणाभिलाषी । ६. भोगवस्तुन- ख., ज., ब. ।

नाथाज्ञापय किं कृत्यमिति चोक्तेन भूभृता । विनीता जगदे^१ संसत् प्रव्रजामीति निश्चितम् ॥८०॥
ततस्तन्मन्त्रिणोऽवोचन् गण्यमानाश्च पार्थिवाः । नाथ किं कारणं जातं मत्तावस्यां तवाधुना ॥८१॥
जगादासौ समक्षं भो^२ तन्वेतत्सकलं जगत् । शुष्कं तृणमिवाजस्रं दृश्यते मृत्युवृद्धिना ॥८२॥
अप्राह्यं यदभ्युपगम्य भव्यानां ग्रहणोचितम् । सुरासुरनमस्कार्यं प्रशस्यं शिवसौख्यदम् ॥८३॥
त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्मं विशुद्धमुपमोज्झितम् । श्रुतं तन्मुनितो जैनं श्रुतमद्य मयाचिरात् ॥८४॥
परमं सर्वभावानां सम्यक्त्वमतिनिर्मलम् । गुरुरादप्रसादेन प्राप्तोऽहं वर्त्म निवृत्तेः ॥८५॥
नानाजन्ममहावर्ता मोहएङ्कलमाकुलाम् । कुतर्कप्राहसं पूर्णां महादुःखोर्मिसंतताम् ॥८६॥
मृत्युकलोलसंयुक्तां कुट्टिजलनिर्भराम् । समाक्रन्दमहारावां विधर्मजयवाहिनीम् ॥८७॥
भवापगां मम स्मृता नरकास्मोधिगामिनीम् । पश्यताङ्गानि कम्पन्ते विन्नासेन समन्ततः ॥८८॥
वृथावोचत मां^३ किंचिदात्मानं मोहिता भृशम् । तमसः प्रकटे देशे कुतः स्थानं रवौ सति ॥८९॥
अभिषिञ्चत मे पुत्रं प्रथमं राज्यपालने । त्वरितं येन निर्विघ्नं प्रविशामि तपोवनम् ॥९०॥
इत्युक्ते निश्चितं ज्ञात्वा महाराजस्य मन्त्रिणः । सामन्ताश्च परं शोकं प्राप्ता विनतमस्तकाः ॥९१॥
लिखन्तो भूमिमङ्गुल्या वाष्पाकुलनिरीक्षणाः । क्षणेन निःप्रभोभूतास्तस्थुर्मौनं समाश्रिताः ॥९२॥
प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा निर्ग्रन्थव्रतसंश्रयम् । एकीभूतं शुचं प्राप्तं सर्वमन्तःपुरं परम् ॥९३॥

नियुक्त कर राजाज्ञाका पालन किया । सामन्त और मन्त्रीगण आकर तथा नमस्कार कर यथा-
स्थान बैठ गये ॥७९॥ उन्होंने राजासे कहा कि हे नाथ ! आज्ञा दीजिए, क्या कार्य है ? तब
राजाने विनयसे भरी सभासे कहा कि मैंने निश्चय किया है कि 'दीक्षा धारण करूँ' ॥८०॥
तदनन्तर मन्त्रियों तथा गण्यमान-प्रमुख राजाओंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपकी ऐसी
बुद्धिके उत्पन्न होनेमें क्या कारण है ? ॥८१॥ तब राजाने कहा कि अये ! यह समस्त संसार सूखे
तृणके समान निरन्तर मृत्युरूपी अग्निसे जल रहा है इस बातको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥८२॥
आज मैंने अभी-अभी मुनिराजके मुखसे जिनेन्द्रप्रणीत उस शास्त्रका श्रवण किया है कि जिसे
अभय जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो भय जीवोंके ग्रहण करनेके योग्य है, सुर और असुर जिसे
नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुखको देनेवाला है, तीन लोकमें प्रकट है, सूक्ष्म है । विशुद्ध
है तथा उपमासे रहित है ॥८३-८४॥ समस्त भावोंमें सम्यक्त्व भाव ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव
है, यही मुक्तिका मार्ग है । गुरु चरणोंके प्रसादसे आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥८५॥ जिसमें
नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो मोहरूपी कीचड़से भरी है, कुतर्करूपी मगरमच्छोंसे
व्याप्त है, महादुःखरूपी तरंगोंसे युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोलोंसे सहित है, मिथ्यात्वरूपी जलसे भरी
है, जिसमें रुदनरूपी भयंकर शब्द हो रहा है, जो विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्मरूपी वेगसे बह रही है
तथा नरकरूपी समुद्रके पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदीका स्मरण कर देखो । भयसे मेरे
अंग सब ओरसे कम्पित हो रहे हैं ॥८६-८८॥ आप लोग मोहके वशीभूत हो व्यर्थ ही कुछ मत
कहिए अर्थात् मुझे रोकिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थानमें सूर्यके विद्यमान रहते अन्धकारका निवास
कैसे हो सकता है ? ॥८९॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्रका शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं
निर्विघ्न हो तपोवनमें प्रवेश कर सकूँ ॥९०॥ ऐसा कहनेपर महाराजका दृढ़ निश्चय जानकर
मन्त्री तथा सामन्तवर्ग परम शोकको प्राप्त हुए । सभीके मस्तक नीचे हो रहे ॥९१॥ वे अँगुलीसे
भूमिको खोदने लगे, उनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त हो गये और सभी क्षणभरमें प्रभाहीन हो
चुपचाप बैठ रहे ॥९२॥ 'प्राणनाथ निश्चितरूपसे निर्ग्रन्थ व्रतको धारण करनेवाले हैं' यह सुनकर

विनोदान् प्रस्तुतान्मुक्त्वा वाष्पपूरितलोचनाः । भूषणस्वनभूयिष्ठं रुद्रदुः प्रमदाङ्गनाः ॥९४॥
 पितरं तादृशं दृष्ट्वा भरतः प्रतिबुद्धवान् । अचिन्तयद्दहो कष्टं दुःखेयं स्नेहबन्धनम् ॥९५॥
 अव्यापारेण तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राज्यगता कास्य प्रवर्ज्या कर्तुमिच्छतः ॥९६॥
 आपृच्छया न मे किञ्चित्कार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारक्षयकारणम् ॥९७॥
 देहेनापि किमेतेन व्याधिगोहेन नाशिता । बान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगिषु ॥९८॥
 जन्तुरेकक एवायं^२ भवपादपसंकुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुरुते परिवर्तनम् ॥९९॥
 ततः कलाकलापज्ञा भरतस्येङ्गितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुचमम् ॥१००॥
 कथं मे न भवेद् भर्ता न च पुत्रो गुणालयः । एतयोर्वारेण कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥१०१॥
 एवं चिन्तामुपेतायाः परमं व्याकुलात्मनः । तस्या वरोऽभवच्चित्ते गत्वा च त्वरितं ततः ॥१०२॥
 प्रीत्या परमया दृष्ट्वा सावष्टम्भं नराधिपम् । जगादार्धसिने स्थित्वा तेजसा पुरुणान्विता ॥१०३॥
 सर्वेषां मूर्ध्नां नाथ पत्नीनां च पुरस्त्वया । मनीषितं ददामीति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥१०४॥
 वरं संप्रति तं यच्छ मह्यं सत्यसमुज्ज्वला^३ । दानेन तेऽखिलं लोकं कीर्तिर्भ्रमति निर्मला ॥१०५॥
 ततो दशरथोऽबोधूँ ब्रूहि त्वं दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व यदिष्टं ते यच्छाम्येष वराशये ॥१०६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो परम शोकको प्राप्त हुआ ॥९३॥ छियोंने जो विनोद प्रारम्भ कर रखे थे उन्हें छोड़कर आसुओंसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणोंका अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करने लगीं ॥९४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ । वह विचार करने लगा कि अहो ! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥९५॥ वह सोचने लगा कि सम्यक्-ज्ञानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थात् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? ॥९६॥ मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥९७॥ रोगोंके धरस्वरूप इस नश्वर शरीरसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बन्धु जो अपने-अपने कर्मका फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥९८॥ मोहसे अन्धा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृक्षोंसे व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥९९॥

तदनन्तर कलाओंके कलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥१००॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही मेरे नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत हैं । इन दोनोंको रोकनेके लिए मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ ? ॥१०१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयकी धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर माँगनेकी बात याद आ गयी ॥१०२॥ वह अपने विचारोंमें दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गयी और बहुत भारी तेजके साथ अर्द्धसिनपर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा' । सो हे नाथ ! इस समय वह वर मुझे दीजिए । सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥१०३-१०५॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये ! तू अपना अभिप्राय बता । हे उत्कृष्ट अभिप्रायकी धारण करनेवाली प्रिये ! जो तुझे इष्ट हो सो माँग । अभी देता

१. तावस्य म. । २. -रेककया वायं म. । ३. कीर्तिसमुज्ज्वला म. । ४. रक्तवादीक्षणां ज., ख., ब. ।

इत्युक्ते मुञ्चती वाष्पमचोचज्ज्ञातनिश्चया । कथं नाथ त्वया चेतः कृतं निष्ठुरमीदृशम् ॥१०७॥
 वद किं कृतमस्माभिर्येनासि त्यक्तमुद्यतः । ननु जीवितमायत्तमस्माकं त्वयि पार्थिव ॥१०८॥
 अत्यन्तं दुर्घरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिवसत्तमैः । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्तामघ भवता कृता ॥१०९॥
 देवेन्द्रसदृशैर्भोगैरिदं ते लालितं वपुः । कथं वक्ष्यति जीवेश श्राम्ण्यं विविधं परम् ॥११०॥
 एवमुक्तो जगादासौ कान्ते सत्त्वस्य को भरः । वाञ्छितं वद कर्तव्यं स्वयं यास्यामि सांप्रतम् ॥१११॥
 इत्युक्ता लिखती क्षोणीं प्रदेशिन्या नतानना । जगाद नाथ पुत्राय मम राज्यं प्रदीयताम् ॥११२॥
 ततो दशरथोऽवोचत्प्रिये कास्मिन्नपत्रया । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तः सांप्रतं गृह्यतामसौ ॥११३॥
 एवमस्तु शुचं मुञ्च निर्ऋणोऽहं त्वया कृतः । किं वा कदाचिदुक्तं ते मया जनितमन्यथा ॥११४॥
 पञ्चं लक्षणसंयुक्तमाह्वय च कृतानतिम् । ऊचे विनयसंपन्नं किञ्चिद्विगतमानसः ॥११५॥
 वत्स पूर्व रणे घोरे कलापारगयानया । कृतं केकयया साधु सारथ्यं मम दक्षया ॥११६॥
 तदा तुष्टेन पत्नीनां भूभृतां च पुरो मया । मनीषितं प्रतिज्ञातं नीतं न्यासत्वमेतया ॥११७॥
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽधुना । किमप्याकृतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विनी ॥११८॥
 प्रतिज्ञाय तदेदानीं ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रव्रज्यां भरतः कुर्यात् संसारालम्बनोऽज्ज्ञितः ॥११९॥
 इयं च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविसर्जनम् । अमेच्च मम लोकेऽस्मिन्नकीर्तिर्वितथोद्भवा ॥१२०॥

हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी आंसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? बताइए, हम लोगोंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे आप हम लोगोंको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके अधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्र-भगवान्‌के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगोंसे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता ! जो मुझे करना है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रदेशिनीनामा अंगुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋणमुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्षणोंसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ खिन्न चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पार-गामिनी इस चतुर केकयीने पहले भयंकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय सन्तुष्ट होकर मैंने पत्नियों तथा राजाओंके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय इसने वह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार माँग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो संसारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति

मर्यादा न च नामेयं यद्विहायाग्रजं क्षमम् । राज्यलक्ष्मीवधूसङ्गं कनीयान् प्राप्यते सुतः ॥१२१॥
 भरतस्याखिले राज्ये दत्ते स त्वं सलक्ष्मणः । क गच्छेत्परमं तेजो ध्यानः क्षत्रगोचरम् ॥१२२॥
 तदहं वत्स नो वेद्मि किं करोमीति पण्डित । अत्यन्तदुःखवेगो रुद्धिना वार्तान्तरस्थितः ॥१२३॥
 ततः पद्मो जगादैवं बिभ्रद्विनयमुत्तमम् । सद्भावप्रीतिचेतस्कः पादन्यस्तनिरीक्षणः ॥१२४॥
 तात रक्षात्मनः सत्यं स्थजास्मत्परिचिन्तनम् । शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते ॥१२५॥
 जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्तव्यं गृहैषिणा । येन नो पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गच्छतः ॥१२६॥
 पुनाति त्रायते चार्यं पितरं येन शोकतः । एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१२७॥
 सभानुरञ्जनी यावत्कथेयं वर्तते तयोः । तावद्भवं निहन्मीति कठोरीकृतमानसः ॥१२८॥
 सौधादवतरन्वेगालोकहाकारनादितः । निरुद्धो भरतः पित्रा स्नेहविकलवचेतसा ॥१२९॥
 उपविश्याङ्गमारोप्य परिष्वज्य सत्सुञ्चितम् । इति चाभिदधे भूमौ तिष्ठानुर्वशाः पितुः ॥१३०॥
 राज्यं पालय वत्स त्वमहं यामि तपोवनम् । स जगौ न भजे राज्यं प्राप्यज्यं तु करोम्यहम् ॥१३१॥
 भज तावत्सुखं पुत्र सारं मनुजजन्मनः । नवेन वयसा कान्तः वृद्धः संप्रव्रजिष्यसि ॥१३२॥
 इत्युक्तेऽभिदधे तात किं मोहयसि मां वृथा । मृत्युः प्रतीक्षते नैव बालं तरुणमेव वा ॥१३३॥
 गृहाश्रमे महावत्स श्रूयते धर्मसंचयः । अशक्यः कुनरैः कर्तुं कुरुते राज्यसंगतः ॥१३४॥

इस संसारमें सर्वत्र फैल जावेगी ॥१२०॥ साथ ही यह मर्यादा भी नहीं है कि समर्थ बड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य-लक्ष्मीरूपी स्त्रीका समागम प्राप्त कराया जाये ॥१२१॥ जब भरतके लिए समस्त राज्य दे दिया जायेगा तब क्षत्रिय-सम्बन्धी परम तेजकी धारण करनेवाले तुम लक्ष्मण-के साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नहीं जानता हूँ । तुम पण्डित-निपुण पुरुष हो । अतः बताओ कि इस दुःखपूर्ण बहुत भारी चिन्ताकी बातके मध्यमें स्थित रहनेवाला मैं क्या करूँ ? ॥१२२-१२३॥

तदनन्तर उत्तम अभिप्रायके कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि पेरों पर लगाये हुए थे ऐसे रामने उत्तम विनयको धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिता-जी ! आप अपने सत्य-व्रतकी रक्षा कीजिए और मेरी चिन्ता छोड़िए । यदि आप अपकीर्तिको प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्रकी लक्ष्मीसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२४-१२५॥ निश्चयसे उत्पन्न हुए तथा घरकी इच्छा रखनेवाले पुत्रको वही कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किंचित् भी शोक-को प्राप्त न हों ॥१२६॥ जो पिताको पवित्र करे अथवा शोकसे उसकी रक्षा करे यही पुत्रका पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१२७॥

इधर जबतक पिता-पुत्रके बीच सभाको अनुरक्त करनेवाली यह कथा चल रही थी तबतक 'मैं संसारको नष्ट करूँ' ऐसा दृढ़ निश्चय कर भरत महलसे नीचे उतर पड़ा । यह देख लोग हाहाकार करने लगे । पिताने स्नेहसे दुःखी चित्त होकर उसे रोका । वह पिताका आज्ञाकारी था अतः रुककर सामने पृथिवीपर खड़ा होना चाहता था; परन्तु पिताने उसे गोदमें बैठकर उसका आलिंगन किया, चुम्बन किया और इस प्रकार कहा कि 'हे पुत्र ! तू राज्यका पालन कर । मैं तपोवनके लिए जा रहा हूँ' । इसके उत्तरमें भरतने कहा कि मैं राज्यकी सेवा नहीं करूँगा, मैं तो दीक्षा धारण कर रहा हूँ ॥१२८-१२९॥ यह सुनकर पिताने कहा कि हे पुत्र ! अभी तू नवीन वयसे सुन्दर है अतः मनुष्य-जन्मका सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर । पीछे वृद्ध होनेपर दीक्षा धारण करना ॥१३०॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिताजी ! मुझे व्यर्थ ही क्यों मोहित कर रहे हो । मृत्यु बालक अथवा तरुणकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥१३१॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थाश्रममें भी तो धर्मका संचय सुना जाता है ।

१. पीडितं म. । २. सद्भावः प्रीति -व. । ३. भवति हन्मीति म. (?) । ४. स्थातुमिच्छुः ।

इत्युक्तोऽभिदधे तात हृषीकेशवर्तिनः । कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥१३५॥
 मुनीनां वत्स केषांचिद्वेनैकेन जायते । नैव मुक्तिस्ततो धर्मं कुरु सद्गन्धर्वस्थितः ॥१३६॥
 इत्युक्तोऽभिदधे तात यद्यप्येवं तथापि किम् । गृहधर्मेण तस्मिन् हि मुक्त्यभावः सुनिश्चितः ॥१३७॥
 अपि चानुक्रमान्मुक्तिर्न ममान्यस्य सोचिता । गरुडः किं पतङ्गानां वेगेन सदृशो भवेत् ॥१३८॥
 कान्तार्विषा परं दाहं व्रजन्तः कुत्सिता नराः । जिह्वाधमाङ्गकार्याणि कुर्वन्ते न च निर्धृतिः ॥१३९॥
 निक्षिप्यते हि कामाग्नौ^१ मोगसर्पिर्यथा यथा । नितरां वृद्धिमायाति तापकृत्स तथा तथा ॥१४०॥
 भुक्त्वा भोगान् दुरुत्पादान् दूरक्षान् क्षणभङ्गिनः । निधतं दुर्गतिं याति पापात् परमदुःखदम् ॥१४१॥
 अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्मसौख्यम् । करोमि विधिनारण्ये तपोनिवृत्तिकारणम् ॥१४२॥
 अथ गेहेऽपि लभ्येत श्रेयो जनक वैवृत्तम्^२ । त्वमेव कुरुषे कस्मादस्य त्यागं महामते ॥१४३॥
 तार्यते दुःखतो यस्मात्तवऽवाभ्यनुमोदते । एतत्तातस्य तातत्वं प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥१४४॥
 जीवितं वनितामिष्टं पितरं मातरं धनम् । आतरं च परित्यज्य याति जीवोऽयमेककः ॥१४५॥
 सुचिरं देवभोगेऽपि यो न तृप्तो हताशकः । स कथं तृप्तिमागच्छेन्मनुष्यमवभोगकैः ॥१४६॥
 पिता तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमा प्रमोदतः । जगाद वत्स धन्योऽसि विबुद्धो भव्यकेसरी ॥१४७॥

यद्यपि क्षुद्र मनुष्य इसे नहीं कर सकते हैं पर जो उत्तम पुरुष हैं वे तो राज्य पाकर भी करते ही हैं ॥१३४॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिताजी ! जो इन्द्रियोंके वशीभूत है तथा काम-क्रोधादिसे परिपूर्ण है ऐसे गृहसेवी मनुष्यकी मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१३५॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे वत्स ! एक भवमें मुक्ति किन्हीं विरले ही मुनियोंको प्राप्त होती है । अधिकांश मुनियोंको मुक्ति नहीं मिलती । इसलिए घरमें रहकर ही धर्म धारण करो ॥१३६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिताजी ! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रमसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती यह बिलकुल निश्चित है ॥१३७॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रमसे नहीं होगी । मैं तो इसी भवसे प्राप्त करूँगा । अनुक्रमसे होनेवाली मुक्ति दूसरे हीके योग्य है । क्या गरुड वेगसे अन्य पक्षियोंके समान होता है ? ॥१३८॥ क्षुद्र मनुष्य कामरूपी ज्वालासे परम दाहको प्राप्त होते हुए जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें सन्तोष प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥ कामरूपी अग्निमें ज्यों-ज्यों भोगरूपी घी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होती है और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥१४०॥ प्रथम तो ये भोग बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं फिर इनकी रक्षा करना कठिन है । ये देखते-देखते क्षण-भरमें नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगनेवाला व्यक्ति पापके कारण नियमसे परम दुःख देनेवाली दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥१४१॥ हे पिताजी ! मैं संसारसे अत्यन्त भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए । जिससे मैं वनमें जाकर विधिपूर्वक मोक्षका कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥१४२॥ हे पिताजी ! यदि मोक्ष-सम्बन्धी सुख घरमें भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे हैं ? आप तो महाबुद्धिमान् हैं ॥१४३॥ जो पुत्रको दुःखसे तारे और तपकी अनुमोदना करे यही तातका तातपना है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१४४॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदिको छोड़कर अकेला ही जाता है ॥१४५॥ जो अभागा चिरकाल तक देवोंके भोग भोगने-पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भवके तुच्छ भोगोंसे किस प्रकार सन्तोष प्राप्त करेगा ? ॥१४६॥

पिता दशरथ भरतके उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये । हर्षसे उनके शरीरमें रोमांच

तथापि धीर नो भङ्गः कदाचित्प्रणयस्य मे । त्वया कृतो विनीतानां भवान् हि शिरसि स्थितः ॥१४८॥
 शृणु सारथ्यतुष्टेन मयाजौ^१ जीवसंशये । प्रतिज्ञातं जनन्यास्ते वाञ्छितं नृपसाक्षिकम् ॥१४९॥
 ऋणतां तच्चिरं नीतमद्याहं^२ याचितोऽनया । राज्यं प्रयच्छ पुत्रस्य ममेति बहुमानतः ॥१५०॥
 स त्वं निष्कण्टकं तात राज्यं शक्रोपमं कुरु । असत्यसंधा^३ कीर्तिर्मे साभ्रमीन्निखिलं जगत् ॥१५१॥
 इयं च तव शोकेन परमेणावितापिता । माता त्रियेत सौख्येन सततं लालिताङ्गिका ॥१५२॥
 न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ । अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ॥१५३॥
 ततः पद्मोऽपि तत्पाणौ गृहोत्थैवमभाषत । प्रेमनिर्भरया पश्यन् दृष्ट्वा मधुरनिस्वनः ॥१५४॥
 तातेन श्रातरुवत्तं यत्कोऽन्यस्तद्गदितुं क्षमः । नहि सागररत्नानामुपपत्तिः सरसो भवेत् ॥१५५॥
 वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम् । कुरु राज्यं पितुः कीर्तिरद्यातु शशिनिर्मला ॥१५६॥
 इयं च शोकतडागा माता यद्याति पञ्चताम् । न तद्युक्तं महामोगे नन्दने त्वादृशे सति ॥१५७॥
 पितुः पालयितुं सत्यं त्यजामोऽपि वयं तनुम् । कथं त्वं तु कृतं प्राज्ञः श्रियं न प्रतिपद्यसे ॥१५८॥
 नद्यां गिरावरण्ये वा तत्र वासं करोम्यहम् । तत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५९॥
 भागं सर्वं परित्यज्य पन्थानमपि संश्रितः । न करोमि पृथिव्यां ते कांचित्प्रीडां गुणालयः ॥१६०॥
 माश्वसीदीर्घमुष्णं च मुञ्च तावद्भवाङ्गयम् । कुरु वाक्यं पितुः क्षोणीं रक्ष न्यायपरायणः ॥१६१॥

निकल आये । वे बोले कि हे वत्स ! तू धन्य है, सचमुच ही तू प्रतिबोधको प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भव्य है ॥१४७॥ फिर भी हे धीर ! तूने कभी भी मेरे स्नेहका भंग नहीं किया । तू विनयी मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ है ॥१४८॥ सुन, एक बार युद्धमें मेरे प्राणोंका संशय उपस्थित हुआ था । उस समय तेरी माताने सारथिका कार्य कर मेरी रक्षा की थी । उससे सन्तुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओं-के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि 'यह जो कुछ चाहेगी वह दूँगा' ॥१४९॥ मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना ऋण था सो इसने आज मुझसे माँगा है । इसने बड़े सम्मानके साथ कहा है कि मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए ॥१५०॥ इसलिए हे पुत्र ! तू इन्द्रके समान यह निष्कण्टक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञाके कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसारमें भ्रमण नहीं करे ॥१५१॥ और जिसका शरीर मुखसे निरन्तर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोकसे दुःखी होकर प्राण छोड़ देगी ॥१५२॥ अपत्य अर्थात् पुत्रका अपत्यपना यही है कि जो माता-पिताको शोकरूपी महासागरमें नहीं गिरने देता है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥१५३॥

तदनन्तर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे भाई ! पिताजीने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है ? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्रके रत्नोंकी उत्पत्ति सरोवरसे नहीं हो सकती ॥१५४-१५५॥ अभी तेरी अवस्था तप करनेके योग्य नहीं है । इसलिए राज्य कर जिससे पिताकी चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्ति फैले ॥१५६॥ जिसका शरीर शोकसे सन्तप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्रके रहते हुए यदि मरणको प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा ॥१५७॥ पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए हम शरीरको भी छोड़ सकते हैं । फिर तू बुद्धिमान् होकर भी लक्ष्मीको क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है ? ॥१५८॥ मैं किसी नदीके किनारे, पर्वत अथवा वनमें वहाँ निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर ॥१५९॥ हे गुणोंके आलय ! मैं अपना सब भाग छोड़ मार्गका ही आश्रय ले रहा हूँ । मैं पृथ्वीपर तुझे कुछ भी पोड़ा नहीं पहुँचाऊँगा ॥१६०॥ इसलिए लम्बी और गरम साँस मत ले, संसारका भय छोड़, पिताकी बात

इक्ष्वाकूणां कुलं श्रीमद्भूषयामलविभ्रमम् । अत्यन्तविपुलं भ्रातः शशी ग्रहकुलं यथा ॥१६२॥
 भ्राजते त्रायमाणः सन् वाक्यं तत्पितृकस्य यत् । लब्धवर्णैरिदं भ्रातुर्भ्रातृत्वं परिकीर्तितम् ॥१६३॥
 इत्युक्त्वा भावतः पादौ शिरसा भूतलस्पृशा । पितुः प्रणम्य तत्पाश्वर्निर्गतौ लक्ष्मणान्वितः ॥१६४॥
 अत्रान्तरे नृपो मूर्छां संप्राप्तोऽपि न केनचित् । ज्ञातः स्तम्भसमायुक्तवपुः पुस्तसमाकृतिः ॥१६५॥
 स तूर्णं धनुरादाय गत्वा नत्वा च मातरम् । आपृच्छ्य तां च गच्छामि तावदन्यमहीमिति ॥१६६॥
 सखीत्वं मूर्छया तस्या दुःखज्ञाननिवारणात् । क्षणं कृतं परिप्राप्तसंज्ञा चास्त्राकुलेक्षणा ॥१६७॥
 ऊचेऽपराजिता हा त्वं वत्स क प्रस्थितोऽसि माम् । कस्माच्च जसि सञ्चेष्ट क्षिप्त्वा शोकमहोदधौ ॥१६८॥
 मनोरथशतैः पुत्र त्वं प्राप्तो दुर्लभो मया । प्रारोह इव शाखाया मातुरालम्बनं सुतः ॥१६९॥
 परिदेवनमेवं तां कुर्वन्वीं हृदयङ्गमम् । जगाद प्रणतः पद्मो मातृमक्तिपरायणः ॥१७०॥
 अम्ब मा गान् विषादं त्वं दक्षिणस्यामहं दिशि । निरूप्य संश्रयं योग्यं नेष्यामि त्वां विसंशयम् ॥१७१॥
 तातेन पृथिवी दत्ता जननीवरदानतः । मरतायेति ते कर्णजाहं नूनमुपागतम् ॥१७२॥
 अन्ते तस्या महारण्ये विन्ध्याद्वौ मलयेऽथवा । अन्यस्मिन् चार्णवस्यान्ते पश्य मातः कृतं पदम् ॥१७३॥
 मयि स्थिते समीपेऽस्मिन् लोके मास्करसंमते । आज्ञैश्वर्यमयी कान्तिर्भरतेन्दोर्न जायते ॥१७४॥
 ततः प्रहृती माता जगादात्यन्तदुःखिता । पुत्रं विनतमाश्लिष्य स्नेहकातरलोचना ॥१७५॥

ज्ञान और न्यायमें तत्पर रहकर पृथ्वीकी रक्षा कर ॥१६१॥ हे भाई ! जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहोंके समूहको अलंकृत करता है उसी प्रकार तु इक्ष्वाकुओंके इस लक्ष्मीसम्पन्न, निर्मल एवं अत्यन्त विशाल कुलको अलंकृत कर ॥१६२॥ जो पिताके वचनकी रक्षा करता हुआ देदीप्यमान होता है वही भाईका भाईपन है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥१६३॥ इतना कहकर राम पृथ्वीतलका स्पर्श करनेवाले शिरसे भावपूर्वक पिताके चरणोंमें प्रणाम कर लक्ष्मणके साथ उनके पाससे चले गये ॥१६४॥ इसी बीचमें यद्यपि राजा दशरथ मूर्च्छाको प्राप्त हो गये तो भी किसीको इसका पता नहीं चला क्योंकि वे जिस खम्भासे टिककर बैठे हुए थे मूर्च्छाके समय भी पुतलेके समान उसी खम्भासे टिके बैठे रहे ॥१६५॥ राम शीघ्र ही धनुष उठाकर माताके पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मैं अन्य पृथ्वी अर्थात् देशान्तरको जाता हूँ ॥१६६॥ रामकी बात सुनकर माताको मूर्च्छा आ गयी सो मानो दुःखका ज्ञान रोककर उसने सखीका कार्य किया । तदनन्तर क्षणभरके बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब आँखोंमें आँसू भरकर माता अपराजिता (कौसल्या) बोली कि हाय वत्स ! तू कहाँ जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टाके धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागरमें डालकर क्यों छोड़ रहा है ? ॥१६७-१६८॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ों मनोरथोंके बाद मैंने तुझे पाया है । जिस प्रकार शाखाका आलम्बन प्रारोह अर्थात् पाया होता है उसी प्रकार माताका आलम्बन पुत्र होता है ॥१६९॥ इस प्रकार हृदयमें चुभनेवाला विलाप करती हुई माताको प्रणाम कर मातृभक्तिमें तत्पर रहनेवाले रामने कहा कि माता ! तुम विषादको प्राप्त मत होओ । मैं दक्षिण दिशामें योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले जाऊँगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१७०-१७१॥ 'पिताने, केकयी माताको वरदान देनेके कारण पृथ्वी भरतके लिए दे दी है' यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥१७२॥ अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अन्तमें किसी महाअटवीमें, विन्ध्याचलमें, मलयपर्वतपर अथवा समुद्रके निकट किसी अन्य देशमें हे माता ! अपना स्थान बनाऊँगा ॥१७३॥ सूर्यके समान जब-तक मैं इस देशके समीप ही रहूँगा तबतक भरतरूपी चन्द्रमाकी आज्ञा ऐश्वर्यसे सम्पन्न नहीं हो सकेगी ॥१७४॥ तदनन्तर जो अत्यन्त दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेहसे कातर हो उठे थे ऐसी माता

१. कौसल्या, रामजननी । २. कर्णयोर्मूलमिति कर्णजाहम् ।

तनयाद्यैव मे गन्तुमुचितं भवता समम् । कथं त्वाहमपश्यन्ती प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥१७६॥
 पिता नाथोऽथवा पुत्रः कुलस्त्रीणां त्रयो गतिः । पितातिक्रान्तकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सुकः ॥१७७॥
 जीवितस्य त्वमेवैकः सांप्रतं मेऽवलम्बनम् । त्वयापि रहिता साहं वद गच्छामि कां गतिम् ॥१७८॥
 सोऽवोचदुपलैरम्ब क्षितिरित्यन्तर्कशः । भवत्या विषमा पञ्चयां गन्तुं सा शक्यते कथम् ॥१७९॥
 तस्मादेकक एवाहं विधाय सुखमाश्रयम् । यानेन केनचिन्ध्ये भवन्तीं त्यजन् कुतः ॥१८०॥
 यथा स्पृशामि ते मातः पादावेष तथा ध्रुवम् । आगमिष्यामि नेतुं त्वो सुखं कार्यविचक्षणे ॥१८१॥
 एवमुक्ते विमुक्तः सन् परितान्त्व्य सुभाषितैः । पुनश्च पितरं प्राप्तप्रबोधं प्रणिपत्य सः ॥१८२॥
 शेषं मातृजनं नत्वा परितान्त्व्य सुभाषितैः । अविषण्णमहाचेताः सर्वन्यायविचक्षणः ॥१८३॥
 भ्रातृबन्धुपरिष्वङ्गं कृत्वा संभाषणं तथा । सीतायाः सदनं प्राप्तः प्रेमनिर्भरमानसः ॥१८४॥
 प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम् । ततो जगद् साध्वी सा यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥१८५॥
 मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वान् परिवर्गं च सादरम् । आपृच्छच्छेकवर्गेऽपि भाषणालापताकुलः ॥१८६॥
 प्रीत्या संवर्धितं भूयः कृतालिङ्गनमादृतम् । मित्रवर्गं सवाग्वाक्षं पुनरुक्तं न्यदत्तयत् ॥१८७॥
 स्निग्धेन चक्षुषा पश्यन् प्रधानान्वाजिवारणान् । निरगच्छत्पितुर्गोहान्मन्दरस्थिरमानसः ॥१८८॥

रोतो हुई, नम्रीभूत पुत्रका आलिगन कर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुझे बिना देखे मैं प्राण धारण करनेके लिए कैसे समर्थ हो सकूंगी ? ॥१७५-१७६॥ पिता, पति अथवा पुत्र ये तीन ही कुलवती स्त्रियोंके आधार हैं । इनमें मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हैं इस प्रकार इस समय मेरे जीवनका आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो बता मैं किस दशाको प्राप्त होऊँ ॥१७७-१७८॥ यह सुन रामने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पथरोंसे अत्यन्त कठोर है आप इस ऊँची-नीची पृथ्वीपर पैरोंसे किस प्रकार चल सकोगी ? ॥१७९॥ इसलिए मैं अभी अकेला ही जाता हूँ फिर सुखकारी कोई स्थान ठीक कर किसी यानके द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अतः आपका छोड़ना कैसे हुआ ? ॥१८०॥ हे माता ! मैं आपके चरणोंका स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपको ले जानेके लिए अवश्य ही आऊँगा । हे कार्यके सगझनेमें निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दे ॥१८१॥ रामके ऐसा कहनेपर माताने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी । अब तक पिता दशरथ प्रबोधको प्राप्त हो चुके थे इसलिए रामने पुनः पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८२॥ अपराजिताके सिवाय अन्य माताओंको नमस्कार कर अनेक मधुर वचनोंसे उन्हें सान्त्वना दी, भाई-बन्धुओंका आलिगन कर उनके साथ मधुर सम्भाषण किया और तदनन्तर जिनका उदार हृदय विषादसे रहित था, तथा जो सर्व प्रकारके न्यायमें निपुण थे ऐसे राम हृदयको प्रेमसे भरकर सीताके महलमें पहुँचे ॥१८३-१८४॥ राम बोले कि—‘हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मैं दूसरे नगरको जाता हूँ’ । तदनन्तर उस पतिव्रताने एक ही उत्तर दिया कि ‘जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी’ ॥१८५॥ इसके पश्चात् रामने समस्त मन्त्रियोंसे, राजाओंसे तथा परिवारके अन्य लोगोंसे बड़े आदरके साथ पूछा । नगरमें जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनके साथ बड़ी तत्परतासे वार्तालाप किया ॥१८६॥ इस समय प्रीतिवश बहुतसे मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिगन कर रहे थे, आदरसे भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे । रामने अनेक बार कहकर उन्हें वापस लौटाया ॥१८७॥ तदनन्तर जिनका मन मेरु पर्वतके

१. त्वं म. । २. परितान्त्वा म. । ३. गत्वा म., ज्ञात्वा क., ख. । ४. जानकीन्यस्तविस्तारिलोचनप्रशयान्वितः म., ज., क., ख. एषु पुस्तकेषु इतोऽग्रे ‘प्रिये त्वं तिष्ठ’ इत्यादिश्लोको नास्त्येव । ५. च्छेपवर्गेऽपि म. । ६. भीषणालाप म. । ७. मारतं म. ।

आहुदौकन् द्रुतं चौरं सोमन्ता वाजिवारणम् । पश्येन न गृहीतास्ते परमन्यायवेदिना ॥१८९॥
 विदेशगमनोद्युक्तं दृष्ट्वा तं जानकी भृशम् । श्रीमदंशुकसंवीता विकसत्पद्मलोचना ॥१९०॥
 प्रणम्य श्वसुरं श्वश्रूःपृच्छच्च च सुहृज्जनम् । विनीतानुययौ नाथं पौलोमीव सुराधिपम् ॥१९१॥
 दृष्ट्वा तमुद्यतं गन्तुं स्नेहनिर्भरमानसः । लक्ष्मणोऽचिन्तयत् क्रोधं वहन्नयनलक्षकम् ॥१९२॥
 अन्यायमोदृशं कर्तुं कथं तातेन वाञ्छितम् । स्वार्थसंसक्तनित्याशं धिक् स्त्र्येणमनपेक्षितम् ॥१९३॥
 अहो महानुभावोऽयं ज्यायान् पुरुषसत्तमः । मुनेरपीदृशं स्वान्तं दुष्करं जातु जायते ॥१९४॥
 किमद्यैव करोम्यन्यां सृष्टिमुत्सृज्य दुर्जनान् । भरतस्य बलादाहो करोमि विमुखां श्रियम् ॥१९५॥
 विधातुरयं सामर्थ्यं भनञ्जि चिरमूर्जितम् । निरुद्धं पादयोज्येष्टं करोमि श्रीसमुत्सुकम् ॥१९६॥
 न युक्तमथवा चित्तं जातकोधानुगतस्य मे । क्रोधः करोति मोहान्धमपि दीक्षामुपाश्रितम् ॥१९७॥
 किमनेन विचारेण कृतेनानुचितेन मे । ज्येष्ठस्तातश्च जानाति सांप्रतासांप्रतं बहु ॥१९८॥
 सितकीर्तिसमुत्पत्तिर्विधातव्या हि नः पितुः । तूष्णीमेवानुगच्छामि ज्यायान्सं साधुकारिणम् ॥१९९॥
 प्रशमय स्वयं कोपमित्यादाय शरासनम् । प्रणम्यापृच्छच्च चाशेषं जन्मं गुरुपुरस्सरम् ॥२००॥
 महाविनयसंपन्नो मार्गयोग्यकृताकृतिः । लक्ष्मीनिलयवक्षस्कः पद्मस्यानुपदं ययौ ॥२०१॥
 पितरौ परिवर्गेण सहितौ तनयान्वितौ । वर्षा इव कुर्वाणौ तौ धारामिर्नयनान्भसा ॥२०२॥

समान स्थिर था ऐसे राम, मुख्य-मुख्य घोड़ों तथा हाथियोंको स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पिताके घरसे बाहर निकल पड़े ॥१८८॥ यद्यपि सामन्त लोग शीघ्र ही सुन्दर घोड़े और हाथी ले आये परन्तु परम न्यायके जाननेवाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया ॥१८९॥ पतिको विदेश-गमनके लिए उद्यत देख, जिसके शरीरपर सुन्दर वस्त्रका आवरण था, जिसके नेत्र फूले हुए कमलके समान थे ऐसी सीता भी, सास-स्वसुरको प्रणाम कर तथा मित्रजनोंसे पूछकर, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रके पीछे चलती है उसी प्रकार रामके पीछे चलने लगी ॥१९०-१९१॥

तदनन्तर जिसका चित्त स्नेहसे भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मणने जब रामको जाते हुए देखा तो नेत्रोंमें छलकते हुए क्रोधको धारण करता हुआ वह चिन्ता करने लगा कि अहो ! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं ? जिसमें निरन्तर स्वार्थ साधनकी ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरेकी कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभावकी धिक्कार हो ॥१९२-१९३॥ अहो ! बड़े भाई राम महानुभाव हैं तथा पुरुषोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । इनके समान दुर्लभ हृदय तो मुनिके भी जब कभी ही होता है ॥१९४॥ क्या दुर्जनोंको छोड़कर आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूँ या बलपूर्वक लक्ष्मीको भरतसे विमुख कर दूँ ? ॥१९५॥ मैं आज विधाताकी बलवती सामर्थ्यको नष्ट करता हूँ और चरणोंमें पड़कर बड़े भाईको लक्ष्मीमें उत्सुक करता हूँ ॥१९६॥ अथवा क्रोधके वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करनेवाले मुनिको भी मोहसे अन्धा बना देता है ॥१९७॥ मुझे इस अनुचित विचार करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि बड़े भाई राम तथा पिता ही 'यह कार्य उचित है अथवा अनुचित' यह अच्छी तरह जानते हैं ॥१९८॥ हमें पिताकी उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले बड़े भाईके ही साथ जाता हूँ ॥१९९॥ इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शान्त कर, धनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनोंसे पूछकर भी रामके पीछे चलने लगा । उस समय लक्ष्मण महाविनयसे सम्पन्न था, मार्गके योग्य उसकी वेषभूषा थी, तथा उसका वक्षःस्थल लक्ष्मीका घर था ॥२००-२०१॥ उस समयका दृश्य बड़ा ही कर्षण था । सीताके साथ राम-लक्ष्मण आगे बढ़े जाते थे और माता-पिता परिवार तथा शेष दो पुत्रोंके साथ धारा-प्रवाह आँसुओंसे मानो वर्षा कर

१. चारुन् म. । २. सामन्तान् म. । ३. नयनलक्षणम् म. । ४. दुर्जनात् म. । ५. मय म. । ६. प्रशम्य म. ।

परितान्वनसूरिभ्यां प्राप्ताभ्यां निश्चयं परम् । कृच्छ्राज्जिवर्तितौ ताभ्यां प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥२०३॥
 निवर्त्यमानबन्धूनां समूहेनान्विताविमौ । राजगोहाद्विनिष्क्रान्तौ देवाविव सुरालयात् ॥२०४॥
 वर्तते किमिदं मातः कस्मैदं मतमिदुशम् । अभाग्येयं पुरी कष्टमथवा सकला मही ॥२०५॥
 यामोऽनेन समं दुःखमेताभ्यां सह गम्यते । महाशक्ताविमौ कृच्छ्राद्वरणीधरगङ्गारात् ॥२०६॥
 पश्य सीता कथं याति नाथेनैषानुमोदिता । अस्याः सुविहितं सर्वं पतिभ्राता करिष्यति ॥२०७॥
 अहो परमधन्येयं जानकी रूपशालिनी । विनयांशुकसंवीता मर्तारं यानुगच्छति ॥२०८॥
 अस्माकमपि नारीणामेषैव भवताद् गतिः । उदाहरणभूतेयं भर्तृदेवतयोषिताम् ॥२०९॥
 पश्य मातरमुज्झित्वा नेत्राम्बुप्लाविताननाम् । एष लक्ष्मीधरो गन्तुमुद्युक्त्वो ज्यायसा समम् ॥२१०॥
 अहो प्रीतिरहो मक्तिरहो शक्तिरहो क्षमा । अहो विनयसंभारः श्रीमतोऽस्य विराजते ॥२११॥
 भरतस्य किमाकृतं कृतं दशरथेन किम् । रामलक्ष्मणयोरेषा का मनीषा व्यवस्थिता ॥२१२॥
 कालः कर्मेश्वरो दैवं स्वभावः पुरुषः क्रिया । नियतिर्वा करोत्येवं विचित्रं कः समीहितम् ॥२१३॥
 वर्ततेऽनुचितं बाढं क गता स्थानदेवता । एवमादिस्तदा जज्ञे ध्वनिर्जनसमूहतः ॥२१४॥
 कुमाराभ्यां समं गन्तुमुत्सुके सकले जने । पुरी शून्यगृहा जाता नष्टाशेषसमुत्सवा ॥२१५॥
 पुष्पप्रकरसंपूर्णाः समस्ता द्वारभूमयः । पिच्छलत्वं समानीताः शोकपूर्णजनाश्रुभिः ॥२१६॥

रहे थे ॥२०२॥ परन्तु दोनों भाई दूढ़ निश्चयको प्राप्त थे और सान्त्वना देनेमें अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने बार-बार चरणोंमें गिरकर माता-पिताको बड़ी कठिनाईसे वापस किया ॥२०३॥ उन्होंने भाई-बन्धुओंको बहुत लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं । अन्तमें जिस प्रकार स्वर्गसे देव बाहर निकलते हैं उसी प्रकार दोनों भाई राजमहलसे बाहर निकले ॥२०४॥ 'हे माता ! यह क्या हो रहा है ? यह ऐसा किसका मत था ? अर्थात् किसके कहनेसे यह सब हुआ है ? यह नगरी बड़ी अभागिन है अथवा नगरी ही क्यों समस्त पृथिवी अभागिन है ॥२०५॥ अब हम इनके साथ ही चलेंगे, इनके साथ रहनेसे सब दुःख दूर हो जायेगा । ये दोनों ही दुःखरूपी पर्वतकी गुहासे उद्धार करनेमें अत्यन्त समर्थ हैं ॥२०६॥ देखो, यह सीता कैसी जा रही है ? पतिने इसे साथ चलनेकी अनुमति दे दी है । देवर इसका सब काम ठीक कर देगा ॥२०७॥ अहो ! जो विनयरूपी वस्त्रसे आवृत होकर पतिके पीछे-पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यन्त धन्य है—बड़ी भाग्यवती है ॥२०८॥ हमारी स्त्रियोंकी भी ऐसी ही गति हो । यह पतिव्रता स्त्रियोंके लिए उदाहरणस्वरूप है ॥२०९॥ अहो ! देखो, जिसका मुख आंसुओंसे भोग रहा है ऐसी माताको छोड़कर यह लक्ष्मण बड़े भाईके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२१०॥ अहो ! इस लक्ष्मणकी प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, क्षमा धन्य है और विनयका समूह धन्य है ॥२११॥ भरतका क्या अभिप्राय था ? और राजा दशरथने यह क्या कर दिया ? राम-लक्ष्मणके भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है ? ॥२१२॥ यह सब काल, कर्म, ईश्वर, दैव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है । ऐसी विचित्र चेष्टाको और दूसरा कौन कर सकता है ? ॥२१३॥ यह सब बड़ा अनुचित हो रहा है । इस स्थानके देवता कहाँ गये ? उस समय लोगोंकी भीड़से इस प्रकारके शब्द निकल रहे थे ॥२१४॥

उस समय समस्त लोग राम-लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उत्सुक हो रहे थे इसलिए नगरीके समस्त घर सूने हो गये थे तथा नगरीका समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥२१५॥ समस्त घरोंके दरवाजोंकी जो भूमियाँ पहले फूलोंके समूहसे व्याप्त रहती थीं वे उस समय शोकसे भरे

१. व्रत म. । २. नाथेनानुमोदिता म. (?) । ३. विचित्रकसमोहितम् म. । ४. देवताः म., ख. ।

जनस्योत्सार्यमाणस्य^१ वरूथिन्यो नरोत्तमैः । वीचयः सागरस्येव विशोभ्यन्ते महानिलैः ॥२१७॥
 मक्तिभिः पूज्यमानोऽपि संभाषणसमुद्यतः । दाक्षिण्यपरमः पद्मो मेने विघ्नं पदे पदे ॥२१८॥
 असक्त इव तं द्रष्टुमसमञ्जसमोदृशम् । मन्दं मन्दांशुसङ्कातो रविरस्तमुपागमत् ॥२१९॥
 रविणा दिवसस्यान्ते त्यक्ताः सर्वमरीचयः । ज्येष्ठचक्रधरेणेव संपदो मुक्तिमिच्छता ॥२२०॥
 दधाना परमं रागमुचिताम्बरयोगिनी । अन्वियाय रविं संध्या सीता दाशरथिं यथा ॥२२१॥
 ततो विशेषविज्ञानविध्वंसनविधायिना । रामव्रज्योद्भवेनेव तमसा व्याततं जगत् ॥२२२॥
 अनुप्रयातुकामस्य कर्तुं लोकस्य वञ्चनम् । ससीतौ तावदेशस्य^२ स्थानं प्राप्तौ क्षपामुखे ॥२२३॥
 भवान्तकस्य भवनं नित्यालंकृतपूजितम् । चन्दनाम्भोऽनुलितक्षमं^३ त्रिद्वारं तुङ्गतोरणम् ॥२२४॥
 दर्पणादिविभूषं तत्ससीतौ सप्रदक्षिणम् । प्रविष्टावनपेक्षौ तौ यथाविधि विशारदौ ॥२२५॥
 तृतीये तु जनो द्वारे प्रतिहारेण रुध्यते । कर्मणा मोहनीयेन शिवमिच्छन् कुट्टुष्टिवत् ॥२२६॥
 स्थापयित्वा धनुर्वर्मं पुण्डरीकनिभेक्षणौ । जिनेन्द्रवदनं दृष्ट्वा तौ वरां धृतिमागतौ ॥२२७॥
 मणिपीठस्थितं सौम्यं प्रलम्बितभुजद्वयम् । श्रीवत्समासुरोरस्कं व्यक्तनिःशेषलक्षणम् ॥२२८॥

मनुष्योंके आंसुओंसे पंकिल अर्थात् कर्दमयुक्त हो गयी थीं ॥२१६॥ जिस प्रकार महापवनसे समुद्र-
 की लहरें क्षोभकी प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्योंके द्वारा दूर हटाये गये लोगोंकी पंक्तियाँ
 क्षोभकी प्राप्त हो रही थीं ॥२१७॥ लोग पद-पदपर भक्तिवश रामकी पूजा करते थे और भक्तिवश
 उनके साथ वार्तालाप करनेके लिए उद्यत होते थे सो अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक राम उसे
 विघ्न मानते थे ॥२१८॥

तदनन्तर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मन्द पड़ गयी थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा
 जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्यको देखनेके लिए असमर्थ होनेसे ही अस्त हो गया
 था ॥२१९॥ जिस प्रकार मुक्तिकी इच्छा करनेवाले प्रथम चक्रवर्ती भरतेन सब सम्पत्तियाँ छोड़
 दी थीं उसी प्रकार दिनके अन्तमें सूर्यने सब किरणें छोड़ दीं ॥२२०॥ जिस प्रकार परम राग
 अर्थात् उत्कृष्ट प्रेमकी धारण करनेवाली तथा उचित-अम्बर अर्थात् योग्य वस्त्रसे सुशोभित सीता
 रामके पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अम्बर अर्थात्
 अभ्यस्त आकाशके समागमकी प्राप्त सन्ध्या सूर्यके पीछे जा रही थी ॥२२१॥ तदनन्तर वस्तुओंके
 विशेष ज्ञानकी नष्ट करनेवाले अन्धकारसे समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था
 मानो रामके जानेसे उत्पन्न शोकसे ही व्याप्त हो गया हो ॥२२२॥ तत्पश्चात् पीछे चलनेके लिए
 उत्सुक मनुष्योंको धोखा देनेके लिए सीता सहित वे दोनों कुमार सायंकालके समय अरहनाथ
 भगवान्के मन्दिरमें पहुँचे ॥२२३॥ संसारकी नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का वह मन्दिर सदा
 अलंकृत रहता था, लोग उसकी निरन्तर पूजा करते थे, चन्दनके जलसे वहाँकी भूमि लीप्त रहती
 थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मंगल द्रव्योंसे वह विभूषित रहता था ।
 सो अतिशय बुद्धिमान् तथा अन्यकी अपेक्षासे रहित राम-लक्ष्मणने सीताके साथ प्रदक्षिणा देकर
 उस मन्दिरमें विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥२२४-२२५॥ दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये
 परन्तु तीसरे दरवाजेपर द्वारपालने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकारकी मोक्षकी इच्छा
 करनेवाले मिथ्यादृष्टिकी मोहनीय कर्म रोक देता है ॥२२६॥ कमलके समान नेत्रोंको धारण करने-
 वाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान्के दर्शन कर परम सन्तोषको
 प्राप्त हुए ॥२२७॥ तदनन्तर जो मणिमयी चौकीपर विराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों

१. पङ्क्तयः । विरूपिण्यो म. । २. प्रथमचक्रवर्तिना भरतेन । ३. तौ + अरेशस्य = अरनाथस्य स्थानं मन्दिरम् ।

४. चन्दनाम्भोजलितक्षमं ।

संपूर्णचन्द्रवदनं विबुद्धकमलक्षणम् । अस्मर्यमाणनिर्माणविश्वमष्टादशं जिनम् ॥२२९॥
 प्रणम्य सर्वभावेन समभ्यर्च्य च सादरी । स्थितो तत्र विभावयां चिन्तयन्तौ सुहृज्जनम् ॥२३०॥
 तत्र तावुषितौ ज्ञात्वा मातरः पुत्रवत्सलाः । एव्य वाष्पाकुलाः स्नेहात् परिष्वज्य पुनः पुनः ॥२३१॥
 पुत्राभ्यां सह संमन्य दर्शने नृसिर्वर्जिताः । दोलारूढसमात्मानौ जग्मुर्दर्शस्थं पुनः ॥२३२॥
 सर्वासामेव शुद्धीनां मनःशुद्धिः प्रशस्यते । अन्यथा लिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथा लिङ्ग्यते पतिः ॥२३३॥
 ततस्ता गुणलावण्यरूपवेषमहोदयाः । जग्मुर्मथुरादिन्यः प्रियं मन्दरनिश्चलम् ॥२३४॥
 कुलपोतं निमज्जन्तं प्रिय शोकमहाणवे । संधारय ससौमित्रिं विनिवर्तय राघवम् ॥२३५॥
 सोऽवोच्च ममायत्तं जगद्वात्र विकारिकम् । प्रमाणं चेन्मदीयेच्छा सुखमेवास्तु जन्तुषु ॥२३६॥
 जन्ममृत्युजराव्याधैर्मारु कश्चिद्विवाध्यताम् । नाना कर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविदः ॥२३७॥
 पर्याप्तिनास्ति मृष्टानाभिष्टानां दर्शनेषु वा । बान्धवानां सुखानां च जीवितस्य धनस्य च ॥२३८॥
 असमासेन्द्रियसुखं कदाचिस्थितिसंक्षये । पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥२३९॥
 पुत्रवत्यो भवत्योऽत्र निवर्तयत सत्सुतौ । उपभुङ्क्व सुविश्रब्धाः पुत्रमोगोदयसुतिम् ॥२४०॥
 त्यक्तराज्याधिकारोऽहं निवृत्तः पापचेष्टितात् । भवादुर्गं भयं प्राप्तः करोमि चरितं मुनेः ॥२४१॥

भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, जिनके नेत्र विकसित कमलके समान थे, और जिनके प्रतिविम्बकी रचना भुलायी नहीं जा सकती थी। ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्रको सर्व भाव अर्थात् मन-वचन-कायसे प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदरसे भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनोंकी चिन्ता करते हुए रात्रिके समय उसी मन्दिरमें स्थित रहे ॥२२८-२३०॥ पुत्रवत्सल माताओंको जब पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेन्द्रके मन्दिरमें ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आयीं। उस समय उनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे। उन्होंने बार-बार पुत्रोंका आलिगन किया और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा—सलाह की। उन्हें पुत्रोंको देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्पके कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुईके समान चंचल हो रही थी। अन्तमें वे पुनः राजा दशरथके पास चली गयीं ॥२३१-२३२॥ आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियोंमें मनकी शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। स्त्री पुत्र और पति दोनोंका आलिगन करती है परन्तु परिणाम पृथक्-पृथक् रहते हैं ॥२३३॥

तदनन्तर गुण-लावण्यरूप वेष आदि महाअभ्युदयको धारण करनेवाली चारों मिष्टवादिनी रानियां मेरुके समान निश्चल पतिके पास गयीं और बोलीं कि हे बल्लभ ! शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए इस कुलरूपी जहाजको रोको और लक्ष्मण सहित रामको वापस बुलाओ ॥२३४-२३५॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने कहा कि यह विकाररूप जगत् मेरे आधीन नहीं। मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंमें सदा सुख ही रहे ॥२३६॥ जन्म, जरा और मरणरूपी व्याधोके द्वारा किसीका घात नहीं हो परन्तु कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकारकी है अतः कौन विवेकी शोक करे ॥२३७॥ बान्धवादिक इष्ट पदार्थोंके देखनेमें किसीको तृप्ति नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवनके विषयमें भी किसीकी सन्तोष नहीं है ॥२३८॥ कदाचित् इन्द्रिय-सुखकी पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ आप लोग पुत्रवाली हैं अर्थात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रोंको लौटा लो और निश्चिन्त होकर पुत्रभोगका अभ्युदय भोगो ॥२४०॥ मैं तो राज्यका अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस

आर्यागीतिच्छन्दः

एवं निश्चितचित्तो दशरथनृपतिस्समग्रमौदासीन्यम् ।

भेजे रविसमतेजाः सकलकुभावामिलाषदोषविमुक्तः ॥२४२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पञ्चचरिते दशरथप्रवज्याभिधानं नामैकत्रिंशत्तमं पर्व ॥३१॥



पापपूर्ण चेष्टासे निवृत्त हो गया हूँ और संसारसे तीव्र भय प्राप्त कर चुका हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूँगा ॥२४१॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्तमें दृढ़ निश्चय कर लिया था, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावोंकी अभिलाषारूपी दोषसे रहित थे ऐसे राजा दशरथने सब प्रकारकी उदासीनता धारण कर ली ॥२४२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित
पञ्चचरितमें राजा दशरथके वैराग्यका वर्णन करनेवाला
इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३१॥



द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथ तत्र क्षणं नीत्वा निद्रान्तौ धृतकङ्कटौ । अर्धरात्रे महाध्वान्ते निश्शब्दे शान्तमानवे ॥१॥
विधाय जानकीं मध्ये जिह्नं नत्वा सकामुकौ । सुवेधौ प्रस्थितौ दीपैः पश्यन्ताविव कामिनः ॥२॥
कश्चित् सुरतखिन्नाङ्गो बाहुपञ्जरवर्तिनीम् । कृत्वा प्राणसमां निद्रामतिगाढां निषेवते ॥३॥
^२कृत्वापराधकः पूर्वं कोपिनीं कश्चिदङ्गनाम् । प्रत्याययत्यलीकेन शपथेन पुनः पुनः ॥४॥
अपरो मानसुत्प्लव्य कान्तया स्मरतस्तया । कृतकं कोपमायातः सुवाग्भिः परिसान्ध्यते ॥५॥
सुरतायासखिन्नाङ्गा देहे कस्यचिदङ्गना । लीना तत्त्वमिव प्राप्ता गाढां निद्रां निषेवते ॥६॥
नवसङ्गमनां कश्चिज्जायां विमुखवर्तिनीम् । कृच्छ्रात् प्रस्तावमानोय सम्भाषयति संमदी ॥७॥
कस्मैचित्पूर्ववैगुण्यं कथयत्यङ्गनाखिलम् । अपरो वेदयत्यस्मै विस्त्रब्धः कृतमाननः ॥८॥
कश्चित् परगृहं प्राप्नो धूर्तः सङ्कुचिताङ्गकः । उद्भासयति मार्जारं वातायनकृतस्थितिम् ॥९॥
अपरः कृतसंकेतां शून्यदेवकुलान्तरे । कुलटामाकुलीभूतो मुहुर्लथाय वीक्षते ॥१०॥
चिरादुपगतं कश्चिद् घनरोषाभिसारिका । ताडयत्युत्तरीयेण बध्वा मेखलया खलम् ॥११॥
अभिसारिकया साकमन्यः प्राप्य समागमम् । शुनोऽपि पदशब्देन याति श्रासमनुत्तमम् ॥१२॥

अथानन्तर राम-लक्ष्मण उस मन्दिरमें कहीं क्षण एक निद्रा लेकर अर्धरात्रिके समय जब घोर अन्धकार फैल रहा था, लोगोंका शब्द मिट गया था, और मनुष्य शान्त थे तब जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर कवच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले । वे सीताको बीचमें करके चल रहे थे । दोनों ही उत्तम वेषके धारक थे तथा दीपक हाथमें लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मण्डपादि स्थानोंमें कामी जनोंको देख ही रहे थे ॥१-२॥ उन्होंने देखा कि जिसका शरीर सम्भोगसे खिन्न हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवल्लभाको भुजारूप पंजरके मध्य रखकर अत्यन्त गाढ़ निद्राका सेवन कर रहा है ॥३॥ अपराध करनेवाले किसी पुरुषने पहले तो अपनी स्त्रीको कुपित कर दिया और पीछे बार-बार झूठी शपथके द्वारा उसे विश्वास दिला रहा है ॥४॥ कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर पृथक् बैठा है और उसकी स्त्री कामसे उत्तप्त हो उसे मधुर वचनोंसे शान्त कर रही है ॥५॥ सुरतके श्रमसे जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पतिके शरीरमें इस तरह लीन होकर गाढ़ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पतिके साथ अमेदको ही प्राप्त हो चुकी हो ॥६॥ कोई एक पुरुष लज्जाके कारण विमुख बैठी नवोद्गा पत्नीको बड़ी कठिनाईसे अनुकूल कर हर्षपूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥७॥ कोई एक स्त्री अपने पतिके लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिन्ततासे उसका समाधान कर रहा है ॥८॥ कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीरको संकुचित कर दूसरेके घर पहुँचा है और वहाँ झरोखेमें बैठे बिलावको वहाँसे हटा रहा है ॥९॥ किसी पुरुषने अपनी कुलटा प्रेमिकाको सूने मठमें आनेका संकेत दिया था पर उसने आनेमें विलम्ब किया इसलिए वह व्याकुल हो बार-बार उठकर उसे देख रहा है ॥१०॥ किसी अभिसारिकाका प्रेमी देरसे आया था इसलिए वह अत्यन्त कुपित हो उसे मेखलासे बाँधकर उत्तरीय वस्त्रसे पीट रही है ॥११॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिकाके साथ समागम प्राप्त कर कुत्तेके

इति ^१निर्यूहदेशेषु मण्डपेषु च कामिनाम् । शृण्वन्तौ ^२वीक्षमाणौ च ^३वृत्तान्तं जग्मतुः शनैः ॥१३॥
 अवद्वारेण ^४निर्गत्थ पुरीतः पश्चिमेन तौ । आश्रितौ मार्गयोगेन दक्षिणौ दक्षिणौ दिशम् ॥१४॥
 त्रियामान्ते ततोऽस्पष्टे सामन्ता वेगवाहिनः । राघवेण समं गन्तुमुत्सुका भक्तिनिर्भराः ॥१५॥
 यथाश्रुति परिज्ञाय बन्धुवञ्चनकारिणः । सर्वापं रामदेवस्य प्रापुर्मन्थरगामिनः ॥१६॥
 ते चक्षुर्गोचरीकृत्य समेतौ रामलक्ष्मणौ । महाविनयसंपन्नाः पद्भ्यामेव हुडौकिरे ॥१७॥
 प्रणिपत्य च भावेन सक्रमं संबभाषिरे । यावत्तावन्महासैन्यं तद्गवेषार्थमाययौ ॥१८॥
 प्रशशंसुश्च ते सीतामिति निर्मलचेतसः । वयमस्याः प्रसादेन राजपुत्री समागताः ॥१९॥
 अयास्यद्यदि नैताभ्यां सममेवा सुमन्थरा । ततः कथमिव प्राप्तस्यामेतौ पवनरंहसौ ॥२०॥
 इयं नः सुसती माता परमप्रियकारिणी । एतस्याः सदृशी नान्या प्रशस्तास्ति क्षिताविह ॥२१॥
 तौ सीतागतिचिन्तस्वान्मन्दमन्दं नरोत्तमौ । गव्यूतिमात्रमध्वानं सुखयोगेन जग्मतुः ॥२२॥
 सस्यानि बहुरूपाणि पश्यन्तौ क्षितिमण्डले । सरांसि कञ्जरम्याणि तरुंश्च गगनस्पृशः ॥२३॥
 आपूर्यमाणपर्यन्तौ वेगवद्भिर्नराधिपैः ^५ । घनागमे ^६नदैर्गङ्गाकालिन्दीप्रवहाविव ॥२४॥
 ग्रामखेटमटम्बेषु घोषेषु नगरेषु च । लोकेन पूजितौ वीरौ भोजनादिभिर्हृतमौ ॥२५॥
 केचिदध्वजखेदेन सामन्ता व्रजतोस्तथोः । पश्चादज्ञापयित्वैव निवृत्ता शातनिश्चयाः ॥२६॥

भी पैरकी आहूट सुनकर अत्यधिक भयको प्राप्त हो रहा है ॥१२॥ इस प्रकार बाह्य द्वारों और मण्डपोंमें कामीजनोंको देखते तथा उनके वृत्तान्तको सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥१३॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरीके पश्चिम द्वारसे बाहर निकलकर आगे मिलनेवाले मार्गसे दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥१४॥

इधर जब भक्तिसे भरे तथा रामके साथ जानेके लिए उत्सुक सामन्तोंको कानोंकान यह पता चला कि राम तो बन्धुजनोंको धोखा देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होनेके पूर्व जब कुछ-कुछ अँधेरा था वेगसे घोड़े दौड़ाकर मन्थर गतिसे चलनेवाले रामके पास जा पहुँचे ॥१५-१६॥ जब उन्हें साथ-साथ चलनेवाले राम-लक्ष्मण नेत्रोंसे दिखने लगे तब वे महाविनयसे युक्त हो पैदल ही चलने लगे ॥१७॥ सामन्त लोग भावपूर्वक प्रणाम कर जबतक उनके साथ यथाक्रमसे वार्तालाप करते हैं तबतक उन्हें खोजनेके लिए बड़ी भारी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१८॥ अत्यन्त निर्मल चित्तके धारक सामन्त लोग सीताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हम लोग इसके प्रसादसे ही राजपुत्रोंको प्राप्त कर सके हैं ॥१९॥ यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवनके समान वेगशाली राजपुत्रोंको किस तरह प्राप्त कर सकते ? ॥२०॥ यह माता अत्यन्त सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करनेवाली है । इस पृथिवीपर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥२१॥ मनुष्योंमें उत्तम राम लक्ष्मण सीताकी गतिका ध्यान कर गव्यूति प्रमाण मार्गको ही सुखसे तय कर पाते थे ॥२२॥ वे पृथिवीमण्डलपर नाना प्रकारके धान, कमलोंसे सुशोभित तालाब और गगनचुम्बी वृक्षोंको देखते हुए जा रहे थे ॥२३॥ जिस प्रकार वर्षाऋतुमें गंगा और यमुनाके प्रवाह अनेक नदियोंसे मिलते रहते हैं उसी प्रकार राम-लक्ष्मणके पर्यन्त भाग भी अनेक वेगशाली राजाओंसे मिलते रहते थे ॥२४॥ ग्राम, खेट, मटम्ब, घोष तथा नगरोंमें लोग उन उत्तम वीरोंका भोजनादि सामग्रीके द्वारा सत्कार करते थे ॥२५॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामन्त लोग मार्गके खेदसे दुःखी हो रहे थे । जब उन्हें इस बातका दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम-लक्ष्मण लौटनेवाले नहीं हैं तब वे उनसे कहे बिना ही लौट गये ॥२६॥ भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कितने

१. गवाक्षप्रदेशेषु । २. वीक्ष्यमाणौ म. । ३. वृत्तान्तौ म. । ४. लघुना द्वारेण, अपहारेण (?) म. । ५. वेग-वन्निर्जराधिपैः म. । ६. घनागमे नदी गंगा म. ।

अपरे त्रपया केचिद्धीत्यान्ये भक्तितपराः । अत्रजन् विनयात् पद्म्यां दत्त्वा दुःखस्य मानसम् ॥२७॥
 ततो हरिगजवातसङ्कुलारावभैरवाम् ।^१परियात्राटवीं प्राप्तौ लीलया रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
 तस्यां बहुलशर्वर्या तुल्यध्वान्तं महानगैः । निम्नगां शर्वरीमेतौ शवराश्रितरोधसाम् ॥२९॥
 तस्या रोधसि विश्रम्य नानास्वादुफलोचिते ।^२कांश्चिन्न्यवर्तयद्भूपान् पद्मः सुप्रतिबोधनः ॥३०॥
 महतापि प्रयत्नेन निवृत्ता नापरे नृपाः । पद्मेन सहितं गन्तुं किल सज्जातनिश्चयाः ॥३१॥
 गतस्ते निम्नगां दृष्ट्वा महानीलावभासिनीम् । चण्डवेगोर्मिसंघातनिर्मितोदरनिश्चिताम् ॥३२॥
 उन्मज्जत्प्रबलप्राहृतकल्लोलसङ्कुलाम् । वीचीमालासमाघातनिपतन्मृदुरोधसम् ॥३३॥
^३महाद्रिकन्दारफालं प्रतिस्त्कारनादिनीम् । उद्वर्तमानमीनाङ्गस्फुरद्भास्कररोचिषम् ॥३४॥
 उद्वृत्ततक्रसूकारजातदूरगशोकराम् । उड्डीयमाननिर्दोषमयपूर्णपतत्रगाम् ॥३५॥
 संत्रासकम्पमानाङ्गा जगू.रामं लक्ष्मणम् । समुत्तारय नाथास्मानपि पद्मप्रसादवान् ॥३६॥
 श्रुत्यानां भक्तिपूर्णां प्रसादं कुरु लक्ष्मण । देवि ते कुरुते वाक्यं जानकि ब्रूहि लक्ष्मणम् ॥३७॥
 एवमादि गदन्तस्ते कृपणा बहु तां नदीम् । डुड्डीकिरे प्रससृश्च नानाचेष्टाविधायिनः ॥३८॥
 ततस्तान् राववोऽवोचद्विश्रब्धो रोधसि स्थितः । अधुना विनिवर्तध्वं मद्रा भोममिदं वनम् ॥३९॥
 अस्माभिः सह शुष्माकमियानेवैषै सङ्गमः । एषा नद्यवधिर्जाता भवतौरसुक्यवर्जिता ॥४०॥

ही सामन्त लज्जासे और कितने ही भयसे अपने मनको दुःखी कर विनयपूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥२७॥

तदनन्तर राम-लक्ष्मण लीलापूर्वक परियात्रा नामकी उस अटवीमें पहुँचे जो कि सिंह और हस्तिसमूहके उच्च शब्दोंसे भयंकर हो रही थी ॥२८॥ उस अटवीमें बड़े-बड़े वृक्षोंसे कृष्णपक्षकी निशाके समान घोर अन्धकार व्याप्त था । वहीं, जिसके किनारे अनेक शबर अर्थात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नामकी नदी थी । राम-लक्ष्मण वहाँ पहुँचे ॥२९॥ नाना प्रकारके मधुर फलोंसे युक्त उस नदीके तटपर विश्राम कर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओंको तो वापस लौटा दिया ॥३०॥ पर जिन्होंने रामके साथ जानेका निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करनेपर भी नहीं लौटे ॥३१॥

तदनन्तर जो नदी महानील मणिके समान सुशोभित हो रही थी, अत्यन्त वेगशाली लहरोंके समूहसे जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उखरते हुए बलवान् मगरमच्छोंकी टक्करसे उत्पन्न होनेवाली तरंगोंसे व्याप्त थीं, लहरोंके समूहके आघातपर जिसके कोमल किनारे उसीमें टूट-टूटकर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें टकरानेसे जिसमें 'सू-सू' शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तैरनेवाली मछलियोंके शरीरमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित हो रही थीं, जिसमें उत्पात करनेवाले नाकोंकी सूत्कारसे जलके छीटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पाससे समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदीको देखकर सब सामन्तोंके शरीर भयसे काँपने लगे । वे लक्ष्मण सहित रामसे बोले कि 'हे नाथ ! हम लोगोंको भी नदीसे पार उतारो । हे पद्म ! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण ! भक्तिसे भरे हुए हम सेवकोंपर प्रसन्नता करो । हे देवि ! लक्ष्मण तुम्हारी बात मानते हैं इसलिए इनसे कह दो' ॥३२-३७॥ इत्यादि अनेक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वे दीन सामन्त उस नदीमें कूद पड़े तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हुए बहने लगे ॥३८॥ तब किनारेपर निश्चिन्ततासे खड़े हुए रामने उन सबसे कहा कि हे भले पुरुषो ! अब तुम लौट जाओ । यह वन बहुत भयंकर है ॥३९॥ हम लोगोंके साथ तुम्हारा

१. एतन्नामाटवी । २. कांश्चित्प्रावर्तयद् म. । ३. महीन्द्र म. । ४. प्रान्ते सूत्कार म. । ५. मियानेवैव म. ।

तातेन भरतः स्वामी सर्वेषां वो निवेदितः । विसाध्वसास्तमावृत्य तिष्ठत क्षितिपालिनः ॥४३॥
 गतस्ते पुनरिष्टपूनुर्नाथास्माकं भवान् गतिः । प्रसादं कुर्व मा त्वाक्षीरस्मान् कारुण्यकोविद् ॥४२॥
 निराश्रयाकुलीभूता त्वयेयं रहिता प्रजा । वद कं शरणं यातु सदृशः कस्तवापरः ॥४३॥
 व्याप्रसिंहगजेन्द्रादिव्यालजालसमाकुले । वसामो भवता सार्धमरण्ये न विना दिवि ॥४४॥
 न नो निर्वर्तते चित्तं प्रतिशामः कथं वयम् । महत्तरस्वमेतेन हृषीकेश्वर्जितं ननु ॥४५॥
 किं नो गृहेण किं मोघैः किं दारैः किं नु बन्धुभिः । भवता नररत्नेन मुक्तानां पापकर्मणाम् ॥४६॥
 क्रीडास्वपि त्वया देव वञ्चिता स्मो न जातुचित् । संमानेनाधुना कस्माज्जातोऽस्यत्यन्तनिष्ठुरः ॥४७॥
 कोऽपराधो वदास्माकं भवचरणरेणुना । परमां वृद्धिमेतानां भक्तानां भृत्यवत्सल ॥४८॥
 भद्रो जानकि ! लक्ष्मीश रचितोऽयं शिरोज्जलिः । प्रसादयतमीशं नः प्रसादी भवतोऽयम् ॥४९॥
 सीता लक्ष्मीधरश्चैवमुच्यमानौ सुदक्षिणौ । तस्थतुः पद्मपादाग्रन्यस्तनेत्रौ निरुत्तरौ ॥५०॥
 ततः पद्मो जगदिदं भवतामुत्तरं स्फुटम् । निवर्तध्वमयं भद्रा यातोऽस्मि सुखमास्थिताम् ॥५१॥
 इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ परमोत्साहसङ्गतौ । अवतरेतुरत्यन्तगम्भीरां तां महापगाम् ॥५२॥
 उत्तोरगः सरितं पद्मो जानकीं विकचेक्षणाम् । करेण सुखमादाय पद्मिनीमिव दिग्गजः ॥५३॥
 अम्भोविहारविज्ञानबुधयोः सा तयोधुनी । नाभिदधनी बभूवोद्धां क्रीडासाचरतोऽधिरम् ॥५४॥

इतना ही समागम था । अब हमारे और तुम्हारे बीचमें यह नदी सीमा बन गयी है इसलिए उत्सुकतासे रहित होओ ॥४०॥ पिताने तुम सबके लिए भरतको राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसीकी शरणमें रहो ॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ ! हमारी गति तो आप ही हैं इसलिए हे दया-निपुण ! प्रसाद करो और हम लोगोंको नहीं छोड़ो ॥४२॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर व्याकुल हो रही है । आप ही कहो किसकी शरणमें जावे ? आपके समान दूसरा है ही कौन ? ॥४३॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवोंके समूहसे भरे हुए वनमें रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्गमें भी नहीं रहना चाहते ॥४४॥ हमारा चित्त ही नहीं लौटता है फिर हम कैसे लौटें ? यह चित्त ही तो इन्द्रियोंमें प्रधान है ॥४५॥ जब आप-जैसे नर-रत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापो जीवोंको घरसे क्या प्रयोजन है ? भोगोंसे क्या मतलब है ? स्त्रियोंसे क्या अर्थ है ? और बन्धुओंकी क्या आवश्यकता है ? ॥४६॥ हे देव ! क्रीडाओंमें भी कभी आपने हम लोगोंको सम्मानसे वंचित नहीं किया फिर इस समय अत्यन्त निष्ठुर क्यों हो रहे हो ? ॥४७॥ हे भृत्य-वत्सल ! हम लोग आपके चरणोंकी धूलिसे ही परम वृद्धिको प्राप्त हुए हैं । बताइए, हमारा क्या अपराध है ? ॥४८॥ रामसे इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मणको भी सम्बोधित करते हुए कहा कि हे जानकि ! हे लक्ष्मण ! मैं आप दोनोंके लिए हाथ जोड़कर भस्तकपर लगाता हूँ, आप हमारे विषयमें स्वामीको प्रसन्न कीजिए क्योंकि ये आप दोनोंपर प्रसन्न हैं—आपकी बात मानते हैं ॥४९॥ लोग सीता तथा लक्ष्मणसे इस प्रकार कह रहे थे और अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक वे दोनों रामके चरणकमलोंके आगे दृष्टि लगाये चुपचाप खड़े थे—‘क्या उत्तर दिया जाये’ यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था ॥५०॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे भद्रपुरुषो ! आप लोगोंके लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि अब आप यहाँसे लौट जाइए, मैं जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुखसे रहें ॥५१॥ इतना कहकर किसीकी अपेक्षा नहीं करनेवाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साहसे उस अतिशय गहरी महानदीमें उतर पड़े ॥५२॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर (सूँड़) में कमलनीको लेकर तैरता है उसी प्रकार राम विकसित नेत्रोंवाली सीताको हाथमें लेकर नदीको पार कर रहे थे ॥५३॥ दोनों ही

१. तनोति वर्तते म. । २. लक्ष्मण । ३. नाभिप्रमाणजला ।

तदातिशोभते सीता पद्महस्ततलस्थिता । सुधीरा श्रीरिवोत्तुङ्गशतपत्रगृहस्थिता ॥५५॥
 पारगः सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च स क्षणात् । वृद्धैरन्तर्धिमायातश्चेतस्तम्भनविग्रहः ॥५६॥
 विप्रलापं ततः कृत्वा महान्तं साश्रुलोचनाः । भवनाभिमुखीभूताः केचित्कृच्छ्रेण भूभृतः ॥५७॥
 तदाशान्यस्तनेत्रास्तु केचित्पुंस्त्वमया इव । तस्थुः प्राण्यापरे मूर्छां निवेतुर्धरणीतले ॥५८॥
 विबोध्य केचिदत्रोत्तुर्धिक्षु संसारमसारकम् । धिग्भोगान्भोगिर्भोगाभान् भङ्गुरान्मीतिमाविनः ॥५९॥
 ईदृशामपि शूराणां यन्नावस्थेयमीदृशी । तत्र ग्रहणयस्मासु किमेरण्डप्रफल्गुषु ॥६०॥
 वियोगमरणव्याधिजराव्यसनसाजनम् । जनदुद्दुदनिस्सारं कृतघ्नं धिक् शरीरकम् ॥६१॥
 भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः श्लाघ्यचेष्टिताः । कपिभ्रमङ्गुरां लक्ष्मीं ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥६२॥
 इति निवेदमापन्ना बहवो नरस्तत्तमाः । प्रवज्याभिमुखाभूता बभ्रमुस्तत्र रोधसि ॥६३॥
 अधेष्टांचक्रिरे तुङ्गं विशालं शुभमालयम् । परिवीतमतिशयाममहानोकहमालया ॥६४॥
 अनुसस्रुश्च तं नानापुण्यजातिसमाकुलम् । मकरन्दरसास्वादगुञ्जस्त्रान्तपट्पदम् ॥६५॥
 ददृशुश्च विविक्तेषु देशेषु समवस्थितान् । साधून् स्वाध्यायसंसक्तमानसान् पुण्ड्रतेजसः ॥६६॥
 क्रमेण तान्नमस्यन्तः शनैस्तत्कपाणयः । विविशुजिननाथस्य भवनं भृशमुज्ज्वलम् ॥६७॥
 रम्येण्वद्विनितम्बेषु काननेषु सरित्सु च । तत्र काले मही प्रायो भूषितासीजिनालयैः ॥६८॥

जल-क्रीडाके ज्ञानमें निपुण थे अतः चिरकाल तक उत्तम क्रीडा करते हुए जा रहे थे । उनके लिए वह नदी नाभि प्रमाण गहरी हो गयी थी ॥५४॥ उस समय रामकी हथेलीपर स्थित धैर्यशालिनी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरूपी घरमें स्थित लक्ष्मी ही हो ॥५५॥ इस प्रकार जिनका शरीर चित्तको रोकनेवाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मणके साथ नदीको पार कर क्षण-भरमें वृक्षोंसे अन्तर्हित हो गये ॥५६॥

तदनन्तर जिनके नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवनकी ओर उन्मुख हुए ॥५७॥ कितने ही लोग उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदिके पुतलोंके समान खड़े रहे । कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥५८॥ और कितने ही प्रबोधको प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसारको धिक्कार है तथा सांपके शरीरके समान भय उत्पन्न करनेवाले नश्वर भोगोंको धिक्कार है ॥५९॥ जहाँ इन-जैसे शूर वीरोंकी भी यह अवस्था है वहाँ एरण्डके समान निःसार हम लोगोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥६०॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टोंके पात्र तथा जलके बबूलके समान निःसार इस कृतघ्न शरीरको धिक्कार है ॥६१॥ उत्तम चेष्टाके धारक जो मनुष्य वानरकी भौंहके समान चंचल लक्ष्मीको छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्तिके धारक भाग्यवान् हैं ॥६२॥ इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेनेके सम्मुख हो नदीके उसी तटपर घूमने लगे ॥६३॥

तदनन्तर उन्होंने हरे-भरे वृक्षोंकी पंक्तिसे घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मन्दिर देखा ॥६४॥ मन्दिरका वह स्थान नाना प्रकारके पुष्पोंकी जातियोंसे व्याप्त था तथा मकरन्द रसके आस्वादसे गूँजते हुए भ्रमर वहाँ भ्रमण कर रहे थे ॥६५॥ उन लोगोंने वहाँ एकान्त स्थानोंमें बैठे हुए, स्वाध्यायमें लीन तथा विशाल तेजके धारक मुनियोंको देखा ॥६६॥ मस्तकपर अंजलि बाँधकर सब लोगोंने उन्हें धीरे-धीरे यथाक्रमसे नमस्कार किया । तदनन्तर अत्यन्त उज्ज्वल जिनमन्दिरमें प्रवेश किया ॥६७॥ उस समय भूमि प्रायःकर पर्वतोंके सुन्दर नितम्बोंपर, वनोंमें तथा नदियोंके तटोंपर बने हुए जिनमन्दिरोंसे विभूषित थी ॥६८॥

१. मृदादिनिर्मिता इव । २. सर्पफणासदृशान् । ३. विवेकेषु म. ।

तत्र कृत्वा नमस्कारं जिगानां^१ शुभ्रमावनाः । रत्नसंभवगम्भीरं संयतेन्द्रं दुर्दौकिरे ॥६९॥
 प्रणम्य शिरसा तस्य संवेगभरवाहितः^२ । नाथोत्तराय संसारादस्मादिति बभाषिरे ॥७०॥
 सत्यकेतुगणेशेन तथास्त्विति कृतध्वधौ । जम्मुस्ते परमं तोषं निर्गताः स्मो भवादिति ॥७१॥
^३विदग्धो विजयो मेरुः क्रूरः संग्रामलोलुपः । श्रीनागदमनो धीरः शठः शत्रुदमो धरः ॥७२॥
 विनोदः कण्टकः सत्यः कठोरः प्रियवर्धनः । एवमाद्या नृपा धर्मं नैर्ग्रन्थं समक्षिश्रियन् ॥७३॥
 साधनाभि भटास्तेषां गृहीत्वा नगरीं गताः । द्रुतमर्पयितुं दीनाः पुत्रादीनां त्रयान्विताः^४ ॥७४॥
 अणुव्रतानि संगृह्य केचिच्चिन्मधारिणः । आराधयितुमुद्युक्ता बोधिवुद्धिविभूषणाः ॥७५॥
 सम्यग्दर्शनमात्रेण संतोषमपरे गताः । श्रुत्वातिविमलं धर्मं जिगानां जितजन्मनाम् ॥७६॥
 सामन्तैर्बहुभिर्गत्वा भरताय निवेदितः । वृत्तान्तो सुस्थितश्चायं ध्यायन् किमपि दुःखितः ॥७७॥
 अथानन्तरणराजस्य^५ ततयः सुप्रबोधनः । राज्याभिषिञ्जनं कृत्वा भरतस्य सुचेतसः ॥७८॥
 किंचित्पद्मवियोगेन संतप्तं चित्तमुद्वहन् । शोकाभोग्धिनिमग्नेन परिवर्गेण वीक्षितः ॥७९॥
 कृतसान्त्वनमप्युच्चैर्विलपत्स समाकुलम् । अन्तःपुरं परित्यज्य नगरीतो विनिर्गतः ॥८०॥
 गुरुपूजां परां कृत्वा द्वासप्ततिनृपान्वितः । सर्वभूतहितस्यान्ते शिश्रिये श्रमणश्रिया ॥८१॥
 अथाप्येकविहारस्य शुभं ध्यानमभीप्सतः । मानसं पुत्रशोकेन कलुषं तस्य जन्यते ॥८२॥
 अन्यदा योगमाश्रित्य दध्यावेवं विचक्षणः । धिक् स्नेहं भवदुःखानां मूलं बन्धमिसं मम ॥८३॥

वहाँ उज्ज्वल भावनाको धारण करनेवाले सब जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर समुद्रके समान गम्भीर मुनिराजके पास गये ॥६९॥ वहाँ जाकर वैराग्यको धारण करनेवाले सब लोगोंने शिर झुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया और तदनन्तर यह कहा कि हे नाथ ! हम लोगोंको इस संसार-सागरसे पार कीजिए ॥७०॥ इसके उत्तरमें मुनियोंके अधिपति सत्यकेतु आचार्यने ज्योंही 'तथास्तु' यह शब्द कहा त्योंही 'अब तो हम संसारसे पार हो गये' यह कहते हुए सब लोग परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७१॥ विदग्ध, विजय, मेरु, क्रूर, संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कण्टक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओंने दिगम्बर दीक्षा धारण की ॥७२-७३॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी, घोड़ा आदि सेनाको लेकर उनके पुत्रोंको सौंपनेके लिए शीघ्र ही नगरकी ओर गये । उस समय वे सेवक अत्यन्त दीन तथा लज्जासे युक्त हो रहे थे ॥७४॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग अणुव्रत ग्रहण कर निर्ग्रन्थमुद्राके धारकोंकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए ॥७५॥ तथा कितने ही लोग संसारको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का अत्यन्त निर्मल धर्म श्रवण कर मात्र सम्यग्दर्शनसे ही सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७६॥ अनेक सामन्तोंने जाकर यह समाचार भरतके लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुखसे बैठा था परंतु यह समाचार सुन दुःखी हुआ ॥७७॥

अथानन्तर सम्यक् प्रबोधको प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्तको धारण करनेवाले भरतका राज्याभिषेक कर रामके वियोगसे कुछ सन्तप्त चित्तको धारण करते हुए, सान्त्वना देनेपर भी जो अत्यन्त विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अन्तःपुरको छोड़ नगरीसे बाहर निकले । उस समय शोकरूपी सागरमें डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे ॥७८-८०॥ नगरीसे निकलकर वे सर्वभूतहित नामक गुरुके समीप गये और वहाँ बहुत भारी गुरुपूजा कर बहत्तर राजाओंके साथ दीक्षित हो गये ॥८१॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यानकी इच्छा रखते थे तथापि पुत्रशोकके कारण उनका मन कलुषित हो जाता था ॥८२॥ एक दिन

१. सागर इव गंभीरस्तम् । २. वादिनः म. । ३. निदग्धो म. । निर्दग्धो क., ख. । ४. त्रयाचिताः म. । ५. दशरथः ।

अन्यजन्मासु ये दारा पितृभ्रातृसुतादयः । क गतास्ते ममानादौ संसारे गणनोज्झिताः ॥८३॥
 अनेकशो मया प्राप्ता विविधा विषया दिवि । नरकानलदाहाश्च संप्राप्ता भोगहेतवः ॥८५॥
 अन्योन्यसंक्षणानीति तिर्यक्त्वे च चिरं मया । प्राप्तानि दुःखशल्यानि बहुरूपासु योनिषु ॥८६॥
 श्रुताः सङ्गीतनिस्वाना वंशवीणातुगायिनः । भूयश्च परमाक्रन्दश्चिच्छादणकारिणः ॥८७॥
 स्तनेष्वाप्सरसां पाणिर्लालितो नेत्रहारिषु । पुनः कुठारघातेन दुर्वृत्तेन पृथक्कृतिः ॥८८॥
 आस्वादितं महावीर्यमन्नं सुरभि षट्सम् । त्रपुसीसादिकललं पुनश्च नरकायनौ ॥८९॥
 वीक्षितं परमं रूपं सज्जोद्वज्जणकारणम् । पुनश्चात्यन्तविश्रामकारणं दत्तवेदथु ॥९०॥
 आघ्रातः स चिराद्भोदो गन्धो मुदितषट्पदः । पुनश्च पूतिरत्यन्तमुद्वासितमहाजनः ॥९१॥
 आलिङ्गिता मनश्चोर्थो नार्यो लीलाविभूषणाः । पुनश्च कूटशाल्मल्यः तीक्ष्णकण्टकसङ्घटाः ॥९२॥
 किं न स्पृष्टं न किं दृष्टं किं न घ्रातं न किं श्रुतम् । मुहुःस्वादितं किं न भवे दातेन कर्मणाम् ॥९३॥
 न सा क्षितिर्न तत्तोयं नासौ वह्निर्न सोऽनिलः । देहतां तो न मे प्राप्नो भवे संक्रामतश्चिरम् ॥९४॥
 त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति यो न प्राप्नोः सहस्रशः । पित्रादितां मम स्थानं न तद्यत्रोपितोऽस्मि न ॥९५॥
 अश्रुं देहभोगादिशरणं नास्ति विद्यते । संसारोऽयं चतुःस्थान एकोऽहं दुःखमुक्तिषु ॥९६॥

योगारूढ़ होकर बुद्धिमान् दशरथ विचार करने लगे कि संसार सम्बन्धी दुःखोंका मूल कारण तथा मुझे बन्धनमें डालनेवाले स्नेहकी धिक्कार है ॥८३॥ अन्य जन्मोंमें जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि सम्बन्धी थे वे सब कहाँ गये? यथार्थमें इस अनादि संसारमें सभी सम्बन्धी इतने हो चुके हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥८४॥ मैंने अनेकों बार स्वर्गमें नाना प्रकारके विषय प्राप्त किये हैं और भोगोंके निमित्त नरकाग्निके सन्ताप भी सहन किये हैं ॥८५॥ तिर्यक्ष पर्यायमें मैंने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरेका खाया जाना आदि दुःख उठाये हैं । इस प्रकार नाना योनियोंमें मैंने दुःखरूपी अनेक शल्य प्राप्त किये ॥८६॥ मैंने बाँसुरी, वीणा आदि मधुर बाजोंका अनुगमन करनेवाले संगीतके शब्द सुने हैं और हृदयको विदारण करनेवाले तीव्र रुदनके शब्द भी अनेक बार श्रवण किये हैं ॥८७॥ मैंने अपना हाथ अप्सराओंके सुन्दर स्तनोंपर लड़ाया है और कभी कुठारकी तीक्ष्ण धारासे उसके टुकड़े-टुकड़े भी किये हैं ॥८८॥ मैंने महाशक्ति वर्धक, सुगन्धित लह रसोंसे युक्त आहार ग्रहण किया है और नरककी भूमिमें राँगा, सीसा आदिका कलल भी बार-बार पिया है ॥८९॥ मनको द्रवीभूत करनेवाला अत्यन्त सुन्दर रूप देखा है और अत्यन्त भयका कारण तथा कम्पन उत्पन्न करनेवाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥९०॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरोंको आनन्दित करनेवाला मनोहर गन्ध सूँधा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते हैं ऐसा तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूँधा है ॥९१॥ मनको चुरानेवाली तथा लीलारूपी आभूषणोंसे सुशोभित स्त्रियोंका आलिङ्गन किया है और तीक्ष्ण काँटोंसे व्याप्त सेमरके मायामयी वृक्षोंका भी बार-बार आलिङ्गन किया है ॥९२॥ कर्मोंका दास बनकर मैंने इस संसारमें क्या नहीं किया है? क्या नहीं देखा है? क्या नहीं सूँधा है? क्या नहीं सुना है? और बार-बार क्या नहीं खाया है? ॥९३॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिरकालसे संसारमें भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशाको प्राप्त नहीं हुआ है ॥९४॥ तीनों लोकोंमें वह जीव नहीं है जो हजारों बार मेरा पिता आदि नहीं हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥९५॥ शरीर भोग आदि अनित्य है, कोई किसीका शरण नहीं

अशुचेः कायतोऽन्योऽहं द्वारमक्षाणि कर्मणाम् । संवरो वारणं तेषां निर्जरा जायते ततः ॥९७॥
 लोको विचित्ररूपोऽयं दुर्लभा बोधिरुत्तमा । स्वाख्यातोऽयं जिनैर्धर्मः कृच्छ्रेणाधिगतो मया ॥९८॥
 ध्यानेन मुनिदृष्टेन विशुद्धेनैदमादिना । आर्तध्यानमसौ धीरः क्रमेण निरनीनशत् ॥९९॥
 येष्टुच्छित्तसितचलो वरस्तम्बेरमाश्रितः । महाजिधु पराजिग्ये शत्रूनत्यन्तमुद्धतान् ॥१००॥
 विषयानधिकुर्वाणः परीषद्गणान् भृशम् । शान्तस्तेष्वेव देशेषु निर्ग्रन्थो विजहार सः ॥१०१॥
 नाथे तथा स्थिते तस्मिन् विदेशे च गमेऽङ्गजे । परं सुमित्रया सदा शोकं मेजेऽपराजिता ॥१०२॥
 ते दुष्टा दुःखिते बाढमजस्त्रासुतलोचने । भरतामां श्रियं मेने भरतो विषदाह्णाम् ॥१०३॥
 अर्थयं दुःखमापन्ने भृशं ते वीक्ष्य केकया । पश्चादुत्पन्नकारुण्यात् पुत्रमेवमभाषत ॥१०४॥
 पुत्र राज्यं स्वयां लब्धं प्रणताखिलराजकम् । पद्मलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेतच्च शोभते ॥१०५॥
 विना ताभ्यां विनीताभ्यां किं राज्यं का सुखाधिका । का वा जनपदे शोभा तव का वा सुवृत्ता ॥१०६॥
 राजपुत्र्या समं बालौ क तौ यातां सुखैधितौ । विमुक्तबाह्नौ मार्गे पाषाणादिभिराकुले ॥१०७॥
 मातरौ दुःखिते एते तथोगुणसमुद्रयोः । विरहे मापतां मृत्युमजस्रपरिवेष्टे ॥१०८॥
 तस्मादानय तौ श्रियं समं ताभ्यां महासुखः । सुचिरं पालय क्षोणीमेवं सर्वं विराजते ॥१०९॥
 राज तावच्चमाख्य तुरङ्गं जातरहसम् । आत्रजाभ्यहमप्येषा सुपुत्रानुपदं तव ॥११०॥
 इत्युक्तो धृतिमासाद्य साध्वेवमिति सस्वनः । संभ्रान्तोऽधसहस्रेण भरतस्तत्पथं श्रितः ॥१११॥

है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं पृथक् हूँ, इन्द्रियाँ कर्मोंके आनेका द्वार हैं, कर्मोंको रोक देना संवर है, संवरके बाद कर्मोंकी निर्जरा होती है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रयकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैंने बड़े कष्टसे पाया है ॥९६-९८॥ इस प्रकार मुनियोंके द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यानसे धीरवीर दशरथ मुनिने क्रमसे पूर्वोक्त आर्तध्यानको नष्ट कर दिया ॥९९॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथीपर सवार थे ऐसे राजा दशरथने पहले जिन देशोंमें महायुद्धोंके बीच अत्यन्त उद्धत शत्रुओंको जीता था अब उन्हीं देशोंमें वे अत्यन्त शान्त निर्ग्रन्थ मुनि होकर विषम परिषद्को सहते हुए विहार कर रहे थे ॥१००-१०१॥

तदनन्तर पतिके मुनि हो जाने और पुत्रके विदेश चले जानेपर अपराजिता (कौशल्या) सुमित्राके साथ परम शोककी प्राप्त हुई ॥१०२॥ जिनके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु झरते थे ऐसी दोनों विमाताओंको दुःखी देखकर भरत, भरत चक्रवर्तीकी लक्ष्मीके समान विशाल राज्यलक्ष्मीको विषके समान दारुण मानता था ॥१०३॥ अथानन्तर इस तरह उन्हें अत्यन्त दुखी देख केकयीके मनमें दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरतसे इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तूने जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत हैं ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि वह राम और लक्ष्मणके बिना शोभा नहीं देता है ॥१०४-१०५॥ नियमसे भरे हुए उन दोनों भाइयोंके बिना राज्य क्या है ? देशकी शोभा क्या है ? और तेरी धर्मज्ञता क्या है ? ॥१०६॥ सुखपूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों बालक, बिना किसी बाह्नके पाषाण आदि विषम मार्गमें राजकुमारी सीताके साथ कहां भटकते होंगे ? ॥१०७॥ गुणोंके सागरस्वरूप उन दोनोंकी ये माताएँ अत्यन्त दुःखी हैं, निरन्तर विलाप करती रहती हैं सो उनके विरहमें मृत्युको प्राप्त न हो जावें ॥१०८॥ इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनोंको वापस ले आ । उन्हींके साथ सुखपूर्वक चिरकाल तक पृथिवीका पालन कर । ऐसा करनेसे ही सबकी शोभा होगी ॥१०९॥ हे सुपुत्र ! तू वेगशाली घोड़ेपर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे ही आती हूँ ॥११०॥ माताके इस प्रकार कहनेपर भरत बहुत प्रसन्न

१. -मज्झसत्तलोचने म. । २. भरताभिश्चियं म. । ३. नापतां ज. ।

कृत्वा पुरस्सरान् पद्मपार्श्वत् प्रत्यागताञ्जरान् । पवनाश्वसमारुढः स यथौ मृशमुत्सुकः ॥११२॥
 प्रासश्च तामरण्यानीमनेकपङ्कुलकुलाम् । नानावृक्षावृतादित्यां गिरिगह्वरमीषणाम् ॥११३॥
 बन्धयित्वा महावृक्षैरुडुपानां^१ सुसंहतीः^२ । तां धुनीमुत्ततारासीं क्षणेन सहवाहनः ॥११४॥
 हृतो दृष्टावितो दृष्टौ पुरुषौ सह योषिता । इति पृच्छन्त्य शृण्वंश्च जगामानन्यमानसः ॥११५॥
 अथ तौ परमारण्ये विश्रान्तौ सरसस्तटे । ससीतौ भरतोऽपश्यत् पार्श्वन्यस्तशरासनौ ॥११६॥
 प्रमूतदिवसप्राप्तं ताभ्यां सीताव्यपेक्षया । षड्भिर्दिनैस्तमुद्देशं भरतः प्रतिपन्नवान् ॥११७॥
 अवतीर्य तुरङ्गाच्च मार्गं लोचनगोचरम् । गत्वा पद्भ्यां^३ समाश्लिष्य पादौ पद्मस्य मूर्च्छितः ॥११८॥
 ततो विबोधितस्तेन कृत्वा संभाषणं क्रमात् । मूर्द्धाञ्जलिर्जगादैवं पद्मं विनतविग्रहः ॥११९॥
 विडम्बनमिदं कस्मान्नाथ मे भवता कृतम् । परं राज्यापदेशेन न्यायसर्वस्व कोविद ॥१२०॥
 आस्तां तावदिदं राज्यं जीवितेनापि किं मम । भवता विप्रयुक्तस्थ गुरुचेष्टितकारिणा ॥१२१॥
 उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः प्रसादं कुरु मे प्रभो । राज्यं पालय निःशेषं यच्च मेऽतिसुखासिकाम् ॥१२२॥
 भवामि छत्रधारस्ते शत्रुघ्नश्चमराश्रितः । लक्ष्मणः परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु ॥१२३॥
 पश्चात्तापानलेनालं संतप्ता जननी मम । तव लक्ष्मीधरस्यापि वर्तते शोककारिणी ॥१२४॥
 ब्रवीत्येवमसौ याचकैकया तावदागता । वेगिनं रथमारुह्य सामन्तशतमध्यगा ॥१२५॥

हुआ । वह 'साधु-साधु ठोक-ठोक' इस प्रकारके शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोड़ोंसे युक्त हो रामके मार्गमें चल पड़ा ॥१११॥ वह रामके पाससे लौटकर आये हुए लोगोंको आगे कर बड़ी उत्कण्ठासे पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर चला ॥११२॥ तथा कुछ ही समयमें उस महाअटवीमें जा पहुँचा जो हाथियोंके समूहसे व्याप्त थी, नाना वृक्षोंसे जहाँ सूर्यका प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्वत और गर्तोंसे अत्यन्त भयंकर थी ॥११३॥ सामने भयंकर नदी थी सो वृक्षोंके बड़े-बड़े लट्टोंसे नावोंके समूहको बाँधकर उनका पुल बना ब्राह्मणोंके साथ-साथ क्षण-भरमें पार कर गया ॥११४॥ वह मार्गमें मिलनेवाले लोगोंसे पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगोंने एक स्त्रीके साथ दो पुरुष देखे हैं और उत्तरको एकाग्र मनसे सुनता हुआ आगे बढ़ता जाता था ॥११५॥ अथानन्तर जो सघन वनमें एक सरोवरके तीरपर विश्राम कर रहे थे तथा जिनके पास ही धनुष रखे हुए थे ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मणको भरतने देखा ॥११६॥ राम-लक्ष्मण, सीताके कारण जिस स्थानपर बहुत दिनमें पहुँच पाये थे भरत उस स्थानपर छह दिनमें ही पहुँच गया ॥११७॥ वह घोड़ेसे उतर पड़ा और जहाँसे राम दिख रहे थे उतने मार्गमें पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणोंका आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गया ॥११८॥ तदनन्तर रामने सचेत किया सो क्रमसे वार्तालाप कर नम्रीभूत हो हाथ जोड़ शिरसे लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विडम्बना की है ? आप ही न्यायके जाननेवाले अतिशय निपुण हो ॥११९-१२०॥ उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेवाले आपसे पृथक् रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२१॥ हे प्रभो ! उठो, अपनी नगरीको चलें, मुझपर प्रसन्नता करो, समस्त राज्यका पालन करो, और मुझे सुखकी अवस्था देओ ॥१२२॥ मैं आपका छत्रधारक होऊँगा, शत्रुघ्न चमर डोलेगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मन्त्री होगा, ऐसा करनेसे ही सब ठीक होगा ॥१२३॥ मेरी माता पश्चात्तापरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तप्त हो रही है तथा आपकी और लक्ष्मणकी माता भी निरन्तर शोक कर रही हैं ॥१२४॥ जबतक भरत इस प्रकार कह रहा था तबतक सैकड़ों सामन्तोंके मध्य गमन करनेवाली कैकयी

१. हस्तिसमूहयुक्ताम् । २. नौकातां । ३. समूहान् । ४. नदीम् । ५. पद्मां म. (?) । ६. रामस्य ।

दृष्ट्वा परमशोकेन निर्भरीकृतमानसा । हाकारमुखरा चेतवालिङ्गच रुदिता चिरम् ॥१२६॥
 ततोऽस्त्रसरितश्छेदे विप्रलापेऽतिस्वेदिता । क्रमात्संभाषणं कृत्वा केकयैवसमापत ॥१२७॥
 पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं यामः कुरु राज्यं सहानुजः । ननु त्वया विहीनं मे सकलं विपिनायते ॥१२८॥
 मरतः शिक्षणीयोऽयं तवात्यन्तमनीषिणः । स्त्रैणेन नष्टबुद्धेर्मे क्षमस्व दुरनुष्ठितम् ॥१२९॥
 ततः पद्मो जगादैवं किं न वेत्स त्वमम्बिके । क्षत्रिया ननु कुर्वन्ति सकृत्कार्यमनन्यथा ॥१३०॥
 उक्तं तातेन यत्सत्यं तत्कर्तव्यं मया त्वया । भरतेन च दुष्कीर्तिर्माभूदस्य जगत्त्रये ॥१३१॥
 पुनश्चोवाच भरतं आतर्मा गा विचित्ताम् १ । शङ्कसे यथनाचाराभायं मदनुमोदनात् ॥१३२॥
 इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य पद्मो राज्याभिषेचनम् । चकार कानने रम्ये समक्षं सर्वभूश्रुताम् ॥१३३॥
 प्रणम्य केकयी सान्त्वं संभाष्य च पुनः पुनः । आतरं च परिष्वज्य प्राहिणोत् सोऽतिकृच्छ्रतः ॥१३४॥
 तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं ससीतयोः । रामलक्ष्मणयोर्वीरौ मातापुत्रौ यथागतम् ॥१३५॥
 परिष्वस्ताखिलद्वेषं सर्वप्रकृतिस्त्रौख्यदम् । चकार भरतो राज्यं प्रजासु जनकोपमः ॥१३६॥
 राज्ये तथाविधेऽप्यस्य घृतिर्नाभूदपि क्षणम् । दुस्सहं दधमानस्य शोकशल्यं मनस्विनः ॥१३७॥
 त्रिकालअरनाथस्य वन्दारुमोगमन्दवीः । ययौ श्रोतुं च सद्धर्मं चैत्यमस्येयती धृतिः ॥१३८॥

वेगशाली रथपर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥१२५॥ राम लक्ष्मणको देखकर इसका हृदय बहुत भारी शोकसे भर गया । हा हा कार करती हुई वह दोनोंका आलिंगन कर चिरकाल तक रोती रही ॥१२६॥

तदनन्तर जो विलाप करती-करती अत्यन्त खिन्न हो गयी थी ऐसी केकयी अश्रुरूपी नदी-की धारा दूटनेपर क्रमसे वार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र ! उठो, नगरीको चले, छोटे भाइयोंके साथ राज्य करो, तुम्हारे विना मुझे यह सब राज्य वनके समान जान पड़ता है ॥१२७-१२८॥ तुम अतिशय बुद्धिमान् हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षाके योग्य है अर्थात् इसे शिक्षा देकर ठीक करो, स्त्रीपनाके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी अतः मेरे इस कुकृत्यको क्षमा करो ॥१२९॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे माता ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि क्षत्रिय स्वीकृत कार्यको कभी अन्यथा नहीं करते हैं—एक बार कार्यको जिस प्रकार स्वीकृत कर लेते हैं उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥१३०॥ 'पिताकी अपकीर्ति जगत्त्रयमें न फैले' इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है ॥१३१॥ केकयीसे इतना कहकर उन्होंने भरतसे कहा कि हे भाई ! तू वैचित्य अर्थात् द्विविधाको प्राप्त मत हो । यदि तू अनाचारसे डरता है तो यह अनाचार नहीं है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्यकी तुझे अनुमति दे रहा हूँ ॥१३२॥ इतना कहकर रामने मनोहर वनमें सब राजाओंके समक्ष भरतका पुनः राज्याभिषेक किया ॥१३३॥ तदनन्तर केकयीको प्रणाम कर सान्त्वना देते हुए बार-बार सम्भाषण कर और भाईका आलिंगन कर बड़े कष्टसे सबको वापस विदा किया ॥१३४॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित राम-लक्ष्मणका यथायोग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥१३५॥

अथानन्तर भरत, पिताके समान, प्रजापर राज्य करने लगा । उसका राज्य समस्त शत्रुओंसे रहित तथा समस्त प्रजाकी सुख देनेवाला था ॥१३६॥ तेजस्वी भरतने अपने मनमें असहनीय शोकरूपी शल्यको धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्यमें भी उसे क्षणभरके लिए सन्तोष नहीं होता था ॥१३७॥ वह तीनों काल अरनाथ भगवान्की वन्दना करता था, भोगोंसे सदा उदास रहता था और समीचीन धर्मका श्रवण करनेके लिए मन्दिर जाता था

१. विपिनमिवाचरति । २. विचिन्ततां म. । ३. 'संकासय घनारातीन्नायं मदनुमोदनात्' ब. ।

तत्राचार्यो द्युतिर्नाम स्वपरागमपारागः । महता साधुसंघेन सततं कृतसेवनः ॥१३५॥
 अग्रतोऽवग्रहं तस्य चकार भरतः सुधीः । पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति ॥१३६॥
 कृतावग्रहमेवं तमुवाच भगवान् द्युतिः । कुर्वन् मयूरसमूहको नृत्यं धीरया गिरा ॥१३७॥
 भव्य भो यावदायाति पद्मः पद्मनिरीक्षणः । तावद्गृहस्थधर्मेण भवासपरिकर्मकः ॥१३८॥
 अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा निर्ग्रन्थानां महात्मनाम् । परिकर्म विशुद्धस्य जायते सुखसाधना ॥१३९॥
 उपरिष्ठात् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन् । अनेको मृत्युनायाति नरोऽतिजडमानसः ॥१४०॥
 अनर्घ्यरत्नसदृशं तपो दिग्वाससागिति । पृथगप्यक्षमं वक्तुं परस्तस्थोपमा कुतः ॥१४१॥
 कनीयास्तस्य घस्रोऽयमुक्तोऽयं गृहिणां जिनैः । अग्रसादी भवेत्तस्मिन्नितरतो बोधदागिति ॥१४२॥
 यथा रत्नाकरद्वीपं मानवः कश्चिदागतः । रत्नं यत्किञ्चिदादत्ते यात्यस्य तदनर्घताम् ॥१४३॥
 तथास्मिन्नियमद्वीपे शासने धर्मचक्रिणाम् । य एव नियमः कश्चिद् ग्रहीतो यात्यनर्घताम् ॥१४४॥
 अतिसारत्नसादाय विपुलं यो जिनाधिपम् । भक्त्यार्चयत्यसौ नाके परमां वृद्धिमश्नुते ॥१४५॥
 सत्यव्रतधरः स्रग्मिर्यः कोति जिनार्चनम् । भक्त्यादेयवाक्योऽसौ सत्कीर्तिव्याप्तविष्टपः ॥१४६॥
 अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति । जायते रत्नपूर्णानां निधिनो स विभुर्नरः ॥१४७॥
 यो रतिं परनारीषु न करोति जिनाश्रितः । सोऽथ गच्छति सौभाग्यं सर्वनेत्रमलिम्लुचैः ॥१४८॥
 जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रहः । लभतेऽसावतिस्फीतान् लाभान् लोकस्य पूजितः ॥१४९॥

यही इसका नियम था ॥१३८॥ वहाँ स्व और परशास्त्रोंके पारगामो तथा अनेक मुनियोंका संघ जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नामके आचार्य रहते थे ॥१३५॥ उनके आगे बुद्धिमान् भरतने प्रतिज्ञा की कि मैं रामके दर्शन मात्रसे मुनिव्रत धारण करूँगा ॥१४०॥ तदनन्तर अपनी गम्भीर वाणीसे मयूरसमूहको नृत्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले भरतसे बोले ॥१४१॥ कि हे भव्य ! कमलके समान नेत्रोंके धारक राम जबतक आते जबतक तू गृहस्थ धर्मके द्वारा अभ्यास कर ले ॥१४२॥ महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियोंकी चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यासके द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥१४३॥ 'मैं आगे तप करूँगा' ऐसा कहनेवाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं ॥१४४॥ 'निर्ग्रन्थ मुनियोंका तप अमूल्य रत्नके समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो हो ही क्या सकती है ? ॥१४५॥ गृहस्थोंके धर्मको जिनेन्द्र भगवान्ने मुनिधर्मका छोटा भाई कहा है सो बोधिको प्रदान करनेवाले इस धर्ममें भी प्रमाद-रहित होकर लीन रहना चाहिए ॥१४६॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीपमें गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्नको उठाता है वही उसके लिए अमूल्यताको प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्रकी प्रवृत्ति करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के शासनमें जो कोई इस नियमरूपी द्वीपमें आकर जिस किसी नियमको ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥१४७-१४८॥ जो अत्यन्त श्रेष्ठ अहिंसारूपी रत्नको लेकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह स्वर्गमें परम वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो सत्य व्रतका धारी होकर मालाओंसे भगवान्की अर्चा करता है उसके वचनोंको सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्तिसे वह समस्त संसारको व्याप्त करता है ॥१५०॥ जो अदत्तादान अर्थात् चोरीसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करता है वह रत्नोंसे परिपूर्ण निधियोंका स्वामी होता है ॥१५१॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की सेवा करता हुआ परस्त्रियोंमें प्रेम नहीं करता है वह सबके नेत्रोंको हरण करनेवाला परम सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो परि-

१. स्वकीयपरकीयशास्त्रपारगामो । २. प्रतिज्ञाम् । ३. प्राप्ताभ्यासः । ४. स्वर्ग । ५. नदीनां म. (?) ।

६. सर्वजनमनोहरः ।

आहारदानपुण्येन जायते भोगनिर्भरः । विदेशमपि यातस्य सुखिता तस्य सर्वदा ॥१५४॥
 अभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जितः । महासंकटयातोऽपि निष्पद्भवविग्रहः ॥१५५॥
 जायते ज्ञानदानेन विशालसुखभाजनम् । कलार्णवामृतं चासौ गण्डूषं कुरुते नरः ॥१५६॥
 यः करोति विभावयामाहारपरिवर्जनम् । सर्वारम्भप्रवृत्तोऽपि यात्यसौ सुखदां गतिम् ॥१५७॥
 वदनं यो जिनेन्द्राणां त्रिकालं कुरुते नरः । तस्य भावविशुद्धस्य सर्वं नश्यति दुष्कृतम् ॥१५८॥
 सामोदैर्भृजलोद्भूतैः पुष्पैर्यो जिनमर्चति । विमानं पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति यथेप्सितम् ॥१५९॥
 भावपुष्पैर्जिनं यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलैः । लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽस्यन्तसुन्दरः ॥१६०॥
 धूपं यश्चन्दनाशुभ्रागुर्वीदिप्रमर्षं सुधीः । जिनानां हौक्यत्येष जायते सुरभिः सुरः ॥१६१॥
 यो जिनेन्द्रालये दीपं ददाति शुभभावतः । स्वयंप्रमशरीरोऽसौ जायते सुरसञ्चयि ॥१६२॥
 छत्रचामरलम्बूषपताकादर्पणादिभिः । भूषयित्वा जिनस्थानं याति विस्मयिनीं श्रियम् ॥१६३॥
 समालम्ब्य जिनान् गन्धैः सौरभ्यव्याप्तदिग्मुखैः । सुरभिः प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान् ॥१६४॥
 अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा । अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥
 अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया । विमाने क्षीरधवलं जायते परमद्युतिः ॥१६६॥
 दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् । दध्यामकुट्टमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥
 सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् । कान्तिद्युतिप्रभावाढ्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

ग्रहकी सीमा नियत कर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभोंको प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१५३॥ आहार-दानके पुण्यसे यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सब प्रकारके भोग इसे प्राप्त होते हैं । यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥१५४॥ अभयदानके पुण्यसे यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकटमें पड़कर भी उसका शरीर उपद्रवसे शून्य रहता है ॥१५५॥ ज्ञानदानसे यह जीव विशाल सुखोंका पात्र होता है और कलारूपी सागरसे निकले हुए अमृतके कुल्ले करता है ॥१५६॥ जो मनुष्य रात्रिमें आहारका त्याग करता है वह सब प्रकारके आरम्भमें प्रवृत्त रहनेपर भी सुखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥१५७॥ जो मनुष्य तीनों कालमें जिनेन्द्र-भगवान्की वन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है ॥१५८॥ जो पृथिवी तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले सुगन्धित फूलोंसे जिनेन्द्रभगवान्की अर्चा करता है वह पुष्पक विमानको पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह लोगोंके द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१६०॥ जो बुद्धिमत् चन्दन तथा कालागुरु आदिसे उत्पन्न धूप जिनेन्द्रभगवान्के लिए चढ़ाता है वह मनोज्ञ देव होता है ॥१६१॥ जो जिनमन्दिरमें शुभ भावसे दीपदान करता है वह स्वर्गमें देदीप्यमान शरीरका धारक होता है ॥१६२॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्तूस, पताका तथा दर्पण आदिके द्वारा जिनमन्दिरको विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१६३॥ जो मनुष्य सुगन्धिसे दिशाओंको व्याप्त करनेवाली गन्धसे जिनेन्द्रभगवान्का लेपन करता है वह सुगन्धिसे युक्त, स्त्रियोंको आनन्द देनेवाला प्रिय पुरुष होता है ॥१६४॥ जो मनुष्य सुगन्धित जलसे जिनेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेकको प्राप्त होता है ॥१६५॥ जो दूधकी धारासे जिनेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह दूधके समान धवल विमानमें उत्तमकान्तिका धारक होता है ॥१६६॥ जो दहीके कलशोंसे जिनेन्द्र-भगवान्का अभिषेक करता है वह दहीके समान फर्शवाले स्वर्गमें उत्तम देव होता है ॥१६७॥ जो

अभिषेकप्रभावेण श्रूयन्ते बहवो बुधाः । पुराणेष्वनन्तवीर्याद्या १ भुभूलब्धाभिषेचनाः ॥१६९॥
 मक्त्या वक्ष्युपहारं यः कुरुते जिनसन्नि । संप्राप्नोति परां भूतिमारोग्यं स सुमानसः ॥१७०॥
 गीतनर्तनवादित्रैर्यः करोति महोत्सवम् । जिनसङ्गम्यसौ स्वर्गे लभते परमोत्सवम् ॥१७१॥
 भवनं यस्तु जनेन्द्रं निर्मापयति मानवः । तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तुं सुचेतसः ॥१७२॥
 प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ । सुरासुरोत्तमसुखं प्राप्य याति परं पदम् ॥१७३॥
 व्रतज्ञानतपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः । सर्वैस्त्रिष्वपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये ॥१७४॥
 एतस्मादपि जैनेन्द्रविम्बाद् भावेन कारितात् । यन्पुण्यं जायते तस्य न संमान्यतिमात्रतः ॥१७५॥
 फलं यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गे संप्राप्य जन्तवः । चक्रवर्त्यादितो लब्ध्वा यन्मर्त्यत्वेऽपि भुञ्जते ॥१७६॥
 धर्ममेवं विधानेन यः कश्चिदप्राप्य मानवः । संसारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाम्रेऽवतिष्ठते ॥१७७॥
 फलं ध्यानाच्चैतुर्थस्य षष्ठस्योद्यानमात्रतः । अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥१७८॥
 द्वादशस्य ततः किञ्चिन्मध्ये पक्षोपवासजम् । फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात् ॥१७९॥
 चैत्याङ्गणं समासाद्य याति षाण्मासिकं फलम् । फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते ॥१८०॥
 फलं प्रदक्षिणीकृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य तु । दृष्ट्वा जिनास्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रजम् ॥१८१॥
 अनन्तफलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः । नहि मर्कजिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥१८२॥
 कर्म मक्त्या जिनेन्द्राणां क्षयं भरत गच्छति । क्षीणकर्मा पदं याति यस्मिन्ननुपमं सुखम् ॥१८३॥

धीसे जिनदेवका अभिषेक करता है वह कान्ति, द्युति और प्रभावसे युक्त विमानका स्वामी देव होता है ॥१६८॥ पुराणमें सुना जाता है कि अभिषेकके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्गकी भूमिमें अभिषेकको प्राप्त हुए हैं ॥१६९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमन्दिरमें रंगावलि आदिका उपहार चढ़ाता है वह उत्तम हृदयका धारक होकर परम विभूति और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७०॥ जो जिनमन्दिरमें गीत, नृत्य तथा वादित्रोंसे महोत्सव करता है वह स्वर्गमें परम उत्सवको प्राप्त होता है ॥१७१॥ जो मनुष्य जिनमन्दिर बनवाता है उस सुचेताके भोगोत्सवका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥१७२॥ जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरोंके उत्तम सुख प्राप्त कर परम पदको प्राप्त होता है ॥१७३॥ तीनों कालों और तीनों लोकोंमें व्रत, ज्ञान, तप और दानके द्वारा मनुष्यके जो पुण्य-कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमाके बनवानेसे उत्पन्न हुए पुण्यकी बराबरी नहीं कर सकते ॥१७४-१७५॥ इस कहे हुए फलको जीव स्वर्गमें प्राप्त कर जब मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदिका पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं ॥१७६॥ जो कोई मनुष्य इस विधिसे धर्मका सेवन करता है वह संसार-सागरसे पार होकर तीन लोकके शिखरपर विराजमान होता है ॥१७७॥ जो मनुष्य जिनप्रतिमाके दर्शनका चिन्तन करता है वह वेलाका, जो उद्यमका अभिलाषी होता है वह तेलका, जो जानेका आरम्भ करता है वह चौलाका, जो जाने लगता है वह पाँच उपवासका, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उपवासका, जो बीचमें पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवासका, जो मन्दिरके दर्शन करता है वह मासोपवासका, जो मन्दिरके आँगनमें प्रवेश करता है वह छह मासके उपवासका, जो द्वारमें प्रवेश करता है वह वर्षोपवासका, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्षके उपवासका, जो जिनेन्द्रदेवके मुखका दर्शन करता है वह हजार वर्षके उपवासका और जो स्वभावसे स्तुति करता है वह अनन्त उपवासके फलको प्राप्त करता है । यथार्थमें जिनभक्तिसे बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥१७८-१८२॥ आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरत ! जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे कर्म क्षयको प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण

१. स्वर्गवमुपाप्ताभिषेकाः । २. वेलोपवासस्य । ३. दिनत्रयोपवासस्य । ४. चतुर्दिनोपवासस्य ।

हृत्युक्तेऽत्यन्तसद्भक्तिः प्रणम्य चरणौ गुरोः । जग्राह भरतो धर्मं सागारं सुविधानतः ॥१८४॥
बहुश्रुतोऽतिधर्मज्ञो विनीतः श्रद्धयान्वितः । विशेषतो ददौ दानं स साधुषु यथोचितम् ॥१८५॥
सम्यग्दर्शनरत्नं स हृदयेन सदा वहन् । चकार विपुलं राज्यं साधुचेष्टापरायणः ॥१८६॥
प्रतापश्चानुरागश्च समस्तां तस्य मेदिनीम् । बभ्राम प्रतिघातेन रहितां गुणवारिधेः ॥१८७॥
अध्यङ्गं तस्य पत्नीनां शतं देवीसमत्विषाम् । न तत्रासक्तिमायाति शतपत्रं यथाम्भवि ॥१८८॥

उपजातिः

चिन्तास्य नित्यं मगधाधिपासीत् कदा नु लप्स्ये निरगारदीक्षाम् ।
तपः करिष्यामि कदा नु धीरं संगैर्विमुक्तो विहरन् पृथिव्याम् ॥१८९॥

इन्द्रवज्रा

धन्या मनुष्या धरणीतले ते ये सर्वसङ्गान् परिवर्ज्य धीराः ।
दग्ध्वाखिलं कर्म तपोबलेन प्राप्ताः पदं निर्वृत्तिसौख्यसारम् ॥१९०॥

उपजातिः

तिष्ठामि पापो भवदुःखमग्नः पश्यन्नपीदं क्षणिकं समस्तम् ।
पूर्वाह्णदृष्टोऽत्र जनोऽपराह्णे न दृश्यते कश्चिदहोऽस्मि भूदः ॥१९१॥

इन्द्रवज्रा

व्यालाज्जलाद् वा विषतोऽनलाद् वा वज्राद् विमुक्तादहितेन शस्त्रात् ।
शूलाद् वराद् वा मरणं जनोऽयं प्राप्नोति दीनाननबन्धुमध्ये ॥१९२॥

हो जाते वह अनुपम सुखसे सम्पन्न परम पदको प्राप्त होता है ॥१८३॥ ऐसा कहनेपर अत्यन्त समीचीन भक्तिसे युक्त भरतने गुरुके चरणोंको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया ॥१८४॥ अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता, धर्मके भर्मको जाननेवाला, विनयवान् और श्रद्धा गुणसे युक्त भरत अब साधुओंके लिए विशेष रूपसे यथायोग्य दान देने लगा ॥१८५॥ उत्तम आचरणके मालनमें तत्पर रहनेवाला भरत हृदयमें सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको धारण करता हुआ विशाल राज्यका पालन करता था ॥१८६॥ गुणोंके सागरस्वरूप भरतका प्रताप और अनुराग दोनों ही बिना किसी रुकावटके समस्त पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥१८७॥ उसके देवियोंके समान कान्तिको धारण करनेवाली डेढ़ सौ स्त्रियाँ थीं फिर भी वह उनमें आसक्तिको प्राप्त नहीं होता था । जिस प्रकार कमल जलमें रहकर भी उसमें आसक्त नहीं होता है उसी प्रकार वह उन स्त्रियोंके बीच रहता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं था ॥१८८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! भरतके मनमें सदा यही चिन्ता विद्यमान रहती थी कि मैं निर्ग्रन्थ दीक्षा कब धारण करूँगा और परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता हुआ घोर तप कब करूँगा ? ॥१८९॥ पृथिवीतलपर वे धीर-वीर मनुष्य धन्य हैं जो सर्व परिग्रहका त्यागकर तथा तपोबलसे समस्त कर्मोंको भस्म कर सन्तोषरूपी सुखसे श्रेष्ठ मोक्ष पदको प्राप्त हो चुके हैं ॥१९०॥ एक मैं पापी हूँ जो समस्त जगत्को क्षणभंगुर देखता हुआ भी संसारके दुःखमें मग्न हूँ । इस संसारमें जो मनुष्य पूर्वाह्ण कालमें देखा गया है वही अपराह्ण कालमें नहीं दिखाई देता फिर भी आश्चर्य है कि मैं भूद बना हूँ ॥१९१॥ दीन हीन मुखको धारण करनेवाले बन्धुजनोंके बीचमें बैठा हुआ यह प्राणी सर्पसे, जलसे, विषसे, अग्निसे, वज्रसे, शत्रुके द्वारा छोड़े हुए शस्त्रसे,

१. कमलम् । २. दीनो ननु बन्धुमध्ये म. ।

उपजातिः

बहुप्रकारैर्मरणैर्जनोऽयं प्रतर्क्यते दुःखसहस्रभागी ।
 क्षारार्णवस्येव तटे प्रसुप्तो भक्तोऽतिवेगप्रसृतोर्मिजालैः ॥१९३॥
 विधाय राज्यं घनपापदिग्धो हा कं प्रपस्ये नरकं तु घोरम्^१ ।
 शरासिचक्राङ्गानगान्धकारं किं वा तु तिर्यक्स्वमनेकयोनिम् ॥१९४॥
 लब्ध्वापि जैनं समर्थं यदेतन्मनो मदीयं^२ दुरितानुबद्धम् ।
 करोति नो निस्पृहतामुपेत्य विमुक्तिदक्षं निरगारधर्मम् ॥१९५॥
 एवं च चिन्तां सततं प्रपन्नो दुष्कर्मविध्वंसनहेतुभूताम् ।
 पुराणनिर्ग्रन्थकथाप्रसक्तो ददर्श राजा न रविं न चन्द्रम् ॥१९६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथरामभरतानां प्रव्रज्यावनप्रस्थानराज्याभिधानं
 नाम द्वात्रिंशत्तमं पर्व ॥३२॥



अथवा तीक्ष्ण शूलसे मरणको प्राप्त हो जाता है ॥१९२॥ यह प्राणी अनेक प्रकारके मरणोंसे हजारों प्रकारके दुःख भोगता हुआ भी निश्चिन्त बैठता है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेगसे फँलनेवाली लहरोके समूहसे निर्भय हो लवणसमुद्रके तटपर सोया है ॥१९३॥ हाय हाय, मैं राज्यकर तीव्र पापसे लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, खड्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शाल्मली आदि वृक्षों और पहाड़ोंके कारण घोर अन्धकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरकमें पड़ूँगा अथवा अनेक योनियोंसे युक्त तिर्यच पर्यायको प्राप्त होऊँगा ? ॥१९४॥ मेरा यह मन जैनधर्मको पाकर भी पापोंसे लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहताको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करानेमें समर्थ मुनिधर्मको धारण नहीं कर रहा है ॥१९५॥ इस प्रकार जो पापकर्मके नाशमें कारणभूत चिन्ताको निरन्तर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियोंकी कथामें सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्यकी ओर देखता था न चन्द्रमाकी ओर ॥१९६॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें राजा दशरथकी दीक्षा, रामका वनगमन और भरतके राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला अन्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३२॥



१. लवणसमुद्रस्येव, क्षीरार्णव- म. । २. कुघोरं म. । ३. न्मदान्मदीयं म. ।

त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व

ततो जनोपभोग्यानां प्रदेशानां समीपतः । रमणीयान् परिप्राप पद्मस्तापससंश्रयान् ॥१॥
 तापसा जटिलास्तत्र नानावल्कलधारिणः । सुस्वादुफलसंपूर्णाः पादपा इव भूरयः ॥२॥
 विशालपत्रसच्छन्ना मठकाः सविततर्दिकाः । पलाशोदुम्बरैधानां पुलिकाभिर्युताः क्वचित् ॥३॥
 अंकुष्टपत्र्यबीजेन शुष्यता पुरिताङ्गणाः । वर्तयद्भिः सुविश्रब्धैः रोमन्थं राजिता मृगैः ॥४॥
 सजटैर्वटुमिर्युक्ता रटद्भिः सततं पटु । ललितोच्छ्रितपुच्छेण तार्णकेन कृताजिराः ॥५॥
 पटद्भिर्विशदं युक्ताः शारिकाशुककौशिकैः । वीरुधां पुष्परम्याणां छायासु समवस्थितैः ॥६॥
 कन्यामिर्घटकैः स्वादु वारिणा भ्रातृतेक्षितैः । पूर्णालबालकैर्बालैस्तहभिः कृतराजनाः ॥७॥
 फलैर्बहुविधैः पुष्पैर्वासितैः स्वादुवारिमिः । सादरैः स्वागतस्वानैः सार्धदानैस्तथाशनैः ॥८॥
 संभाषणैः कुटीदानैः शयनैर्मृदुपल्लवैः । तापसैरुपचारैस्ते पूजिता श्रमहारिभिः ॥९॥
 आतिथेयाः स्वभावेन ते हि सर्वत्र तापसाः । रूपेष्वेवं प्रकारेषु विशेषेण सुवृत्तयः ॥१०॥
 उपित्वा गच्छतां तेषां ययुर्माणेण तापसाः । पाषाणानपि तद्रूपं द्रवीकुर्यात् किमन्यकैः ॥११॥
 शुष्कपत्राशिनस्तत्र तापसा वायुपायिनः । सीतारूपहृतस्वान्तो घृतिं दूरेण तस्यजुः ॥१२॥

अथानन्तर राम मनुष्योंके उपभोगके योग्य स्थानोंसे हटकर तपस्वियोंके सुन्दर आश्रममें पहुँचे। वहाँ वृक्षोंके समान जटिल अर्थात् जटाधारी (पक्षमें जड़ोंसे युक्त), नाना प्रकारके वल्कलोंको धारण करनेवाले और स्वादिष्ट फलोंसे युक्त बहुत-से तापस रहते थे ॥१-२॥ उस आश्रममें अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तोंसे छाये थे। सबके आगे बैठनेके लिए चबूतरे थे, जो एक ओर कहीं रखी हुई पलाश तथा ऊमरकी लकड़ियोंकी गड्डियोंसे सहित थे ॥३॥ बिना जोते बोये अपने-आप उत्पन्न होनेवाले धान उनके आँगनोंमें सूख रहे थे तथा निश्चिन्ततासे रोमन्थ करते हुए हरिणोंसे वे सुशोभित थे ॥४॥ निरन्तर जोर-जोरसे रटनेवाले जटाधारी बालकोंसे युक्त गायोंके बछड़े अपनी सुन्दर पूँछ ऊपर उठाकर उन मठोंके आँगनोंमें चौकड़ियाँ भर रहे थे ॥५॥ फूलोंसे सुन्दर लताओंकी छायामें बैठकर स्पष्ट उच्चारण करनेवाले तोता, मैना तथा उलूक आदि पक्षियोंसे वे मठ सहित थे ॥६॥ कन्याओंने भाई समझकर घड़ों द्वारा मधुर जलसे जिनकी क्यारियाँ भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठोंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥७॥ उन तपस्वियोंने नाना प्रकारके मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदरसे भरे स्वागतके शब्द, अर्घके साथ दिये गये भोजन, मधुर सम्भाषण, कुटीका दान और कोमल पत्तोंकी शय्या आदि थकावटको दूर करनेवाले उपचारसे उनका बहुत सम्मान किया ॥८-९॥ तापस लोग स्वभावसे ही सर्वत्र अतिथि-सत्कार करनेमें निपुण थे फिर इस प्रकारके सुन्दर पुरुषोंके मिलनेपर तो उनका वह गुण और भी अधिक प्रकट हो गया था ॥१०॥ राम-लक्ष्मण वहाँ बसकर जब आगे जाने लगे तब वे तापस उनके मार्गमें आ गये सो ठीक ही है क्योंकि उनका रूप पाषाणोंको भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरोंकी तो बात ही क्या थी? ॥११॥ उस आश्रममें जो तापस रहते थे उन्होंने सुन्दर रूप कहाँ देखा था? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायुका पान कर जीवन बिताते थे इसलिए सीताका रूप देखते ही

१. वितर्दिकासहिताः । २. अंकुष्टपत्र्यमानेन म. । ३. बालस्तहभिः म. । ४. कृतराजनः म. । ५. अतिथिषु साधवः ।

तानूचुस्तापसा वृद्धाः सान्त्ववाचा पुनः पुनः । तिष्ठतं यदि नास्माकमाश्रमे शृणुतं ततः ॥१३॥
 सर्वातिथ्यसमेतारव्यटवीषु विचक्षणौ । विश्रम्भं जातु भा गातां नारीष्विव नदीष्विव ॥१४॥
 तापसप्रमदा दृष्ट्वा पद्मं पद्मनिरीक्षणम् । लक्ष्मणं च जहुः सर्वं कर्तव्यं शून्यविग्रहाः ॥१५॥
 काश्चिदुत्कण्ठया युक्तास्तन्मागीहितलोचनाः । व्रजन्त्यन्यापदेशेन सुदूरं विह्वलात्मिकाः ॥१६॥
 मधुरं ब्रुवते काश्चिद्भवन्तोऽस्माकमाश्रमे । किं न तिष्ठन्तु सर्वं नः करिष्यामो यथोचितम् ॥१७॥
 अतीत्य त्रीनितः कोशानरण्यानी जनोन्मिता । महानोकहसञ्छन्ना हरिशार्दूलसंकुला ॥१८॥
 समित्फलप्रसूनार्थं तापसा अपि तां भुवम् । न व्रजन्ति महामीमां दर्भसूचीभिराचिताम् ॥१९॥
 चित्रकूटः सुदुर्लब्धः प्रविशालो महीधरः । भवद्भिः किं न विज्ञातः प्रकोपं येन गच्छत ॥२०॥
 तापस्योऽवश्यमस्माभिर्गन्तव्यमिति चोदिताः । कृच्छ्रेण ता न्यवर्तन्त कुर्वाणास्तत्कथां चिरम् ॥२१॥
 ततस्ते भूमहीध्राग्रप्राव्रतातमुककेशम् । महातड्डमारुढवल्लीजालसमाकुलम् ॥२२॥
 क्षुदतिक्रुद्धशार्दूलनखविक्षेपपादपम् । सिंहाहतद्विपोद्गोर्णरक्तवमौक्तिकपिच्छलम् ॥२३॥
 उन्मत्तवारणस्कन्धतट्टैस्कन्धमहातट्टम् । केसरिध्वनिवित्रस्तसमुत्कीर्णकुरङ्गकम् ॥२४॥
 सुप्ताजगरनिश्वासवायुपुरितगद्गमम् । वराहयूथप्रोधाग्रविषमीकृतपल्लवम् ॥२५॥
 महामहिषशृङ्गाग्रमग्नवलमीकसानुकम् । ऊर्ध्वाकृतमहामोगसंचरद्भोगिभीषणम् ॥२६॥

उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धीरजको दूर छोड़ दिया ॥१२॥ वृद्ध तपस्वियोंने शान्त वचनोंसे उनसे बार-बार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रममें नहीं ठहरते हैं तो भी हमारे वचन सुनिए ॥१३॥ यद्यपि ये अटवियाँ सर्व प्रकारके आतिथ्य-सत्कारसे सहित हैं तो भी नारियों और नदियोंके समान इनका विश्वास नहीं कीजिए । आप स्वयं बुद्धिमान् हैं ॥१४॥ तपस्वियोंकी स्त्रियोंने कमलके समान नेत्रोंवाले राम और लक्ष्मणको देखकर अपने सब काम छोड़ दिये । उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया ॥१५॥ उत्कण्ठासे भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियाँ उनके मार्गमें नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्यके बहाने बहुत दूर तक चली गयीं ॥१६॥ कोई स्त्रियाँ मधुर शब्दोंमें कह रही थीं कि आप लोग हमारे आश्रममें क्यों नहीं रहते हैं ? हम आपका सब कार्य यथायोग्य रीतिसे कर देंगी ॥१७॥ यहाँसे तीन कोश आगे चलकर मनुष्योंके संचारसे रहित, बड़े-बड़े वृक्षोंसे भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक महाअटवी है ॥१८॥ वह अत्यन्त भयंकर है तथा डाभकी सूचियोंसे व्याप्त है । ईधन तथा फल-फूल लानेके लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥१९॥ आगे अत्यन्त दुर्लब्ध तथा बहुत भारी चित्रकूट नामका पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं हैं जिससे क्रोधको प्राप्त हो रहे हैं ॥२०॥ इसके उत्तरमें राम-लक्ष्मणने कहा कि हे तपस्वियो ! हम लोगोंको अवश्य ही जाना है । इस प्रकार कहनेपर वे बड़ी कठिनाईसे लौटीं और लौटती हुई भी चिरकाल तक उन्हींकी कथा करती रहीं ॥२१॥

अथानन्तर उन्होंने ऐसे महावनमें प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतोंके अग्रभागके चट्टानोंके समूहसे अत्यन्त कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताओंके समूहसे जो व्याप्त था ॥२२॥ जहाँ भूखसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए व्याघ्र नखोंसे वृक्षोंको क्षत-विक्षत कर रहे थे । जो सिंहोंके द्वारा मारे गये हाथियोंके गण्डस्थलसे निकले रुधिर तथा मोतियोंकी कीचसे युक्त था ॥२३॥ जहाँ उन्नत हाथियोंने अपने स्कन्धोंसे बड़े-बड़े वृक्षोंके स्कन्ध छील दिये थे । जहाँ सिंहोंकी गर्जनासे भयभीत हुए मृग इधर-उधर दौड़ रहे थे ॥२४॥ जहाँ सोये हुए अजगरोंकी श्वासोच्छ्वास वायुसे गुफाएँ भरी हुई थी । तथा सूकर समूहके मुखके अग्रभागके आघातसे छोटे-छोटे जलाशय ऊँचे-नीचे हो रहे थे ॥२५॥ बड़े-बड़े भैंसाओंके सींगोंके अग्रभागसे जहाँ वामियोंके

तरश्चक्षतसारङ्गरुधिरभ्रान्तमक्षिकम् । कण्टकासक्तपुच्छाग्रप्रताम्यच्चमरीगणम् ॥२७॥
 दर्पसंप्रितश्चाविन्मुक्तसूचीविचित्रितम् । विषपुष्परजोघ्राणघूर्णितानेकजन्तुकम् ॥२८॥
 खड्गिखड्गसमुल्लिङ्गतस्करुक्च्युतद्रवम् । उद्भ्रान्तगवयघ्रातभग्नपल्लवजालकम् ॥२९॥
 नानापक्षिकुलक्रूरकूजितप्रतिनादितम् । शाखाभृगुकुलाक्रान्तचलत्प्राग्भारपादपम् ॥३०॥
 तीव्रवेगगिरिस्त्रोतःशतनिर्दारितक्षमम् । वृक्षाग्रविस्फुरस्फीतदिवाकरकरोत्करम् ॥३१॥
 नानापुष्पफलाकीर्णं विचित्रामोदवासितम् । विविधौषधिसंपूर्णं वनसस्यसमाकुलम् ॥३२॥
 कचिन्नोलं कचिरपीतं कचिद्रक्तं हरिक्वचिवत् । पिञ्जरच्छायमन्यत्र विविशुर्विपिनं महत् ॥३३॥
 तत्र ते चित्रकूटस्य निर्झरेष्वतिचारुषु । क्रीडन्तो दर्शयन्तश्च सद्गस्तूनि परस्परम् ॥३४॥ कुलकं (द्वादशभिः)
 फलानि स्वादुहारीणि स्वदमानाः पदे पदे । गायन्तो मधुरं हारि किन्नरीणां त्रपाकरम् ॥३५॥
 पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतैर्भूषयन्तः परस्परम् । सुगन्धिभिर्द्रवैर्द्रवैर्लिम्पन्तस्तत्सर्वभवेः ॥३६॥
 उद्यानमिव निर्याता विकसत्कान्तिलोचनाः । स्वच्छन्दकृतसंस्काराः सत्त्वलोचनतस्कराः ॥३७॥
 लतागृहेषु विश्रान्ता मुहुर्नयनहारिषु । कृतनानाकथासङ्गाः किञ्चिन्नर्मविधायिनः ॥३८॥
 व्रजन्तो लीलया युक्ता निसर्गादतिरम्यया । पर्यटन्तो वनं चाह त्रिदशा ह्रव नन्दनम् ॥३९॥
 पक्षीनैः पञ्चभिर्मसैस्तमुद्देशमतीत्य ते । जनैः समाकुलं प्रापुर्देशमत्यन्तसुन्दरम् ॥४०॥

शिखर खुद गये थे तथा जो बड़े-बड़े फण ऊँचे उठाकर चलनेवाले साँपोंसे भयंकर था ॥२६॥ जहाँ भेड़ियोंके द्वारा मारे गये मृगोंके रुधिरपर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं और कटौली झाड़ियोंमें पूँछके बाल उलझ जानेसे जहाँ चमरी मृगोंके झुण्ड बेचैन हो रहे थे ॥२७॥ जो अहंकारसे भरी सेहियोंके द्वारा छोड़ी हुई सूचियोंसे चित्रविचित्र था तथा विषपुष्पोंकी परागके सूँघनेसे जहाँ अनेक जन्तु इधर-उधर घूम रहे थे ॥२८॥ जहाँ गेंडा, हाथियोंके गण्डस्थलोंके आघातसे खण्डित हुए वृक्षोंके तनोंसे पानी झर रहा था तथा इधर-उधर दौड़ते हुए गवय-समूहने जहाँ वृक्षोंके पल्लव तोड़ डाले थे ॥२९॥ जहाँ नाना पक्षियोंके समूहकी क्रूरध्वनि गूँज रही थी तथा वानर समूहके आक्रमणसे जहाँ वृक्षोंके ऊर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥३०॥ तीव्र वेगसे बहनेवाले सैकड़ों पहाड़ी झरनोंसे जहाँ पृथिवी विदीर्ण हो गयी थी तथा वृक्षोंके अग्रभागपर जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह देदीप्यमान होता था ॥३१॥ जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे व्याप्त था, विचित्र प्रकारकी सुगन्धिसे सुवासित था, नाना ओषधियोंसे परिपूर्ण था, और जंगली धान्योंसे युक्त था ॥३२॥ जो कहीं नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिंगल वर्ण था ॥३३॥ वे तीनों महानुभाव वहाँ चित्रकूटके सुन्दर निर्झरोंमें क्रीड़ा करते, सुन्दर वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेको दिखाते, स्वादिष्ट मनोहर फल खाते, पद-पदपर किन्नरियोंको लज्जित करनेवाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे परस्पर एक दूसरेको भूषित करते और वृक्षोंसे निकले हुए सुगन्धित द्रवसे शरीरको लिप्त करते हुए इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे मानो उद्यानकी सैर करनेके लिए ही निकले हों । उनके सुन्दर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इच्छानुसार शरीरकी सजावट करते थे तथा प्राणियोंके नेत्रोंका अपहरण करते थे ॥३४-३७॥ वे बार-बार नेत्रोंको हरण करनेवाले निरुजोंमें विश्राम करते थे, नाना प्रकारकी कथावार्ता करते थे और तरह-तरहकी क्रीड़ाएँ करते थे ॥३८॥ स्वभावसे ही अत्यन्त सुन्दर लीलाके साथ गमन करते हुए वे उस सुन्दर वनमें इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे जिस प्रकार कि तन्दन वनमें देव ॥३९॥ इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मासमें वे उस स्थानको पार कर मनुष्योंसे भरे हुए अत्यन्त सुन्दर अवन्ती देशमें पहुँचे ।

१. नानापक्षि कुलं क्रूरकूजितं प्रतिनादितं म. । २. निर्धारितक्षयं म. ।

गोधण्टारवसंपूर्णं नानासस्योपशोभितम् । अवन्तीविषयं स्फीतं ग्रामपत्तनसंकुलम् ॥४१॥
 मार्गं तत्र क्रियन्तं चिदतिक्रम्य जनोज्झितम् । विषयैकान्तमापुस्ते पृथुं स्वाकारधारिणः ॥४२॥
 छायां न्यग्रोभजां श्रित्वा विश्रान्तास्ते परस्परम् । जगुः कस्मादयं देशो दृश्यते जनवर्जितः ॥४३॥
 सस्यानि कृष्टपच्यानि दृश्यन्तेऽत्रातिभूरिशः । उद्यानपादपाश्र्वेत्ये फलैः पुष्पैश्च शोभिताः ॥४४॥
 पुण्ड्रैक्षुवाटसंपन्ना ग्रामास्तुक्कावनिस्थिताः । सरोर्यच्छिन्नपद्मानि युक्तानि विविधैः खगैः ॥४५॥
 अध्वार्यं घटकैर्मग्नैः शकटैश्च विशङ्कटः । कण्ठैः कुण्डकैर्दण्डैः कुण्डिकाभिः कटासनैः ॥४६॥
 विकीर्णास्तण्डुला माषा मुद्गाः सूर्पादयस्तथा । वृद्धोक्षीयं मृतो जीर्णगोष्यस्योपरि तिष्ठति ॥४७॥
 देशोऽयमतिविस्तीर्णः शोभते न जनोज्झितः । अस्यन्तविषयासङ्गो यथा दीक्षासमाश्रितः ॥४८॥
 ततोऽस्यन्तमृदुस्पर्शं निषण्णं रत्नकम्बले । देशोद्भासकृतालापं राम पार्श्वस्थकामुकम् ॥४९॥
 पद्मगर्भदलामाभ्यां पाणिभ्यां पूजितेहिता । द्वाग्विश्रमयितुं सक्ता सीता प्रेमाम्बुदीर्घिका ॥५०॥
 उस्तार्य चोत्सृज्य तां सादरक्रमकोविदः । संवाहयितुमासक्तो लक्ष्मणो ज्यायसोदितः ॥५१॥
 निरूपय कवित्तावद् ग्रामं नगरमेव वा । घोषं वा लक्ष्मण क्षिप्रं श्रान्तेर्यं हि प्रजावती ॥५२॥
 ततोऽन्यस्यातिमुक्तस्य वृक्षस्योर्ध्वसमाश्रितः । दृश्यते किंचिदत्रेति पद्मेनोच्यत लक्ष्मणः ॥५३॥
 सोऽवोचद्देव पश्यामि रूपपर्वतसंनिभान् । शारदाभ्रसमुत्तुङ्गैः शृङ्गजालैर्विराजितान् ॥५४॥

वह देश गायोंकी गरदनोमें बँवे घण्टाओंके शब्दसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारके धान्यसे सुशोभित था, विस्तृत था और ग्राम तथा नगरोंसे व्याप्त था ॥४०-४१॥

तदनन्तर सुन्दर आकारको धारण करनेवाले वे तीनों, कितना हों मार्ग उल्लंघनकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थानमें पहुँचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥४२॥ एक वट वृक्षकी छायामें बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्योंसे रहित क्यों दिखाई देता है ? ॥४३॥ यहाँ अनेकों धानके पके खेत दिखाई दे रहे हैं, बगीचोंके ये वृक्ष फलों और फूलोंसे सुशोभित हैं ॥४४॥ ऊँची भूमिपर बसे गाँव पौडों और ईलोंके बागोंसे युक्त हैं, जिनके कमलोंको किसीने तोड़ा नहीं है ऐसे सरोवर नाना प्रकारके पक्षियोंसे युक्त हैं ॥४५॥ यह मार्ग फूटे घड़ों, गाड़ियों, पिटारों, कूँडों, कुण्डिकाओं और चटाई आदि आसनोंसे व्याप्त है ॥४६॥ यहाँ चावल, उड़द, मूँग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढ़ा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोम लदी हुई है ॥४७॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्योंसे रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेनेवाला साधु विषयोंकी आसक्तिमें पड़कर शोभित नहीं होता ॥४८॥

तदनन्तर देशके ऊँड़ होनेकी चर्चा करते हुए राम अत्यन्त कोमल स्पर्शवाले रत्नकम्बल-पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥४९॥ जो प्रशस्त चेष्टाकी धारक और प्रेमरूपी जलकी मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमलके भीतरी दलके समान कोमल हाथोंसे शीघ्र ही रामको विश्राम दिलाने अर्थात् उनके पादमर्दन करनेके लिए तैयार हुई ॥५०॥ तब आदरपूर्ण क्रमको जाननेवाला लक्ष्मण, बड़े भाईकी आज्ञा प्राप्त कर जाँघोंसे लगी सीताको अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥५१॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावना बहुत थक गयी है इसलिए शीघ्र ही किसी गाँव, नगर अथवा अहीरोंकी बस्तीको देखो ॥५२॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्षकी शिखरपर चढ़ा । रामने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥५३॥ लक्ष्मणने कहा कि हे देव ! जो चाँदीके पर्वतके समान हैं, शरद् ऋतुके बादलोंके समान ऊँचे

प्राग्भारसिंहकर्णस्थजिनबिम्बोपलक्षितान् । प्रासादान् परमोद्यानान् प्रचलद्धवलध्वजान् ॥५५॥
 ग्रामांश्चायतवापीभिः सस्यैश्च कृतवेष्टनान् । नगराणि च गन्धर्वपुरैर्विभ्रन्ति तुल्यताम् ॥५६॥
 दृष्टिगोचरमात्रे तु संनिवेशः सुभूरयः । दृश्यन्ते न पुनः कश्चिदेकोऽप्यालोक्यते जनः ॥५७॥
 समं किं परिवर्गेण विनष्टाः स्युरिह प्रजाः । उपानीताः किमु म्लेच्छैर्वान्दित्वं क्रूरकर्मभिः ॥५८॥
 एकस्तु पुरुषाकारो दृश्यते चातिदूरतः । स्थाणुर्न पुरुषोऽयं तु ननु सैष चलाकृतिः ॥५९॥
 यात्येप किमुतावाति पश्याभ्यागच्छतीत्यम् । तावदायातु मार्गेण जानास्येनं विशेषतः ॥६०॥
 अयं मृग इवोद्विग्नो द्रुतमायाति मानवः । रूक्षोर्द्धमूर्धजो दीनो मलोपहतविग्रहः ॥६१॥
 कूर्चाच्छादितवस्त्रको वसानश्चीरखण्डकम् । स्फुटिताङ्घ्रि स्रवस्वेदो दर्शयन् पूर्वदुष्कृतम् ॥६२॥
 आनयेमसितः क्षिप्रमिति पद्मेन भाषितः । अवतीर्य गतस्तस्य सविस्मय इवान्तिकम् ॥६३॥
 दृष्ट्वा तं पुरुषो हृष्टरोमा विस्मयपूरितः । विलम्बितगतिः किंचिदकरोदिति मानसे ॥६४॥
 सताकम्पितवृक्षोऽयमवतीर्य समागतः । किमिन्द्रो वरुणो दैत्यः किं नागः किन्नरो नरः ॥६५॥
 दैवस्वतः शशङ्को नु बह्वैश्वर्यवणो नु किम् । मास्करो नु सुर्वं प्राप्तः कोऽयमुत्तमविग्रहः ॥६६॥
 इति ध्यायन् महाभीत्या मुकुलीकृत्य लोचने । निश्चेष्टावयवो भूमौ पपातान्यक्तचेतनः ॥६७॥
 उत्तिष्ठान्तिष्ठ भद्र त्वं मा भैषीरिति भाषितः । प्रत्यागतधृतिर्नीतो लक्ष्मणेनान्तिकं गुरोः ॥६८॥

शिखरोसे सुशोभित हैं, जो उपरितन अग्र भागपर जिन-प्रतिमाओंसे सहित हैं, उत्तमोत्तम बगीचों-से युक्त हैं तथा जिनपर सफेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमन्दिरोंको देख रहा हूँ ॥५४-५५॥ लम्बो-चौड़ी वापिकाओं तथा धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरे गाँव और गन्धर्वनगरोंकी तुलना धारण करनेवाले नगर भी दिखाई दे रहे हैं । इस प्रकार बहुत भारी वसतिकाएँ दिखाई दे रही हैं परन्तु उनमें आदमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥५६-५७॥ क्या यहाँकी प्रजा अपने समस्त परिवारके साथ नष्ट हो गयी है अथवा क्रूर कर्म करनेवाले म्लेच्छोंने उसे बन्दी बना लिया है ? ॥५८॥ बहुत दूर, एक पुरुष-जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूँठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति चंचल है ॥५९॥ परन्तु यह जा रहा है या आ रहा है इसका पता नहीं चलता । कुछ देर तक गौरसे देखनेके बाद लक्ष्मणने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्गपर आने दो तभी इसे विशेषतः जान सकूँगा ॥६०॥ लक्ष्मणने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृगके समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिरके बाल रुखे तथा खड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मैलसे दूषित है, पसीना झर रहा है और पूर्वोपाजित पाप कर्मको दिखा रहा है ॥६१-६२॥

रामने लक्ष्मणसे कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ । तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्चर्यके साथ उसके पास गया ॥६३॥ लक्ष्मणको देखकर उस पुरुषको रोमांच उठ आये । वह आश्चर्यसे भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मनमें इस प्रकार विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह जो वृक्षको कम्पित करनेवाला नीचे उतरकर आया है सो क्या इन्द्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चन्द्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवीपर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीरका धारी कौन है ? ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभयसे बन्द हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६७॥ यह देख लक्ष्मणने कहा कि भद्र ! उठ-उठ, डर मत । कुछ देर बाद जब चैतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे रामके पास ले गया ॥६८॥

१. प्रचलद्धवलध्वजान् ब. । २. यमः । ३. ज्येष्ठभ्रातुः ।

ततः सौम्याननं राममभिरामं समन्ततः । दृष्ट्वा कान्तिसमुद्रस्थं चक्षुरस्सवकारिणम् ॥६९॥
 सीतया शोभितं पार्श्ववर्तिन्यातिविनीतया । सुमोच पुरुषः सद्यः क्षुधादिजपरिश्रमम् ॥७०॥
 ननाम चाञ्जलिं कृत्वा शिरसा स्पृष्टभूतलः । छायायां भव विश्वस्त इति चोक्त उपाविशत् ॥७१॥
 अपृच्छत् ततः पद्मः क्षरन्निव गिरासृजम् । आगतोऽसि कुतो भद्र को वा किंसंशकोऽपि वा ॥७२॥
 सोऽवोचद् दूरतः स्थानाच्छीरगुप्तिः^१ कुटुम्बिकः । देशोऽयं विजनः कस्मादिति पृष्टोऽवदत् पुनः ॥७३॥
 सिंहोदर इति ख्यातो देवोऽस्युजयिनीपतिः । प्रतापप्रणतोदारसामन्तः सुरसंनिभः ॥७४॥
 दशाङ्गपुरनाथोऽस्य वज्रकर्णश्रुतिर्महान् । अत्यन्तदयितो भृत्यः कृतानेकान्तुक्रियः ॥७५॥
 मुक्त्वा त्रिभुवनाधीशं भगवन्तं जिनाधिपम् । निर्ग्रन्थांश्च नमस्कारं न करोत्यपरस्थ सः ॥७६॥
 साधुप्रसादतस्तस्य सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । पृथिव्यां ख्यातिमायातं देवेन किमु न श्रुतम् ॥७७॥
 प्रसादः साधुना तस्य कृतः कथमितीरतः । लक्ष्मीधरकुमारेण पद्माभिप्रायसूरिणा ॥७८॥
 उवाच पथिको देव समासात् कथयाम्यहम् । प्रसादः साधुना तस्य यथायमुपपादितः ॥७९॥
 अन्यदा वज्रकर्णोऽयं दशारण्यसमाश्रिताम् । प्राविशत् सत्त्वसंपूर्णामटवीं मृगयोद्यतः ॥८०॥
 जन्मनः प्रभृति क्रूरः ख्यातोऽयं विष्टोऽखिले । हृषीकवन्नगो मूढः सदाचारपराङ्मुखः ॥८१॥
 लोभसंज्ञासमासक्तः सूक्ष्मतरवान्धचेतनः^२ । भोगोद्भवमहागर्वपिशाचग्रहदूषितः ॥८२॥
 तेन च भ्रमता तत्र कर्णिकारवनान्तरे । दृष्टः शिलातले साधुर्दधानः शममुत्तमम् ॥८३॥
 परित्यक्तावृत्तिर्ग्रीष्मे समाप्तनियमस्थितिः । विहंग इव निश्शङ्कः केसरीव भयोज्जितः ॥८४॥

तदनन्तर जिनका मुख सौम्य था, जो सर्व प्रकारसे सुन्दर थे, मानो कान्तिके समुद्रमें ही स्थित थे, नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले थे, और पासमें बैठी हुई अतिशय नम्र सीतसे सुशोभित थे ऐसे रामको देखकर उस पुरुषने क्षुधा आदिसे उत्पन्न हुए श्रमको शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६९-७०॥ उसने हाथ जोड़ मस्तकसे भूमिका स्पर्श करते हुए नमस्कार किया तथा 'छायामें विश्राम कर' इस प्रकार कहे जानेपर वह बैठ गया ॥७१॥ तदनन्तर रामने वाणीसे मानो अमृत झराते हुए उससे पूछा कि हे भद्र ! तू कहाँसे आ रहा है और तेरा क्या नाम है ? ॥७२॥ उसने कहा कि मैं बहुत दूरसे आ रहा हूँ और शीरगुप्ति मेरा नाम है । 'यह देश मनुष्योंसे रहित क्यों है ?' इस प्रकार रामके पूछनेपर वह पुनः कहने लगा ॥७३॥ कि जिसने अपने प्रतापसे बड़े-बड़े सामन्तोंको नम्रीभूत कर दिया है तथा जो देवोंके समान जान पड़ता है ऐसा सिंहोदर नामसे प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरीका राजा है ॥७४॥ दशाङ्गपुरका राजा वज्रकर्ण जिसने कि अनेक आश्चर्य-जनक कार्य किये हैं इसका अत्यन्त प्रिय सेवक है ॥७५॥ वह तीन लोकके अधिपति जिनेन्द्रभगवान् और निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करता है ॥७६॥ 'साधुके प्रसादसे उसका उत्तम सम्यग्दर्शन पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है' यह क्या आपने नहीं सुना ? ॥७७॥ इसी बीचमें रामका अभिप्राय जाननेवाले लक्ष्मणने उससे पूछा कि हे भाई ! साधुने इसपर किस तरह प्रसाद किया है ? सो तो बता ॥७८॥ इसके उत्तरमें उस पथिकने कहा कि हे देव ! साधुने जिस तरह इसपर प्रसाद किया यह मैं संक्षेपसे कहता हूँ ॥७९॥ एक समय शिकार खेलनेके लिए उद्यत हुआ वज्रकर्ण दशारण्यपुरके समीपमें स्थित जीवोंसे भरी अटवीमें प्रविष्ट हुआ ॥८०॥ यह वज्रकर्ण जन्मसे ही लेकर समस्त संसारमें अत्यन्त क्रूर प्रसिद्ध था, इन्द्रियोंका वशगामी था, मूर्ख था, सदाचारसे विमुख था, लोभ अर्थात् परिग्रह संज्ञामें आसक्त था, सूक्ष्म तत्त्वके विचारसे शून्य था, और भोगोंसे उत्पन्न महागर्वरूपी पिशाच ग्रहसे दूषित था ॥८१-८२॥ उस अटवीमें घूमते हुए उसने कनेर वनके बीचमें शिलापर विद्यमान उत्तम शान्तिके धारक एक साधु देखे ॥८३॥ उन

१. शीरगुप्तिः म. । हलवाहकः । २. चेतसः म. ।

स ग्रावभिः करैर्मनोरतितप्तः समन्ततः । अभ्याख्यानशतैस्तीव्रैर्दुर्जनस्येव सज्जनः ॥८५॥
 अश्वारूढः स तं दृष्ट्वा कृतान्तसमदर्शनः । रत्नप्रभवगम्भीरं परमार्थनिवेशनम् ॥८६॥
 पापघातकरं सर्वभूतकारुण्यसङ्गतम् । कुन्तपाणिस्त्वाचैवं भूषितं श्रमणश्रिया ॥८७॥
 अत्र किं क्रियते साधो सोऽवोचद्वितमात्मनः । अनाचरितपूर्वं यज्जनमान्तरशतेष्वपि ॥८८॥
 जगाद् विहसन् भूभृदनया खल्ववस्थया । न किञ्चिदपि ते सौख्यं कीदृशं हितमात्मनः ॥८९॥
 मुक्तलावण्यरूपस्य कामार्थरहितस्य च । अचेलस्यासहायस्य कीदृशं हितमात्मनः ॥९०॥
 स्नानालंकाररहितैः परपिण्डोपजीविभिः । अवाद्दुर्जनैर्नरैः कीदृक् क्रियते हितमात्मनः ॥९१॥
 दृष्ट्वा तं कामभोगात् दयावान् संयतोऽवदत् । हितं पृच्छसि किं त्वं मां छिन्नाशापाशबन्धनम् ॥९२॥
 इन्द्रियैर्वञ्चितान् पृच्छ हितोपायबहिष्कृतान् । मोहेनात्यन्तवृद्धेन भ्राम्यन्ते ये भवान्मुधौ ॥९३॥
 हन्ता सत्त्वसहस्राणामात्मानर्थपरायणः । यात्येष नरकं घोरमवश्यं नष्टचेतनः ॥९४॥
 नूनं त्वया न विज्ञाता घोरा नरकभूमयः । उत्थायोत्थाय पापेषु यत्परं कुरुषे रतिम् ॥९५॥
 पृथिव्यः सन्ति सप्ताधो नरकाणां सुदारुणाः । सुदुर्गन्धाः सुदुष्प्रेक्षाः सुदुस्पर्शाः सुदुस्तराः ॥९६॥
 तीक्ष्णायस्कोलसंकीर्णा नानायन्त्रसमाकुलाः । क्षुरधाराद्रिसंयुक्तास्तसलोहतलाधिकाः ॥९७॥
 रौरवाद्यवटाक्रान्ता महाध्वान्ता महाभयाः । असिपन्नवनच्छन्ना महाक्षारनदीयुताः ॥९८॥

साधुके ऊपर किसी प्रकारका आवरण नहीं था, वे घाममें बैठकर अपना नियम पूर्ण कर रहे थे, पक्षीके समान निःशंक और सिंहके समान निर्भय थे ॥८४॥ जिस प्रकार दुर्जनके अत्यन्त तीखे सैकड़ों कुवचनोंसे सज्जन सन्तप्त होता है उसी प्रकार वे साधु भी नीचे पत्थरों और ऊपरसे सूर्यकी किरणोंके द्वारा सब ओरसे सन्तप्त हो रहे थे ॥८५॥ जो यमराजके समान दिखाई देता था ऐसे वज्रकर्णने घोड़ेपर चढ़े-चढ़े, समुद्रके समान गम्भीर, परमार्थके ज्ञाता, पापोंका विनाश करनेवाले, समस्त प्राणियोंकी दयासे युक्त एवं श्रमण लक्ष्मीसे विभूषित साधुसे भाला हाथमें लेकर कहा ॥८६-८७॥ कि हे साधो ! यह क्या कर रहे हो ? साधुने उत्तर दिया कि जो पिछले सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं किया जा सका ऐसा आत्माका हित करता हूँ ॥८८॥ राजा वज्रकर्णने हँसते हुए कहा कि इस अवस्थामें तो तुम्हें कुछ भी सुख नहीं है फिर आत्माका हित कैसा ? ॥८९॥ जिसका लावण्य और रूप नष्ट हो गया है, जो काम और अर्थसे रहित है, जिसके शरीरपर एक भी वस्त्र नहीं है तथा जिसका कोई भी सहायक नहीं उसका आत्महित कैसा ? ॥९०॥ स्नान तथा अलंकारसे रहित एवं परके द्वारा प्रदत्त भोजनपर निर्भर रहनेवाले आप-जैसे लोगोंके द्वारा आत्महित किस प्रकार किया जाता है ? ॥९१॥ कामभोगसे पीड़ित राजा वज्रकर्णको देखकर दयालु मुनिराज बोले कि तू आशापाशरूपी बन्धनको तोड़नेवाले मुझसे हित क्या पूछ रहा है ? उनसे पूछ कि जो इन्द्रियोंके द्वारा ठगे गये हैं, हितके उपायोंसे दूर हैं और अत्यन्त बढ़े हुए मोहसे जो संसार-सागरमें भ्रमण कर रहे हैं ॥९२-९३॥ यह जो तू हजारों प्राणियोंका घात करनेवाले, आत्माके अनर्थ करनेमें तत्पर एवं सद्-असद्के विचारसे रहित है सो अवश्य ही भयंकर नरकमें पड़ेगा ॥९४॥ जो तू उठ-उठकर पापोंमें परम प्रीति कर रहा है सो जान पड़ता है कि तूने भयंकर नरककी पृथिवियोंको अब तक जाना नहीं है ॥९५॥ इस पृथिवीके नीचे नरकोंकी सात पृथिवियाँ हैं जो अत्यन्त भयंकर हैं, अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त हैं, जिनका देखना अत्यन्त कठिन है, जिनका स्पर्श करना अत्यन्त दुःखदायी है, जिनका पार करना अत्यन्त दुःखकारक है ॥९६॥ लोहेके तीक्ष्ण काँटोंसे व्याप्त हैं, नाना प्रकारके यन्त्रोंसे युक्त हैं, क्षुराकी धाराके समान पने पर्वतोंसे युक्त हैं, जिनका तल भाग तपे हुए लोहेसे भी अधिक दुःख-दायी है ॥९७॥ जो रौरव

पापकर्मपरिक्रिष्टैर्गजैरिव निरङ्कुशैः । तत्र दुःखसहस्राणि प्राप्यन्ते पुरुषार्थमैः ॥९९॥
 भवन्तमेव पृच्छामि त्वादृशैर्विषयातुरैः । क्रियते पापसंसक्तैः कीदृशं हितमात्मनः ॥१००॥
 इन्द्रियप्रभवं सौख्यं किंपाकसदृशं कथम् । अहन्यहन्युपादाय मन्यसे हितमात्मनः ॥१०१॥
 हितं करोत्यसौ स्वस्थ भूतानां यो दयापरः । दीक्षितो गृह्यातो वा बुधो निर्मलमानसः ॥१०२॥
 कृतं तैरात्मनः श्रेयो ये महाव्रततत्पराः । अथवागुचैर्युक्ताः शेषा दुःखस्य माजनम् ॥१०३॥
 परलोकादि हितस्त्वं कृत्वा सुकृतमुत्तमम् । इहलोकेऽधुना पापं कृत्वा यास्यसि दुर्गतिम् ॥१०४॥
 अमी निरागसः क्षुद्रा वराकाः क्षितिशायिनः । अनाथा लीलनयना नित्योद्विग्ना वने मृगाः ॥१०५॥
 आरण्यतृणपानीयकृतविग्रहधारिणः । अनेकदुःखसंछन्नाः पूर्वदुष्कृतमोगिनः ॥१०६॥
 रात्रावपि न विन्दन्ति निद्रां चकितचेतसः । साध्वाचारैर्न युक्तं ते कुलजैर्हिसितुं नरैः ॥१०७॥
 अतो ब्रवीमि राजस्त्वां यदीच्छस्यात्मनो हितम् । त्रिधा हिंसां परित्यज्य कुर्वहिंसां प्रयत्नतः ॥१०८॥
 उद्धैरित्युपदेशोच्चैर्यदासौ प्रतिबोधितः । तदा प्रणतिमायातः फलैरिव महीरुहः ॥१०९॥
 उत्तीर्य प्रसूतः सैर्सेर्जानुपीडितभूतलः । प्रणनामोत्तमाङ्गेन सुसाधुं रचिताञ्जलिः ॥११०॥
 निरीक्ष्य सौम्यया दृष्ट्या तमेवं चाभ्यनन्दयत् । श्लाघ्योऽयं वीक्षितः सिद्धो मुनिस्त्यक्तपरिग्रहः ॥१११॥
 शकुन्तयो मृगाश्चामी धन्या वननिवासिनः । शिलातलनिषण्णं ये पश्यन्तीं समाहितम् ॥११२॥
 अतिधन्योऽहमप्यद्य मुक्तः पापेन कर्मणा । यदेतं त्रिजगद्वन्द्यं प्राप्तः साधुसमागमम् ॥११३॥

आदि विलोसे युक्त हैं, महाअन्धकारसे भरी हैं, महाभय उत्पन्न करनेवाली हैं, असिपत्र वनसे आच्छादित हैं और अत्यन्त खारे जलसे भरी नदियोंसे युक्त हैं ॥९८॥ जो पाप कार्योंसे संबलेशको प्राप्त होते रहते हैं तथा जो हाथियोंके समान निरङ्कुश अर्थात् स्वच्छन्द रहते हैं ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियोंमें हजारों दुःख प्राप्त करते हैं ॥९९॥ मैं आपसे ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विषयोंसे पीड़ित तथा पापोंमें लीन मनुष्य आत्माका कैसा हित करते हैं ? ॥१००॥ किंपाक फलके समान जो इन्द्रियजन्य सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्माका हित मान रहा है ॥१०१॥ अरे ! आत्माका हित तो वह करता है जो प्राणियोंपर दया करनेमें तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल अभिप्रायका धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥१०२॥ आत्माका कल्याण तो उन्होंने किया है जो महाव्रत धारण करनेमें तत्पर रहते हैं अथवा जो अणुव्रतोंसे युक्त होते हैं, शेष मनुष्य तो दुःखके ही पात्र हैं ॥१०३॥ तू परलोकमें उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोकमें पाप कर दुर्गतिको जायेगा ॥१०४॥ ये वनके निरपराधी, क्षुद्र, दयनीय मृग; जो अनाथ हैं, चंचल नेत्रोंके धारक हैं, निरन्तर उद्विग्न रहते हैं, जंगलके तृण और पानीसे बने शरीरको धारण करते हैं, अनेक दुःखोंसे व्याप्त हैं, पूर्व भवमें किये पापको भोग रहे हैं और भयभीत होनेके कारण जो रात्रिमें भी निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं; उत्तम आचारके धारक कुलीन मनुष्योंके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं हैं ॥१०५-१०७॥ इसलिए हे राजन् ! मैं तुझसे कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन-वचन-कायसे हिंसा छोड़कर प्रयत्नपूर्वक अहिंसाका पालन कर ॥१०८॥ इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनोंसे जब राजा सम्बोधित गया तब वह फलोंसे वृक्षके समान नम्रताको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ वह धोड़ेसे उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवीपर घुटने टेक, हाथ जोड़, शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराजको नमस्कार किया ॥११०॥ सौम्य दृष्टिसे दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया कि अहो ! आज मैंने परिग्रह रहित प्रशंसनीय तपस्वी मुनिराजके दर्शन किये ॥१११॥ वनमें निवास करनेवाले ये पक्षी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातलपर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनिका दर्शन करते हैं ॥११२॥ आज जो

बन्धुस्नेहमयं बन्धं छित्वा ज्ञाननखैरयम् । केसरीव चित्तिष्कान्तः प्रभुः संसारपञ्चरात् ॥११४॥
 अनेन साधुना पश्य वशीकृतमनोरिपुम् । नाग्न्योपकारयोगेन श्रीलस्थानं प्रपाल्यते ॥११५॥
 अहं पुनरनुसात्मा तावदस्मिन् गृहाश्रमे । अणुवतविधौ रम्ये करोमि परमां धृतिम् ॥११६॥
 इति संचिन्त्य जग्राह तस्मात्साधोर्गृहस्थितिम् । चकारावग्रहं^१ चैवं भावप्लावितमानसः ॥११७॥
 देवदेवं जिनं मुक्त्वा परमात्मानमन्युतम् । निर्ग्रन्थांश्च महाभागान्न नमाम्यपरानिति ॥११८॥
 प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य मुनेस्तस्य महादरः । चकार महतीं पूजामुपवासं समाहितः ॥११९॥
 उपासीनस्य चाख्यातं परमं साधुना हितम् । यत्समाराध्य मुच्यन्ते संसाराद् भव्यदेहिनः ॥१२०॥
 सागारं निरगारं च द्विधा चारित्रमुत्तमम् । सानलम्बं गृहस्थानां निरपेक्षं^२ खवाससाम् ॥१२१॥
 दर्शनस्य विशुद्धिश्च तपोज्ञानसमन्विता । प्रथमाद्यनुयोगाश्च प्रसिद्धा जिनशासने ॥१२२॥
 सुदुष्करं^३ विग्रेहानां चारित्रमवधार्य सः । पुनः पुनर्मतिं चक्रेऽणुवतेष्वेव पार्थिवः ॥१२३॥
 निधानमध्वनेनेव प्राप्तं बिभ्रदनुत्तमम् । धर्म्यध्यानमसौ बुद्ध्वा परमां धृतिमागतः ॥१२४॥
 नितान्तकूरुकर्मायुपशान्तो महीपतिः । इति प्रमोदमायातः संयतोऽपि विशेषतः ॥१२५॥
 गते साधौ तपोयोग्यं स्थानं सुकृतसन्निधि । विभूत्या परया युक्तः सुखामः सुखतर्पितः ॥१२६॥
 विहितातिथिसमानोऽपरेद्युः कृतपारणः । प्रणम्य चरणौ साधोः स्वस्थानमविशन्नृपः ॥१२७॥

मैं त्रिभुवनके द्वारा बन्धनीय इस साधु समागमको प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य हो गया हूँ, पाप कर्मसे छूट गया हूँ ॥११३॥ ये प्रभु सिंहके समान ज्ञानरूपी नखोंके द्वारा बन्धुओंके स्नेहरूपी बन्धनको छोड़कर संसाररूपी पिंजड़ेसे बाहर निकले हैं ॥११४॥ देखो, इन साधुके द्वारा मनरूपी शत्रुको वश कर नग्नताके उपकारसे शोल स्थानकी किस प्रकार रक्षा की जा रही है ? ॥११५॥ किन्तु मेरी आत्मा अभी तृप्त नहीं हुई है। अतः मैं इस गृहस्थाश्रममें रहकर रमणीय अणुवतके पालनमें ही सन्तोष धारण करता हूँ ॥११६॥ इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराजसे गृहस्थ धर्म अंगीकार किया और भावसे प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधिदेव तथा गुणोंसे अच्युत परमात्मा जिनेन्द्रदेव और उदार अभिप्रायके धारक निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर अन्य किसीकी नमस्कार नहीं करूँगा ॥११७-११८॥ इस प्रकार उसने बड़े आदरसे उन प्रीतिवर्धन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की और स्थिरचित्त होकर उस दिनका उपवास किया ॥११९॥ समीपमें बैठे हुए राजा वज्रकर्णको मुनिराजने उस परम हितका उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२०॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्रके दो भेद हैं—एक सागार और दूसरा अनगर। इनमेंसे पहला चारित्र बाह्य वस्तुओंके आलम्बनसे सहित है तथा गृहस्थोंके होता है और दूसरा चारित्र बाह्य वस्तुओंकी अपेक्षासे रहित है तथा आकाशरूपी वस्त्रके धारक मुनियोंके ही होता है ॥१२१॥ उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञानके संयोगसे दर्शनमें विशुद्धता उत्पन्न होती है। साथ ही साथ उन्होंने जिनशासनमें प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आदिका वर्णन भी किया ॥१२२॥ यह सब सुननेके बाद भी राजाने निर्ग्रन्थ मुनियोंका चरित्र अत्यन्त कठिन समझकर अणुवत धारण करनेका ही बार-बार विचार किया ॥१२३॥ यह जानकर राजा परम सन्तोषको प्राप्त हुआ कि मुझे उत्कृष्ट धर्म ध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किसी निर्धनको उत्तम खजाना ही मिल गया ॥१२४॥ अत्यन्त कूरु कार्य करनेवाला यह राजा शान्त हो गया है यह देख मुनिराज भी बहुत हर्षको प्राप्त हुए ॥१२५॥ तदनन्तर पुण्यरूपी यज्ञके धारक मुनिराज तपके योग्य दूसरे स्थानपर चले गये और राजा परम विभूतिसे युक्त हो वहीं रहा आया। उसे उत्तम लाभकी प्राप्ति हुई थी इसलिए सुखसे सन्तुष्ट था ॥१२६॥ दूसरे

१. प्रतिज्ञा । २. समीपस्थितस्य । ३. दिग्भ्रमराणाम् । ४. मुनीनाम् ।

वहन् परमभावेन वज्रकर्णः सदा गुरुम् । बभूव वीतसंदेहश्चिन्तामेवमुपागतः ॥१२८॥
 भृत्यो भूत्वा विपुण्योऽहं सिंहोदरमहीभृतः । अकृत्वा विनयं भोगान् कथं सेवे^१निकारिणः ॥१२९॥
 इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्ननेदान्तरात्मना । विधिना प्रेर्यमाणस्य मतिरेवं समुद्गता ॥१३०॥
 कारयाभ्यूर्मिकां स्वर्णीं सुव्रतस्वामिविम्बिनीम् । दधामि दक्षिणाङ्गुष्ठे तां नमस्कारभागिनीम् ॥१३१॥
 घृष्टिता सा ततस्तेन पाणिभासुरपीठिका । पिनद्धा चातिहृष्टेन नयप्रवणचेतसा ॥१३२॥
 स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे कृत्वाङ्गुष्ठं पुरः कृती । प्रतिमां तां महाभागो नमस्यति स संततम् ॥१३३॥
 रन्ध्रविन्यस्तचित्तेन वैरिणा कथितेऽन्यदा । वृत्तान्तेऽत्र परं कोपं पापः सिंहोदरोऽगमत् ॥१३४॥
 माययाह्वयच्येन दशाङ्गनगरस्थितम् । वधार्थमुद्यतो मानी मत्तो विक्रमसंपदा ॥१३५॥
 बृहद्गतितनूजस्तु प्रगुणेनैव चेतसा । प्रवृत्तोऽश्वशतेनास्य विनीतो गन्तुमन्तिकम् ॥१३६॥
 दण्डपाणिरुवाचैकः पीवरोदारविग्रहः । कुङ्कुमस्थासकोद्भासो तमागत्यैवमुक्तवान् ॥१३७॥
 यदि भोगशरीराभ्यां मुनिर्विण्णोऽसि पार्थिव । तत उज्जयिनीं गच्छ नोचेन्नी गन्तुमर्हसि ॥१३८॥
 क्रुद्धः सिंहोदरो यत्ते वधं कर्तुं समुद्यतः । अनमस्कारदोषेण कुरु राजन्नभीप्सितम् ॥१३९॥
 एवं स गदितो दध्यौ केनाग्रेष दुरात्मना । मात्सर्यहतचित्तेन भेदः कर्तुमभीप्सितः ॥१४०॥
 तं विसर्पन्मदामोदं किंचित्त्वेदमुपागतम् । सोऽपृच्छत्कोऽसि किंनामा कुतो वासि समागतः ॥१४१॥

दिन अतिथिका सत्कार कर उसने पारणा की और फिर मुनिराजके चरणोंको प्रणाम कर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१२७॥

अथानन्तर जो परम भक्ति-भावसे गुरुको सदा हृदयमें धारण करता था तथा जिसे किसी प्रकारका सन्देह नहीं था ऐसा राजा वज्रकर्ण इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥१२८॥ कि मैं पुण्यहीन, राजा सिंहोदरका सेवक होकर यदि उसकी विनय नहीं करता हूँ तो वह दमन करेगा— दण्ड देवेगा तब इस दशामें भोगोंका सेवन किस प्रकार करूँगा ॥१२९॥ इस प्रकार चिन्ता करते-करते भाग्यसे प्रेरित राजा वज्रकर्णको अपनी स्वच्छ अन्तरात्मासे यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥१३०॥ कि मैं मुनिसुव्रत भगवान्की प्रतिमासे युक्त एक स्वर्णकी अँगूठी बनवाकर दाहिने हाथके अँगूठामें धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसीको कहलावेगा ॥१३१॥ इस प्रकार विचारकर उस नीति-निपुण राजाने, जिसकी पीठिका हाथमें सुशोभित थी ऐसी अँगूठी बनवायी और अत्यन्त हर्षित होकर धारण की ॥१३२॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिंहोदरके आगे खड़ा होकर तथा अँगूठेको आगे कर सदा उस प्रतिमाको नमस्कार करने लगा ॥१३३॥ किसी एक दिन छिद्रान्वेषी वैरीने यह समाचार सिंहोदरसे कह दिया जिससे वह पापी परम कोपको प्राप्त हुआ ॥१३४॥ तदनन्तर पराक्रमरूपी सम्पदासे मत्त मानी सिंहोदर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गया और उसने दशांगपुरमें रहनेवाले वज्रकर्णको छलसे अपने यहाँ बुलाया ॥१३५॥ बृहद्गतिका पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ घुड़सवार साथ ले उसके पास जानेके लिए तैयार हो गया। उसी समय जिसके हाथमें लाठी थी, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशरके तिलकसे सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला ॥१३६-१३७॥ कि हे राजन् ! यदि तुम भोग और शरीरसे उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥१३८॥ हे राजन् ! तुम सिंहोदरको नमस्कार नहीं करते हो इस अपराधसे वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करनेके लिए तैयार हुआ है। अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥१३९॥ उस पुरुषके ऐसा कहनेपर वज्रकर्णने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्यने भेद करना चाहा है अर्थात् मुझमें और सिंहोदरमें फूट डालनेका उद्योग किया है। इस प्रकार विचारकर उसने

१. दमनकर्तुः ।

कथं वा तव मन्त्रोऽयं विदितोऽथन्तदुर्गमः । एतन्नद्र समाचक्ष्व ज्ञातुमिच्छाम्यशेषतः ॥१४२॥
 सोऽवोचत् कुन्दनगरे वणिग्धनपरायणः । समुद्रसङ्गमो नामा यमुना तस्य मासिनी ॥१४३॥
 विद्युज्ज्वालाकुले काले प्रसूता जननी च माम् । बन्धुभिर्विद्युदङ्गाख्या मयि तेन नियोजिता ॥१४४॥
 क्रमाच्च यौवनं बिभ्रद्वन्तीनगरीमिमाम् । आगतोऽस्म्यर्थलाभाय युक्तो वाणिज्यविद्यया ॥१४५॥
 वेश्यां कामलतां दृष्ट्वा कामबाणेन ताडितः । न रात्रौ न दिवा यामि निर्वृतिं परमाकुलः ॥१४६॥
 एकां रात्रिं वसामीति तथा कृतसमागमः । प्रीत्या दृढतरं बद्धो यथा वागुरया मृगः ॥१४७॥
 जनकेन ममासंख्यैर्यद्वैरजितं धनम् । तन्मयास्य सुपुत्रेण षट्भिर्मासैर्विनाशितम् ॥१४८॥
 पद्मे द्विरेफवत् सक्तः कामतद्गतमानसः । साहसं कुरुते किं न मानवो योषितां कृते ॥१४९॥
 अन्यदा सा पुरः सख्या निन्दन्ती कुण्डलं निजम् । श्रुता मयेति भारेण किं कर्णस्यामुना मन ॥१५०॥
 धन्या सा श्रीधरा देवी महासौभाग्यभोगिनी । यस्यास्तद्वाजते कर्णे मनोज्ञं रत्नकुण्डलम् ॥१५१॥
 चिन्तितं च मया तच्चेदपहृत्य सकुण्डलम् । आशां न पूरयाम्यस्यास्तदा किं जीवितेन मे ॥१५२॥
 ततो जिहीर्षया तस्य दयितं प्रोक्ष्य जीवितम् । गतोऽहं भवनं राज्ञो रजन्या तमसावृतः ॥१५३॥
 पृच्छन्ती श्रीधरा तस्य मया सिहोदरं श्रुता । निद्रां न लभसे कस्मान्नाथोद्विग्न इवाधुना ॥१५४॥
 सोऽवोचद्देवि निद्रा मे कुतो व्याकुलचेतसः । न मारितो रिपुर्वावन्नमस्कारपराङ्मुखः ॥१५५॥

जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किंचित् खेदको प्राप्त था ऐसे उस दूतसे पूछा कि तू कौन है ? कहाँसे आया है ? ॥१४०-१४१॥ और इस दुर्गम मन्त्रका तुझे कैसे पता चला है ? हे भद्र ! यह कह । मैं सब जानना चाहता हूँ ॥१४२॥

वह बोला कि कुन्दनगरमें धनसंचय करनेमें तत्पर एक समुद्रसंगम नामक वैश्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम यमुना था । मैं उन्हींका पुत्र हूँ । चूँकि मेरी माताने मुझे उस समय जन्म दिया जो बिजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त रहता है इसलिए बन्धुजनोंने मेरा विद्युदंग नाम रखा ॥१४३-१४४॥ क्रमसे यौवनको धारण करता हुआ मैं व्यापारकी विद्यासे युक्त हो धनोपार्जन करनेके लिए इस उज्जयिनी नगरीमें आया था ॥१४५॥ सो यहाँ कामलता नामक वेश्याको देखकर कामबाणसे ताड़ित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिनमें चैनको पाता हूँ और न रात्रिमें ॥१४६॥ 'मैं एक रात उसके साथ समागम कर रहूँ' इस प्रीतिने मुझे इस प्रकार अत्यन्त मजबूत बांध रखा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिणको बांध रखता है ॥१४७॥ मेरे पिताने अनेक वर्षोंमें जो धन संचित किया था मुझ सुपूतने उसे केवल छह माहमें नष्ट कर दिया ॥१४८॥ जिस प्रकार भ्रमर कमलमें आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन कामसे दुःखी हो उस वेश्यामें आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष स्त्रियोंके लिए कौन-सा साहस नहीं करता है ? ॥१४९॥ एक दिन मैंने सुना कि वह वेश्या सखीके सामने अपने कुण्डलकी निन्दा करती हुई कह रही है कि कानोंके भारस्वरूप इस कुण्डलसे मुझे क्या प्रयोजन है ? वह महासौभाग्यका उपभोग करनेवाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसके कानमें वह रत्नमयी मनोहर कुण्डल शोभित होता है ॥१५०-१५१॥ मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुण्डलको चुराकर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का ? ॥१५२॥ तदनन्तर उस कुण्डलको अपहरण करनेकी इच्छासे मैं अपने प्रिय जीवनकी उपेक्षा कर रात्रिके समय अन्धकारसे आवृत होकर राजाके घर गया ॥१५३॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधराको सिहोदरसे यह पूछती हुई सुना कि हे नाथ ! आज नींदको क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्न-से क्यों मालूम होते हो ? ॥१५४॥ उसने कहा कि हे देवि ! जबतक मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले शत्रु वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ

अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्थार्णचिन्तया^१ । अजितप्रस्थनीकरस्य विटाक्रान्तायलस्य च ॥१५६॥
 सशल्यस्य दरिद्रस्य मीरोश्च^२ भवदुःखतः । निद्रा कृपापरीतेव सुदूरेण पलायते ॥१५७॥
 निहन्तास्मि न चेदेनं नमस्कारपराङ्मुखम् । वज्रकर्णं ततः किं मे जीवितेन हतौजसः ॥१५८॥
 ततोऽहं कुलिशेनैव हृदये कृतताडनः । रहस्यरत्नमादाय त्यक्त्वा कुण्डलशेषुपीम् ॥१५९॥
 धर्मोद्यतमनस्कस्य सततं साधुसेविनः । भवतोऽन्तिकमायातो ज्ञात्वा कुरु निवर्तनम् ॥१६०॥
 नागैरञ्जनशैलाद्यैः प्रक्षरदग्धमितिभिः । ससिभिश्च महावेगैर्भटैश्च कवचावृतैः ॥१६१॥
 तदाज्ञानयया मार्गो निरुद्धोऽयं पुरोऽखिलः । सामन्तैः परमं क्रूरैर्भञ्जितं हन्तुमुद्यतैः ॥१६२॥
 प्रसादं कुरु गच्छाशु प्रतीपं धर्मवत्सल । पतामि पादयोरेष तव मद्भजनं कुरु ॥१६३॥
 अर्थे प्रत्येपि नो राजन् ततः पश्यैतदागतम् । धूलीपटलसंच्छन्नं परचक्रं महारथम् ॥१६४॥
 तावत्परागतं दृष्ट्वा साधनं कुलिशश्चर्वाः । समेतो विद्युदङ्गेन निवृत्तो वेगिवाहनः ॥१६५॥
 प्रविश्य च पुरं दुर्गं सुधीरः प्रत्यवस्थितः । विधाय वज्रितारोधिं सामन्ताश्चावतस्थिरे ॥१६६॥
 प्रविष्टं नगरं श्रुत्वा वज्रकर्णं रुषा ज्वलन् । सिंहोदरः समायातः सर्वसाधनसंयुतः ॥१६७॥
 पुरस्यात्यन्तदुर्गत्वात् साधनक्षयकातरः । न स तद्ग्रहणे बुद्धिं चकार सहसा नृपः ॥१६८॥
 समावास्य समीपे च त्वरितं प्राहिणोन्नरम् । वज्रकर्णं स गत्वेति वमानात्यन्तनिष्ठुरम् ॥१६९॥

तबतक मेरा चित्त व्याकुल है अतः निद्रा कैसे आ सकती है ? ॥१५५॥ जो अपमानसे जल रहा हो, ऋणकी चिन्तासे व्याकुल हो, जो शत्रुको नहीं जीत सका हो, जिसकी स्त्री विटपुरुषके चक्रमें पड़ गयी हो, जो शल्यसे सहित दरिद्र हो तथा जो संसारके दुःखसे भयभीत हो ऐसे मनुष्यसे दयायुक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥१५६-१५७॥ यदि मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले इस वज्रकर्णकी नहीं मारता हूँ तो मुझ निस्तेजकी जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥१५८॥

तदनन्तर यह सुनकर जिसके हृदयमें मानो वज्रकी ही चोट लगी थी ऐसा मैं इस रहस्य-रूपी रत्नको लेकर और कुण्डलकी भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योंकि आपका मन सदा धर्ममें तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओंकी सेवा करते हैं । हे नाथ ! यह जानकर आप लौट जाइए, उज्जैन मत जाइए ॥१५९-१६०॥ उसकी आज्ञा पाकर नगरका यह समस्त मार्ग, जिनके गण्डस्थलसे मद झर रहा है ऐसे अञ्जनगिरिके समान आभावाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ों, कवचोंसे आवृत योद्धाओं तथा आपको मारनेके लिए उद्यत क्रूर सामन्तोंसे घिरा हुआ है ॥१६१-१६२॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उलटा वापस जाओ, मैं आपके चरणोंमें पड़ता हूँ । आप मेरा वचन मानो ॥१६३॥ हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं हो तो देखो, धूलिके समूहसे व्याप्त तथा महा'कल-कल' शब्द करता हुआ यह शत्रुका दल आ पहुँचा है ॥१६४॥ इतनेमें शत्रुदलको आया देख वज्रकर्ण विद्युदङ्गके साथ वेगशाली घोड़ेसे वापस लौटा ॥१६५॥ और अपने दुर्गम नगरमें प्रवेश कर घोरताके साथ युद्धकी तैयारी करता हुआ स्थित हो गया । बड़े-बड़े सामन्त गोपुरोंको रोककर खड़े हो गये ॥१६६॥

तदनन्तर वज्रकर्णको नगरमें प्रविष्ट सुन, क्रोधसे जलता हुआ सिंहोदर अपनी सर्व सेनाके साथ वहाँ आया ॥१६७॥ वज्रकर्णका नगर अत्यन्त दुर्गम था । इसलिए सेनाके क्षयसे भयभीत हो राजा सिंहोदरने उसपर तत्काल ही आक्रमण करनेकी इच्छा नहीं की ॥१६८॥ किन्तु सेनाको समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा । वह दूत वज्रकर्णके पास जाकर बड़ी निष्ठुरतासे

१. ऋणसंबन्धिचिन्तया । २. भवदुःखतः म. । ३. विश्वासं नो करोषि । ४. वज्रकर्णः म. । ५. समवस्थितः म. । ६. प्रतोलोरोधिं ।

जिनशासनवर्गेण सदावष्टब्धमानसः । ऐश्वर्यकण्टकस्त्वं मे जातः सद्भाववर्जितः ॥१७०॥
 कुटुम्बभेदने दक्षैः श्रमणैर्दुर्विचेष्टितैः । प्रोत्साहितो गतोऽस्येतामवस्थां नयवर्जितः ॥१७१॥
 भुङ्क्षे देशं मया दत्तमर्हन्तं च नमस्यति । अहो ते परमा माया जातेयं दुष्टचेतसः ॥१७२॥
 आगच्छाशु ममाभ्याशं प्रणामं कुरु संमतिः । अन्यथा पश्य यातोऽसि मृत्युना सह संगतम् ॥१७३॥
 ततस्तद्वचनाद्गत्वा दूतोऽवददिदं पुनः । एवं वज्रश्रुतिर्नाथ ब्रवीति कृतनिश्चयः ॥१७४॥
 नगरं साधनं कोषं गृहाण विषयं विभो । धर्मद्वारं समार्यस्य यच्छ मे केवलस्य वा ॥१७५॥
 कृता मया प्रतिज्ञेयं सुव्याम्भेनां मृतोऽपि न । द्रविणस्य भगवान् स्वामी शरीरस्य तु नो मम ॥१७६॥
 इत्युक्तोऽप्यपरित्यक्तक्रोधः सिंहोदरः पुरः । कृत्वा रोधमिमं देशमुद्वासयदुज्ज्वलम् ॥१७७॥
 इदं ते कथितं देव देशोद्वासनकारणम् । गच्छामि सांप्रतं शून्यग्रामघानमितोऽन्तिकम् ॥१७८॥
 तस्मिन् विमानतुल्येषु दद्यान्मानेषु सद्यः । मदीया दुष्कुटी दग्धा तृणकाष्ठविनिर्मिता ॥१७९॥
 तत्र गोपायितं सूर्यं घटं पिंडमेव च । आनयामि कुरोहिण्या प्रेरितः कूर्वाक्यया ॥१८०॥
 गृहोपकरणं भूरि शून्यग्रामेषु लभ्यते । आनयस्व त्वमेवेति सा तु मां भाषते मुहुः ॥१८१॥
 अथवात्यन्तमेवेदं तथा मे जनितं हितम् । देव कोऽपि भवान् इष्टो मया येन सुकर्मणा ॥१८२॥
 इत्युक्ते कण्ठकाङ्क्षितः पथिकं वीक्ष्य दुःखितम् । पद्मोऽस्मे रत्नसंयुक्तं ददौ काञ्चनसूत्रकम् ॥१८३॥
 प्रतीतः प्रणिपन्थासौ तदादाय त्वराञ्जितम् । प्रतियातो निजं धाम बभूव च नृपोपमः ॥१८४॥

बोला ॥१८५॥ कि जिन शासनके वर्गसे जिसका मन सदा अहंकारपूर्ण रहता है तथा जो समीचीन भावोंसे रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्यका कण्टक बन रहा है ॥१७०॥ कुटुम्बोंके भेदन करनेमें चतुर, तथा खोटी चेष्टाओंसे युक्त मुनियोंके द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, स्वयं नीतिसे रहित है ॥१७१॥ मेरे द्वारा प्रदत्त देशका उपभोग करता है और अरहन्तको नमस्कार करता है । अहो, तुझ दुष्ट हृदयकी यह बड़ी माया ॥१७२॥ तू सुबुद्धि है अतः शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणाम कर अन्यथा देख, अभी मृत्युके साथ समागमको प्राप्त होता है ॥१७३॥

तदनन्तर वज्रकर्णका उत्तर ले दूतने वापस जाकर सिंहोदरसे कहा कि हे नाथ ! निश्चय-को धारण करनेवाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे विभो ! नगर, सेना, खजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्मका द्वार प्रदान कीजिए अर्थात् मेरी धर्म-राधनामें बाधा नहीं डालिए ॥१७४-१७५॥ मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अरहन्त देव और निर्ग्रन्थ गुरुको छोड़ अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा सो मरते-मरते इस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ूँगा । आप मेरे धनके स्वामी हैं शरीरके नहीं ॥१७६॥ इतना कहनेपर भी सिंहोदरने क्रोध नहीं छोड़ा और नगरपर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देशको उजाड़ दिया ॥१७७॥ इस प्रकार हे देव ! मैंने आपसे इस देशके उजाड़ होनेका कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने उजड़े गाँवको जाता हूँ ॥१७८॥ उस गाँवमें विमानके तुल्य जो अच्छे-अच्छे महुल थे वे जल गये और उनके साथ तृण तथा काष्ठसे निर्मित मेरी दूटी-फूटी कुटिया भी जल गयी ॥१७९॥ उस कुटियामें एक जगह सूपा घट तथा मटका छिपाकर रखे थे सो दुष्ट वचन बोलनेवाली स्त्रीसे प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥१८०॥ 'सूने गाँवोंमें घर-गृहस्थीके बहुत-से उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ' इस प्रकार वह बार-बार मुझसे कहती रहती है ॥१८१॥ अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित किया है कि हे देव ! पुण्योदयसे मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥१८२॥ इस प्रकार उस पथिकको दुःखी देख दयासे स्वयं दुःखी होते हुए रामने उसके लिए अपना रत्नजटित स्वर्णसूत्र दे दिया ॥१८३॥

१. पश्य जातोऽसि मृत्युना सहसंगतः ज., ब. । २. वज्रकर्णः । ३. जनरहितप्रकरोत् ।

अथावोचततः पद्मो लक्ष्मणाय दिवाकरः । नैदावो यावदत्यन्तं दुःसहत्वं न गच्छति ॥१८५॥
 तावदुत्तिष्ठ गच्छावः पुरस्यास्यान्तिकं भुवम् । जानकीयं वृषाश्रान्ता कुर्वाहारविधिं द्रुतम् ॥१८६॥
 एवमित्युदिते याता दशाङ्गनगरस्य ते । समीपे चन्द्रभासस्य चैत्यालयमनुत्तमम् ॥१८७॥
 तस्मिन् सजानकीरामः प्रणम्यावस्थितः सुखम् । तदाहारोपलम्भाय लक्ष्मणः सधनुर्गतः ॥१८८॥
 विशन् सिंहोदरस्यासौ शिबिरं रक्षिमानवैः^३ । निरुद्धः कृतनिस्वानैः समीरण इवादिभिः ॥१८९॥
 'इमकैर्दुःकुलोत्पन्नैः किं विरोधेन मे समम् । इति सञ्चित्य यातोऽसौ नगरं तेन पण्डितः ॥१९०॥
 गोपुरं च समासीददनेकमटरक्षितम् । यस्योपरि स्थितः साक्षाद्वज्रकर्णः प्रयत्नवान् ॥१९१॥
 ऊर्ध्वरे तस्य भृत्यास्तं कस्त्वमेतः कुतोऽपि वा । किमर्थं वेति सोऽवोचद्दूरात्पातोऽन्नलिप्यया ॥१९२॥
 ततस्तं बालकं कान्तं दृष्ट्वा विस्मयसंगतः । आगच्छ प्रविश क्षिप्रमिति वज्रश्रवा जगौ ॥१९३॥
 ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ समीपं कुलिशश्रुतेः । विनीतवेषसंपन्नो वीक्षितं सादरं नरैः ॥१९४॥
 जगाद वज्रकर्णश्च नरमासमयं द्रुतम् । अन्नं प्रसाधितं मह्यं भोज्यतां रचितादरः ॥१९५॥
 सोऽवोचन्नात्र भुञ्जेऽहमिति मे गुरुरन्तिके । तमादौ भोज्याभ्यन्तं नयाम्यस्याहमन्तिकम् ॥१९६॥
 एवमस्त्विति संभाष्य नृपोऽन्नमतिपुष्कलम् । अदीदपद् वरं तस्मै चाहम्यञ्जनपाकम् ॥१९७॥
 लक्ष्मीधरस्तदादाय गतो द्विगुणरंहसा । भुक्तं च तैः क्रमेणैतत्तृप्तिं च परमां गताः ॥१९८॥

वह पथिक उसे लेकर तथा विश्वासपूर्वक उन्हें प्रणाम कर अपने घर वापस लौट गया और राजाके समान सम्पन्न हो गया ॥१८४॥

अथानन्तर रामने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह ग्रीष्मकालका सूर्य जबतक अत्यन्त दुःसह अवस्थाको प्राप्त नहीं हो जाता है तबतक उठो इस नगरके समीपवर्ती प्रदेशमें चलें । यह जानकी प्याससे पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहारकी विधि मिलाओ ॥१८५-१८६॥ इस प्रकार कहनेपर वे तीनों दशाङ्गनगरके समीप चन्द्रप्रभ भगवान्‌के उत्तम चैत्यालयमें पहुँचे ॥१८७॥ वहाँ जिनेन्द्र-देवको नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालयमें सुखसे ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्तिके लिए निकला ॥१८८॥ जब वह राजा सिंहोदरकी छावनीमें प्रवेश करने लगा तब रक्षक पुरुषोंने जोरसे ललकारकर उसे उस तरह रोका जिस तरह कि पर्वत वायुको रोक लेते हैं ॥१८९॥ 'इन नीच कुली लोगोंके साथ विरोध करनेसे मुझे क्या प्रयोजन है' ऐसा विचारकर वह बुद्धिमान् लक्ष्मण नगरकी ओर गया ॥१९०॥ जब वह अनेक योद्धाओंके द्वारा सुरक्षित उस गोपुर द्वारपर पहुँचा जिसपर कि साक्षात् वज्रकर्ण बड़े प्रयत्नसे बैठा था ॥१९१॥ तब उसके भृत्योंने कहा कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं बहुत दूरसे अन्न प्राप्त करनेकी इच्छासे आया हूँ ॥१९२॥ तदनन्तर उस बालकको सुन्दर देख आश्चर्यचकित हो वज्रकर्णने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥१९३॥ तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेषमें वज्रकर्णके पास गया । वहाँ सब लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥१९४॥

वज्रकर्णने एक आप्त पुरुषसे कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है यह इसे शीघ्र ही आदरके साथ खिलाओ ॥१९५॥ यह सुन लक्ष्मणने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूँगा । पास ही मेरे गुरु अग्रज ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥१९६॥ 'एवमस्तु-ऐसा ही हो' कहकर राजाने उसे उत्तमोत्तम व्यञ्जन और पेय पदार्थोंसे युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥१९७॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेगसे रामके पास गया । राबने उसे यथाक्रमसे खाया और खाकर परम तृप्तिको प्राप्त हुए ॥१९८॥

१. लक्ष्मणोऽयं म. । २. जाता म. । ३. रक्ष्यमानसैः म. । ४. निरुद्धकृतिनिस्वानैः म. । ५. द्रुमकैः म. ।

ततस्तुष्टोऽवदत् पद्मः पश्य लक्ष्मण भद्रताम् । वज्रकर्णस्य येनेदं कृतं परिचयाद् विना ॥१९९॥
 जामात्रेऽपि सुसंपन्नमीदृगन्नं न दीयते । पानकानामहो शैत्यं व्यञ्जनानां च मृष्टता ॥२००॥
 अनेनामृतकल्पेन भुक्तेनान्नेन मार्गजः । नैदाघोऽपहृतः सद्यः श्रमोऽस्माकं समन्ततः ॥२०१॥
 चन्द्रविम्बमिवाचूर्ण्य शालयोऽभी विनिर्मिताः । धवलत्वेन विभ्राणा मारुद्वं भिन्नसिक्थकाः ॥२०२॥
 दुग्धैव दीधितोऽरिन्दोः कृतमेतच्च पानकम् । नितान्तमच्छतायुक्तं सौरमाकृष्टपदम् ॥२०३॥
 घृतक्षीरमिदं जातं कल्पधेनुस्तनादिव । रसानामोदशी व्यक्तियुक्तेषु सुदुस्तरा ॥२०४॥
 अणुव्रतधरः साधुर्वर्णितः पथिकेन सः । अतिथीनां करोत्यन्यः संविभागं क ईदृशम् ॥२०५॥
 शुद्धात्मा श्रूयते सोऽयमनन्यप्रणतिः सुधीः । भवार्तिसन्धनं नाथं जिनेन्द्रं यो नमस्यति ॥२०६॥
 ईदृक्शालगुणोपेतो यद्येषोऽस्माकमग्रतः । तिष्ठत्यरातिना रुद्धस्ततो नो जीवितं वृथा ॥२०७॥
 अपराधविमुक्तस्य साधुसेवार्पितात्मनः । समस्ताश्चास्य सामन्ता एकनाथाविरोधिनः ॥२०८॥
 तोद्यमानमिमं नूनं सिंहोदरकुम्भृता । भरतोऽपि न शक्नोति रक्षितुं नृत्तनेशतः ॥२०९॥
 तस्मादन्यपरिश्रान्तरहितस्यास्य संमतेः । क्षिप्रं कुरु परित्राणं व्रज सिंहोदरं वद ॥२१०॥
 इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किं शिक्ष्यते भवान् । उत्पन्नः प्रज्ञया साकं प्रभयेव महामणिः ॥२११॥
 गुणोच्चारणसन्धीडः कृत्वा शिरसि शासनम् । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य प्रैमदान्वितः ॥२१२॥

तदनन्तर रामने सन्तुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्रकर्णकी भद्रता देखो जो इसने परिचयके बिना ही यह किया है ॥१९९॥ ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाईके लिए भी नहीं दिया जाता है । अहो ! पेय पदार्थोंकी शीतलता और व्यंजनोंकी मधुरता तो सर्वथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥२००॥ इस अमृत तुल्य अन्नके खानेसे हमारा मार्गसे उत्पन्न हुआ गर्मीका समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥२०१॥ जो कोमलताको धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक शीत अलग-अलग है, और जो सफेदीके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके बिम्बको चूर्ण कर ही बनाये गये हैं ऐसे ये धानके चावल हैं ॥२०२॥ जो अत्यन्त स्वच्छतासे युक्त है तथा जो अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चन्द्रमाकी किरणोंको दुहकर ही बनाया गया है ॥२०३॥ यह घी और दूध तो मानो कामधेनुके स्तनसे ही उत्पन्न हुआ है अन्यथा व्यंजनोंमें रसोंकी ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥२०४॥ पथिकने यह ठीक ही कहा था कि वह सत्पुरुष अणुव्रतोंका धारी है अन्यथा अतिथियोंका ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥२०५॥ जो संसारकी पीड़ाको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्माका धारक सुना जाता है ॥२०६॥ ऐसे शील और गुणोंसे सहित होनेपर भी यदि यह हम लोगोंके आगे शत्रुसे धिरा रहता है तो हमारा जीवन व्यर्थ है ॥२०७॥ यह अपराधसे रहित है, अपने आपको सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामन्त अपने इस अद्वितीय स्वामीके अनुकूल हैं ॥२०८॥ दुष्ट राजा सिंहोदरके द्वारा पीड़ित हुए इस वज्रकर्णकी रक्षा करनेके लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥२०९॥ इसलिए अन्य रक्षकोंसे रहित बुद्धिमान्की रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिंहोदरसे कहो ॥२१०॥ 'यह कहना, यह कहना' यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाये क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रभाके साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी प्रजाके साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥२११॥

अथानन्तर अपने गुणोंकी प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण रामकी

विनीतं धारयन् वेपथुपादाय कार्मुकम् । प्रयातो रयम्पन्नो लक्ष्मणः कम्पितक्षितिः ॥२१३॥
 दृष्ट्वा संरक्षकैः पृष्ठः कतरस्य पुमान् भवान् । सोऽवोचद् भरतस्याहमेतो दूतस्य कर्मणा ॥२१४॥
 क्रमेणातीत्य शिविरं भूरि प्राप्नो नृपास्पर्द्धम् । अविशद्वेदितो द्वाःस्यै सद्ः सिंहोदरस्य सः ॥२१५॥
 प्रस्पष्टमिति चोवाच मन्यमानस्तृणं नृपम् । ज्येष्ठभ्रातृपचोवहं सिंहोदरं निबोध माम् ॥२१६॥
 आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सद्गुणः । यथा किल किमेतेन विरोधेन विहेतुना ॥२१७॥
 ततः सिंहोदरोऽवादीन्मनः कर्कशमुद्वहन् । दूतं ब्रूतां विनीतेशमिति मद्बचनाद् भवान् ॥२१८॥
 यथा किलाविनीतानां भृत्यानां दिनयाहतौ । कुर्वन्ति स्वामिनो यत्नं विरोधः कोऽत्र दृश्यते ॥२१९॥
 वज्रकर्णो दुरात्मायं मानी नैकृतिकः^१ परः । पिशुनः क्रोधनः क्षुद्रः सुहृन्निन्दापरायणः ॥२२०॥
 आलस्योपहतो मूढो वायुग्रहगृहीतधीः । विनयाचारनिर्मुक्तो बुद्धिदग्धो दुरीहितः ॥२२१॥
 पुंस्तु मुञ्चन्त्वमी दोषा दमेन मरणेन वा । तमुपायं करोम्यस्य स्वैरमत्रास्थतां त्वया ॥२२२॥
 ततो लक्ष्मोधरोऽवोचत् किमत्र^२ प्रत्युरुत्तरैः । कुरुतेऽयं हितं यस्मात् क्षम्यतां सर्वमस्य तत् ॥२२३॥
 इत्युक्तः प्रकटक्रोधः संधिदूरपराङ्मुखः । सिंहोदरोऽवदत्तारं वीक्ष्य सामन्तसंहतिम् ॥२२४॥
 न केवलमसौ मानी इतात्मा वज्रकर्णकः । तत्कार्यवाञ्छया प्राप्नो भवानपि तथाविधः ॥२२५॥
 पाषाणेनैव ते गात्रमिदं दूतं विनिर्मितम् । न^३ नाममोपदधेति दुर्भृत्यः कोशलापतेः ॥२२६॥

आज्ञा शिरोधार्य कर 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर तथा प्रणाम कर हर्षित होता हुआ चला । वह उस समय विनीत वेषको धारण कर रहा था, धनुष साथमें नहीं ले गया था, वेगसे सम्पन्न था और पृथ्वीको कँपाता हुआ जा रहा था ॥२१२-२१३॥ रक्षक पुरुषोंने देखकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी हैं ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं राजा भरतका आदमी हूँ और दूतके कार्यसे आया हूँ ॥२१४॥ क्रम-क्रमसे बहुत बड़ी छावनीको उलंघ कर वह राजाके निवास-स्थानमें पहुँचा और द्वारपालोंके द्वारा खबर देकर राजा सिंहोदरकी सभामें प्रविष्ट हुआ ॥२१५॥ वहाँ जाकर राजाको तृणके समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे सिंहोदर ! तू मुझे बड़े भाईका सन्देशवाहक समझ ॥२१६॥ उत्तम गुणोंको धारण करनेवाले राजा भरत आपकी इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि इस निष्कारण बैरसे क्या लाभ है ? ॥२१७॥

तदनन्तर कठोर मनको धारण करनेवाला सिंहोदर बोला कि हे दूत ! तू मेरी ओरसे अयोध्याके राजा भरतसे इस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकोंको विनयमें लानेके लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमें क्या विरोध दिखाई देता है ? ॥२१८-२१९॥ यह वज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायावी है, अत्यन्त नीच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्रकी निन्दा करनेमें तत्पर है, आलस्यसे युक्त है, मूढ़ है, वायु अथवा किसी पिशाचने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचारसे रहित है, पण्डितम्मन्य है, और दुष्ट चेष्टाओंसे युक्त है । ये दोष इसे या तो दमनसे छोड़ सकते हैं या मरणसे ; इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषयमें आप चुप बैठिए ॥२२०-२२२॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें अधिक उत्तरोसे क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह सबका हित करता है अतः इसका यह सब अपराध क्षमा कर दिया जाये ॥२२३॥ लक्ष्मणके इस प्रकार कहते ही जिसका क्रोध उबल पड़ा था, और जो सन्धिसे विमुख था ऐसा सिंहोदर अपने सामन्तोंकी ओर देख गरजकर बोला कि न केवल यह दुष्ट वज्रकर्ण ही मानी है किन्तु उसके कार्यकी इच्छासे आया हुआ यह दूत भी वैसा ही मानी है ॥२२४-२२५॥ अरे दूत ! जान पड़ता है तेरा यह शरीर पाषाणसे ही बना है अयोध्यापतिका यह दुष्ट भृत्य, रंचमात्र भी नम्रताको प्राप्त नहीं है—अर्थात् इसने बिलकुल भी

१. नृपाधम ब. । २. मायो । ३. प्रचुरोत्तरैः । ४. नमनम् नामः तम् ।

तत्र देशे नरा नूनं सर्व एव भवद्विधाः । स्थालीपुलाकधर्मेण परोक्षं ज्ञायते ननु ॥२२७॥
 इत्युक्ते कोपमायातः किंचिल्लक्ष्मीधरोऽवदत् । साम्यहेतोरहं प्राप्नो न ते कर्तुं नमस्कृतिम् ॥२२८॥
 बहुनात्र किमुक्तेन हरे संक्षेपतः शृणु । प्रतीच्छ सन्धिमद्यैव मरणं वा समाश्रय ॥२२९॥
 इत्युक्ते परिप्लव्या परं क्षोभमुपागता । नानाप्रकारदुर्वचना नानाचेष्टाविधायिनी ॥२३०॥
 आकृष्य चुरिकां केचिच्चित्रशानपरे भटाः । वधार्थमुद्यतास्तस्य कोपकम्पितमूर्तयः ॥२३१॥
 वेगनिर्मुक्तहुङ्काराः परस्परसमाकुलाः । ते तं समन्ततो ज्वरुर्मशका इव पर्वतम् ॥२३२॥
 अप्राप्तामेव धीरोऽसौ क्रियालावपण्डितः । चिक्षेप चरणाघातैर्दूरं तान् बिह्वलान् समम् ॥२३३॥
 जघान जानुना कांश्चिच्छूर्परेणापशब्दं श्रमम् । कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण चकार शतशर्करान् ॥२३४॥
 कचेपु कांश्चिदाकृष्य निपात्य शस्त्रीतले । पादेनाचूर्णयत् कांश्चिदंसघातैरपातयत् ॥२३५॥
 कांश्चिदन्योन्यघातेन परिचूर्णितमस्तकात् । चकार जङ्घया कांश्चिदरं प्राप्तविमूर्छनान् ॥२३६॥
 एवमेकाकिना तेन परिप्लव्या तथाविधा । महाबलेन विध्वंसं नीता भयसमाकुला ॥२३७॥
 एवं विध्वंसयन् यावज्जिह्वान्तो भवनानिरम् । तावद्योधशतैरन्यैः लक्ष्मणः परिवेष्टितः ॥२३८॥
 सामन्तैरथ समन्दैर्वारणैः रक्षिभी रथैः । परस्परवितर्केन बभूवाकुलता परा ॥२३९॥
 नानाशस्त्रकरं प्लव्यु लक्ष्म्यालिङ्गितवियहः । चकार चेष्टितं वीरः शृगालेष्विव केसरी ॥२४०॥

नमस्कार नहीं किया ॥२२९॥ सचमुच ही उस देशके सब लोग तेरे ही जैसे हैं जिस प्रकार बटलोई-
 के दो-चार सीध जाननेसे सब सीथोंका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा वहाँके सब
 लोगोंका परोक्ष ज्ञान हो रहा है ॥२२७॥

सिंहोदरके इस प्रकार कहनेपर कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं साम्यभाव
 स्थापित करनेके लिए यहाँ आया हूँ तुझे नमस्कार करनेके लिए नहीं ॥२२८॥ सिंहोदर ! इस
 विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? संक्षेपसे सुन, या तो तू सन्धि कर या आज ही मरणका आश्रय
 ले ॥२२९॥ यह कहते ही समस्त सभा परम क्षोभको प्राप्त हो गयी, नाना प्रकारके दुर्वचन बोलने
 लगी तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगी ॥२३०॥ जिनके शरीर क्रोधसे कांप रहे थे ऐसे
 कितने ही योधा छुरी खींचकर और कितने ही योधा तलवारें निकालकर उसका वध करनेके
 लिए उद्यत हो गये ॥२३१॥ जो वेगसे हुंकार छोड़ रहे थे तथा जो परस्पर अत्यन्त व्याकुल थे
 ऐसे उन योद्धाओंने लक्ष्मणको चारों ओरसे उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी
 पर्वतको घेर लेते हैं ॥२३२॥ शीघ्रतासे कार्य करनेमें निपुण धीर-वीर लक्ष्मणने जो पासमें नहीं
 आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओंको चरणोंकी चपेटसे बिह्वल कर एक साथ दूर फेंक दिया ॥२३३॥
 शीघ्रतासे धूमते हुए लक्ष्मणने कितने ही लोगोंको घुटनोंसे, कितने ही लोगोंको कोहनीसे, और
 कितने ही लोगोंको मुट्टियोंके प्रहारसे शतखण्ड कर दिया अर्थात् एक-एकके सौ-सौ टुकड़े कर
 दिये ॥२३४॥ कितने ही लोगोंके बाल खींचकर तथा पृथिवीपर पटककर उन्हें पैरोंसे चूर्ण कर
 डाला और कितने ही लोगोंको कन्धेके प्रहारसे गिरा दिया ॥२३५॥ कितने ही लोगोंको परस्पर
 भिड़ाकर उनके शिर एक दूसरेके शिरकी चोटसे चूर्ण कर डाले और कितने ही लोगोंको जंघाके
 प्रहारसे मूर्च्छित कर दिया ॥२३६॥ इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मणने सिंहोदरकी उस सभाको
 भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥२३७॥

इस प्रकार सभाको विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भवनसे बाहर आंगणमें निकला
 तब सैकड़ों अन्य योद्धाओंने उसे घेर लिया ॥२३८॥ तदनन्तर युद्धके लिए तैयार खड़े हुए सामन्तों,
 हाथियों, घोड़ों और रथोंके द्वारा उत्पन्न परस्परकी धक्काधूमीसे बहुत भारी आकुलता उत्पन्न
 हो गयी ॥२३९॥ हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले उन सामन्तोंके साथ वीर

ततोऽनेकपमारुह्य^१ प्रावृषेण्यघनाकृतिम् । स्वयं सिंहोदरो रोद्धुं लक्ष्मीनिलयमुद्यतः ॥२४१॥
 तस्मिन् रणशिरोयाते किंचिद्वैर्यमुपागताः । दूरगाः पुनराजग्मुः सामन्ता लक्ष्मणं प्रति ॥२४२॥
 धनानामिव सङ्घास्ते बबुस्तं शशिनं यथा । वातूल इव तानेष तूलराशीनिवाकिरत् ॥२४३॥
 उदारमटकामिन्यो गण्डविन्यस्तपाणयः । जगुराकुलतामाजः प्रविलोलविलोचनाः ॥२४४॥
 पश्यतैर्न महामीमं सख्यः पुरुषमेककम् । वेष्टितं बहुभिः क्रूरैरसाप्रतमिदं परम् ॥२४५॥
 अन्यास्तत्रोचिरे कोऽपि केनायं परिभूयते । पश्यतानेन विक्रान्ता बहवो विह्वलीकृताः ॥२४६॥
 आस्तृणानमथो दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽमिमुखं बलम् । विहस्य वारणस्तम्नं महान्तमुदमूलमत् ॥२४७॥
 ततः सरभसस्तत्र सान्द्रहुङ्कारभीषणः । जजृम्भे लक्ष्मणः कक्षे यथोच्चैराशुशुर्भणिः ॥२४८॥
 विस्मिती गोपुराग्रस्थो दशाङ्गनगराधिपः । पाद्वर्चस्तिभिस्त्रिभूवे सामन्तैर्विकचेक्षणैः ॥२४९॥
 कोऽप्येष पुरुषो नाथ पश्य सैहोदरं बलम् । भग्नध्वजरथच्छत्रं करोति परमद्युतिः ॥२५०॥
 एष खड्गधनुच्छायमध्यवर्ती सुविह्वलः । आवर्त इव निक्षिप्तो भ्राम्यतीर्माहितोदरः ॥२५१॥
 इतश्चेतश्च विस्तीर्णमेतत्सैन्यं पलायते । एतस्मात्प्रासमागत्य सिहान् मृगकुलं यथा ॥२५२॥
 वदन्त्यन्योन्यमत्रैते सामन्ता दूरवर्तिनः । अवतारय सत्ताहं मण्डलाग्रो विमुच्यताम् ॥२५३॥

लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृगालोके साथ सिंह करता है ॥२४०॥ तदनन्तर वर्षा ऋतुके मेघके समान आकारको धारण करनेवाले हाथीपर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मणको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥२४१॥ जो सामन्त पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदरके रणाग्रमें आते ही कुछ-कुछ धैर्य धारण कर फिरसे वापस आ गये ॥२४२॥ जिस प्रकार मेघोंके झुण्ड चन्द्रमाको घेरते हैं उसी प्रकार उन सामन्तोंने लक्ष्मणको घेरा परन्तु जिस प्रकार तीव्र वायु रुईके ढेरको उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामन्तोंको उड़ा दिया—दूर भगा दिया ॥२४३॥ जिन्होंने गालीपर हाथ लगा रखे थे, जो अत्यन्त लाकुलताको प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भयसे चंचल हो रहे थे ऐसी उत्तम योद्धाओंकी स्त्रियाँ परस्परमें कह रही थीं कि हे सखियो ! इस महा-भयंकर पुरुषको देखो । इस एकको बहुतसे क्रूर सामन्तोंने घेर रखा है यह अत्यन्त अनुचित बात है ॥२४४-२४५॥ उन्हींमें कुछ स्त्रियाँ इस प्रकार कह रही थीं कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कौन परिभूत कर सकता है ? देखो, इसने अनेक योद्धाओंको चपेटकर विह्वल कर दिया है ॥२४६॥

अथानन्तर सामने सेनाको इकट्ठी होती देख लक्ष्मणने हँसकर हाथी बांधनेका एक बड़ा खम्भा उखाड़ा ॥२४७॥ और जिस प्रकार वनमें जोरदार अग्नि वृद्धिगत होती है उसी प्रकार सधन हुंकारोंसे भयंकरताको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेनापर वेगसे दूट पड़ा ॥२४८॥ दशाङ्ग-पुरका राजा वज्रकर्ण गोपुरके अग्रभाग पर बैठा-बैठा इस दृश्यको देख आश्चर्यसे चकित हो गया । जिनके नेत्र हर्षसे विकसित हो रहे थे ऐसे समीपवर्ती सामन्तोंने उससे कहा कि हे नाथ ! देखो, परम तेजको धारण करनेवाला यह कोई पुरुष सिंहोदरकी सेनाको नष्ट कर रहा है । उसने उसकी सेनाके ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥२४९-२५०॥ तलवारों और धनुषोंकी छायाके बीच खड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यन्त विह्वल हो भँवरमें पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है ॥२५१॥ जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदरकी सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥२५२॥ ये दूर खड़े हुए सामन्त परस्पर कह रहे हैं कि कवच उतार दो, तलवार छोड़ दो, धनुष फेंक दो,

१. प्रावृषेण म. । २. जाते म. । ३. अग्निः । ४. सिंहोदरः ।

कामुकं क्षिप सुञ्चाश्वं वारणादवतीर्यताम् । गदां निरस्य गर्तायां भाकार्वांरवमुन्नतम् ॥२५४॥
 आलोक्य शस्त्रसङ्घातं श्रुत्वा वा रमसान्वितः । कोऽप्येष पुरुषोऽस्माकमापेक्षदतिदारुणः ॥२५५॥
 'अपसर्पामुतो देशाद्देहि मार्गमहो भट । वारणं सारयैतस्मात्किमत्र स्तम्भितोऽसि ते ॥२५६॥
 अयं प्राप्नोऽयमायातो दुःसूत स्यन्दनं त्यज । तुरङ्गाश्चोदय क्षिप्रं घातिता स्मो न संशयम् ॥२५७॥
 एवमादिकृतालापाः केनिसङ्कटमागताः । परित्यज्य मैटकल्पमेते पण्डकवत् स्थिताः ॥२५८॥
 किमेष रमतं युद्धे कोऽपि त्रिदशसंभवः । विद्याधरो तु वान्यस्य कस्येयं शक्तिरीदृशी ॥२५९॥
 कालो नाम यमो वायुः कोऽपि लोके प्रकीर्त्यते । सोऽयं किमु भवेच्चण्डो विद्युद्दण्डचलाचलः ॥२६०॥
 कृत्वेदमोदुशं सैन्यं पुनरेष करिष्यति । किमित्येवं मनोऽस्माकं नाथ शङ्कामुपागतम् ॥२६१॥
 'निरीक्षस्वैनमुपस्य संग्रामे रोमहर्षणे । सिंहोदरं समाकृष्य विह्वलं वरवारणात् ॥२६२॥
 गले तदंशुकैर्नैव प्राध्वंकृत्य सुविस्मितः । एष याति पुरःकृत्वा बलीवदं यथा वशम् ॥२६३॥
 एवमुक्तः स तैरुच्ये स्वस्था भवत मानवाः । देवाः शान्तिं करिष्यन्ति किमत्र बहुचिन्तया ॥२६४॥
 स्थिता मूर्धसु हर्म्याणां दशाङ्गनगराङ्गनाः । परं विस्मयमापन्ना जगुरेवं परस्परम् ॥२६५॥
 सखि पश्यास्य वीरस्य चेष्टितं परमाद्भुतम् । येनैकेन नरेन्द्रोऽयमानीतोऽशुकवन्धनम् ॥२६६॥
 अहो कान्तिरमुष्येयं धृतिश्चातिशतान्विता । अहो शक्तिरियं कोऽयं भवेत् पुरुषसत्तमः ॥२६७॥
 भूतोऽयं भविता वापि पुण्यवत्याः सुयोधितः । पतिः कस्याः प्रशस्तायाः समस्तजगतीश्वरः ॥२६८॥
 सिंहोदरमहिष्योऽथ वृद्धबालसमन्विताः । रुदत्यः पादयोः पेतुर्लक्ष्मणस्यातिविह्वलाः ॥२६९॥

घोड़ा छोड़ दो, हाथीसे नीचे उतर जाओ, गदा गड्डेमें गिरा दो, ऊँचा शब्द मत करो, शस्त्रोंका समूह देखकर यह अतिशय भयंकर पुरुष वेगसे कहीं हमारे ऊपर न आ पड़े; इस स्थानसे हट जाओ, अरे भट ! रास्ता दे, हाथीको यहाँसे दूर हटा, चुपचाप क्यों खड़ा है ? अरे दुष्ट सारथि ! देख, यह आया, यह आया, रथ छोड़, घोड़े जल्दी बढ़ा, मारे गये इसमें संशय नहीं, इत्यादि वार्तालाप करते हुए, संकटमें पड़े कितने ही योद्धा, योद्धाओंका वेष छोड़कर नपुंसकोंके समान एक ओर स्थित हैं ॥२५३-२५८॥ क्या युद्धमें यह कोई देव क्रोड़ा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नामका कोई व्यक्ति संसारमें प्रसिद्ध है सो क्या यह वही है ? यह अत्यन्त तीक्ष्ण और बिजली-के समान चंचल है ॥२५९-२६०॥ सेनाको इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करके अब यह आगे क्या करेगा ? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शंकाको प्राप्त हो रहा है ॥२६१॥ देखो, रोमांचकारी युद्धमें उछलकर भयभीत सिंहोदरको हाथीसे खींचकर उसीके वस्त्रसे गलेमें बांध लिया है और यह बेलकी तरह वश कर उसे आगे कर आश्चर्यसे चकित होता हुआ आ रहा है ॥२६२-२६३॥ इस प्रकार सामन्तोंके कहनेपर वज्रकर्णने कहा कि हे मानवो ! स्वस्थ होओ, देव शान्ति करेंगे, इस विषयमें बहुत चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? ॥२६४॥ महलोंके शिखरोंपर बैठी दशाङ्गनगरकी स्त्रियाँ परम आश्चर्यको प्राप्त हो परस्पर इस प्रकार कह रही थीं ॥२६५॥ कि हे साथी ! इस वीरकी परम अद्भुत चेष्टा देखो जिसने अकेले ही इस राजाको वस्त्रसे बांध लिया ॥२६६॥ धन्य इसकी कान्ति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति । अहो ! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥२६७॥ यह किस भाग्यशालिनी गुणवती स्त्रीका पति है ? अथवा आगे होगा ? यह समस्त पृथिवीका स्वामी है ॥२६८॥

अथानन्तर वृद्ध और बालकोंसे सहित सिंहोदरकी रानियाँ भयसे अत्यन्त विह्वल हो रोती

१. मा पतदतिदारुणः म. । २. अपसर्प्या म. । ३. योधवेपम् । ४. नपुंसकवत् स्थिताः । ५. भवेच्चन्द्रो (?) म. । ६. त्वयेद- म. । ७. निरीक्षस्व + एनम् । ८. बद्ध्वा । ९. परः कृत्वा ज., ख. । १०. वज्रकर्णः । ११. हर्म्याणां प्रासादानां मूर्धसु पृष्ठेषु ।

ऊचुश्च देव मुञ्चैनं मर्त्यभिक्षां प्रयच्छ नः । अथ प्रभृतिभृत्योऽयं तवाज्ञाकरणोद्यतः ॥२७०॥
 सोऽवोचत् पश्यतोदारं दुमखण्डमिमं पुरः । अत्र नीत्वा दुराचारमेतमुलम्बयाम्यहम् ॥२७१॥
 करुणं बहु कुर्वन्त्यः पुनः साञ्जलयोऽवदन् । हृष्टोऽसि यदि देवास्मान् जहि निर्धार्यतामयम् ॥२७२॥
 प्रसादं कुरु मा दुःखं दर्शय प्रियसंभवम् । ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुषोत्तमाः ॥२७३॥
 पुरो मोक्षयामि सेवध्वं स्वस्थतामित्यसौ वदन् । ययौ चैत्यालयं यत्र ससीतो राववः स्थितः ॥२७४॥
 अवोचल्लक्ष्मणः पद्मं सोऽयं वज्रधृतेररिः । आनीतोऽस्याधुना देव कृत्यं वदतु यन्मया ॥२७५॥
 ततः सिंहोदरो मूर्ध्ना करकुड्मलयोगिना । पपात वेपमानाङ्गः पद्मस्य क्रमपद्मयोः ॥२७६॥
 जगाद च न देव त्वां वेदिकोऽसीति कान्तिमान् । परेण तेजसा युक्तो महींप्रपतिसन्निभः ॥२७७॥
 मानवो भव देवो वा गम्भीरपुरुषोत्तम । अत्र किं बहुभिः प्रोक्तैरहमाज्ञाकरस्तव ॥२७८॥
 गृह्णातु रचितस्तुभ्यं राज्यमिन्द्रायुधश्रुतिः । अहं तु पादशुश्रूषां करोमि सततं तव ॥२७९॥
 ध्वमभिक्षां प्रयच्छेति योषितोऽप्यस्य पादयोः । रुदत्यः प्रणिपत्योक्तुः कुर्वन्त्यः करुणं बहु ॥२८०॥
 देवि स्त्रैणस्त्वमस्माकं कारुण्यं कुरु शोभने । इत्युदित्वा च सीतायाः पतितास्ताः क्रमाब्जयोः ॥२८१॥
 ततः सिंहोदरं पयो जगाद विनताननम् । कुर्वन् वापीषु हंसानां मेघनादोद्भवं भयम् ॥२८२॥
 शक्रायुधश्रुतिर्यत्ते ब्रवीति कुरु तत्तुघोः । एवं ते जीवितं मन्ये प्रकारोऽन्यो न विद्यते ॥२८३॥
 आहूतोऽथ हितैः पुष्पिः कृतदृष्ट्यादिवर्धनः । वज्रकर्णः परीवारसहितश्चैत्यमागमत् ॥२८४॥
 स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मूर्धपणिजिनालयम् । स्तुत्वा ननाम चन्द्राभं भक्तिहृष्टस्तनूहः ॥२८५॥

हुई लक्ष्मणके चरणोंमें आ पड़ीं ॥२६९॥ वे बोलीं कि हे देव ! इसे छोड़ो, हमारे लिए पतिकी भिक्षा देओ, आजसे यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है ॥२७०॥ लक्ष्मणने कहा कि देखो यह सामने ऊँचा वृक्षखण्ड है वहाँ ले जाकर इस दुराचारीको उसपर लटकाऊँगा ॥२७१॥ तदनन्तर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोलीं कि हे देव ! यदि रुष्ट हो तो हम लोगोंको मारो और इसे छोड़ दो ॥२७२॥ प्रसन्नता करो, हम लोगोंको पतिका दुःख न दिखाओ । उत्तम पुरुष स्त्रियोंपर दया करते ही हैं ॥२७३॥ तब लक्ष्मणने कहा कि अच्छा आगे चलकर छोड़ देंगे आप लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ । इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालयमें गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥२७४॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि यह वज्रकर्णका शत्रु है इसे मैं ले आया हूँ । अब हे देव ! जो करना हो सो आज्ञा करो ॥२७५॥ तब जिसका शरीर काँप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा रामके चरणकमलोंमें गिरा ॥२७६॥ और बोला कि हे देव ! आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता । आप कान्तिमान् हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त हैं और सुमेरुके समान स्थिर हैं ॥२७७॥ हे गम्भीर पुरुषोत्तम ! आप मनुष्य रहो चाहे देव ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥२७८॥ वज्रकर्ण आपको रुचता है सो वह यह राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणोंकी शुश्रूषा ही करता रहूँगा ॥२७९॥ सिंहोदरकी स्त्रियाँ भी अत्यन्त करुण विलाप करती हुई, रामके चरणोंमें प्रणाम कर बोलीं कि हमारे लिए पतिकी भिक्षा दीजिए ॥२८०॥ 'हे देवि ! तुम तो स्त्री हो अतः हे शोभने ! हमपर दया करो' इस प्रकार कहकर वे सीताके चरणकमलोंमें भी पड़ीं ॥२८१॥ तदनन्तर वापिकाओंमें स्थित हंसोंको मेघध्वनिसे होनेवाला भय उत्पन्न करते हुए रामने नीचा मुख कर बैठे हुए सिंहोदरसे कहा ॥२८२॥ कि हे सुधी ! तुझे वज्रकर्ण जो कहे सो कर ! इसी तरह तेरा जीवन रह सकता है और दूसरा उपाय नहीं है ॥२८३॥ तदनन्तर जिसकी भाग्य-वृद्धि हो रही थी ऐसा वज्रकर्ण हितकारी पुरुषोंके द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालयमें आया ॥२८४॥ उसने हाथ

ततश्च विनयी गत्वा स्तुत्वा तौ भ्रातरौ क्रमात् । अपृच्छद् वपुरारोग्यं सीतां च विधिकोविदः ॥२८९॥
 मद्र ते कुशलं नः कुशलं नः समन्ततः । इति तं राघवोऽवोचन्निनितान्तं मधुरध्वनिः ॥२९०॥
 सङ्गधेयं तपोर्याविद् वर्तते शुभलीलयोः । चारुवेषोऽथ सैन्येन विद्युदङ्गः समागतः ॥२९१॥
 स तयोः प्रणतिं कृत्वा स्तुत्वा च क्रमपण्डितः । समीपे वज्रकर्णस्थ संनिविष्टः प्रतापवान् ॥२९२॥
 विद्युदङ्गः सुधी सोऽयं वज्रकर्णसुहृत्परः । इति शब्दः समुत्तस्थौ तदा सदसि मांसलः ॥२९३॥
 पुनश्च राघवोऽवोचत् कृत्वा स्मितसितं मुखम् । वज्रकर्ण ! समीचीना तव दृष्टिरियं परा ॥२९४॥
 कुमरैस्त्वव धीरेषा मनागपि न कम्पिता । उत्पातवातसंघातैः मन्दरस्येव चूलिका ॥२९५॥
 ममापि सहसा दृष्ट्वा न ते मूर्धायमानतः । अहो परमिदं चारु तव भ्रान्तं विचेष्टितम् ॥२९६॥
 अथवा शुद्धतरवस्य किमु पुंसोऽस्ति दुस्तरम् । धर्मानुरागचित्तस्य सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥२९७॥
 प्रणम्य त्रिजगद्गन्धं जिनेन्द्रं परमं शिवम् । तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥२९८॥
 मकरन्दरसास्वादलब्धवर्णो मधुव्रतः^१ । रासभस्य पदं पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ॥२९९॥
 बुद्धिमानसि धन्योऽसि दधास्यासन्नमन्यताम् । चन्द्रादपि सिता कीर्तिस्तव भ्राम्यति विष्टपे ॥३००॥
 विद्युदङ्गोऽप्ययं मित्रं परं ते विदितं मया । मन्व्योऽयमपि यः सेवां तव कर्तुं समुद्यतः ॥३०१॥
 सद्भूतगुणसत्कीर्तय लज्जामुपागतः । किञ्चिन्नितानोऽवोचच्छुनाशीरायुर्ध्रुवाः ॥३०२॥
 अत्रावसीदतो देव प्राप्तस्य व्यसनं महत् । सञ्जातोऽसि महामाग त्वं मे^२ परमबान्धवः ॥३०३॥

जोड़ मस्तकसे लगा जिनालयकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं फिर भक्तिसे रोमांचित हो चन्द्रप्रभ भगवान्-
 को नमस्कार किया ॥२८९॥ तत्पश्चात् विधि-विधानके जानकार वज्रकर्णने विनयपूर्वक जाकर
 राम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंकी क्रमसे स्तुति की और सीतासे शरीर-सम्बन्धी आरोग्य पूछा ॥२९०॥
 तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर ध्वनिमें उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशलसे ही हम
 सबकी कुशल है ॥२९१॥ इस प्रकार शुभलीलाके धारक राम और वज्रकर्णके बीच जबतक यह
 वार्तालाप चलता है तबतक सुन्दर वेषका धारक विद्युदंग सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥२९२॥
 क्रमके जाननेमें पण्डित प्रतापी विद्युदंग राम-लक्ष्मणको प्रणाम कर वज्रकर्णके पास आ बैठा ॥२९३॥
 उसी समय सभामें यह जोरदार शब्द गूँजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युदंग वज्रकर्णका परम मित्र
 है ॥२९४॥ तदनन्तर रामने मन्द हास्यसे मुखको धवल कर वज्रकर्णसे कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी
 यह दृष्टि अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२९५॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतकी चूलिका, प्रलयकालकी बायुके आघातसे
 कम्पित नहीं होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मिथ्या मतोंसे रंचमात्र भी कम्पित नहीं हुई ॥२९६॥
 मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तक नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यन्त मनोहर तथा शान्त
 है ॥२९७॥ अथवा शुद्ध तत्त्वके जानकार पुरुषको क्या कठिन है ? खासकर धर्मानुरागी सम्यग्दृष्टि-
 के मनुष्यको ॥२९८॥ जिस उन्नत शिरसे तीन लोकके द्वारा वन्दनीय परम कल्याणस्वरूप जिनेन्द्र-
 भगवान्को नमस्कार किया जाता है उसी शिरसे दूसरे लोगोंको कैसे प्रणाम किया जाये ? ॥२९९॥
 मकरन्द रसके आस्वादनमें निपुण भीरा उन्मत्त होनेपर भी क्या गधेकी पूँछपर अपना स्थान
 जमाता है ? ॥३००॥ तुम बुद्धिमान् हो, धन्य हो, निकट भव्यपना धारण कर रहे हो और चन्द्रमा-
 से भी अधिक धवल तुम्हारी कीर्ति संसारमें भ्रमण कर रही है ॥३०१॥ मुझे मालूम है कि यह
 विद्युदंग भी तुम्हारा मित्र है । सो यह भी भव्य है जो कि तुम्हारी सेवा करनेके लिए उद्यत
 रहता है ॥३०२॥

अथानन्तर यथार्थ गुणोंके कथनसे जो लज्जाको प्राप्त था तथा जिसका मुख कुछ नीचेकी
 ओर झुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपको यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है

१. सुमेरोः । २. निपुणः । ३. भ्रमरः । ४. वज्रकर्णः । ५. मे त्वं म. ।

नियमस्त्वत्प्रसादेन ममायं जीवतोऽधुना । ^१पालितो मम भाग्येन ^२स्वमानीतो नरोत्तमः ॥३०१॥
 वदन्नेवमसा ऊचे लक्ष्मणेन विचक्षणः । वदाभिरुचितं यत्ते क्षिप्रं संपादयाम्यहम् ॥३०२॥
 सोऽवोचत् सुहृदं प्राप्य भवन्तमतिदुर्लभम् । न किञ्चिदस्ति लोकेऽस्मिन्नितं तु प्रवदाम्यहम् ॥३०३॥
 तृणस्यापि न वाञ्छामि पीडां जिनमताश्रितः । अतो विमुच्यतामेष मम सिंहोदरप्रभुः ॥३०४॥
 हस्त्युक्ते लोकवक्त्रेभ्यः साधुकारः समुद्ययौ । प्राप्तद्वेषेऽपि पश्यायं मतिं धत्ते शुभामिति ॥३०५॥
 अपकारिणि काहण्यं यः करोति स सज्जनः । मध्यो कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥३०६॥
 एवमस्तिथिं भाषित्वा लक्ष्मणेन तयोः कृता । हस्तग्रहणसंपन्ना प्रीतिः समयपूर्विका ॥३०७॥
 उज्जयिन्या ददावर्धं वज्रकर्णाय शुद्धधीः । सिंहोदरो हतं पूर्वं विषयोद्वासने च यत् ॥३०८॥
 चतुरङ्गस्य देशस्य गणिकानां धनस्य च । विभागं समभागेन निजस्याप्यकरोदसौ ॥३०९॥
 बार्हद्गतप्रसादेन तौ वेश्यां तच्च कुण्डलम् । लेभे सेनाधिपत्यं च विद्युदङ्गः सुविश्रुतः ॥३१०॥
 वज्रकर्णस्ततः कृत्वा रामलक्ष्मणयोः पराम् । पूजामानाययत्क्षिप्रमष्टौ दुहितरो वराः ॥३११॥
 'सजायो' दृश्यते ज्यायानिति तास्तेन दौकिताः । लक्ष्मीधरं कृतोदारविभूषाविनयान्विताः ॥३१२॥
 नृपाः सिंहोदराद्याश्च ददुः परमकन्यकाः । एवं सन्निहितं तस्य कुमारीणां शतत्रयम् ॥३१३॥
 दौकित्वा वज्रकर्णस्ताः समं सिंहोदरादिभिः । जगाद लक्ष्मणं देव तवैता वनिता इति ॥३१४॥

तो भी हे महाभाग ! आप मेरे परम बान्धव हुए हैं ॥३०१-३००॥ इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियमका पालन आपके ही प्रसादसे हुआ है और मेरे भाग्यसे ही आप पुरुषोत्तम यहाँ पधारे हैं ॥३०१॥ इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्णसे लक्ष्मणने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँ ॥३०२॥ यह सुनकर वज्रकर्णने कहा कि आप-जैसे अत्यन्त दुर्लभ मित्रको पाकर इस संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अतः मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमतका धारक होनेसे यह नहीं चाहता हूँ कि तृणको भी पीड़ा हो । इसलिए यह मेरा स्वामी राजा सिंहोदर छोड़ दिया जाये ॥३०३-३०४॥ वज्रकर्णके इतना कहते ही लोगोंके मुखसे 'धन्य-धन्य' शब्द निकल पड़ा । देखो यह भद्र पुरुष शत्रुके ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥३०५॥ अपकारीके ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है । वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करनेवालेपर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥३०६॥

तदनन्तर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मणने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेंगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनोंकी मित्रता करा दी ॥३०७॥ निर्मल बुद्धिके धारक सिंहोदरने उज्जयिनीका आधा भाग तथा देशको उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्णके लिए दे दिया ॥३०८॥ अपनी चतुरंग सेना, देश, गणिका तथा धनका भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥३०९॥ जिनभक्तिके प्रसादसे अतिशय प्रसिद्ध विद्युदङ्गने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुण्डल और सेनापतिका पद प्राप्त किया ॥३१०॥ तदनन्तर वज्रकर्णने राम-लक्ष्मणकी परम पूजा कर शीघ्र ही अपनी आठ पुत्रियाँ बुलवायी ॥३११॥ चूँकि बड़े भाई राम स्त्रीसे सहित दिखाई देते थे इसलिए उसने उत्तम आभूषणोंको धारण करनेवाली तथा विनयसे युक्त अपनी पुत्रियाँ लक्ष्मणको व्याह दीं ॥३१२॥ इनके सिवाय सिंहोदर आदि राजाओंने भी उत्तमोत्तम कन्याएँ दीं । इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मणको तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुईं ॥३१३॥ उन सबको खड़ी कर वज्रकर्णने सिंहोदर आदि राजाओंके साथ लक्ष्मणसे कहा कि हे देव ! ये आपकी स्त्रियाँ हैं ॥३१४॥

१. जीविताधुना क., ख., ज. । २. पालिता क. । ३. भागेन म. । ४. शुचिश्रुतः म. । ५. 'तव ज्यायान् ज्येष्ठो भ्राता रामः सजायो सबलभो दृश्यते अतस्त्वमपि सजाया भव' इति निर्दिश्य तेन ता दुहितरो लक्ष्मणं प्रापिता इति भावः ।

लक्ष्मीधरस्ततोऽवोचद् दारसङ्गं करोम्यहम् । न तावन्न कृतं यावत् पदं भुजबलार्जितम् ॥३१५॥
 पद्मश्च तानुवाचैवं नास्माकं वसतिः क्वचित् । भरतस्याधिराज्येऽस्मिन् देशे स्वर्गतलोपमे ॥३१६॥
 देशान् सर्वान् समुल्लङ्घ्य करिष्याम्यालयं ततः । आश्रित्य चन्दनगिरिं दक्षिणार्णवमेव वा ॥३१७॥
 एकां वेलामिह ततो जनन्यौ नेतुमुत्सुके । आगन्तव्यं मयावश्यं द्वागथोऽध्यामनेन वा ॥३१८॥
 काले तत्रैव नेष्यन्ते कन्यका अपि भो नृपाः । अज्ञातनिलयस्यास्य कीदृशो दारसंग्रहः ॥३१९॥
 एकमुक्ते कुमारीणां तद्गुन्दं शुशुभे न च । आकुलं पङ्कजवनं हिमवाताहतं यथा ॥३२०॥
 प्रियस्य विरहे प्राणान् त्यक्ष्यामी यदि तत्पुनः । अवान्त्यामः कुतोऽनेन समागमरसायनम् ॥३२१॥
 प्राणांश्च धारयन्तीनां कैतवं मन्यते जनः । दृष्ट्वा च समिक्षेन मनो विरहवह्निना ॥३२२॥
 सुमहान् भृगुरेकत्र व्याघ्रोऽन्यत्रातिदारुणः । अहो कष्टं कमाधारं ब्रजामोऽन्यन्तदुस्सहाः ॥३२३॥
 अथवा विरहव्याघ्रं संगमाशयविद्यथा । संस्तम्भ्य धारयिष्यामः शरीरमिति सांप्रतम् ॥३२४॥
 एवं विचिन्तयन्तीभिः सार्धं तामिर्महीभृतः । गता यथागतं कृत्वा रामादीनां यथोचितम् ॥३२५॥
 सच्चेष्टाः पूज्यमानास्तां पितृवर्गेण कन्यकाः । नानाविनोदनासक्तास्तस्थुस्तद्गतमानसाः ॥३२६॥
 आनायितः पिता भूत्या सबन्धुर्देशमात्मनः । विद्युदङ्गेन चक्रे च परमः सङ्गमोत्सवः ॥३२७॥
 परमेऽथ निशीथे ते तत्त्वा चैत्यालयात्ततः । शनैर्निर्गत्य पादाभ्यां स्वेच्छया सुधियो ययुः ॥३२८॥
 चैत्यालयं प्रमाते तं दृष्ट्वा शून्यं जनोऽखिलः । रहिताशेषकर्तव्यो वितानहृदयस्थितः ॥३२९॥

तदनन्तर उसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं जबतक अपने बाहुबलसे अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लेता हूँ तबतक स्त्री समागम नहीं करूँगा ॥३१५॥ रामने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है । स्वर्गके समान भरतके राज्यमें जो देश हैं उन सबको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्रके पास अपना घर बनवावेंगे । वहाँ उत्कण्ठासे भरी अपनी माताओंको ले जानेसे लिए एक बार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेंगे । हे राजाओ ! उसी समय आपकी इन कन्याओंको ले आवेंगे । तुम्हीं कहो जिसके रहनेका ठिकाना नहीं उसका स्त्री-संग्रह कैसा ? ॥३१६-३१९॥ इस प्रकार कहनेपर वह कन्याओंका समूह तुषार वायुसे आहत कमलवनके समान आकुल होता हुआ शोभित हुआ ॥३२०॥ कन्याएँ विचार करने लगीं कि यदि हम पतिके विरहमें प्राण छोड़ देवेंगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायनको कैसे प्राप्त कर सकेंगी ? ॥३२१॥ और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कपट मानते हैं तथा देदीप्यमान विरहानलसे मन जलता है ॥३२२॥ अहो ! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यन्त निर्दय व्याघ्र है । अतः अत्यन्त दुखसे भरी हुई हम किस आधारको प्राप्त हों ? ॥३२३॥ अथवा इस समय हम समागमकी अभिलाषारूपी विद्यासे विरहरूपी व्याघ्रको कीलकर शरीर धारण करेंगी ॥३२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओंके साथ राजा लोग राम आदिका यथोचित सत्कार कर जैसे आये थे वैसे चले गये ॥३२५॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृवर्ग जिनका निरन्तर सत्कार करता था और जो नाना प्रकारके विनोदमें आसक्त थीं ऐसी कन्याएँ लक्ष्मणमें मन लगाकर रह गयीं ॥३२६॥ तदनन्तर विद्युदङ्गने भाई-बान्धवोंसे सहित पिताको बड़े ठाट-बाटसे अपने देशमें बुलाया और पहुँचनेपर उनके समागमका बहुत भारी उत्सव किया ॥३२७॥

अथानन्तर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ-साथ घनघोर आधी रातके समय भगवान्-को नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालयसे निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥३२८॥ प्रभात होनेपर चैत्यालयको शून्य देख सब लोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो गये ॥३२९॥

समं कुलिशकर्णेन जाता प्रीतिरनुत्तरा । सिंहोदरस्य सन्मानगत्यागमनवर्धिता ॥३३०॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वैरं स्वैरं जनकतनयां तौ च संचारयन्तौ स्थायं स्थायं विकटसरसां काननानां तलेषु ।
पायं पायं रसमभिमतं स्वादुभाजां फलानां क्रीडं क्रीडं सुरसवचनं चारुचेष्टासमेतम् ॥३३१॥

प्राप्तौ नानारचनमवनोत्तुङ्गशृङ्गाभिरामं रम्योद्यानावततवसुधं चैव्यसंवातपूतम् ।

^१नाकच्छायं सततजनितायुस्सवोदारपौरं श्रीमरस्वानं रविसमरुचिख्यैतिमत्कृवराख्यम् ॥३३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वज्रकर्णोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३३॥



सिंहोदरकी वज्रकर्णके साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने-जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुई ॥३३०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राम-लक्ष्मण-सीताको धीरे-धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरोंसे युक्त वनोंके मध्यमें ठहरते हुए, स्वादिष्ट फलोंका इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुन्दर चेष्टाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए, कूबरनामक उस देशमें पहुँचे जो नाना प्रकारके भवनोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुन्दर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानोंसे व्याप्त थी, जो मन्दिरोंके समूहसे पवित्र था, स्वर्गके समान कान्तिवाला था, जहाँके नगरवासी लोग निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कृष्ट थे, जो श्रीमानोंके शब्दसे युक्त था तथा सूर्यके समान कान्ति और प्रसिद्धिसे युक्त था ॥३३१-३३२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य रचित पद्मचरितमें वज्रकर्णका वर्णन करनेवाला तैत्तिरीय पर्व समाप्त हुआ ॥३३॥



चतुर्विंशत्तमं पर्व

परम सुन्दरे तत्र फलपुष्पभरानते । गुञ्जद्वभ्रमरसंघाते मत्तकोकिलनादिते ॥१॥
 कानने सीतया साकमग्रजन्मा स्थितः सुखम् । अन्तिकां सलिलार्थी तु लक्ष्मणः सरसीं गतः ॥२॥
 अत्रान्तरे सुरुपाङ्गो नेत्रतस्करविभ्रमः । एकोऽपि सर्वलोकस्य हृदयेषु समं वसन् ॥३॥
 महाविनयसंपन्नः कान्तिनिर्झरपर्वतः । वरवारणमारुढश्चारुपादातमध्यगः ॥४॥
 तामेव सरसीं रम्यां क्रीडनाहितमानसः । प्राप्तः कल्याणमालाख्यो जनस्तज्ञगराधिपः ॥५॥
 महतः सरसस्तस्य दृष्ट्वा तं तीरवर्तिनम् । नीलोत्पलचयश्यामं लक्ष्मणं चारुलक्षणम् ॥६॥
 ताडितः कामबाणेन स जनोऽत्यन्तमाकुलः । मनुष्यमब्रवीदेकमयमानीयतामिति ॥७॥
 गत्वा कृत्वाञ्जलीर्दक्षः स तमेवमभाषत । एह्ययं राजपुत्रस्ते प्रसादात् संगमिच्छति ॥८॥
 को दोष इति संचिन्त्य दधानः कौतुकं परम् । जगाम लीलया चाव्यां समीपं तस्य लक्ष्मणः ॥९॥
 उत्तीर्थं स जनो नागात् पद्मत्तुल्येन पाणिना । करे लक्ष्मणमालम्ब्य प्राविशद् गृहमाश्रयम् ॥१०॥
 एकासने च तेनातिप्रतीतः सहितः स्थितः । अपृच्छच्च सखे कस्त्वं कुतो वा समुपागतः ॥११॥
 सोऽबोचद् विप्रयोगान्मे ज्येष्ठो दुःखेन तिष्ठति । तावज्जयामि तस्याञ्च कथयिष्यामि ते ततः ॥१२॥
 ततः शाल्योदनः सूप उपदेशेन वं धृतम् । अपूपा घनवन्धानि व्यञ्जनानि पयो दधि ॥१३॥

अथानन्तर जो फल और फूलोंके भारसे नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरोंके समूह गुँज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थीं ऐसे अत्यन्त सुन्दर वनमें राम तो सुखसे विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए समीपवर्ती सरोवरमें गये ॥१-२॥ इसी अवसरमें जो अत्यन्त सुन्दर रूपसे सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रोंको चुरानेवाले थे, जो एक होनेपर भी सर्व लोगोंके हृदयमें एक साथ निवास करता था, महाविनय सम्पन्न था । कान्तिरूपी निर्झरके उत्पन्न होनेके लिए पर्वतस्वरूप था, उत्तम हाथीपर सवार था । मनोहर पैदल सैनिकोंके बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीड़ा करनेमें लीन था । जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगरका स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवरमें क्रीड़ा करनेके लिए आया ॥३-५॥ सो उस महासरोवरके तटपर विद्यमान, नील कमलोंके समूहके समान श्याम और सुन्दर लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको देख वह मनुष्य कामबाणसे ताड़ित होकर अत्यन्त आकुल हो गया । फलस्वरूप उसने अपने एक आदमीसे कहा कि इस पुरुषको ले आओ ॥६-७॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोड़कर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोला कि 'आइए, यह राजकुमार प्रसन्नतासे आपके साथ मिलना चाहता है' ॥८॥ 'क्या दोष है' इस प्रकार विचारकर परम कौतुकको धारण करते हुए लक्ष्मण सुन्दर लीलासे उसके पास गये ॥९॥ तदनन्तर वह राजकुमार हाथीसे उतरकर तथा कमलके समान कोमल हाथसे लक्ष्मणको पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तम्बूमें भीतर चला गया ॥१०॥ वहाँ अत्यन्त विश्वस्त हो एक ही आसनपर लक्ष्मणके साथ सुखसे बैठा । कुछ समय बाद उसने लक्ष्मणसे पूछा कि हे सखे ! तुम कौन हो ? और कहाँसे आये हो ? ॥११॥ लक्ष्मणने कहा कि मेरे वियोगसे मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समाचार कहूँगा ॥१२॥ अथानन्तर शालिके चावलोंका भात, दाल, ताजा घृत, पुए, घेवर, नानाप्रकारके व्यञ्जन, दूध, दही, अनेक प्रकारके पानक, शक्कर और खाँडके लड्डू, पूड़ियाँ, कच्चीड़ियाँ, साधारण पूड़ियाँ,

१. रामः । २. दृष्टा म. । ३. वस्त्रनिर्मितम् । ४. उपदेशनवं म. । ५. 'घेवर' इति प्रसिद्धानि ।

पातकानि विचित्राणि शर्कराखण्डमोदकाः^१ । शङ्कुल्यो घृतपूर्णानि पूरिका गुडपूर्णिकाः ॥१४॥
 वस्त्रालंकारमालयानि लेपनप्रभृतीनि च ।^२ अमत्राणि च चित्राणि हस्तमार्जनकानि च ॥१५॥
 सर्वमेतत् समालम्ब्य पुरुषैः सुमहाजवैः । साविनालायितं तेन जनेनान्तिकमात्मनः ॥१६॥
 अन्तरङ्गः प्रतीहारी जनस्य वचनात् ततः । गत्वा सीतान्वितं पद्मं प्रणम्यैवमभाषत ॥१७॥
 अभुग्मिन् वस्त्रमवने आता ते देव तिष्ठति । प्लवङ्गगर्नायश्च निज्ञापयति सादरः ॥१८॥
 प्रसादं कुरु तच्छाया शीतलेयं मनोहरा । तस्माद्व्यन्तमध्वानं स्वेच्छया गन्तुमर्हथ ॥१९॥
 इत्युक्ते सीतया सार्धं ज्योत्स्नयेव निशाकरः । पद्मः समाययौ बिभ्रन् मत्तद्विरद्विभ्रमम् ॥२०॥
 दूरादेव समालोक्य लक्ष्मणेन समं ततः । अभ्युत्थानं चकारास्य जनः प्रत्युद्गतिं तथा ॥२१॥
 सीतया सहितस्तस्थौ पद्मोऽव्यन्तवरासने । अर्घदानादिसन्धानं प्राप्तश्च जनकल्पितम् ॥२२॥
 ततः कर्मणि निवृत्ते स्वैरं स्नानाशनादिके । समुत्सर्गाखिलं लोकमात्मा नीतस्तुरीयताम् ॥२३॥
 दूतः पितुः सकाशान्मे प्राप्त इत्युपदेशनः^३ । प्रयत्नपरमं कक्ष्यां प्रविश्यानन्यगोचराम् ॥२४॥
 नानाप्रहरणान् वीरान् नियुज्य द्वारि भूयसः । प्रविष्टो योऽत्र^४ बध्योऽसौ ममेति कृतभाषणः ॥२५॥
 सद्भावज्ञापने लज्जां दूरीकृत्य सुमानसः । व्यपाटयदसौ तेषां समक्षं कञ्चुकं जनः ॥२६॥
 स्वर्गादिव तपोऽपसत् काऽप्यसौ वरकन्यका । उपयातेव पातालात् किञ्चिल्लज्जानतानना ॥२७॥
 तत्कान्त्या भवनं लिप्तं लग्नानलमिवाम्बत् । उद्योतमिव चन्द्रेण लज्जास्मितसितांशुभिः ॥२८॥

गुडमिश्रित पूड़ियाँ, वस्त्र, अलंकार, मालाएँ, लेपन आदिकी सामग्री, नानाप्रकारके बर्तन और हाथ धोनेका सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मँगवा ली ॥१३-१६॥ तदनन्तर उसकी आज्ञा पाकर अन्तरंग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उन्हें प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला ॥१७॥ कि हे देव ! उस तम्बूमें आपके भाई विराजमान हैं वहीं इस नगरका राजा भी विद्यमान है सो वह आदरके साथ प्रार्थना करता है कि चूँकि इस तम्बूकी छाया शीतल तथा मनकी हरण करनेवाली है इसलिए प्रमन्न होइए और इतना मार्ग स्वेच्छासे चलकर आप यहाँ पधारिए ॥१८-१९॥ प्रतिहारीके इतना कहने पर मत्त हाथीकी शोभाको धारण करते हुए रामचन्द्र सीताके साथ कल पड़े उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चाँदनीके सहित चन्द्रमा ही हों ॥२०॥ रामको दूरसे ही आते देख राजकुमारने लक्ष्मणके साथ खड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥२१॥ राम सीताके साथ अत्यन्त उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमारके द्वारा प्रदत्त अर्घदान आदि सम्मानको प्राप्त हुए ॥२२॥ तदनन्तर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होनेपर राजकुमारने अन्य सब लोगोंको दूर कर दिया । वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार ये ही चार व्यक्ति रह गये ॥२३॥ 'मेरे पिताके पाससे दूत आया है' ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रयत्नपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरेमें गया । वहाँ उसने नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले अनेक योद्धाओंको द्वारपर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा बध्य होगा ॥२४-२५॥

तदनन्तर यथार्थ भावके प्रकट करनेमें जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेताने राम, लक्ष्मण और सीताके सामने बीचका आवरण फाड़ डाला ॥२६॥ तत्पश्चात् आवरणके दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्गसे ही कोई उत्तम कन्या नीचे आकर पड़ी है । अथवा पातालसे ही निकली है । उस कन्याका मुख लज्जाके कारण कुछ नम्रीभूत हो रहा था ॥२७॥ उसकी

१. मोदकान् म. । २. पात्राणि । ३. समासन्नपुरुषैः क., ख. । समहाजवैः म. । ५. इत्युपदेशतः क., ख., प्रसन्नः परमो -म. । ६. मध्योऽसौ ममेति म., ख. ।

लेकहंसाश्विरं त्रस्ताश्चक्षुषी समचूकचन् । लक्ष्मीरिव स्थिता साक्षात् श्रीरिवोज्ज्वलपङ्कजा ॥२९॥
 गृहं प्लावितुमाख्यामिव लावण्यवारिधौ । उत्कीर्णमिव रत्नानां रजसा काञ्चनस्य वा ॥३०॥
 कल्लोला इव विजैग्मुः स्तनाभ्यां कान्तिवारिणः । तरङ्गा इव संजाता मध्ये त्रिवलिराजिते ॥३१॥
 चण्डातकं समुद्रिद्य जघनस्य घनं महः । निर्जगाभापरं छातं जीमूतं शशिनी यथा ॥३२॥
 सुचिरं प्रथितं लोके चञ्चलत्वायशोमलम् । गृहजीवूतवर्तिन्या निर्धौतमिव विधुता ॥३३॥
 अत्यन्तस्निग्धया तन्वया रोमराज्या विराजिता । नितम्बाज्जातया हैमान् महानीलस्त्रिषा यथा ॥३४॥
 ततोऽपौ सहसामुकनररूपा सुलोचना । दौहिता जानकी तेन रतिश्रीरिव लज्जया ॥३५॥
 अन्ते लक्ष्मणस्तत्र परिप्यक्तो मनोभुवा । अवस्थां कामपि प्रापञ्चलमन्यरलोचनः ॥३६॥
 ततो विशुद्धया बुद्ध्या पद्मस्तामित्यभाषत । दधाना विविधं वेषं का त्वं क्रीडसि कन्यके ॥३७॥
 ततोऽशुंकेन संबीथ गात्रं प्रवरभाषिणी । जगदा देव ! वृत्तान्तं शृणु सद्भाववेदिनम् ॥३८॥
 बालिखिल्य इति ख्यातः पुरस्यास्य पतिः सुधीः । सदाचारपरो नित्यं मुनिबल्लोकवत्सलः ॥३९॥
 पृथिवीति प्रिया तस्य गर्भाधानमुपागता । श्लेच्छाधिपतिना चासौ गृहीतः संयुगे नृपः ॥४०॥

कान्तिसे लिप्त हुआ कपड़ेका तम्बू ऐसा दीखने लगा मानो उसमें आग ही लग गयी हो तथा लज्जा-
 से युक्त मन्द मुसकानकी किरणोंसे लिप्त होनेपर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमें चन्द्रमाका
 ही प्रकाश फैल गया हो ॥२८॥ उसे देख, चतुर हंसोंने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र
 संकुचित कर लिये । वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कर्मलको छोड़कर साक्षात् लक्ष्मी ही
 वहाँ आ बैठी हो ॥२९॥ उसकी कान्तिसे वह घर ऐसा मालूम होता था मानो सोनदर्यके सागरमें
 उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्नों और स्वर्णकी परागसे मानो आच्छादित ही किया
 गया हो ॥३०॥ उसके स्तनोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्तिरूपी जलके कल्लोल ही निकल
 रहे हों और त्रिवलिसे शोभित मध्यभागमें ऐसा लगता था मानो तरंगें ही उठ रही हों ॥३१॥
 जिस प्रकार मेघके पतले आवरणको लाँघकर चन्द्रमाका प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार
 लहंगाको भेदकर उसके नितम्बस्थलका सघन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥३२॥ वह घर, एक मेघ-
 के समान जान पड़ता था और उसमें बैठी हुई वह कन्या बिजलीके समान प्रतिभासित होती थी ।
 ऐसा लगता था कि लोकमें चंचलताके कारण बिजलीके यशमें जो मल चिरकालसे लगा हुआ
 था उसने उसे बिलकुल ही धो डाला था ॥३३॥ वह स्वर्णनिर्मितकी तरह वैदीप्यमान नितम्ब-
 स्थलसे उत्पन्न महानीलमणिके समान श्याम, अत्यन्त चिकनी एवं पतली रोमराजिसे सुशोभित
 थी ॥३४॥ तदनन्तर जिसने सहसा पुरुषका वेष छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे,
 ऐसी वह कन्या सीताके पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुशोभित होने लगी जिस प्रकारकी
 लज्जासे रतिकी श्री सुशोभित होती है ॥३५॥ लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो कामसे युक्त हो
 किसी अनिर्वचनीय अवस्थाको प्राप्त हुए । उस समय उनके चंचल नेत्र धीरे-धीरे चल रहे थे
 ॥३६॥ तदनन्तर निर्मल वृद्धिसे युक्त रामने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये ! विविध वेषको
 धारण करनेवाली तू कौन है ? जो इस तरह क्रीड़ा करती है ? ॥३७॥ उसके उत्तरमें मधुर भाषण
 करनेवाली कन्याने वस्त्रसे शरीर ढँककर कहा कि हे देव ! सद्भावको सूचित करनेवाला मेरा
 वृत्तान्त सुनिए ॥३८॥

इस नगरका स्वामी 'बालिखिल्य' इस नामसे प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान्, मुनियोंके
 समान निरुत्तर सदाचारका पालन करनेवाला और लोगोंके साथ स्नेह करनेवाला है ॥३९॥ उसकी
 प्रियाका नाम पृथिवी है । जिस समय पृथिवी गर्भाधानको प्राप्त हुई उसी समय राजा बालिखिल्यका

१. 'लहंगा' इति एसिद्धं स्त्रीलक्ष्यम् । २. चञ्चलत्वायशोमलं (?) म. । ३. ख्या म. । ४. रति श्रीरिव म.

उक्तं च स्वामिना तस्य सिंहोदरमहीभृता । पुत्रश्चेद् भविता गर्भे कर्ता राज्यमसाविति ॥४१॥
 ततोऽहं पापिनी जाता मन्त्रिणा वसुबुद्धिना^१ । सिंहोदराय पौंस्नेन कथिता राज्यकाङ्क्षया ॥४२॥
 नीता कल्याणमालाख्यां जनन्या रहितार्थिकाम्^२ । प्रायो^३ माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥४३॥
 मन्त्री माता च मे वेति कन्येयमिति नापरः । इत्यन्तं कालमधुना भवन्तः पुण्यवीक्षिताः ॥४४॥
 दुःखं तिष्ठति मे तातः प्राप्तश्चरकवासिताम् । सिंहोदरोऽपि नो सकतस्तस्य कर्तुं विमोचनम् ॥४५॥
 यदत्र द्रविणं किञ्चिद्देशे समुपजायते । तन्म्लेच्छस्वामिने सर्वं प्रेष्यते दुर्गमीयुषे ॥४६॥
 वियोगवृद्धितात्यन्तं तप्यमाना समाश्रिता । जाता कलावशेषेन चन्द्रमूर्तिर्गन्तव्या ॥४७॥
 इत्युत्था दुःखभारेण पीडिताशेषगात्रिका । सद्यो विच्छाद्यतां प्राप्ता सुक्तकण्ठं हरोद सा ॥४८॥
 अत्यन्तवर्षुरैर्वाक्यैः पयोनाशवासिता ततः । सीतया च निधायाङ्गे कुर्वन्त्या सुखधावनम् ॥४९॥
 सुखिनालूना चोक्ता शुचं विसृज सुन्दरि । कुरु राज्यमनेनैव वेपेणोचितकारिणी ॥५०॥
 शुभे कांक्षित्यतीक्ष्णं दिवसान् धैर्यसङ्गतान् । म्लेच्छेन ग्रहणं किं मे पितरं पश्य मोचितम् ॥५१॥
 इत्युत्ते परमं तोषं ताते मुक्त इवागता । समुलसितसर्वाङ्गा कन्यका द्युतिपूरिता ॥५२॥
 तत्र ते कानने रम्ये विचित्रालापविभ्रमाः । देवा इव सुखं तस्थुः स्वच्छन्दा दिवसत्रयम् ॥५३॥
 ततः सुसज्जने काले रजन्यां रामलक्ष्मणौ । ससीतौ रन्ध्रमाश्रित्य निष्क्रान्तौ काननालयात् ॥५४॥

म्लेच्छ राजाके साथ युद्ध हुआ, सो युद्धमें म्लेच्छ राजाने उसे पकड़ लिया ॥४०॥ राजा सिंहोदर बालखिल्यके स्वामी हैं सो उन्होंने कहा कि बालखिल्यकी रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भमें पुत्र होगा तो राज्य करेगा ॥४१॥ तदनन्तर दुर्भाग्यसे पुत्र न होकर मैं पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परन्तु वसुबुद्धि मन्त्रीने राज्यकी आकांक्षासे सिंहोदरके लिए पुत्र उत्पन्न होनेकी खबर दी ॥४२॥ माताने मेरा कल्याणमाला यह अर्थहीन नाम रखा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्रायः मंगलमय व्यवहारमें ही प्रवृत्त होते हैं ॥४३॥ अबतक मन्त्री और मेरी माता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं । आज पुण्योदयसे आप लोगोंके दर्शन हुए ॥४४॥ बन्दोगृहके निवासको प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्टमें हैं । सिंहोदर भी उन्हें छुड़ानेके लिए समर्थ नहीं है ॥४५॥ इस देशमें जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुर्गकी रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजाके लिए भेज दिया जाता है ॥४६॥ वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुई मेरी माता सूखकर कला मात्रसे अवशिष्ट चन्द्रमाके समान कान्तिहीन हो गयी है ॥४७॥ इतना कहकर दुःखके समान भारसे जिसका समस्त शरीर पीड़ित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कान्तिरहित हो गयी तथा गला फाड़कर रोने लगी ॥४८॥

तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर शब्दोंमें उसे सान्त्वना दी; सीताने गोदमें बैठकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! शोक छोड़ो, इसी वेषसे राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो ॥४९-५०॥ हे शुभे ! हे कल्याणरूपिणी ! धैर्यके साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो । मेरे लिए म्लेच्छराजका पकड़ना कौनसी बात है ? तुम शीघ्र ही अपने पिताको छूटा देखोगी ॥५१॥ इस प्रकार कहनेपर उसे इतना सन्तोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो । उस कन्याके समस्त अंग हर्षसे उल्लसित हो उठे और वह कान्तिसे भर गयी ॥५२॥ तदनन्तर उस मनोहर वनमें नाना प्रकारका वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवोंके समान स्वतन्त्र हो सुखसे रहे ॥५३॥ तत्पश्चात् रात्रिके समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित

१. वसुबुद्धिना म. । च वसुबुद्धिना क., ख. । २. रहितार्थिकं म. । ३. प्रायो म. । ४. प्रेष्यते म. ।
 ५. सुसज्जने म. ।

विबुद्धा तानपश्यन्ती कन्या व्याकुलमानसा । हाकारमुखरा शोकं परमं समुपागता ॥५५॥
महापुरुषयुक्तं ते स्तेनयित्वा मनो मम । गन्तुं निद्रासमेताया निर्धृणेति मनस्विनी ॥५६॥
कृच्छ्राभियस्य शोकं च वरधारणवर्तिनी । प्रविश्य कूबरं तस्थौ पूर्ववद्दीनमानसा ॥५७॥
ततः कल्याणमालाया रूपेण विनयेन च । हतचित्ताः क्रमेणैते प्रापुर्मैकलनिम्नगाम् ॥५८॥
उत्तीर्य विहितक्रीडास्तां सुखेन मनोहरान् । बहून् देशानतिक्रम्य प्राप्ता विन्ध्यमहादवीम् ॥५९॥
स्कन्धावारमहासार्थपरिक्षुण्णेन^१ वर्त्मना । प्रयान्तः पथिकैर्गोपैः कीनाशैश्च निवारिताः ॥६०॥
कचिन्सालादिभिर्बृक्षैर्लतालिङ्गितमूर्तिभिः । तद्वनं शोभतेऽत्यन्तं स्वामोदं नन्दनं यथा ॥६१॥
क्वचिद्वावेन^२ निर्दग्धप्रान्तस्थितमहीरुहम् । न शोभते यथा गोत्रं दुष्पुत्रेण कलङ्कितम् ॥६२॥
अथानोचत् ततः सीता कर्णिकारवनान्तरे । वामतोऽयं स्थितो ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि^३ कण्टकिनस्तरोः ॥६३॥
वायमानो मुहुः क्रूरं कलहं कथयत्यरम् । अन्योऽपि क्षीरवृक्षस्थो जयं शंसति वायसः ॥६४॥
तस्मात् तावत् प्रतीक्षतां मुहुतं कलहात् परम् । जयोऽपि नैव मे चित्ते प्रतिभात्यतिसुन्दरः ॥६५॥
ततः क्षणं विलम्बयौ प्रयातौ पुनरुद्यतौ । तदेव च पुनर्जातं निमित्तं निकटेऽन्तरे ॥६६॥
ब्रूयत्या अपि सीताया अवकर्ण्य वचस्ततः । प्रवृत्तौ गन्तुमग्रे च म्लेच्छानां सैन्यमुद्गतम् ॥६७॥
तौ निरीक्ष्यैव निर्मातावायान्तौ वरकासुकौ । क्षणेनैकेन तत्सैन्यं कान्दिशीकं पकायितम् ॥६८॥

राम-लक्ष्मण छिद्र पाकर वनके उस तम्बूसे बाहर निकल गये ॥५४॥ जागनेपर जब कन्याने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ । वह हाहाकार करती हुई परम शोकको प्राप्त हुई ॥५५॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सीता छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥५६॥ अन्तमें बड़े दुःखसे शोकको रोककर तथा उत्तम हाथीपर सवार हो उसने कूबर नगरमें प्रवेश किया और वहाँ पहलेके समान दीन हृदयसे वह निवास करने लगी ॥५७॥

अथानन्तर कल्याणमालाके रूप और विनयसे जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रमसे नर्मदा नदीको प्राप्त हुए ॥५८॥ क्रीड़ा करते हुए उस नदीको पार कर तथा अनेक सुन्दर देशोंको उल्लंघन कर वे विन्ध्याचलकी महाअटवीमें पहुँचे ॥५९॥ वे बड़ी भारी सेनाके संचारसे खुदे हुए मार्गसे जा रहे थे, इसलिए मार्गमें चलनेवाले ग्वालों तथा हलवाहकोंने उन्हें रोका कि इस मार्गसे आगे न जाओ पर वे रुके नहीं ॥६०॥ बहुत भारी सुगन्धिसे भरा हुआ यह वन कहीं तो लताओंसे आलिंगित सागौन आदिके वृक्षोंसे नन्दनवनके समान अत्यन्त सुशोभित है और कहीं दावानलके कारण समीप स्थित वृक्षोंके जल जानेसे कुपुत्रके द्वारा कलङ्कित गोत्रके समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥६१-६२॥ तदनन्तर कुछ आगे बढ़नेपर सीताने कहा कि देखो, कनेर वनके बीचमें बायीं ओर कँटीले वृक्षकी चौटीपर बैठा कौआ बार-बार क्रूर शब्द कर रहा है सो 'शीघ्र ही कलह होनेवाली है' यह कह रहा है और इधर क्षीर वृक्षपर बैठा दूसरा कौआ 'हम लोगोंकी विजय होगी' यह सूचित कर रहा है ॥६३-६४॥ इसलिए आप लोग मुहुतमात्र प्रतीक्षा कर लें क्योंकि कलहान्तर जय प्राप्त करना भी मेरे मनमें बहुत अच्छा नहीं जँचता ॥६५॥ तदनन्तर क्षण-भर विलम्ब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अन्तर पर वही निमित्त फिर हुआ ॥६६॥ यद्यपि सीता कह रही थी फिर भी उसका कहा अनसुना कर राम-लक्ष्मण आगे बढ़ते गये । कुछ दूरी पर उन्हें म्लेच्छोंकी सेना मिली, सो उत्तम धनुषके धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मणको आते देख वह सेना भयभीत हो क्षण-भरमें भाग

१. निद्रा समेतायां म. । २. नर्मदा । ३. परिक्षणेन (?) म. । ४. हलिभिः । ५. निर्दग्धं प्रान्त म. ।
६. कण्टकितस्तरो म. । ७. शब्दं कुर्वन् । ८. परः म. ।

अवगत्य ततस्तस्मात् सङ्ग्रहान्ये समागताः । प्रावृद्धमेघसमानेन तेषु हासेन निजिताः ॥६९॥
 ततस्तेऽत्यन्तवित्रस्ता म्लेच्छाः पतितकार्मुकाः । कुर्वन्तः परमं रावं गन्वा पत्ये न्यवेदयन् ॥७०॥
 ततोऽसौ परमं क्रोधं वहंश्चापं च दारुणम् । निर्जङ्गाम महासैन्यः शस्त्रसन्तमसावृतः ॥७१॥
 काकोनदा इति ख्याता म्लेच्छास्ते धरणीतले । दारुणाः सर्वमांसादो दुर्जयाः पार्थिवैरपि ॥७२॥
 तैरावृतां दिशं प्रेक्ष्य पुरो वनकुलासितैः । धनुरारोपयन् कोपं किञ्चिदक्ष्मीधरो भजन् ॥७३॥
 तथा चास्फालितं सर्ववनमाकम्पितं यथा । उवरश्च वनसत्त्वानां जले प्रकटवेपथुः ॥७४॥
 संश्रधानं शरं वीक्ष्य लक्ष्मणं त्रस्तचेतसः । वज्रमुश्चक्रतां प्राप्ता म्लेच्छा निश्चक्षुषी यथा ॥७५॥
 ततः साध्वससंपूर्णो म्लेच्छानामधिपो भृशम् । अवतीर्य रथादेतौ प्रणम्य रक्षितान्जलिः ॥७६॥
 अद्रवीदस्ति कौशाम्बी नगरी प्रथिता प्रभुः । आहिताग्निर्द्विजस्तत्र नाम्ना विश्वानलः शुचिः ॥७७॥
 प्रतिसंध्येति तैज्याया जातोऽहं तनयस्तयोः । रौद्रभूतिरिति ख्यातः शस्त्रयूतकलान्वितः ॥७८॥
 बाल्यात् प्रभृति दुष्कर्मनित्यानुष्ठानकोविदः । प्राप्तश्चौर्ये कदाचिच्च शूले भेत्तुमर्भोप्सितः ॥७९॥
 धनिनैकेन तत्राहं श्रद्धानेन साधुना । मोचितो वेपमानाङ्गः स्वस्त्वा देशमिहागतः ॥८०॥
 प्राप्तः कर्मानुभावेन काकोनदजनेशताम् । अष्टस्तिष्ठामि सद्बृत्तात् पशुभिः समतां गतः ॥८१॥
 इयन्तं यस्य मे कालं सैन्याढ्या अपि पार्थिवाः । चक्षुषो गोचरीभावभासन् शक्ता न सेवितुम् ॥८२॥
 सोऽहं दर्शनमात्रेण कृतो देवेन विक्लवः । धन्योऽस्मि वीक्षितौ येन भवन्तौ पुद्गलोत्तमौ ॥८३॥

गयी ॥६७-६८॥ तदनन्तर भागती सेनासे समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो सामने आये परन्तु वर्षाकालीन मेघके समान श्याम लक्ष्मणने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥६९॥ तदनन्तर जो अत्यन्त भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोरसे चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छोंने जाकर अपने स्वामीसे निवेदन किया ॥७०॥ तब परम क्रोध और भयंकर धनुषको धारण करता हुआ म्लेच्छोंका स्वामी निकला । बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शस्त्ररूपी अन्धकारसे आच्छादित था ॥७१॥ वे म्लेच्छ पृथिवीपर 'काकोनद' इस नामसे प्रसिद्ध थे, अत्यन्त भयंकर थे, सब जन्तुओंका मांस खानेवाले थे और राजाओंके द्वारा भी दुर्जेय थे ॥७२॥ जब लक्ष्मणने देखा कि आगेकी दिशा मेघसमूहके समान श्यामवर्ण म्लेच्छोंसे आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ कुपित हो धनुषकी डोरी चढ़ा ली ॥७३॥ और उस प्रकारसे उसका आस्फालन किया कि समस्त वन काँप उठा तथा जंगली जानवरोंको कँपकँपी उत्पन्न करनेवाला ज्वर उत्पन्न हो गया ॥७४॥ लक्ष्मणको डोरीपर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीनके समान चक्राकार घूमने लगे ॥७५॥ तदनन्तर अत्यन्त भयसे भरा म्लेच्छोंका स्वामी रथसे उतरकर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है, निरन्तर अग्निमें होम करनेवाला विश्वानल नामका पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है । विश्वानलकी स्त्रीका नाम प्रतिसन्ध्या है । मैं उन्हीं दोनोंका पुत्र हूँ, रौद्रभूति नामसे प्रसिद्ध हूँ, शस्त्र तथा जुएके कलाका पारगामी हूँ ॥७६-७८॥ मैं बाल्य अवस्थासे ही निरन्तर छोटे कार्य करनेमें निपुण था । किसी समय चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और मुझे शूलीपर चढ़ानेका निश्चय किया गया ॥७९॥ शूलीका नाम सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा तब विश्वास रखनेवाले एक भले धनिकने जमानत देकर मुझे छुड़वा दिया । तदनन्तर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया ॥८०॥ कर्मोंके प्रभावसे इन काकोनद म्लेच्छोंकी स्वामिताको प्राप्त हो गया हूँ तथा सदाचारसे भ्रष्ट हो पशुओंके समान यहाँ रहता हूँ ॥८१॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होनेके लिए समर्थ नहीं हो सके उस मुझको आपने

१. मेघसमूहवत्कृष्णः । २. यज्जाया म. । ३. ध्वनिनैकेन म. ।

शासनं यच्छतां नाथो किं करोमि यथोचितम् । शिरसा पादुके किं वा वह्ने पावनपण्डिते ॥८४॥
 'दिन्योऽयं निधिमिः पूर्णो वरयोविच्छतैस्तथा । मुजिष्यमिच्छतां देवौ मामतो निवृत्तं परम् ॥८५॥
 इत्युक्त्वा प्रणतिं कुर्वन् पुनरार्तिं परां गतः । पपात विह्वलो भूमौ छिन्नमूलस्तर्क्यथा ॥८६॥
 कष्टावस्थां ततः प्राप्तं तमेवं राघवोऽब्रुवत् । कृपालतापरिष्वक्तवीरकल्पमहातरुः ॥८७॥
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्बालिखिल्यं दिवन्धनम् । कृत्वाऽऽनय द्रुतं प्राप्य संमानं परमं सुधीः ॥८८॥
 तस्यैव शिमरो भूत्वा लखिवः सज्जतान्वितः । बिहाय संगतिं म्लेच्छैर्विषयस्य हितोऽभवत् ॥८९॥
 एतन् चेन् कुरुपे सर्वमन्यथास्वविवर्जितम् । ततस्ते विद्यते शान्तिरयैव म्रियसेऽन्यथा ॥९०॥
 एवं प्रभो करोमीति कृत्वा प्रणतिमादृतः । महारथमुत्तं गत्वा मुमोच विनयान्वितः ॥९१॥
 अभ्यङ्गोद्वर्त्य सुस्नातं भोजयित्वा स्वलंकृतम् । आरोप्य स्यन्दने नेतुमारभे तं तदन्तिकम् ॥९२॥
 स दध्यां नीयमानः सन् विस्मयं परमं गतः । इतोऽपि गहनावस्था प्रायो मेऽयं भविष्यति ॥९३॥
 कायं म्लेच्छो महाशत्रुः कुकर्मात्यन्तनिर्दयः । क चायमतिसमानो न मन्येऽद्यासुधारणम् ॥९४॥
 इति दीनमना गच्छन् सहसा पद्मलक्ष्मणी । दृष्ट्वा परां धृतिं प्राप्तोऽवतीर्य सनमस्कृतिः ॥९५॥
 अत्रवीत् तौ युवां नाथावागतावतिसुन्दरौ । मम पुण्यानुभावेन मुक्तो येनास्मि बन्धनात् ॥९६॥
 गच्छ क्षिप्रं निजं धाम लभस्वामीष्टमंगमम् । तत्र नौ ज्ञास्यसीत्युक्ते बालिखिल्यः सुधोगतः ॥९७॥

दृष्टिमात्रसे ही दीन कर दिया । मैं धन्य हूँ जिससे पुरुषोंमें उत्तम आप महानुभावोंके दर्शन किये ॥८२-८३॥ हे नाथ ! आज्ञा दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूँ ? क्या पवित्र करनेमें निपुण आपकी पादुकाएँ शिरपर धारण करूँ ? ॥८४॥ यह विन्ध्याचल निधियों तथा उत्तमोत्तम सैकड़ों स्त्रियोंसे परिपूर्ण है इसलिए हे देव ! मुझसे किसी अच्छे भारी राजस्वकी इच्छा प्रकट करो ॥८५॥ इतना कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुनः परम पीड़ाको प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे वृक्षके समान भूमिपर गिर पड़ा ॥८६॥

तदनन्तर जो वीरजनोंके लिए दयारूपी लतासे आलिंगित कल्पवृक्षके समान थे ऐसे राम दुःखमय अवस्थाको प्राप्त हुए म्लेच्छ राजासे इस प्रकार बोले कि हे सुबुद्धि ! उठ-उठ, डर मत, बालिखिल्यको बन्धनरहित कर तथा उत्तम सम्मानको प्राप्त कराकर शीघ्र ही यहाँ ला ॥८७-८८॥ उसीका इष्ट मन्त्री हो सज्जनोंकी संगति कर और म्लेच्छोंकी संगति छोड़, देशका हितकारी हो ॥८९॥ यदि तू यह सब काम ठीक-ठीक करता है तो उससे तुझे शान्ति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायेगा ॥९०॥ 'हे प्रभो ! ऐसा ही करता हूँ' इस प्रकार कहकर उसने बड़े आदरसे रामको प्रणाम किया और विनयके साथ जाकर महारथके पुत्र बालिखिल्यको छोड़ दिया ॥९१॥

तदनन्तर जिसे तेल-उबटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलंकारोंसे अलंकृत किया गया था ऐसे बालिखिल्यको रथपर बैठाकर वह रामके पास ले जानेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ जो इस तरह आदरके साथ लाया जा रहा था ऐसा बालिखिल्य परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्रायः अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी ॥९३॥ कहाँ तो यह कुर्म करनेवाला अत्यन्त निर्दय महावेरी म्लेच्छ ? और कहाँ यह भारी सम्मान ? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेंगे ॥९४॥ इस प्रकार बालिखिल्य दीन चित्त होकर जा रहा था कि सहसा राम-लक्ष्मणको देखकर वह परम सुन्तोषको प्राप्त हुआ । उसने रथसे उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ ! मेरे पुण्योदयसे अतिशय सुन्दर रूपको धारण करनेवाले आप दोनों महानुभाव पधारें हैं इसीलिए मैं बन्धनसे मुक्त हुआ हूँ ॥९५-९६॥ राम-लक्ष्मणने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनोंके साथ

कृत्वा सुनिभृतं भृत्यं तस्य विश्वानलान्गजम् । यातौ सीतान्वितौ स्वेष्टं कृत्विनौ रामलक्ष्मणौ ॥९८॥
 बालिखिल्यस्तु संप्राप्तः समं रौद्रविभूतिना । स्वपुरस्यान्तिकं क्षोणीं स्मरन् बान्धवचेष्टितम् ॥९९॥
 प्रत्यासन्नं ततः कृत्वा विभूत्या पर्यान्वितम् । पितरं निरगात्तुष्टा पुरात् कल्याणमालिनी ॥१००॥
 प्रतीतां सनमस्कारां तां समाधाय मस्तके । निजयाने पुनः कृत्वा प्रविष्टः कूबरं नृपः ॥१०१॥
 पृथिवी महिषी तोषसञ्जातपुलका क्षणात् । पुरातनीं तनुं भेजे कान्तिसागरवर्तिनीम् ॥१०२॥
 सिंहोदरप्रभृतयो नृपा प्रभृतयोऽखिलाः । गुणैः कल्याणमालायाः परमं विस्मयं गताः ॥१०३॥

उपजातशूतम्

यद्रौद्रभूतिः सुचिरं चिन्त्रं समार्ज्यक्षीरपरायणः स्वम् ।
 अनेकदेशप्रभवं विशालं तद्बालिखिल्यस्य गृहं विवेश ॥१०४॥
 जातेऽस्य वाग्वर्तिनि रौद्रभूतौ वशीकृतम्लेच्छसुदुर्गभूमौ ।
 सिंहोदरोऽपि प्रतिपद्यच्छः स्नेहं ससमानमलचकार ॥१०५॥
 सोऽयं समासाद्य परां विभूतिं प्रसादतो राघवसत्तमस्य ।
 महारथी प्राणसमासमेतो रथिर्यथैवं शरदा रराज ॥१०६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते बालिखिल्योपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३८॥



समागम प्राप्त करो । वहाँ पहुँचनेपर तुम हम लोगोंको जान सकोगे । इस प्रकार कहनेपर बुद्धिमान् बालिखिल्य अपने घर चला गया ॥९७॥

तदनन्तर विश्वानलके पुत्र रौद्रभूतिको बालिखिल्यका निश्चल मित्र बनाकर अतिशय कुशल राम-लक्ष्मण सीताके साथ अपने इष्ट स्थानको चले गये ॥९८॥ बान्धवजनोंकी चेष्टाका स्मरण करता हुआ बालिखिल्य, रौद्रभूतिके साथ जब अपने नगरकी समीपवर्ती भूमिमें पहुँचा तब निकटवर्ती पिताको परम विभूतिसे युक्तकर पुत्री कल्याणमालिनी सन्तुष्ट हो उसका सत्कार करनेके लिए नगरसे बाहर निकली ॥९९-१००॥ तदनन्तर नमस्कार करती हुई पुत्रीको पहचानकर राजा बालिखिल्यने उसका मस्तक सूँघा फिर अपने रथपर बैठाकर कूबर नगरमें प्रवेश किया ॥१०१॥ बालिखिल्यकी रानी पृथिवीके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमांच निकल आये और वह कान्तिरूपी सागरमें वर्तमान अपने पुराने शरीरको क्षण-भरमें पुनः प्राप्त हो गयी ॥१०२॥ सिंहोदर आदि समस्त राजा कल्याणमालाके गुणोंसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१०३॥ रौद्रभूतिने चिरकाल तक चोरीमें तत्पर रहकर नाना देशोंमें उत्पन्न जो विविध प्रकारका विशाल धन इकट्ठा किया था वह सब बालिखिल्यके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०४॥ जब म्लेच्छोंकी सुदुर्गम भूमिको वश करनेवाला रौद्रभूति बालिखिल्यका आज्ञाकारी हो गया तब शंकाको प्राप्त हुआ सिंहोदर भी सम्मानसहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥१०५॥ इस प्रकार महारथी बालिखिल्य राम-लक्ष्मणके प्रसादसे परम विभूतिको पाँकर अपनी प्राणप्रियासे इस तरह सुशोभित होने लगा जिस तरह कि शरद्-ऋतुसे सूर्य सुशोभित होता है ॥१०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें बालिखिल्यका वर्णन करनेवाला चौत्तिसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥



पञ्चविंशत्तमं पर्व

अथ ते त्रिदशामिथ्याः काननं वन्दनोपमम् । विहरन्तः सुखं प्राप्ता देशमत्यन्तमुज्ज्वलम् ॥१॥
 मध्ये यस्य नदी भाति प्रसिद्धजलवाहिनी । तापीति विश्रुता नानापश्चिर्वर्गानुनादिता ॥२॥
 अरण्ये तत्र निस्तोये सीताऽत्यन्तश्रमान्विता । जगाद् राघवं नाथ कण्ठशोषो ममोत्तमः ॥३॥
 यथा भवशतैः सिद्धो मय्यो दर्शनमर्हतः । वाञ्छत्येवमहं तीव्रतृष्णयाऽऽकुलिता जलम् ॥४॥
 इत्युक्त्वा वार्यमाणापि निषण्णा सुतरोरधः । रामेण जगदे देवि विषादं मागमः शुभे ॥५॥
 आसन्नोऽयं महाग्रामो दृश्यते विकटालयः । उत्तिष्ठान् प्रयामोऽत्र शिशिरं वारिं पास्यति ॥६॥
 एवमुक्ते तथा स्वैरं स्वैरं प्रस्थितया समम् । प्राप्तौ तावत्प्रग्रामं महाधनकुटुम्बिकम् ॥७॥
 आहिताग्निद्विजस्तत्र कपिलो नाम विश्रुतः । गेहे तस्यावतीर्णो तौ यथाक्रममुपागतौ ॥८॥
 अत्राग्निहोत्रशालायामपनीय श्रमं क्षणम् । तद्ब्राह्मण्या जलं दत्तं पपी सीता सुशीतलम् ॥९॥
 यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र द्विजस्तावदरप्यतः । विलवाश्च पलाशौ चोभारवाही समागतः ॥१०॥
 दावानलसमं यस्य मानसं नित्यकोपिनः । कालकूटविषं वाक्यमुल्लसद्दृशं मुखम् ॥११॥
 कमण्डलुशिखाकूर्चवालसूत्रादिभिः परम् । विश्राणः कुटिलं वेपमुल्लवृत्तिं भजन् किल ॥१२॥
 दृष्ट्वा तान् कुपितोऽत्यन्तभ्रुकुटीकुटिलान्नः । उवाच ब्राह्मणीं वाचा तक्षत्रिण सुतीक्ष्णया ॥१३॥

अथानन्तर देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले वे तीनों, नन्दन वनके समान सुन्दर वनमें मुखसे विहार करते हुए एक ऐसे अत्यन्त उज्ज्वल देशमें पहुँचे, जिसके मध्यमें प्रसिद्ध जलको बहानेवाली, पक्षी समूहसे शब्दायमान तापी नामकी प्रसिद्ध नदी सुशोभित है ॥१-२॥ वहाँके निजल वनमें जब सीता अत्यन्त थक गयी तब रामसे बोली कि नाथ ! मेरा कण्ठ बिलकुल सूख गया है ॥३॥ जिस प्रकार सैकड़ों जन्म धारण करनेसे खेदको प्राप्त हुआ भव्य, बरहन्त भगवान्‌के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र पिपासासे आकुलित हुई मैं जल चाहती हूँ ॥४॥ इतना कहकर वह रोकनेपर भी एक उत्तम वृक्षके नीचे बैठ गयी । रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विषादको प्राप्त मत होओ ॥५॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलोसे युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चलें, वहीं शीतल पानी पीना ॥६॥ इस प्रकार कहनेपर धीरे-धीरे चलती हुई सीताके साथ चलकर वे दोनों, जहाँ अनेक धनिक कुटुम्ब रहते थे, ऐसे अरुण ग्राममें पहुँचे ॥७॥ वहाँ प्रतिदिन होम करनेवाला एक कपिल नामका ब्राह्मण रहता था सो वे दोनों यथा क्रमसे प्राप्त हुए, उसीके घर उतरे ॥८॥ यहाँ यज्ञ-शालामें क्षण-भर विश्राम कर सीताने उसकी ब्राह्मणीके द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥९॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतनेमें बेल, पीपल और पलाशकी लकड़ियोंका भार लिये ब्राह्मण जंगलसे वापस आ पहुँचा ॥१०॥ निरन्तर क्रोध करनेवाले उस ब्राह्मणका मन दावानलके समान था, वचन कालकूटके समान थे, और मुख उल्लूके सदृश था ॥११॥ वह हाथमें कमण्डलु लिये था, उसने शिरपर बड़ी चोटी रख छोड़ी थी, मुखपर लम्बी-चोड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और कन्धेपर यज्ञोपवीतका सूत्र धारण किया था, इन सब चीजोंसे वह अत्यन्त कुटिल वेपको धारण कर रहा था तथा उल्लू वृत्तिसे अपनी जीविका चलाता था ॥१२॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख भौंहोंसे अत्यन्त कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणीसे इस प्रकार बोला, मानो तीक्ष्ण वचनोंसे उसे छील ही रहा हो ॥१३॥

१. इत्युक्ता म. । २. पश्यति म. ।

अथ पापे किमिच्छेयामिह दत्तं प्रवेशनम् । प्रयच्छाम्यद्य ते दुष्टे बन्धं गोरपि दुस्सहम् ॥१४॥
 पश्येमे निस्त्रपा दृष्टाः केऽपि पांशुलपाण्डुकाः । अग्निहोत्रकुटीं पापा कुर्वन्त्युपहतां मम ॥१५॥
 ततः सीताऽब्रवीत् पद्ममार्यपुत्र कुकर्मणः । अस्येदमास्पदं दग्धं परमाक्रोशकारिणः ॥१६॥
 वरं पुष्पफलच्छत्रैः पादपैरुपशोभिते । सरोभिश्चातिविमलैः पद्मादिपिहितैर्वने ॥१७॥
 सारङ्गैरुषितं सार्धं क्रीडद्भिर्निजयेच्छया । श्रूयते नेदृशं तत्र नितान्तं परुषं वचः ॥१८॥
 अस्मिन् राघव नाकाभे देशे धनसमुज्ज्वले । समस्तो निष्ठुरो लोको ग्रामवासी विशेषतः ॥१९॥
 विप्रस्य रुक्षया वाचा शोभितोऽसौ ततोऽखिलः । ग्रामः समागतो दृष्ट्वा तेषां रूपं सुरोपमम् ॥२०॥
 अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्ते पथिकाः क्षणमेककम् । तिष्ठन्तु किमिमे दोषं कुर्वन्ति विनयान्विताः ॥२१॥
 ततो निर्भर्त्स्य सकलं तं लोकं कोपलोहितः । बभाषे तौ द्विजः प्राप सारमेयो गङ्गाविव ॥२२॥
 निष्क्रामत परं रोहान्मदीयादपवित्रकौ । एवमादिवचोघातैर्लक्ष्मीमान् कुपितस्ततः ॥२३॥
 ऊर्ध्वपादमधोर्ध्रवं कृत्वा तं ब्राह्मणाधमम् । अब्रह्मण्यं प्रकूजन्तं शोणितारुणलोचनम् ॥२४॥
 भ्रमयित्वा क्षितौ यावदास्फालयितुमुद्यतः । रामेण वारितस्तावदिति काहण्यधारिणा ॥२५॥
 सौमित्रे किमिदं क्लीबे प्रारब्धं भवतेदृशम् । मारितेन किमेतेन जीवध्रेतेन ते ननु ॥२६॥
 सुञ्चैर्न त्वरितं क्षुद्रं यावत्प्राणैर्न मुच्यते । अयशः परमेतस्मिन्नभ्यते केवलं मृते ॥२७॥
 भ्रमणा ब्राह्मणा गावः पशुस्त्रीबालवृद्धकाः । सदोषा अपि शूराणां नैते बध्याः किलोदिताः ॥२८॥

उसने कहा कि हे पापिनि ! तूने इन्हें यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ? अरी दुष्टे ! मैं आज तुझे पशुसे भी अधिक दुःसह बन्धनमें डालता हूँ ॥१४॥ देख, जिनका शरीर धूलिसे धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, हीन व्यक्ति मेरी यज्ञशालाको दूषित कर रहे हैं ॥१५॥

तदनन्तर सीताने रामसे कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपशब्द कहने-वाले इस ब्राह्मणका यह अधम स्थान छोड़ो ॥१६॥ फूलों और फलोंसे आच्छादित वृक्षों तथा कमल आदिसे युक्त अत्यन्त निर्मल सरोवरोंसे सुशोभित वनमें स्वेच्छासे साथ-साथ क्रीड़ा करने-वाले हरिणोंके साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकारके अत्यन्त कठोर शब्द सुनाई नहीं पड़ते ॥१७-१८॥ हे राघव ! स्वर्गके समान आभावाले इस अतिशय सुन्दर देशमें समस्त लोग निष्ठुर हैं और खासकर ग्रामवासी तो अत्यन्त निष्ठुर हैं ही ॥१९॥ ब्राह्मणके रुक्ष वचनोंसे क्षोभको प्राप्त हुआ समस्त गाँव उनका देवतुल्य रूप देखकर वहाँ आ गया ॥२०॥ गाँवके लोगोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे मकानमें एक ओर क्षण-भरके लिए ठहर जाते हैं तो क्या दोष उत्पन्न कर देंगे ? ये सब बड़े विनयो जान पड़ते हैं ॥२१॥ उसने क्रोधसे लाल होकर सब लोगोंको डाँटते हुए, राम-लक्ष्मणसे कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अतः मेरे घरसे निकलो । ब्राह्मणका राम-लक्ष्मणके प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो हाथियोंके प्रति रोष दिखाता है—उन्हें देखकर भौंकता है । तदनन्तर उसके इस प्रकारके वचन सध्वन्धी आघातसे लक्ष्मणको क्रोध आ गया । वे रुधिरके समान लाल-लाल नेत्रोंके धारक तथा अमांगलिक अपशब्द बकनेवाले उस नीच ब्राह्मणको ऊर्ध्वपाद और अधोर्ध्राव कर घुमाकर ज्यों ही पृथिवीपर पछाड़नेके लिए उद्यत हुए त्यों ही करुणाके धारी रामने उन्हें यह कहते हुए रोका ॥२२-२५॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस बेचारे दीन प्राणीपर यह क्या करने जा रहे हो ? यह तो जीवित रहते हुए भी मृतकके समान है, इसके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥२६॥ जबतक यह निष्प्राण नहीं होता है तबतक इस क्षुद्रको शीघ्र ही छोड़ दो । इसके मरनेपर केवल अपयश ही प्राप्त होगा ॥२७॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होनेपर भी शूरवीरोंके द्वारा बध्य

इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं कृत्वा लक्ष्मणमग्रतः । सीतयाऽनुगतो रामः कुटीरादिरगान्ततः ॥२९॥
 धिग्-धिग् नीचलमासङ्गं दुर्वचःश्रुतिकारणम् । मनोविकारकरणं महापुरुषवर्जितम् ॥३०॥
 वरं तस्तुले शीते^१ दुर्गमे विपिने स्थितम् । परित्यज्याखिलं ग्रन्थं विहृतं^२ भुवने वरम् ॥३१॥
 वरमाहारमुत्सृज्य मरणं सेवितुं^३ सुखम् । अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३२॥
 कूलेषु सरितामद्रेः कुक्षिध्वज्यन्तहारिषु । स्थास्यामो न पुनर्भूयः प्रवेक्ष्यामः खलालयम् ॥३३॥
 निन्दन्नेवं खलामङ्गमभिमानं परं वहन् । निर्गत्य ग्रामतः पद्मो वनस्य पदवीं श्रितः ॥३४॥
 घनकालस्ततः प्राप्तो नीलयज्ञखिलं नमः । पदुर्गजितसंतानप्रतिनादितगद्गरः ॥३५॥
 ग्रहनक्षत्रपटलमुपगुह्य समन्ततः । सरावविद्युदुद्योतं जहासेच नमःस्फुटम् ॥३६॥
 ग्रीष्महासरकं घोरं समुत्तार्य घनाघनः । जगज्जं विद्युदङ्गुल्या प्रेषितानिव तर्जयन् ॥३७॥
 नभोऽन्धकारितं कुर्वन् धारामिनीलतोयदः । अभिषेक्तुं समारंभे सीतां गज इव श्रियम् ॥३८॥
 तिष्ठन्तस्ते ततोऽभ्यर्णं पृथुन्यग्रोधपादपम् । उपसस्रुः पुरो गेहसमानस्कन्धमुज्जतम् ॥३९॥
 इभकर्णो गणस्तेषामभिभूतोऽथ^४ तेजसा । गत्वा स्वामिनमित्यूचे नत्वा विन्ध्यर्वनाश्रितम् ॥४०॥
 आगत्य नाकतः केऽपि मदीये नाथ सन्ननि । स्थिता यैस्तेजसैवाहं तस्मादुद्वासितो द्रुतम् ॥४१॥
 श्रुत्वा तद्वचनं स्मित्वा विनायकपतिः सयम् । वभूभिः प्रस्थितो गन्तुं न्यग्रोधं वरलीलया ॥४२॥

नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥२८॥ इतना कहकर रामने उसे लुड़ाया और लक्ष्मणको आगे कर वे सीता सहित उस ब्राह्मणकी कुटियासे बाहर निकल आये ॥२९॥ 'जो दुर्वचन सुननेका कारण है, मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला है और महापुरुष जिसे दूरसे ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्योंकी संगतिको धिक्कार है ॥३०॥ शीत ऋतुके समय दुर्गम वनमें वृक्षके नीचे बैठा रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर संसारमें भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुखपूर्वक मर जाना अच्छा है परन्तु तिरस्कारके साथ दूसरेके घरमें एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥३१-३२॥ 'हम नदियोंके तटों और पर्वतोंकी अतिशय मनोहर गुफाओंमें रहेंगे परन्तु अब फिर दुर्जनोके घरमें प्रवेश नहीं करेंगे' इस प्रकार दुर्जन संसर्गकी निन्दा करते तथा परम अभिमानको धारण करते हुए रामने गाँवसे निकलकर वनका मार्ग लिया ॥३३-३४॥

तदनन्तर समस्त आकाशको नीला करता और तीव्र गर्जनाके समूहसे गुफाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥३५॥ उस समय ग्रह और नक्षत्रोंके पटलको सब ओरसे छिपाकर कड़कती हुई बिजलीके प्रकाशके बहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥३६॥ ग्रीष्म कालके भयंकर विस्तारको दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और बिजलीरूपी अंगुलीके द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवासी मनुष्योंकी डाँट ही दिखा रहा हो ॥३७॥ धाराओंके द्वारा आकाशको अन्धकारयुक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीताका अभिषेक करनेके लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मीका अभिषेक करनेके लिए तैयार होता है ॥३८॥ तदनन्तर वे भोगते हुए एक निकटवर्ती ऐसे विशाल वटवृक्षके नीचे पहुँचे कि जिसका स्कन्ध घरके समान सुरक्षित था तथा जो अत्यन्त ऊँचा था ॥३९॥

अथानन्तर उनके तेजसे अभिभूत हुआ इभकर्ण नामका यक्ष, विन्ध्याचलके वनमें रहनेवाले अपने स्वामीके पास जाकर तथा नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ ! स्वर्गसे आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घरमें ठहरे हैं जिन्होंने अपने तःजसे अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घरके बाहर कर दिया है ॥४०-४१॥ इभकर्णके वचन सुनकर मन्द हास्य करता हुआ यक्षराज, अपनी

१. सीते म., ब. । २. भावे क्तः, विहरणमित्यर्थः । ३. सेविते म. । ४. निन्दन्नेव म. । ५. प्रेषितामिव म. ।

६. इभकर्णनामधेयो यक्षः । ७. सूतोऽपि ब., म. । ८. विन्ध्यमुपाश्रितम् ।

अधीश्वरः स यक्षाणां महाविभवसंगतः । रम्यकाननसंसक्तः क्रीडन्पूतनसंज्ञकः ॥४३॥
 दूरादेव च तौ दृष्ट्वा महारूपौ गणाधिपः । प्रयुञ्ज्याध्विमज्जासीद् बलनारायणाविति ॥४४॥
 ततस्तदनुभावेन वात्सल्येन च भूयसा । क्षणेन नगरी तेषां तेन रम्या विनिर्मिता ॥४५॥
 ततस्ते सुखसंपन्नं सुप्ताः किल सुचारुणा । प्रभाते गीतशब्देन प्रबोधं समुपागताः ॥४६॥
 तल्पेऽवस्थितमात्मानमपश्यन् रत्नराजिते । प्रासादं च महारम्यं बहुभूमिकमुज्ज्वलम् ॥४७॥
 देहोपकारणव्यग्रं परिवर्गं च सादरम् । नगरं च महाशब्दशालगोपुरशोभितम् ॥४८॥
 तेषां महानुभावानां दृष्टेऽस्मिन् सहसा पुरे । न मनो विस्मयं प्राप तद्धि क्षुद्रविचेष्टितम् ॥४९॥
 अशेषवस्तुसंग्रहास्तत्र ते चारुचेष्टिताः । अवस्थानं सुखं चक्रुर्मरा इव भोगिनः ॥५०॥
 यथाधिपेन रामस्य पुरी यस्मात् प्रकल्पिता । ततो महीतले ख्यातिं गता रामपुरीति सा ॥५१॥
 प्रतीहारा भटाः शूरा अमात्याः सप्तयो गजाः । पौराश्च विविधास्तस्यामयोध्यायामिवामवन् ॥५२॥
 कुशाग्रनगरेशोऽयं गणिनं पृष्ठवानिति । तयोर्नाथ तथाभूतो स द्विजः किमु चेष्टितः ॥५३॥
 उवाच च गणस्वामी शृणु श्रेणिक स द्विजः । प्रयातः प्रातस्तथाय दान्तहस्तो वनस्थलीम् ॥५४॥
 भ्रमंश्च समिदायर्थमकस्मादूर्ध्वलोचनः । नातिदूरे पुरीं पृथ्वीमपश्यद् विस्मिताननः ॥५५॥
 असिताभिः सिताभिश्च पताकाभिर्विराजिताम् । शरन्मेघसमानैश्च भवनैरतिमासुरैः ॥५६॥
 पुण्डरीकातपत्रेण मध्ये समुपलक्षितम् । महाप्रासादमेकं च कैलासस्येव श्रावकम् ॥५७॥

स्त्रियोंके साथ लीलापूर्वक उस वटवृक्षके पास जानेके लिए चला ॥४२॥ यक्षोंका वह अधिपति महावेभवसे युक्त था, रम्य वनोंमें क्रीड़ा करता आ रहा था और 'पूतन' नामसे सहित था ॥४३॥ यक्षराजने अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक राम-लक्ष्मणको दूरसे ही देख अवधिज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥४४॥ तदनन्तर उनके प्रभाव एवं बहुत भारी वात्सल्यसे उसने उनके लिए क्षण-भरमें एक सुन्दर नगरीकी रचना कर दी ॥४५॥ तत्पश्चात् वे वहाँ सुखसे सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीतके शब्दसे प्रबोधको प्राप्त हुए ॥४६॥ उन्होंने अपने आपको रत्नोंसे सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक खण्डका अत्यन्त मणीय उज्ज्वल महल देखा, आदरके साथ शरीरकी सेवा करनेमें व्यग्र सेवकोंका समूह देखा और महाशब्द, प्राकार तथा गोपुरोंसे शोभित नगर देखा ॥४७-४८॥ सहसा इस नगरको दीखनेपर उन महानुभावोंका मन आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार क्षुद्र चेष्टा थी ॥४९॥ सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले राम, सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओंसे युक्त हो देवोंके समान भोग भोगते हुए उस नगरीमें सुखसे रहने लगे ॥५०॥ चूँकि वह नगरी यक्षराजने रामके लिए बनायी थी इसलिए महीतलपर रामपुरी इसी नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ॥५१॥ द्वारपाल, भट, शूरवीर, मन्त्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकारके नगरवासी जिस प्रकार अयोध्यामें थे उसी प्रकार इस रामपुरीमें भी थे ॥५२॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! राम-लक्ष्मणके साथ उस प्रकार व्यवहार करनेवाले उस कपिल ब्राह्मणका क्या हाल हुआ ? सो कहिए ॥५३॥ तब गौतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथमें लेकर वनकी ओर चला ॥५४॥ वह इन्धन आदिकी प्राप्तिके लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर उठानेपर उसने एक विशाल नगरी देखी । देखकर उसका मुख आश्चर्यसे चकित हो गया ॥५५॥ वह नगरी सफेद तथा अन्य रंगोंकी अनेक पताकाओं और शरद् ऋतुके मेघोंके समान अतिशय देदीप्यमान भवनोंसे सुशोभित थी ॥५६॥ नगरीके मध्यमें सफेद कमलरूपी छत्रसे सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलासका

१. अश्वाः । २. राजगृहनगराधिपः श्रेणिकराजः । ३. समिदाभ्यर्ण-म. ।

अचिन्तयन्न चौरैषा अटव्यासीन्मृगाश्रिता । यस्यां समितकुशाद्यर्थं दुःखं पर्यटितं सदा ॥५८॥
 अकस्मात् सेयमुत्तुङ्गशृङ्गमालोपशोभितैः । रत्नपर्वतसंकाशैर्विराजति पुरी गृहैः ॥५९॥
 सरांस्यमूनि रम्याणि पद्मादिपिहितानि च । दृश्यन्ते यानि नो पूर्वं मथा दृष्टानि जातुचित् ॥६०॥
 उद्यानानि सुरम्याणि सेवितानि जवैर्भृशम् । दृश्यन्ते देवधामानि लक्षितानि महाध्वजैः ॥६१॥
 वारणैः सशिभिर्गोभिर्महिषीभिश्च सङ्गता । अस्योपकण्ठधरणी घण्टादिस्वनपूरिता ॥६२॥
 किमेषा नगरी नाकादवतीर्णा भवेदिह । पातालादुद्गताहोस्वित् कस्यापि शुभकर्मणः ॥६३॥
 स्वप्नमेवं नु पश्यामि मायेयं वत कस्यचित् । किमु गन्धर्वनगरं पित्तव्याकुलितोऽस्मि किम् ॥६४॥
 उपालिङ्गमिदं किं स्यात् प्रायेणास्यान्तिकस्य मे । इति संचिन्तयन् प्राप्नो विवादं परमं द्विजः ॥६५॥
 दृष्ट्वा च प्रमदामेकां नानालंकारधारिणीम् । अपृच्छदुपसृत्येयं भद्रे कस्य पुरीत्यसौ ॥६६॥
 सा जगौ जातु पश्य पुरीयं किं न ते श्रुता । यस्य लक्ष्मीधरो आता सीता च प्राणवद्भ्राता ॥६७॥
 एतत् पश्यसि यद् विप्र पुर्या मध्ये महागृहम् । शरदभ्रसमच्छायमत्रासौ पुरुषोत्तमः ॥६८॥
 लोको दुर्लभदर्शनं सर्वोनेनातिदुर्विधः^२ । यच्छता वाञ्छितं द्रव्यं जनितः पार्थिवोपमः ॥६९॥
 विप्रोऽबोचदुपायेन केन पश्यामि सुन्दरि । पद्मं सद्भावतः पृष्ट्वा निवेदयितुमर्हसि ॥७०॥
 इत्युक्त्वा समिधाभारं निक्षिप्य सुवि साञ्जलिः । पपात पादयोस्तस्याः सा कस्य न मनोहरा ॥७१॥

बच्चा हो हो ॥५७॥ यह सब देख, वह ब्राह्मण विचार करने लगा कि क्या यह स्वर्ग है? अथवा मृगोंसे सेवित वही अटवी है? जिसमें मैं इन्धन तथा कुशा आदिके लिए निरन्तर दुःखपूर्वक भटकता रहता था ॥५८॥ यह नगरी ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी मालासे शोभायमान, तथा रत्नमयी पर्वतोंके समान दोखनेवाले भवनोंसे अकस्मात् ही सुशोभित हो रही है ॥५९॥ यहाँ कमल आदिसे आच्छादित जो ये मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं वे मैंने पहले कभी नहीं देखे ॥६०॥ यहाँ मनुष्योंके द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे युक्त मन्दिर दिखाई पड़ते हैं ॥६१॥ इस नगरकी निकटवर्ती भूमि, हाथियों, घोड़ों, गायों और भैंसोंसे संकीर्ण तथा घण्टा आदिके शब्दोंसे पूर्ण है ॥६२॥

क्या यह नगरी यहाँ स्वर्गसे अवतीर्ण हुई है? अथवा किसी पुण्यात्माके प्रभावसे पातालसे निकली है ॥६३॥ क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ? अथवा यह किसीकी माया है? या गन्धर्वका नगर है? अथवा मैं स्वयं पित्तसे व्याकुलित हो गया हूँ? ॥६४॥ अथवा क्या मेरा निकट कालमें मरण होनेवाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है? इस प्रकार विचार करता हुआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विवादको प्राप्त हुआ ॥६५॥ उसी समय उसे नाना अलंकार धारण करनेवाली एक स्त्री दिखी सो उसके पास जाकर उसने पूछा कि हे भद्रे! यह किसकी नगरी है? ॥६६॥ उसने कहा कि यह रामकी नगरी है, क्या तुमने कभी सुना नहीं? उन रामकी कि लक्ष्मण जिनके भाई हैं और सीता जिनकी प्राणप्रिया है ॥६७॥ हे ब्राह्मण! नगरीके बीचमें जो यह शरद् ऋतुके मेघके समान कान्तिवाला बड़ा भवन देख रहे हो इसीमें वे पुरुषोत्तम रहते हैं ॥६८॥ जिनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे इन पुरुषोत्तमने मन वाञ्छित द्रव्य देकर सभी दरिद्र मनुष्योंको राजाके समान बना दिया है ॥६९॥ ब्राह्मणने कहा कि हे सुन्दरि! मैं किस उपायसे रामके दर्शन कर सकता हूँ? मैं तुमसे सद्भावसे पूछ रहा हूँ अतः बतलानेके योग्य हो ॥७०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मणने इन्धनका भार पृथिवी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़कर उस स्त्रीके चरणोंमें गिर पड़ा, सो ठीक ही है क्योंकि वह स्त्री किसका मन नहीं हरती थी? ॥७१॥

१. उपलिङ्ग क. । उपालिङ्गं मरणचिह्नम् इति टिप्पणपुस्तके टिप्पणी । २. अतिदरिद्रः ।

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यक्षिणी । जगाद् विप्रं परमं त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
 अस्याः पुरः समासङ्गां कथं त्वं भुवमागतः । आरक्षकैरलं घोरैर्नूनं नश्यति वीक्षितः ॥७३॥
 अस्या द्वारत्रयं पुर्याः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अशून्यं सर्वदा वीरै रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥
 सिंहवारणशादूँलतुल्यवक्त्रैर्महोऽज्वलैः । एभिर्विभीषिता मृत्स्थं मानुषा यान्त्यसंशयम् ॥७५॥
 पूर्वद्वारमदो यत्तु तस्य पश्यसि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् बलाकाच्छादनच्छवीन् ॥७६॥
 गणितोरणरस्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्द्यानाममीषु प्रतियातनाः ॥७७॥
 सामायिकं पुरस्कृत्य तासां यः स्तवनं नरः । नमोऽर्हस्मिद्धनिस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥
 गुरूपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशतीन्द्रककुब्द्वारं हन्यते त्वनमस्कृतिः ॥७९॥
 अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । तं रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥
 ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परमं हर्षं लब्ध्वोपायं धनागमे ॥८१॥
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चाचित्सर्वाङ्गः परमाद्भुतभावितः ॥८२॥
 मुनेश्चारित्रशूरस्य गत्वासन्नं कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदणुव्रतधरक्रियाम् ॥८३॥
 ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सन्ननिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगांश्च शुश्राव चतुरः सुधीः ॥८४॥
 धनलोमामिभूतस्य धर्मं शुश्रूषतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽबोचत् सुमानसः । नाथ तेऽद्योपदेशेन चक्षुरुन्मीलितं मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंको भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं । इन रक्षकोंके द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाके पंखके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पंक्तिसे सुशोभित जिन-मन्दिर हैं । उनमें इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान्की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अहंत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्व-द्वारमें प्रवेश करता है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७९॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर सन्तुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमांचोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया । वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा बार-बार उसकी स्तुति कर चारित्र्य पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बाँध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अंगीकृत किया तथा अनुयोगोंका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप जानकर जिसका हृदय

तृषार्त्तेनेव सत्तोयं छायेवाश्रयकाङ्क्षिणा । क्षुधार्त्तेनेव मिष्टान्नं रोगिणेव सुभेषजम् ॥८७॥
 दुष्पथप्रतिपन्नेन वस्त्रैर्वेष्टितदेशगम् । यानपात्रमिवाम्भोधौ व्याकुलेन निमज्जता ॥८८॥
 मयेदं शासनं जैनं सर्वदुःखविनाशनम् । लब्धं सवत्प्रसादेन दुर्लभं पुरुषार्थमैः ॥८९॥
 त्रैलोक्येऽपि न मे कश्चिद्भवता विद्यते समः । येनायमोदृशो मार्गो दर्शितो जिनदेशितः ॥९०॥
 हत्युक्त्वा शिरसा पादौ वन्दित्वाञ्जलियोगिनो^१ । गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य द्विजः स भवनं गतः ॥९१॥
 जगाद् वातिहृष्टस्तोऽप्रसन्नविकचेक्षणः । दयिते परमाश्चर्यं गुरोरद्य मया श्रुतम् । ॥९२॥
 श्रुतं तव न तत्पित्रा जनकेनाथ वा पितुः । किं वाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गोत्रेणापि न ते श्रुतम् ॥९३॥
 दृष्टं ब्राह्मणि यातेन यदरण्यं मयाहृतम् । तद्गुरोरुपदेशेन नेदानीं विस्मयाय मे ॥९४॥
 किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि दृष्टं किंवा त्वया श्रुतम् । उक्तोऽवोचन्न शक्नोमि हर्षात्कथयितुं प्रिये ॥९५॥
 आदरेणानुयुक्तश्च कौतुकिन्या पुनः पुनः । विप्रोऽवोचत शृण्वार्यं यन्मया श्रुतमहृतम् ॥९६॥
 समिदर्थं प्रयातेन वर्नं तस्य समीपतः । दृष्टा पुरी मया रम्या यत्रासीद् गहनं वनम् ॥९७॥
 तदासन्ने मया चैका दृष्टा नारी विभूषिता । नूनं सा देवता^२ कापि मनोहरणमाचिता ॥९८॥
 पृष्टा च सा मयाख्यातं तथा रामपुरीति च । ददाति श्रावकेभ्योऽत्र किल रामो महद्वनम् ॥९९॥

अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८६॥ जिस प्रकार प्याससे पीड़ित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको छाया मिल जाय, भूखसे पीड़ित मनुष्यको मिष्टान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमें भटके हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और बड़ी व्याकुलतासे समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, उसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुःखोंको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७-८९॥ चूँकि आपने यह ऐसा जिन प्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥९०॥ इस प्रकार कहकर तथा अंजलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९१॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरुसे परम आश्चर्य सुना है ॥९२॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९३॥ हे ब्राह्मणि ! वनमें जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुरुके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाला नहीं रही ॥९४॥ ब्राह्मणीने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो । ब्राह्मणीके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षके कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥९५॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणीने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्य ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९६॥

मैं लकड़ियाँ लानेके लिए जंगल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सघन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९७॥ मैंने उस नगरीके पास एक आभूषणोंसे विभूषित स्त्री देखी । जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९८॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावकोंके लिए बहुत भारी

१. लब्धोपायं म. । २. योगिनः म. । ३. क्वापि म. ।

ततो गत्वा मया साधोर्जिनेन्द्रवचनं श्रुतम् । आत्मा मे तर्पितस्तेन कुट्टिपतिपातितः ॥१००॥
 मुनयो यं समाश्रित्य तप्यन्ते सुधियस्तपः । त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं मुक्त्यालिङ्गनलालसाः ॥१०१॥
 सोऽहंक्षमो मया लब्धल्लौक्यैकमहानिधिः । अमी यतो बहिर्भूताः क्लिश्यन्ते त्वन्यथादिनः ॥१०२॥
 यथाभूतो मुनेर्धर्मः श्रुतो धर्मेण तादृशः । ब्राह्मण्यै कथितः सर्वो मलवर्जितचेतसा ॥१०३॥
 ब्राह्मणी विनिश्चयैतं सुशर्मा वाक्यमब्रवीत् । मयापि त्वत्प्रसादेन लब्धो धर्मो जिनोदितः ॥१०४॥
 विधेः पश्य मया योगं मोहाद् विषफलार्थिना । वीच्छेनापि त्वया लब्धमहं ब्रामरसायनम् ॥१०५॥
 मयासोन्यन्दधीभाजा मणिर्हस्तगतो यथा । निजाङ्गणगतः साधुरपमानमुपाहतः ॥१०६॥
 उपवासपरिश्रान्तश्रमणं तं निरम्बरम् । निराकृत्यान्नवेलायां मार्गोऽन्यस्यैव वीक्षितः ॥१०७॥
 अर्हन्तं समतिक्रम्य^३ पाकशासनवन्दितम् । ज्योतिष्कव्यन्तरादीनां शिरसा प्रणतिः कृता ॥१०८॥
 अहिंसानिर्मलं सारमहंक्षमरसायनम् । अज्ञानात् समतिक्रम्य विषमं भक्षितं विषम् ॥१०९॥
 आनुपद्वीपमासाद्य त्यक्त्वा साधुपरीक्षितम् । धर्मरत्नं कुतः कष्टं विभोक्तपः परिग्रहः ॥११०॥
 सर्वमक्षप्रवर्तेषु दिवारात्रौ च भोजिषु । अवतेषु विशीलेषु दत्तं फलविवर्जितम् ॥१११॥
 यं क्लिप्तिधिवेलायामागतं विभयोचितम् । यो नार्चयति दुर्बुद्धिस्तस्य धर्मो न विद्यते ॥११२॥
 परित्यक्तोत्सवतिथिः सर्वैस्त्वैकान्तनिस्पृहः । निकेतरहितः सोऽयमतिथिः श्रमणः स्मृतः ॥११३॥
 येषां न भोजनं हस्ते नाप्यासन्नपरिग्रहः । ते तारयन्ति निर्ग्रन्थाः पाणिपात्रपुटाशिनः ॥११४॥

धन देते हैं ॥१९॥ तदनन्तर मैंने मुनिराजके पास जाकर जिनेन्द्र भगवान्के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शनसे संतप्त थी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गयी ॥१००॥ मुक्तिके आलिङ्गनकी लालसा रखनेवाले बुद्धिमान् मुनि जिस धर्मका आश्रय ले समस्त परिग्रहका त्यागकर तप करते हैं वह अरहन्तका धर्म मैंने प्राप्त कर लिया । वह धर्म तीनों लोकोंकी महानिधि है, इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी हैं वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०१-१०२॥ तदनन्तर उस धर्मात्माने मुनिराजसे जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदयसे उसने ब्राह्मणीके लिए कह दिया ॥१०३॥ उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मणसे बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥१०४॥ 'मेरा यह भाग्यका योग तो देखो कि जो मोहवश विषफलकी इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रंचमात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुमने अर्हन्तका नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥१०५॥ जिस प्रकार किसी मूर्खके हाथमें मणि आ जाय और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मुझ मूर्खके गृहांगणमें साधु आये और मैंने उनका अपमानकर उन्हें दूर कर दिया ॥१०६॥ उस दिन आहारके समय उपवाससे खिन्न दिगम्बर मुनि घर आये सो उन्हें हटाकर मैंने दूसरे साधुका मार्ग देखा ॥१०७॥ जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे अर्हन्तको छोड़कर मैंने ज्योतिषी तथा व्यन्तरादिक देवोंकी शिर झुका-झुकाकर नमस्कार किया ॥१०८॥ अर्हन्त भगवान्का धर्मरूपी रसायन अहिंसासे निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विषम विषका भक्षण किया है ॥१०९॥ बड़े खेदकी बात है कि मैंने मनुष्य द्वीपको पाकर साधुओं द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बहेड़ा अंगीकार किया ॥११०॥ जो इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्त हैं, रात दिन इच्छानुसार खाते हैं, व्रत रहित हैं तथा शीलसे दून्य हैं, ऐसे साधुओंके लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥१११॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहारके समय आये हुए अतिथिका अपनी सामर्थ्यके अनुसार सम्मान नहीं करता है—उसे आहार आदि नहीं देता है उसके धर्म नहीं है ॥११२॥ जिसने उत्सवकी तिथिका परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकारके परिग्रहसे बिल्कुल निःस्पृह है तथा घरसे रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥११३॥ जिनके

१. यत् समाश्रित्य म. । २. विगता इच्छा यस्य स तेन । ३. इन्द्रवन्दितं ।

स्वशरीरेऽपि निस्संगा ये लुभ्यन्ति न जातुचित् । ते निष्परिग्रहा ज्ञेया मुक्तिलक्षणभूषिताः ॥११५॥
 एवमुदगतसद्दुष्टिः कुट्टुष्टिमलवर्जिता । सुशर्मा शुशुभे पर्यायं भरणीव बुधे परम् ॥११६॥
 पादमूले ततो नीत्वा गुरोस्तस्यैव सादरम् । अणुव्रतानि सामोदा ब्राह्मणी तेन लम्बिता ॥११७॥
 विज्ञाय कपिलं रक्तं परमं जिनशासने । कुलान्याशीविषोप्राणि विप्राणां भेजिरे शमम् ॥११८॥
 मुनिसुव्रतनाथस्य संप्राप्य सुदृढं मतम् । बभूवुः श्रावकास्तीव्रा ऊचुश्चैव सुबुद्धयः ॥११९॥
 कर्मभारगुरुभूता मानोत्तानितमस्तकाः । स्तोकेन नरकं धीरं न याता स्मः प्रमादिनः ॥१२०॥
 अज्ञातमिदमप्राप्तं जन्मान्तरशतेष्वपि । जिनेन्द्रशासनं ब्रह्म कृच्छ्रात् प्राप्तं सुनिर्मलम् ॥१२१॥
 ध्यानाशुशुक्षिणाविद्धे मनःश्रित्वैकस्माहिताः । स्वकर्मसमिधो भावसर्पिषा जुहुमोऽधुना ॥१२२॥
 इति केचित् समाधाय मनः संवेगनिर्भराः । विरक्ताः सर्वसंगेभ्यो बभूवुः श्रमणोत्तमाः ॥१२३॥
 सागारधर्मरक्तस्तु कपिलः परमक्रियः । कदाचिद् ब्राह्मणोमूचे सदभिप्रायवर्तिनीम् ॥१२४॥
 कान्ते रामपुरीं किं नो वज्रामोऽथ तमूर्जितम् । विशुद्धचेष्टितं द्रष्टुं रामं राजीवलोचनम् ॥१२५॥
 आशापरायणं नित्यमुपायगतमानसम् । दारिद्र्यचारिण्यौ मग्नमाश्रुनं कुक्षिपूरणे ॥१२६॥
 जनमुत्तारयत्येष किल मन्थानुकम्पकः । इति कीर्तिभ्रमस्यस्य निर्मलाह्लादकारिणी ॥१२७॥
 उत्तिष्ठैवं गृहाणैवं प्रिये पुष्पकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारमिमं शिशुम् ॥१२८॥

हाथमें न भोजन है न जो अपक्व फलस परग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्ग्रन्थ साधु हो संसार-समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निःस्पृह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोंमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिगम्बर मुद्रासे विभूषित रहते हैं उन्हें निर्ग्रन्थ जानना चाहिए ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मलसे रहित थी ऐसी सुशर्मा नामकी ब्राह्मणी पतिके साथ बुध ग्रहके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुशोभित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हृषसे ब्राह्मणीको उन्हीं गुरुके पादमूलमें ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अणुव्रत ग्रहण करायें ॥११७॥ जो पहले आशीविष सांपके समान अत्यन्त उग्र थे ऐसे ब्राह्मणोंके कुल, कपिलको जिनशासनमें अनुरक्त जानकर शान्तिभावको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो सुबुद्धि थे वे मुनिसुव्रत भगवान्का अत्यन्त सुदृढ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वजनदार थे, अहंकारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनधर्मके प्रसादसे भयंकर नरकमें नहीं जावेंगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपी होताके साथ मिलकर भावरूपी धीके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओंको ध्यानरूपी देदीप्यमान अग्निमें होमोंगे ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर संवेगसे भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था । एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणीसे बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चलें ? ॥१२५॥ वे भव्य जीवोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें तत्पर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपाजनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो दरिद्रतारूपी समुद्रमें मग्न है, और पेट भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी

१. याताः स्म म., ज. । २. कमललोचनम् । ३. जन्मदरिद्रम् । इति ज. पुस्तके टिप्पणम् ।

एवमुक्त्वा तथा कृत्वा दम्पती संपदान्वितौ । स्वशक्त्या गन्तुमुद्युक्तौ शुद्धवेषविभूषितौ ॥१२९॥
 व्रजतोश्च तयोर्ह्वा उत्तस्थुः पद्मगाः पथि । दंष्ट्राकरालवक्त्राश्च वेतालास्तारहासिनः ॥१३०॥
 एवमादीनि वस्तूनि भीषणान्यवलोक्य तौ । निष्कम्पहृदयौ भूत्वा स्तुतिमेतामुपागतौ ॥१३१॥
 नमस्त्रिलोकवन्द्येभ्यो जिनेभ्यः सततं त्रिधा । उत्तीर्णभवपङ्केभ्यो दातृभ्यः परमं शिवम् ॥१३२॥
 एतयोः स्तुवतोरेवं विदित्वा जिनमकिताम् । भेजिरे प्रशमं यक्षास्तौ च प्राप्तौ जिनालयम् ॥१३३॥
 ततो नमो निषद्याया इत्युक्त्वा रचिताञ्जली । कृत्वा प्रदक्षिणं स्तोत्रमुदचीचरतामिदम् ॥१३४॥
 विहाय लौकिकं मार्गं महादुर्गतिदुःखदम् । भवन्तं शरणं नाथ चिरेण समुपागतः ॥१३५॥
 चतुर्विंशतिं युक्तामक्षराणां महात्मनाम् । उत्सर्पिष्यवसर्पिष्योर्वन्दे भूतमविष्यताम् ॥१३६॥
 पञ्चस्वैरावतार्येषु भरताल्येषु पञ्चसु । जिनात्ममामि वास्येषु ताक्षमामि जिनास्त्रिधा ॥१३७॥
 यैः संसारसमुद्रस्य कृते तरणतारणे । त्रिकालं सर्ववास्येषु ताक्षमामि जिनास्त्रिधा ॥१३८॥
 मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै भगवते नमः । त्रैलोक्ये शासनं यस्य सुविशुद्धं प्रकाशते ॥१३९॥
 इति कृत्वा स्तुतिं जानुमस्तकस्पृष्टभूतली । नेमतुस्तौ जिनं भक्त्वा परिहृष्टतनूतौ ॥१४०॥
 ततोऽसौ कृतकर्तव्यो रक्षैः सौम्यैः प्रियंवदैः । अनुज्ञातः समं पत्न्या द्रष्टुं हलिर्निमुष्यौ ॥१४१॥
 राजमार्गेऽद्रिसंकाशान् प्रासादान् विमलस्त्रिषः । ब्राह्मण्यै दर्शयन् याति दिव्यनारीसमाकुलान् ॥१४२॥

उनकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है । ॥१२६-१२७॥ हे प्रिये ! उठो, यह फूलोंका पिंटारा तुम ले लो और मैं इस सुकुमार बन्धेको कन्धेपर रख लेता हूँ ॥१२८॥ इस प्रकार कहकर तथा वैसा ही कर हर्षसे भरे दोनों दम्पती जानेके लिए तत्पर हुए । अपनी शक्तिके अनुसार वे निर्मल वेषसे विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प फणा तानकर खड़े हो गये तथा जिनके मुख डाँढ़ोंसे विकराल थे और जो जोर-जोरसे हँस रहे थे ऐसे वेताल मार्गमें आड़े आ गये ॥१३०॥ परन्तु इन सब भयंकर वस्तुओंको देखकर भी उनके हृदय निष्कम्प रहे । वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढ़ते जाते थे कि ॥१३१॥ 'जो त्रिलोक द्वारा वन्दनीय हैं, जो भयंकर संसाररूपी कर्दमसे पार हो चुके हैं तथा जो उत्कृष्ट मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान्-को मन, वचन, कायसे सदा नमस्कार हो' ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनोंकी जिन-भक्तिको जानकर यक्ष शान्त हो गये और वे रामपुरीके जिनालयमें पहुँच गये ॥१३३॥ तदनन्तर 'भगवान्की वसतिकाके लिए नमस्कार हो' यह कहकर दोनोंने हाथ जोड़े और प्रदक्षिणा देकर दोनों ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥१३४॥ हे नाथ ! महादुर्गतिके दुःख देनेवाले लौकिक मार्गको छोड़कर हम चिरकालके बाढ़ आपकी शरणमें आये हैं ॥१३५॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् सम्बन्धी तीर्थंकरोंकी चौबीसीको हम नमस्कार करते हैं । पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रोंमें जो तीर्थंकर हैं, हो चुके हैं अथवा होंगे उन सबको हम मन, वचन, कायसे नमस्कार करते हैं ॥१३६-१३७॥ जो संसार समुद्रसे स्वयं पार हुए हैं तथा जिन्होंने दूसरोंको पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रों सम्बन्धी तीर्थंकरोंकी हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥१३८॥ उन मुनिसुव्रत भगवान्को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनों लोकोंमें प्रकाशमान हो रहा है ॥१३९॥ इस प्रकार स्तुतिकर घुटनों और मस्तकसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया । उस समय भक्तिके कारण उन दोनोंके शरीरमें रोमांच उठ रहे थे ॥१४०॥

तदनन्तर वन्दनाका कार्य पूर्ण कर चुकनेके बाद शान्त तथा भधुरभाषी रक्षकोंने जिसे आज्ञा दे दी थी ऐसा कपिल ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रामके दर्शन करनेके लिए चला ॥१४१॥ वह, राजमार्गमें पर्वतोंके समान ऊँचे, निर्मल कान्तिके धारक, तथा दिव्य स्त्रियोंसे भरे जो

ऊचे च कुन्दसंकाशैः सर्वकामगुणान्वितैः । राजते भवनैर्यस्य पुरीथं स्वर्गसन्निभा ॥१४३॥
 तस्यैतद्भवनं भद्रे प्रान्तप्रासादवेष्टितम् । अभिरामस्य रामस्य पुर्या मध्ये विराजते ॥१४४॥
 ध्रुवमिति महादृष्टः स विवेश च तद्गृहम् । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं दूराद्भृशमाकुलतां गतः ॥१४५॥
 दध्यौ संजातकम्पश्च सोऽयमिन्दीवरप्रभः । व्यथितो दुर्विदग्धोऽहं चित्रैर्येन तदाववैः ॥१४६॥
 कर्णधोरतिदुःखानि भाषितानि महाखले । तानि कृत्वा तदा पापे जिह्वे निस्सर साम्प्रतम् ॥१४७॥
 किं करोमि क गच्छामि विवरं प्रविशामि किम् । अस्मिन् शरणहीनस्य भवेच्छरणमद्य कः ॥१४८॥
 अवस्थितोऽयमत्रेति यदि मे विदितो भवेत् । समुल्लङ्घ्योत्तरामाशां देशस्थागः कृतो भवेत् ॥१४९॥
 एवमुद्देगमावन्नो विहाय ब्राह्मणीं द्विजः । प्रपलायितुमुद्युक्तो लक्ष्मणेन विलोकितः ॥१५०॥
 स्मित्वा च स जगादायं कुतो विप्रः समागतः । वनसंवर्धितास्त्रेव किमिष्याकुलतामितः ॥१५१॥
 समाश्रासमिमं नीत्वा हुतमानय तं द्विजम् । पश्यामस्तावदेतस्य चेष्टितं किमयं वदेत् ॥१५२॥
 न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं निवर्तस्वेति चोदितः । अधिगम्य समाश्वासं निवृत्तः स्खलितक्रमः ॥१५३॥
 उपसृत्य मयं त्यक्त्वा प्रसृतो धवलाम्बरः । पुष्पाञ्जलिस्तयोरग्रे स्थित्वा स्वस्तोत्यशब्दयत् ॥१५४॥
 ततो लब्धासनासीनो निकटस्थाङ्गनो द्विजः । ऋग्भिः स्तवनदक्षाभिरस्तौषीद् रामलक्ष्मणौ ॥१५५॥
 ततः पद्मो जगादैव तां नः कृत्वा विमानताम् । वद साम्प्रतमागत्य कस्मात् पूजयसि द्विजः ॥१५६॥
 सोऽब्रवीन्न मया ज्ञातं त्वं प्रच्छन्नमहेश्वरः । मोहाद्विमानितस्तेन भस्मच्छन्न इवानिलः ॥१५७॥

महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्रीके लिए दिखाता जाता था ॥१४२॥ उसने स्त्रीसे कहा कि हे भद्रे ! कुन्दके समान उज्ज्वल तथा सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित, भवनोंसे जिनकी यह स्वर्ग तुल्य नगरी सुशोभित हो रही है उन मनोहर रामका यह भवन समीपवर्ती, अन्य महलोंसे घिरा कैसा सुन्दर जान पड़ता है ? ॥१४३-१४४॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मणने रामके भवनमें प्रवेश किया । वहाँ वह दूरसे ही लक्ष्मणको देखकर अत्यन्त आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ उसके शरीरमें कंपकंपी छूटने लगी । वह विचार करने लगा कि नील कमलसे समान प्रभावाला यह वही पुरुष है जिसने उस समय मुझ मूर्खको नाना प्रकारके वधसे दुखी किया था ॥१४६॥ उसकी बोलती बन्द हो गयी । वह मन ही मन अपनी जिह्वासे कहने लगा हे महादुष्टे ! हे पापे ! उस समय तो तूने कानोंके लिए अत्यन्त दुःखदायी वचन कहे अब चुप क्यों है ? बाहर निकल ॥१४७॥ वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस बिलमें घुस जाऊँ ? आज मुझ शरणहीनका यहाँ कौन शरण होगा ? ॥१४८॥ यदि मुझे मालूम होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मैं उत्तर दिशाको लांघकर देश त्याग ही कर देता ॥१४९॥ इस प्रकार उद्देगको प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणोंको छोड़ भागनेके लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मणने उसे देख लिया ॥१५०॥ हँसकर लक्ष्मणने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँसे आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वनमें हो हुआ है, यह इस तरह आकुलताको क्यों प्राप्त हुआ है ? ॥१५१॥ सान्त्वना देकर उस ब्राह्मणको शीघ्र ही लाओ हम इसकी चेष्टाको देखेंगे तथा सुनेंगे कि यह क्या कहता है ? ॥१५२॥ 'नहीं डरना चाहिए, नहीं डरना चाहिए, लौटो', इस प्रकार कहनेपर वह सान्त्वनाको प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरों वापस लौटा ॥१५३॥

तदनन्तर श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम-लक्ष्मणके सम्मुख गया तथा अंजलिमें पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करने लगा ॥१५४॥ तदनन्तर जो प्राप्त हुए आसनपर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री बैठी थी ऐसा वह ब्राह्मण स्तवन करनेमें समर्थ ऋचाओंके द्वारा राम-लक्ष्मणकी स्तुति करने लगा ॥१५५॥ स्तुतिके बाद रामने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हमलोगोंका वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्यों कर रहे हो सो तो बताओ ॥१५६॥ ब्राह्मणने कहा, हे देव !

स्थितिरेषा जगन्नाथ लोके स्थावरजङ्गमे । धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमागमे ॥१५८॥
 अधुना त्वं मया ज्ञातः सोऽसि नान्यः कदाचन । द्रविणानीह पूज्यन्ते न भवान् पद्म पूज्यते ॥१५९॥
 नित्यमर्थयुतं देव मानयन्ति जना जनम् । स्थजन्त्यर्थपरित्यक्तं निष्प्रयोजनसौहृदम् ॥१६०॥
 यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमालोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१६१॥
 अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्रं न सहोदरः । तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥१६२॥
 सोऽर्थो धर्मेण यो युक्तः सधर्मो यो दयान्वितः । सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्यां न भुज्यते ॥१६३॥
 मांसाशनान्निवृत्तानां सर्वेषां प्राणधारिणाम् । अन्या मूलेन संपन्ना प्रशस्यन्ते निवृत्तयः ॥१६४॥
 राजन् विचित्ररूपोऽयं लोको मानुषलक्षितः । सादृशो ज्ञायते नैव यथाभूतोऽत्र यो जनः ॥१६५॥
 आस्तां तावद्भवानत्र वन्द्यते ये सवद्विधैः । पराभवं विमूढेभ्यो लभन्ते तेऽपि साधवः ॥१६६॥
 पूर्वं सनत्कुमाराख्यः किं ते ज्ञातो न चक्रभृद् । महर्षयः सुरा यस्य रूपं द्रुमुमिहागताः ॥१६७॥
 सोऽपि श्रामण्यमासाद्य संप्राप्तः परिभूतताम् । पर्यटन्न कच्चिल्लेभे भिक्षामाचारकोविदः ॥१६८॥
 वनस्पत्युपजीविन्या तर्पितः सोऽन्यदा मुनिः । पञ्चाश्रयं गुणैश्चर्यमाददे विजये पुरे ॥१६९॥
 सुभूमश्चक्रभृद् भूत्वा करं कटकभास्वरम् । केयूरभूषितभुजो बदरार्थमठौकयत् ॥१७०॥
 बदरं नैकमप्यस्मै निःस्वोऽसावददात्ततः । अनमिश्रो विशेषस्य विशेषं कमवाप्तवान् ॥१७१॥

मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्मसे आच्छादित अग्निके समान मोहवह मुझसे आपका अनादर हो गया ॥१५७॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्वकी यही रीति है कि शीत ऋतुमें सूर्यके समान धनवान्की ही सदा पूजा होती है ॥१५८॥ यद्यपि इस समय मैं जानता हूँ कि आप वही हैं अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथार्थमें धनकी ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥१५९॥ हे देव ! लोग निरन्तर धनवान् मनुष्यका ही सन्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रताका प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्यको छोड़ देते हैं ॥१६०॥ जिसके पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बान्धव हैं, जिसके पास धन है लोकमें वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है ॥१६१॥ जब मनुष्य धन-रहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई । पर वही मनुष्य जन-धनसहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते हैं ॥१६२॥ धन वही है जो धर्मसे सहित है, धर्म वही है जो दयासे सहित है और निर्मल दया वही है जिसमें मांस नहीं खाया जाता ॥१६३॥ मांस भोजनसे दूर रहनेवाले समस्त प्राणियोंके अन्य त्याग चूँकि मूलसे सहित रहते हैं इसलिए ही उनकी प्रशंसा होती है ॥१६४॥ हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगोंको तो कोई जानता ही नहीं है ॥१६५॥ अथवा आपकी बात जाने दीजिए आप जैसे लोग जिनकी वन्दना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषोंसे पराभव प्राप्त करते हैं ॥१६६॥ क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गये हैं जिनका रूप देखनेके लिए बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले देव आये थे परन्तु वे भी मुनिपद धारणकर पराभवको प्राप्त हुए । आचार शास्त्रके जाननेमें निपुण वे मुनिराज भ्रमण करते रहे परन्तु उन्हें कहीं भिक्षा नहीं मिली ॥१६७-१६८॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगरमें वनस्पतिसे आजीविका करनेवाली एक स्त्रीने आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और पंचाश्रयंरूपी गुणोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥१६९॥ जिनको भुजा बाजूबन्दसे विभूषित थी ऐसे सुभूमेने चक्रवर्ती होकर अपना वलयविभूषित हाथ वेरके लिए बढ़ाया परन्तु यह दरिद्र है यह समझकर उनके लिए किसीने एक वेर भी नहीं दिया सो ठीक ही है

अयमन्यश्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः । न योऽवगम्यते तत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ॥१७२॥
न कृता मन्दभागेन कस्मादभ्यागतक्रिया । तदा मयेति मेऽद्यापि तप्यते मानसं शृशम् ॥१७३॥
रूपमेवमलं कान्तं युष्माकमवलोकयन् । शृशं कुद्धोऽपि को नाम न यथावतिविस्मयम् ॥१७४॥
एवमुक्त्वा शुचा प्रस्तं रुदन्तं कपिलं गिरा । शुभयासान्स्वयद् रामः सुशर्माणं च जानकी ॥१७५॥
ततो हेमवटात्मोभिः किङ्करे राघवाज्ञया । कपिलः श्रावकः प्रीत्या स्नापितः सह भार्यया ॥१७६॥
परमं मोजितश्चान्नं वस्त्रै रत्नैश्च भूषितः । सुभूरिभनमादाय जगाम निजमालयम् ॥१७७॥
जनानां विस्मयकरं सर्वोपकरणान्वितम् । भोगं यद्यपि यातोऽयं^१ तथापि सुविचक्षणः ॥१७८॥
सन्मानविशिखैर्विद्धो दष्टो^२ गुणमहोरगैः । उपचारहतात्मासौ धृतिं न लमते द्विजः ॥१७९॥
दध्यौ चाहं पुरा यत्र स्कन्धन्यस्तैन्धभारकः । यथा शोधितदेहः स तृषितोऽत्यन्तदुर्विधः ॥१८०॥
प्राप्ते तत्रैव जातोऽस्मि पश्य यश्चाधिपोपमः । रामदेवप्रसादेन चिन्तादुःखविवर्जितः ॥१८१॥
आसीन्मे शीर्णपतितमनेकच्छिद्रजर्जरम् । काकाद्यशुचिसंलिसं गृहं गोमयवर्जितम् ॥१८२॥
अधुना धेनुमिव्यासं बहुप्रासादसंकुलम् । रामदेवप्रसादेन प्राकारपरिमण्डलम् ॥१८३॥
हा मया पुण्डरीकाक्षौ भ्रातरौ गृहमागतौ । निर्मलितौ विना दोषं तौ मृगाङ्गनिभानौ ॥१८४॥

क्योंकि विशेषको नहीं जाननेवाला मनुष्य किसी विशेषको कब प्राप्त हुआ है ? ॥१७७-१७९॥ यह अथवा और कोई सभी लोग, स्वकृत कर्मको भोगनेवाले मनुष्योंसे विवश हैं। जिस मनुष्यका जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती ॥१७२॥ मुझ मन्दभाग्यने उस समय आपकी आतिथ्य-क्रिया क्यों नहीं की ? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यन्त सन्तापको प्राप्त है ॥१७३॥ आपके अतिशय सुन्दर रूपको देखनेवाला मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं होता किन्तु आपके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट करनेवाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥१७४॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकाक्रान्त हो रोने लगा, तब रामने शुभ वचनोंसे उसे सान्त्वना दी और सीताने उसकी स्त्री सुशर्माको समझाया ॥१७५॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे किकरोने भार्या सहित कपिल श्रावकको सुवर्ण घटोंमें रखे हुए जलसे प्रीतिपूर्वक स्नान कराया ॥१७६॥ उत्कृष्ट भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नोंसे उसे अलंकृत किया। तदनन्तर वह बहुत भारी धन लेकर अपने घर वापस गया ॥१७७॥ यद्यपि वह बुद्धिमान् ब्राह्मण, लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले तथा सर्व प्रकारके उपकरणोंसे युक्त भोगोपभोगके पदार्थोंको प्राप्त हुआ था, तो भी चूँकि वह सम्मानरूपी बाणोंसे विद्ध था, गुणरूपी महासर्पोंसे डसा गया था और सेवा-शुश्रूषाके कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था। भावार्थ—रामने तिरस्कारके बदले उसका सत्कार किया था, अपने अनेक गुणोंसे उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, पान आदि सेवा-शुश्रूषासे उसे सुखी किया था इसलिए वह रात-दिन इसी शोकमें पड़ा रहता था कि देखो कहाँ तो मैं दुष्ट कि जिसने इन्हें एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहाँ ये महापुरुष जिन्होंने इस प्रकार हमारा उपकार किया ? ॥१७८-१७९॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गाँवमें इतना अधिक दरिद्र था कि कन्धेपर लकड़ियोंका गट्टा रखकर भूखा-प्यासा दुर्बल शरीर इधर-उधर भटकता था आज उसी गाँवमें मैं रामके प्रसादसे यक्षराजके समान हो गया हूँ तथा सब चिन्ता और दुःखोंसे छूट गया हूँ ॥१८०-१८१॥ पहले मेरा जो घर जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गया था, अनेक छिद्रोंसे जर्जर था, काक आदि पक्षियोंकी अशुचिसे लिप्त था तथा जिसमें कभी गोबर भी नहीं लगता था, वही घर आज श्रीरामके प्रसादसे अनेक गायोंसे व्याप्त है, नाना महलोंसे संकीर्ण तथा प्राकार-कोटसे घिरा हुआ है ॥१८२-१८३॥ हाय, बड़े

^११. जातोऽयं म. । २. दष्टो म. ।

यद्भीष्मानपतसाङ्गौ समं देव्या विनिर्गतौ । तन्मे प्रतिष्ठितं शल्यं हृदये प्रचकत् सदा ॥१८५॥
 तावन्मे नास्ति दुःखस्यल्लो दो यावदिदं गृहम् । परित्यज्य निरारम्भः प्रव्रजिष्याम्यसंशयम् ॥१८६॥
 उपलभ्यास्य वैराग्यं बन्धुवराः ससंभ्रमः । धारामिहससर्जान्नं दीनः साकं सुशर्मणा ॥१८७॥
 निरीक्ष्य स्वजनं विप्रो निर्मग्नं शोकसागरे । अपेक्षापेतया बुद्ध्या निर्जगाद शिवोत्सुकः ॥१८८॥
 विचित्रस्वजनस्नेहैरत्युत्तुङ्गमनोरथैः । मृदोऽयं दृष्ट्वाते लोकः किं न जौनीथ भो जनाः ॥१८९॥
 इति संवेगमापन्नः प्रियां दुःखेन मूर्च्छिताम् । विहाय बन्धुलोकं च बहुविक्लवकारिणम् ॥१९०॥
 अष्टादश सहस्राणि धेनूनां सिततेजसाम् । रत्नपूर्णं च भवनं दासीयोषित्समाकुलम् ॥१९१॥
 सुशर्मायां समारोप्य तनयं द्रविणं तथा । बभूव कपिलः साधुनिरारम्भो निरम्बरः ॥१९२॥
 सद्धानन्दमतैः शिष्यः सुप्रतीतस्तपोधनः । चकार गुरुतां तस्य गुणशीलमहार्णवः ॥१९३॥

वियोगिनीवृत्तम्

विजहार महातपास्ततः कपिलश्चारुचरित्रवीरधरः^२ ।

परमार्थनिविष्टमानसः श्रमणश्रीपरिवीतविग्रहः ॥१९४॥

य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति प्रह्वमतिः शृणोति वा ।

उपवाससहस्रसंभवं लभतेऽसौ रविभासुरः फलम् ॥१९५॥

इत्यर्पे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्यचरिते कपिलोपाख्यानं नमः पञ्चाविंशत्तमं पर्व ॥३५॥

खेदकी बात है कि मैंने कमलके समान नेत्रोंके धारक तथा चन्द्रतुल्य मुखसे सुशोभित, घर आये हुए उन दोनों भाइयोंका अपराधके बिना ही तिरस्कार किया ॥१८४॥ श्रीष्म ऋतुके आतापसे जिनके शरीर सन्तप्त हो रहे थे ऐसे दोनों भाई देवी अर्थात् सीताके साथ घरसे बाहर निकले, वह मेरे हृदयमें सदा शल्यकी तरह गड़ा हुआ चंचल हो उठता है ॥१८५॥ निःसन्देह मेरे दुःखका अन्त तबतक नहीं हो सकता है जबतक कि मैं घर छोड़कर निरारम्भ ही दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥१८६॥ तदनन्तर कपिलके वैराग्यका समाचार जानकर इसके घबड़ाये हुए दीन-हीन भाई-बन्धु, सुशर्मा ब्राह्मणोंके साथ अश्रुधारा बहाने लगे ॥१८७॥ मोक्ष प्राप्त करनेमें उत्सुक कपिल, अपने परिजनको शोकरूपी सागरमें निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धिसे बोला कि हे मानवो! बड़े-बड़े मनोरथोंसे युक्त कुटुम्बी जनोंके विचित्र स्नेहसे मोहित हुआ यह प्राणी निरन्तर जलता रहता है, यह क्या तुम नहीं जानते ? ॥१८८-१८९॥ इस प्रकार संवेगको प्राप्त हुआ कपिल ब्राह्मण दुःखसे मूर्च्छित स्त्री तथा बहुत दुःखका अनुभव करनेवाले बन्धुजनोंको छोड़कर, अठारह हजार सफेद गायें, रत्नोंसे परिपूर्ण तथा दास-दासियोंसे युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुशर्मा ब्राह्मणोंके लिए सौंपकर आरम्भ रहित दिगम्बर साधु हो गया ॥१९०-१९२॥ सद्धानन्दमतिके शिष्य तथा गुण और शीलके महा-सागर अतिशय तपस्वी मुनि, उसके गुरु हुए थे अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा ली थी ॥१९३॥ तदनन्तर जो निर्मल चारित्ररूपी काँवरको धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थमें लगा रहता था, और जिनका शरीर निर्ग्रन्थ व्रत रूपी लक्ष्मीसे आलिंगित था ऐसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार राह्य हो कपिलकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है वह सूर्यके समान देदीप्यमान होता हुआ एक हजार उपवासका फल प्राप्त करता है ॥१९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य रचित पद्यचरितमें कपिलका

वर्णन करनेवाला पैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥



१. जौनीति भो जनः । २. धोरघीः म., ब. ।

षट्त्रिंशत्तमं पर्व

ततोऽनुक्रमतः काले विकालप्रतिमे गते । घोरान्धकारसंख्ये विशुद्धकितभीषणे ॥१॥
जातायां सुप्रसन्नायां शरदि प्रीतिनिर्भरः । ऊचे यक्षाधिपः पद्मं प्रस्थातुं कृतमानसम् ॥२॥
क्षन्तव्यं देव यत्किंचिदस्माकमिति दुष्कृतम् । विधातुं शक्यते केन योग्यं सर्वं भवादृशम् ॥३॥
इत्युक्ते रामदेवोऽपि तमूचे गुह्यकाधिपम् । त्वयापि निखिला स्वस्य क्षन्तव्या परतन्त्रता ॥४॥
सुतरां तेन वाक्येन जातः सत्तमभावनः । यक्षाणामधिपो नत्वा संभाष्य विपुलक्रियम् ॥५॥
हारं स्वयंप्रभाभिख्यं ददौ पद्माय सोऽद्भुतम् । उद्यद्दिनकराकारे हरये मणिकुण्डले ॥६॥
चूडामणिं सुकल्याणं सीतायै विलसत्प्रभम् । महाविनोददक्षां च वीणामोप्सितनादिनीम् ॥७॥
स्वेच्छया तेषु यातेषु यक्षराजः पुरीकृताम् । मायां समहरत्किंचिद्वानः शोकितामिव ॥८॥
बलदेवोऽपि कर्तव्यकरणाच्च ससंमदः । अमन्यत परिप्राप्तसुदारं शिवमात्मनः ॥९॥
पर्यटन्तो महीं स्वैरं नानारसफलाशिनः । विचित्रसंकथासक्ताः रमभाणाः सुरा इव ॥१०॥
उलङ्घ्य सुमहारण्यं द्विपसिंहसमाकुलम् । जनोपशुक्तमुद्देशं वैजयन्तपुरं गताः ॥११॥
ततोऽस्तमागते सूर्ये दिक्चक्रे तमसावृते । नक्षत्रमण्डलाकीर्णं संजाते गगनाङ्गणे ॥१२॥
अपरोत्तरदिग्भागे क्षुद्रलोकभयावहे । यथामिहचिते देशे ते पुरो निकटे स्थिताः ॥१३॥
अथात्र नगरे राजा प्रसिद्धः पृथिवीधरः । इन्द्राणी महिषी तस्य योषिदगुणसमन्विता ॥१४॥

तदनन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त और बिजलीकी चमकसे भीषण वर्षा काल, दुष्कालके समान जब क्रम-क्रमसे व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरद् ऋतु आ गया तब रामने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया । उसी समय यक्षोंका अधिपति आकर रामसे कहता है कि हे देव ! हमारी जो कुछ वृत्ति रह गयी हो वह क्षमा कीजिए क्योंकि आप-जैसे महानुभावोंके योग्य समस्त कार्य करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१-३॥ यक्षाधिपतिके ऐसा कहनेपर रामने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतन्त्रताको क्षमा कीजिए अर्थात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छा-नुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिए ॥४॥ रामके इस वचनसे यक्षाधिप अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, रामके लिए स्वयंप्रभ नामका अद्भुत हार दिया । लक्ष्मणके लिए उगते सूर्यके समान देदीप्यमान दो मणिमय कुण्डल दिये, और सीताके लिए महामांगलिक देदीप्यमान चूडामणि तथा महाविनोद करनेमें समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करनेवाली वीणा दी ॥५-७॥ तदनन्तर जब वे इच्छानुसार वहाँसे चले गये तब यक्षराजने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी सम्बन्धी माया समेट ली ॥८॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करनेसे हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उत्कृष्ट मोक्ष ही प्राप्त हो गया है ॥९॥ अथानन्तर स्वेच्छानुसार पृथिवीमें विहार करते, नाना रसके स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएँ करते और देवोंके समान रमण करते हुए वे तीनों, हाथी और सिंहोंसे व्याप्त महावनको पार कर मनुष्योंके द्वारा सेवित वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे ॥१०-११॥ तदनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओंका समूह अन्धकारसे आवृत हो गया और आकाशरूपी आंगन नक्षत्रोंके समूहसे व्याप्त हो गया तब वे क्षुद्र मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाले पश्चिमोत्तर दिग्भागमें नगरके समीप ही किसी इच्छित स्थानमें ठहर गये ॥१२-१३॥ अथानन्तर इस नगरका

१. वर्षाकाल । २. लक्ष्मणाय ।

तनया वनमालेति तयोस्थान्तसुन्दरी । बान्यात् प्रभृति सा रक्ता लक्ष्मणस्य गुणश्रुतेः ॥१५॥
 श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य प्रवज्यासमये वचः । रक्षितुं कापि निर्यातं रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥१६॥
 ध्यात्वेन्द्रनगरेशस्य बालमित्राय सूनवे । सुन्दरायासियोग्याय पितृभ्यां सा निरूपिता ॥१७॥
 तं च विज्ञाय वृत्तान्तं हृदयस्थितलक्ष्मणा । विरहाद्भयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता ॥१८॥
 अंशुकेन वरं कण्ठं विवेष्ट्यासज्य पादपे । मृत्युं प्राप्तास्मि नान्येन पुरुषेण समागमम् ॥१९॥
 विधिच्छलेन केनापि गस्वारण्यं दिनक्षये । ध्रुवमधैव यास्यामि मृत्युं विघ्नविवर्जितम् ॥२०॥
 प्रयाहि भगवन् मानो संप्रेष्य निशां द्रुतम् । कृताञ्जलिरियं दीना पादयोः प्रपतामि ते ॥२१॥
 शर्वरी भण्यतां यात्वा काङ्क्षन्ती दुःखभागिनी । संवत्सरसमं वेत्ति दिनं द्वाभ्याभ्यतामिति ॥२२॥
 इति संक्षिप्य सा बाला गतेऽस्तं तिग्मतेजसि । सोपवासा समासाद्य पितृभ्यामनुमोदतम् ॥२३॥
 प्रवरं रथमारुह्य सखीजनसमावृता । जगाम परया लक्ष्म्या वनदेवीं किलाचिंतुम् ॥२४॥
 यस्यां रात्रौ वनोद्देशे यत्र ते प्रथमं स्थिताः । तस्यामेव तमेवैषा गता दैवनियोगतः ॥२५॥
 भरण्यदेवतापूजा तस्मिन् किल विनिर्मिता । सुप्तश्च सकलो लोको निराशङ्कः कृतक्रियः ॥२६॥
 निश्शब्दपदनिक्षेपात्ततो वनमृगीव सा । निष्कम्य शिविरात् तस्मात् प्रतस्थे मयवर्जिता ॥२७॥
 ततस्तस्याः समाधाय गन्धं परमसौरभम् । एवं सूनुः सुमित्राया दध्यौ संमदमुद्रहन् ॥२८॥
 ज्योतीरेखेव काप्येषा मूर्तिरत्रोपलक्ष्यते । कुमार्यां श्रेष्ठया भाव्यमनया कुलजातया ॥२९॥

राजा पृथिवीधर नामसे प्रसिद्ध था उसकी रानीका नाम इन्द्राणी था जो कि स्त्रियोंके योग्य समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१४॥ उन दोनोंके वनमाला नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी, वनमाला बाल्य अवस्थासे ही लक्ष्मणके गुण श्रवण कर उनमें अनुरक्त थी ॥१५॥ इसके माता-पिताने सुना कि राम अपने पिता दशरथके दीक्षा लेनेके समय कथित वचनोंका पालन करनेके लिए लक्ष्मणके साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इन्द्र नगरके राजाके बालमित्र नामक अत्यन्त योग्य सुन्दर पुत्रके लिए वनमाला देनेका निश्चय किया ॥१६-१७॥ जिसके हृदयमें लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमालाने जब यह समाचार सुना तो वह विरहसे भयभीत हो इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥१८॥ कि वस्त्रसे कण्ठ लपेट वृक्षपर लटककर भले ही मर जाऊँगी परन्तु अन्य पुरुषके साथ समागमको प्राप्त नहीं होऊँगी ॥१९॥ मैं किसी कार्यके बहाने सार्यकालके समय वनमें जाकर आज ही निर्विघ्न रूपसे मृत्यु प्राप्त करूँगी ॥२०॥ हे भगवन् सूर्य ! आप जाओ और रात्रिको जल्दी भेजो । मैं अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणोंमें पड़ती हूँ । जाकर रात्रिसे कहो कि तुम्हारी आकांक्षा करती हुई यह दुःखिनी दिनको वर्षके समान समझती है इसलिए जल्दी जाओ ॥२१-२२॥ इस प्रकार विचार-कर उपवास धारण करनेवाली वह बाला, सूर्यास्त होनेपर माता-पिताकी आज्ञा प्राप्त कर उत्तम रथपर सवार हो सखी जनोंके साथ वैभवपूर्वक वनदेवीकी पूजा करनेके लिए गयी ॥२३-२४॥

भाग्यकी बात कि जिस रात्रिमें तथा वनके जिस प्रदेशमें राम, सीता और लक्ष्मण पहलेसे जाकर ठहरे थे उसी रात्रिमें उसी स्थानपर वनमाला भी आ पहुँची ॥२५॥ वहाँ उसने वन-देवताकी पूजा की । तदनन्तर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशंक हो सो गये तब जिसके पैर रखनेका भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वनकी मृगीकी नाई उस शिविरसे निकल निर्भय हो आगे चली ॥२६-२७॥ तत्पश्चात् वनमालाके शरीरसे निकलनेवाली अत्यन्त मनोहर सुगन्धकी सूँघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे ॥२८॥ कि 'यहाँ कोई ज्योतिकी रेखाके समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उच्च

१. रक्षितं क., ख. । २. निर्जातं ज. । ३. निःशब्दवननिक्षेपामतो म. ।

महता शोकभारेण परिपीडितमानसा । अपश्यन्तो परं दुःखवारणोपायमुन्मनाः ॥३०॥
 अजातचिन्तिता नूनमेपायमानं जिघांसति । पश्यामि तावदेतस्याश्रेष्ठमन्तर्हितो भवन् ॥३१॥
 इति संचित्य निश्शब्दो भूत्वा वटतरोरधः । तस्थौ कल्पद्रुमस्येव त्रिदशः कौतुकान्वितः ॥३२॥
 तमेव पादपं सापि प्राप्ता हंसवधूगतिः । नतेव स्तनभारेण चन्द्रवक्त्रा तनूदरी ॥३३॥
 लक्ष्मणस्तां तथाभूतां दृष्ट्वाचिन्तयदुक्तिभिः । वेपि तावदिमां सम्यक् कुतः कृत्यं भविष्यति ॥३४॥
 अंशुकेनाम्बुवर्णेन कृत्वा पाशं तु कन्यका । जगादैवं गिरा योगिमनोहरणयोग्यया ॥३५॥
 एतत्तस्मिन्निवासिन्यः शृणुताहो सुदेवताः । भवतीभ्यो नमाम्येषां प्रसादः क्रियतां मयि ॥३६॥
 वाच्यो मद्बचनादेवं भवन्तीभिः प्रयत्नतः । कुमारो लक्ष्मणो दृष्ट्वा वनेऽस्मिन् विचरन् ध्रुवम् ॥३७॥
 यथा त्वद्विरहे बाला वनमाला सुदुःखिता । त्वयि मानसमारोप्य प्रेतलोकमुपागता ॥३८॥
 अंशुकेन समालम्ब्य स्वं सा न्यग्रोधपादपे । त्वन्निमित्तमसूयं तन्वो त्यजन्त्यस्माभिरीक्षिता ॥३९॥
 एवमुक्तं त्वया नाथ यदि मे नात्र जन्मनि । समागमः कृतोऽन्यत्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥
 एवं निगद्य शाखायां समर्पयति पाशकम् । संभ्रान्तश्च समालिङ्ग्य सौमित्रिदिग्भ्रवीत् ॥४१॥
 अयि मुग्धे सुकण्ठेऽस्मिन् मद्बुजालिङ्गनोचिते । कस्मादंशुकपाशोऽयं त्वया सुमुखि सज्ज्यते ॥४२॥
 अहं स लक्ष्मणो मुञ्च पाशं परमसुन्दरि । यथाश्रुतं निरीक्षस्व न चेत्प्रत्येष्टि बालिके ॥४३॥
 इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः करात् सान्त्वनकोविदः । जहार लक्ष्मणः फेनपुञ्जं तामरसादिव ॥४४॥

कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥२९॥ बहुत भारी शोकके भारसे इसका मन पीडित हो रहा है और दुःख दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥३०॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तुके न मिलनेसे आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ ॥३१॥ इस प्रकार विचारकर कौतुक-भरे लक्ष्मण चुपचाप वटवृक्षके नीचे उस प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार कि कल्पवृक्षके नीचे कोई देव खड़ा होता है ॥३२॥ तदनन्तर जिसकी चाल हंसोके समान थी, जो स्तनोंके भारसे झुकी हुई-सी जान पड़ती थी, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था तथा जिसका उदर अत्यन्त कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृक्षके नीचे पहुँची ॥३३॥ उसे उस प्रकारकी देख लक्ष्मणने विचार किया कि इसके शब्दोंसे ठीक-ठीक मालूम तो करूँ कि इसे किससे कार्य है ? ॥३४॥ तदनन्तर जलके समान स्वच्छ वर्णवाले वृक्षसे फाँसी बनाकर वह कन्या योगियोंका भी मन हरण करनेमें समर्थ वाणीसे इस प्रकार कहने लगी कि अहो, इस वृक्षके निवासी देवताओ ! सुनिए, मैं आपके लिए नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३५-३६॥ कुमार लक्ष्मण इस वनमें अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्नपूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओरसे उनसे कहें ॥३७॥ कि तुम्हारे विरहमें कुमारी वनमाला अत्यन्त दुखी होकर तथा तुम्हींमें मन लगाकर मृत्युलोकको प्राप्त हुई है ॥३८॥ वटवृक्षपर कपड़ेसे अपने आपको टाँगकर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशांगीको हमने देखा है ॥३९॥ और यह कह गयी है कि हे नाथ ! यद्यपि मेरे इस जन्ममें आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्ममें प्रसन्नता करनेके योग्य हो ॥४०॥

इतना कहकर वह ज्यों ही शाखापर फाँसी बाँधती है त्योंही धबड़ाये हुए लक्ष्मणने उसका आलिगन कर यह कहा कि हे मूर्ख ! यह कण्ठ तो मेरी भुजाके आलिगनके योग्य है, हे सुमुखि ! तू इसमें यह वृक्ष की फाँसी क्यों सजा रही है ? ॥४१-४२॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परम सुन्दरि ! यह फाँसी छोड़ो, हे बालिके ! यदि तुझे विश्वास न हो तो जैसा सुन रखा हो वैसा देख लो ॥४३॥ इस प्रकार कहकर सान्त्वना देनेमें निपुण लक्ष्मणने जिस प्रकार कोई

ततोऽसौ त्रपया युक्ता दृष्ट्वा मन्थरचक्षुषा । लक्ष्मणं नेत्रचोरेण रूपेण परिलक्षितम् ॥४५॥
 परं विस्मयमापन्ना चिन्तामेवमुपगता । ईषद्वेपथुना युक्ता नवसंगमजन्मना ॥४६॥
 किमयं वनदेवीभिः प्रसादो जनितो मम । कारुण्यमुपयाताभिः संदेशवचनैः परम् ॥४७॥
 सोऽयं यथाश्रुतो नाथः संप्राप्तो दैवयोगतः । मवेद्येन मम प्राणाः प्रयान्तो विनिवारिताः ॥४८॥
 इति संचिन्तयन्ती सा किंचित्प्रस्वेदधारिणी । लक्ष्मीधरसमाश्लेषं लब्ध्वात्यन्तमराजत ॥४९॥
 ततो मृदुमहामोदकुसुमोदारलंस्तरे । प्रबुद्धो राघवश्चक्षुर्लक्ष्मणार्थमुदीरयन् ॥५०॥
 भवश्यश्च समुत्थाय पप्रच्छ जनकात्मजाम् । प्रवेशे लक्ष्मणो देवि नैतस्मिन् दृश्यते कुतः ॥५१॥
 प्रदोषे संस्तरं कृत्वा सोऽस्माकं पुष्पपल्लवैः । आसीदनतिदूरस्थः कुमारो ह्यत्र नेक्ष्यते ॥५२॥
 नाथ बाह्यायतां तावदिति तस्यां कृतध्वनौ । क्रमादप्युच्यता वाचा वचो व्याहृतवानिति ॥५३॥
 पद्यागच्छ क्व यातोऽसि मद्र लक्ष्मण लक्ष्मण । प्रयच्छ वचनं तात स्वरितं बालकानुज ॥५४॥
 अयमायामि देवेति दृष्ट्वास्मै संभ्रमो बचः । वनमालासमेतोऽसौ ज्येष्ठस्यान्तिकमागतः ॥५५॥
 अर्धरात्रे तदा स्पष्टे निशानाथः समुष्यौ । ववौ कुमुदगर्भसिर्वायुः सामोदशीतलः ॥५६॥
 ततः पल्लवकान्ताभ्यां हस्ताभ्यां रचिताञ्जलिः । अंशुकावृत्तसर्वाङ्गा त्रपाविनमितानना ॥५७॥
 ज्ञातनिश्चोषकर्तव्या भिन्नाणां विनयं परम् । बालावन्दत रामस्य सीतायाश्च क्रमद्वयम् ॥५८॥
 सद्वितीयं ततो दृष्ट्वा सीता लक्ष्मणमब्रवीत् । कुमार सह चन्द्रेण समवायस्त्वया कृतः ॥५९॥
 कथं जानासि देवीति पश्येनोक्ता जगद् सा । चेष्टया देव जानामि श्रेणु तुल्यप्रवृत्तया ॥६०॥

कमलसे फेनको दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथसे फाँसी छीन ली ॥४४॥ तदनन्तर नेत्रोंको चुरानेवाले रूपसे सुशोभित लक्ष्मणको मन्थर दृष्टिसे देखकर वह कन्या लज्जासे युक्त हो गयी ॥४५॥ नवसमागमके कारण कुछ-कुछ काँपती हुई वनमाला परम आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥४६॥ कि क्या मेरे सन्देश वचनोंसे परम दयालुताको प्राप्त हुई वनदेवियोंने ही मुझपर यह प्रसन्नता की है ? ॥४७॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रोके हैं ऐसे वे प्राणनाथ देवयोगसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥४८॥ इस प्रकार विचार करती और कुछ-कुछ पसीनाको धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मणका आलिंगन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४९॥

तदनन्तर इधर कोमल तथा महासुगन्धित फूलोंको उत्कृष्ट शय्यापर पड़े रामकी जब निद्रा हटी तो उन्होंने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली । लक्ष्मणको न देखकर वे उठे और सीतासे पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्यों नहीं दिखाई देता ? ॥५०-५१॥ सायंकालके समय तो वह फूल तथा पत्तोंसे हमारी शय्या कर यहीं पासमें सीधा था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥५२॥ सीताने उत्तर दिया कि हे नाथ ! आवाज देकर बुलाइए । तब रामने यथाक्रमसे उच्चवाणीमें इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहाँ चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! कहाँ हो, शीघ्र आवाज देओ ॥५३-५४॥ रामकी आवाज सुन लक्ष्मणने हड़बड़ाकर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ । इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमालाके साथ अग्रजके समीप आ पहुँचे ॥५५॥ उस समय स्पष्ट ही आधी रात थी, चन्द्रमाका उदय हो चुका था और कुमुदोंके गर्भसे मिटकर सुगन्धित तथा शीतल वायु बह रही थी ॥५६॥ तदनन्तर जिसने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे अञ्जलि बाँध रखी थी, वस्त्रसे जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जासे जिसका मुख नम्राभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्यको जानती थी तथा परम विनयको धारण कर रही थी ऐसी वनमाला-ने आकर राम तथा सीताके चरणयुगलको नमस्कार किया ॥५७-५८॥ तदनन्तर लक्ष्मणकी स्त्री सहित देख सीताने कहा कि हे कुमार ! तुमने तो चन्द्रमाके साथ मित्रता कर ली ॥५९॥ रामने सीतासे कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ? इसके उत्तरमें सीताने कहा कि हे देव !

ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो यस्मिन् काले समागतः । लक्ष्मीधरोऽपि तत्रैव सहितो बालयानया ॥६१॥
 यथा ज्ञापयसि स्पष्टमेवमेतदिति ब्रुवन् । लक्ष्मीधरोऽन्तिके तस्थौ हिया किञ्चिन्नताननः ॥६२॥
 उन्कुलनेत्रराजीवाः प्रमोदापितचेतसः । प्रसन्नवक्त्रतारेशाः सुशीला विस्मयान्विताः ॥६३॥
 कथाभिः स्मितयुक्ताभिः याताभिः स्थानयुक्ताम् । ते तत्र त्रिदशच्छाया नष्टनिद्राः सुखं स्थिताः ॥६४॥
 सख्योऽत्र वनमालायाः समये बोधमागताः । शयनीयं तथा शून्यं ददृशुस्तस्मानसाः ॥६५॥
 ततोऽश्रुपूर्णनेत्राणां गवेषय्याकुलात्मनाम् । तासां हाकारशब्देन प्रबोधं भेजिरे भटाः ॥६६॥
 उपलभ्य च वृत्तान्तं सन्नद्धारूढसस्यः । शूराः पदातयश्चान्ये कुन्तकामुकपाणयः ॥६७॥
 दिशः सर्वाः समास्तीर्य दधावुभ्रान्तमानसाः । मोतिप्रोतिसमायुक्ताः समीरस्येव शावकाः ॥६८॥
 ततः कैरपि ते दृष्टाः समेता वनमालया । निवेदिताश्च शेषस्य जनस्य जववाहनैः ॥६९॥
 ज्ञातनिशेषवृत्तान्तैस्तैरलं संभदान्वितैः । पृथिवीधरराजस्य कृतं दिष्ट्यामिवर्धनम् ॥७०॥
 उपायारम्भमुक्तस्य तवाद्य नगरे प्रभो । जगाम प्रकटीभावं महारत्ननिधिः स्वयम् ॥७१॥
 पपात नभसो वृष्टिर्विना मेघसमुद्रवात् । परिकर्मविनिर्मुक्तं सस्यं क्षेत्रात् समुद्गतम् ॥७२॥
 जामाता लक्ष्मणोऽयं ते वर्तते निकटे पुरः । जीवितं हातुमिच्छन्त्या संगतो वनमालया ॥७३॥
 पद्मश्च सीतया साकं परमो भवतः प्रियः । शक्येव सहितो देवेन्द्रोऽयमत्र विराजते ॥७४॥
 वदतामिति भृत्यानां वचनैः प्रियशंसिभिः । सुखनिर्हरचेतस्को मुमुर्छं नृपतिः क्षणम् ॥७५॥

मैं समान प्रवृत्त चेष्टासे जानती हूँ सुनि ॥६०॥ जिस समय चन्द्रमा चन्द्रिका अर्थात् चाँदनीके साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बालाके साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता है ॥६१॥ जैसा आप समझ रही हैं बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जासे कुछ नतानन हो पास ही में बैठ गये ॥६२॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनन्दसे विभोर थे, जिनके मुखरूपी चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्यसे सहित थे, देवोंके समान कान्तिके धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गयी थी ऐसे वे सब, स्थानकी अनुकूलताको प्राप्त मन्दहास्य युक्त कथाएँ करते हुए वहाँ सुखसे विराजमान थे ॥६३-६४॥ यहाँ समयपर जब वनमालाकी सखियाँ जागीं तो शय्याको सूनी देख भयभीत हो गयीं ॥६५॥ तदनन्तर जिसके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा जो वनमालाकी खोजके लिए छटपटा रही थीं ऐसी उन सखियोंकी हाहाकारसे योद्धा जाग उठे ॥६६॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ तो घोड़ोंपर आरूढ़ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथमें ले पैदल ही चलनेके लिए तैयार हुए ॥६७॥ इस प्रकार जिनके चित्त घबड़ा रहे थे, जो भय और प्रीतिसे युक्त थे तथा जो शीघ्र गतिमें वायुके बच्चोंके समान जान पड़ते थे ऐसे योद्धा समस्त दिशाओंको आच्छादित कर दौड़े ॥६८॥

तदनन्तर कितने ही योद्धाओंने वनमालाके साथ बैठे हुए उन सबको देखा और देखकर शीघ्रगामी वाहनोंसे चलकर शेषजनोंके लिए इसकी खबर दी ॥६९॥ तदनन्तर समस्त समाचारकी ठीक-ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ योद्धाओंने पृथिवीधर राजाके लिए भाग्यवृद्धिकी सूचना दी ॥७०॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो ! उपायारम्भसे रहित होनेपर भी आज आपके नगरमें स्वयं ही महारत्नोंका खजाना प्रकट हुआ है ॥७१॥ आज आकाशसे बिना मेघके ही वर्षा पड़ी है तथा जोतना, बखेरना आदि क्रियाओंके बिना ही खेतसे धान्य उत्पन्न हुआ है ॥७२॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगरके निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़नेकी इच्छा करनेवाली वनमालाके साथ उसका मिलाप हो गया है ॥७३॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यन्त प्रिय हैं इन्द्राणी सहित इन्द्रके समान यहीं सुशोभित हो रहे हैं ॥७४॥ इस प्रकार कहनेवाले भृत्यों-के प्रिय सूचक वचनोंसे जिसके हृदयमें सुखका झरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवीपर हर्षाति-

ततः प्रबुद्धचित्तेन परं प्रमदमीयुषा । दत्तं बहुधनं तेभ्यः स्मितशुक्लमुखेन्दुना ॥७६॥
 अचिन्तयच्च ही साधु संजातं दुहितुर्मम । अनिश्चितगतिः प्राप्तो यदयं सुमनोरथः ॥७७॥
 सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः । जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ॥७८॥
 योजनानां शतेनापि परिषिञ्चे भृतान्तरे । इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ॥७९॥
 ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः प्राणिनो दुःखभागिनः । तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पञ्चायते ॥८०॥
 अरण्यानां गिरेर्मूर्ध्नि विषमे पथि सागरे । जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसंगमाः ॥८१॥
 इति संचिन्त्य जायायै तं वृत्तान्तमशेषतः । उरथाप्याकथयत्तोषादक्षरैः कृच्छ्रनिर्गतैः ॥८२॥
 पुनः पुनरपृच्छत् सा सुमुखी स्वप्नशङ्कया । संजातनिश्चयादाप स्वसंवेद्यां सुखासिकाम् ॥८३॥
 ततो रामाधरच्छाये समुद्यति दिवाकरे । प्रेमसंपूरितो राजा सर्वबान्धवसंगतः ॥८४॥
 वरवारणमारुह्य द्युत्या परमया युतः । प्रतस्थे परमं ब्रह्मुत्सुकः प्रियसंगमम् ॥८५॥
 माता च वनमालायाः पुत्रैरष्टाभिरन्विता । आरुह्य शिबिकां रम्यां प्रियस्य पदवीं श्रिता ॥८६॥
 अनन्तरं नृपादेशात् कशिपुः प्रभुरं हितम् । गन्धमाल्यादिवाशेषमनीयत मनोहरम् ॥८७॥
 ततो दूरात् समालोक्ष्य संकुलेक्षणपङ्कजम् । अवतीर्य गजाद् राजा कुडौके राममादरी ॥८८॥
 परिष्वज्य महाप्रीत्या सहितं लक्ष्मणेन तम् । अपृच्छत् कुशलं कृष्टिर्जनकीं च सुमानसः ॥८९॥

रेकसे क्षण-भरके लिए मूर्च्छित हो गया ॥७५॥ तदनन्तर सचेत होनेपर जो परम हर्षको प्राप्त था तथा जिसका मुखरूपी चन्द्रमा मन्द मुसकानसे धवल हो रहा था ऐसे राजाने उन भृत्योंके लिए बहुत भारी धन दिया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्रीका बड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनोरथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥७७॥ समस्त जीवोंको धन, इष्टका समागम तथा जो भी आत्म-सुखका कारण है वह सब पुण्य योगसे प्राप्त होता है ॥७८॥ जिसके बीचमें सौ योजनका भी अन्तर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवोंको मुहूर्तमात्रमें प्राप्त हो जाती है ॥७९॥ इसके विपरीत जो प्राणी पुण्यसे रहित हैं वे निरन्तर दुखी रहते हैं तथा उनके हाथमें आयी हुई भी इष्ट वस्तु दूर हो जाती है ॥८०॥ अटवियोंके बीचमें, पहाड़की चोटीपर विषम मार्ग तथा समुद्रके मध्यमें भी पुण्यशाली मनुष्योंको इष्ट समागम प्राप्त होते रहते हैं ॥८१॥ इस प्रकार विचारकर उसने स्त्रीको उठाया और उसके लिए हर्षातिरेकके कारण कष्टसे निकलनेवाले वचनोंके द्वारा सब समाचार कहा ॥८२॥ उस सुमुखीने 'कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ' इस आशंकासे बार-बार पूछा और उत्पन्न हुए निश्चयसे वह स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हुई ॥८३॥

तदनन्तर जब स्त्रीके ओठके समान लाल-लाल कान्तिको धारण करनेवाला सूर्य उदित हो रहा था तब प्रेमसे भरा, सर्व बन्धुजनोंसे सहित, परम कान्तिकसे युक्त और परम प्रिय समागम देखनेके लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथीपर सवार हो चला ॥८४-८५॥ आठों पुत्रोंसे सहित वनमालाकी माता भी मनोहर पालकीपर सवार हो पतिके मार्गमें चली ॥८६॥ इसके पीछे राजाकी आज्ञानुसार सेवकोंके द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गन्ध, माला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे ॥८७॥

तदनन्तर दूरसे ही विकसित नेत्रकमलोंके धारी रामको देखकर राजा पृथिवीधर हाथीसे उतरकर आदरके साथ उनके पास पहुँचा ॥८८॥ तत्पश्चात् विधि-विधानके वेत्ता तथा शुद्ध-हृदयके धारक राजाने बड़े प्रेमसे राम-लक्ष्मणका आलिङ्गन कर उनसे तथा सीतासे कुशल समा-

तदेव्यपि तयोः पृष्ठा क्षेमं सुस्निग्धलोचना । निखिलाचारनिष्णाता जानकीं परिष्वजे ॥९०॥
 उपचारो यथायोग्यं तयोस्तैरपि निर्मितः । आचार्यकं हिते^१ याता वस्तुन्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥९१॥
 वीणावेणुमृदङ्गादिसहितो गीतनिःस्वनः । क्षुब्धार्णवसमो जज्ञे वन्दिवृन्दानुनादितः ॥९२॥
 उत्सवः स महाज्ञातः पूजिताखिलसंगतः । नृत्यलोककमन्यासादतिकम्पितभूतलः ॥९३॥
 दिशस्तूर्यनिनादेन प्रतिशब्दसमन्विताः । चक्रुः परस्परालापमिव संमदनिर्भराः^४ ॥९४॥
 शनैः प्रसन्नतां याते तस्मिन्नथ महोत्सवे । शरीरकर्म तैः सर्वं कृतं स्नानाशनादिकम् ॥९५॥
 ततः ससिद्धिपारुढेसामन्तशतवेष्टितौ । सारङ्गोपमपादातमहाचक्रपरिच्छदौ ॥९६॥
 पुरःप्रवृत्तसोत्साहाराजस्थपृथिवीधरौ । विदग्धसूतलोकेन कृतमङ्गलनिस्वनौ ॥९७॥
 हारराजितवक्षस्कावनर्यांशुकधारिणौ । हरिचन्दनदिग्धाङ्गावारुढौ रथमुत्तमम् ॥९८॥
 नानारत्नांशुसंपर्कसमुद्भूतेन्द्रकार्मुकौ । शशाङ्कभास्कराकारावशक्यगुणवर्णनौ ॥९९॥
 सौधमैशानदेवाभौ जानकीसहितौ पुरम् । कुर्वाणौ विस्मयं तुङ्गं प्रविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥१००॥
 वरमालाधरौ गन्धबद्धषट्पदमण्डलौ । संपूर्णचन्द्रवदनौ विनीताकारधारिणौ ॥१०१॥
 यक्षेणैव कृते तस्मिन्लक्ष्मणे पुटभेदेने । रेमाते परमं भोगं भुञ्जानौ निजयेच्छया ॥१०२॥

चार पूछा ॥८९॥ जिसके नेत्रोंसे स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ऐसी रानीने भी राम-लक्ष्मणसे कुशल पूछकर सीताका आलिंगन किया ॥९०॥ उन सबने भी राजा-रानीका यथायोग्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषयमें अतिशय निपुणताको प्राप्त थे ॥९१॥

तदनन्तर जो वीणा, बाँसुरी, मृदंग आदिके शब्दसे सहित था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी तुलना धारण कर रहा था और जिसमें बन्दीजनोंके द्वारा उच्चारित विरुदावलीका नाद गूँज रहा था ऐसा संगीतका शब्द होने लगा ॥९२॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनोंका सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करनेवाले मनुष्योंके चरण निक्षेपसे जिसमें भूतल काँप रहा था ऐसा वह महात् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥९३॥ तुरहीके शब्दसे जिनमें प्रतिध्वनि गूँज रही थी ऐसी दिशाएँ हर्षसे ओत-प्रोत हो मानो परस्पर वार्तालाप ही कर रही थीं ॥९४॥ अथानन्तर धीरे-धीरे जब वह महोत्सव शान्त हुआ तब उन्होंने स्नान, भोजन आदि शरीर सम्बन्धी सब कार्य किये ॥९५॥

तदनन्तर जो हाथी-घोड़ोंपर बैठे हुए सैकड़ों सामन्तोंसे घिरे थे, मृगतुल्य पैदल सिपाहियोंका बड़ा दल जिनके साथ था, उत्साहसे भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चल रहा था, चतुर बन्दीजन जिनके आगे मंगल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वक्षःस्थल हारोंसे सुशोभित थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचन्दनसे लिप्त थे, जो उत्तम रथपर सवार थे, जिनके नाना रत्नोंकी किरणोंके सम्पर्कसे इन्द्रधनुष उठ रहे थे, चन्द्र और सूर्यके समान जिनके आकार थे, जिनके गुणोंका वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा ऐशानेन्द्रके समान जिनकी कान्ति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गलेमें वरमालाएँ पड़ी थीं, सुगन्धिके कारण जिनके आस-पास भ्रमरोने मण्डल बाँध रखे थे, जिनके मुख चन्द्रमाके समान थे तथा जो विनीत आकारको धारण कर रहे थे ऐसे राम-लक्ष्मणने नगरमें प्रवेश किया ॥९६-१०१॥ जिस प्रकार पहले, यक्षके द्वारा निर्मित नगरमें इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधरके नगरमें भी वे इच्छानुसार उत्कृष्ट भोग भोगते हुए रमण करने

१. तदेव्यपि म. । २. हितो याता ज. । ३. नृत्यलोक म. । ४. सम्मदनिर्भराः म. ।

पुष्पिताप्रावृत्तम्

इति वनगहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः ।

अतिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पदार्थकामान् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे-पद्मायने वनमालाभिधानं नाम षट्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३६॥



लगे ॥१०२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनके चित्त पुण्यसे सुसंस्कृत हैं तथा जो सूर्यके समान दीप्तिके धारक हैं ऐसे मनुष्य सघन वनोंमें पहुँचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥१०३॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें वनमालाका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३६॥



सप्तत्रिंशत्तमं पर्व

पण्यदाथ सुखासीनं समुदीरिततत्त्वम् । राघवालंकृतास्थानं राजानं पृथिवीधरम् ॥१॥
 दूराध्वपरिविघ्नाङ्गो लेखवाहः समाग्रयौ । प्रणम्य च समासीनो द्रुतं लेखं समाग्रयत् ॥२॥
 गृहीत्वासौ ततो राजा बाह्यनामकलक्षितः । लेखकार्यार्पितः साधु^१ सन्धिविग्रहवेदिने ॥३॥
 स विमुच्यानुवाच्यैनं^२ चायितो राजवक्षुषा । लिपिचुद्धुर्विधौ चारुस्त्यवाच्यदुच्छगीः ॥४॥
 स्वस्तिस्वस्तिलकोदारप्रभावमतिकर्मणे । श्रीमते नतराजानामतिवीर्याय शर्मणे ॥५॥
 श्रीनन्द्यावर्तनगराक्षगराज इवोत्थितः । ख्यातः पञ्चमहाशब्दः शस्त्रशास्त्रविशारदः ॥६॥
 राजाधिराजसाक्षिष्ठः प्रतापवशिताहितः । अनुरञ्जितसर्वधर्मः समुद्यद्गास्करद्युतिः ॥७॥
 अतिवीर्यः समस्तेषु कर्तव्येषु महानयः । राजमानगुणः श्रीमानतिवीर्यः क्षितीश्वरः ॥८॥
 आज्ञापयति नगरे विजये पृथिवीधरम् । अक्षरैर्लेखसंक्रान्तैः कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥९॥
 यथा मे केचिदेतस्मिन् सामन्ता धरणीतले । सकोपवाहनास्ते मे वर्तन्ते पादर्वचर्तनः ॥१०॥
 आयान्बहुविधा म्लेच्छाश्चतुरङ्गसमन्विताः । नागाशास्त्रकरा वाक्यमर्चन्ति समभूतयः ॥११॥
 वराञ्जननगामानां करिणामष्टभिः शतैः । समीरशावतुल्यानां सहस्रैर्वीजिनां त्रिभिः ॥१२॥
 महामोगो महातेजा मद्गुणाकृष्टमानसः । राजा विजयशार्दूलः सोऽयं प्राप्नो ममान्तिकम् ॥१३॥

अथानन्तर एक दिन राजा पृथ्वीधर सभामण्डपमें सुखसे विराजमान थे, पास ही में राम भी सभाको अलंकृत कर रहे थे तथा उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा चल रही थी कि इतनेमें दूर मार्गसे आनेके कारण जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसा एक पत्रवाहक आया और राजाको प्रणाम कर बैठनेके बाद उसने शीघ्र ही एक पत्र समर्पित किया ॥१-२॥ वह पत्र जिसे दिया जाना था उसके नामसे अंकित था । राजाने पत्रवाहकसे पत्र लेकर सन्धिविग्रहको अच्छी तरह जाननेवाले लेखक (मुन्शी) के लिए सौंप दिया ॥३॥ वह लेखक सब लिपियोंके जाननेमें निपुण था, राजाके नेत्र द्वारा सम्मान प्राप्त कर उसने वह पत्र खोला । एक बार स्वयं बाँचा और फिर उच्च स्वरसे इस प्रकार बाँचकर सुनाया ॥४॥ उसमें लिखा था कि जो इन्द्रके समान उदार प्रभावका धारक तथा बुद्धिमान् है, लक्ष्मीमान् है तथा नम्रीभूत राजाओंके लिए सुख देनेवाला है ऐसा राजा अतिवीर्य स्वस्तिरूप है, मंगलरूप है ॥५॥ जो नगराज अर्थात् सुमेरुके समान (उदार) है, महायशका धारी है, वास्त्रमें निपुण है, राजाधिराजपनासे आलिङ्गित है, जिसने अपने प्रतापसे शत्रुओंको वश कर लिया है, जिसने समस्त पृथिवीको अनुरञ्जित कर लिया है, उगते हुए सूर्यके समान जिसकी कान्ति है, जो अतिशय पराक्रमी है, समस्त कार्योंमें महानोत्तिष्ठ है, और जिससे अनेक गुण शोभायमान हो रहे हैं ऐसा श्रीमान् अतिवीर्य राजा नन्द्यावर्तपुरसे विजयनगरमें वर्तमान राजा पृथिवीधरको लेखमें लिखित अक्षरोंसे कुशल समाचार पूछता हुआ आज्ञा देता है कि इस पृथिवी-तलपर मेरे जो सामन्त हैं वे खजाना और सेनाके साथ मेरे पास हैं ॥६-१०॥ जिनके हाथमें नाना प्रकारके शस्त्र देदीप्यमान हैं तथा जो एक सदृश विभूतिके धारक हैं ऐसे म्लेच्छ राजा अपनी-अपनी चतुरंग सेनाके साथ यहाँ आ गये हैं ॥११॥ जो महाभोगी और महाप्रतापी हैं तथा जिसका मन हमारे गुणोंसे आकर्षित है ऐसा राजा विजयशार्दूल भी अञ्जनगिरिके समान आभावाले आठ सौ

१. समाग्रयत् म. । २. बाह्यनामाकलक्षितः म. । ३. साधुः सन्धि म. । ४. वापितो म., ख । ५. इव स्थितः ख. ।

मृगध्वजो रणोर्मिश्र कलभः केसरी तथा । अङ्गा महीभृतः षड्मिरमी करटिनां शतैः ॥१४॥
 प्रत्येकं पञ्चभिः सप्तिसहस्रैश्च सगावृताः । प्राप्ताः कृतमहोत्साहा नयपण्डितबुद्धयः ॥१५॥
 उत्साहयन् छलोद्बुत्तं नयशास्त्रविशारदम् । पञ्चालाधिपमात्मार्यकारिणं ज्ञातकारणम् ॥१६॥
 द्विरदानां सहस्रेण तैर्ययूनां च सप्तभिः । पौण्ड्रक्षमापतिशालीनः प्रतापं परमं वहन् ॥१७॥
 साधनेन तदग्रेण संप्राप्तो मगधाधिपः । पूर्यमाणो नृपैर्वाहो रैवो नदशतैरिव ॥१८॥
 सहस्रैरागतोऽष्टमिर्दन्तिनां जलदत्तिषाम् । अश्वीयेन सुकेशश्च दुर्लभान्तेन वज्रधृक् ॥१९॥
 सुमद्रो मुनिभद्रश्च साधुभद्रश्चैव नन्दनः । तुल्या वज्रधरस्यैते संप्राप्ता यवनाधिपाः ॥२०॥
 अवार्यवीर्यसंप्राप्तः सिंहवीर्यो महीपतिः । बाङ्गः सिंहस्थश्चेतौ मातुलौ बलशालिनौ ॥२१॥
 पदातिभी रथैर्नागैः स्थूरीपृष्ठैः प्रतिष्ठितैः । वत्सस्वामी सभायातो मारिदत्तोतिमूरिभिः ॥२२॥
 अम्बष्ठः प्रोष्ठिलो राजा सौवीरो धीरमन्दिरः । प्राप्तौ दुर्वेदसंख्येन साधनेनान्विताविमौ ॥२३॥
 एतेऽन्ये च महासत्त्वा राजानः श्रुतशासनाः । अक्षौहिणीभिरायाता दशभिस्त्रिदशोपमाः ॥२४॥
 अमीमिरनुयातोऽहं प्रस्थितो भरतं प्रति । त्वामुदीक्षे यतो लेखदर्शनानन्तरं ततः ॥२५॥
 आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या कार्याप्रेक्षितथा तथा । पश्यामोऽत्यादरेण त्वां यथा वर्षं कृषीवलाः ॥२६॥
 एवं च वाचिते लेखे न यावत्पृथिवीधरः । किञ्चिदूचे सुमित्रायाः सूनुस्तावदभाषत ॥२७॥

सौ हाथियों और वायुके पुत्रके समान चपल तीन हजार घोड़ोंके साथ आज हमारे पास आ गया है ॥१२-१३॥ बहुत भारी उत्साहके देनेवाले तथा नीति-निपुण बुद्धिके धारक जो मृगध्वज, रणोर्मि, कलभ और केसरी नामके अंगदेशके राजा हैं वे भी प्रत्येक छह सौ हाथियों तथा पांच हजार घोड़ोंसे समावृत हो आ पहुँचे हैं ॥१४-१५॥ जो छलपूर्ण युद्ध करनेमें निपुण है, नीतिशास्त्रका पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है तथा युद्धकी सब गतिविधियोंका जानकार है ऐसे पंचाल देशके राजाको उत्साहित करता हुआ पौण्ड्रदेशका परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथियों और सात हजार घोड़ोंके साथ आ गया है ॥१६-१७॥ जिस प्रकार रेवा नदीके प्रवाहमें सैकड़ों नदियाँ आकर मिलती हैं इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ-आकर मिल रहे हैं ऐसा मगध देशका राजा भी पौण्ड्राधिपतिसे भी कहीं अधिक सेना लेकर आया है ॥१८॥ वज्रको धारण करनेवाला राजा सुकेश, मेघके समान कान्तिको धारण करनेवाले आठ हजार हाथियों और जिसका अन्त पाना कठिन है ऐसी घोड़ोंकी सेनाके साथ आ पहुँचा है ॥१९॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमके धारी हैं, ऐसे सुमद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र और नन्दन नामक भवनोंके राजा हैं वे भी आ गये हैं ॥२०॥ जो अवार्य वीर्यसे सम्पन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वंग देशका राजा सिंहस्थ ये दोनों मेरे मामा हैं सो बहुत भारी सेनासे सुशोभित होते हुए आये हैं ॥२१॥ वत्स देशका राजा मारिदत्त बहुत भारी पदाति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोड़ोंके साथ आया है ॥२२॥ अम्बष्ठ देशका राजा प्रोष्ठिल और सुवीर देशका स्वामी धीरमन्दिर ये दोनों असंख्यात सेनाके साथ आ पहुँचे हैं ॥२३॥ तथा इनके सिवाय जो और भी महापराक्रमी एवं देवोंकी उपमा धारण करनेवाले अन्य राजा हैं वे मेरी आज्ञा श्रवण कर सेनाओंके साथ आ चुके हैं ॥२४॥ इन सब राजाओंकी साथ लेकर मैंने अयोध्याके राजा भरतके प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, अतः तुम्हें पत्र देखनेके बाद तुरन्त ही यहाँ आना चाहिए। तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे कार्यके प्रति दृष्टि भी नहीं डालेंगे। जिस प्रकार किसान वर्षाको बड़े आदरसे देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदरसे देखते हैं ॥२५-२६॥ इस प्रकार पत्र बाँचे जानेपर राजा पृथिवीधर

१. अश्वानाम् । २. सानुभद्रस्य नन्दन म. ।

अतिवीर्यं तथाबुद्धौ भरतस्य विचेष्टितम् । तव कीदृगिति ज्ञातं भद्रस्य दूतस्य ते ॥२८॥
 एवं वायुगतिः पृष्ठो जगाद निखिलं मम । विदितं राजचरितमन्तरङ्गो ह्यथं परः ॥२९॥
 हृच्छामि विशदं श्रोतुमित्युक्ते पुनरब्रवीत् । शृणु चित्तं समाधाय भवतश्चेत्कुतूहलम् ॥३०॥
 श्रुतबुद्धिरिति ख्यातो दूतः श्रुतविशारदः । प्रहितः स्वामिनास्माकं गत्वा भरतमब्रवीत् ॥३१॥
 दूतोऽस्मि शक्रतुल्यस्य प्रणताखिलभूश्रुतः । अतिवीर्यनरेन्द्रस्य नयन्यासमनीषिणः ॥३२॥
 संप्राप्य साध्वसं यस्माच्चरकेसरिणः परम् । मजन्ते रिपुसारङ्गा न निद्रां वसतिष्वपि ॥३३॥
 विनीता पृथिवी यस्य चतुरम्भोधिमेखला । आज्ञां पाणिगृहीतेव कुरुते परिपालिता ॥३४॥
 आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सत्क्रियः । वर्णैर्मदास्यविन्यस्तैरुज्जितात्मा समन्ततः ॥३५॥
 यथा मज समागत्य भृत्यतां भरत द्रुतम् । अयोध्यां वा परित्यज्य मज पारमुदन्वतः ॥३६॥
 ततः क्रोधपरीताङ्गः शत्रुघ्नश्चण्डया गिरा । जगाद निष्प्रतीकारो दावानल इवोत्थितः ॥३७॥
 भजत्येव तथा देवो भरतस्तस्य भृत्यताम् । यथा संजायते युक्तमिदं तावत्प्रभाषितम् ॥३८॥
 विनीतां च परित्यज्य सचिवेषु प्रभुर्ध्रुवम् । यात्येवोदन्वतः पारं वशीकुर्वन् कुमारवान् ॥३९॥
 वचस्त्वां ज्ञापयामीति नितरां तस्य नोचितम् । रासभस्य यथा मत्तवारणधिपगर्जितम् ॥४०॥
 सूचयत्यथवा तस्य मृत्युमेतद्वचः स्फुटम् । उत्पातभूतमेतो वा स नूनं वायुवश्यताम् ॥४१॥

जबतक कुछ नहीं कह पाये कि तबतक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धिके धारक दूत ! तुझे मालूम है कि राजा अतिवीर्यके उस तरह छष्ट होनेमें भरतकी कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरतमें विरोध होनेका क्या कारण है ? ॥२७-२८॥ इस प्रकार लक्ष्मणके पूछनेपर उस वायुगति नामक दूतने कहा कि मैं चूँकि राजाका अत्यन्त अन्तरंग व्यक्ति हूँ अतः मुझे सब मालूम है ॥२९॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि तो मैं सुनना चाहता हूँ । इस प्रकार कहे जानेपर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मैं कहता हूँ ॥३०॥ उसने कहा कि एक बार हमारे राजा अतिवीर्यने श्रुतबुद्धि नामका निपुण दूत भरतके पास भेजा, सो उसने जाकर भरतसे कहा कि जो इन्द्रके समान पराक्रमी है । जिसे समस्त राजा नमस्कार करते हैं तथा जो नयके प्रयोग करनेमें अत्यन्त निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्यका मैं दूत हूँ ॥३१-३२॥ जो मनुष्योंमें सिंहके समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रुरूप भृग अपनी वसतिकाओंमें निद्राको प्राप्त नहीं होते ॥३३॥ चार समुद्र ही जिसकी कटिमेखला है, ऐसी समस्त पृथिवी स्त्रीके समान बड़ी विनयसे जिसकी आज्ञाका पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओंका आचरण करनेवाला है तथा सब ओरसे जिसकी आत्मा अत्यन्त बलिष्ठ है, ऐसे राजा पृथिवीपर मेरे मुखमें स्थापित किये हुए अक्षरोंसे आपको आज्ञा देते हैं कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्रके उस पार भाग जा ॥३४-३६॥

तदनन्तर जिसका शरीर क्रोधसे व्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानलके समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणीसे बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी भृत्यताको उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते हैं कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़नेकी बात कही सो अभ्युदयको धारण करनेवाले राजा भरत अयोध्याको मन्त्रियोंपर छोड़ क्षुद्र मनुष्योंको वश करनेके लिए अभी हाल समुद्रके पार जाते हैं ॥३७-३९॥ परन्तु मैं तुझसे कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथीके प्रति गधेकी गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरतके प्रति तेरे स्वामीकी यह गर्जना बिलकुल ही उचित नहीं है ॥४०॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्युको सूचित करते हैं । जान पड़ता है कि वह उत्पातरूपी

१. भद्रस्य दूत सन्मते ज. । भद्रस्य इतस्य ते म. (?) । २. यात्येवोन्नतः म. ।

वैराग्यादथवा ताते तपोवनमुपागते । नरेन्द्रेण समाविष्टो ग्रहेण खलवेष्टितः ॥४२॥
 यद्यप्युपशमं यातस्ताताग्निमुत्तिकाम्यया । तथापि निर्गतस्तस्मात्स्फुलिङ्गस्तं दहाम्यहम् ॥४३॥
 सिंहं करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे । शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ॥४४॥
 इत्युक्त्वा दह्यमानोरुवेणुकान्तारभीषणम् । जहास तेजसास्थानं असमानः इवाखिलम् ॥४५॥
 जगाद च कुदूतस्य तावदस्य विधीयताम् । खलीकारोऽल्पवीर्यस्य सत्यंकार इव द्रुतम् ॥४६॥
 इत्युक्ते पादयोर्दूतो गृहीत्वा कुपितैर्भटैः । सारमेय इवागस्वी^१ हन्यमानः कृतध्वनिः ॥४७॥
 आकृष्टो नगरीमध्यं यावन्मुक्तश्च दुःखितः । दग्धो दुर्वचनैर्धूलीधूसरो निस्पाततः ॥४८॥
 ततः सागरगम्भीरः परमार्थविशारदः । अपूर्वं दुर्वचः श्रुत्वा किंचित्कोपमुपागतः ॥४९॥
 केकयानन्दनः श्रीमान्सुप्रमानन्दनान्वितः । विनिनोपुरारं पुर्या निर्यातः सचिवान्वितः ॥५०॥
 श्रुत्वा तं मिथिलाधीशः कनकः पुरुसाधनः । प्राप सिंहोदराद्याश्च राजानो भक्तितत्पराः ॥५१॥
 चक्रेण महता युक्तो भरतः प्रस्थितस्ततः । नन्द्यावर्तं प्रजा रक्षन् पितेव न्यायकोविदः ॥५२॥
 अतिवीर्योऽपि दूतेन खलीकारप्रदर्शना । परमं क्रोधमानीतः क्षुब्धाकूपारभीषणः ॥५३॥
 मरतायाग्निरोचिष्णुगन्तुं संविदधे मतिम् । सामन्तैर्वेष्टितः सर्वैः कृतानेकमहान्रुतैः ॥५४॥
 ततो ललाटमार्गेण युवचन्द्राकृतिं श्रितः । वनमालापितुः संज्ञां कृत्वा स्वैरं बलोऽवदत् ॥५५॥

भूतसे ग्रस्त है अथवा वायुरोगके वशीभूत है ॥४१॥ अथवा वैराग्यके योगसे पिता राजा दशरथके तपोवनके लिए चले जानेपर दुष्टोंसे घिरा तुम्हारा राजा ग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥४२॥ यद्यपि मोक्षकी आकांक्षासे पितारूपी अग्नि शान्त हो चुकी है तथापि मैं उस अग्निसे निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजाको अभी भस्म करता हूँ ॥४३॥ बड़े-बड़े हाथियोंके रुधिररूपी पंकसे जिसकी गरदनके बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंहके शान्त हो जानेपर भी उसका बच्चा हाथियोंका विघात करता ही है ॥४४॥ इस प्रकार जलते हुए बाँसोंके बड़े वनके समान भयंकर वचन कहकर तेजसे समस्त सभाको ग्रसता हुआ शत्रुघ्न जोरसे हँसा ॥४५॥ और बोला कि बयानेके समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस कुदूतका तिरस्कार क्षीघ्र ही किया जाये ॥४६॥ शत्रुके इस प्रकार कहते ही क्रोधसे भरे योद्धाओंने उस दूतके दोनों पैर पकड़कर उसे घसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी कुत्तेके समान काँय-काँय करने लगा ॥४७॥ इस तरह नगरीके मध्य तक घसीटकर उसे छोड़ दिया । तदनन्तर दुःखी दुर्वचनोंसे जला और धूलिसे धूसर हुआ वह दूत वहाँसे चला गया ॥४८॥

तदनन्तर जो समुद्रके समान गम्भीर थे, परमार्थके जाननेवाले थे तथा जो दूतके पूर्वोक्त अपूर्वं वचन सुनकर कुछ क्रोधको प्राप्त हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुघ्न भाई और मन्त्रियोंको साथ ले, शत्रुका प्रतिकार करनेके लिए नगरीसे बाहर निकले ॥४९-५०॥ वह सुनकर मिथिलाका राजा कनक बड़ी भारी सेना लेकर भरतसे आ मिला तथा भक्तिमें तत्पर रहनेवाले सिंहोदर आदि राजा भी आ पहुँचे ॥५१॥ इस प्रकार जो पितृके समान प्रजाकी रक्षा करते थे, तथा जो न्याय-नीतिमें निपुण थे ऐसे राजा भरत बड़ी भारी सेनासे युक्त हो नन्द्यावर्त नगरकी ओर चले ॥५२॥

उधर अपने अपमानको दिखानेवाले दूतने जिसे अत्यन्त कुपित कर दिया था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान भयंकर था, जो अग्निके समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्यपूर्ण कार्य करनेवाले सामन्त जिसे घेरे थे ऐसे राजा अतिवीर्यने भी भरतके प्रति चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥५३-५४॥ तदनन्तर ललाटसे तरुण चन्द्रमाकी आकृतिके धारण करने-

१. नरेन्द्रेशा समाविष्टो नरेन्द्रो स समा म., ज. । २. अपराधी । ३. कृतिः श्रितः म. ।

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुमीदृशम् । पितुर्येन समो भ्राता ज्येष्ठोऽसावपमानितः ॥५६॥
 आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा लेखवाहं महीधरः । प्रतिप्रेष्याकरोन्मन्त्रं रामेण पृथिवीधरः ॥५७॥
 अतिवीर्योऽतिदुर्वारश्छदाना तं व्रजाम्यहम् । एवं महीधरेणोक्ते पद्मो विश्रब्धमब्रवीत् ॥५८॥
 अज्ञातैरिदमस्माभिः साधनीयं प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्यं संरम्भेण तु पार्थिवः ॥५९॥
 तिष्ठ त्वमिह कुर्वाणः सुप्रयुक्तमहं तव । पुत्रजामातृभिः सार्धमन्तं तस्य व्रजाम्यरेः ॥६०॥
 इत्युक्त्वा रथमारुह्य परं सारबलान्वितैः । महीधरसुतैः साकं ससीतो लक्ष्मणान्वितः ॥६१॥
 नन्द्यावर्तपुरीं रामो गन्तुं प्रवृत्ते जवो । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटेऽन्तरे ॥६२॥
 तनुकृत्ये कृते तत्र संबन्धितनयैः सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्रः सीतायाश्चैववर्तत ॥६३॥
 जगाद जानकी नाथ भवतः सन्निधौ मम । वक्तुं नैवाधिकारोऽस्ति किं तारा भान्ति भास्करे ॥६४॥
 तथापि देव भाषेऽहं प्रेरिता हितकाम्यथा । जातो वंशलतातोऽपि मणिः संगृह्यते ननु ॥६५॥
 अतिवीर्योऽतिवीर्योऽयं महासाधनसंगतः । क्रूरकर्मा कथं शक्यो जेतुं मरतभूभृता ॥६६॥
 अतस्तन्निर्जये तावदुपायाश्चिन्त्यतां द्रुतम् । सहसारभ्यमाणं हि कार्यं व्रजति संशयम् ॥६७॥
 त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्यं भवतो लक्ष्मणस्य वा । किंतु प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्धं प्रशस्यते ॥६८॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवोचक्किमेवं देवि भाषसे । पश्य इवो निहितं पापमणुवीर्यं मया रणे ॥६९॥
 रामपादरजःपूतशिरसो मे सुरैरपि । न शक्यते पुरः स्थातुं क्षुद्रवीर्यं तु का कथा ॥७०॥

वाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको संकेत कर स्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरतपर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५-५६॥ तदनन्तर 'मैं अभी आता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो विदा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ' । राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहनेपर रामने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगोंको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन् ! बड़े आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७-५९॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिए मैं आपके पुत्र तथा जैवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्द्यावर्तपुरीकी ओर चले तथा वेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१-६२॥ वहाँ स्नान, भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम, लक्ष्मण तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥६४॥ तथापि हे देव ! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वंशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो ग्राह्य होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान्, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा क्रूरतापूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिए क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य संशयमें पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्यों कहती हो, तुम कल ही अणुवीर्य (अतिवीर्य) को रणमें मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरण-धूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे सामने देव भी खड़े होनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर अणुवीर्यकी तो

न यावदधवा याति मानुरस्तं कुतूहली । वीक्ष्यतां तावदधैव क्षुद्रवीर्यस्य पञ्चताम् ॥७१॥
 युवगर्वसमाध्माता सर्वन्धितनया अपि । एतदेव वचोऽमुञ्जत्यतिशब्दमिवोज्जतम् ॥७२॥
 ततः पद्मो निवार्यैतां भ्रमङ्गेन महामनाः । अब्रवील्लक्ष्मणं धैर्याद्विभ्रं गणदूषयन्निव ॥७३॥
 युक्तमुक्तमलं तात जानक्या वस्तु पुष्कलम् । स्फुटीकृतं तु नात्यन्तमत्यासादनमीतया ॥७४॥
 अस्याः शृणु यदाकृतमतिवीर्यो बलोद्धतः । मरतेन स नो शक्यो वशीकृतुं रणाजिरे ॥७५॥
 भागो न मरतस्तस्य दशमोऽपि भवत्यतः । तस्य दावानलस्यायं किं करोति महागजः ॥७६॥
 दन्तिमिदं समृद्धस्य समृद्धोऽपि तुरङ्गमैः । भरतो नैव शक्तोऽस्य तथा विन्ध्यस्य केसरी ॥७७॥
 भरतस्य जये नात्र संशयोऽपि समीक्ष्यते । एकान्तस्तु कुतो वापि स्याज्जन्तुप्रलयस्तथा ॥७८॥
 कष्टमेककयोजति विरोधे कारणं विना । पक्षद्वयं मनुष्याणां जायते विवशक्षयम् ॥७९॥
 दुरात्मनातिवीर्येण मरते च वशीकृते । जायते रघुगोत्रस्य कलङ्कः पश्य कीदृशः ॥८०॥
 नेदयते संघिरप्यत्र शत्रुघ्नेन च मानिना । शैशवेन कृतं दोषं शत्रावत्युद्धते शृणु ॥८१॥
 विभावर्यां तमिस्त्रायां किलावस्कन्ददायिना । रौद्रभूतिसमेतेन शत्रुघ्नेन चरिष्णुना ॥८२॥
 निद्रावशीकृतान् वीरान् बहुन् कृत्वा मृतक्षतान् । हस्तिनश्च दुरारोहान् प्रगल्हाननिर्झरान् ॥८३॥
 चतुःषष्टिसहस्राणि वाजिनां वातरंहसाम् । शतानि सप्त चैमानामञ्जनाद्रिसमन्विषाम् ॥८४॥
 बाह्यस्थानि पुरस्यास्य नौवानि दिवसैस्त्रिभिः । मरतस्यान्तिकं किं ते न श्रुतानि जनैः स्यतः ॥८५॥

बात ही क्या है ? ॥७०॥ अथवा कुतूहलसे भरा सूर्य जबतक अस्त नहीं होता है तबतक आज ही अणुवीर्यकी मृत्यु देख लेना ॥७१॥ तरुण लक्ष्मणके गर्वसे फूले राजा पृथिवीधरके पुत्रोंने भी प्रतिध्वनिके समान यही जोरदार शब्द कहे ॥७२॥

तदनन्तर धैर्यसे समुद्रको कुल्लेके समान तुच्छ करनेवाले महामना रामने भ्रुकुटिके भंगसे पृथिवीधरके पुत्रोंको रोककर लक्ष्मणसे कहा कि हे तात ! सीताने सब बात बिलकुल ठीक कही है केवल रहस्य खुल न जाये इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है ॥७३-७४॥ उसका जो अभिप्राय है वह सुनो । यह कह रही है कि चूँकि अतिवीर्य बलसे उद्धत है अतः भरतके द्वारा रणांगणमें वश करनेके योग्य नहीं है ॥७५॥ भरत उसके दशवें भाग भी नहीं है वह दावानलके समान है अतः यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥७६॥ यद्यपि भरत घोड़ोंसे समृद्ध है पर अतिवीर्य हाथियोंसे समृद्ध है अतः जिस प्रकार सिंह विन्ध्याचलका कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्यका कुछ नहीं कर सकता ॥७७॥ वह भरतको जीत लेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है अथवा दो में से किसीकी जीत होगी पर उससे प्राणियोंका विनाश तो होगा ही ॥७८॥ जब बिना कारण ही दो व्यक्तियोंमें परस्पर विरोध होता है तब दोनों पक्षके मनुष्योंका विवश होकर क्षय होता ही है ॥७९॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्यने भरतको वश कर लिया तो फिर देखो रघुवंशका कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥८०॥ इस विषयमें सन्धि भी होती नहीं दिखती क्योंकि मानी शत्रुघ्नेन लड़कपनके कारण अत्यन्त उद्धत शत्रुके बहुत दोष— अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूतिके साथ मिलकर शत्रुघ्नेन अन्धेरी रातमें छापा मार-मारकर उसके बहुत-से निद्रानिमग्न वीरोंको तथा जिनपर चढ़ना कठिन था और जिनसे मदके निर्झर झर रहे थे ऐसे बहुत-से हाथियोंको मारा । पवनके समान वेगशाली चौंसठ हजार घोड़े और अंजनगिरिके समान आभावाले सात सौ हाथी जो कि इसके नगरके बाहर स्थित थे, तीन दिन तक चुराकर भरतके पास ले गया सो क्या लोगोंके मुँहसे तुमने सुना नहीं है ? ॥८१-८५॥

१. मृत्युम् । २. शक्योऽस्य । ३. विवशः क्षयम् । ४. लोकमुखात् ।

वृष्टा कलिङ्गराजस्तान् गाढशल्यान् बहुन्नृपान् । जीवेन च विनिर्मुक्तान् हतं ज्ञात्वा च साधनम् ॥८६॥
 संप्राप्तः परमं क्रोधमग्रमत्तः समन्ततः । वैरिनिर्यातनं कृत्वा बुद्धौ रणमुदीक्षते ॥८७॥
 दण्डोपायं परित्यज्य भरतो मानिनां वरः । हेतुं तस्मिन्निर्जये नान्यं प्रयुक्तं बुद्धिमानपि ॥८८॥
 अथ त्वं साधयस्येयं केनैतन्न प्रतीयते । शक्तिस्ते प्रमवेत्तात तीर्थांशोरपि यातने ॥८९॥
 किंत्वंयं वर्ततेऽग्रैव प्रदेशे भरतोऽधुना । निर्गत्य च तथायुक्तं प्रकटीकरणं ननु ॥९०॥
 अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् । तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्तं निवृण्वन् जलदा गताः ॥९१॥
 इति मन्त्रयमागस्य रामस्य मतिरुद्गता । अतिवीर्यग्रहोपाये उत्तो मन्त्रः समापितः ॥९२॥
 प्रमादरहितस्तत्र कृतप्रवरसंकथः । सुखेन शर्वरीं नीत्वा रामः स्वजनसंगतः ॥९३॥
 आवासाश्रितोऽपश्यदार्थिकाजनलक्षितम् । जिनेन्द्रभवनं मक्त्या प्रविवेश च साञ्जलिः ॥९४॥
 नमस्कारं जिनेन्द्राणां विधायार्याजनस्य च । सकाशे वरधर्माया गणपाल्याः सशस्त्रिकाम् ॥९५॥
 स्थापयित्वा कृती सीतां कृत्वात्मानं च वर्णिनीम् । स्त्रीवेषधारिणिः सार्धं सुरूपैर्लक्ष्मणादिभिः ॥९६॥
 कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां बहुमङ्गलभूषिताम् । नरेन्द्रभवनद्वारं प्रतस्थे लीलयान्वितः ॥९७॥
 सुरेन्द्रगणिकानुल्लेखं वीक्ष्य तं वर्णिनी जनम् । सर्वैः पौरजनो लग्नः पश्चाद्गन्तुं सविस्मयः ॥९८॥
 सर्वलोकस्य नेत्राणि मनोऽपि च सुचेष्टिताः । हरन्त्यस्ता नृपागारं प्राप्ता द्वारि सुमण्डिताः ॥९९॥

कलिगाधिपति अतिवीर्यने जब देखा कि बहुत-से राजाओंको गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्प्राण हो गये हैं और साथ ही बहुत-सी सेनाका अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ । अब वह सब ओरसे सावधान है और बुद्धिमें वैरीसे बदला लेनेका विचार कर रणकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥८६-८७॥ भरत मानियोंमें श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतनेमें एक युद्धरूपी उपायको छोड़कर अन्य उपाय प्रयोगमें नहीं लाना चाहता ॥८८॥ यद्यपि तुम इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीत नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुझमें तो सूर्यको भी गिरानेकी शक्ति है किन्तु भरत इसी प्रदेशमें विद्यमान है अर्थात् यहाँसे बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्यासे निकलकर प्रकट होना उचित नहीं है ॥८९-९०॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्योंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरसकर गये हुए रात्रिके मेघोंके समान अत्यन्त प्रशंसनीय हैं ॥९१॥ इस प्रकार सलाह करते-करते रामको, अतिवीर्यके वश करनेका उपाय सूझ आया और उसके बाद सलाहका काम समाप्त हो गया ॥९२॥

अथानन्तर आत्मीयजनोंके साथ मिले हुए रामने, प्रमादरहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुखसे रात्रि व्यतीत की ॥९३॥ दूसरे दिन डेरेसे निकलकर रामने आर्यिकाओंसे सहित जिनमन्दिर देखा सो हाथ जोड़कर बड़ी भक्तिसे उसमें प्रवेश किया ॥९४॥ भीतर प्रवेश कर जिनेन्द्र भगवान् तथा आर्यिकाओंको नमस्कार किया । वहाँ आर्यिकाओंकी जो वरधर्मा नामकी गणिनी थी उसके पास सीताको रखा तथा सीताके पास ही अपने सब शस्त्र छोड़े । तदनन्तर अतिशय चतुर रामने अपने आपका नृत्यकारिणीका वेश बनाया और साथ ही अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदिने भी स्त्रियोंके वेष धारण किये ॥९५-९६॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र भगवान्की मंगलमयी पूजा कर सब लोगोंके साथ रामने लीलापूर्वक राजमहलके द्वारकी ओर प्रस्थान किया ॥९७॥ इन्द्रनर्तकीकी तुलना करनेवाली उन नर्तकियोंको देखकर आश्चर्यसे भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥९८॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाओं और सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाली वे नृत्यकारिणी सब लोगोंके नेत्र और मनको हरती हुई राजमहलके द्वारपर पहुँचीं ॥९९॥

१. नृत्यकारिणीम् । २. तुल्यं वीक्षितुं वर्णिनीं जनः म. ।

ते चतुर्विंशतिर्भक्त्या जिनेन्द्रा भक्तितत्परैः । वन्द्यन्तेऽस्माभिरित्येवं तेवातेवा^१ ध्वनिं पुरः ॥१००॥
 कृत्वा पुराणवस्तुनि गातुमुत्फुल्ललोचनाः । गम्भीरभारतीतानां सक्ताश्चरणयोषितः ॥१०१॥
 ध्वनिमभ्युतपूर्वं तं श्रुत्वा तासां नराधिपः । आजगाम गुणाकृष्टः काष्ठभार इवोदके ॥१०२॥
 ततो रेचकमादाय ललिताङ्गविवर्तनम् । नृपस्याभिमुखीभावं जगाम वरवर्तनी ॥१०३॥
 सस्मितालोकितैस्तस्या विगलदभूत्समुद्गमैः । गमकानुगतैः कम्पैस्तनभारस्य हारिणः ॥१०४॥
 मन्थरैश्चास्त्रचरैर्जघनस्य घनस्य च । तथा बाहुलताहारैः सुलीलकरपल्लवैः ॥१०५॥
 पादन्त्यासैर्लघुस्फुटविमुक्तधरणीतलैः । आशु संपादितैः स्थानैः केशपाशविवर्तनैः^२ ॥१०६॥
 त्रिकस्य बलनैर्मगगात्रसंदर्शितात्मभिः । कामबाणैरिभैर्लोकैः^३ सकलः समताड्यत ॥१०७॥
 मूर्च्छनाभिः स्वरैर्ग्रामैर्यथास्थानं निधोजितैः । नर्तकी सा जगौ वल्लु परिलीनसखीस्वरम् ॥१०८॥
 यत्र तत्र^४ समुद्देशे नर्तकी कुरुते स्थितिम् । तत्र तत्र सभा सर्वा नयनानि प्रयच्छति ॥१०९॥
 तस्या रूपेण चक्षुषि स्वरेण श्रवणेन्द्रियम् । मनांसि तद्द्रव्येनापि वदन्ति सदसो वृद्धम् ॥११०॥
 उत्फुल्लमुखराजीवा सामन्ता दानतत्परा । बभूवुर्निरलंकारा संख्यानाम्बरधारिणः^५ ॥१११॥
 'आतोद्यानुगतं नृत्यं तत्तस्यास्त्रिदशानपि । वशीकुर्वीत कैवाल्या^६ सुहरेष्वन्यजन्तुषु ॥११२॥

तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारतीकी गम्भीर तान खींचनेमें आसक्त थीं ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियोंने 'भक्तिमें तत्पर रहनेवाली हम सब चौबीस तीर्थंकरोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार करती हैं', यह कहकर सब प्रथम 'तेवा-लेवा' यह अव्यक्त ध्वनि की फिर पुराणोंमें प्रतिपादित वस्तुओंका गाना शुरू किया ॥१००-१०१॥ उन नृत्यकारिणियोंकी अभ्युतपूर्व ध्वनि सुनकर गुणोंसे खिचा राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस तरह कि पानीमें गुण अर्थात् रस्सीसे खिचा काष्ठका भार खींचनेवालेके पास आता है ॥१०२॥ तदनन्तर फिरकी लेकर सुन्दर अंगोंको मोड़ती हुए श्रेष्ठ नर्तकी राजाके सम्मुख गयी ॥१०३॥ वहाँ उसका मन्द-मन्द मुसकानके साथ देखना, भौंहोंका चलाना, विन्न मनुष्य ही जिसे समझ पाते थे ऐसे सुन्दर स्तनोंका कंपाना, धीमी-धीमी सुन्दर चालसे चलना, स्थूल नितम्बका मटकाना, भुजारूप लताओंका चलाना, उत्तम लीलाके साथ हस्तरूपी पल्लवोंका किराना, जिनमें शीघ्रतासे स्पर्श कर पृथिवीतल छोड़ दिया जाता था ऐसे पैर रखना, शीघ्रतासे नृत्यकी अनेक मुद्राओंका बदलना, केशपाशका चलाना, कटिकी अस्थिका हिलाना, तथा नाभि आदि शरीरके अवयवोंका दिखलाना आदि कामके बाणोंसे समस्त मनुष्य ताढ़े गये थे ॥१०४-१०७॥ वह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूर्च्छनाओं, स्वरों तथा ग्रामों—स्वरोंके समूहसे सखियोंके स्वरको अपने स्वरमें मिलाकर बहुत सुन्दर गा रही थी ॥१०८॥

वह नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थानमें ठहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थानमें अपने नेत्र लगा देती थी ॥१०९॥ सारी सभाके नेत्र उसके रूपसे, कान मधुर स्वरसे और मन, रूप तथा स्वर दोनोंसे मजबूत बँध गये थे ॥११०॥ जिनके मुखकमल विकसित थे ऐसे सामन्त लोग उन नर्तकियोंको पुरस्कार देते-देते अलंकाररहित हो गये थे उनके शरीरपर केवल पहननेके वस्त्र ही बाकी रह गये थे ॥१११॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! गायन-वादनसे सहित उस नृत्यकारिणीका वह नृत्य देवोंको भी वश कर सकता था फिर जिनका हरा जाना सरल

१. तेवा तेवा इत्यनुकरणशब्दम् । २. नानाशक्त्याश्चरण म. । ३. स्पष्ट म. । ४. विवर्तने म. । ५. इमैः इति छान्दासिकप्रयोगः । ६. च सद्देशे म. । ७. संख्यानां वरधारिणी म. । ८. आताप्यानुगं (?) म. ।
 ९. समरेष्वन्य ख. ।

विधाय वृषमादीनां चरितस्य प्रकीर्तनम् । संक्षेपेण वशीकृत्य समिति^१ सकलां भृशम् ॥११३॥
 संगीतेन समुद्युक्ता राजानमिति नर्तकी । दधाना परमां दीप्तिमुपालब्धु^२ सुदुस्सहम् ॥११४॥
 अतिवीर्यं किमेतत्ते दुष्टं व्यवसितं महत् । नयहीनमिदं वस्तु तेनात्र त्वं नियोजितः ॥११५॥
 किमिति स्वविनाशाय केकयानन्दनस्त्वया । शान्तचेताः शृगालेन केसरीव प्रकोपितः ॥११६॥
 एवं गतेऽपि विभ्राणः परमं विनयं द्रुतम् । संप्रसादय तं गत्वा यदि ते जीवितं प्रियम् ॥११७॥
 जाता विशुद्धवंशेषु वरक्रीडनभूमयः । माभूवन् विधवा भद्र तच्चैता वरयोपितः ॥११८॥
 पुतास्त्वया परित्यक्ता विमुक्ताशेषभूषणाः । ध्रुवं पुरा न शोभन्ते ताराश्चन्द्रमसा यथा ॥११९॥
 निवर्तय द्रुतं चित्तमशुब्धान्तत्परम् । उत्तिष्ठ व्रज निर्माणो^३ नमस्य भरतं सुधीः ॥१२०॥
 एवं कुरु न चेदेवं कुरुषे पुरुषाधम । ततोऽद्यैव विनष्टोऽसि संशयोऽत्र न विद्यते ॥१२१॥
 जीवत्येवानरण्यस्य पौत्रे राज्यं समीहसे । चकासति रजौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ॥१२२॥
 पतितस्याद्य नो रूपे मरणं ते समुद्गतम् । शलभस्येव मूढस्य दुष्पक्षस्य प्रियद्युतेः ॥१२३॥
 देवेन भरतेनामा गरुडेन महात्मना । अलगर्दाधमो भूत्वा प्रतिस्पर्धनमिच्छति ॥१२४॥
 ततो निर्भर्त्सनं स्वस्थ मरतस्य च शंसनम् । निशम्य संसदा साकमभूताग्नेक्षणो नृपः ॥१२५॥
 विरक्ता च सभात्यन्तपरं रुक्षितमानसा^४ । जुघूर्णणं ववेलेव भ्रूतरङ्गसमाकुला ॥१२६॥

बात थी ऐसे अन्य मनुष्योंकी तों बात ही क्या थी ? ॥११२॥ इस तरह संक्षेपसे ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके चरित्रका कीर्तन कर जब उस नर्तकीने समस्त सभाको अत्यन्त वशीभूत कर लिया तब वह संगीतसे परम दीप्तिको धारण करती हुई राजाको इस प्रकारका असह्य उलाहना देनेके लिए तत्पर हुई ॥११३-११४॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीतिसे रहित है, किसने तुझे इस कार्यमें लगाया है ? ॥११५॥ जिस तरह शृगाल सिंहको कुपित करता है उस तरह तूने शान्त चित्त भरतको अपना नाश करनेके लिए इस तरह क्यों कुपित किया है ? ॥११६॥ इतना सब होनेपर भी यदि तुझे अपना जीवन प्यारा है तो शीघ्र ही परम विनयको धारण करता हुआ जाकर भरतको प्रसन्न कर ॥११७॥ हे भद्र ! विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा उत्तम क्रोडाकी भूमिस्वरूप तेरी ये स्त्रियाँ विधवा न हों ॥११८॥ तुझसे रहित होनेपर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये हैं ऐसी ये उत्तम स्त्रियाँ चन्द्रमासे रहित ताराओंके समान निश्चित ही शोभत नहीं होंगी ॥११९॥ इसलिए अशुभ ध्यातमें जानेवाले अपने चित्तको शीघ्र ही लौटा, उठ, जा और मानरहित हो भरतको नमस्कार कर । तू बुद्धिमान् है ॥१२०॥ अतः ऐसा कर । हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायेगा इसमें संशय नहीं है ॥१२१॥ अनरण्यके पोता भरतके जीवित रहते ही तू राज्य चाहता है सो सूर्यके देदोप्यमान रहते चन्द्रमाकी क्या शोभा है ? ॥१२२॥ जिस प्रकार कान्तिके लोभी तथा कमजोर पंखोंवाले मूर्ख शलभका मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हम लोगोंके रूपपर आसक्त तथा छोटे सहायकोंसे युक्त तुझ मूढ़का आज मरण आ पहुँचा है ॥१२३॥ तू जलके साँपके समान तुच्छ होकर भी गरुड़के समान जो महात्मा राजा भरत हैं उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥१२४॥

तदनन्तर नृत्यकारिणीके मुखसे अपना तर्जन और भरतकी प्रशंसा सुनकर राजा अतिवीर्य सभाके साथ लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया अर्थात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥१२५॥ जिसका मन अत्यन्त रुक्ष हो गया था, जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रुकुटिरूपो तरंगोंसे व्याकुल थी ऐसी सारी सभा समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१२६॥

१. सम्मति म. । २. -मुपलब्धुं म. । ३. मान-रहितः । ४. अलगर्दी जलव्यालः । ५. पक्षक्षतमानसा म. ।

अतिवीर्यो रूपा कम्पो यावज्जग्राह सायकम् । तावदुत्पत्य नर्तक्या सविलासकृतभ्रमम् ॥१२७॥
मण्डलाग्रं समाक्षिप्य वीक्षमाणेषु राजसु । जीवग्राहं विषण्णात्मा केशेषु जगृहे द्रुवम् ॥१२८॥
उद्यम्य नर्तकी खड्गं पश्यन्ती नृपसंहतिम् । जगादाविनयी योऽत्र स मे वध्यो विसंशयम् ॥१२९॥
परित्यज्यातिवीर्यस्य पक्षं विनयमण्डनाः । भरतस्य द्रुतं पादौ नमत प्रियजीविताः ॥१३०॥
भरतो जयति श्रीमान् गुणस्फीतांशुमण्डलः । दशस्यन्दनवंशेन्दुलोकानन्दकरः परः ॥१३१॥
लक्ष्मीकुमुद्वती यस्य विकार्यं भजते तराम् । द्विषत्तपननिर्मुक्ता कुर्वतः परमाद्भुतम् ॥१३२॥
उज्जगाम ततो लोकवक्त्रेभ्य इति निस्वरः । अहो वृत्तमिदं चित्रमिन्द्रजालोपमं महत् ॥१३३॥
यस्य चारणकन्यानामिदमीदृग्विचेष्टितम् । भरतस्य स्वयं तस्य शक्तिः शक्रं जयेदपि ॥१३४॥
न विश्वः स किमस्माकं क्रुद्धो नाथः करिष्यति । अथवा सप्रणामेषु देवो यास्यति मार्दवः ॥१३५॥
ततः करिणमारुह्य राघवः सातिवीर्यकः । सहितः परिवर्गेण ययौ जिनवरालयम् ॥१३६॥
अवतीर्य गजात्तत्र प्रविश्य प्रमदान्वितः । चक्रे सुमहर्तो पूजां कृतमङ्गलनिस्वनः ॥१३७॥
वरधर्मापि सर्वेण संघेन सहितोपरम् । राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम् ॥१३८॥
अतिवीर्योऽत्र पद्येन लक्ष्मणाय समर्पितः । तस्यासौ वधमुद्युक्तः कर्तुमौच्यते सीतया ॥१३९॥
मावीवधोऽस्य लक्ष्मीमन् कन्धरां निष्ठुराशय । केशेषु मागृहीर्गाहं कुमारं भज सौम्यताम् ॥१४०॥
को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यद्यान्यापदं नराः । रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम् ॥१४१॥

क्रोधसे कांपते हुए अतिवीर्यने ज्योंही तलवार उठायी त्योंही नर्तकीने विलासपूर्वक विभ्रम दिखाते हुए उछलकर तलवार छीन ली और सब राजाओंके देखते-देखते अतिवीर्यको जीवित पकड़कर मजबूतीसे उसके केश बांध लिये ॥१२७-१२८॥ नर्तकीने तलवार उठाकर राजाओंकी ओर देखते हुए कहा कि यहाँ जो भी अविनय करेगा वह निःसन्देह मेरे द्वारा होगा ॥१२९॥ यदि आप लोगोंको अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्यका पक्ष छोड़कर विनयरूपी आभूषणसे युक्त हो बीघ्र ही भरतके चरणोंमें नमस्कार करो ॥१३०॥ जो लक्ष्मीसे युक्त है, गुण ही जिसकी विस्तृत किरणोंका समूह है, जो लोगोंको परम आनन्दका देनेवाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी शत्रुरूपी सूर्यसे निर्मुक्त होकर परम विकासको प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथके वंशका चन्द्रमा भरत जयवन्त है ॥१३१-१३२॥

तदनन्तर लोगोंके मुखसे इस प्रकारके शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इन्द्रजालके समान है ॥१३३॥ जिसकी नृत्यकारिणियोंकी यह ऐसी चेष्टा है उस भरतकी शक्तिका क्या ठिकाना ? वह तो इन्द्रको भी जीत लेगा ॥१३४॥ न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करनेवालोंपर वह अवश्य ही मार्दवभावको प्राप्त होगा ॥१३५॥ तदनन्तर राम अतिवीर्यको पकड़ हाथीपर सवार हो अपने परिजनके साथ जिनमन्दिर गये ॥१३६॥ वहाँ उन्होंने हाथीसे उतरकर बड़े हर्षसे मन्दिरके भीतर प्रवेश किया और मंगलमय शब्दोंका उच्चारण कर बड़ी भारी पूजा की ॥१३७॥ मन्दिरमें सर्वसंघके साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी ठहरी हुई थीं रामने सीताके साथ सन्तुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥१३८॥ यहाँ रामने अतिवीर्यको लक्ष्मणके लिए सौंप दिया और वे उसका वध करनेके लिए उद्यत हुए तब सीताने कहा कि हे लक्ष्मीधर ! निष्ठुर अभिप्रायके धारी हो इसकी ग्रीवा मत छेदो और न जोरसे इसके केश ही पकड़ो । हे कुमार ! सौम्यताको प्राप्त होओ ॥१३९-१४०॥ इस बेचारेका क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मोंकी सामर्थ्यसे आपत्तिको प्राप्त होते हैं तथापि सज्जनताको धारण करनेवाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते हैं ॥१४१॥

१. सहितः म. । २. भणितं । ३. साधुना म. ।

इतरोऽपि खलीकतुं साधूनां नोचितो जनः । किमुतायं नरेशानां सहस्राणां प्रपूजितः ॥१४२॥
 कुर्वेनं मुक्तकं भद्रं भवतायं वशीकृतः । जानामः स्वस्थं सामर्थ्यं कानुगच्छति सांप्रतम् ॥१४३॥
 गृहीत्वा समयेनास्य सन्मानमुपलम्बिताः । विमुच्यन्ते पुनर्युयो मर्यादयं चिरन्तनो ॥१४४॥
 इत्युक्तो मस्तके कृत्वा करराजीवकुड्मलम् । जगाद लक्ष्मणो देवि यद्ब्रवीषि तथैव तत् ॥१४५॥
 आस्तां स्वामिनि ते वाक्यान्तावदस्य विमोचनम् । सुराणामप्यमुं पूज्यं कुर्वीयं त्वत्प्रसादतः ॥१४६॥
 एवं प्रशान्तसंरम्भे सद्यो लक्ष्मीधरे स्थिते । अतिवीर्यो विबुद्धात्मा स्तुत्वा पद्मभाषत ॥१४७॥
 साधु साधु त्वया चित्रं कृतमीदृग्विचेष्टितम् । कदाचिदप्यनुत्पन्ना ममाद्य मतिरुदगाता ॥१४८॥
 विमुक्तहारमुकुटं दृष्ट्वा तं करुणान्वितः । विश्रब्धं रावचोऽवोचत् सौम्याकारपरिग्रहः ॥१४९॥
 मा वजीरङ्ग दैन्यं त्वं धत्स्व धैर्यं पुरातनम् । महतामेव जायन्ते संपदो विपदन्विताः ॥१५०॥
 न चात्र काचिदापत्ते नद्यावर्ते क्रमागते । भरतस्य वशो भूत्वा कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५१॥
 अतिवीर्यस्ततोऽवोचच्च मे राज्येऽधुना स्पृहा । राज्येन मे फलं दत्तमधुनान्यत्र सज्जयते ॥१५२॥
 आसीन्मया कृता बांछा हिमवत्सागरावधि । जेतुं वसुन्धरा येन विभ्रता मानमुत्तमम् ॥१५३॥
 सोऽहं स्वमानमुन्मूल्य भूत्वा सारविबर्जितः । कुर्यां प्रणतिभन्यस्य कथं पुरुषतां दधत् ॥१५४॥
 पट्खण्डा यैरपि क्षोणी पालितेयं महानरैः । न नृप्तास्तेऽप्यहं प्रामैः पञ्चभिस्तु किमेतकैः ॥१५५॥
 जन्मान्तरकृतस्यास्य बलितां पश्य कर्मणः । छायाहानिग्रहं येन राहुणेन्दुरिवाहतः ॥१५६॥

जो सज्जन पुरुष हैं उन्हें साधारण मनुष्यको भी दुःखी करना उचित नहीं है फिर यह तो हजारों राजाओंका पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥१४२॥ हे भद्र ! इसे आपने वश कर ही लिया है अतः इसे छोड़ दो । अपनी सामर्थ्यको जानता हुआ यह अब कहाँ जायेगा ? ॥१४३॥ प्रबल शत्रुओंको पकड़कर तदनन्तर सन्धिके अनुसार सम्मान कर उन्हें छोड़ दिया जाता है यह चिरकालकी मर्यादा है ॥१४४॥

सीताके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणने हस्तकमल जोड़ मस्तकपर लगाते हुए कहा कि हे देवि ! आप जो कह रही हैं वह वैसा ही है ॥१४५॥ हे स्वामिनि, आपकी आज्ञासे इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसादसे ऐसा कर सकता हूँ कि यह देवताओंका भी पूज्य हो जाये ॥१४६॥

इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मणके शान्त होनेपर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ अतिवीर्य रामकी स्तुति कर कहने लगा ॥१४७॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टा की सो बड़ा भला किया । मेरी जो बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हुई वह आज उत्पन्न हो गयी ॥१४८॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतारकर रख दिये । यह देख सौम्य आकारको धारण करनेवाले दयालु रामने विश्वास दिलाते हुए कहा कि हे भद्र ! तू दीनताको प्राप्त मत हो, पहले-जैसा धैर्य धारण कर, विपत्तियोंसे सहित सम्पदाएँ महापुरुषोंको ही प्राप्त होती हैं ॥१४९-१५०॥ अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है ! इस क्रमागत नन्दावर्तनगरमें भरतका आज्ञाकारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥१५१॥

तदनन्तर अतिवीर्यने कहा कि अब मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है । राज्यने मुझे फल दे दिया है । अब दूसरे ही अवस्थामें लगना चाहता हूँ ॥१५२॥ उत्कट मानको धारण करते हुए मैंने हिमवान्से लेकर समुद्र तककी सारी पृथिवी जीतनेकी इच्छा की थी सो मैं अपने मानको उखाड़कर निःसार हो गया हूँ अब मैं पुरुषत्वको धारण करता हुआ अन्यको नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥१५३-१५४॥ जिन महापुरुषोंने इस छहखण्डकी रक्षा की है वे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पाँच गाँवोंसे कैसे सन्तुष्ट हो सकता हूँ ? ॥१५५॥ जन्मान्तरमें किये हुए इस कर्मकी बलवत्ता

१. इतरो ये म. । २. नन्दावर्ते क्रमागते म., नन्दावर्तकभागते ख. ।

मानुष्यकमिदं जातं सारमुक्तं मयाधुना । सुराणामपि वातैषा किमन्यत्राभिधीयताम् ॥१५७॥
 सोऽहं पुनर्भवाद्भीरुस्त्वया संप्रतिबोधितः । तथाविधां मजे चेष्टां यया मुक्तिरवाप्यते ॥१५८॥
 इत्युक्त्वा क्षमयित्वा तं परिवर्गसमन्वितम् । गत्वा केसरविक्रान्तो मुनिं श्रुतिधरश्रुतिम् ॥१५९॥
 कराब्जकुटुमलाङ्केन विधाय शिरसा नतिम् । जगाद नाथ बाष्पामि दीक्षां दैगम्बरीमिति ॥१६०॥
 आचार्येणैवमित्युक्ते परित्यज्यांशुकादिकम् । केशलुब्धं विधायासौ महाव्रतधरोऽभवत् ॥१६१॥
 आत्मार्यनिरस्तस्यक्तरागद्वेषपरिग्रहः । विजहार क्षितिं धीरो यत्रास्तमितवास्यसौ ॥१६२॥
 क्रूरधापदयुक्तेषु गहनेषु वनेषु सः । चकार वसतिं निर्भोगहरेषु च भूभृताम् ॥१६३॥

उपजातिः

विमुक्तनिःशेषपरिग्रहाशं गृहीतचारित्र्यमरं सुशीलम् ।
 नानातपःशोषितदेहसुखं महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६४॥
 रत्नत्रयापादितचारुभूषं दिगम्बरं साधुगुणावतंसम् ।
 संप्रस्थितं योग्यवरं विमुक्तेर्महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६५॥
 इदं परं चेष्टितमातिवीर्यं शृणोति यो यश्च सुधीरधीते ।
 प्राप्नोति वृद्धिं सदसोऽपि मध्ये रविप्रमोऽसौ व्यसनं न लोकः ॥१६६॥
 इत्यापे रविपेणाचार्यप्रांते पद्मचरितेऽतिवीर्यनिष्क्रमणाभिधानं नाम सप्तत्रिंशत्तमं पर्व ॥३७॥

तो देखो कि जिस प्रकार राहु चन्द्रमाको कान्तिरहित कर देता है उसी प्रकार इसने भुझे कान्ति-
 रहित—निस्तेज कर दिया ॥१५६॥ जिस मनुष्य पर्यायके लिए देव भी चर्चा करते हैं औरोंकी तो
 बात ही क्या है उस मनुष्य पर्यायको मैंने अब तक निःसार खोया ॥१५७॥ अब मैं दूसरा जन्म
 धारण करनेसे भयभीत हो चुका हूँ इसलिए आपसे प्रतिबोध पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे
 भुक्ति प्राप्त होती है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर परिजन सहित रामसे क्षमा कराकर सिंहके समान
 शूरवीरताकी धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराजके पास गया और अंजलियुक्त
 शिरसे नमस्कार कर बोला कि हे नाथ ! मैं दैगम्बरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥१५९-१६०॥
 'एवमस्तु' इस प्रकार आचार्यके कहते ही वह वस्त्रादि त्यागकर तथा केश लोंचकर महाव्रतका
 धारी हो गया ॥१६१॥ आत्माके अर्थमें तत्पर, तथा राग-द्वेष आदि परिग्रहसे रहित होकर वह
 धीर-वीर पृथिवीमें विहार करने लगा । विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह
 ठहर जाता था ॥१६२॥ सिंह आदि दुष्ट जानवरोंसे युक्त सघन वनों तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें वह
 निर्भय होकर निवास करता था ॥१६३॥ जिसने समस्त परिग्रहकी आशा छोड़ दी थी, जिसने
 चारित्रिका भार धारण किया था, जो उत्तम शीलसे युक्त था, नाना प्रकारके तपसे जिसने अपना
 शरीर सुखा दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६४॥
 सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी मनोहर आभूषणोंसे जो सहित थे, दिखाएँ ही
 जिनके अम्बर—वस्त्र थे, मुनियोंके अट्टाईस मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होंने कर्मरूपी
 शत्रुओंको हरनेके लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्तिके योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्यको
 नमस्कार करो ॥१६५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनिके इस उत्कृष्ट
 चरितकी जो बुद्धिमान् सुनता है अथवा पढ़ता है वह सभाके बीच बुद्धिकी प्राप्त होता है तथा
 सूर्यके समान प्रभाकी धारण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें राजा अतिवीर्यकी
 दीक्षाका वर्णन करनेवाला सैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३७॥



अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य तनयं नयकोविदः । विजयस्यन्दनामिष्यमभ्यषिञ्चत्पितुः पदे ॥१॥
 दर्शिताशेषचित्तोऽसावरविन्दातनुभुवम् । स्वसारं रतिमालास्यां लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥२॥
 एवमस्त्वित्यमीष्टायां^१ तस्यां पद्मेन लक्ष्मणः । लक्ष्मीमिवाङ्गमायातां ज्ञात्वा^२ सप्रमदोऽभवत् ॥३॥
 ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां विस्मयदायिनीम् । इयाय विजयस्थानं लक्ष्मणाद्यन्वितो बलैः ॥४॥
 दीक्षां श्रुत्वातिवीर्यस्य नर्तकीग्रहहेतुकीम् । शत्रुघ्नं हाससध्वानं निषिध्य भरतोऽवदत् ॥५॥
 अतिवीर्यो महाधन्यस्तस्य किं भद्रं हास्यते । त्यक्त्वा यो विषयान् कष्टान् परां शान्तिमुपाश्रितः ॥६॥
 प्रभावं तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् । मुनिर्यो रिपुरासीक्षः संप्राप्तोऽसौ प्रणम्यताम् ॥७॥
 श्लाघामित्यतिवीर्यस्य यावरकुर्वन् स तिष्ठति । विजयस्यन्दनस्तावत्प्राप्तः सामन्तमध्यगः ॥८॥
 प्रणम्य भरतायासौ स्थितः संकथया क्षणम् । ज्यायसीं रतिमालाया नाम्ना विजयसुन्दरीम् ॥९॥
 उपनिन्ये शुभां कन्यां नानालंकारधारिणीम् । कोशं च विपुलं सारं साधनं च प्रसन्नदृक् ॥१०॥
 कन्यामेकामुपादाय केकयानन्दनस्ततः । तस्यैवानुमतं सर्वं स्थितिरेवा महात्मनाम् ॥११॥
 कौतुकोऽकलिकाकीर्णमानसोऽथ महाजैवः । अश्वैः प्रववृते द्रष्टुमतिवीर्यदिगम्बरम् ॥१२॥
 कासौ महामुनिः कासाविति पृच्छन्मुभावनः । एषोऽयमित्यमुं भृत्यैः कथ्यमानमियाय सः ॥१३॥

अथानन्तर न्यायके वेत्ता श्रीरामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका उसके पिताके पदपर अभिषेक किया ॥१॥ उसने अपना सब धन दिखाया और माता अरविन्दाकी पुत्री अपनी रत्न-माला नामक बहन लक्ष्मणके लिए देनी कही सो रामने उसे 'एवमस्तु' कहकर स्वीकृत किया । रत्नमालाको पा, मानो लक्ष्मी ही गोदमें आयी है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥२-३॥ तदनन्तर लक्ष्मण आदिसे सहित राम, जिनेन्द्र भगवान्की आश्रयदायिनी पूजा कर राजा पृथ्वीधर-के विजयपुर नगर वापस आये ॥४॥ नर्तकीके पकड़नेके कारण राजा अतिवीर्यने दीक्षा धारण की है यह सुनकर शत्रुघ्न हास्य करने लगा सो भरतने मना कर कहा ॥५॥ कि हे भद्र ! जो कष्टकारी विषयोंको छोड़कर परम शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महाधन्य है । उसकी तू क्या हँसी करता है ? ॥६॥ जो देवोंके लिए भी दुर्लभ है ऐसा तपका प्रभाव देख । जो हमारा शत्रु था अब मुनि होनेपर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥७॥ इस प्रकार अतिवीर्यकी प्रशंसा करता हुआ भरत जबतक बैठा था तबतक अनेक सामन्तोंके साथ विजयरथ वहाँ आ पहुँचा ॥८॥ वह भरतको प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हुआ क्षण भर बैठा । तदनन्तर उसने रतिमालाकी बड़ी बहन विजयसुन्दरी नामकी शुभ कन्या जो कि नाना अलंकारोंको धारण कर रही थी भरतके लिए समर्पित की । साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टिसे बहुत भारी खजाना और उत्तम सेना भी प्रदान की ॥९-१०॥ तदनन्तर उस अद्वितीय कन्याको पाकर भरत बहुत प्रसन्न हुआ । उसने विजयरथकी इच्छानुकूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी यही रीति है ॥११॥

अथानन्तर जिसका मन कौतुक और उत्कण्ठासे व्याप्त था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ोंसे अतिवीर्य मुनिराजके दर्शन करनेके लिए चला ॥१२॥ वह उत्तम भावनासे सहित था तथा पूछता जाता था कि वे महामुनि कहाँ हैं ? और सेवक कहते जाते थे कि वे आगे विराजमान हैं ॥१३॥

ततो विषमपाषाणनिवहात्यन्तदुर्गमम् । नानाद्रुमसमाकीर्णं कुसुमाभोदवासितम् ॥१४॥
 तज्जेन कथितं रम्यं पर्वतं श्वापदाकुलम् । आरुरोहावतीर्याश्वादिनीताकारमण्डितः ॥१५॥
 रोषतोषविनिर्मुक्तं प्रशान्तकरणं विभुम् । शिलातलनिषण्णं तमेकसिंहमिवाभयम् ॥१६॥
 अतिवीर्यमुनिं दृष्ट्वा सुघोरतपसि स्थितम् । शुभध्यानगतात्मानं ज्वलन्तं श्रमणश्रिया ॥१७॥
 उत्कलनयनी लोकः सर्वो हृष्टतनूहः । विस्मयं परमं प्राप्तो ननाम रचिताञ्जलिः ॥१८॥
 कृत्वास्थ महतीं पूजां भरतः श्रमणप्रियः । प्रणम्य पादयोरूचे भक्त्या विनतविग्रहः ॥१९॥
 नाथ शूरस्वमेवैकः परमार्थविशारदः । येनेयं दुर्धरा दीक्षा धृता जिनवरोदिता ॥२०॥
 विशुद्धकुलजातानां पुरुषाणां महात्मनाम् । शातसंसारसाराणामीदृगेव विचेष्टितम् ॥२१॥
 मनुष्यलोकमासाद्य फलं यदमिवाञ्छयते । तदुपात्तं त्वया साधो वयमत्यन्तदुःखिनः ॥२२॥
 क्षन्तव्यं दुरितं किञ्चिदस्माभिस्त्वथीहितम् । कृतार्थोऽसि नमस्तुभ्यं प्राप्तायातिप्रतीक्ष्यताम् ॥२३॥
 इत्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा महासाधोः प्रदक्षिणाम् । अवतीर्णः कथां मौनीं^१ कुर्वाणो धरणीधरात् ॥२४॥
 स्थूरीपृष्ठं समाकृष्टं पूर्यमाणः सहस्रशः । सामन्तैः प्रस्थितोऽयोध्यां विभवाग्भोधिमध्यगः ॥२५॥
 महासाधनसामन्तमण्डलस्यान्तरे स्थितः । शुशुभेऽसौ यथा जम्बूद्वीपोऽन्यद्वीपमध्यगः ॥२६॥
 क गतास्ता नु नर्तक्यः कृतलोकापुरञ्जनाः । स्वजीवितेऽपि विर्लोमा विदधुर्या मयि प्रियम् ॥२७॥

तदनन्तर जो ऊँचे-नीचे पाषाणोंके समूहसे अत्यन्त दुर्गम था, नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त था, फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित था, और जंगली जानवरोंसे युक्त था ऐसे जानकार सेवकोंके द्वारा बताया हुआ पर्वतपर भरत चढ़ा और घोड़ेसे उतरकर विनीत वेषसे शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराजके दर्शनके लिए चला । ॥१४-१५॥ वे मुनिराज हर्ष-विषादसे रहित थे, शान्त इन्द्रियोंके धारक थे, विभु थे, शिलातलपर विराजमान थे, एक सिंहके समान निर्भय थे, घोर तपमें स्थित थे, शुभ ध्यानमें लीन थे और मुनिपनेकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान थे ॥१६-१७॥ मुनिराजके दर्शन कर सब लोगोंके नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीरमें हर्षसे रोमांच निकल आये । सभीने परम आश्चर्यको प्राप्त हो अंजलि जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥१८॥ जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरतने उन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की, चरणोंमें प्रणाम किया और फिर भक्तिसे नतशरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! जिसने यह जिनेन्द्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थके जाननेवाले हो ॥१९-२०॥ विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा संसारके सारको जाननेवाले महापुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा होती है ॥२१॥ मनुष्य लोक पाकर जिस फलकी इच्छा की जाती है हे साधो ! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यन्त दुखी हैं ॥२२॥ हे नाथ ! हम लोगोंसे आपके विषयमें जो कुछ अतिष्ट-पापरूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए । आप कृतकृत्य हैं, अतिशय पूज्यताको प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥२३॥ इस प्रकार महामुनिराज अतिवीर्यसे कहकर तथा अंजलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा करता हुआ भरत पर्वतसे नीचे उतरा ॥२४॥ तदनन्तर हजारों सामन्त जिसके साथ थे तथा जो विभवरूपी समुद्रके बीचमें गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनीके पृष्ठपर सवार हो अयोध्याके लिए वापस चला ॥२५॥ बड़ी भारी सेना और सामन्तोंके बीचमें स्थित भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपोंके मध्यमें स्थित जम्बूद्वीप ही हो ॥२६॥ भरत प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवनका भी लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगोंकी अनुरंजित करनेवाली वे नर्तकियाँ कहाँ गयी होंगी ? ॥२७॥ राजा

१. वस्थितम् म. । २. दुःखिताः म. । ३. अतिपूज्यताम् । ४. मुनिसंबन्धिनीम् । ५. हस्तिनीपृष्ठम् ।

पुरः कृत्वातिवीर्यस्य महीयां परमां स्तुतिम् । नर्तकीभिः कृतं कर्म चित्रमेतदहो परम् ॥२८॥
 स्त्रीणां कृतोऽथवा शक्तिरीदृशी विष्टपेऽखिले । जिनशासनदेवीभिर्नूनमेतदनुष्ठितम् ॥२९॥
 चिन्तयन्नयमित्यादि सुप्रसङ्गेन चेतसा । जगाम धरणीं पश्यन्नानासस्यसमाकुलाम् ॥३०॥
 व्यासाशेषजगत्कीर्तिः प्रभावं परमं दधत् । सशत्रुघ्नो विवेशासौ विनीता^१ परमोदयः ॥३१॥
 साकं विजयसुन्दर्या तस्थौ तत्र रतिं भजन् । सुलोचनापरिष्वक्तो यथा जलदनिस्वनः^२ ॥३२॥
 आनन्दं सर्वलोकस्य कुर्वाणो रामलक्ष्मणौ । कंचित्कालं पुरे स्थित्वा पृथिवीधरमभ्रुतः ॥३३॥
 जानक्या सह संमन्य कर्तव्याहितमानसौ । मूयः प्रस्थातुमुद्युक्तौ ससुद्देशमभीप्सितम् ॥३४॥
 वनमाला ततोऽवोचल्लक्ष्मणं चारुलक्षणा । सवाष्पे निभ्रती नेत्रे तरत्तरलतारके ॥३५॥
 अत्रश्यं यदि भोक्तव्या मन्दभाग्याहकं त्वया । पुरैव रक्षिता कस्मान्मुमूर्षन्ती वद प्रिय ॥३६॥
 सौमित्रिनिगदद् भद्रे विषादं मा गमः प्रिये । अत्यल्पेनैव कालेन पुनरेमि वरानने ॥३७॥
 सम्यग्दर्शनहीना यां गतिं यान्ति सुविभ्रमे । ज्ञेयं तौ पुनः क्षिप्रं न चेदेमि त्वान्तिकम् ॥३८॥
 नराणां मानदग्धानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्रिये पापेन लिप्येऽहं यदि नायामि तेऽन्तिकम् ॥३९॥
 रक्षितव्यं पितृवार्क्यमस्मामिः प्राणवल्लभे । दक्षिणोदन्वतः कूलं गन्तव्यं निर्विचारणम् ॥४०॥
 मलयोपत्यकां^३ प्राप्य कृत्वा परममालयम् । नेष्यामि भवतीमेत्य वरोऽ धृतिमात्रजं^४ ॥४१॥
 समर्थैः सान्त्वयित्वेति वनमालां सुमापितैः । भेजे लाङ्गलिनः पार्श्वं सुमित्राकुक्षिसंभवः ॥४२॥

अतिवीर्यके सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियोंने जो काम किया। अहो! वह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥२८॥ अथवा समस्त संसारमें स्त्रियोंकी ऐसी शक्ति कहाँ है? निश्चयसे यह कार्य जिनशासनकी देवियोंने किया है।' तदनन्तर जो नाना प्रकारके धान्यसे युक्त पृथिवीको देख रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त थी, जो परम प्रभावकी धारण कर रहा था और जो उत्कृष्ट अभ्युदयसे युक्त था ऐसे भरतने शत्रुघ्नके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२९-३१॥ वहाँ विजयसुन्दरीके साथ प्रीतिको धारण करता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघस्वर (जयकुमार) के समान सुखसे रहने लगा ॥३२॥

अथानन्तर सब लोगोंको आनन्द उत्पन्न करते हुए राम-लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधरके नगरमें रहे फिर जानकीके साथ सलाह कर आगेका कार्य निश्चित करते हुए इच्छित स्थानपर जानेके लिए उद्यत हुए ॥३३-३४॥ तदनन्तर जो सुन्दर लक्षणोंसे युक्त थी और आँसुओंसे भीगे चंचल कनीनिकाओंवाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मणसे बोली कि हे प्रिय! यदि मुझ मन्दभाग्याको तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही मरनेसे क्यों बचाया था सो कहो ॥३५-३६॥ तब लक्ष्मणने कहा कि हे भद्रे! हे प्रिये! हे वरानने! विषादको प्राप्त मत होओ। मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥३७॥ हे उत्तम विलासोंको धारण करनेवाली प्रिये! यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापस न आऊँ तो सम्यग्दर्शनसे होन मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं उसी गतिको प्राप्त होऊँ ॥३८॥ हे प्रिये! यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओंकी निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्योंके पापसे लिप्त होऊँ ॥३९॥ हे प्राणवल्लभे! हमें पिताके वचनकी रक्षा करनी है और बिना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्रके तट जाना है ॥४०॥ वहाँ मलयाचलकी उपत्यकामें जाकर उत्तम भवन बनाऊँगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा। हे सुन्दर जाँघोंवाली प्रिये! तब तक धैर्य धारण करो ॥४१॥ इस प्रकार उत्तम शब्दोंसे युक्त शपथोंके द्वारा वनमालाको शान्त कर लक्ष्मण रामके पास जा पहुँचे ॥४२॥

१. अयोध्याम् । २. जयकुमारः, मेघस्वर इति तस्यैवापरं नाम । ३. मलयापत्यकां म. । ४. मात्रत म. ।
 ५. शपथैः । समग्रैः म. ।

ततः सुसजने काले विदितौ तौ न केनचित् । निर्गन्ध नगराद्गन्तुं प्रवृत्तौ सह सीतया ॥४३॥
 प्रभाते तद्विनिसुक्तं पुरं दृष्ट्वाखिलो जनः । परमं शोकमापन्नः कृच्छ्रेणाधारयत्तनुम् ॥४४॥
 वनमाला गृहं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन विवर्जितम् । समयेषु समालम्ब्य जीवितं शोकिनी स्थिता ॥४५॥
 विहरन्तौ ततः क्षोणीं लोकविस्मयकारिणौ । सुमुदाते महासत्त्वौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
 युवत्युज्ज्वलवल्लीनां मनोनयनपल्लवान् । तावनद्भृतुषारेण दहन्तावाटतुः शनैः ॥४७॥
 कस्य पुण्यवतो गोत्रमेताभ्यां समलंकृतम् । सुजाता जननी सैका लोके यैतावजीजनत् ॥४८॥
 धन्येयं वनितैताभ्यां समं या चरति क्षितिम् । ईदृशं यदि देवानां रूपं देवास्ततः स्फुटम् ॥४९॥
 कुतः समागतावेतौ व्रजतो वा कः सुन्दरौ । वाञ्छतः किमिमौ कर्तुं सृष्टिरीदृगियं कथम् ॥५०॥
 सख्योऽनेन पथा दृष्टौ पुण्डरीकनिरीक्षणौ । व्रजन्तौ सहितौ नार्या कच्चिन्नन्दनिमाननौ ॥५१॥
 यदिमौ शोभिनी मुग्धे मनुष्यावथवा सुरौ । तत्किमर्थं त्वया शोको धार्यते गतलज्जया ॥५२॥
 अयि मूढे न पुण्येन नितान्तं भूरिणा विना । लभ्यते सुचिरं द्रष्टुमेवंविधनराकृतिः ॥५३॥
 निवर्तस्व भज स्वास्थ्यं स्वस्तं वसनमुद्धर । मा नैपीर्लोचने खेदमतिमात्रप्रसारिते ॥५४॥
 नेत्रमानसचौराभ्यां दृष्टाभ्यामपि बालिके । निष्ठुराभ्यां किमेताभ्यां काम्यामपि धृतिं मज ॥५५॥
 इत्याद्यालापसंसक्तं कुर्वाणावबलाजनम् । रेमाते शुद्धचित्तौ तौ स्वेच्छाविहृतिकारिणौ ॥५६॥
 नानाजनपदाक्षोणीं पर्यव्य धरिणीमिमौ । क्षेमाञ्जलिसमालम्बानं संप्राप्तौ परमं पुरम् ॥५७॥
 उद्याने निकटे तस्य जलदोत्करसंनिभे । अवस्थिताः सुखेनैते यथा सौमनसे सुराः ॥५८॥

तदनन्तर जब सब लोग सो गये तब किसीके बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे निकलकर आगेके लिए चल पड़े ॥४३॥ जब प्रभात हुआ तब नगरको उनसे रहित देख समस्त जन परम शोकको प्राप्त हुए तथा बड़े कष्टसे शरीरको धारण कर सके ॥४४॥ वनमाला भी घरको लक्ष्मणसे रहित देख बहुत शोकको प्राप्त हुई तथा लक्ष्मणके द्वारा की हुई शपथोंका आश्रय ले जीवित रही ॥४५॥ तदनन्तर महान् धैर्यके धारक राम-लक्ष्मण पृथ्वीपर विहार करते हुए परम आनन्दको प्राप्त हुए । उन्हें देख लोगोको आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥४६॥ वे तरुण स्त्री-रूपी उज्ज्वल लताओंके मन और नेत्ररूपी पल्लवोंको कामरूपी तुषारसे जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥४७॥ हे सखि ! इन दोनोंने किस पुण्यात्माका कुल अलंकृत किया है ? वह कौन-सी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनोंको जन्म दिया है ? ॥४८॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है । यदि ऐसा रूप देवोंका होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥४९॥ ये सुन्दर पुरुष कहाँसे आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? और क्या करना चाहते हैं इनको यह ऐसी रचना कैसे हो गयी ? ॥५०॥ जिनके नेत्र कमलके समान तथा मुख चन्द्रमाके तुल्य हैं ऐसे दो पुरुष एक स्त्रीके साथ इस मार्गसे जा रहे थे सो हे सखियो ! तुमने देखे ॥५१॥ हे मुग्धे ! ये अतिशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य हों अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किस लिए धारण कर रही है ? ॥५२॥ अयि मूर्ख ! ऐसे मनुष्योंका रूप बहुत भारी पुण्यके बिना चिरकाल तक देखनेको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ इसलिए लौट जा, स्वस्थ हो, नीचे खिसके हुए वस्त्रको सँभाल और अत्यधिक पसारे हुए नेत्रोंको खेद मत प्राप्त करा ॥५४॥ अरी बाले ! नेत्र और मनको चुरानेवाले इन कठोर पुरुषोंके देखनेसे क्या प्रयोजन है ? धीरज धर ॥५५॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंकी वार्तालाप करनेमें तत्पर करते हुए शुद्धचित्तके धारक वे दोनों स्वेच्छासे विहार कर रहे थे ॥५६॥ इस प्रकार नाना देशोंसे व्याप्त पृथिवीमें विहार करते हुए वे क्षेमाञ्जलि नामके परम सुन्दर नगरमें पहुँचे ॥५७॥ उस नगरके निकट ही वे मेघसमूहके समान सुन्दर एक उद्यानमें सुखपूर्वक इस प्रकार ठहर गये

१. मेघसमूहसदृशे ।

अन्नं वरगुणं भुक्त्वा लक्ष्मणेनोपसाधितम् । माध्वीकं सीतया सार्धमसेवत हलायुधः ॥५९॥
 प्रासादगिरिमालाभिस्ततो हृतनिरीक्षणः । लक्ष्मणः पद्मतोऽनुज्ञां प्राप्य प्रश्रययाचिताम् ॥६०॥
 दधानः प्रवरं माल्यं पीताम्बरधरः शुभः । स्वैरं क्षेमाञ्जलिं द्रष्टुं प्रतस्थे चारुविभ्रमः ॥६१॥
 नानालतोपगूढानि काननानि वराण्यसौ । सरितः स्वच्छतोयाश्च शुभ्राभ्रसमसैकताः ॥६२॥
 विचित्रघातुरङ्गाश्च परिक्रीडनपर्वतान् । देवधामानि तुङ्गानि कूपान् वापीः सभाः प्रपाः ॥६३॥
 लोकं च विविधं पश्यन् दृश्यमानः सविस्मयम् । विवेश नगरं धीरो नानाव्यापारसंकुलम् ॥६४॥
 शृणु शृण्वति तन्नायं प्रधानविशिखागतम् । अशृणोत्पौरतः शब्दमिति विश्रब्धमापितम् ॥६५॥
 पुरुषः कोऽन्वसौ लोके यो मुक्तां राजपाणिना । शक्तिं प्रसह्य शूरेन्द्रो जितपद्मां गृहीष्यति ॥६६॥
 स्वर्गे राज्यं ददामीति राजा चेत्प्रतिपद्यते । तथापि नानया कृत्यं कथया शक्तियातया ॥६७॥
 जातश्चाभिमुखः शक्तेः प्राणैश्च परिवर्जितः । किं करिष्यति कन्यास्य राज्यं वा त्रिदशालये ॥६८॥
 समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जीवितम् । तदर्थमितरन् सर्वमिति को नावगच्छति ॥६९॥
 श्रुत्वैवं कौतुकी कंचिदथ पप्रच्छ मानवम् । भद्र ! का जितपद्मेयं यदर्थं भाषते जनः ॥७०॥
 सोऽवोचन्मृत्युकन्यासावतिपण्डितमानिनी । किं न ते विदिता सर्वलोकविख्यातकीर्तिका ॥७१॥
 एतन्नगरनाथस्य राज्ञः शत्रुदमश्रुतेः । कनकाभासमुत्पन्ना दुहिता गुणशालिनी ॥७२॥
 यतोऽनया जितं पद्मं कान्त्या वदनजातया । पद्मा च सर्वगात्रेण जितपद्मोदिता ततः ॥७३॥

जिस प्रकार कि सौमनस वनमें देव ठहर जाते हैं ॥५८॥ वहाँ लक्ष्मणके द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर रामने सीताके साथ दाखोंका मधुर पेय दिया ॥५९॥

तदनन्तर बड़े-बड़े महलरूपी पर्वतोंकी पंक्तियोंसे जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण वितनपूर्वक रामसे आज्ञा प्राप्त कर इच्छानुसार क्षेमांजलि नगर देखनेके लिए चले । उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीतवस्त्र धारण किये हुए थे तथा सुन्दर विलाससे सहित थे ॥६०-६१॥ नाना लताओंसे आलिंगित उत्तमोत्तम वनों, स्वच्छ जलसे भरी तथा शुक्लमेघोंके समान उज्ज्वल तटोंसे शोभित नदियों, नाना प्रकारकी धातुओंसे रंग-बिरंगे क्रोडा-पर्वतों, ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर, कुओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकारके मनुष्योंको देखते हुए उन्होंने नाना प्रकारके व्यापार-कार्योंसे युक्त नगरीमें बड़ी धीरतासे प्रवेश किया । लोग उन्हें बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे ॥६२-६४॥ जब ये नगरके प्रधान मार्गमें पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवासीसे निश्चिन्ततापूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥६५॥ वह किसीसे कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, संसारमें ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजाके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहकर 'जितपद्मा' कन्याको ग्रहण करेगा ? ॥६६॥ यदि राजा यह भी कहे कि मैं स्वर्गका राज्य देता हूँ तो भी शक्तितसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथासे क्या प्रयोजन है ? ॥६७॥ यदि कोई शक्ति झेलनेके लिए सम्मुख हुआ और प्राणोंसे रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्गका राज्य उसका क्या कर लेगा ? ॥६८॥ संसारमें समस्त वस्तुओंसे जीवन ही प्यारा है और उसीके लिए अन्य सब प्रयत्न है यह कौन नहीं जानता है ? ॥६९॥

अथानन्तर इस प्रकारके शब्द सुनकर लक्ष्मणने कौतुकवश किसी मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ! जिसके लिए लोग इस प्रकार वार्ता कर रहे हैं ॥७०॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पण्डित मानती है ऐसी इस कालकन्याको क्या तुम नहीं जानते ? ॥७१॥ यह इस नगरके राजा शत्रुदमनकी कनकाभा रानीसे उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥७२॥ चूँकि इसने मुखकी कान्तिसे कमलको

नवयौवनसंपन्ना कलालंकारधारिणी । पुंसोऽपि त्रिदशान् द्वेष्टि मनुष्येषु कथात्र का ॥७४॥
 उच्चारयति नो शब्दमपि पुल्लिङ्गवर्तिनम् । व्यवहारः समस्तोऽस्याः पुरुषार्थविवर्जितः ॥७५॥
 अदः पश्यसि कैलाससदृशं भवनं वरम् । अत्र तिष्ठत्यसौ कन्या शतसेवनलालिता ॥७६॥
 शक्तिं यः पाणिना मुक्तां पित्रास्याः सहते नरः । वृणुते तमियं दग्ध-समीहा कृच्छ्रशालिनी ॥७७॥
 लक्ष्मीधरः समाकर्ण्य सकोपस्मयविस्मयः । दध्यौ सा कीदृशी नाम कन्या यैवं समीहते ॥७८॥
 दुष्टचेष्टामिमां तावत्कन्यां पश्यामि गर्विताम् । अहो पुनरभिप्रायः प्रौढोऽयमनया कृतः ॥७९॥
 ध्यायन्निति महोक्षेती राजमार्गेण चारुणा । विमानामान् महाशब्दान् प्रासादान्विधुपाण्डुरान् ॥८०॥
 दन्तिनो जलदाकारास्तुरंगाश्चलचामरान् । बलमीनृष्यशालांश्च पश्यन् मन्थरचक्षुषा ॥८१॥
 नानानिर्व्यूहसंपन्नं विचित्रध्वजशोभितम् । शुभ्राभराशिसंकाशं प्राप शत्रुदमालयम् ॥८२॥
 मास्वद्विक्रितशताकीर्णं तुङ्गप्राकारयोजितम् । द्वारं तस्य दुर्गैकेऽसौ शक्रचापामतोरगम् ॥८३॥
 शस्त्रिवृन्दावृते तस्मिन्नानोपायनसंकुले । निर्गच्छद्विर्विशद्विषय सामन्तैरतिसंकटे ॥८४॥
 द्वाःस्थेन प्रविशन्नेष बभूव सौम्यया गिरा । कस्त्वमज्ञापितो भद्र विशसि क्षितिपालयम् ॥८५॥
 सोऽबोचदुद्रष्टुमिच्छामि राजानं गच्छ वेदय । स्वपदेऽन्यमसौ कृत्वा गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥८६॥
 दिदृक्षुस्त्वं महाराज पुमानिन्दीवरप्रभः । राजीवलोचनः श्रीमान् सौम्यो द्वारेऽवतिष्ठते ॥८७॥

अथवा सर्वं शरीरसे लक्ष्मीको जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥७३॥ नवयौवनसे सम्पन्न तथा कलारूपी अलंकारोंको धारण करनेवाली यह कन्या पुनर्वेधारी देवोंसे भी द्वेष करती है फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥७४॥ जो शब्द व्याकरणकी दृष्टिसे पुल्लिङ्ग होता है यह उसका भी उच्चारण नहीं करती है । इसका जितना भी व्यवहार है वह सब पुरुषोंके प्रयोजनसे रहित है ॥७५॥ सामने जो कैलास पर्वतके समान बड़ा भवन देख रहे हो उसीमें यह सैकड़ों प्रकारकी सेवाओंसे लालित होती हुई रहती है ॥७६॥ जो मनुष्य इसके पिताके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहन करेगा उसे ही यह वरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले रखी है ॥७७॥

यह सुनकर लक्ष्मण क्रोध, गर्व और आश्चर्यसे युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या कैसी होगी जो इस प्रकारकी चेष्टा करती है ॥७८॥ दुष्ट चेष्टासे युक्त तथा गर्वसे भरी इस कन्याको देखूँ तो सही । अहो ! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रखा है ॥७९॥ इस प्रकार विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभकी नाईं सुन्दर चालसे चलकर मनोहर राजमार्गमें आगे बढ़े । वहाँ वे विमानके समान आभावाले तथा चन्द्रमाके समान धवल उत्तमोत्तम भवनों, मेघोंके समान हाथियों, चंचल चमरोंसे सुशोभित घोड़ों, छपरियों और नृत्यशालाओंको घेरी दृष्टिसे देखते जाते थे ॥८०-८१॥ तदनन्तर जो नाना प्रकारके निर्व्यूहोंसे युक्त था, रंग-विरंगी ध्वजाओंसे सुशोभित था, तथा जो सफ़ेद गेघावलीके समान था ऐसे राजा शत्रुदमके महलपर पहुँचे ॥८२॥ महलका द्वार सैकड़ों देदीप्यमान बेलवृटोंसे सहित था, ऊँचे प्राकारसे युक्त था, और इन्द्रधनुषके समान रंग-विरंगे तौरणोंसे सुशोभित था ॥८३॥ तदनन्तर जो शस्त्रधारी पहरेदारोंके समूहसे आवृत था, नाना प्रकारके उपहारोंसे युक्त था और जहाँ बाहर निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामन्तोंकी बड़ी भीड़ लग रही थी ऐसे द्वारमें लक्ष्मण प्रवेश करने लगे तो द्वारपालने सौम्यवाणीसे कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही राजमहलमें प्रवेश कर रहा है ॥८४-८५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि मैं राजाके दर्शन करना चाहता हूँ सो राजाको खबर दे दो । यह सुन अपने स्थानपर दूसरेको नियुक्त कर द्वारपालने भीतर जाकर राजासे निवेदन किया कि ॥८६॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है,

१. मोहोक्षेण न. । महोक्षेति म. । 'महावृषभगतिः' इति 'ज' पुस्तके टिप्पणी ।

अमात्यवदनं वीक्ष्य राजावोचद्विश्विति । ततः सुतः सुमित्रायाः प्रतीहारोदितोऽविशन् ॥८८॥
 तं दृष्ट्वा सुन्दराकारं सुगम्भीराणि सा सभा । समुद्रमूर्तिवत्क्षोभं गता शीतांशुदर्शने ॥८९॥
 प्रणामरहितं दृष्ट्वा विकटांसं सुमासुरम् । किञ्चिद्विकृतचेतस्कस्तमपृच्छदरिन्दमः ॥९०॥
 कुतः समागतः कस्त्वं किमर्थं क कृतश्रमः । ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् प्रादुपेय्यधनध्वनिः ॥९१॥
 बाह्योऽहं भरतस्यापि गहीहिण्डनपण्डितः । विद्वान् सर्वत्र ते भट्कृतं दुहितुर्मानमागतः ॥९२॥
 अभग्नमानशृङ्गेयं दुष्टकन्यागवी त्वया । पोषिता सर्वलोकस्य वर्तते दुःखदायिनी ॥९३॥
 सोऽवोचद् यो मया मुक्तां शक्तः शक्तिं प्रतीक्षितुम् । कोऽसौ तु जितपद्माया मानस्य ध्वंसको भवेत् ॥९४॥
 उवाच लक्ष्मणः शक्त्या ग्रहणं मे किमेकया । शक्तीः पञ्च विभुञ्ज त्वं भयि शक्त्या समस्तया ॥९५॥
 विवादो गर्विणोरेवं प्रवृत्तो यावदेतयोः । गवाक्षा विनिडास्तावत्पिहिता वनिताननैः ॥९६॥
 परित्यक्तवरद्वेषा दृष्ट्वा लक्ष्मणपुङ्गवम् । निर्व्यूहस्था जिताम्भोजा संज्ञादावाद्वाचयत् ॥९७॥
 दक्षबद्धाञ्जलिं भीरुं सौमित्रिरिति संज्ञया । चकार जालयोधां तां या भैषीरिति संनदी ॥९८॥
 जगद् च किमद्यापि कातरं त्वं प्रतीक्षसे । विभुञ्चारिन्दमाभिख्य शक्तिं शक्तिं निवेद्य ॥९९॥
 द्रष्टुक्तः कुपितो राजा बद्ध्वा परिकरं दृढम् । ज्वलत्पावकसंकाशां शक्तिमेकमुपाददौ ॥१००॥
 प्रतीक्षेच्छसि मतुं चेदित्युक्त्वा भृकुटीं दधत् । वैशाखं स्थानकं कृत्वा तां सुभोज्य विज्ञानविद् ॥१०१॥

जिसकी प्रभा नील कमलके समान है, जिसके नेत्र कमलोंके समान मुशोभित हैं तथा जो अत्यन्त सौम्य है ऐसा एक शोभासम्पन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥८७॥ मन्त्रीके मुखको ओर देख राजाने कहा कि 'प्रवेश करे' । तदनन्तर द्वारपालके कहने पर लक्ष्मणने भीतर प्रवेश किया ॥८८॥ यद्यपि वह सभा गम्भीर थी तो भी जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुन्दर आकारके धारक लक्ष्मणको देखकर क्षोभको प्राप्त हो गयी ॥८९॥ प्रणामरहित, विशाल कन्धोंके धारक तथा अतिशय देदीप्यमान लक्ष्मणको देखकर जिसका हृदय कुछ-कुछ विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुदमने पूछा कि तू कहाँसे आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तरमें वर्षा ऋतुके मेघके समान गम्भीर ध्वनिकी धारण करनेवाले लक्ष्मणने कहा ॥९०-९१॥ कि मैं राजा भरतका सेवक हूँ, पृथ्वीपर धूमनेमें निपुण हूँ, सब विषयोंका पण्डित हूँ और तुम्हारी पुत्रीका मान भङ्ग करनेके लिए आया हूँ ॥९२॥ जिसके मान-रूपी सींग अभग्न हैं ऐसी जो दुष्ट कन्यारूपी मरकती गाय तुमने पाल रखी है वह सब लोगोंको दुःख देनेवाली है ॥९३॥ राजा शत्रुदमने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्तिको सहन करनेमें समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्माका मान खण्डित करनेवाला हो ॥९४॥ लक्ष्मणने कहा कि मैं एक शक्तिको क्या ग्रहण करूँ ? तू पूरा सामर्थ्यके साथ मुझपर पाँच शक्तियाँ छोड़ ॥९५॥ यहाँ जब तक दोनों अहंकारियोंके बीच इस प्रकारका विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहलके सघन झरोखे स्त्रियोंके मुखोंसे आच्छादित हो गये ॥९६॥ जितपद्मा भी लक्ष्मणको देख मोहित हो गयी और पुरुषोंके साथ द्वेषको छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मणको मना करने लगी ॥९७॥ तब हर्षसे भरे लक्ष्मणने भयभीत तथा हाथ जोड़कर बैठी हुई जितपद्माको इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥९८॥ और राजासे कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुदम नाम रखे फिरता है शक्ति छोड़ और पराक्रम दिखा ॥९९॥ इस प्रकार कहने पर राजाने कुपित हो अच्छी तरह कमर कसी और जलती हुई अग्निके समान एक शक्ति उठायी ॥१००॥ तदनन्तर 'यदि मरना ही चाहता है तो ले झेल' यह कहकर भौंहको धारण करनेवाले विधि-विधानके ज्ञाता राजाने आलीढ़ आसनसे खड़ा होकर वह गदा

१. न. म., ज. । २. शक्तिनामकशस्त्रम् । ३. पराक्रमम् । ४. प्रतीक्षेच्छसि म. ।

अयनेनेव सा तेन धृता दक्षिणपाणिना । वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः ॥१०२॥
 द्वितीयेतरहस्तेन कक्षाभ्यां द्वे सुविभ्रमः । शुशुभे सुमृशं तामिश्चतुर्दन्त इव द्विपः ॥१०३॥
 संकुद्धभोगिभोगांभं संप्राप्तमथ पञ्चमीम् । दन्ताग्राभ्यां दधौ शक्तिं पेशीसिव मृगाधिपः ॥१०४॥
 ततो देवगणाः स्वस्था वव्रुः पुष्पसंहतिम् । ननृत्स्ताडयाश्चक्रुर्दुर्मूर्खश्च कृतस्वनाः ॥१०५॥
 प्रतीच्छारिंदमेदानीं शक्तिं त्वमिति लक्ष्मणे । कृतशब्दे परं प्राप साध्वसं सकलां जनः ॥१०६॥
 तमक्षततनुं दृष्ट्वा लक्ष्मीनिलयवक्षसम् । विस्मितोऽरिंदमो जातस्त्रपावनमिताननः ॥१०७॥
 जितपद्मा ततः प्राप स्मितच्छायानतानना । लक्ष्मीधरं समाकृष्टा रूपेणाचरितेन च ॥१०८॥
 धृतशक्तेः समीपेऽस्य सा तन्वी शुशुभेतराम् । कुलिशायुधपाद्वस्था शचीर्व विनतानना ॥१०९॥
 नवेन संगमेनास्या हृदयं तस्य कम्पितम् । यज्ञासीत् कम्पितं जातु संग्रामेषु महत्स्वपि ॥११०॥
 पुरस्तातनरेशानां कन्थया लक्ष्मणा वृतः । विभिद्यापत्रपापालीं तद्भरन्त्यस्तनेत्रया ॥१११॥
 सद्यो विनयनम्राङ्गो राजानं लक्ष्मणोऽब्रवीत् । मामकार्हसि मे श्रन्तुं शैशवाद्दुर्विचेष्टितम् ॥११२॥
 बालानां प्रतिकूलेन कर्मणा वचसापि वा । भवद्विधा सुगम्भीरा नैव यान्ति विकारिताम् ॥११३॥
 ततः शत्रुंदमोऽप्येनं सप्रमोदः ससंभ्रमः । स्तम्भेरमकराभाभ्यां कराभ्यां परिषण्वजे ॥११४॥
 उवाच च परिकिलन्नगण्डांश्चण्डान् गजान् क्षणात् । योऽजैषं भीमयुद्धेषु मद्र सोऽहं त्वया जितः ॥११५॥

छोड़ दी ॥१०१॥ लक्ष्मणने बिना किसी यत्नके ही दाहिने हाथसे वह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि बटेरके पकड़नेमें गरुडका कौन-सा बड़ा मान होता है ? ॥१०२॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथसे तथा तीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलोंमें धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दाँतोंको धारण करनेवाले ऐरावत हाथीके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१०३॥ अथानन्तर अत्यन्त कुपित साँपकी फणकी नाई जो पाँचवीं शक्ति आयी उसे लक्ष्मणने दाँतोंके अग्रभागसे उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांसकी डलीको पकड़ रखता है ॥१०४॥ तदनन्तर आकाशमें खड़े देवोंके समूह पुष्प बरसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्षसे शब्द करते हुए दुन्दुभि बाजे बनाने लगे ॥१०५॥

अथानन्तर 'शत्रुंदम ! अब तू मेरी शक्ति झेल' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर सबलोग अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥१०६॥ राजा शत्रुंदम लक्ष्मणको अक्षत शरीर देख विस्मयमें पड़ गया और लज्जासे उसका मुख नीचा हो गया ॥१०७॥ तदनन्तर मन्द मुसकानकी छायासे जिसका मुख नीचेकी ओर हो रहा था ऐसा जितपद्मा रूप तथा आचरणसे खिंचकर लक्ष्मणके पास आयी ॥१०८॥ शक्तियोंको धारण करनेवाले लक्ष्मणके पास वह कुशाङ्गी, इस तरह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि वज्रके धारक इन्द्रके पास खड़ी नतमुखी इन्द्राणी सुशोभित होती है ॥१०९॥ लक्ष्मणका जो हृदय बड़े-बड़े संग्रामोंमें भी कभी कम्पित नहीं हुआ था वह जितपद्माके नूतन समागमसे कम्पित हो गया ॥११०॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसी जितपद्माने पिता तथा अन्य अनेक राजाओंके सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मणका वरण किया ॥१११॥ तत्काल ही विनयसे जिसका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने राजासे कहा कि हे माम ! लड़कपनके कारण मैंने जो खोटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥११२॥ बालकोंके विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनोंसे आप जैसे महागम्भीर पुरुष विकार भावको प्राप्त नहीं होते ॥११३॥

तदनन्तर हर्ष और संभ्रमसे सहित राजा शत्रुंदमने भी हाथीकी सूंडके समान लम्बी तथा सुपुष्ट भुजाओंसे लक्ष्मणका आलिमन किया ॥११४॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस मैंने

१. अयनेनैव म. । २. भोगानां म. । ३. प्रतीक्षा म. । ४. शची विनमितानना म. ।

वन्यानपि महानागान् गण्डशैलसमन्विषः । विमदीकृतवानस्मि सोऽयमन्य इवामवम् ॥११६॥
 अहो वीर्यमहो रूपं सदृशाः शुभ ते गुणाः । अहोनुद्धततात्यन्तं प्रश्रयश्च तवाद्भुतः ॥११७॥
 भाषमाणे गुणानेवं राक्षि संसद्यवस्थिते । लक्ष्मीधरोरुपातोऽभूत् क्वापि यात इव क्षणम् ॥११८॥
 अथ लब्ध्वाऽबुद्ब्रातघोषभेयैः समाहताः । राजादेशात् समाध्माताः शङ्काः संशितवारणाः ॥११९॥
 यथेष्टं दीयमानेषु धनेषु परमस्ततः । आनन्दोऽवर्तताशेषनगरक्षोभदक्षिणः ॥१२०॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवाचि राज्ञा पुरुषपुङ्गव । त्वया दुहितुरिच्छामि पाणिग्रहणमीक्षितुम् ॥१२१॥
 सोऽवोचन्नगरस्यास्य प्रदेशे निकटे मम । ज्येष्ठस्तिष्ठति तं पृच्छ स जानाति यथोचितम् ॥१२२॥
 ततः स्यन्दनमारोप्य जितपदां सलक्ष्मणाम् । सदारभन्पुरभ्यावां प्रतस्थे तस्य सादरः ॥१२३॥
 ततः क्षुब्धापमानाथनिर्घोषप्रतिमध्वनिम् । श्रुत्वा बोध्य विशालं च धूलीपटलमुदगतम् ॥१२४॥
 जानुम्यस्तमुहुःस्तस्तकरा कृच्छास्समुत्थिता । सीता जगाद संभ्राता गिरा प्रस्खलिता बुधुः ॥१२५॥
 कृतं सौमित्रिणा नूनं राघवोद्धतचेष्टितम् । आशेषमाकुलात्यन्तं दृश्यते कृत्यमाश्रयः ॥१२६॥
 आदिलष्य जानकीं देवि मा भैवीरिति शब्दयन् । उत्तस्थौ राघवः क्षिप्रं दृष्टिं धनुषि पातयन् ॥१२७॥
 तावच्च नरवृन्दस्य महतः स्थितमग्रतः । सुतारंगीतनिस्वानमीक्षाचक्रेऽङ्गनाजनम् ॥१२८॥
 क्रमेण गच्छतश्चास्य प्रत्यासत्तिं मनोहराः विभ्रमाः समदृश्यन्त सुदारावयवोत्थिताः ॥१२९॥
 नृत्यन्तं च समालोक्य तारनूपुरशिञ्जितम् । विश्रब्धः सीतया साकं पद्मः पुनरुपाविशान् ॥१३०॥

भयंकर युद्धोंमें मदस्त्रावी कुपित हाथियोंको क्षणभरमें जीता था वह मैं आज तुम्हारे द्वारा जीता गया ॥११५॥ जिसने गोल काली चट्टानोवाले पर्वतके समान कान्तिके धारक बड़े-बड़े जंगली हाथियोंको मदरहित किया था वह मैं आज मानो अन्य ही हो गया हूँ ॥११६॥ धन्य तुम्हारी अनुद्धतता और धन्य तुम्हारी अद्भुत विनय । अहो शोभनीक ! तुम्हारे गुण तुम्हारे अनुरूप ही हैं ॥११७॥ इस प्रकार सभामें बैठा राजा शत्रुदम जब लक्ष्मणके गुणोंका वर्णन कर रहा था तब लक्ष्मण लज्जाके कारण ऐसे हो गये मानो क्षणभरके लिए कहीं चले ही गये हों ॥११८॥

अथानन्तर राजाकी आज्ञासे मेघसमूहकी गर्जनाके समान विशाल शब्द करनेवाली भेरियाँ बजायी गयीं और हाथियोंकी चिंघाड़का संशय उत्पन्न करनेवाले शंख फूँके गये ॥११९॥ इच्छानुसार धन दिया जाने लगा और समस्त नगरको क्षोभित करनेमें समर्थ बहुत भारी आनन्द प्रवृत्त हुआ ॥१२०॥ तदनन्तर राजाने लक्ष्मणसे कहा कि हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं तुम्हारे साथ पुत्रीका पाणिग्रहण देखना चाहता हूँ ॥१२१॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि इस नगरके निकटवर्ती प्रदेशमें मेरे बड़े भाई विराजमान हैं सो उनसे पूछो वही ठीक जानते हैं ॥१२२॥ तब लक्ष्मण सहित जितपद्माको रथ पर बैठाकर स्त्रियों तथा भाई-बन्धुओंसे सहित राजा शत्रुदम बड़े आदरके साथ रामके समीप चला ॥१२३॥ तदनन्तर क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी गर्जनाके समान जोरदार शब्द सुनकर और उठे हुए विशाल धूलिपटलको देखकर घुटनोंपर बार-बार हाथ रखती हुई सीता बड़े कष्टसे उठी और घबड़ाकर स्खलित वाणीमें रामसे बोली कि हे राघव ! जान पड़ता है लक्ष्मणने कोई उद्धत चेष्टा की है । यह दिशा अत्यन्त आकुल दिखाई देती है इसलिए सावधान होओ और जो कुछ करना हो सो करो ॥१२४-१२६॥ तब सीताका आलिंगन कर 'हे देवि ! भयभीत मत होओ' यह कहते तथा शीघ्र ही धनुषपर दृष्टि डालते हुए राम उठे ॥१२७॥ इतनेमें ही उन्होंने विशाल नर-समूहके आगे उच्चस्वरसे मंगल गीत गानेवाली स्त्रियोंका समूह देखा ॥१२८॥ वह स्त्रियोंका समूह जब क्रम-क्रमसे पास आया तब सुन्दर स्त्रियोंके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले मनोहर हाव-भाव दिखाई दिये ॥१२९॥ तदनन्तर जिनके नूपुरोंकी जोरदार झनकार

स्त्रियो मङ्गलहस्तास्तं सर्वाङ्कारभूषिताः । हुर्दोकिरेतिहारिण्यः समदस्फीतलोचनाः ॥१३१॥
 रथादुत्तार्य पद्मास्थः सहितो जितपद्माया । पतिः पपात पद्मायाः पद्मस्य चरणौ द्रुतम् ॥१३२॥
 पद्मस्य प्रगतिं कृत्वा सीताया अपि स्त्रयः । निविश्य नार्तिनिकटे पद्मस्य विनयो स्थितः ॥१३३॥
 नृपाः शत्रुदमाद्याश्च क्रमात्कुर्वन् नमस्कृतिम् । पद्मस्य सहसीतस्य यथास्थानमवस्थिताः ॥१३४॥
 तत्र संकथया स्थित्वा कुशलमश्नन्पूर्वया । कृते च पुनरावन्दनार्तने पाथिवैरपि ॥१३५॥
 ऋद्ध्या परमया युक्तः ससीतो लक्ष्मणो बलः । प्रविष्टः स्यन्दनारुढो नगरं प्रमदान्वितः ॥१३६॥
 तत्र लावण्यकिञ्चलकचोर्विन्दुवलयकुले । महाप्रामादसरमि स्वतद्भूषणपक्षिणि ॥१३७॥
 नरेमकलमौ सत्यव्रतसिंहध्वनेरलम् । शमाम् संकुचितस्वान्तौ कुमारश्रीसमन्वितौ ॥१३८॥
 शत्रुदमकृतच्छन्दौ किञ्चिन्नालं महामुखौ । उपितौ सर्वलोकस्य चित्ताह्लादनदायिनौ ॥१३९॥
 जितपद्मां ततो भातां विरहाद्गतिदुःखिनाम् । परिस्रान्त्य प्रियैर्वाक्यैर्वनमालामित्रादरान् ॥१४०॥
 पद्मः सीतानुगो भूत्वा निशाथे स्वैरनिर्गतः । यातो लक्ष्मणधरो दत्त्वा पौराणामष्टतिं पराम् ॥१४१॥

शार्दूलचिक्रीडितम्

ये जन्मान्तरसंचिताहिमुकृताः सर्वांमुभाजां प्रियाः

यं यं देशमुपमजन्ति विविधं कृत्यं मजन्तः परम् ।

तस्मिन्सर्वहृदीकसौख्यचतुरस्तेषां विना चिन्तया

मृष्टाञ्चादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टपे तुल्लभः ॥१४२॥

फैल रही थी ऐसी स्त्रियोंके समूहको नृत्य करता देख राम निश्चिन्त हो सीताके साथ पुनः बैठ गये ॥१३०॥

अथानन्तर जिनके हाथोंमें मङ्गल द्रव्य थे, जो सब प्रकारके अलङ्कारोंसे अलङ्कृत थीं, अतिशय मनोहर थीं और जिनके नेत्र मदसे फूल रहे थे ऐसी स्त्रियाँ रामके पास आयीं ॥१३१॥ कमलके समान मुखको धारण करनेवाले लक्ष्मण जितपद्माके साथ रथसे उतरकर शीघ्र ही रामके चरणोंमें जा पड़े ॥१३२॥ तदनन्तर राम और सीताको प्रणाम कर लजते हुए लक्ष्मण रामसे कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥१३३॥ शत्रुन्दम आदि राजा भी क्रम-क्रमसे राम तथा सीताको नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥१३४॥ कुशल समाचार पूछकर सब वार्तालाप करते हुए सुखसे बैठे तथा राजाओंने आनन्द-नृत्य किया ॥१३५॥ तदनन्तर परम सम्पदासे युक्त तथा हर्षसे भरे राम लक्ष्मण और सीताने रथपर सवार हो नगरमें प्रवेश किया ॥१३६॥ वहाँ राजमहलमें पहुँचे । वह राजमहल एक सरोवरके समान जान पड़ता था क्योंकि सौन्दर्य रूपी केशरसे युक्त स्त्रियों रूपी नील कमलोंसे वह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पक्षियोंसे युक्त था ॥१३७॥ सत्यव्रत रूपी सिंहकी गर्जनाके भयसे जिनके चित्त अत्यन्त संकुचित रहते थे, जो कुमार लक्ष्मणसे सहित थे, राजा शत्रुन्दम जिनकी इच्छानुसार सब सेवा करता था, जो महा सुखसे सहित थे तथा जो समस्त लोगोंके चित्तको आनन्द देनेवाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहलमें कुछ समय तक सुखसे रहे ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर राम अर्धरात्रिके समय सीताके साथ इच्छानुसार राजमहलसे बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी वनमालाके समान विरहसे भयभीत अतिशय दुःखी जितपद्माको प्रिय वचनों द्वारा आदर पूर्वक सान्त्वना दे रामके साथ चले । इन सबके जानेसे नगरवासियोंका वैयं जाता रहा ॥१४०-१४१॥ गीतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने जन्मान्तरमें बहुत

भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खला
 इत्येषां यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः ।
 एतैः सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शृङ्गं गिरेः
 नित्यं^१ याति तथापि निर्जितरविर्दीप्यता जनः संगमम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पञ्चचरिते जितपद्मोपाख्यानं नामाष्टत्रिंशत्तमं पर्व ॥३८॥



भारी पुण्यका संवय किया है ऐसे सर्व प्राणियोंको प्रिय पुरुष, नाना प्रकारके उत्तम कार्य करते हुए जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें उन्हें बिना किसी चिन्ताके समस्त इन्द्रियोंके सुख देनेमें निपुण मधुर आहार आदिकी सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ रहती है ॥१४२॥ 'मुझे इन लोगोंसे प्रयोजन नहीं है । ये दुष्ट नाशको प्राप्त हों, इस प्रकार भोगोंसे अतिशय द्वेष रखनेवाला पुरुष यद्यपि सर्वदा इन भोगोंकी निन्दा करता है और इन्हें छोड़कर पर्वतके शिखरपर भी चला जाता है तो भी अपनी कान्तिसे सूर्यको जीतनेवाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ इन भोगोंके साथ सदा समागमको प्राप्त होता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्यको इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकारकी सुख सामग्री सर्वत्र मिलती है ॥१४३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पञ्चचरितमें जितपद्माका वर्णन करनेवाला अड़तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३८॥



एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ नानाद्रुमक्षमासु बहुपुष्पसुगन्धिषु । लतामण्डपयुक्तासु सेवितासु सुखं मृगैः ॥१॥
 देवोपनीतनिःशेषशरीरस्थितिसाधनौ । आयातां रममाणौ तौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥२॥
 कचिद्द्रुमसंकाशं रामः किसलयं लघु । गृहीत्वा कुरुते कर्णे जानक्याः साध्विति ब्रुवन् ॥३॥
 सुतरौ संगतां वल्लीं कचिदारोप्य जानकीम् । स्वैरं दोलयतः पाद्वर्तिनौ रामलक्ष्मणौ ॥४॥
 द्रुमखण्डे कचिद् स्थित्वा नितान्तघनपल्लवे । कथाभिः सुविदग्धाभिः कुरुतस्तद्विनोदनम् ॥५॥
 इयमेतदयं^१ वल्ली पलाशं तरुरीक्ष्यताम् । हारिणी हारि हारीति सीतोचे राघवं कचिद् ॥६॥
 कचिद् भ्रमरसंघातैर्मुखसौरमलोलुपैः । कृच्छ्रादरक्षतामेतौ राजपुत्रीं कदर्थिताम् ॥७॥
 शनैर्विहरमाणो तौ ससीतौ शुभविभ्रमौ । काननेषु विचित्रेषु^२ स्ववनेषु सुराविव ॥८॥
 नानाजनोपभोगेषु देशेषु निहितेक्षणौ । धीरौ क्रमेण संप्राप्तौ पुरं वंशस्थलद्युतिम् ॥९॥
 सुदीर्घोऽपि तयोः कालो गच्छतोः सहस्रीतयोः । पुण्यानुगतयोर्नासीदपि दुःखलवप्रदः ॥१०॥
 अपश्यतां च तस्यान्ते वंशजालातिसंकटम् । नगं वंशधराभिख्यं मिश्रैव भुवसुदगतम् ॥११॥
 छायाया तुङ्गशृङ्गाणां यः सन्ध्यामिव संततम् । दधाति निर्झराणां च हसतीव च शीकरैः ॥१२॥
 निर्गच्छन्तीं प्रजां दृष्ट्वा पुरादथ स एककाम् । रामः पप्रच्छ भीः कस्मात् त्रासोऽयं सुमहानिति ॥१३॥

अथानन्तर जिनकी शरीर-स्थितिके समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मण रमण करते हुए वनकी उन भूमियोंमें आये जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे सहित थी, जिनमें नाना फूलोंकी सुगन्धि फैल रही थी, जो लतामण्डपोंसे सहित थीं तथा मृगगण जिनमें सुखसे निवास करते थे ॥१-२॥ कहीं राम, मृगके समान कान्तिवाले पल्लवकी तोड़कर तथा उसका कर्णाभरण बनाकर 'यह ठीक रहेगा' इस प्रकार कहते हुए सीताके कानमें पहिनाते थे, तो कहीं किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीताको बैठाकर बगलमें दोनों ओर खड़े हो राम-लक्ष्मण उसे झूला झुलाते थे ॥३-४॥ कहीं सघन पत्तोंवाले द्रुम-खण्डमें बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओंसे उसका मनोविनोद करते थे ॥५॥ कहीं सीता रामसे कहती थी कि यह मनोहर लता देखो, कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥६॥ कहीं मुखकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोंके समूह सीताको पीड़ित करते थे, सो ये दोनों भाई बड़ी कठिनाई-से उसकी रक्षा करते थे ॥७॥ जिस प्रकार देव स्वर्गके वनोंमें विहार करते हैं उसी प्रकार शुभ चेष्टाओंके धारक दोनों भाई सीताको साथ लिये नाना प्रकारके वनोंमें धीरे-धीरे विहार करते थे ॥८॥ नाना मनुष्योंसे उपभोग्य देशोंमें दृष्टि डालते हुए वे धीरे-धीरे क्रमसे वंशस्थलद्युति नामक नगरमें पहुँचे ॥९॥ सीताके साथ भ्रमण करते हुए उन पुण्यानुगामी महापुरुषोंकी यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी उतना बड़ा काल उन्हें अंशमात्र भी दुःख देनेवाला नहीं हुआ था ॥१०॥

उस नगरके समीप ही उन्होंने वंशधर नामका पर्वत देखा जो बाँसोंके समूहसे अत्यन्त व्याप्त था, पृथिवीकी भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी कान्तिसे जो मानो सदा सन्ध्याकी धारण कर रहा था और निर्झरनोंके छोटोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११-१२॥ उन्होंने यह भी देखा कि प्रजाके लोग नगरसे निकल-निकल कर कहीं अन्यत्र

१. संस्तुताम् ब. । २. इयं हारिणी वल्ली, एतत् हारि पलाशं, अयं हारी तहः । ३. स्ववनेषु म. ।
 ४. धारी म. ।

सोऽवोचदद्य दिवसस्तृतीयो वर्तते नरः । नक्तमुत्तिष्ठतोऽमुष्मिन्नग्रे नादस्य^१ मस्तके ॥१४॥
 ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽयं प्रतिनादी मयावहः । कस्येति बहुविज्ञानैर्न वृद्धैरपि वेद्यते ॥१५॥
 संक्षुभ्यतीव भूः सर्वा नन्दन्तीव दिशो दृश । सरांसि संचरन्तीव निर्मूल्यन्त इवाङ्घ्रिपाः ॥१६॥
 रौरवारावरौद्रेण घनेन ध्वनिनामुना । श्रवणौ सर्वलोकस्य ताड्येतेऽयोधनैरिव ॥१७॥
 निशागमे किमस्माकं वधार्थमयमुद्यतः । करोति क्रोडनं तावत् क्रोऽपि विष्टपकण्टकः ॥१८॥
 भयेन स्वन्तस्तस्मादयं लोको निशागमे । पलायते प्रभाते तु पुनरेति यथायथम् ॥१९॥
 साग्रं योजनमेतस्मादतीत्यान्योन्यभाषितम्^२ । शृणोत्ययं जनः किञ्चित् प्राप्नोति च सुखासिकाम् ॥२०॥
 निशम्योक्तमिदं सीता वमाषे रामलक्ष्मणौ । वयमन्यत्र गच्छामो यत्र याति महाजनः ॥२१॥
 कालं देशं च विज्ञाय नातिशास्त्रविशारदैः । क्रियते पौरुषं तेन न जातु विपदायते ॥२२॥
 प्रहस्यावोचतामेतामुद्विग्नां जनकात्मजाम् । गच्छ एवं यत्र लोकोऽयं व्रजत्यल्लघुसाध्वसे ॥२३॥
 अन्विष्यन्ती प्रभाते नौ लोकेन सहितामुना । अमुष्मिन् गण्डशीलान्ते गतभीरागमिष्यति ॥२४॥
 अस्मिन् महीधरे रम्ये ध्वनिरत्यन्तभीषणः । कस्यायमिति पश्यामो वयमद्येति निश्चयः ॥२५॥
 प्रभीष्यते वराकोऽयं लोकः शिशुसमाकुलः । पशुभिः सहितः स्वन्तमस्य को नु करिष्यति ॥२६॥
 वैदेही^३ सज्वरेवोचे सततं भवतोरिमम् । हर्तुं मेकं ग्रहं शक्तः कः कुलीरग्रहोपमम् ॥२७॥

जा रहे हैं । तब रामने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह बहुत भारी भय किस कारणसे है ? ॥१३॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि इस पर्वतके शिखर पर रात्रिके समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥१४॥ जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नहीं सुना, उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है तथा वह अत्यन्त भयंकर है । किस व्यक्तिका शब्द है ? यह बहुविज्ञानी वृद्ध लोग भी नहीं जानते हैं ॥१५॥ इस शब्दसे मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, दशों दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो इधर-उधर फिरने लगते हैं और वृक्ष मानो उखड़ने लगते हैं ॥१६॥ रौद्रतामें नरकके शब्दकी तुलना करनेवाले इस भारी शब्दसे समस्त लोगोंके कान ऐसे फटे पड़ते हैं मानो लोहेके घनोसे ही ताडित होते हों ॥१७॥ जान पड़ता है कि रात्रिके समय हम लोगोंका वध करनेके लिए उद्यत हुआ यह कोई लोकका कण्टक क्रोड़ा करता फिरता है ॥१८॥ ये लोग उस शब्दके भयसे रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुनः वापिस आ जाते हैं ॥१९॥ यहाँसे कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हलका हो जाता है कि लोग परस्परका वार्तालाप सुन सकते हैं तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं ॥२०॥

यह सुनकर सीताने राम-लक्ष्मणसे कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चलें ॥२१॥ नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुष देश कालको समझकर पुरुषार्थ करते हैं, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥२२॥ राम-लक्ष्मणने घबड़ायी हुई सीतासे हँसकर कहा कि तुझे बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तू भी चली जा ॥२३॥ प्रभात होनेपर इन लोगोंके साथ हम दोनोंको खोजती हुई निर्भय हो इस पर्वतके समीप आ जाना ॥२४॥ 'इस मनोहर पर्वत पर यह अत्यन्त भयंकर शब्द किसका होता है ? यह आज हम देखेंगे' ऐसा निश्चय किया है ॥२५॥ ये तीन लोग बाल-बच्चोंसे व्याकुल तथा पशुओंसे सहित हैं, इसलिए ये तो भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है ? ॥२६॥ तब जैसे ज्वर चढ़ रहा हो ऐसी काँपती हुई आवाजमें सीताने कहा कि हमेशा आपलोगोंकी हठ केंकड़ेकी पकड़के समान विलक्षण ही है उसे दूर करनेके लिए

वदन्ती पुनरेवं सा पद्मनाभस्य पृष्ठतः । लक्ष्मीधरकुमारस्य जगामावस्थिता पुरः ॥२८॥
 आरोहन्ती गिरिं देवी प्रखिलक्रमपङ्कजा । रराज शृङ्गमब्दस्य चन्द्ररेखेव निर्मला ॥२९॥
 चन्द्रकान्तेन्द्रनीलान्तःस्थिता पुष्पसणेरसौ । शलाकेवामवत्तस्य पर्वतस्य विभूषणम् ॥३०॥
 शृङ्गपातपरित्रस्तां कचिदुत्क्षिप्य तामिमौ । नयतोऽन्यत्र विश्रब्धहस्तालम्बनकोविदौ ॥३१॥
 विषमप्रावसंघातं^१ निस्तीर्य त्रासवर्जितौ । विस्तीर्णनगमूर्धनं ससीतौ तावपापतुः ॥३२॥
 अथ सद्ग्रथानमारूढौ प्रलम्बितमहाभुजौ । साधयन्तौ सुदुस्साध्यां प्रतिमां चतुराननाम् ॥३३॥
 परेण तेजसा युक्तावन्धिधीरौ नगस्थिरौ । शरीरचेतनान्यस्ववेदिनौ मोहवर्जितौ ॥३४॥
 जातरूपधरौ कान्तिसागरौ नवयौवनौ । संयतौ प्रवराकारौ ददृशुस्ते यथोदितौ ॥३५॥
 दध्युश्च विस्मयं प्राप्ता यथा मुक्त्वाशुभार्जनम् । निस्सारमीहितं सर्वं संसारे दुःखकारणम् ॥३६॥
 मित्राणि द्रविणं दाराः पुत्राः सर्वे^२ च बान्धवाः । सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एकः सुखावहः ॥३७॥
 हुढीकिरे च भक्त्याढ्या मूर्ध्वविन्यस्तपाणयः । दधानाः परमं तोषं विनयानतविग्रहाः ॥३८॥
 यावद्दृशुरत्युग्रैर्विस्फुरद्भिर्महास्वनैः । मित्राञ्जनसमच्छाद्यैश्चलजिह्वैः^३ पृदाकुमिः ॥३९॥
 समुद्यतालकैर्भीमैश्चलद्भिरनिशं धनैः । नानावर्णैरतिस्थूलैर्वेष्टितौ वृश्चिकैश्च^४ तौ ॥४०॥

कौन समर्थ है ? ॥२७॥ ऐसा कहती हुई वह रामके पीछे और लक्ष्मणके आगे खड़ी हो चलने लगी ॥२८॥ जिसके चरणकमल खेदवित्र हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढ़ती हुई इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो मेघके शिखर पर चन्द्रमाकी निर्मल रेखा ही है ॥२९॥ राम और लक्ष्मणके बीचमें खड़ी सीता चन्द्रकान्तमणि और नीलमणिके मध्यमें स्थित स्फटिकमणिकी शलाकाके समान पर्वतका आभूषण हो रही थी ॥३०॥ जहाँ कहीं सीताको गोल चट्टानोंसे नीचे गिरनेका भय होता था वहाँ वे दोनों, उसे ऊपर उठाकर ले जाते थे और जहाँ गिरनेका भय नहीं होता था वहाँ निश्चिन्ततापूर्वक हाथका सहारा देकर ले जाते थे ॥३१॥ इस प्रकार ऊँची-नीची चट्टानोंका समूह पारकर भयसे रहित राम-लक्ष्मण सीताके साथ पर्वतके चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥३२॥

अथानन्तर उन्होंने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देखे जो उत्तमध्यानमें आरूढ़ थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जो अत्यन्त दुःसाध्य चतुर्मुखी प्रतिमाको सिद्ध कर रहे थे, परम तेजसे युक्त थे, समुद्रके समान गम्भीर थे, पर्वतके समान स्थिर थे, शरीर और आत्माकी भिन्नताको जाननेवाले थे, मोहसे रहित थे, दिगम्बर-मुद्राको धारण करनेवाले थे, कान्तिके सागर थे, नूतन तारुण्यसे युक्त थे, उत्तम आकारके धारक थे और आगमोक्त आचरण करनेवाले थे ॥३३-३५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए वे तीनों अशुभ कर्मोंके आश्रयका परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि संसारमें प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ निःसार तथा दुःखके कारण हैं ॥३६॥ मित्र, धन, स्त्री, पुत्र, और भाई-बन्धु आदि सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुखका कारण है ॥३७॥ तदनन्तर जो भक्तियुक्त थे, जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रखे थे, जो परम सन्तोषको धारण कर रहे थे, और विनयसे जिनके शरीर नम्रीभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजोंके पास गये ॥३८॥ दर्शन करते ही उन्होंने, जो अत्यन्त भयंकर थे, इधर-उधर चल रहे थे, विकट शब्द कर रहे थे, मसले हुए अंजनके समान कान्तिवाले थे, तथा जिनकी जीभें लपलपा रही थीं ऐसे साँपोंसे और जिन्होंने अपनी पूँछ ऊपर उठा रखी थी, जो अत्यन्त भयंकर थे, रात-दिन एक-दूसरेसे सटकर चल रहे थे, नाना रंगके थे, एवं बहुत मोटे थे, ऐसे बिच्छुओंसे

तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा रामोऽपि सहलक्ष्मणः । सहसा त्रासमायातौ भेजे स्तम्भमिव क्षणम् ॥४१॥
 वैदेही भयसंपन्ना भर्तारं परिपश्यजे । मा भैषीरिति तामूचे भयं त्यक्त्वा क्षणेन सः ॥४२॥
 उपसृत्य ततः स्वैरं ताभ्यां पन्नगवृश्चिकाः । अत्यस्ता कामुकाग्रेण मुहुः कृतविवर्तनाः ॥४३॥
 अथोदृत्य चिरं पादौ तयोर्निर्झरवारिणा । गन्धेन सीतया लिप्सो चारुणा पुरुमावया ॥४४॥
 आसन्नानां च वल्लीनां कुसुमैर्वनसौरभैः । लक्ष्मीधरापितैः शुक्लैः पूरितान्तरभर्चितौ ॥४५॥
 ततस्ते करयुग्माब्जमुकुलभ्रोजितालिकाः । चक्रयौगीश्वरीं भक्त्या वन्दनां विधिकोविदाः ॥४६॥
 वीणां च संनिधायाङ्के वधूमिव मनोहराम् । पद्मोऽवादयदत्युद्धं गायन् सुमधुराक्षरम् ॥४७॥
 अन्वगायदिमं लक्ष्मीलतालिङ्गितपादपः । वाक्कोकिलरवः पुत्रः कैकयास्तत्त्वमादरम् ॥४८॥
 महायोगेश्वरा धीरा मनसा शिरसा गिरा । वन्द्यास्ते साधवो नित्यं सुरैरपि सुचेष्टिताः ॥४९॥
 उपमानविनिर्मुक्तं यैरव्याहृतमुत्तमम् । प्राप्तं त्रिभुवनख्यातं सुभाष्यैरहं दक्षरम् ॥५०॥
 भिन्नं यैर्ध्यानदण्डेन महामोहशिलातलम् । दीनं विदन्ति ये विश्वं धर्मानुष्ठानवर्जितम् ॥५१॥
 गायत्रोरक्षराण्येवं तयोर्गानर्विधिप्रियोः । तिरश्चामपि चेतांसि परिप्राप्तानि मार्दवम् ॥५२॥
 ततो विदितनिश्चेषचाक्षर्तनलक्षणा । मनोज्ञाकल्पसंपन्ना हारमाख्यादिभूषिताः ॥५३॥
 लीलया परया युक्ता दर्शिताभिनया स्फुटम् । चारुबाहुलतामारा हावमावादिकोविदाः ॥५४॥

उन दोनों मुनियोंको धिरा देखा ॥३९-४०॥ उक्त प्रकारके मुनियोंको देख, राम भी लक्ष्मणके साथ सहसा भयको प्राप्त हुए तथा क्षण भरके लिए निश्चल रह गये ॥४१॥ सीता भयभीत हो पतिसे लिपट गयी, तब रामने क्षण एकमें भय छोड़कर सीतासे कहा कि डरो मत ॥४२॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटानेपर भी बार-बार वहीं लौटकर आते थे ऐसे साँप, बिच्छुओंको धनुषके अग्रभागसे दूर किया ॥४३॥

अथानन्तर भक्तितसे भरी सीताने निर्झरके जलसे देर तक उन मुनियोंके पैर धोकर मनोहर गन्धसे लिप्त किये ॥४४॥ तथा जो वनको सुगन्धित कर रहे थे एवं लक्ष्मणने जो तोड़कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओंके फूलोंसे उनकी खूब पूजा की ॥४५॥ तदनन्तर अंजलिरूपी कमलकी बोड़ियोंसे जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि-विधानके जाननेमें निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराजकी वन्दना की ॥४६॥ अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरोंमें गाते हुए रामने मनोहर स्त्रीके समान वीणाको गोदमें रखकर बजाया ॥४७॥ इनके साथ ही लक्ष्मणने भी बड़े आदरसे तत्त्वपूर्ण गान गाया । उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित वृक्षके समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयलकी मीठी तानके समान मालूम होता था ॥४८॥ वे गा रहे थे कि जो महायोगके स्वामी हैं, धीर-वीर हैं तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित हैं, उत्तम भाग्यके धारक जिन मुनियोंने उपमासे रहित, अखण्डित, तथा तीन लोकमें प्रसिद्ध 'अहंत्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया हैं । जिन्होंने ध्यानरूपी दण्डके द्वारा महामोहरूपी शिलातलको तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान-धर्माचरणसे रहित विश्वको दीन समझते हैं ऐसे साधु देवोंके द्वारा भी मनसे, शिरसे तथा वचनसे वन्दनीय हैं ॥४९-५१॥ मानकी विधिको जाननेवाले राम-लक्ष्मण जब इस प्रकारके अक्षर गा रहे थे तब त्रिचोके भी चित्त कोमलताको प्राप्त हो गये थे ॥५२॥

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्योंके लक्षण जानती थी, मनोहर बेपभूषासे युक्त थी, हार माला आदिसे अलंकृत थी, परम लीलासे सहित थी, स्पष्टरूपसे अभिनय दिखला रही थी, जिसकी बाहुरूपी लताओंका भार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव-भाव आदिके दिखलानेमें निपुण थी, लय बदलनेके समय जिसके सुन्दर स्तनोंका मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके

लयान्तरवशोत्कम्पिमनोज्ञस्तनमण्डला । निःशब्दचरणाम्भोजविन्यासा चलितोरुका ॥५५॥
 गीतानुगमसंपन्नसमस्ताङ्गविचेष्टिता । मन्दरे श्रीरिवानृत्यज्ज्ञानकी भक्तिचोदिता ॥५६॥
 उपसर्गादिव त्रस्ते यातेऽस्तं भास्करे ततः । सन्ध्यायां चानुसर्गेण यातायां चलतेजसि ॥५७॥
 नक्षत्रमण्डलालोकं निधनं नीलाभ्रसंनिभम् । व्याप्नुवानं दिशः सर्वा गहनं ध्वान्तमुद्गतम् ॥५८॥
 जनस्याश्रावि कस्यापि दिक्षु संक्षोभणं परम् । साराविणं तथा चित्रं^३ भिन्दानमिव पुष्करम्^४ ॥५९॥
 विद्युज्ज्वालामुखैर्लम्बैरम्बुदैर्व्यासमम्बरम् । कापि यात इवाशेषो^५ लोकस्त्राससमाकुलः ॥६०॥
 अलम्प्रतिभयाकारा दंष्ट्रालीकुटिलाननाः । अट्टाहासान् महारौद्रान् भूतानां सस्रजुर्गणाः ॥६१॥
 क्रध्यादा विरसं रेसुः सानलं चाशिवाः^६ शिवाः^७ । सस्वनुर्नृतुर्भीमं कलेवरशतानि च ॥६२॥
 मूर्धरोमुजजङ्घादीन्यङ्गानि ववृषुर्वनाः । दुर्गन्धिभिः समेतानि स्थूलशोणितविन्दुभिः ॥६३॥
 करवालीकरा क्रूरविग्रहा दोलितस्तनी । लम्बोष्ठी डाकिनी नग्ना दृश्यमानास्थिसंचया ॥६४॥
 मांसखण्डाममग्नाक्षी शिरोघटितशेखरा । ललाटप्रसरोज्जिह्वा पेशीशोणितवर्षिणी ॥६५॥
 सिंहव्याघ्रमुखैस्तसलोहचक्रामलोचनैः । शूलहस्तैर्विदधौष्टैर्भृकुटिकुटिलालकैः ॥६६॥
 राक्षसैः परुषारावैर्नृत्यद्विरतिसंकुलम् । कम्पिताद्रिशिलाजालं लुप्तोभ वसुधातलम् ॥६७॥

चरण-कमलोंका विन्यास शब्द रहित था; जिसकी एक जाँघ चल रही थी । जिसके शरीरकी समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्रके अनुरूप थीं, तथा जो भक्तिसे प्रेरित थी, ऐसी सीताने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनेन्द्रके जन्माभिषेकके समय सुमेरु पर श्री देवीने किया था ॥५३-५६॥ तदनन्तर उपसर्गसे त्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसीके पीछे चंचल तेजको धारण करनेवाली संध्या भी जब चली गयी तब नक्षत्र मण्डलके प्रकाशको नष्ट करनेवाला तथा नील मेघके समान आभावाला सघन अन्धकार समस्त दिशाओंको व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥५७-५८॥ उसी समय किसीका ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओंमें परम क्षोभ उत्पन्न करनेवाला था तथा जो आकाशको भेदन करता हुआ-सा जान पड़ता था ॥५९॥ जिसके अग्रभागमें विजलीरूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लम्बी घन-घटासे आकाश व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भयसे व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥६०॥ जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दाँदोंकी पंक्तिसे कुटिल थे, ऐसे भूतोंके झुण्ड महा भयंकर अट्टहास करने लगे ॥६१॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमंगल रूप शृगालियाँ अग्नि उगलती हुई शब्द करने लगीं, सैकड़ों कलेवर भयंकर नृत्य करने लगे, ॥६२॥ मेघ, दुर्गन्धित खूनकी बड़ी मोटी बूँदोंसे सहित मस्तक, वक्षःस्थल, भुजा तथा जंघा आदि अवयवोंकी वर्षा करने लगे ॥६३॥ जो हाथमें तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यन्त क्रूर था, जिसके स्तन हिल रहे थे, जिसके ओठ अत्यन्त लम्बे थे, जो नग्न थी, जिसकी हड्डियोंका समूह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था, जिसकी कूटी आँखें मांसखण्डके समान थीं, जिसने नरमुण्डका सेहरा पहिन रखा था, जिसकी जीभ ऊपरकी ओर उठकर ललाटका स्पर्श कर रही थी तथा जो मांस और हथिरकी वर्षा कर रही थी ऐसी डाकिनी दिखाई देने लगी ॥६४-६५॥ जिनके मुख सिंह तथा व्याघ्रके समान थे, जिनके नेत्र तपे हुए लोह चक्रके सदृश थे, जिनके हाथमें शूल विद्यमान थे, जो ओंठको डश रहे थे, जिनके ललाट भीहोंसे कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यन्त कठोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसोंसे भरा हुआ वहाँका भूतल

१. सुमेरुपर्वते, मन्दरे ख., ज., म. । २. निधनलीलाभ्रसंभ्रमं, म. । ३. भिन्दन्तमिव म. । ४. आकाशम् ।
 ५. इवाशेष आलोकस्त्रासमाकुल म. । ६. अमंगलभूताः । शृगाल्यः ।

विचेष्टितमिदं व्यर्थं नाज्ञासिष्टां महामुनी । तयोर्हि ^१ज्ञानकर्मान्तशुक्लध्यानमयं तदा ॥६८॥
 तथाविधं तमालोक्य वृत्तान्तं वरभीतिदम् । संहस्य जानकी नृत्यमाश्लिष्यस्कम्पिनी पतिम् ॥६९॥
 पश्यो जगाद तां देवि मा भैषीः शुभमानसे । उपगुह्य मुनेः पादौ तिष्ठ सर्वभयच्छिदौ ॥७०॥
^२इत्युक्त्वा पादयोः कान्तां मुनेरासाद्य लाङ्गली । लक्ष्मीधरकुमारेण साकं सन्नाहमाश्रितः ॥७१॥
 सजलाविव जीमूतौ गर्जितौ तौ महाप्रभौ । ^३निर्घातमिव सुञ्चन्तौ समास्फालयतां धनुः ॥७२॥
 ततस्तौ संभ्रमी ज्ञात्वा रामनारायणाविति । सुरो वह्निप्रभामिष्यस्तिरोधानमुपेयिवान् ॥७३॥
 ज्योतिर्वरं ^४गते तस्मिन् समस्तं तद्विचेष्टितम् । सपदि प्रलयं ^५यातं जातं च विमलं नभः ॥७४॥
 प्रातिहार्यं कृते ताम्ब्यामिच्छद्भ्यां परमं हितम् । उत्पन्नं केवलज्ञानं मुनिपुङ्गवयोः क्षणात् ॥७५॥
 चतुर्विधास्ततो देवा नानायानसमाश्रिताः । समाजग्मुः प्रशंसन्तो मुदितास्तपसः फलम् ॥७६॥
 प्रणम्य विधिना तत्र कृत्वा केवलपूजनम् । रचिताञ्जलयो देवा यथास्थानमुपाविशन् ॥७७॥
 केवलज्ञानसंभूतिसमाकृष्टसुरागमान् । ^६दोषादिनात्मकौ कालावभूतां भेदवर्जितौ ॥७८॥
 भूमिगोचरिणो मर्त्यास्तथा विद्यामहाबलाः । उपविष्टा यथायोग्यं कृत्वा केवलिनो महम् ॥७९॥
 प्रसन्नमानसौ सद्यः कृत्वा केवलपूजनम् । प्रणम्य सीतया साकं निविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥८०॥
 अथ तत्क्षणसंभूतपरमार्हासनस्थितौ । प्रणम्य साञ्जलिः पद्मः पप्रच्छैवं महामुनी ॥८१॥

क्षोभको प्राप्त हो गया और पर्वतकी चट्टानें हिल उठीं ॥६६-६७॥ यह सब हो रहा था परन्तु उन महामुनियोंको इस व्यर्थकी चेष्टाका कुछ भी भान नहीं था, उस समय उनका ज्ञानोपयोग अन्तरंगमें शुक्लध्यान मय हो रहा था अथवा उन महामुनियोंका ज्ञान कर्मोंका क्षय करनेवाले शुक्लध्यानसे तन्मय हो रहा था ॥६८॥ अच्छे-अच्छे पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला ऐसा वृत्तान्त देख सीता नृत्य छोड़ काँपती हुई पतिसे लिपट गयी ॥६९॥ तब रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मानसे ! भयभीत मत हो ! सब प्रकारका भय दूर करनेवाले मुनियोंके चरणोंका आश्रय ले बैठ जाओ ॥७०॥ यह कहकर रामने सीताको मुनिराजके चरणोंके समीप बैठाया और स्वयं लक्ष्मण कुमारके साथ, युद्धके लिए तैयार हो गये ॥७१॥ तदनन्तर सजल मेघके समान गरजनेवाले एवं महा कान्तिके धारक राम लक्ष्मणने अपने-अपने धनुष टंकोरे सो ऐसा जान पड़ा मानो वज्र ही छोड़ रहे हों ॥७२॥ तदनन्तर 'ये बलभद्र और नारायण हैं' ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ देव घबड़ाकर तिरोहित हो गया ॥७३॥ उस ज्योतिषी देवके चले जानेपर उसकी सबकी सब चेष्टाएँ तत्काल बिलीन हो गयीं और आकाश निर्मल हो गया ॥७४॥

अथानन्तर परम हितकी इच्छा करनेवाले राम-लक्ष्मणके द्वारा प्रतिहारिका कार्य सम्पन्न होनेपर अर्थात् उपसर्ग दूर किये जानेपर दोनों मुनियोंकी क्षणभरमें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके वाहनोंपर बैठे, हर्षसे भरे तथा तपके फलकी प्रशंसा करते हुए चारों निकायके देव आ पहुँचे ॥७६॥ वहाँ विधिपूर्वक प्रणामकर तथा केवलज्ञानकी पूजाकर सब देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥७७॥ उस समय केवलज्ञानकी उत्पत्तिसे खिचे हुए देवोंका समागम होनेसे रात-दिन रूप काल भेदसे रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिनका व्यवहार समाप्त हो गया ॥७८॥ भूमिगोचरी मनुष्य तथा विद्यारूपी महाबलको धारण करनेवाले विद्याधर—सभी लोग केवलियोंकी पूजाकर यथायोग्य स्थानपर बैठ गये ॥७९॥ प्रसन्न चित्तके धारक राम-लक्ष्मण भी सीताके साथ शीघ्र ही केवलियोंकी पूजाकर यथास्थान बैठ गये ॥८०॥

अथानन्तर तत्क्षण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनोंपर विराजमान केवलज्ञानी महा-

१. ज्ञानकर्म = इत्यनौत्पादिका क्रिया, अन्तः आभ्यन्तरे इति टिप्पणीपुस्तके । २. इत्युक्त्वा म. । ३. वज्रम् ।

४. ज्योतिर्वारिस् म. । ५. जातं म., क. । ६. रात्रिदिवसरूपी । ७. पूजाम् ।

भगवन्तौ कृतौ नक्तं केनाथं वामुपद्रवः । अथवा स्वस्य युवयोरिदं जातं हितं परम् ॥८२॥
 त्रिकालगोचरं विश्वं विदन्तावपि तौ समम् । गिरं यामूचतुः (गिरायामूचतुः) साम्यपरिणाममितौ क्रमात्
 नगर्यां पद्मिनीनाम्नि राजा विजयपर्वतः । गुणसंस्थोत्तमक्षेत्रं मामिनी यस्य धारिणी ॥८४॥
 अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य दूतः शास्त्रविशारदः । राजकर्तव्यकुशलो लोकविद् गुणवत्सलः ॥८५॥
 उपयोगेति भार्यास्य द्वौ तस्यां कुक्षिसंभवौ । उदितो मुदिताख्यश्च व्यवहारविशारदौ ॥८६॥
 असौ दूतोऽन्यदा राजा प्रहितो दूतकर्मणा । प्रवासं सेवितुं सक्तः स्वामिरक्तमतिभृशम् ॥८७॥
 वसुभूतिः समं तेन सखा तद्वक्तजीवितः । निर्गतस्तद्विद्यासक्तिनिष्ठो दुष्टेन चेतसा ॥८८॥
 सुप्तं तमसिनां हृत्वा निवृत्तौ नगरीं पुनः । जनायावेदयत्तेन किलाहं विनिवर्तितः ॥८९॥
 उपयोगा जगादैवं जहि मे तनयावपि । विश्वद्वयं येन तिष्ठाय इति वध्वा निवेदितम् ॥९०॥
 त्वरितं चोदितायासौ वृत्तान्तो विनिवेदितः । सा हि तेन समं श्वश्रूयाः संगं ज्ञातवती पुरा ॥९१॥
 ब्राह्मण्या वसुभूतेश्च रतिकार्यसमीप्यया । कथितं तत्तथाभूतं परमाकुलचित्तया ॥९२॥
 बभूव चोदितस्यापि संदिग्धं विदितं पुरा । मुदितस्य च खड्गस्य दर्शनात् स्फुटतं गतम् ॥९३॥
 ततो रोषपरीतेन हतः संमुदितेन सः । कुद्विजो म्लेच्छतां प्राप क्रूरकर्मपरायणः ॥९४॥

मुनियोंको नमस्कारकर रामने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥८१॥ कि हे भगवन् ! रात्रिके समय आप दोनों अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनोंमें परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥८२॥ यद्यपि दोनों महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते थे, तो भी साम्यपरिणामको प्राप्त हुए दोनों महामुनि दिव्य ध्वनिमें क्रमसे बोले ॥८३॥ उन्होंने कहा कि—पद्मिनी नामा नगरीमें राजा विजयपर्वत रहता था । गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए उत्तम क्षेत्रके समान उसकी धारिणी नामकी स्त्री थी ॥८४॥ राजा विजयपर्वतके एक अमृतस्वर नामका दूत था जो शास्त्रज्ञानमें निपुण था, राजकर्तव्यमें कुशल था, लोकव्यवहारका ज्ञाता तथा गुणोंमें स्नेह करनेवाला था ॥८५॥ उसकी उपयोगा नामकी स्त्री थी और उसके उदरसे उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नामके दो पुत्र थे । ये दोनों ही पुत्र व्यवहारमें अत्यन्त कुशल थे ॥८६॥ किसी समय राजाने अमृतस्वरको दूत सम्बन्धी कार्यसे बाहर भेजा, सो स्वामीके कार्यमें अत्यन्त अनुरक्त बुद्धिको धारण करनेवाला अमृतस्वर प्रवासके लिए गया ॥८७॥ उसके साथ उसीके भोजनसे जीवित रहनेवाला वसुभूति नामका मित्र भी गया । वसुभूति अत्यन्त दुष्ट चित्तका था तथा अमृतस्वरकी स्त्रीमें आसक्त था ॥८८॥ वह सोते हुए अमृतस्वरको तलवारसे मारकर नगरीमें वापिस लौट आया और आकर उसने लोगोंको बताया कि अमृतस्वरने मुझे लौटा दिया है ॥८९॥ अमृतस्वरकी स्त्री उपयोगाने वसुभूतिसे कहा कि हमारे दोनों पुत्रोंको भी मार डालो जिससे फिर हम दोनों निश्चिन्ततासे रह सकेंगे । सासका यह कहना उसकी बहूने जान लिया इसलिए उसने यह सब समाचार शीघ्र ही उदितके लिए बता दिया, यथार्थमें वह बहू 'सासका वसुभूतिके साथ संगम है' यह पहलेसे जानती थी ॥९०-९१॥ वसुभूतिकी खास स्त्री उसकी इस रतिक्रियासे सदा ईर्ष्या रखती थी तथा उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता था इसलिए उसने यह समाचार उदितकी स्त्रीसे कहा था ॥९२॥ उदितकी भी पहलेसे कुछ-कुछ सन्देह था और मुदित भी इस बातकी पहलेसे जानता था फिर वसुभूतके पास तलवार देखनेसे सब बात स्पष्ट हो गयी ॥९३॥ तदनन्तर क्रोधसे युक्त होकर उदितने उसे मार डाला जिससे क्रूरकर्ममें तत्पर रहनेवाला वह कुब्राह्मण म्लेच्छपर्यायको प्राप्त हुआ ॥९४॥

१. युवयोः ज., क. । २. गिरया । ३. उदितमुदितनामधेयो । ४. छुरिकया । ५. निवृत्तिनगरीं म. । ६. श्वश्रूया म. । ७. मृत्वा च म. ।

अन्यदा प्रथितः क्षोण्यां गणेशो मतिवर्धनः । विहरन् पद्मिनीं प्राप श्रमणः सुमहातपाः ॥९५॥
 अनुद्धरेति विख्याता धर्म्यध्यानपरायणा । महत्तरा तदा चासीदार्यिका गणपालिनी ॥९६॥
 वसन्ततिलकाभिष्ये तत्रोद्याने सुसुन्दरे । संघेन सहितस्तस्थौ चतुर्मेदेन सद्गुवि ॥९७॥
 अथोद्यानस्य संभ्रान्ताः पालकाः किङ्करा भृशम् । नृपं व्यज्ञापयन्नेवं भूमिविन्यस्तपाणयः ॥९८॥
 अग्रतो भृगुरत्युग्रः शार्दूलः पृष्ठतो नृप । वद कं शरणं यामो नाशो नः सर्वथोदितः ॥९९॥
 मद्रा किं किमिति ब्रूयेत्युक्ता नृपतिनागदन् । नाथोद्यानभुवं प्राप्य श्रमणानां गणः स्थितः ॥१००॥
 यद्येनं वारयामोऽतः शापं ध्रुवमवाप्नुमः । न चेत्ते जायते कोप इति नः संकटो महान् ॥१०१॥
 कल्योद्यानसमच्छाद्यमुद्यानं ते प्रसादतः । नरेन्द्रकृतमस्मामिरप्रवेक्ष्य पृथग्जनैः ॥१०२॥
 नैव वारयितुं शक्यतास्तपस्तेजोऽतिदुर्गमाः । त्रिदशैरपि दिग्बन्धाः किमुतास्मादृशैर्जनैः ॥१०३॥
 मा भैष्ट ततो राजा कृत्वा किङ्करसान्त्वनम् । उद्यानं प्रस्थितो युक्तो विस्मयेनातिभूरिणा ॥१०४॥
 कृदद्या च परया युक्तो वन्दिमिः कृतनिस्वनः । उद्यानभुवमासीदत् प्रतापप्रकटः क्षितीट् ॥१०५॥
 ददर्श च महाभागान् वनरेणुसमुक्षितान् । मुक्तियोग्यक्रियायुक्तान् प्रशान्तहृदयान् सुनीन् ॥१०६॥
 प्रतिमावस्थितान् काश्चित् प्रलम्बितभुजद्वयान् । षष्ठाष्टमादिभिस्तीव्रैरुपवासैर्विशोषितान् ॥१०७॥

अथानन्तर किसी समय मुनिसंघके स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवी-पर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥९५॥ उसी समय धर्मध्यानमें तत्पर रहनेवाली, अतिशय श्रेष्ठ और आर्यिकाओंके संघकी रक्षा करनेवाली अनुद्धरा नामकी गणिनी भी विद्यमान थीं ॥९६॥ चतुर्विध संघसे सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उत्तम भूमिसे युक्त वसन्ततिलक नामक उद्यानमें ठहर गये ॥९७॥

तदनन्तर उद्यानकी रक्षा करनेवाले किङ्कर अत्यन्त व्यग्र हो राजाके पास पहुँचे और पृथ्वीपर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! आगे तो बड़ी ऊँची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइए हम किसकी शरणमें जावें । हमारा तो सब प्रकारसे विनाश उपस्थित हुआ है ॥९८-९९॥ 'भले आदमियो ! क्या ? क्या ??, क्या कह रहे हो' इस प्रकार राजाके कहनेपर किङ्करोने कहा कि हे नाथ ! मुनियोंका एक संघ उद्यानकी भूमिमें आकर ठहर गया है ॥१००॥ यदि इस संघको हम मना करते हैं तो निश्चित ही शापको प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगोंपर बड़ा संकट आ पड़ा है ॥१०१॥ हे राजन् ! आपके प्रसादसे हम लोगोंने वह उद्यान कल्पवृक्षोंके उद्यानके समान बना रखा है, उसमें साधारण-पामर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते ॥१०२॥ जो तपके तेजसे अत्यन्त दुर्गम हैं ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियोंको देव भी रोकनेमें समर्थ नहीं हैं फिर हमारे-जैसे मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥१०३॥

तदनन्तर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किङ्करोको सान्त्वना देकर बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त हुआ राजा उद्यानकी ओर चला ॥१०४॥ जो बहुत भारी सम्पदासे युक्त था, बन्दीजन जिसकी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यानभूमिमें पहुँचा ॥१०५॥ वहाँ जाकर उसने महाभागवान् मुनियोंके दर्शन किये । वे मुनि वनकी धूलिसे व्याप्त थे, मुक्तिके योग्य क्रियाओंमें तत्पर थे तथा अत्यन्त प्रशान्त चित्त थे ॥१०६॥ उनमेंसे कितने ही मुनि दोनों भुजाओंको नीचेकी ओर लटकाकर प्रतिमाके समान अवस्थित थे, तथा बेला-तेला आदि कठिन उपवासोंसे उनके शरीर शुष्क हो रहे थे ॥१०७॥

१. ब्रूतेत्युक्त्वा नृपतिनागदं म. । २. पामरजनैः । पृथुस्तनैः (?) म. ।

स्वाध्यायनिरतानन्यान्^१ षडङ्घ्रिमधुरध्वनीन् । तन्निवेशितचेतस्कान् पाणिपादसमाहितान् ॥१०८॥
 अवलोक्य मुनीनित्यं भग्नगर्वाङ्कुरोऽभवत् । अवतीर्य गजाद् भावी ननाम जयपर्वतः ॥१०९॥
 क्रमेण प्रणमन् साधूनाचार्यं समुपागतः । प्रणम्य पादयोरुचे भोगे सद्बुद्धिमुद्वहन् ॥११०॥
 नरप्रधानदीप्तिसे यथेयं शुभलक्षणा । तथा कथं न ते भोगा रताः पादतलस्थिताः ॥१११॥
 जगाद् मुनिमुख्यस्त्वं का ते मतिरियं तनौ । स्थास्तुतासंगतालीका संसारपरिवर्धिनी ॥११२॥
 करिवालककर्णान्तचपलं ननु जीवितम् । मातुष्यकं च कदलीसारसाम्यं विभर्यदः ॥११३॥
 स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सक्तं च सह बान्धवैः । इति ज्ञात्वा रतिः कात्रे चिन्त्यमानातिदुःखदे ॥११४॥
 नरकप्रतिमे घोरे दुर्गन्धे कृमिसंकुले । रक्तश्लेष्मादिसरसि प्रभूताशुचिकर्दमे ॥११५॥
 उषितोऽनेकशो जीवो गर्भवासेऽतिसंकटे । तथा न शङ्कते मोहमहाध्वान्तसमावृतः ॥११६॥
 धिगत्यन्ताशुचिं देहं सर्वाशुभनिघालकम् । क्षणनश्वरमन्त्राणं कृतघ्नं मोहपूरितम् ॥११७॥
 स्नसाजालकसंश्लिष्टमतिच्छातत्वगावृतम् । अनेकरोगविहृतं जराममजुगुप्सितम् ॥११८॥
 एवं धर्मिणि देहेऽस्मिन् ये कुर्वन्ति जना घृतिम् । तेभ्यश्चैतन्यमुक्तेभ्यः स्वस्ति संजायते कथम् ॥११९॥
 शरीरित्यर्थं एतस्मिन् परलोके प्रवालानि ।^२ मुष्णन्तः प्रशमं लोकं तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यवः ॥१२०॥
 रमते जीवन्पतिः कुमतिप्रमदावृतः ।^३ अवस्कन्देन मृत्युस्तं कदर्ययितुमिच्छति ॥१२१॥

कितने ही स्वाध्यायमें तत्पर हो भ्रमरोंके समान मधुरध्वनिसे गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्यायमें चित्त लगाकर पद्मासनसे विराजमान थे ॥१०८॥ इस प्रकारके मुनियोंको देखकर राजाका गर्वरूपी अंकुर भग्न हो गया तथा उसने हाथीसे नीचे उतरकर मुनियोंको नमस्कार किया । राजाका नाम विजयपर्वत था ॥१०९॥ भोगोंमें समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाला राजा क्रम-क्रमसे सब मुनियोंको नमस्कार करता हुआ आचार्योंके पास पहुँचा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी शुभ लक्षणोंसे युक्त जैसी दीप्ति है वैसे भोग आपके चरणतलमें स्थित क्यों नहीं हैं ? ॥११०-१११॥ आचार्यने उत्तर दिया कि तेरे शरीरमें यह क्या बुद्धि है ? तेरी वह बुद्धि शरीरको स्थिर समझनेवाली है सो झूठी है और संसारको बढ़ानेवाली है ॥११२॥ निश्चयसे यह जीवन हस्तिशिशुके कानोंके समान चंचल है तथा मनुष्यका यह जीतव्य केलेके सारकी सदृशता धारण करता है ॥११३॥ यह ऐश्वर्य और बन्धुजनोंका समागम स्वप्नके समान है, ऐसा जानकर इसमें क्या रति करना है ? इन ऐश्वर्य आदिका ज्यों-ज्यों विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यन्त दुःखदायी हो मालूम होते हैं ॥११४॥ जो नरकके समान है, अत्यन्त भयंकर है, दुर्गन्धसे भरा है, कीड़ोंसे युक्त है, रक्त तथा कफ आदिका मानो सरोवर है, जहाँ अत्यन्त अशुचि पदार्थोंकी कीच मच रही है तथा जो अत्यन्त संकीर्ण है ऐसे गर्भमें इस जीवने अनेकों बार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अन्धकारसे आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥११५-११६॥ जो सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंका भाण्डार है, क्षण-भरमें नष्ट हो जानेवाला है, जिसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोहसे पूरित है, नसोंके समूहसे वेष्टित है, अत्यन्त पतली चर्मसे घिरा है, अनेक रोगोंसे खण्डित है, और बुढ़ापाके आगमनसे निन्दित है, ऐसे इस शरीरको धिक्कार है ॥११७-११८॥ जो मनुष्य ऐसे शरीरमें धैर्य धारण करते हैं, चैतन्य अर्थात् विचारा-विचारकी शक्तिसे रहित उन मनुष्योंका कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥११९॥ यह आत्मारूपी बनजारा परलोकके लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगोंको जबरदस्ती लूटनेवाले ये इन्द्रियरूपी चोर उसे रोककर बैठे हैं ॥१२०॥ यह जीवरूपी राजा कुबुद्धिरूपी स्त्रीसे घिरकर क्रीड़ा कर रहा

१. भ्रमरमधुरध्वनीन् । स्वनाम् ख., म. । २. श्ल-म. । ३. समुपागतं म. । ४. ऐश्वर्यं म. । ५. क्वात्र म. । ६. सतां शुभ-म. । ७. विहितं म., ख. । ८. मुष्णन्तः म., ज. । ९. अवस्कन्देन म. ।

मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरदविभ्रमम् । वैराग्यबलिना शक्यं रोदधुं ज्ञानाङ्कुशश्रिता ॥१२२॥
 परस्त्रीरूपसंस्थेषु बिभ्राणा लोभमुत्तमम् । अमी हृषीकतुरगा धृतमोहमहाजवाः ॥१२३॥
 शरीररथमुन्मुक्ताः पातयन्ति कुवर्त्मसु । चित्तप्रग्रहमत्यन्तं योग्यं कुत तद्दृढम् ॥१२४॥
 नमस्यत जिनं भक्त्या स्मरतानारतं तथा । संसारसागरं येन समुत्तरत निश्चितम् ॥१२५॥
 मोहारिक्वण्टकं हित्वा तपःसंयमहेतिभिः । लोकाग्रनगरं प्राप्य राज्यं कुत निर्मयाः ॥१२६॥
 जैनं व्याकरणं श्रुत्वा सुधीर्विजयपर्वतः । त्यक्त्वा विपुलमैश्वर्यं बभूव मुनिपुंगवः ॥१२७॥
 तावपि भ्रातरौ तस्मिन् श्रुत्वा भक्त्या जिनश्रुतिम् । प्रव्रज्य सुतपोभारौ संगतावाटतुर्महीम् ॥१२८॥
 समेदं च व्रजन्तौ ताविष्टनिर्वाणवन्दनौ । कथंचिन्मार्गतो अष्टावरण्यानीं समाश्रितौ ॥१२९॥
 वसुभूतिचरेणाथ रौद्रम्लेच्छेन वीक्षितौ । अतिक्रुद्धेन चाहूतौ गिराक्रोशकठोरया ॥१३०॥
 जिघांसन्तं तमालोक्य ज्यायामुदितमववीत् । मा भैषीर्भ्रातरश्च त्वं समाधानं समाश्रय ॥१३१॥
 म्लेच्छोऽयं हन्तुमुद्युक्तो दृश्यते नौ दुराकृतिः । चिराभ्याससमृद्धाया शान्तेरथ विनिश्चयः ॥१३२॥
 प्रत्युवाच स तं मोतिः का नौ जिनवचस्थयोः । नूनं मूढतयास्माभिरप्ययं प्रापितो वधम् ॥१३३॥
 एवं तौ विहितालापौ सविचारं समाश्रितौ । प्रत्याख्यानं शरीरादेः प्रतिमायोगमागतौ ॥१३४॥
 समीपतां च संप्राप्तौ म्लेच्छो हन्तुं समुद्यतः । आलोक्य दैवयोगेन सेनेशेन निवारितः ॥१३५॥
 रामः पप्रच्छ तेनैतौ व्यापादयितुमीप्सितौ । सेनाधिपेन निमुक्तौ रक्षितौ केन हेतुना ॥१३६॥

है और मृत्यु उसे अचानक ही दुःखी करता चाहती है ॥१२१॥ विषयोंके मार्गमें मदोन्मत्त हाथीके समान दौड़ता हुआ यह मन ज्ञानरूपी अंकुशको धारण करनेवाले वैराग्यरूपी बलवान् पुरुषके द्वारा ही रोका जा सकता है ॥१२२॥ जो शरीररूपी धान्यमें उत्तम लोभको धारण कर रहे हैं तथा जो महामोहरूपी वेगको धारण कर लम्बी चौकड़ी भर रहे हैं ऐसे ये इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथको कुमारगमें गिरा देते हैं, इसलिए मनरूपी लगामको अत्यन्त दृढ़ करो ॥१२३-१२४॥ भक्ति-पूर्वक जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करो और निरन्तर उन्हींका स्मरण करो जिससे निश्चयपूर्वक संसार-सागरको पार कर सको ॥१२५॥ तप और संयमरूपी शस्त्रोंके द्वारा मोहशत्रुरूपी कंटकको नष्ट कर मोक्षरूपी नगरको प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँका राज्य करो ॥१२६॥ इस प्रकार जेनाचार्यका व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विजयपर्वत विशाल वैभवका परित्यागकर श्रेष्ठ मुनि हो गया ॥१२७॥ दूतके पुत्र दोनों भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जितवाणी सुनकर दीक्षित हो गये और उत्तम तपको धारण करते हुए एक साथ पृथिवीपर विहार करने लगे ॥१२८॥ निर्वाण क्षेत्रकी वन्दनाकी अभिलाषा रखते हुए वे सम्मेदाचलको जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटवीमें जा पहुँचे ॥१२९॥ वसुभूतिका जीव मरकर उसी अटवीमें पुष्टम्लेच्छ हुआ था, सो उसने देखते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वाणीसे उन्हें बुलाया ॥१३०॥ उसे मारनेके लिए उत्तुक देख बड़े भाई उदितने मुदितसे कहा कि हे भाई ! भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, चित्त स्थिर करो ॥१३१॥ दुष्ट आकृतिको धारण करनेवाला या म्लेच्छ हम दोनोंको मारनेके लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगोंने चिरकालके अभ्याससे जिस क्षमाको समृद्ध बनाया है आज उसकी परीक्षाका अवसर है ॥१३२॥ मुदितने बड़े भाईको उत्तर दिया कि जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंमें स्थिर रहनेवाले हम लोगोंको भय किस बातका है ? निश्चयसे हम लोगोंने भी इसका वध किया होगा ॥१३३॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचार-पूर्वक खड़े हो गये और शरीर आदिसे ममता छोड़ प्रतिमा योगको प्राप्त हुए ॥१३४॥ तदनन्तर मारनेकी इच्छा रखता हुआ वह भील उनके पास आया परन्तु दैवयोगसे भीलोंके सेनापतिने उसे देख लिया जिसे मना कर दिया ॥१३५॥ यह सुन, रामने केवलीसे पूछा कि भील इन्हें क्यों मारना

१. हेतुभिः म. । २. व्याख्यानं । ३. सम्मोदं ख. । ४. क्रोशकुठारया म. ।

केवल्यो स्यात् समुद्भूता भारतीति भवान्तरे । सुरपः कर्षकश्चास्तां यक्षस्थाने सहोदरौ ॥१३७॥
 लुब्धकेनाहूतो जीवः शकुन्तिग्राममन्यदा । ताभ्यां कारण्ययुक्ताभ्यां दत्त्वा मूल्यं विमोचितः ॥१३८॥
 ततोऽसौ शकुनो मृत्वा बभूव ग्लेच्छभूपतिः । सुरपः कर्षकश्चैतावुदितो मुदितस्तथा ॥१३९॥
 पक्षीभवन्नसौ यस्मादेताभ्यां रक्षितं पुरा । तस्मात् सेनापतिसंयोर रक्षासाविमौ सुनी ॥१४०॥
 'लुब्धको जीवमोक्षेण वसुभूतिर्द्विजोत्तमः । संजातो कर्मयोगेन मनुष्यभवमुत्तमम् ॥१४१॥
 यद्यथा निर्मितं पूर्वं तद्योग्यं जायतेऽधुना । संसारवाससक्तानां जीवानां गतिरौदृशी ॥१४२॥
 किमधीतैरिहानर्थं ग्रन्थैरौशनसादिभिः । एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुखकारणम् ॥१४३॥
 निःसृतावुपसर्गात्तौ सुनी कर्मानुभावतः । निर्वाणसदनं प्राप्तावकाष्टां जिनवन्दनाम् ॥१४४॥
 एवं तौ चारुधामानि पर्यट्य समर्थं धिरम् । रत्नत्रयं समाराध्य मृत्वा स्वर्गमुपागतौ ॥१४५॥
 निन्द्योनिषु पर्यट्य वसुभूतिः सुकृच्छ्रतः । मनुष्यत्वं समासाय तापसव्रतमाश्रितः ॥१४६॥
 कृत्वा बालतपः कष्टं कालधर्मेण संगतः । अग्निकेतुरिति ख्यातः क्रूरो ज्योतिःसुरोऽभवत् ॥१४७॥
 तथास्ति भरतक्षेत्रे नान्नारिष्टमहापुरम् । प्रियव्रत इति ख्यातः पुद्गमोगोऽत्र पार्थिवः ॥१४८॥
 महादेव्यावुभे तस्य योषिद्गुणसमन्विते । काञ्चनाभा प्रसिद्धिका पद्मावत्यपरोदिता ॥१४९॥
 च्युतौ तौ सुन्दरी नाकाज्जातौ पद्मावतोसुतौ । नाम्ना रत्नरथोऽन्यश्च विचित्ररथसंज्ञकः ॥१५०॥
 उत्पन्नः कनकामायां ज्योतिर्देवः परिच्युतः । अनुन्धर इति ख्यातिं गुणैस्ते चावनि गताः ॥१५१॥
 राज्यं पुत्रेषु निक्षिप्य षड्दिनानि जिनालये । कृतसंलेखनः सन्धक् स्वर्गं यातः प्रियव्रतः ॥१५२॥

चाहता था और सेनापतिने किस कारणसे छुड़ाकर इनकी रक्षा की ॥१३६॥ तब केवली भगवान्‌के मुखसे इस प्रकारकी दिव्यध्वनि प्रकट हुई कि भवान्‌तरमें यक्षस्थान नामक नगरमें सुरप और कर्षक नामके दो भाई रहते थे ॥१३७॥ एक दिन एक शिकारी किसी पक्षीको पकड़कर उस गाँवमें आया सो दयासे युक्त होकर सुरप और कर्षकने मूल्य देकर उसे छुड़ा दिया ॥१३८॥ तदनन्तर वह पक्षी मरकर ग्लेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्षक मरकर उदित तथा मुदित हुए ॥१३९॥ चूँकि पक्षी अवस्थामें इन दोनोंने पहले इसकी रक्षा की थी इसलिए पक्षीने भी सेनापति होकर इन दोनों मुनियोंकी रक्षा की ॥१४०॥ शिकारीका जाव मरकर कर्मयोगसे उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नामका ब्राह्मण हुआ ॥१४१॥ यह जीव पूर्व भवमें जैसा करता है इस भवमें उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है । संसारी प्राणियोंकी ऐसी ही दशा है ॥१४२॥ यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्रोंके पढ़नेसे क्या होता है ? सुखके कारणभूत एक पुण्यका ही संचय करना चाहिए ॥१४३॥ पुण्यके प्रभावसे उपसर्गसे निकले हुए दोनों मुनियोंने निर्वाण क्षेत्र—सम्मोदाचल पहुँचकर जिनवन्दना की ॥१४४॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानोंमें भ्रमण कर तथा चिरकाल तक रत्नत्रयकी आराधना कर मरकर दोनों मुनि स्वर्ग गये ॥१४५॥ और वसुभूति अनेक खोटों योनियोंमें भ्रमण कर बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभवको प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापसके व्रत धारण किये ॥१४६॥ तदनन्तर दुःखदायी बाल तपकर वह मरा और अग्निकेतु नामका दुष्ट ज्योतिषी देव हुआ ॥१४७॥

तदनन्तर इसी भरतक्षेत्रमें एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नामका महाभोगवान् राजा राज्य करता था ॥१४८॥ उसकी स्त्रियोंके गुणोंसे सहित दो महादेवियाँ थीं एक काञ्चनाभा और दूसरी पद्मावती ॥१४९॥ उदित और मुदितके जीव स्वर्गसे चयकर रानी पद्मावतीके रत्नरथ और विचित्ररथ नामके सुन्दर पुत्र हुए ॥१५०॥ वसुभूतिका जीव जो ज्योतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत राजाकी दूसरी महादेवी काञ्चनाभाके अनुन्धर नामका पुत्र हुआ । पृथिवीपर आये हुए तीनों पुत्र अपने गुणोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥१५१॥ राजा प्रियव्रत पुत्रोंके ऊपर राज्य

१. केवलमुखात् । २. अयं श्लोकः क., ख., ज. प्रतिषु नास्ति ।

राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना श्रीप्रभा श्रीप्रभेव सा । लब्धा रत्नरथेनेष्टा कनकाभाङ्गजेन च ॥१५३॥
लब्धा रत्नरथेनैषा ततो द्वेषमुपागतः । अनुन्धरो महीं तस्य विनाशयितुमुद्यतः ॥१५४॥
ततो रत्नरथेनासौ विचित्रस्यन्दनेन च । निर्जित्य समरे पद्म दण्डान् प्राप्य निराकृतः ॥१५५॥
खलोकारात्ततः पूर्वजन्मवैराच्च कोपतः । जटाबल्कलधारी स तापसोऽभूद् विषाड्घ्नितः ॥१५६॥
भुक्त्वा राज्यं चिरं कालं सोदरी तु प्रबोधिनी । प्रव्रज्य सुतपः कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥१५७॥
तौ महातेजसौ तत्र सुखं प्राप्य सुरोचितम् । च्युतौ सिद्धार्थनगरे क्षेमङ्करमहीभृतः ॥१५८॥
उत्पन्नौ विमलाख्यायां महादेव्यां सुसुन्दरौ । देशभूषण इत्याद्यो द्वितीयः कुलभूषणः ॥१५९॥
विद्यार्जनोचितौ तौ च क्रीडन्तौ तिष्ठतौ गृहे । नाम्ना सागरवीषश्च विद्वान् भ्राम्यन्नुपागतः ॥१६०॥
राज्ञा च संगृहीतस्य तस्य पार्श्वेऽखिलाः कलाः । किशितौ तावुदारेण विनयेन समन्वितौ ॥१६१॥
'स्वजनं नैव तौ कंचिज्जानीतस्तद्गतात्मकौ । कर्तव्यं हि तयोः सर्वं विद्याशालागतं तदा ॥१६२॥
उपाध्यायेन चानीतौ सुचिरात् पितुरन्तिकम् । दृष्ट्वा योग्यौ नरेन्द्रेण यथाकामं स पूजितः ॥१६३॥
भावयोः किल दारार्थं पित्रा सामन्तकन्यकाः । आनायिता इति श्रोत्रपथं वार्ता तयोर्गता ॥१६४॥
ततस्तौ परया द्युत्या बाह्यालीं गन्तुमुद्यतौ । वातायनस्थितां कन्यां पुरशोभामपश्यताम् ॥१६५॥
तत्संगमार्थमन्योन्यं मानसेऽकुहतां वधम् । ततश्च वन्दिनो वक्त्रादिति शब्दः समुत्थितः ॥१६६॥

छोड़ जिनालयमें छह दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥१५२॥ अथानन्तर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थमें श्रीप्रभा अर्थात् लक्ष्मीके समाप्त प्रभाकी धारक थी, रत्नरथने उससे विवाह कर लिया । इसी पुत्रीको कांवनाभाका पुत्र अनुन्धर भी चाहता था । वह द्वेष रखकर उसकी भूमिको उजाड़ करनेके लिए उद्यत हो गया ॥१५३-१५४॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथने उसे युद्धमें जोतकर तथा पांच प्रकारके दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ॥१५५॥ अनुन्धर इस अपमानसे तथा पूर्वभव सम्बन्धी बैरसे कुपित होकर जटा और बल्कलको धारण करनेवाला विषवृक्षके समान तापसी हो गया ॥१५६॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोधको प्राप्त हुए सो दोक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुए ॥१५७॥ महातेजको धारण करनेवाले दोनों भाई वहाँ देवोंके योग्य उत्तम सुख भोगकर वहाँसे च्युत हुए और सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमंकरकी विमला नामक महादेवीके दो सुन्दर पुत्र हुए । प्रथम पुत्रका नाम देशभूषण और दूसरे पुत्रका नाम कुलभूषण था ॥१५८-१५९॥ विद्या उपार्जन करनेकी योग्य अवस्थामें वर्तमान दोनों भाई घरपर क्रीड़ा करते रहते थे । एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नामका महाविद्वान् वहाँ आया, सो राजाने उसे रख लिया । उत्कृष्ट विनयसे युक्त दोनों भाइयोंने उस विद्वान्के पास समस्त कलाएँ सीखीं ॥१६०-१६१॥ दोनों पुत्रोंका विद्यामें इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवारके लोगोंको भी नहीं जानते थे । यथार्थमें उनका सम्पूर्ण चित्त विद्या और विद्यालयमें ही लगा रहता था ॥१६२॥ उपाध्याय चिरकालके बाद पुत्रोंको निपुण बनाकर पिताके पास ले गया सो पिताने पुत्रोंको योग्य देख उपाध्यायका यथायोग्य सम्मान किया ॥१६३॥ तदनन्तर पिताने हम दोनोंके विवाहके लिए राज-कन्याएँ बुलवायी हैं यह समाचार उनके कर्णमार्ग तक पहुँचा ॥१६४॥

तदनन्तर परम कान्तिसे युक्त दोनों भाई एक दिन नगरके बाहर जानेके लिए उद्यत हुए सो उन्होंने झरोखेमें बैठी नगरकी शोभास्वरूप एक कन्या देखी ॥१६५॥ उस कन्याका समागम प्राप्त करनेके लिए दोनों ही भाइयोंने अपने मनमें परस्पर एक दूसरेके वध करनेका विचार किया ।

१. स्वजनेनैव म. । २. विद्याशालागतं ब. । विद्याशालगतं म. ।

साकं विमलया देव्या श्रीमान् क्षेमङ्करो नृपः । चिरं जयति वस्यैतौ तनयौ त्रिदशोपमौ ॥१६७॥
 वातायनस्थितेषापि कन्यका कमलोत्सवा । जयति आतरावेतौ यस्याश्चारुणोक्तटी ॥१६८॥
 ततस्तौ तद्गिरो ज्ञात्वा सोदरैषावयोरिति । वैराग्यं परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥१६९॥
 धिग्धिग्धिग्धिग्दमत्यन्तं पापमस्माभिरहितम् । अहो मोहस्य दारुण्यं सोदरा येन काङ्क्षिता ॥१७०॥
 चिन्तयित्वा प्रमादेन दुःखमस्माकमीदृशम् । कुर्वन्ति ये सदा कार्यं तेषां स्वत्यन्तसाहसम् ॥१७१॥
 असारोऽयमहोऽत्यन्तं संसारो दुःखपूरितः । तत्र नामेदृशा भावा जायन्ते पापकर्मणाम् ॥१७२॥
 कुतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं चेतनो नरकं व्रजेत् । संप्राप्य बोधमस्माभिः सद्बुद्धं चित्रमुत्तमम् ॥१७३॥
 इति संचिन्त्य सन्त्यज्य मातरं दुःखमूर्च्छिताम् । स्नेहाकुलं च पितरं दीक्षां दैग्वासंसीं धितौ ॥१७४॥
 नभोविहरणीं लब्धिं प्राप्य तौ सुतपोधनौ । आहिषातं जगन्मानाजिनतीर्थभिपूजितम् ॥१७५॥
 क्षेमङ्करनरेशस्तु तच्छोकानलदीपितः । युगपत्सकलं त्यक्त्वाऽऽहारं पञ्चवैमागतः ॥१७६॥
 भवादारभ्य पूर्वोक्तात् स एव हि पितावयोः । तेन नौ प्रति वात्सल्यं तस्य निश्चयमनुत्तमम् ॥१७७॥
 गरुडाधिपतिश्चासौ जातः कृयातो मरुत्वतः । सुन्दरोऽहुतविक्रान्तो महालोचनसंज्ञकः ॥१७८॥
 ध्रुब्धः स्वासनकम्पेन प्रयुज्यावधिमूर्जितः । आगतोऽयं स्थितो माति व्यन्तरामरसंसदि ॥१७९॥
 अनुन्धरस्तु विहरंस्तापसाचारतत्परः । कौमुदीनगरीं यातः शिष्यसंघेन वेष्टितः ॥१८०॥
 नरेशः सुमुखस्तत्र रतवत्यस्य भामिनी । कान्ता शतप्रधानत्वं प्राप्ता परमसुन्दरी ॥१८१॥

तदनन्तर वन्दीके मुखसे उसी समय यह शब्द निकला ॥१६६॥ कि विमला देवीके साथ वह राजा क्षेमंकर सदा जयवन्त रहे जिसके कि देवोंके समान ये दो पुत्र हैं ॥१६७॥ तथा झरोखेमें बैठी यह कमलोत्सवा नामकी कन्या भी धन्य है जिसके कि सुन्दर गुणोंसे उत्कट ये दो भाई हैं ॥१६८॥ तदनन्तर वन्दीके कहनेसे 'यह हमारी बहन है' ऐसा जानकर परम वैराग्यको प्राप्त हुए दोनों भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१६९॥ अहो ! हम लोगोंके द्वारा इच्छित इस भारी पापको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है । अहो ! मोहकी दारुणता देखो कि जिससे हमने बहन ही की इच्छा की ॥१७०॥ हम लोग तो प्रमादसे ही ऐसा विचार कर दुःखी हो रहे हैं फिर जो जान-बूझकर सदा ऐसा कार्य करते हैं उनका तो बहुत भारी साहस ही कहना चाहिए ॥१७१॥ अहो ! दुःखसे भरा यह संसार बिलकुल ही असार है जिसमें पापो मनुष्योंके ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं ॥१७२॥ किसी पापके उदयसे सहसा कार्य करनेवाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्यको पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है ॥१७३॥ ऐसा विचारकर दुःखसे मूर्च्छित माता और स्नेहसे आकुल पिताको छोड़कर दोनोंने दैग्म्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥१७४॥ उत्तम तपस्वी धनको धारण करनेवाले दोनों मुनियोंने आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त कर जगत्के नाना तीर्थ क्षेत्रोंमें विहार किया ॥१७५॥ राजा क्षेमंकर उस शोकाग्निसे दग्ध होकर एक साथ समस्त आहार छोड़ मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१७६॥ राजा क्षेमंकर पहले कहे हुए भवसे ही लेकर हम दोनोंका पिता होता आया है इसलिए हम दोनोंके प्रति उसका निरन्तर भारी स्नेह रहता था ॥१७७॥ अब वह मरकर भवनवासी देवोंमें सुपर्ण कुमार जातिके देवोंका अधिपति, प्रसिद्ध, सुन्दर, अद्भुत-पराक्रमका धारी महालोचन नामका देव हुआ है ॥१७८॥ वह बली अपने आसनेके कम्पित होनेसे क्षुभित हो अवधिज्ञानके द्वारा सब जानकर यहाँ आया है तथा व्यन्तर देवोंकी सभामें बैठा है ॥१७९॥ उन्नर तपस्वियोंका आचार पालन करनेमें तत्पर अनुन्धर, शिष्य समूहके साथ विहार करता हुआ कौमुदी नगरीमें आया ॥१८०॥ वहाँका राजा सुमुख था और

१. -भिः सद्बुद्धश्चित्तमुत्तमम् म. । २. दैग्म्वरीम् । ३. जगन्मान्याजिनतीर्थभिपूजिताम् म. । ४. हारे म. ।

५. मृत्युम् । ६. सर्वदारम्य म. ।

अवस्था च सच्चेष्टा मदनेति विलासिनी । पताका मदनेनेव जित्वा लोकमुपार्जिता ॥१८२॥
 साधुदत्तमुनेः पार्श्वे सम्यग्दर्शनमैदृशैः । तत्प्राप्तेतरतीर्थानि तृणतुल्यान्यमन्यत ॥१८३॥
 तस्याः पुरोऽथ रहसि कदाचिदवदन्नृपः । अहोऽसौ तापसः स्थानं महातां तपसामिति ॥१८४॥
 ततो मदनयाऽवाचि कीदृशनाथेदृशां तपः । मिथ्यादृशामविज्ञानलोकदम्भनकारिणाम् ॥१८५॥
 तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै क्रुद्धः सा चागदत् पुनः । मा रुषः पश्य नाथेमं मेऽचिरात्पादवर्तिनम् ॥१८६॥
 ह्युक्त्वा स्वगृहं गत्वा शिक्षयित्वा मनोहरम् । आत्मजां नागदत्ताख्यां प्रैषयत्तापसाश्रमम् ॥१८७॥
 तस्मै सैकान्तयाताय योगस्थाय सुविभ्रमा । आस्थितामरकन्येव परमाकल्पधारिणी ॥१८८॥
 वातेरिताम्बरव्याजादूरूकाण्डमदर्शयत् । सारस्यान्तःपुरस्थानं लावण्यरसनिर्भरम् ॥१८९॥
 समाधानोपदेशेन कुङ्कुमद्रवपिञ्जरम् । मारवारणकुङ्कुमाभं तथा वक्षसिजद्वयम् ॥१९०॥
 कुसुमग्रहणव्याजात् सस्तनीचिरतेर्गृहम् । नामिमण्डलमुत्तेजः कक्षोद्देशं च सुन्दरी ॥१९१॥
 अज्ञानयोगमेतस्य मित्वा लोचनमानसे । अपसतां प्रदेशेषु तेषु तस्याः सुबन्धने ॥१९२॥
 ताडितः स्मरबाणैश्च समुत्थाय समाकुलः । गत्वा शनैरपृच्छतां त्वं बाले कात्र वर्तसे ॥१९३॥
 संध्याकालेऽत्र ये केचित् प्राणिनः क्षुद्रका अपि । आलयं स्वं निषेवन्ते ननु त्वं सुकुमारिका ॥१९४॥
 साधोचन्मधुरैर्वर्णैः सिन्दन्ती हृदयस्थलीम् । लीलया बाहुलतिकासुन्नयन्ती मुखं प्रति ॥१९५॥
 चलच्चोलोपलच्छाये धारयन्ती विलोचने । किञ्चिदन्यमिव प्राप्ता बहुविस्फुरिताधरा ॥१९६॥

रतवती उसकी स्त्री थी जो सैकड़ों स्त्रियोंमें प्रधान तथा परम सुन्दरी थी ॥१८१॥ उसी राजाके उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली एक मदना नामकी विलासिनी (वेश्या) स्त्री थी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो संसारको जीतकर कामदेवके द्वारा प्राप्त की हुई पताका ही हो ॥१८२॥ उस मदनाने साधुदत्त मुनिके पास सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्य धर्मोंको तृणके समान तुच्छ मानती थी ॥१८३॥ अथानन्तर किसी दिन राजाने मदनाके सामने कहा कि अहो ! यह तापस महातपोंका स्थान है ॥१८४॥ यह सुन मदनाने कहा कि हे नाथ ! इन मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी तथा लोगोंको ठगनेवाले लोगोंका तप कैसा ? ॥१८५॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ ! क्रोध मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणोंमें वर्तमान देखिए ॥१८६॥ यह कहकर तथा घर जाकर उसने अपनी नागदत्ता नामकी सुन्दरी पुत्रीको सिखाकर उस तापसके आश्रममें भेजा ॥१८७॥

सुन्दर हावभाव और उत्तम वेष-भूषाको धारण करनेवाली नागदत्ता देवकन्याके समान जान पड़ती थी । वह एकान्तमें योग लेकर बैठे हुए उस तापसके पास जाकर खड़ी हो गयी ॥१८८॥ हवासे हिलते हुए वस्त्रके बहाने उसने कामदेवके अन्तःपुरके समान, सौन्दर्य रससे भरे अपने ऊरु दिखाये ॥१८९॥ समाधानके बहाने केशरके द्रवसे पीले तथा कामदेवके गण्डस्थलकी तुलना धारण करनेवाले दोनों स्तन प्रकट किये ॥१९०॥ पुष्प ग्रहणके बहाने नीवी ढीली कर जघन स्थान दिखाया, देदीप्यमान नाभिभण्डल और सुन्दर बगलें भी दिखलायी ॥१९१॥ उस तापसके नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योगका भेदनकर उस नागदत्ताके उन-उन प्रदेशोंपर पड़ने लगे तथा वहीं बन्धनसे युक्त हो गये ॥१९२॥ तदनन्तर कामके बाणोंसे ताड़ित तपस्वी अत्यन्त व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरे-से उससे पूछने लगा कि हे बाले ! तू कौन है ? और यहाँ कहाँ आयी है ? ॥१९३॥ इस सन्ध्याके समय छोटे-मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यन्त सुकुमार है ॥१९४॥ नागदत्ता मधुरवर्णसे उसका हृदयस्थल भेदती, लीलापूर्वक भुजलताको मुखकी ओर

शृणु नाथ ! दयाधार ! शरणागतवत्सल ! । अभ्ययाऽहं विना दोषादथ निर्वासिता गृहात् ॥१९७॥
 काषायप्रावृता चाहं भवदीयाभिमां स्थितिम् । आचरामि प्रसादं मे कुप नाथानुमोदनात् ॥१९८॥
 शुभ्रूपां भवतः कृत्वा दिवा नक्तं च सकथा । इह लोको मया लब्धः परलोकश्च जायते ॥१९९॥
 किं तद्धर्मार्थकामेषु न यद्भवति लभ्यते । निधानमसि काम्यानां मया पुण्येन वीक्षितः ॥२००॥
 इति संभाषिते तस्याः विज्ञाय प्रगुणं मनः । स्मरेण दृष्टमानोऽसावब्रवीदिति विकलवः^१ ॥२०१॥
 भद्रे कोऽहं प्रसादस्य प्रसीद त्वं ममोत्तमे । भजस्व भक्तिमेषोऽहं यावज्जीवं करोमि ते ॥२०२॥
 इत्युक्त्वालिङ्गितुं क्षिप्रं तं प्रसारितबाहुकम् । अगदीत् पाणिना कन्या वारयन्तीति सादरा^२ ॥२०३॥
 न वर्तते इदं कर्तुं कन्याहं विधिर्वर्जिता । पृच्छ मे^३ मातरं गत्वा गृहेऽस्मिन् दृश्य तोरणे ॥२०४॥
 परा कारुण्ययुक्त्यं भवतः शेषुषो यथा । एतां प्रसादयावश्यं तुभ्यमेषा ददाति माम् ॥२०५॥
 एवमुक्तस्तथा साकं स्वरया व्याकुलक्रमः । वेदमाविशद्विलासिन्याः सवितर्यस्तमागते ॥२०६॥
 मन्मथाकृष्टनिःशेषहृषीकविषयो ह्यसौ । किञ्चिद्वेत्ति स्म नोपायं^४ विशन्वारीमिव द्विषः ॥२०७॥
 न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति । न जानात्यपरस्पर्शं न विभेति न लज्जते ॥२०८॥
 आश्चर्यं^५ मोहतः कष्टमनुतापं प्रपद्यते । अन्धो निपतितः कूपे यथा पन्नगसेविते ॥२०९॥
 वेश्याचरणयोश्चासौ कृत्वा विलुडितं शिरः । याचते कन्यकां पूर्वसंज्ञितश्चाविशान्नृपः ॥२१०॥

ऊपर उठाती, चंचल नील कमलके समान कान्तिके धारक नेत्रोंको धारण करती, कुछ-कुछ दीनताको प्राप्त होती तथा अधरोष्ठको बार-बार हिलाती हुई बोली ॥१९५-१९६॥ किं हे नाथ ! हे दयाके आधार ! हे शरणागत वत्सल ! सुनिए, आज मेरी माताने मुझे अपराधके बिना ही घरसे निकाल दिया है ॥१९७॥ सो हे नाथ ! अब मैं गेहूँ वस्त्र धारण कर आपकी इस वृत्तिका आचरण करूँगी, आप अनुमति देकर मुझपर प्रसाद कीजिए ॥१९८॥ रात-दिन आपकी सेवा करनेसे मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥१९९॥ धर्म, अर्थ और काममें ऐसा कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथोंके भाण्डार हैं । पुण्यसे ही आपके दर्शन हुए हैं ॥२००॥ इस प्रकार कहनेपर उसका मन वशीभूत जान कामसे जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥२०१॥ किं हे भद्रे ! प्रसाद करनेके लिए मैं कौन होता हूँ ? हे उत्तम ! तुम्हीं मुझपर प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन-पर्यन्त तुम्हारी भक्ति करूँगा ॥२०२॥ ऐसा कहकर उसने आलिङ्गन करनेके लिए शीघ्र ही अपनी भुजा पसारी तब आदरके साथ उसे हाथसे रोकती हुई कन्याने कहा ॥२०३॥ किं यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घरमें जाकर मेरी मातासे पूछो ॥२०४॥ आपकी बुद्धिके समान वह परम दयासे युक्त है, उसे प्रसन्न करो, वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे देगी ॥२०५॥ इस प्रकार नागदत्ताके कहनेपर वह सूर्यास्तके अनन्तर अटपटे पैर रखता हुआ उसके साथ वेश्याके घर गया ॥२०६॥ जिसके समस्त इन्द्रियोंके विषय कामसे आकृष्ट हो चुके थे, ऐसा वह तापस वारी (बन्धन) में प्रवेश करनेवाले हाथीके समान कुछ भी उपाय नहीं जानता था ॥२०७॥ सो ठीक ही है, क्योंकि कामसे अस्त मनुष्य न सुनता है, न सूँघता है, न देखता है, न दूसरेका स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित ही होता है ॥२०८॥ जिस प्रकार अन्धा मनुष्य साँपोंसे भरे कुएँमें गिरकर कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार यह कामी मनुष्य मोहवश कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है, यह आश्चर्यकी बात है ॥२०९॥ तदनन्तर वह तापस वेश्याके चरणोंमें शिर झुकाकर कन्याकी याचना करता है और उसी समय पूर्वसंकेतानुसार राजा प्रवेश करता है ॥२१०॥

१. वित्तु वः म. । २. विशारदा म. । ३. पृच्छाव म. । ४. तत्कथा-म. । ५. विशन्वारी म. । दिशन्वारी ख. ।

६. आचार्य म. ब. ।

स्थापितो बन्धयित्वाऽसौ राज्ञा नक्तं समीक्षितः । खलीकारं प्रभाते च प्रकटं प्रापितः परम् ॥२११॥
ततोऽपमाननिर्दग्धः परं दुःखं समुद्बहन् । आगन्त्यन् महीं मृतः क्लेशयोनितु भ्रमणं स्थितः ॥२१२॥
ततः कर्मानुभावेन मनुष्यभवमागतः । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नं जनादरविवर्जितम् ॥२१३॥
गर्भस्थ एव चैतस्मिन् विदेशं जनको गतः । उद्वेजितः कुटुम्बिन्या कलहक्रूरदाक्यया ॥२१४॥
कुमारे च हता माता म्लेच्छेन विषयाहतौ । दुःखं च परमं प्राप्तः सर्वबन्धुविवर्जितः ॥२१५॥
ततस्तापसतां प्राप्य कुत्वा बालतपः परम् । ज्योतिर्लोकं समासद्य नाम्ना वह्निप्रभोऽमपत् ॥२१६॥
अनन्तवीर्यनामाय केवली सेवितः सुरैः । इत्यन्तेवासिना पृष्टो धर्मचिन्तागतात्मना ॥२१७॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थेऽस्मिन् भवता समः । कोऽप्योऽनुमदिता भव्यो लोकस्थोत्तरकारणम् ॥२१८॥
सोऽवोचन्मयि निर्वाणं गतेऽत्र भ्रमणक्षितौ । देशभूषण इत्येको द्वितीयः कुलभूषणः ॥२१९॥
भवितासौ जगत्सारौ केवलज्ञानदर्शिनौ । यौ समाश्रित्य लोकोऽयं तरिष्यति भवार्णवम् ॥२२०॥
सोऽपि वह्निप्रभस्तस्माच्छ्रुत्वा केवलिनो मुखात् । अवस्थानं निजं यातो दध्यौ केवलिभाषितम् ॥२२१॥
अन्यदावधिना ज्ञात्वा योगिनाविह नौ गिरौ । अनन्तवीर्यसर्वज्ञमिथ्यावाक्यं करोम्यहम् ॥२२२॥
एवमुक्त्वामिमानेन परमेणातिमोहितः । आगतः पूर्ववैरेण कतुं परमुपद्रवम् ॥२२३॥
चरमाङ्गधरं दृष्ट्वा स भवन्तमतिदुतम् । सुरेन्द्रकोपमील्या च तिरोधानमुपागतः ॥२२४॥
नारायणरूपेतेन प्रातिहार्ये स्वया कृते । केवलज्ञानमस्माकं जातं घातिपरिक्षये ॥२२५॥

राजाने उसे बँधवाकर रात्रि-भर रखा और सवेरे छान-बीनकर सबके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥२११॥ तदनन्तर अपमानसे जला तापस परम दुःखको धारण करता हुआ पृथ्वी-पर भ्रमण करता रहा और अन्तमें मरकर दुःखदायी योनियोंमें भटकता रहा ॥२१२॥ तदनन्तर कर्मके प्रभावसे मनुष्य भवको प्राप्त हुआ सो दरिद्रतारूपी कीचड़में निमग्न तथा लोगोंके आदरसे रहित नीच कुलमें उत्पन्न हुआ ॥२१३॥ जब वह गर्भमें था तभी कलहके समय क्रूर वचन कहने-वाली स्त्रीसे उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥२१४॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छोंके द्वारा देशपर आक्रमण होनेसे इसकी माता मर गयी । इस तरह सर्व बन्धुओंसे रहित होकर वह परम दुःखको प्राप्त होता रहा ॥२१५॥ तदनन्तर तापस होकर तथा कठिन बालतप कर ज्योतिष लोकमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥२१६॥

अथानन्तर एक समय धर्मकी चिन्तामें जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्यने देवोंके द्वारा सेवित अनन्तवीर्य नामा केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! मुनिसुव्रत भगवान्के इस तीर्थमें आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्रसे पार होनेका कारण होगा ॥२१७-२१८॥ तब अनन्तवीर्य केवलीने उत्तर दिया कि मेरे मोक्ष चले जानेके बाद मुनियोंकी इस भूमिमें एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दो केवली होंगे । ये जगत्के सारभूत तथा केवलज्ञान और दर्शन-के धारक होंगे । इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागरसे पार होंगे ॥२१९-२२०॥ वह अग्निप्रभदेव केवलीके मुखसे यह सुनकर तथा उन्हींके कथनका ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥२२१॥ एक दिन अवधिज्ञानसे वह हम दोनों मुनियोंको इस पर्वतपर विद्यमान जानकर 'मैं अनन्तवीर्य सर्वज्ञके वचन मिथ्या करता हूँ' इस प्रकार कहकर तीव्र मोहसे मोहित होता हुआ पूर्व वैरके कारण परम उपद्रव करनेके लिए यहाँ आया ॥२२२-२२३॥ सो चरमशरीरी आपको देखकर तथा इन्द्रके क्रोधसे भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधानको प्राप्त हुआ अर्थात् भाग गया ॥२२४॥ तुम बलभद्र हो और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः घातिया कर्मोंका क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ॥२२५॥ इस प्रकार वैर करनेवाले प्राणियोंकी

इति गत्यागतीः श्रुत्वा प्राणिनां वैरकारिणाम् । वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वस्था भवत जन्तवः ॥२२६॥
 महापूतमिति श्रुत्वा वचनं केवलीरितम् । मुहुः सुरासुरा नेमुस्तं भीता भवदुःखतः ॥२२७॥
 तावच्च गरुडाधीशः परमं संपदं श्रितः । नत्वा केवलितः पादौ शैयकज्जापितालिकः ॥२२८॥
 ऊचे रघुकुलोद्योतं विलसन्मणिकुण्डलम् । स्निग्धां प्रसारयन् दृष्टिं प्रेमतर्पितमानसः ॥२२९॥
 प्रातिहार्यं कृतं येन त्वया मत्सुतयोः परम् । ततस्तुष्टोऽस्मि याचस्व वस्तु यत्तेऽभिरोचते ॥२३०॥
 क्षणं चिन्तागतः स्थित्वा जगाद रघुनन्दनः । त्वयासुखप्रसन्नेन स्मर्तव्या वयमापदि ॥२३१॥
 साधुसेवाप्रसादेन फलमेतदुपागतम् । अङ्गीकर्तव्यमस्माभिर्भवद्वारविनिर्गतम् ॥२३२॥
 एवमस्त्विति तेनोक्ते दध्मुः शङ्खान् दिवौकसः । भेर्यैश्च मेघनिनदाः साजुषायाः समाहताः ॥२३३॥
 साधुपूर्वमयं श्रुत्वा संवेगं परमं श्रिताः । प्राववजुर्जनाः केचिद्वन्धेऽणुवतमाश्रिताः ॥२३४॥

इन्दुवदनावृत्तम्

देशकुलभूषणमुनी नु जगदर्थ्यो सर्वभवादुःखमलसंसमविमुक्तौ ।

ग्रामपुरपर्वतमटम्बपरिरम्यान् वभ्रमतुरुक्तमगुणैरुपचिन्तागान् ॥२३५॥

देशकुलभूषणमहामुनिमयं ये वृत्तमतिपूतमिदमुक्कटगुभावाः ।

श्रोत्रवचसोर्विषयतामुपनयन्ते ते रविभिन्ना दुरितमाशु विस्जगन्ति ॥२३६॥

इत्यार्षे रविषेणानार्यप्रोक्ते पद्मचरिते देशकुलभूषणोपाख्यानं नामैकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥३९॥

गति-आगतिको सुनकर हे प्राणियो ! परस्परका वैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूपमें लीन होओ ॥२२६॥ इस प्रकार केवली भगवान्‌के द्वारा उच्चरित महापवित्र वचन सुनकर संसारके दुःखोंसे भयभीत हुए सुर और असुरोंने उन्हें बार-बार नमस्कार किया ॥२२७॥

इतनेमें ही परम ऐश्वर्यको प्राप्त सुवर्ण कुमारोके पतिने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा केवली भगवान्‌के चरणकमलमें नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंके धारक रामसे कहा । उस समय वह गरुडेन्द्र रामकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेमसे उसका मन सन्तुष्ट हो रहा था ॥२२८-२२९॥ उसने कहा कि चूँकि तुमने हमारे पुत्रोंकी परम सेवा की है इसलिए मैं तुमपर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह माँग लो ॥२३०॥ राम क्षण-भर चिन्ता करते हुए चुपचाप बैठे रहे । तदनन्तर बोले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो तो आपत्तिके समय हम लोगोंका स्मरण रखना ॥२३१॥ साधुसेवाके प्रसादसे ही यह प्राप्त हुआ कि आप-जैसे सत्पुरुषोंके साथ मिलाप हुआ तथा संसारके द्वारसे निकलनेका मार्ग मिला ॥२३२॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार गरुडेन्द्रके कहनेपर देवोंने शंख फूँके तथा अनेक प्रकारके वादित्रोंके साथ मेघोंके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजायीं ॥२३३॥ मुनियोंके पूर्वभ्रम सुनकर परम संवेगको प्राप्ति हुई कितने ही लोगोंने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही लोग अणुव्रतोंके धारी हुए ॥२३४॥ जगत्‌के द्वारा पूजनीय तथा संसारके समस्त दुःखरूपी मलके समागमसे रहित देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणोंसे युक्त ग्राम, पुर, पर्वत तथा मटम्ब आदि रमणीय स्थानोंमें विहार कर धर्मका उपदेश देने लगे ॥२३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियोंके इस अतिशय पवित्र चरित्रको उत्तम भावोंसे युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरोंको सुनाते हैं वे सूर्यके समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापोंका त्याग करते हैं ॥२३६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणानार्य कथित पद्मचरितमें देशभूषण, कुलभूषण

केवलीका व्याख्यान करनेवाला उनतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३९॥



चत्वारिंशत्तमं पर्व

श्रुत्वा केवलिनः पद्ममन्त्र्यधिप्रदधारिणम् । स्तुत्वा सजयनिस्वानं प्रणेषुः सर्वपार्थिवाः ॥१॥
 वंशस्थलपुरेशश्च महाचित्तः सुरप्रभः । सलक्ष्मणं सपत्नीकं पद्मनाभमपूजयत् ॥२॥
 प्रासादशिखरच्छायाधवलौक्यधुष्करम् । नावृणोन्नगरं गन्तुं रामो राज्ञापि याचितः ॥३॥
 वंशाद्रिशिखरं रम्ये हिमवच्छिरोपमे^१ । समविस्तीर्णसद्वर्णरमणीयशिलातले ॥४॥
 नानावृक्षलताकीर्णे नानाशकुनिनादिते । सुगन्धानिलसंपूर्णे नानापुष्पफलाकुले ॥५॥
 पद्मोत्पलवनाढ्यामिर्वापीशिरविशोमिते । सर्वर्तुसहितोद्युक्तैवसन्तकृतसेवने ॥६॥
^१सजिता परमा भूमिः सुद्धादर्शतलोपमा । दशार्धवर्णरजसा कल्पितानेकमक्तिका ॥७॥
 कुन्दातिमुक्तकलता वकुलाः कमलानि च । यूथिका मल्लिका नागा अशोकाश्चारुपल्लवाः ॥८॥
 एते चान्ये च भूयांसश्चारुभासः सुगन्धयः । आवारम्यविलासाभिः प्रमदाभिः प्रकल्पिताः ॥९॥
 बद्ध्वा परिकरं पुष्पैः सुविदग्धैः सुसंभ्रमैः । मङ्गलालापसंपन्नैः स्वामिभक्तिपरायणैः ॥१०॥
 मेघकाण्डानि वस्त्राणि नानाचित्रधराणि च । प्रसारितानि रुद्राणि वैजयन्तीशतानि च ॥११॥
 किङ्किणीजालयुक्तानि मुक्तादामशतानि च । चासराणि विचित्राणि लम्पूषमणिपट्टिका ॥१२॥
 दर्पणा युद्धदावलयो विस्फुरद्भास्करांशवः । न्यस्तान्येतानि तुङ्गेषु तोरणेषु ध्वजेषु च ॥१३॥
 अवनौ पूर्णकलशाः स्थापिता विधिमंयुताः । हंसा इव निविष्टास्ते विरेजन्तौलिनीवने ॥१४॥

अथानन्तर केवली भगवान्के मुखसे रामको चरमशरीरी जानकर समस्त राजाओंने जयध्वनिके साथ स्तुति कर उन्हें नमस्कार किया ॥१॥ और उदार चित्तके धारक वंशस्थलपुर नगरके राजा सुरप्रभने लक्ष्मण तथा सीता सहित रामकी भक्ति की ॥२॥ जो महलोंके शिखरोंकी कान्तिसे आकाशको धवल कर रहा था ऐसे नगरमें चलनेके लिए राजाने रामसे बहुत याचना की परन्तु उन्होंने स्वीकृत नहीं किया ॥३॥ तब जो अतिशय रमणीय था, हिमगिरिके शिखरके समान था, जहाँ एक समान लम्बे-चौड़े अच्छे रंगके मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षों और लताओंसे व्याप्त था, नाना पक्षी जहाँ शब्द कर रहे थे, जो सुगन्धित वायुसे पूर्ण था, नाना प्रकारके पुष्पों और फलोंसे युक्त था, कमल और उत्पलके वनोंसे युक्त वापिकाओंसे जो अत्यन्त शोभित था, तथा सब ऋतुओंके साथ आकर वसन्त ऋतु जिसकी सेवा कर रही थी, ऐसे वंशधर पर्वतके शिखरपर शुद्ध दर्पणतलके समान उत्कृष्ट भूमि तैयार की गयी । उस भूमिपर पाँच वर्णोंकी धूलिसे अनेक चित्राम बनाये गये थे ॥४-७॥ अनेक प्रकारके भावोंसे रमणीय चेष्टाओंको धारण करनेवाली स्त्रियोंने वहाँ उसी पंचवर्णकी परागसे कुन्द, अतिमुक्तकलता, मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर और सुन्दर पल्लवोंसे युक्त अशोक वृक्ष, तथा इनके सिवाय सुन्दर कान्ति और सुगन्धिको धारण करनेवाले बहुत-से अन्य वृक्ष बनाये ॥८-९॥ चतुर, उत्तम चेष्टाओंके धारक, मंगलमय वार्तालापमें तत्पर और स्वामिभक्तिमें निपुण मनुष्योंने बड़ी तैयारीके साथ नाना चित्रोंको धारण करनेवाले बादली रंगके वस्त्र फैलाये, सैकड़ों सघन पताकाएँ फहरायीं ॥१०-११॥ छोटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त सैकड़ों मोतियोंकी मालाएँ, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिनपर सूर्यकी किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले ये सब ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओंमें लगाये ॥१२-१३॥ पृथिवीपर जहाँ-तहाँ विधिपूर्वक पूर्ण कलश रखे गये

१. चरमशरीरिणम् । २. गगनम् । ३. आवृणोन्नगरं ख. । ४. हिमवच्छिशिरोपमे म. । ५. युक्ते म. । ६. सजिता म. । ७. सघनानि रुद्राणि म. ।

यत्र यत्र पदन्त्यासं करोति स्थुनन्दनः । तत्र तत्रोदपानानि स्थापितानि महीतले ॥१५॥
 शयनान्यासनैः साकं रचितानि यतस्ततः । मणिकाञ्चनचित्राणि सुखस्पर्शभराण्यलम् ॥१६॥
 सलवङ्गादिताम्बूलं प्रवराण्यंशुकानि च । महासुगन्धयो गन्धा भास्वन्त्याभरणानि च ॥१७॥
 सूदगेदस्यमेतानि कन्दूशालाशतानि च । बहुभेदान्नपूर्णानि कृतयत्नानि सर्वतः ॥१८॥
 गुडेन सर्पिषा दध्ना भूः कचिद् माति पङ्किला । इति कर्तव्यताभाजा जनेनादरिणान्विता ॥१९॥
 स्वाहारेण कचित्तृप्ताः पथिकाः स्वेच्छया स्थिताः । प्रसादयन्ति विश्रब्धाः संकथाबद्धगुल्मकाः ॥२०॥
 कचिन्ना शेखरी भाति मदिरामत्तलोचनः । कचित् सीमन्तिनी मत्ता वकुलामोदवाहिनी ॥२१॥
 कचिन्नाट्यं कचिद् गीतं कचित्सुकृतसंकथा । कचित् कान्तैः समं नार्यै रमन्ते चारुविभ्रमाः ॥२२॥
 दत्तप्रेङ्गाः कचित् स्मेरैः सलीलैर्विदपुंगवैः । विलासिन्यो विराजन्ते गीर्वाणगणिकोपमाः ॥२३॥
 रामलक्ष्मणयोर्यानि रचितानि ससीतयोः । क्रीडाधामानि कस्तानि नरो वर्णयितुं क्षमः ॥२४॥
 नानाभूषणयुक्ताङ्गौ सुमाल्याम्बरधारिणौ । यथेप्सितकृताहारौ श्रिया परमयान्वितौ ॥२५॥
 सीता चाक्लिष्टसौभाग्या दुरितासंगवर्जिता । रमते तत्र चेष्टामिः शास्त्रदृष्टामिस्त्वलम् ॥२६॥
 तत्र वंशगिरी राजन् रामेण जगदिन्दुना । निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशानां सहस्रशः ॥२७॥
 महावष्टम्भमुत्तमा युक्तविस्तारतुङ्गताः । गवाक्षहर्म्यवलमीप्रभृत्याकारशोभिताः ॥२८॥
 सतीरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः । सितचाक्षपताकाव्या बृहद्वटारवाचिताः ॥२९॥

ये जो कमलिनीके वनमें बैठे हुए हंसोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१४॥ श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ-वहाँ पृथिवी तलपर बड़े-बड़े कमल रख दिये गये थे ॥१५॥ जहाँ-तहाँ मणियों और सुवर्णसे चित्रित तथा अतिशय सुखदायक स्पर्शको धारण करनेवाले आसन और सोनेके स्थान बनाये गये थे ॥१६॥ लवंग आदिसे सहित ताम्बूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देदीप्यमान आभूषण जहाँ-तहाँ रखे गये थे ॥१७॥ जो सब ओरसे नाना प्रकारकी भोजन-सामग्रीसे युक्त थीं तथा जिनमें रसोई घर अलगसे बनाया गया था ऐसी सैकड़ों भोजनशालाएँ वहाँ निर्मित की गयी थीं ॥१८॥ वहाँकी भूमि कहीं गुड़, धो और दहीसे पंकिल (कीचसे युक्त) होकर सुशोभित हो रही थी तो कहीं कर्तव्य पालन करनेमें तत्पर आदरसे युक्त मनुष्योंसे सहित थी ॥१९॥ कहीं मधुर आहारसे तृप्त हुए पथिक अपनी इच्छासे बैठे थे तो कहीं निश्चिन्तताके साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरेको प्रसन्न कर रहे थे ॥२०॥ कहीं सेहरेको धारण करनेवाला और मदिराके नशामें झूमते हुए नेत्रोंसे युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्रीकी सुगन्धिको धारण करनेवाली नशासे भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥२१॥ कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, और कहीं सुन्दर विलासोंसे सहित स्त्रियाँ पतियोंके साथ क्रीड़ा कर रही थीं ॥२२॥ कहीं मुसकराते तथा लीलासे सहित विट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियोंके समान वैश्याएँ सुशोभित हो रही थीं ॥२३॥ इस प्रकार सीता सहित राम-लक्ष्मणके जो क्रीडास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥२४॥ जिनके शरीर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥२५॥ और अलङ्घ्य सौभाग्यको धारण करनेवाली तथा पापके समागमसे रहित सीता वहाँ शास्त्र निरूपित चेष्टाओंसे उज्ज्वल क्रीड़ा करती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वंशगिरिपर जगत्के चन्द्र स्वरूप रामते जिनेन्द्र भगवान्की हजारों प्रतिमाएँ बनवायीं थीं ॥२७॥ तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो शरोखे, महलों तथा छपरी आदिकी रचनासे शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणोंसे युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखासे सहित थे, सफ़ेद और सुन्दर पताकाओंसे युक्त थे, बड़े-बड़े

मृदङ्गवंशमुरजसंगीतोत्तमनिस्वनाः । शङ्खरैरागकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः ॥३०॥
 सततारुध्ननिःशेषरम्यवस्तुमहोत्सवाः । विरेजुतत्र रामीया जिनप्रासादपङ्क्तयः ॥३१॥
 रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः । पञ्चवर्णा जिनैन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः ॥३२॥
 अन्यदाय महीपालरामो राजीवलोचनः । लक्ष्मीधरमुवाचेदं क्रियते किमतः परम् ॥३३॥
 इह संप्रेरितः कालः सुखेन परमे गिरौ । जिनचैत्यसमुत्थाना स्थापिता कीर्तिरुज्ज्वला ॥३४॥
 अनेन भूभृता श्रेष्ठैरुपचारशतैर्हृताः । अत्रैव यदि तिष्ठामस्तदा कार्यं विनश्यति ॥३५॥
 इह तावदलं भोगैरिति चिन्तयतोऽपि मे । न भुङ्क्षति क्षणवपि प्रवरा भोगसन्ततिः ॥३६॥
 इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते । पुराकृतानां पुण्यानां इह संपद्यते फलम् ॥३७॥
 अस्माकमत्र वसतां बिभ्रतां सुखसंपदम् । अर्मा ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागमः ॥३८॥
 नदीनां चण्डवेनानामायुषो दिवसस्य च । यौवनस्य च सौमित्रे यद्गतं गतमेव तत् ॥३९॥
 नद्याः कर्णरवायास्तु परतो रोमहर्षणम् । श्रूयते दण्डकारण्यं दुर्गमं क्षितिचारिभिः ॥४०॥
^३मारुती न विशत्याज्ञा तस्मिन् जनपदोज्झिते । तन्त्रार्णवतटं श्रित्वा विदध्मः कचिदालयम् ॥४१॥
 यदाशपयसीत्युक्ते कुभारेण ससंभ्रमम् । सुरेन्द्रसदृशं भोगं भुक्त्वा ते निर्गतास्त्रयः ॥४२॥
 अनुगत्य सुदूरं तौ बलोपेतः सुरप्रभः । कुच्छान्निवर्तितस्ताभ्यां शोकी पुरमुपागतः ॥४३॥

घण्टाओंके शब्दसे व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बांसुरी और मुरजका संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो झाँझों, नगाड़ों, शंखों और भेरियोंके शब्दसे अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओंके द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे रामके बनवाये जिनमन्दिरोंकी पंक्तियाँ उस पर्वतपर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं ॥२८-३१॥ उन मन्दिरोंमें सब लोगोंके द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकारके लक्षणोंसे युक्त पंचवर्णोंकी जिनप्रतिभाएँ सुशोभित थीं ॥३२॥

अथानन्तर एक दिन कमललोचन राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि अब आगे क्या करना है ? ॥३३॥ इस उत्तम पर्वतपर समय सुखसे व्यतीत किया तथा जिनमन्दिरोंके निर्माणसे उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥३४॥ इस राजाकी सैकड़ों प्रकारकी उत्तमोत्तम सेवाओंके वशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो संकल्पित कार्य नष्ट होता है ॥३५॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगोंसे प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगोंकी सन्तति क्षण भरके लिए भी नहीं छोड़ती है ॥३६॥

जो कर्म इस लोकमें किया जाता है उसका उपभोग परलोकमें होता है और पूर्व भवमें किये हुए पुण्य कर्मोंका फल इस भवमें प्राप्त होता है ॥३७॥ यहाँ रहते तथा सुख-सम्पदाको धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिरसे आगमन नहीं हो सकता ॥३८॥ हे लक्ष्मण ! तीव्र वेगसे बहनेवाली नदियों, आयुके दिन और यौवनका जो अंश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥३९॥ कर्णरवा नदीके उस पार रोमांच उत्पन्न करनेवाला तथा भूमिगोचरियोंका जहाँ पहुँचना कठिन है ऐसा दण्डक वन सुना जाता है ॥४०॥ देशोंसे रहित उस वनमें भरतकी आज्ञाका प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्रका किनारा प्राप्त कर घर बनावेंगे ॥४१॥ 'जो आज्ञा हो' इस प्रकार लक्ष्मणके कहतेपर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इन्द्र सदृश भोग छोड़कर वहाँसे निकल गये ॥४२॥ वंशस्थविलपुरका राजा सुरप्रभ अपनी सेनाके साथ बहुत दूर तक उन्हें पहुँचानेके लिए गया । राम-लक्ष्मण उसे बड़ी कठिनाईसे लौटा सके । तदनन्तर शोकको धारण करता हुआ वह अपने नगरमें वापस आया ॥४३॥

१. हृदि म. । २. प्रवरो म. । ३. भरत संबन्धिनी । ४. तटां च्छुत्वा म. (?) । ५. भुक्त्वा म. ।

उपजातिवृत्तम्

एषोऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः श्रीमन्नितम्बो बहुधानुसानुः ।
 विलम्पतीभिः ककुभां समूहं भासाचकाज्जैदगृहाचलीभिः ॥४४॥
 रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि ।
 निर्नष्टवंशाद्रिवचाः स तस्माद्विप्रमो रामगिरिः प्रसिद्धः ॥४५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामगिर्युपाख्यानं नाम चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४०॥



इधर जिसकी मेखलाएँ शोभासे सम्पन्न थीं, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओंसे युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओंके समूहको लिस करनेवाली जिनमन्दिरोंकी पंक्तिसे अतिशय सुशोभित होता था ॥४४॥ चूँकि उस पर्वतपर रामचन्द्रने जिनन्द्र भगवान्‌के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह पर्वत 'रामगिरि'के नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें रामगिरिका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४०॥



एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथानरण्यनगारौ श्रीमन्तौ सीतयान्वितौ । दिदृक्षु दक्षिणाम्भोधिमायातां^१ सुखभागिनौ ॥१॥
 पुरग्रामसमाकीर्णानतीत्य विषयान् बहून् । प्रविष्टौ तौ महारण्यं नानामृगसमाकुलम् ॥२॥
 यस्मिन्न विद्यते पन्थाः स्थानं नार्यनिषेवितम् । पुलिन्दानामपि प्रायो दुश्चरं यन्नगाकुलम् ॥३॥
 नानावृक्षलताकीर्णं महाविषमगह्वरम् । गुहान्धकारगम्भीरं वहस्त्रिर्नरनिम्नगम् ॥४॥
 क्रोशं क्रोशं शनैस्तत्र गच्छन्तौ जानकीवशात् । निर्भयौ क्रोडनोद्युक्तौ प्राप्तौ कर्णरवां नदीम् ॥५॥
 यस्यास्तदानि रम्याणि तृणैर्युक्तानि भूरिभिः ।^२सामान्यायतदेशानि स्पर्शं विभ्रति सौख्यदम् ॥६॥
 अनत्युच्चैर्वनच्छायैः फलपुष्पविभूषितैः । रेजुस्तदुद्गमैस्तस्याः समीपधरणीधराः ॥७॥
 वनमेतदलं चारु नदी चेति^३ निरूप्य तौ । रम्ये तत्र तरुच्छायेऽवस्थितौ सीतयान्वितौ ॥८॥
 क्षणं स्थित्वाऽतिरम्याणि सैकतान्यवगाह्य च । जलावगाहनं चक्रुस्ते रम्यक्रोडयोचितम् ॥९॥
 ततो मृष्टानि पकानि फलानि कुसुमानि च । यथेच्छमुपभुक्तानि तैः सुखं कृतसंकथैः ॥१०॥
 तत्र साण्डोपकरणं सकलं केकयीसुतः ।^४मृदावसंशैः पलाशैश्च विविधैराशु निर्ममे ॥११॥
 असौपु स्वादचारुणि फलानि सुरभीनि च । वनजानि च सस्यानि राजपुत्री समस्करोत् ॥१२॥
 अन्यदातिथिवेलायां-गगनाङ्गणचारिणौ । प्रमापटलसंवीतविग्रहौ चारुदर्शनौ ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें दक्षिण समुद्र देखनेकी इच्छा थी तथा जो निरन्तर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ नगर और ग्रामोंसे व्याप्त बहुत देशोंको पार कर नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त महावनमें प्रविष्ट हुए ॥१-२॥ ऐसे सघन वनमें प्रविष्ट हुए जिसमें मार्ग ही नहीं सूझता था, उत्तम मनुष्योंके द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलोंके लिए भी जहाँ चलना कठिन था, जो पर्वतोंसे व्याप्त था, नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे सघन था, जिसमें अत्यन्त विषम गर्त थे, जो गुहाओंके अन्धकारसे गम्भीर जान पड़ता था, और जहाँ झरने तथा अनेक नदियाँ बह रही थीं ॥३-४॥ उस वनमें वे जानकीके कारण धीरे-धीरे एक कोश ही चलते थे । इस तरह भयसे रहित तथा क्रोड़ा करनेमें उद्यत दोनों भाई उस कर्णरवा नदीके पास पहुँचे ॥५॥ जिसके कि किनारे अत्यन्त रमणीय, बहुत भारी तृणोंसे व्याप्त, समान, लम्बे-चौड़े और सुखकारी स्पर्शको धारण करनेवाले थे ॥६॥ उस कर्णरवा नदीके समीपवर्ती पर्वत, किनारेके उन वृक्षोंसे सुभोगित थे जो ज्यादा ऊँचे तो नहीं थे पर जिनकी छाया अत्यन्त धनी थी तथा जो फल और फूलोंसे युक्त थे ॥७॥ यह वन तथा नदी दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं ऐसा विचारकर वे एक वृक्षकी मनोहर छायामें सीताके साथ बैठ गये ॥८॥ क्षण-भर वहाँ बैठकर तथा मनोहर किनारोंपर अवगाहन कर वे सुन्दर क्रोड़ाके योग्य जलावगाहन करने लगे अर्थात् जलके भीतर प्रवेश कर जलक्रोड़ा करने लगे ॥९॥ तदनन्तर परस्पर सुखकारी कथा करते हुए उन सबने वनके पके मधुर फल तथा फूलोंका इच्छानुसार उपभोग किया ॥१०॥ वहाँ लक्ष्मणने नाना प्रकारकी मिट्टी, बाँस तथा पत्तोंसे सब प्रकारके बरतन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥११॥ इन सब बरतनोंमें राजपुत्री सीताने स्वादिष्ट तथा सुन्दर फल और वनकी सुगन्धित धानके भोजन बनाये ॥१२॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेक्षणके समय सीताने सहसा सामने आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति

१. सुखभोगिनी म. । २. सामान्यायत-म. । ३. चैतौ निरूपितौ म. । ४. मृदावसंशैः म. ।

ज्ञानत्रितयसंपन्नौ महाव्रतपरिग्रहौ । परेण तपसा युक्तौ दुष्टपृहामुक्तमानसौ ॥१४॥
 मासोपवासिनौ वीरौ गुण्यौ शुभसमीहितौ । यच्छन्तौ नयनानन्दं बुधचन्द्रमसावि ॥१५॥
 मुनी सुगुप्तिगुहाख्यावायान्तौ संमुखं भुवः^२ । यथोक्ताचारसंपन्नौ सहसा सीतयेक्षितौ ॥१६॥
 ततः प्रमदसंभारविकसन्नेव^३ शोभया । दधिताय तथा ख्यातमिति रोमांचिताङ्गया ॥१७॥
 पश्य पश्य नरश्रेष्ठ ! तपसा कुशविग्रहम् । दैगम्बरं परिश्रान्तं मदन्तयुगलं शुभम् ॥१८॥
 क तत् क तत्प्रिये साध्वि पण्डिते चारुदर्शने । निर्ग्रन्थयुगलं दृष्टं भवत्या गुणमण्डने ॥१९॥
 यन्निरीक्ष्य वरारोहे सुचिरं पापमर्जितम् । क्षणात् प्रणशमायाति जनानां भक्तचेतसाम् ॥२०॥
 इत्युक्ते रघुचन्द्रेण सीतोवाच ससम्भ्रमा । इमाविमविति प्रीत्या स तदाभूत् समाकुलः ॥२१॥
 ततो युगमितक्षोणीदेशचिन्त्यस्तलोचनौ । मुनी प्रधान्तगमनौ सुसमाहितविग्रहौ ॥२२॥
 अभ्युत्थानाभियानाभिस्तुष्टः^४ प्रणयनादिभिः । दम्पतीभ्यां कुताचेतौ पुण्यनिर्झरपर्वतौ ॥२३॥
 शुच्यङ्गया च वैदेह्या महाश्रद्धापरीतया । परिविष्टं तयोः^५ श्राद्धं रमणेन समेतया ॥२४॥
 गवामरण्यजातानां महिषीणां च चारुणा । हँवङ्गवीनशिश्रेणे पयसा तत्समुद्भवैः ॥२५॥
 खजूरैरिङ्गदैराग्नैर्नालिकरै रसान्वितैः । बदराम्लातकाद्यैश्च वैदेह्या सुप्रसाधितैः ॥२६॥
 आहार्यैर्विविधैः^६ शास्त्रदृष्टिशुद्धिसमन्वितैः । पारणां चक्रतुर्गुंदासंबन्धोज्झितचेतसौ ॥२७॥

नामके दो मुनि देखे । वे मुनि आकाशागणमें विहार कर रहे थे, कान्तिके समूहसे उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुन्दर थे, मति-श्रुत-अवधि इन तीन ज्ञानोसे सहित थे, महाव्रतोंके धारक थे, परम तपसे युक्त थे, खोटी इच्छाओंसे उनके मन रहित थे, उन्होंने एक मासका उपवास किया था, वे धीर-वीर थे, गुणोंसे सहित थे, शुभ चेष्टाके धारक थे, बुध और चन्द्रमाके समान नेत्रोंको आनन्द प्रदान करते थे और यथोक्त आचारसे सहित थे ॥१३-१६॥ तदनन्तर हृषिके भारसे जिसके नेत्रोंकी शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीरमें रोमांच उठ रहे थे ऐसी सीताने रामसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! देखो देखो, तपसे जिनका शरीर कुश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते हैं, ऐसे दिगम्बर मुनियोंका यह युगल देखो। ॥१७-१८॥ रामने सम्भ्रममें पड़कर कहा कि हे प्रिये ! हे साध्वि ! हे पण्डिते ! हे सुन्दरदर्शने ! हे गुणमण्डने ! तुमने निर्ग्रन्थ मुनियोंका युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥१९॥ वह युगल कि जिसके देखनेसे हे सुन्दर ! भक्त मनुष्योंका चिरसंचित पाप क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है ॥२०॥ रामके इस प्रकार कहनेपर सीताने सम्भ्रम पूर्वक कहा कि 'ये हैं, ये हैं' ! उस समय राम कुछ आकुलताको प्राप्त हुए ॥२१॥

तदनन्तर युग प्रमाण पृथिवीमें जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जिनका गमन अत्यन्त शान्ति-पूर्ण था और जिनके शरीर प्रमादसे रहित थे, ऐसे दो मुनियोंको देखकर दम्पती अर्थात् राम और सीताने उठकर खड़े होना, सम्मुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओंसे उन दोनों मुनियोंको पुण्यरूपी निर्झरके झरानेके लिए पर्वतके समान किया था ॥२२-२३॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धासे युक्त थी ऐसी सीताने पतिके साथ मिलकर दोनों मुनियोंके लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥२४॥ वह आहार वनमें उत्पन्न हुई गायों और भैंसोंके ताजे और मनोहर घी, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थोंसे बना था ॥२५॥ खजूर, इंगुद, आम, नारियल, रसदार बेर तथा भिलामा आदि फलोंसे निर्मित था ॥२६॥ इस प्रकार शास्त्रोक्त शुद्धिसे सहित नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे उन मुनियोंने पारणा की । उन

१. नन्दो म. । २. भुवा म., ख. । ३. विकसन्नेव म. । ४. यानाभिस्तुष्टः प्रणयनादिभिः म., यानाभिस्तुष्टि प्रणयनादिभिः ब. । ५. भोजनं । ६. दृष्टिताडिताः म. ।

एवं च ययुंसास्यैतौ मुनी रामः प्रियान्वितः । समस्तभावसंभारकृतनिर्ग्रन्थमाननः ॥२८॥
 तावद्दुन्दुभयो नेदुर्गगनेऽदृष्टताडिताः । वज्रौ समोरणः स्वैरं घ्राणरञ्जनकारणम् ॥२९॥
 साधु साध्विति देवानां मधुरो निस्त्रनोऽभवत् । ववर्ष पञ्चवर्णानि कुसुमानि नभस्तलम् ॥३०॥
 पात्रदानानुभावेन दिव्या सरलवर्णिका । पुरयन्ती नभोऽपसद्वसुधारा महास्रुतिः ॥३१॥
 अथात्रैव वनोद्देशे गहमस्य महातरोः । निपण्णोऽग्रे महागुह्यः स्वेच्छयावस्थितोऽभवत् ॥३२॥
 स दृष्ट्वाऽतिशयोपेतौ मुनी कर्मानुभावतः । बहुगात्रमभवान् स्मृत्वा तत्तदैवमचिन्तयत् ॥३३॥
 मनुष्यभावसुकरं प्रमत्तेन मया पुरा । विवेकिनापि न कृतं तपो धिग्मामचेतनम् ॥३४॥
 भाव प्रतप्यसे किं स्वमधुना पापचेष्टितः । कसुपायं करोम्येतौ कुस्मितां थोनियाशतः ॥३५॥
 अनुकूलारिभिः पापैर्मित्रशब्देन धारिभिः । प्रेरितेन सता त्यक्तं धर्मरत्नं सदा मया ॥३६॥
 सुभृच्चिरितं पापमपकर्णं गुरुदितम् । मोहध्वान्तपरीतेन दह्ये यदधुना स्मरन् ॥३७॥
 न किंचिदत्र बहुना चिन्तितेन प्रयोजनम् । गतिरन्या न मे लोके दिश्यते दुःखसंक्षये ॥३८॥
 एतौ प्रयामि शरणं साधू सर्वसुखावहौ । इतो मे परमार्थस्य प्राप्तिः संजायते ध्रुवम् ॥३९॥
 इति पूर्वभवैध्यानात् परमं शोकमागतः । दर्शनाच्च महासाधोः प्रमोदं त्वरयान्वितः ॥४०॥
 विधूय पक्षयुगलमश्रुसंपूर्णलोचनः । पपात शाखिनो मूर्ध्नः प्रथयान्वितविभ्रमः ॥४१॥
 नागाः सिंहादयोऽप्यत्र नादेन महतामुना । विदुदुवुरयं दुष्टः कथं तु न खगाधमः ॥४२॥

मुनियोंके चित्त भोजन विषयक गृध्रताके सम्बन्धसे रहित थे ॥२७॥ इस प्रकार समस्त भावोंसे मुनियोंका सन्मान करनेवाले राम इन दोनों मुनियोंकी सेवा कर सीतके साथ बंटे ही थे कि उसे समय आकाशमें अदृष्टजनोंसे ताडित दुन्दुभि बाजे बजने लगे, घ्राण इन्द्रियको प्रसन्न करनेवाले वायु धीरे-धीरे बहने लगे, 'धन्य, धन्य' इस प्रकार देवोंका मधुर शब्द होने लगा, आकाश पाँच वर्णके फूल बरसाने लगा और पात्रदानके प्रभावसे आकाशकी व्याप्त करनेवाली, महाकान्तिकी धारक, सब रंगोंकी दिव्यरत्न वृष्टि होने लगी ॥२८-३१॥

अथानन्तर वनके इसी स्थानमें सधन महावृक्षके अग्रभागपर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छासे बैठा ॥३२॥ सो अतिशय पूर्ण दोनों मुनिराजोंको देखकर कर्मोदयके प्रभावसे उसे अपने अनेक भव स्मृत हो उठे । वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥३३॥ कि यद्यपि मैं पूर्ण पर्यायमें विवेकी था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भवमें करने योग्य तपश्चरण नहीं किया अतः मुझ अविवेकीको धिक्कार हो ॥३४॥ हे हृदय ! अब क्यों सन्ताप कर रहा है ? इस समय तो इस कुयोनिमें आकर पाप चेष्टाओंमें निमग्न हूँ अतः क्या उपाय कर सकता हूँ ? ॥३५॥ मित्र संज्ञाकी धारण करनेवाले तथा अनुकूलता दिखानेवाले पापी वैरियोंसे प्रेरित ही मैंने सदा धर्मरूपी रत्नका परित्याग किया है ॥३६॥ मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त होकर मैंने गुरुओंका उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पापका आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥३७॥ अथवा इस विषयमें बहुत विचार करनेसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि दुःखोंका क्षय करनेके लिए लोकमें मेरी दूसरी गति नहीं है—अन्य उपाय नहीं है । मैं तो सब जीवोंको सुख देनेवाले इन्हीं दोनों मुनियोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ । इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थकी प्राप्ति होगी ॥३८-३९॥ इस प्रकार पूर्वभवका स्मरण होनेसे जो परम शोकको प्राप्त हुआ था तथा महामुनियोंके दर्शनसे जो अत्यधिक हर्षको प्राप्त था ऐसा शीघ्रतासे सहित, अश्रुपूर्ण नेत्रोंका धारक, एवं विनयपूर्ण चेष्टाओंसे सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पंख फड़फड़ाकर वृक्षके शिखरसे नीचे आया

१. नभस्तले म. । २. शब्देन धारिभिः म. । ३. मेव ध्यानात् म. ।

हा मातः पश्यतामुष्य धातुं गृध्रस्य पापिनः । चिन्तयित्वेति वेदेष्टा कोपाकुलितचित्तया ॥४३॥
 वार्यमाणोऽपि यत्नेन कृतनिष्ठुरशब्दया । मुनिपादोदकं पक्षी सोत्साहः पातुमुद्यतः ॥४४॥
 पादोदकप्रभावेण शरीरं तस्य तत्क्षणम् । रत्नराशिसमं जातं परीतं चित्रतेजसा ॥४५॥
 जातो हेमप्रभौ पक्षौ पादौ वैडूर्यसंनिभौ । नानारत्नच्छविर्देहश्चक्षुर्विदुमविभ्रमा ॥४६॥
 ततः स्वमन्यथामृतमवलोक्य सुसंमदः । विमुञ्चन्मधुरं नादं नर्तितुं स समुद्यतः ॥४७॥
 देवदुन्दुभिनादोऽसावेव तस्यातिसुन्दरम् । आतोद्यत्वं परिप्राप्तं स्वौ च वाणीं सुतेजसः ॥४८॥
 सुञ्जानन्दनेत्राम्भश्चक्रीकृत्य गुरुहयम् । शुशुभे कृतनृत्योऽसौ शिखी मेघागमे यथा ॥४९॥
 विधिना पारैर्णां कृत्वा मुनी कृतयथोचितौ । वैडूर्यसदृशे राजन्नुपविष्टौ शिलातले ॥५०॥
 पद्मरागामनेत्रश्च पक्षी संकुचितच्छदः । प्रणम्य पादयोः साधोः सुखं तस्थौ कृताञ्जलिः ॥५१॥
 क्षणादग्निमिवालोक्त्य उवलन्तं तेजसा खगम् । पक्षौ विकचपद्माक्षौ विस्मयं परमं गतः ॥५२॥
 प्रणम्य पादयोः साधुं गुणशीलविभूषणम् । अष्टच्छदिति विन्यस्य सुहृन्नेत्रे पतत्रिणि ॥५३॥
 भगवन्नयमत्यन्तं विरूपावयवः पुरा । कथं क्षणेन संजातो हेमरत्नचयच्छविः ॥५४॥
 अशुचिः सर्वमांसादो गृध्रोऽयं दुष्टमानसः । निषथ पादयोः शान्तस्तव कर्मदावस्थितः ॥५५॥
 सुगुप्तिभ्रमणोऽवोचद् राजन् पूर्वमिहामवत् । देशो जनपदाकीर्णौ विषयः सुन्दरो महान् ॥५६॥

॥४०-४१॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहलसे हाथी तथा सिंहादिक बड़े-बड़े जन्तु तो भाग गये पर यह दुष्ट नीच पक्षी क्यों नहीं भागा । हा मातः ! इस पापी गृध्रकी धृष्टता तो देखो; इस प्रकार विचारकर जिसका चित्त क्रोधसे आकुलित हो रहा था तथा जिसने कठोर शब्दोंका उच्चारण किया था ऐसी सीताने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पक्षीको रोका था तथापि वह बड़े उत्साहसे मुनिराजके चरणोदकको पीने लगा ॥४२-४४॥ चरणोदकके प्रभावसे उसका शरीर उसी समय रत्नराशिके समान नाना प्रकारके तेजसे व्याप्त हो गया ॥४५॥ उसके दोनों पंख सुवर्णके समान हो गये, पैर नील मणिके समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नोंकी कान्तिका धारक हो गया और चौंच मूँगाके समान दिखने लगी ॥४६॥ तदनन्तर अपने आपको अन्य रूप देख वह अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोड़ता हुआ नृत्य करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४७॥ उस समय जो देव-दुन्दुभिका नाद हो रहा था वही उस तेजस्वीकी अपनी वाणीसे मिलता-जुलता अत्यन्त सुन्दर साजका काम दे रहा था ॥४८॥ दोनों मुनियोंकी प्रदक्षिणा देकर हर्षाश्रुको छोड़ता हुआ वह नृत्य करनेवाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतुके मयूरके समान सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोनों मुनिराज विधिपूर्वक पारणा कर वैडूर्यमणिके समान जो शिलातल था उसपर विराजमान हो गये ॥५०॥ और पद्मराग मणिके समान नेत्रोंका धारक गृध्र पक्षी भी अपने पंख संकुचित कर तथा मुनिराजके चरणोंमें प्रणाम कर अंजली बांध सुखसे बैठ गया ॥५१॥ विकसित कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम, क्षण-भरमें तेजसे जलती हुई अग्निके समान उस गृध्र पक्षीको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥ उन्होंने पक्षीपर बार-बार नेत्र डालकर तथा गुण और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह पक्षी पहले तो अत्यन्त विरूप शरीरका धारक था पर अब क्षण-भरमें सुवर्ण तथा रत्नराशिके समान कान्तिका धारक कैसे हो गया ? ॥५३-५४॥ महाअपवित्र, सब प्रकारका मांस खानेवाला तथा दुष्ट हृदयका धारक यह गृध्र आपके चरणोंमें बैठकर अत्यन्त शान्त कैसे हो गया है ? ॥५५॥

तदनन्तर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन् ! पहले यहाँ नाना जनपदोंसे व्याप्त

१. सुन्दरी म. । २. त्वां म. । ३. पारणं म. ।

पत्तनग्रामसंवाहमटम्बपुटभेदवैः । घोषद्रोणमुखाद्यैश्च संनिवेशैर्विराजितः ॥५७॥

कणकुण्डलनामात्र पुरमासीन् मनोहरम् । तस्मिन्नयमभूद्राजा प्रतापपरमोदयः ॥५८॥

चण्डविक्रमसंपन्नो भग्नशत्रवकण्टकः । दण्डो मानमयः ख्यातो दण्डको नाम साधनी ॥५९॥

धृतार्थिना जलं तेन मथितं रघुनन्दन । धर्मश्रद्धापरीतेन धृतः पापागमो धिया ॥६०॥

देवी मस्करिणां तस्य वरिवस्था परामवत् । तेषामसावधीशेन संभोगं समुपागतः ॥६१॥

सोऽपि तस्याः परं वक्ष्यस्तामेव दिशमाश्रयत् । स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥६२॥

निष्काम्तेनान्यदा तेन नगरात् साबुरीक्षितः । प्रलम्बितभुजः श्रीमान् ध्यानसंरुद्धमानसः ॥६३॥

कृष्णसर्पो मृतस्तस्य दिग्धात्रो विपलालया । कण्ठे निधापितस्तेन प्रावदाहणचेतसा ॥६४॥

यावदेषोऽपनीतो न प्रदातुर्मम केनचित् । तत्रैव संहरेद्योगमिति ध्यात्वा मुनिः स्थितः ॥६५॥

अतीते गणरात्रे च पुनस्तेनैव वर्त्मना । निष्कामन् पार्थिवोऽप्यस्यत्तद्वचस्थं महामुनिम् ॥६६॥

अरजुनैव च रूपेण गत्वा निकटतां भृशम् । अपृच्छदपनेतारं किमेतदिति सोऽवदत् ॥६७॥

नरेन्द्र पश्य केनापि नरकावासमार्गिणा । योगस्थस्य मुनेरस्य कण्ठे सर्पः समर्पितः ॥६८॥

यस्य सर्पस्य संपर्काद् विग्रहस्व समुद्गतम् । प्रतिबिम्बं शितिक्रिन्तं दुर्दर्शमतिभोषणम् ॥६९॥

मुनिः निःप्रतिकर्माणं दृष्ट्वा राजा तथाविधम् । प्रणम्याश्चमयद्यातास्ते च स्थानं यथोचितम् ॥७०॥

ततः प्रभृति सक्तोऽसौ कर्तुं भक्तिमनुत्तमाम् । निरम्बरमुनीन्द्राणां वारितोपद्रवक्रियः ॥७१॥

एक बहुत बड़ा सुन्दर देश था ॥५६॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, मटम्ब, पुटभेदन, घोष और द्रोण-मुख आदि रचनाओंसे सुशोभित था ॥५७॥ इसी देशमें एक कर्णकुण्डल नामका मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था। यह तोत्र पराक्रमसे युक्त, शत्रुरूपी कण्टकोको भग्न करनेवाला, महामानी एवं सावनसम्पन्न दण्डक नामका धारक था ॥५८-५९॥ हे रघुनन्दन ! धर्मकी श्रद्धासे युक्त इस राजाने पापपोषक शास्त्रको समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने घृतकी इच्छासे जलका ही मन्थन किया ॥६०॥ राजा दण्डककी जो रानी थी वह परिव्राजकोंकी बड़ी भक्त थी क्योंकि परिव्राजकोंके स्वामीके द्वारा वह उत्तम भोगको प्राप्त हुई थी ॥६१॥ राजा दण्डक रानीके वशीभूत था इसलिए यह भी उसी दिशाका आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका चित्त हरण करनेमें उद्यत मनुष्य क्या नहीं करते हैं ? ॥६२॥ एक दिन राजा नगरसे बाहर निकला वहाँ उसने एक ऐसे साधुको देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाये हुए थे, वीतराग लक्ष्मीसे सहित थे तथा जिनका मन ध्यानमें रूका हुआ था ॥६३॥ पापाणके समान कठोर चित्तके धारक राजाने उन मुनिके गलेमें, विपमिश्रित लारसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला साँप डलवा दिया ॥६४॥ 'जबतक इस साँपको कोई अलग नहीं करता है तबतक मैं योगको संकुचित नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थानपर खड़े रहे ॥६५॥ तदनन्तर बहुत रात्रियाँ व्यतीत हो जानेके बाद उसी मार्गसे निकले हुए राजाने उन महामुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ़ देखा ॥६६॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराजके गलेसे साँप अलग कर रहा था। राजा मुनिराजकी सरलतासे आकृष्ट हो उनके पास गया और साँप निकालनेवाले मनुष्यसे पूछता है कि 'यह क्या है ?' इसके उत्तरमें वह मनुष्य कहता है कि राजन् ! देखो, नरककी खोज करनेवाले किसी मनुष्यने इन ध्यानारूढ़ मुनिराजके गलेमें साँप डाल रखा है ॥६७-६८॥ जिस साँपके सम्पर्कसे इनके शरीरकी आकृति श्याम, खेदखिन्न, दुर्दर्शनीय तथा अत्यन्त भयंकर हो गयी है ॥६९॥ कुछ भी प्रतिकार नहीं करनेवाले मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ़ देख राजाने प्रणाम कर उनसे क्षमा माँगी और तदनन्तर वह यथास्थान चला गया ॥७०॥ उस समयसे राजा दिग्म्बर मुनियोंकी उत्तम भक्ति करनेमें तत्पर हो गया और उसने मुनियोंके सब उपद्रव—कष्ट दूर कर

१. वरिवस्था क., ख., ग. । २. समुपागतः म. । ३. लिप्तशरीरः । ४. नगरावास-म. ।

देवीविटपरिवाजो^१ ज्ञात्वा न्यविषयं नृपम् । इदं क्रोधपरीतेन विधातुमभिवान्छितम् ॥७२॥
 जीवितस्नेहसुखसृज्य परदुःखाहितारमकः । निर्ग्रन्थरूपभृद्देव्याः संपर्कमभजत् पुनः ॥७३॥
 ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म राज्ञातिक्रोधमीयुषा । अमात्याद्युपदेशं च स्मृत्वा निर्ग्रन्थनिन्दनम् ॥७४॥
 क्रूरकर्मभिरन्यैश्च प्रेरितः श्रमणाहितैः । आज्ञापयन् महर्षीणां यन्त्रनिष्पीडने नरान् ॥७५॥
 गणाधिपसमेतोऽसौ समूहोऽम्बरवाससाम् । यन्त्रनिष्पीडनैर्नातः पञ्चतां पापकर्मणा ॥७६॥
 बाह्यभूमिगतस्तत्र मुनिरैकः समाव्रजन् । इत्यवार्थत लोकेन केनचित् करुणायता ॥७७॥
 भो भो निर्ग्रन्थ भागास्त्वं पूर्वैर्नैर्ग्रन्थमाश्रयन् । यन्त्रेण/पीड्यसे तत्र द्रुतं क्रूर पलायनम् ॥७८॥
 यन्त्रेषु श्रमणाः सर्वे राज्ञा क्रुद्धेन पीडिताः । भागास्त्वमप्यवस्थां तां रक्ष धर्माश्रयं वपुः ॥७९॥
 ततः क्षणमसौ संघमृत्युदुःखेन शल्यितः । वज्रस्तम्भ इवाकम्परतस्थावव्यक्चेतनः ॥८०॥
 अथास्य शतदुःखेन प्रेरितः शमगह्वरात् । निरम्बरमहीध्रस्य निरगात् क्रोधकेशरी ॥८१॥
 रक्ताशोकप्रकाशेन निखिलं तस्य चक्षुषः । तेजसा विहितं न्योम संध्यामयमिवामवत् ॥८२॥
 कोपेन तप्यमानस्य मुनेः सर्वत्र विग्रहे । प्रस्वेदविन्दवो जाताः प्रतिबिम्बितविष्टपाः ॥८३॥
 ततः कालानलाकारो बहुलः कुटिलः पृथुः । हाकारेण मुखात्तस्य निरगात् पावकध्वजः^३ ॥८४॥
 अनुलग्नश्च तस्याग्निहज्जगाम निरन्तरम् । कृतं नभस्तलं येन निरिन्धनविदीपितम् ॥८५॥

दिये ॥७१॥ रानीके साथ गुप्त समागम करनेवाले परिव्राजकोंके अधिपतिने जब राजाके इस परिवर्तनको जाना तब क्रोधसे युक्त होकर उसने यह करनेकी इच्छा की ॥७२॥ दूसरे प्राणियोंको दुःख देनेमें जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीवनका स्नेह छोड़ निर्ग्रन्थ मुनिको रूप धर रानीके साथ सम्पर्क किया ॥७३॥ जब राजाको इस कार्यका पता चला तब वह अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ । मन्त्री आदि अपने उपदेशमें निर्ग्रन्थ मुनियोंकी जो निन्दा किया करते थे वह सब इसकी स्मृतिमें झूलने लगा ॥७४॥ उसी समय मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले अन्य दुष्ट लोगोंने भी राजाको प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेवकोंके लिए समस्त मुनियोंको घानीमें पेलनेकी आज्ञा दे दी ॥७५॥ जिसके फलस्वरूप गणनायकके साथ-साथ जितना मुनियोंका समूह था वह सब, पापी मनुष्योंके द्वारा घानीमें पिलकर मृत्युको प्राप्त हो गया ॥७६॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर उसी नगरीकी ओर आ रहे थे । उन्हें किसी दयालु मनुष्यने यह कहकर रोका कि हे निर्ग्रन्थ ! हे दिगम्बरमुद्राके धारी ! तुम अपने पहलेका निर्ग्रन्थवेष धारण करते हुए नगरीमें मत जाओ, अन्यथा घानीमें पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ ॥७७-७८॥ राजाने क्रुद्ध होकर समस्त निर्ग्रन्थ मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त मत होओ, धर्मका आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो ॥७९॥

तदनन्तर समस्त संघकी मृत्युके दुःखसे जिन्हें शल्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षण-भरके लिए व्रजके स्तम्भकी नाई अकम्प—निश्चल हो गये । उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गयी थी अर्थात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित है या मृत ? ॥८०॥ अथानन्तर उन निर्ग्रन्थ मुनिरूपी पर्वतकी शान्तिरूपी गुफासे सैकड़ों दुःखोंसे प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला ॥८१॥ उनके नेत्रके अशोकके समान लाल-लाल तेजसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानी उसमें सन्ध्या ही व्याप्त हो गयी हो ॥८२॥ क्रोधसे तपे हुए मुनिराजके समस्त शरीरमें स्वेदकी बूँदें निकल आयीं और उनमें लोकका प्रतिबिम्ब पड़ने लगा ॥८३॥ तदनन्तर उन मुनिराजने मुखसे 'हा' शब्दका उच्चारण किया उसीके साथ मुखसे धुआँ निकला जो कालाग्निके समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥८४॥ उस धुआँके साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली कि जिसने ईधनके बिना ही समस्त

१. विटपरिवाजो म. । २. वरवाससाम् म. । ३. अग्निः ।

उल्काभिर्जु जगद्व्यासं ज्योतिर्देवाः पतन्ति नु । महाप्रलयकालो नु वह्निदेवा नु रोषिताः ॥८६॥
 हा हा मातः किमेतन्नु तापोऽयमतिदुस्तहः । चक्षुरत्पाठ्यते दीर्घसंदर्शैरिव वेगिभिः ॥८७॥
 मूर्तिनिर्मुक्तमेवैतद्गगनं कुहते ध्वनिम् । वंशारण्यमिवोदीप्तं जीविताकर्षणोचितम् ॥८८॥
 यावदेव ध्वनिलोके वर्ततेऽत्यन्तमाकुलः । वह्निस्तावदयं द्दक्षमनयद् भस्मशेषताम् ॥८९॥
 नान्तःपुरं न देशो न पुराणि न च पर्वताः । न नद्यो नाप्यरण्यानि तदा न प्राणधारिणः ॥९०॥
 महासंवेगयुक्तेन मुनिना चिरमञ्जितम् । क्रोधाग्निनाखिलं दग्धं तपोऽन्यत् किमु शिष्यताम् ॥९१॥
 यतोऽयं दण्डको देशः आसीद्दण्डकपार्थिवः । तेनैव ध्वनिनाद्यापि दण्डकः परिकीर्त्यते ॥९२॥
 काले महत्यतिक्रान्ते प्रासादां चारुतां भुवि । सुतेऽत्र पादपा जाताः पर्वताश्च सन्निभताः ॥९३॥
 मुनेस्तस्य प्रभावेण सुराणामपि भीतिदम् । वनमेतदमूत् कैव वार्ता विद्याबलाभ्रितम् ॥९४॥
 पञ्चादिदं समाकीर्णं विदेन शरमादिभिः । नानाशकुनिवृन्दैश्च सस्यभेदैश्च मूरिभिः ॥९५॥
 अद्याप्यस्योरुदावस्य श्रुत्वा शब्दं परं भयम् । व्रजन्ति मानवाः कम्पं वृत्तान्तेऽमुनिबोधिनः ॥९६॥
 संसारेऽतिचिरं भ्रान्त्या दण्डको दुःखपूरितः । अयं गृध्रत्वमायातो वनेऽत्र रतिमागतः ॥९७॥
 दृष्ट्वा सातिशयावेष नौ वनेऽत्र समागतौ । पापस्य कर्मणो हान्या प्राप्तः पूर्वभवस्मृतिम् ॥९८॥
 योऽसौ परमया शक्त्या युक्तोऽभूदण्डको नृपः । सोऽयं पश्यत संजातः कोदृशः पापकर्मभिः ॥९९॥
 इति विज्ञाय विरसं फलं कटुककर्मणः । कथं न सज्यते धर्मे दुरिताच्च विरज्यते ॥१००॥

आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥८५॥ क्या यह लोक उल्काओंसे व्याप्त हो रहा है? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं? या महा प्रलयकाल आ पहुँचा है? या अग्निदेव कुपित हो रहे हैं? हाँ माता! यह क्या है? यह ताप तो अत्यन्त दुःसह है, ऐसा लगता है जैसे वेगशाली बड़ी बड़ी सँडासियोंसे नेत्र उखाड़े जा रहे हों, यह अमूर्तिक आकाश ही धीर शब्द कर रहा है, मानो प्राणोंके खींचनेमें उद्यत बाँसोंका वन ही जल रहा है, इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतासे भरा यह शब्द जबतक लोकमें गूँजता है तबतक उस अग्निने समस्त देशको भस्म कर दिया ॥८६-८९॥ उस समय न अन्तःपुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियाँ, न जंगल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥९०॥ महान् संवेगसे युक्त मुनिराजने चिरकालसे जो तप संचित कर रखा था यह सबका शब्द क्रोधाग्निमें दग्ध हो गया—जल गया फिर दूसरी वस्तुएँ तो बचतीं ही कैसे? ॥९१॥ यह दण्डक देश था तथा दण्डक ही यहाँका राजा था इसलिए आज भी यह स्थान दण्डक नामसे ही प्रसिद्ध है ॥९२॥ बहुत समय बीत जानेके बाद यहाँकी भूमि कुछ सुन्दरताको प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियाँ दिखाई देने लगी हैं ॥९३॥ उन मुनिके प्रभावसे यह वन देवोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला है फिर विद्याधरोंकी तो बात ही क्या है? ॥९४॥ आगे चलकर यह वन सिंह-अष्टापद आदि क्रूर जन्तुओं, नाना प्रकारके पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जंगली धान्योंसे युक्त हो गया ॥९५॥ आज भी इस वनकी प्रचण्ड दावानलका शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटनाका स्मरण कर भयभीत होते हुए काँपने लगते हैं ॥९६॥ राजा दण्डक बहुत समय तक संसारमें भ्रमण कर दुःख उठाता रहा अब गृध्रपर्यायको प्राप्त हो इस वनमें प्रीतिको प्राप्त हुआ है ॥९७॥ इस समय इस वनमें आये हुए अतिशय युक्त हम दोनोंको देखकर पापकर्मकी मन्दता होनेसे यह पूर्वभवके स्मरणको प्राप्त हुआ है ॥९८॥ जो दण्डक राजा पहले परम शक्तिसे युक्त था वह देखो, आज पापकर्मोंके कारण कैसा हो गया है? ॥९९॥ इस प्रकार पापकर्मका नारस फल जानकर धर्ममें क्यों नहीं लगा जाये और पापसे क्यों नहीं विरक्त हुआ जाये? ॥१००॥

१. श्रिता म. । २. सृज्यते म. ।

दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । असमञ्जसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥१०१॥
 पक्षिणं संयतोऽगादीन्मा भैषीरधुना द्विज । मा रोदीर्यथया भाव्यं कः करोति तदन्यथा ॥१०२॥
 आश्वासं गच्छ विश्रब्धः कम्पं मुञ्च सुखी भव । पश्य केयमरण्यानी क रामः सीतयान्वितः ॥१०३॥
 अवग्रहोऽस्मदीयः क क स्वमात्मार्यसंगतः । प्रबुद्धो दुःखसंभोधः कर्मणामिदमीहितम् ॥१०४॥
 इदं कर्म विचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् । अनुभूतं श्रुतं दृष्टं यथैव प्रवदाम्यहम् ॥१०५॥
 पक्षिणः प्रतिबोधाथं ज्ञात्वाकृतं च सीरिणः । सुगुप्तिरवदत् स्वस्थ सुगुप्तेः शमकारणम् ॥१०६॥
 अचलो नाम विख्यातो वाराणस्यां महीपतिः । गिरिदेवीति जायास्य गुणरत्नविभूषिता ॥१०७॥
 त्रिगुप्त इति विख्यातो गुणनाम्नान्यदा मुनिः । पारणार्थं गृहं तस्याः प्रविष्टः शुद्धचेष्टितः ॥१०८॥
 स तथा परमां श्रद्धां दधत्या विधिपूर्विकाम् । तर्पितः परमाञ्जेन स्वयं व्यापारमुक्यता ॥१०९॥
 समासाशनकृत्यं च पादन्यस्तोत्तमाङ्गया । पप्रच्छान्यापदेशेन स्वस्य पुत्रसमुद्भवम् ॥११०॥
 नाथ सातिशयोऽयं मे गृहवासो भविष्यति । किं वा नेति प्रसादोऽयं क्रियतां निश्चयार्पणम् ॥१११॥
 वचोगुप्तिं ततो भित्वा राज्ञीभक्त्यनुरोधतः । तस्याश्चात्समादिष्टं मुनिना तनयद्वयम् ॥११२॥
 त्रिगुप्तस्य मुनेस्तस्य समादेशोऽनघत् सुतौ । जातौ सुगुप्तिगुप्ताख्यौ पितृभ्यां तौ ततः कृतौ ॥११३॥
 तौ च सर्वकलाभिज्ञौ कुमारश्रीसमन्वितौ । तिष्ठन्तौ विविधैर्मयै रममाणौ जनप्रियौ ॥११४॥
 वृत्तान्तोऽयं च संजातो गन्धर्वेत्यां महीपतेः । पुरोहितस्य सोमस्य प्रियायास्तनयद्वयम् ॥११५॥

दूसरेका उदाहरण भी शान्तिका कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१०१॥ रामसे इतता कहकर मुनिराजने गृध्रसे कहा कि हे द्विज ! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होनेवाली है उसे अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥१०२॥ धैर्य धरो, निश्चिन्त होकर कँपकपी छोड़ो, सुखी होओ, देखो यह महा अटवी कहां ? और सीता सहित राम कहां ? ॥१०३॥ हमारा पडगाहन कहां ? और आत्मकल्याणके लिए दुःखका अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहां ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है ॥१०४॥ कर्मोंकी विचित्रताके कारण यह संसार अत्यन्त विचित्र है । जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है, अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥१०५॥ पक्षीको समझानेके लिए रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शान्तिका कारण कहने लगे ॥१०६॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरीमें एक अचल नामका प्रसिद्ध राजा था । उसकी गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित गिरि देवी नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ किसी दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नामको धारण करनेवाले तथा शुद्ध चेष्टाओंके धारक मुनिराजने आहारके लिए उसके घर प्रवेश किया ॥१०८॥ सो विधिपूर्वक परम श्रद्धाको धारण करनेवाली गिरिदेवीने अन्य सब कार्य छोड़ स्वयं ही उत्तम आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया ॥१०९॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर किसी दूसरेके बहाने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी बात पूछी ॥११०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं ? इस बातका निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिए ॥१११॥ तदनन्तर मुनि यद्यपि तीन गुप्तियोंके धारक थे तथापि रानीकी भक्तिके अनुरोधसे वचनगुप्तिको तोड़कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुन्दर पुत्र होंगे ॥११२॥ तदनन्तर उन त्रिगुप्त मुनिराजके कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता-पिताने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रखे ॥११३॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओंके जानकार, कुमार लक्ष्मीसे सुशोभित, अनेक भावोंसे रमण करते तथा लोगोंके अत्यन्त प्रिय थे ॥११४॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तान्त हुआ कि गन्धवती नामकी नगरीके राजाके सोम नामक

१. रामस्य । २. वाराणस्यां म. । ३. निश्चयार्पणो म. । ४. गन्धावत्यां म. ।

सुकेतुरग्निकेतुश्च तयोः प्रीतिरनुत्तमा । सुकेतुरन्यदा चाभूत् कृतदारपरिग्रहः ॥११६॥
 आवयोरधुना आश्रोः पृथक् शयनमेतया । क्रियते जाययावश्यमिति दुःखमुपागतः ॥११७॥
 सुकेतुः प्रतिबुद्धः सन् शुभकर्मानुभावतः । अनन्तवीर्यपादान्ते श्रमणत्वं समाश्रितः ॥११८॥
 अग्निकेतुर्वियोगेन आतुरत्यन्तदुःखितः । वाराणस्यामभूदुग्रस्तापसो धर्मचिन्तया ॥११९॥
 श्रुत्वा चैवंविधं तं च आतुरं स्नेहबन्धनः । प्रतिबोधयितुं वाञ्छन् सुकेतुर्गन्तुमुद्यतः ॥१२०॥
 स व्रजन् गुरुणावाचि सुकेतो कथयिष्यसि । वृत्तान्तं सोदरायेमं येनासाधुपशाम्यति ॥१२१॥
 कोऽसौ नाथेति तेनोक्ते गुरुरेवमुदाहरत् । करिष्यति त्वया साकं स जल्पं दुष्टमावनः ॥१२२॥
 युवयोः कुर्वतोर्जल्पं जाह्नवीमागमिष्यति । चाश्रम्या समं स्त्रीभिस्तिष्ठन्निर्गौरविग्रहा ॥१२३॥
 दिवसस्य गते यामे विचित्रांशुकपाणिनी । एभिश्चिह्नैर्विदित्वा तां भाषितव्यमिदं त्वया ॥१२४॥
 दृष्ट्वा तां वक्ष्यसीदं त्वं ज्ञानं चेदस्ति ते मते । वदैतस्याः कुमार्याः किं भवितेति शुभाशुभम् ॥१२५॥
 अज्ञानोऽसौ विलक्षः संस्तापसस्त्वां मणिष्यति । भवान् जानास्विति त्वं च वक्ष्यस्येवं मुनिश्रितः ॥१२६॥
 अस्त्यत्र प्रवरो नाम वैणिजः संपदास्वितः । तस्येयं दुहिता नाम्ना रुचिरेति प्रकीर्तिता ॥१२७॥
 तृतीयेऽहनि पञ्चत्वं वराकीर्यं प्रपत्स्यते । ततोऽजा कम्बरग्रामे विलासस्य भविष्यति ॥१२८॥
 वृकेण मारिता मेधी महिषी च ततः पितुः । सातुलस्य विलासस्य भविष्यति शरीरजा ॥१२९॥
 एवमस्त्विति संभाष्य प्रणम्य प्रमदी गुरुम् । सुकेतुः क्रमतः प्रासस्तापसानां निकेतनम् ॥१३०॥

पुरोहित था उसकी स्त्रीके सुकेतु और अग्निकेतु नामके दो पुत्र थे । उन दोनों ही पुत्रोंमें अत्यधिक प्रेम था, उस प्रेमके कारण बड़े होनेपर भी वे एक ही शय्यापर सोते थे । समय पाकर सुकेतुका विवाह हो गया । जब स्त्री घर आयी तब सुकेतु यह विचार कर बहुत दुःखी हुआ कि इस स्त्रीके द्वारा अब हम दोनों भाइयोंकी शय्या पृथक्-पृथक् की जा रही है ॥११५-११७॥ इस प्रकार शुभ कर्मके प्रभावसे प्रतिबोधकी प्राप्त हो सुकेतु अनन्तवीर्य मुनिके पास दीक्षित हो गया ॥११८॥ भाईके वियोगसे अग्निकेतु भी बहुत दुःखी हो धर्म संचय करनेकी भावनासे वाराणसीमें उग्र तापस हो गया ॥११९॥ स्नेहके बन्धनमें बँधे सुकेतुने जब भाईके तापस होनेका समाचार सुना तब वह उसे समझानेके अर्थ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२०॥ जब वह जाने लगा तब गुरुने उससे कहा कि हे सुकेतो ! तुम अपने भाईसे यह वृत्तान्त कहना जिससे वह शीघ्र ही उपशान्त हो जायेगा ॥१२१॥ 'हे नाथ ! वह कौन सा वृत्तान्त है' ? इस प्रकार सुकेतुके कहने पर गुरुने कहा कि दुष्ट भावनाको धारणा करनेवाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥१२२॥ सो जिस समय तुम दोनों वाद कर रहे होओगे उस समय गौरवर्ण शरीरको धारणा करनेवाली एक सुन्दर कन्या तीन स्त्रियोंके साथ गंगा आवेगी । वह दिनके पिछले प्रहरमें आवेगी तथा विचित्र वस्त्रको धारण कर रही होगी । इन चिह्नोंसे उसे जानकर तुम अपने भाईसे कहना कि यदि तुम्हारे धर्ममें कुछ ज्ञान है तो बताओ इस कन्याका क्या शुभ-अशुभ होनेवाला है ? ॥१२३-१२५॥ तब वह अज्ञानी तापसी लज्जित होता हुआ तुमसे कहेगा कि अच्छा तुम जानते हो तो कहो । यह सुन तुम निश्चयसे सुदृढ़ हो कहना कि इसी नगरमें एक सम्पत्तिशाली प्रवर नामका वैश्य रहता है यह उसीकी लड़की है तथा रुचिरा नामसे प्रसिद्ध है ॥१२६-१२७॥ यह बेचारी आजसे तीसरे दिन मर जायेगी और कम्बर नामक ग्राममें विलास नामक वैश्यके यहाँ बकरी होगी । भेड़िया उस बकरीको मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसीके घर भँस होगी और उसके बाद उसी विलासके पुत्री होगी । वह विलास इस कन्याके पिताका मामा होता है ॥१२८-१२९॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा गुरुको प्रणाम कर हर्षसे भरा सुकेतु क्रम-क्रमसे तापसोंके आश्रममें पहुँचा ॥१३०॥

१. समाश्रितं म. । २. वणिक्पुत्रः । ३. हर्षयुक्तः ।

गुरुणा च यथादिष्टं तां दृष्ट्वा तमुदाहरत् । तथा वृत्तं च तत्सर्वं यातमग्नेः समक्षताम् ॥१३१॥
 ततोऽसौ विधुरा नाम्ना विलासस्य शरीरजा । याचिता श्रेष्ठिना लब्धा प्रवरेण मनोहरा ॥१३२॥
 विवाहसमये प्राप्ते प्रवराय न्यवेदयत् । अग्निकेतुर्यथेयं तं दुहितासीद् भवान्तरे ॥१३३॥
 विलासायापि ते सर्वे भवास्तेन निवेदिताः । श्रुत्वा तत्कन्यका जाता जातिस्मरणकोविदा ॥१३४॥
 ततः प्रव्रित्तुं वाञ्छां सा संवेगपराकरोत् । प्रवरश्च विलासेन व्यवहारं दुराशयः ॥१३५॥
 सभायां पितुरस्माकं प्रवरं भङ्गतां गते । आर्थिकात्कमिता कन्या श्रमणत्वं च तापसः ॥१३६॥
 वृत्तान्तमीदृशं श्रुत्वा वयं चैराग्यदूरिताः । सकाशेऽनन्तवीर्यस्य जैनेन्द्रव्रतमाश्रिताः ॥१३७॥
 यत्र मोहपरीतानां प्राणिनामतिभूरिशः । जायन्ते कुत्सिताचारा भवसंततिदायिनः ॥१३८॥
 मातापितृमुह्यन्ति प्रभावापवादादिकं जनः । सुखदुःखादिकं चायं धिक्कृतं लभते भवे ॥१३९॥
 तच्छ्रुत्वा सुतरां पक्षी मीनोऽमृद् भवदुःखतः । चकार च मुतुःशब्दं धर्मग्रहणवाञ्छया ॥१४०॥
 उक्तं च गुरुणा भद्रं या वैरीरधुना व्रतम् । गृहाण येन नो भद्रः प्राप्यते दुःखसंततिः ॥१४१॥
 प्रशान्तो भद्रं सा पीडा^१ कार्पीः सर्वासुधारिणाम् । अनृतं स्तेयतां मार्यां परकीयां चित्रजयं ॥१४२॥
 एकान्तग्रहणार्थं वा गृहीत्वा सत्त्वमान्वितः । रात्रिमुक्तिं परित्यज्य भद्रं शोभनचेष्टितः ॥१४३॥
 प्रयतोऽङ्घ्रि क्षपायां च जिनेन्द्राद् वह चेतसा^२ । उपवासादिकं शक्या सुधीर्नियमाचर ॥१४४॥

गुरुने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्याको देखकर सुकेतुने अपने भाई अग्निकेतुसे कहा और वह तबका सब वृत्तान्त उसी प्रकार अग्निकेतुके सामने आ गया अर्थात् सच निकला ॥१३१॥

तदनन्तर वह कन्या जब मरकर चौथे भवमें विलासके विधुरा नामकी पुत्री हुई तब प्रवर नामक सेठने उस सुन्दरीको याचना की और वह उसे प्राप्त भी हो गयी ॥१३२॥ जब विवाहका समय आया तब अग्निकेतुने प्रवरसे कहा कि यह कन्या भवान्तरमें तुम्हारी पुत्री थी ॥१३३॥ यह कहकर उसने कन्याके वर्तमान पिता विलासके लिए भी उसके वे सब भव कह सुनाये । उन भवोंको सुनकर कन्याको जातिस्मरण हो गया ॥१३४॥ जिससे संसारसे भयभीत हो उसने दीक्षा धारण करनेका विचार कर लिया । इधर प्रवरने समझा कि विलास किसी छलके कारण मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं कर रहा है इसलिए दूषित अभिप्रायको धारण करनेवाले प्रवरने हमारे पिताकी सभामें विलासके विरुद्ध अभियोग चलाया परन्तु अन्तमें प्रवरकी हार हुई, कन्या आर्थिका पदको प्राप्त हुई और अग्निकेतु तापस दिग्म्बरमुनि बन गया ॥१३५-१३६॥ वृत्तान्तको सुनकर हमने भी विरक्त हो अनन्तवीर्य नामक मुनिराजके समीप जिनेन्द्र दीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ इस प्रकार मोही जीवोंसे संसारकी सन्ततिको बढ़ानेवाले अनेक छोटे आचरण हो जाया करते हैं ॥१३८॥ यह जीव अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार ही माता, पिता, स्नेही मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख-दुःखादिकको भव-भयमें प्राप्त होता है ॥१३९॥

यह सुनकर वह गृध्र पक्षी संसार सम्बन्धी दुःखोंसे अत्यन्त भयभीत हो गया और धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे बार-बार शब्द करने लगा ॥१४०॥ तब मुनिराजने कहा कि हे भद्र ! भय मत करो । इस समय व्रत धारण करो जिससे फिर यह दुःखोंकी सन्तति प्राप्त न हो ॥१४१॥ अत्यन्त शान्त हो जाओ, किसी भी प्राणीको पीड़ा मत पहुँचाओ, असत्य वचन, चोरी और परस्त्री-का त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम क्षमासे युक्त हो रात्रि भोजनका त्याग करो, उत्तम चेष्टाओंसे युक्त होओ, बड़े प्रयत्नसे रात-दिन जिनेन्द्र भगवान्को हृदयमें धारण करो, शक्यनुसार विवेकपूर्वक उपवासादि नियमोंका आचरण करो, प्रमादरहित होकर इन्द्रियोंको

१. पीडा म. । २. प्रयतोऽङ्घ्रि क्षपायां च (?) म. । ३. बहुचेतसा म. ।

इन्द्रियाण्यप्रमत्तः सन्नुत्सुकान्यात्मगोचरे । कुह युक्तव्यवस्थानि साधूनां भक्तितत्परः ॥१४५॥
 इत्युक्तः^१ साञ्जलिः पक्षी शिरो विनमयन्मुहुः । कुर्वाणो मधुरं शब्दं जग्राह मुनिमाषितम् ॥१४६॥
 श्रावकोऽयं विनीतात्मा जातोऽस्माकं विनोदकृत् ।^२ इत्युक्त्वा सस्मिता सीता तं कराभ्यां समस्पृशत् ॥१४७॥
 साधुभ्यामुक्तमित्येतं रक्षितुं वोऽधुनोचितम्^३ । तपस्वी शान्तचित्तोऽयं क्व वा गच्छतु पञ्चभृत् ॥१४८॥
 अस्मिन् सुगहनेऽरण्ये क्रूरप्राणिनिषेविते । सम्यग्दृष्टेः खगस्यास्य रक्षा कार्या त्वया सदा ॥१४९॥
 ततो गुरुवचः प्राप्य सुतरां स्नेहपूर्णया । सीतयामुगृहीतोऽसौ परिपालनचिन्तया ॥१५०॥
 पल्लवस्पर्शहस्ताभ्यां तं परामृशती सती । जनकस्याङ्गजा रेजे विनता गण्डं यथा ॥१५१॥
 निर्ग्रन्थपुङ्गवाधेमिः स्तुतिपूर्वं नमस्कृतौ । बहूपकारिसंचारौ यातावात्मोचितं पदम् ॥१५२॥
 नमः समुत्पन्नतौ तौ शुशुभाते महामुनी । दानधर्मसमुद्रस्य कलोलोविष्व पुष्कलौ ॥१५३॥
 प्रभिन्नं वारणं तावद् वशीकृत्य वनोत्थितम् । आरुह्य लक्ष्मणः श्रुत्वा ध्वनिमागात् समाकुलः ॥१५४॥
 रत्नकाञ्चनराशिं च दृष्ट्वा पर्वतसंनिधिम् । नानावर्णप्रभाजालसमुद्गतसुरायुधम् ॥१५५॥
 विकसन्नयनाम्भोजमहाकौतुकपूरितः । कृतो विदितवृत्तान्तः पद्मेन मुदितात्मना ॥१५६॥
 प्राप्तो धिरसौ पक्षी नायासीत्तौ विना क्वचित् । निर्ग्रन्थवचनं सर्वं कुर्वन्नुद्यतमानसः ॥१५७॥
 स्मर्यमाणोपदेशोऽसौ सीतयाणुव्रताश्रमे । पद्मलक्ष्मणमार्गेण रममाणोऽन्नमन्नहीम् ॥१५८॥

व्यवस्थित कर आत्मध्यानमें उत्सुक करो और साधुओंकी भक्तिमें तत्पर होओ ॥१४२-१४५॥
 मुनिराजके इस प्रकार कहनेपर गृध्र पक्षीने अंजलि बांध बार-बार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्दका उच्चारण कर मुनिराजका उपदेश ग्रहण किया ॥१४६॥ 'विनीत आत्माको धारण करनेवाला यह श्रावक हम लोगोंका विनोद करनेवाला हो गया' यह कहकर मन्द हास्य करनेवाली सीताने उस पक्षीका दोनों हाथोंसे स्पर्श किया ॥१४७॥ तदनन्तर दोनों मुनियोंने राम आदिको लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगोंको इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शान्तचित्तको धारण करनेवाला यह बेचारा पक्षी कहाँ जायेगा ? ॥१४८॥ क्रूर प्राणियोंसे भरे हुए इस सघन वनमें तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षीकी सदा रक्षा करनी चाहिए ॥१४९॥ तदनन्तर गुस्के वचन प्राप्त कर अतिशय स्नेहसे भरी सीताने उसके पालनकी चिन्ता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया अर्थात् अपने पास ही रख लिया ॥१५०॥ पल्लवके समान कोमल स्पर्शवाले हाथोंसे उसका स्पर्श करती हुई सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो गरुड़का स्पर्श करती हुई उसकी माँ विनता ही हो ॥१५१॥

तदनन्तर जिनका भ्रमण अनेक जीवोंका उपकार करनेवाला था ऐसे दोनों निर्ग्रन्थ साधु, राम आदिके द्वारा स्तुतिपूर्वक नमस्कार किये जानेपर अपने योग्य स्थानपर चले गये ॥१५२॥ आकाशमें उड़ते हुए वे दोनों महामुनि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो दानधर्मरूपी समुद्रकी दो बड़ी लहरें ही हों ॥१५३॥ उसी समय एक मदोन्मत्त हाथीको वश कर तथा उसपर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुछ व्यग्र होते हुए आ पहुँचे ॥१५४॥ नाना वर्णकी प्रभाओंके समूहसे जिसमें इन्द्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वतके समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुवर्णकी राशि देखकर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कौतुकसे युक्त थे ऐसे लक्ष्मणको प्रसन्न हृदय रामने सब समाचार विदित कराया ॥१५५-१५६॥ जिसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराजके समस्त वचनोंका बड़ी तत्परतासे पालन करता था ऐसा वह पक्षी राम और सीताके बिना कहीं नहीं जाता था ॥१५७॥ अणुव्रताश्रममें स्थित सीता जिसे बार-बार मुनियोंके उपदेशका स्मरण कराती रहती थी ऐसा वह पक्षी राम-लक्ष्मणके मार्गमें रमण करता हुआ पृथ्वीपर भ्रमण

धर्मस्य पश्यतौदार्यं यदस्मिन्नेव जन्मनि । शाकपत्रोपमो गृध्रो जातस्तामरसोपमः ॥१५९॥
 पुरा योऽनेकमांसादो दुर्गन्धोऽभूजुगुप्सितः । सोऽयं काञ्चनकुम्भाभःसुरभिः सुन्दरोऽभवत् ॥१६०॥
 कचिद् वक्षिशिखाकारः कचिद् वैदूर्यसंनिभः । कचिन्नामीकरच्छायो हरिर्मणिरुचिः कचित् ॥१६१॥
 रामलक्ष्मणयोरग्रे स्थितोऽसौ बहुचाटुकः । शुभ्रजे साधु संपन्नमन्त्रं सीतोपसाधितम् ॥१६२॥
 चन्दनेन स दिग्धाङ्गो हेमकिङ्किण्यलंकृतः । विभ्राणः शकुनी रजे रत्नांशुजटिलं शिरः ॥१६३॥
 यस्मादंशुजटास्तस्य विरेजू रत्नहेमजाः । जटायुरिति तेनासावाहृतस्तैरतिप्रियः ॥१६४॥
 जितहंसगतिं कान्तं चारुविभ्रमभूषितम् । तमन्यपक्षिणो दृष्ट्वा भयवन्तो निसिस्मिन्धुः ॥१६५॥
 त्रिसंयं सीतया साकं वन्दनामकरोदसौ । भक्तिप्रदो जिगेन्द्राणां सिद्धानां योगिनां तथा ॥१६६॥
 तत्र प्रीतिं महाप्राप्ता जानकी कुरुणापरा । अप्रमत्ता सदा रक्षां कुर्वन्ती धर्मवत्सला ॥१६७॥

उपजातिवृत्तम्

आस्वादमानो निजयेच्छयासौ फलानि शुद्धान्यमृतोपमानि ।
 जलं प्रशस्तं च पिबन्नरण्ये बभूव नित्यं सुविधिः पतन्नी ॥१६८॥
 सतालशब्दं जनकाक्षजाया धर्माश्रयोच्चारितगीतिकायाम् ।
 कृतानुगीत्यां पतिदेवराभ्यां ननर्त हृष्टो रविरुज्जटायुः ॥१६९॥
 इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जटायुपाख्यानं नामैकचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४१॥

करता था ॥१५८॥ अहो ! धर्मका माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्ममें शाकपत्रके समान निष्प्रभ था वही कमलके समान सुन्दर हो गया ॥१५९॥ पहले जो अनेक प्रकारके मांसको खानेवाला, दुर्गन्धित एवं घृणाका पात्र था वही अब सुवर्णकलशमें स्थित जलके समान मनोज्ञ एवं सुन्दर हो गया ॥१६०॥ उसका आकार कहीं तो अग्निकी शिखाके समान था, कहीं नीलमणिके सदृश था, कहीं स्वर्णके समान कान्तिसे युक्त था और कहीं हरे मणिके तुल्य था ॥१६१॥ राम-लक्ष्मणके आगे बैठा तथा अनेक प्रकारके मधुर शब्द कहनेवाला वह पक्षी सीताके द्वारा निमित्त उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥१६२॥ जिसका शरीर चन्दनसे लिप्त था, जो स्वर्णनिमित्त छोटी-छोटी घण्टियोंसे अलंकृत था तथा जो रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त शिरको धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१६३॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्णनिमित्त किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नामसे बुलाते थे । वह उन्हें अत्यन्त प्यारा था ॥१६४॥ जिसने हंसकी चालको जीत लिया था, जो स्वयं सुन्दर था और सुन्दर विलासोंसे जो युक्त था ऐसे उस जटायुको देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे ॥१६५॥ वह भक्तिसे नम्रीभूत होकर तीनों सन्ध्याओंमें सीताके साथ अरहन्त, सिद्ध तथा निर्ग्रन्थ साधुओंको नमस्कार करता था ॥१६६॥ धर्मसे स्नेह करनेवाली दयालु सीता बड़ी सावधानीसे उसकी रक्षा करती हुई सदा उसपर बहुत प्रेम रखती थी ॥१६७॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी इच्छानुसार शुद्ध तथा अमृतके समान स्वादिष्ट फलोंको खाता और जंगलमें उत्तम जलको पीता हुआ निरन्तर उत्तम आचरण करता था ॥१६८॥ जब सीता तालका शब्द देती हुई धर्ममय गीतोंका उच्चारण करती थी और पति तथा देव उसके स्वरमें स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला वह जटायु हर्षित हो नृत्य करता था ॥१६९॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जटायुका वर्णन

करनेवाला इकतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४१॥



द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

पात्रदानप्रभावेण ससीतौ रामलक्ष्मणौ । इहैव रत्नहेमादि^१ संपयुक्तौ बभूवुः ॥१॥
 ततश्चावीकरानेकभक्तिविन्याससुन्दरम् । सुस्तम्भवेदिकागर्भगृहसंगतमुन्नतम् ॥२॥
 स्थूलमुक्ताफलखग्निर्विराजत्पवनानयनम् । बुद्बुदादर्शलभ्युपखण्डचन्द्रादिमण्डितम् ॥३॥
 शयनासनवादित्रयस्त्रगन्धादिपूरितम् । चतुर्विंशरणैर्युक्तं विमानप्रतिमं रथम् ॥४॥
 आरूढा विचरन्त्येते प्रतिघातविजृजिताः । जटायुसहिता रम्ये वने सत्त्वयतां नृणां ॥५॥
 कचिद्दिनं कचित् पक्षं कचिन्मालं मनोहरे । यथेप्सितकृतक्रीडाः प्रदेशे तेऽवतस्थिरे ॥६॥
 निवासमत्र कुर्मऽत्र कुर्म इत्यभिलाषिणः । महोक्षनवशब्देच्छा विचेरुस्ते वनं सुखम् ॥७॥
 महाविश्वरगमोरान् कांश्चिदुष्खावचान् बहून् । उत्तुङ्गपादपान् देशान् जम्बुकुण्डल्य ते शनैः ॥८॥
 स्वेच्छया पर्यटन्तस्ते सिंहा इव भयोर्जिताः । मध्यं दण्डकक्षस्थं प्रविष्टा भीरुःखदम् ॥९॥
 विचित्रशिखरा यत्र हिमाद्रिगिरिसन्निभाः । रम्या निर्झरनद्यश्च सुक्ताहारोपमाः स्थिताः ॥१०॥
 अश्वत्थैस्तन्निड्योकाभिर्वदरीभिर्विभीतकैः । शिरोपैः कदलैर्लक्ष्मैश्चोदैः सरलैर्धनैः ॥११॥
 कदम्बैस्तिलकैर्लक्ष्मैश्चोदैर्लोलोहितैः । जम्बूभिः पाटलाभिश्च चूतैरान्नातकैः शुभैः ॥१२॥
 चम्पाकैः कर्णिकारैश्च सालैस्तालैः प्रियङ्गुभिः । सप्तपर्णैस्तमालैश्च नागैर्नन्दिभिरर्जुनैः ॥१३॥
 केसरैश्चन्दनैर्नैपैर्मञ्जैर्हि गुलकैर्वटैः । सितासितैरगुरुभिः कुन्दै रम्भाभिरङ्गुदैः ॥१४॥
 पद्मकैर्मुचिलिन्दैश्च कुटिलैः पारिजातकैः । बन्धूकैः केतकीभिश्च मधूकैः खदिरैस्तथा ॥१५॥

अथानन्तर पात्रदानके प्रभावसे सीता सहित राम-लक्ष्मण इसी पर्यायमें रत्न तथा सुवर्णादि सम्पत्तिसे युक्त हो गये ॥१॥ तदनन्तर जो स्वर्णमयी अनेक बेल-वृट्टोंके विन्याससे सुन्दर था, जो उत्तमोत्तम खम्भों, वेदिका तथा गर्भगृहसे सहित था, ऊँचा था, जिसके झरोखे बड़े-बड़े मोतियोंकी मालासे सुशोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नुस, तथा खण्डचन्द्र आदि सजावटकी सामग्रीसे अलंकृत था, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गन्ध आदिसे भरा था, जिसमें चार हाथी जुते थे और जो विमानके समान था ऐसे रथपर सवार होकर ये सब बिना किसी बाधाके जटायु पक्षीके साथ-साथ धैर्यशाली मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले वनमें विचरण करते थे ॥२-५॥ वे उस मनोहर वनमें इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पक्ष और कहीं एक माह ठहरते थे ॥६॥ 'हम यहाँ निवास करेंगे' 'यहाँ ठहरेंगे' इस प्रकार कहते हुए वे किसी बड़े बेलकी नयी घास खानेकी इच्छाके समान वनमें सुखपूर्वक विचरण करते थे ॥७॥ जो बड़े-बड़े निर्झरोसे गम्भीर थे तथा जिनमें ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे-नीचे प्रदेशोंको पार कर वे धीरे-धीरे जा रहे थे ॥८॥ सिंहोंके समान निर्भय हो स्वेच्छासे धूमते हुए वे, भीरु मनुष्योंको भय देनेवाले दण्डक वनके उस मध्य भागमें प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरिके समान विचित्र पर्वत थे तथा मोतियोंके हारके समान सुन्दर निर्झर और नदियाँ स्थित थीं ॥९-१०॥ जहाँ-का वन, पोपल, इमली, बैरी, बहेड़े, शिरोप, केले, राल, अक्षरोट, देवदारु, धौ, कदम्ब, तिलक, लोध, अशोक, नील और लाल रंगकी धारण करनेवाले जामुन, गुलाब, आम, अंवाडा, चम्पा, कनेर, सागौन, ताल, प्रियंगु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नन्दी, कौहा, बकौली, चन्दन, नीप, भोजपत्र, हिगुलक, बरगद, सफेद तथा काला अगुरु, कुन्द, रम्भा, इंगुआ, पद्मक, मुचकुन्द, कुटिल,

१. हेमाभि ज., ख. । हेमानि म. । २. भयोर्जितां म. । ३. रकोठैः म. ।

मदनैर्खदिरैर्निम्बैः खजूरैश्छत्रकैस्तथा । नारिङ्गैर्मातुलिङ्गीभिर्द्राक्षिणीभिस्तथासनैः ॥१६॥
 बालिकैरैः कपित्थैश्च रसेरामलकैर्वनैः । शमीहरीतकीभिश्च कोविदारैरगस्तभिः ॥१७॥
 करञ्जकुष्ठकालीयैरुत्कचैरजमोदकैः । कङ्कोलस्वगलवङ्गीभिर्मरिचाजातिभिस्तथा ॥१८॥
 चविमिर्धतकीभिश्च कुर्षकैरतिमुक्तकैः । पूरैस्ताम्बूलवल्लीमिरेलामी रक्तचन्दनैः ॥१९॥
 वेत्रैः श्यामलताभिश्च मेघशृङ्गैर्हरिद्रुभिः । पलाशैः स्पन्दनैर्बिल्वैश्चिरबिल्वैः समेधिकैः ॥२०॥
 चन्दनैररङ्गकैश्च शालमलीबीजकैस्तथा । एभिरन्यैश्च भृङ्गैस्तद्वरण्यं विराजितम् ॥२१॥
 सस्यैर्वहुप्रकारैश्च स्वयंभूतै रसोत्तमैः । पुण्ड्रैश्चभिश्च विस्तीर्णाः प्रदेशास्तस्य संकुलाः ॥२२॥
 चित्रपादपसंघातैर्नानावल्लीसमाकुलैः । अशोभत वनं वाढं द्वितीयमिव नन्दनम् ॥२३॥
 मन्दमारुतनिक्षिप्तैः पल्लवैरतिकोमलैः । ननर्तवाटवी तोषात् पद्माद्यागमजनमनः ॥२४॥
 वायुतो ह्रियमाणेन रजसाभ्युत्थितेव च । आलिङ्गिते च सद्गन्धवाहिना नित्ययायिना ॥२५॥
 अगायदिव भृङ्गराणां झङ्कारेण मनोहरम् । जहासेव सिन्धुं रम्यं शैलनिर्झरशोकरैः ॥२६॥
 जीर्वजीवकभेरुण्डहंससारसकोकिलाः । मयूरश्च्येनकुरराः शुक्रकौशिकसारिकाः ॥२७॥
 कपोतभृङ्गराजाश्च भारद्वाजादयस्तथा । अरमन्त द्विजास्तस्मिन् प्रयुक्तकलनिस्वनाः ॥२८॥
 कोलाहलेन रम्येण तद्वनं तेन संभ्रमि । जगाद स्वागतमिव प्राप्तकर्तव्यदक्षिणम् ॥२९॥
 कुतः किं राजपुत्रोति कस्मिन्नागच्छ साध्विति । इतिकोमलभारस्या संजलत्पुत्रिव द्विजाः ॥३०॥
 सितासितारुणान्भोजसंछन्नैरतिनिर्मलैः । सरोनिर्वीक्षितुमिव प्रवृत्तं सुकुतुहलात् ॥३१॥
 फलभारनतैरग्रैर्नानामेव महादरम् । सुमोचानन्दनिश्वासासमिव सद्गन्धवायुना ॥३२॥

पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खैर, मैना, खदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, बिजौरे, अनार, असन, नारियल, कँथा, रसोद, आंवला, शमी, हरड, कचनार, करंज, कुष्ठ, कालीय, उत्कच, अजमोद, कंकोल, दालचीनी, लौंग, मिरच, चमेली, चव्य, आंवला, कुर्षक, अतिमुक्तक, सुपारी, पान, इलायची, लालचन्दन, बेंत, श्यामलता, मेढासिंगी, हरिद्रु, पलाश, तेंदू, बेल, चिरोल, मेथी, चन्दन, अरङ्गक, सेंम, बीजसार, इनसे तथा इनके सिवाय अन्य वृक्षोंसे सुशोभित था ॥११-२१॥ उस वनके लम्बे-चौड़े प्रदेश स्वयं उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके धान्यों तथा रसीले पौधों और ईलोंसे व्याप्त थे ॥२२॥ नाना प्रकारकी लताओंसे युक्त विविध वृक्षोंके समूहसे वह वन ठीक दूसरे नन्दनवनके समान सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए अत्यन्त कोमल किसलयोंसे वह अटवी ऐसी जान पड़ती थी मानो राम आदिके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे नृत्य ही कर रही हो ॥२४॥ वायुके द्वारा हरण की हुई परागसे वह अटवी ऊपर उठी हुई-सी जान पड़ती थी और उत्तम गन्धको धारण करनेवाली वायु मानो उसका आलिङ्गन कर रही थी ॥२५॥ वह भ्रमरोंकी झंकारसे उसी जान पड़ती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाड़ी निर्झरोंके उड़ते हुए जलकणोंसे ऐसे विदित होती थी मानो शुक्ल एवं सुन्दर हास्य ही कर रही हो ॥२६॥ चकोर, भेरुण्ड, हंस, सारस, कोकिला, मयूर, बाज, कुरर, तोता, उलूक, मैना, कवूतर, भृङ्गराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवीमें क्रीड़ा करते थे ॥२७-२८॥ पक्षियोंके उस मधुर कोलाहलसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो प्राप्त कार्यमें निपुण होनेसे भ्रम्रमके साथ सबका स्वागत ही कर रहा हो ॥२९॥ कलरव करते हुए पक्षी कोसल वाणीसे मानो यही कह रहे थे कि हे साध्वि ! राजपुत्रि ! तुम कहाँसे आ रही हो और कहाँ आयी हो ॥३०॥ सक्केद, नीले तथा लाल कमलोंसे व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरोंसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो कुतुहल-वश देखनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३१॥ फलोंके भारसे झुके हुए अग्र भागोंसे वह वन ऐसा

१. अटवी ननर्त इव । २. जीर्वजीवकभेरुण्डः । ३. महीधरं म. ।

ततः सौमनसाकारं वनं तद्वीक्ष्य राघवः । जगाद विकचाम्भोजलोचनां जनकात्मजाम् ॥३३॥
वह्नीभिर्गुल्मकैः स्तम्भैः समासन्नैर्मनी नगाः । सकुटुम्बा इवामान्ति प्रिये यच्छात्र लोचने ॥३४॥
प्रियङ्गुलतिकां पश्य संगतां वकुलोरसि । कान्तस्येव वरारोहा शङ्के निर्भरसौहृदम् ॥३५॥
चलता पल्लवेनेयं संप्रत्यग्रेण माधवी । परामृशति सौहार्दादिव चूतमनुत्तरात् ॥३६॥

छन्दः (?)

अयं मदालसे क्षणः करी करेणुचोदितः । मधुकरविघटितदलनिचयः प्रविशति सीते कनकवनम् ॥३७॥

उपजातिः

वहजसौ दर्पमुदारमुच्चैर्वस्मीकशृङ्गं^१ गवलीसुनीलः ।
लीलान्वितो वज्रसमेन धोरं^२ भिन्ने^३ विषाणेन लसत्सुराग्रः ॥३८॥

आर्याच्छन्दः

अमुभिन्द्रनीलवर्णं विवराश्रियातदूरतनुभागम् ।
पश्य मयूरं दृष्ट्वा प्रविशन्तमहिं भयाकुलितम् ॥३९॥

शार्दूलविक्रीडितम्

पश्यामुष्य महानुभावचरितं सिंहस्य सिंहक्षणे
रम्येऽस्मिन्नचले गुहामुखगतस्याराद्विकासिद्युते ।
यः^४ श्रुत्वा रथनादमुन्नतमना निद्रां विहाय क्षणं
वीक्ष्यापाङ्गदृष्ट्वा विजृम्भ्य शनकैर्भूयस्तथैव स्थितः ॥४०॥

जान पड़ता था मानो बड़े आदरसे राम आदिको नमस्कार ही कर रहा हो और सुगन्धित वायुसे ऐसा सुशोभित होता था मानो आनन्दके श्वासोच्छ्वास ही छोड़ रहा हो ॥३२॥

तदनन्तर सौमनस वनके समान सुन्दर वनको देख-देखकर रामने विकसित कमलके समान खिले हुए नेत्रोंको धारण करनेवाली सीतासे कहा कि हे प्रिये ! इधर देखो, ये वृक्ष लताओं तथा निकटवर्ती गुल्मों और झाड़ियोंसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कुटुम्ब सहित ही हों ॥३३-३४॥ वकुल वृक्षके वक्षस्थलसे लिपटी हुई इस प्रियंगु लताको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो पतिके वक्षःस्थलसे लिपटी प्रेम भरी सुन्दरी ही हो ॥३५॥ यह माधवीलता हिलते हुए पल्लवसे मानो सौहार्दके कारण ही आमका स्पर्श कर रही है ॥३६॥ हे सीते ! जिसके नेत्र मदसे आलस हैं, हस्तिनी जिसे प्रेरणा दे रही है और जिसने कलिकाओंके समूहको भ्रमरोसे रहित कर दिया है ऐसा यह हाथी कमल वनमें प्रवेश कर रहा है ॥३७॥ जो अत्यधिक गर्वको धारण कर रहा है, जो लीलासे सहित है, तथा जिसके खुरोंके अग्रभाग सुशोभित हैं ऐसा यह अत्यन्त नील भैंसा वज्रके समान सींगके द्वारा वामीके उच्च शिखरको भेद रहा है ॥३८॥ इधर देखो, इस साँपके शरीरका बहुत कुछ भाग बिलसे बाहर निकल आया था फिर भी यह सामने इन्द्रनील मणिके समान नीलवर्णवाले मयूरको देखकर भयभीत हो फिरसे उसी बिलमें प्रवेश कर रहा है ॥३९॥ हे सिंहके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तथा फैलती हुई कान्तिसे युक्त प्रिये ! इस मनोहर पर्वतपर गुहाके अग्रभागमें स्थित सिंहकी उदात्त चेष्टाको देखो जो इतना दृढ़ चित्त है कि रथका शब्द सुनकर क्षण भरके लिए निद्रा छोड़ता है और कटाक्षसे उसकी ओर देखकर तथा धीरेसे जमुहाई

१. मदालसे क्षीणः म. । २. महिषः । ३. भिन्ने म. । ४. यच्छ्रुत्वा म. ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

नानामृगक्षतजपानसुरक्तवक्त्रो द्रपोद्भुरः कपिलनेत्रमरीचिचक्रः ।
मूर्धोपनीतलसदुज्ज्वलबालपुच्छो व्याघ्रो नखैः खनति पादपमेष मूले ॥४१॥

मन्दाक्रान्ता

अन्तः कृत्वा शिशुगणमिमे कामिनीभिः समेतं
दूरन्यस्तप्रचलनयना भूरिशः सावधानाः ।

किञ्चिद्दूर्वाग्रहणचतुराः प्रान्तयाताः कुरङ्गाः

पश्यन्ति त्वां विपुलनथनालम्बिनः कौतुकेन ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

सुन्दरि पश्य वराहं दंष्ट्रान्तरलग्नमुस्तमुन्नतसत्त्वम् ।

अभिनवगृहीतपङ्कं गच्छन्तं मन्थरं सघोणम् ॥४३॥

वंशस्थवृत्तम्

अयं प्रयत्नादिव चित्रिताङ्गको विनातिवर्णं बहूभिः सुलोचने ।

भजत्यतिक्रीडनममकैः समं वनैकदेशे तृणभाजि चित्रकः ॥४४॥

दोधकवृत्तम्

श्येनयुवैष लघुभ्रमपक्षो दूरत एव निरूप्य समन्तात् ।

स्वापमितस्थ परं शरमस्य^१ स्तेनयति द्रुतमामिषमास्थ्यात् ॥४५॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

कमलजालकराजितमस्तकः ककुदमुन्नतमाचलितं वहन् ।

अयमुदात्तरवोऽत्र विराजते^२ सुरमिपुत्रपतिर्वरविभ्रमः ॥४६॥

लेकर फिर भी उसी तरह निर्भय बैठा है ॥४०॥ इधर नाना मृगोंका रुधिर पान करनेसे जिसका मुख अत्यन्त लाल हो रहा है, जो अहंकारसे फूल रहा है, जिसका मुख नेत्रोंकी पीली-पीली कान्तिसे युक्त है, तथा चमकीले बालोंसे युक्त जिसकी पूँछ पीछेसे घूमकर मस्तकके समीप आ पहुँची है ऐसा यह व्याघ्र नाखूनोंके द्वारा वृक्षके मूलभागको खोद रहा है ॥४१॥ जिन्होंने स्त्रियोंके साथ-साथ अपने बच्चोंके समूहको बीचमें कर रखा है, जिनके चंचल नेत्र बहुत दूर तक पड़ रहे हैं, जो अत्यधिक सावधान हैं, जो कुछ-कुछ दूर्वाके ग्रहण करनेमें चतुर हैं और कौतुक वश जिनके नेत्र अत्यन्त विशाल हो गये हैं ऐसे ये हरिण समीपमें आकर तुम्हें देख रहे हैं ॥४२॥ हे सुन्दरि ! धीरे-धीरे जाते हुए उस वराह को देखो, जिसकी दाँहोंमें मोथा लग रहा है, जिसका बल अत्यन्त उन्नत है, जिसने अभी हाल नयी कीचड़ अपने शरीरमें लगा रखी है, तथा जिसकी नाक बहुत लम्बी है ॥४३॥ हे सुलोचने ! प्रयत्नके बिना ही जिसका शरीर नाना प्रकारके वर्णोंसे चित्रित हो रहा है ऐसा यह चीता इस तृणबहुल वनके एकदेशमें अपने बच्चोंके साथ अत्यधिक क्रीड़ा कर रहा है ॥४४॥ इधर जिसके पंख जल्दी घूम रहे हैं ऐसा यह तरुण बाज-पक्षी दूरसे ही सब ओर देखकर सोते हुए शरभके मुखसे बड़ी शीघ्रताके साथ मांसको छीन रहा है ॥४५॥ इधर जिसका मस्तक कमल जैसी आवर्तसे सुशोभित है; जो कुछ-कुछ हिलती हुई ऊँची काँदौरको धारण कर रहा है, जो विशाल शब्द कर रहा है तथा जो उत्तम विभ्रमसे सहित है ऐसा यह बैल सुशोभित

१. दक्षः म. । २. ते नयति म. । ३. मत्स्यात् म. । ४. अनड्वान् ।

सक्च्छन्दः

कचिदिदमतिघनवरनगकलितं कचिदणुबहुविधतृणपरिनिचितम् ।
कचिदपगतमयमृगपुरुषटलं कचिदतिमययुतरुदितगहनम् ॥४७॥

चण्डीच्छन्दः

कचिदुरुसदृशवातितवृक्षं कचिदभिनवतरुजालकयुक्तम् ।
कचिदलिकुलककटाङ्गतरुस्यं कचिदतिखररवसंभृतकक्षम् ॥४८॥

प्रमाणिकावृत्तम्

कचिद्विभ्रान्तसर्वकं कचिद्विअन्धसर्वकम् । कचिन्निरम्बुगह्वरं कचिद्विस्वस्तगह्वरम् ॥४९॥

तोटकच्छन्दः

अरुणं धवलं कपिलं हारतं वलितं निभृतं सर्वं विरलम् ।

विरलं गहनं सुभगं विरलं, तरुणं पृथुकं विषमं सुसमम् ॥५०॥

इदं तदण्डकारण्यं प्रसिद्धं दृष्टिते वनम् । पश्यानेकविधं कर्मप्रपञ्चमिव जानकि ॥५१॥

नगोऽयं दण्डको नाम शृङ्गालीढाम्बराङ्गणः । सुवक्त्रे यस्य नागनेदं दण्डकारण्यमुच्यते ॥५२॥

तुङ्गया शिखरेष्वस्य प्रभया धातुजन्मना । रक्तया पुष्पपद्मेव प्रावृतं भाति पुष्करम् ॥५३॥

अस्य गह्वरदेशेषु पश्यौषधिमहाशिखाः । निर्वातस्थप्रदीपाभा दूरध्वस्ततमश्चयाः ॥५४॥

शालिनीच्छन्दः

अस्मिन्नुच्चैर्निर्झराः संपतन्तस्तारावा प्रावसङ्घातसफाः ।

सुप्ताकारान् सीकरानुसृजन्तो राजन्त्येते स्पष्टमासानुकाराः ॥५५॥

हो रहा है ॥४६॥ कहीं तो यह वन उत्तमोत्तम सघन वृक्षोंसे युक्त है, कहीं छोटे-छोटे अनेक प्रकार-
के तृणोंसे व्याप्त है, कहीं निर्भय मृगोंके बड़े-बड़े झुण्डोंसे सहित है, कहीं अत्यन्त भयभीत कृष्ण-
मृगोंके लिए सघन झाड़ियोंसे युक्त है ॥४७॥ कहीं अतिशय मदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा गिराये हुए
वृक्षोंसे सहित है, कहीं नवीन वृक्षोंके समूहसे युक्त है, कहीं भ्रमर-समूहकी मनोहारी झंकारसे
सुन्दर है, कहीं अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दोंसे भरा हुआ है ॥४८॥ कहीं प्राणी भयसे इधर-उधर घूम रहे
हैं, कहीं निश्चिन्त बैठे हैं, कहीं गुफाएँ जलसे रहित हैं, कहीं गुफाओंसे जल बह रहा है ॥४९॥ कहीं
यह वन लाल है, कहीं सफेद है, कहीं पीला है, कहीं हरा है, कहीं मोड़ लिये हुए है, कहीं निश्चल
है, कहीं शब्दसहित है, कहीं शब्दरहित है, कहीं विरल है, कहीं सघन है, कहीं नीरस—शुष्क है,
कहीं तरुण—हराभरा है, कहीं विशाल है, कहीं विषम है, और कहीं अत्यन्त सम है ॥५०॥ हे
प्रिये जानकि ! देखो यह प्रसिद्ध दण्डकवन कर्मोंके प्रपञ्चके समान अनेक प्रकारका हो रहा है ॥५१॥
हे सुमुखि ! शिखरोंके समूहसे आकाशरूपी आँगनको व्याप्त करनेवाला यह दण्डक नामका पर्वत
है जिसके नामसे ही यह वन दण्डक वन कहलाता है ॥५२॥ इस पर्वतके शिखरपर गेरू आदि
आदि धातुओंसे उत्पन्न हो ऊँची उठनेवाली लाल-लाल कान्तिसे आच्छादित हुआ आकाश ऐसा
जान पड़ता है मानो लाल फूलोंके समूहसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥५३॥ इधर इस पर्वतकी गुफाओंमें
दूरसे ही अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाली देदीप्यमान औषधियोंकी बड़ी-बड़ी शिखाएँ वायुरहित
स्थानमें स्थित दीपकोंके समान जान पड़ती हैं ॥५४॥ इधर पाषाण-खण्डोंके बीच अत्यधिक शब्दके
साथ बहुत ऊँचेसे पड़नेवाले ये झरने मोतियोंके समान जलकणोंको छोड़ते हुए सूर्यकी किरणोंके

१. पर्वतः । २. शृङ्गालीढमम्बराङ्गणं येन सः । ३. शिखरेष्वस्य सः ।

विद्युन्मालावृत्तम्

अस्योद्देशाः शुभ्राः केचित् केचिन्नीला स्क्ताः केचित् ।

दृश्यन्तेऽमी वृक्षैर्व्यासा प्रान्ते कान्तेऽत्यन्तं कान्ताः ॥५६॥

प्रमाणिकाल्लन्दः

अमी समीरणेरिते वरोष्ठि वृक्षमस्तके । विमान्ति गह्वरे लवा रवेः कराः क्वचित् क्वचित् ॥५७॥

रुचिरावृत्तम्

अयं क्वचित् फलभरनम्रपादपः क्वचित् स्थितैः कुसुमपटैरलंकृतः ।

क्वचित् खगैः कलरवकारिभिश्चितो विभात्यलं वरमुखि दण्डको गिरिः ॥५८॥

कोकिलकच्छन्दः

इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगतः प्रियतरवालिधिः प्रियतमैरनुयातपथः ।

अत्रतिविस्मृमन्दगतिरिन्दुरुचिः पुरुषं प्रविशति गह्वरं न पृथुकाहितचञ्चलदृक् ॥५९॥

स्रग्धरावृत्तम्

एषा नीला शिला स्थात्तिमिरमुपचितं कन्दराणां मुखेषु

स्यादेतत् किं विहायः स्फटिकमणिशिला किन्तु वृक्षान्तरस्था ।

एष स्याद् गण्डशैलः किमुत गजपतिः सेवते गाढनिद्रां

कान्ते क्षोणोधरेऽस्मिन्नतिसदृशतया दुर्गमा भूविभागाः ॥६०॥

एषा क्रौञ्चरवा नाम नदी जगति विश्रुता । जलं यस्याः प्रिये^१ वीध्रं त्वदीयमिव चेष्टितम् ॥६१॥

अश्वललितच्छन्दः

मृदुमरुदीरभङ्गुरमलं तटस्थतरुपुष्पसंहितधरम् । मवशयनीयरूपसुमरां सुकेशि जलमत्र राजतितराम् ॥६२॥

साथ मिलकर सुशोभित हो रहे हैं ॥५५॥ हे कान्ते ! इस पर्वतके कितने ही प्रदेश सफेद हैं, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल हैं, और कितने ही वृक्षावलीसे व्याप्त होकर अत्यन्त सुन्दर दिखाई देने हैं ॥५६॥ हे वरोष्ठि ! सघनवनमें वायुसे हिलते हुए वृक्षोंके अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो उसके खण्ड ही हों ॥५७॥ हे सुमुखि ! जो कहीं तो फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंके समूहसे युक्त है; कहीं पड़े हुए पुष्प रूपी वस्त्रोंसे सुशोभित है, और कहीं कलरव करनेवाले पक्षियोंसे व्याप्त है ऐसा यह दण्डक वन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥५८॥ इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके वल्लभ पीछे-पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चन्द्रमाके समान सफेद कान्तिका धारक है, और जो अपने धन्वोंपर चंचल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरीमृगोंका समूह दुष्ट जीवोंके द्वारा उपद्रुत होनेपर भी अपनी मन्दगतिको नहीं छोड़ रहा है तथा बाल टूट जानेके भयसे कठोर एवं सघन झाड़ीमें प्रवेश नहीं कर रहा है ॥५९॥ हे कान्ते ! इधर इस पर्वतकी गुफाओंके आगे यह क्या नील शिला रखी है ? अथवा अन्धकारका समूह व्याप्त है ? इधर यह वृक्षोंके मध्यमें आकाश स्थित है अथवा स्फटिक मणिकी शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बड़ा हाथी गाढ़ निद्राका सेवन कर रहा है इस तरह अत्यन्त सादृश्य-के कारण इस पर्वतके भूभागों पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥६०॥ हे प्रिये । यह वह क्रौञ्चरवा नामकी जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टाके समान अत्यन्त उज्ज्वल है ॥६१॥ हे सुकेशि ! जो मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित होकर लहरा रहा है, जो तटपर स्थित वृक्षोंके पुष्प-

भद्रकच्छन्दः^१

हंसकुलामफेनपटलप्रभिरुबहुपुष्पपुञ्जकलितम् । भृङ्गनिनादपूरितवना कचिद् विकटसंकटोपलचयैः ॥६३॥

(?) छन्दः

ग्राहसहस्रचारविषमा कचिच्च पुरुवेदसंगतजला ।

घोरतपस्विचेष्टिसमा कचिच्च वहति प्रशान्तगुरियम् ॥६४॥

पुष्पिताप्रावृत्तम्

परमशितिशिलौघरश्मिभिन्नं कचिदनुलग्नसितोपलांशुयुक्तम् ।

जलनिह सितदन्ति भाति वाहं हरिहरयोरिव संगतं शरीरम् ॥६५॥

वंशपत्रपतितम्

रक्तशिलौघरश्मिनिचिता कचिदियममला भाति समुद्यदकंसमये दिगिव सुरपतेः ।

मिन्मजला कचिच्च हरितैरुपलकरचयैः शैवलशङ्कयागमकृतौ विरसयति खगान् ॥६६॥

हरिणीवृत्तम्

कमलनिकरेण्वत्र स्वेच्छंकृतातिकलस्वनं निभृतपवनासंगात् कम्पेण्वभीक्ष्णकृतभ्रमम् ।

परमसुरभेर्गन्धाद् वक्त्रात्तवेव समुद्गतान् मधुकपटलं कान्ते क्षीवं विभाति रजोरुणम् ॥६७॥

शिखरिणीच्छन्दः

विशिकं पाताले कचिदिह जलं मुक्तवहनं परं गम्भीरत्वं वहति दयिते ते मन इव ।

कचिन्नीलाम्भोजैरनतिचलितैः षट्पदचितैर्विभक्त्यंशिक्षिच्छायां प्रवरवनितालोकनभवाम् ॥६८॥

समूहको धारण कर रहा है और जो कैलासके समान शुक्लरूपसे सुन्दर है ऐसा इस नदीका जल अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६२॥ यह जल कहीं तो हंस समूहके समान उज्ज्वल फेन समूहसे युक्त है, कहीं टूट-टूटकर गिरे हुए फूलोंके समूहसे सहित है, कहीं भ्रमरोंके समूहसे इसका कमल वन पूरित है और कहीं यह बड़े-बड़े सघन पाषाणोंके समूहसे उपलक्षित है ॥६३॥ यह नदी कहीं तो हजारों मगरमच्छोंके संचारसे विषम है, कहीं इसका जल अत्यन्त वेगसे सहित है और कहीं यह घोर तपस्वी-साधुओंकी चेष्टाके समान अत्यन्त प्रशान्त भावसे बहती है ॥६४॥ हे शुक्ल दांतों-को धारण करनेवाली सीते ! इस नदीका जल एक ओर तो अत्यन्त नील शिला समूहकी किरणोंसे मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीपमें स्थित सफेद पाषाणखण्डोंकी किरणोंसे मिलकर सफेद हो रहा है । इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर-नारायण और महादेवके शरीरके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६५॥ लाल-लाल शिलाखण्डोंकी किरणोंसे व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्योदयकालीन पूर्व दिशाके समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रंगके पाषाण-खण्डकी किरणोंके समूहसे जलके मिश्रित होनेसे शेवालकी शंकासे आनेवाले पक्षियोंको विरस कर रही है ॥६६॥ हे कान्ते ! इधर निरन्तर चलनेवाली वायुके संगसे हिलते हुए कमल-समूहपर जो इच्छानुसार अत्यन्त मधुर शब्द कर रहा है, निरन्तर भ्रमण कर रहा है और उसकी परागसे जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरोंका समूह तुम्हारे मुखसे निकली सुगन्धिके समान उत्कृष्ट सुगन्धिसे उन्मत्त हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥६७॥ हे दयिते ! जो अतिशय स्वच्छ

१. ६२ तमे श्लोके अश्वललितच्छन्दसः पादद्वयम् । ६३ तमे च श्लोके भद्रकच्छन्दसः पादद्वयम् । उभयत्रार्थार्थ एव श्लोको विद्यते । अथवा उभयोर्मेलने उपजातिच्छन्दो भवति । किंतु विभिन्नजातिपूजाति-वृत्तप्रायो न दृश्यते । २. लोचनभुवम् म. ।

चतुष्पदिकावृत्तम्

अत्र विभाति व्योमगवृन्दं बहुविधजलमववनकृतचरणम् ।

प्रेमनिबद्धं तारविरावं कचिदतिमदवशपरिचितकलहम् ॥६९॥

सैकतमस्या राजति चेदं सवनितखगकुलकृतपदपदवि ।

खजघनस्य प्राप्तसुसमत्वं गतघनसुरपयशशघरवदने ॥७०॥

मत्तमयूरच्छन्दः

एषा यातानेकविलासाकुलिताम्बुस्तोयाधीशं वीचिवरभ्रूरतिकान्ता ।

तद्गच्छास्फीतगुणौघं शुभचेष्टं विष्टपसुन्दरमुत्तमशीला मरतेसम् ॥७१॥

रुचिरावृत्तम्

इमे प्रिये फलकुसुमैरलंकृतास्तटीरुहो विविधविडङ्गसंकुलाः ।

निरन्तराः सजलघनौघसंनिभाः इमाभिता रतिमिव कर्तुमावधोः ॥७२॥

अपरचक्रच्छन्दः

इति निगदति राघवोत्तमे परमविचित्रपदार्थसंगतम् ।

प्रमदभरवशंगता सती जनकसुता निजगाद सादरम् ॥७३॥

प्रहर्षिणीवृत्तम्

नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या हंसाद्यैः खगनिवहैः कृताभिलाषाः ।

एतस्यां प्रियतम ते मनोगतं चेत्तोयेऽस्याः किमिति रतिक्षणं न कुर्मः ॥७४॥

है तथा बहाव छोड़कर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदीका जल कहीं तो तुम्हारे मनके समान परम गाम्भीर्यको धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरोंसे व्याप्त तथा कुछ-कुछ हिलते हुए नील कमलोंसे उत्तम स्त्रीके देखनेसे समुत्पन्न नेत्रोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥६८॥ इधर कहीं जो नाना प्रकारके कमलवनोंमें विचरण कर रहा है, प्रेमसे युक्त है, उच्च शब्द कर रहा है और तीव्र मदसे विवश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियोंका समूह सुशोभित हो रहा है ॥६९॥ मेघरहित ओकाशमें विद्यमान चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखको धारण करनेवाली हे प्रिये ! इधर जिसपर स्त्रियों सहित क्रीड़ा करनेवाले पक्षियोंके समूहने अपने चरण-विह्वल बना रखे हैं ऐसा इस नदीका यह बालुमय तट तुम्हारे नितम्बस्थलकी सदृशता धारण कर रहा है ॥७०॥ जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासों—हावभावरूप चेष्टाओंसे सहित तरंगके समान उत्तम भौंहोंसे युक्त एवं उत्तम शीलको धारण करनेवाली सुभद्रा सुन्दर एवं विस्तृत गुणसमूहसे युक्त, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा संसारमें सर्वसुन्दर भरत चक्रवर्तीको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासों—पक्षियोंके संचारसे युक्त जलको धारण करनेवाली, भौंहोंके समान उत्तम तरंगोंसे युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत गुणसमूहसे सहित शुभ चेष्टासे युक्त एवं जगत्सुन्दर लवणसमुद्रको प्राप्त हुई है ॥७१॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलोंसे अलंकृत हैं, नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त हैं, निरन्तर हैं तथा जलसे भरे मेघ-समूहके समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारेके वृक्ष हम दोनोंको प्रीति उत्पन्न करनेके लिए ही मानो इस नदीकूलमें प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ इस प्रकार जब रामने अत्यन्त विचित्र शब्द तथा अर्थसे सहित वचन कहे तब हर्षित होती हुई सीताने आदरपूर्वक कहा ॥७३॥ कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जलसे भरी है, लहरोंसे रमणीय है, हंसादि पक्षियोंके समूह इसमें इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है

१. अत्र चतुर्थचरणे छन्दोभङ्गः, पाठस्तूपलब्धपुस्तकेष्वेवं विध एव ।

वियोगिनीच्छन्दः

अथ राजसुतासमीरितं तद्वाक्यं राघवगोत्रचन्द्रमाः ।

अनुजानुगतोऽभिनन्दनात् भेजे रम्यभुवं रथालयात् ॥७५॥

(?)

पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः स्नपनमभिनवदृष्टगजपतिवनपथपरिचितश्रमप्रतिनोदनम् ।

तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुमसमुच्चयमुचितां च परिक्रियाम् ॥७६॥

(?)

पश्चात् स्रोतः संसक्ताग्रहमभिवहपरिचलनकरणवरसहितमतुलं विचेष्टितमीप्सितम् ।

रामेणामा स्नातुं सक्तो विविधजलविहृतिविषयपरमविधिसमुपचितं गुणाकरमानसः ॥७७॥

पृथ्वीवृत्तम्

सफेनयलया लसत्पकटवोचिमालाकुला विमर्दितसितासितारुणपथोजपत्राचिता ।

समुद्गतकलस्वनतिरहसंगमासेविता समं रघुकुलेन्दुना रतिमिवाकरोदापगा ॥७८॥

वियोगिनीवृत्तम्

विनिमज्ज्य सुदूरयायिना विसिनीखण्डतिरोहितात्मना ।

पुनराशुसमागमाश्रिता रघुपुत्रेण रता नृपात्मजा ॥७९॥

(?)

मुक्त्वा नानाकृत्थासंगं कुसुमवनचरणजरजोविराजिगरुद्भृतम् ।

गत्वा क्षिप्रं तोरोद्देशं स्वरितकृतविविधरसिताः पुरोगतयोषितः ॥८०॥

तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठासपरविषयगमनरहितं विधाय मनो भृशम् ।

तिर्यञ्चोऽपि ह्येते रम्यं परुषकृतिरहितमनसां विदन्ति समीहितम् ॥८१॥

तो इसके जलमें हम लोग भी क्यों नहीं क्षण-भर क्रीड़ा करें ॥७४॥

तदनन्तर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ-साथ रामने सीताके वचनोंका समर्थन किया और सब रथरूपी घरसे उतरकर मनोहर भूमिपर आये ॥७५॥ सर्वप्रथम लक्ष्मणने नवीन पकड़े हुए हाथी-को जंगली मार्गोंके बीच चलनेसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेवाला स्नान कराया । उसके बाद उसे नाना प्रकारके स्वादिष्ट उत्तमोत्तम कोमल पत्ते और फूलोंका समूह इकट्ठा किया तथा उसकी योग्य परिचर्या की ॥७६॥ तदनन्तर जिनका मन नाना प्रकारके गुणोंकी खान था ऐसे लक्ष्मणने रामके साथ-साथ नदीमें स्नान करना प्रारम्भ किया । वे कभी जलके प्रवाहमें आगे बढ़े हुए वृक्षोंके समूहपर चढ़कर जलमें कूदते थे, कभी अनुपम चेष्टाएँ करते थे और कभी नाना प्रकारकी जलक्रीड़ा सम्बन्धी उत्तमोत्तम विधियोंका प्रयोग करते थे ॥७७॥ जो फेनके वलय अर्थात् समूह अथवा फेनरूपी चूड़ियोंसे सहित थी, जो प्रकट उठती हुई तरंगरूपी मालाओंसे युक्त थी, जो मसले हुए सफेद-नीले और लाल कमलपत्रोंसे व्याप्त थी, जिसमें मधुर शब्द उत्पन्न हो रहा था और जो एकान्त समागमसे सेवित थी ऐसी वह नदीरूपी स्त्री ऐसी जान पड़ती थी मानो रघुकुलके चन्द्र—रामचन्द्रके साथ उपभोग ही कर रही हो ॥७८॥ रामचन्द्रजी पानीमें गोता मार बहुत दूर लम्बे जाकर कमल वनमें छिप गये तदनन्तर पता चलनेपर शीघ्र ही सीता उनके पास जाकर क्रीड़ा करने लगी ॥७९॥ पहले जो हंसादि पक्षी अपनी स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीड़ा कर रहे थे और कमलोंके वनमें विचरण करनेसे उत्पन्न परागसे जिनके पंख सुशोभित हो रहे थे वे अब शीघ्र ही किनारोंपर आकर नाना प्रकारके मधुर शब्द करने लगे तथा नाना कार्यों की आसक्ति छोड़कर तथा मनकी विषयान्तरसे रहित कर राम-लक्ष्मण-सीताकी श्रेष्ठ जलक्रीड़ा देखने

पुष्पिताग्रावृत्तम्

अतिमधुररसं कराभिघातैर्मरुजरवादपि सुन्दरं विचित्रम् ।

अनुगतदयितो रघुप्रधानः सलिलमवादयदन्वितं सुगीत्या ॥८२॥

(?)

परितोऽकरोद्भ्रमणमस्य जलरमणसक्तचेतसोदारचतुरकरणेऽनुगतक्रियस्य ^१हलहेतैर्लक्ष्मणः ।

अतिवेगवान् पुनरपेतज्वनिपुणचारतत्परो भ्रातृगुणनिरतधीः परमं समुद्रवचापलक्षितः ॥८३॥

मालिनीवृत्तम्

इति सुविमललीलः स्वेच्छयाम्भोविहारं प्रमदमुपनयन्तं तीरभाजां भृगाणाम् ।

रघुपतिरनुभूय आनृदारानुयातो गङ्गपतिरिव तीरं सेवितुं संप्रवृत्तः ॥८४॥

वंशस्थवृत्तम्

शरीरयातं च विधाय वर्तनं महाप्रशस्तैर्वनजन्मवस्तुभिः ।

स्थिता लतामण्डपरुद्धभास्करे सुरा इवामी कृतचित्रसंकथाः ॥८५॥

सीतापतिस्ततोऽवोचदिति विश्रब्धमानसः । जटायुर्मूर्धकरया सीतयाऽलंकृतान्तिकः ॥८६॥

सन्धस्मिन् विविधा भ्रातृदुःखाः स्वादुफलान्विताः । सरितः स्वच्छतोयाश्च मण्डपाश्च लतात्मकाः ॥८७॥

अनेकरत्नसंपूर्णो दण्डकोऽयं महागिरिः । प्रदेशैर्विविधैर्युक्तः परक्रीडनकोचितैः ॥८८॥

उपकण्ठेऽस्य नगरं विदधमः सुमनोहरम् । नैजिकीर्वनसंभृता गृहीभो महिषीस्तथा ॥८९॥

अस्मिन्नगोचरेऽन्येषामरण्येऽत्यन्तसुन्दरे । विषयावासनं कुर्मः परमा धृतिरत्र मे ॥९०॥

^२स्वस्मिन्निहितचेतस्के नूनं शोकवशीकृते । ^३स्वहितैः स्वजनैः सर्वैः परिवर्गसमन्वितैः ॥९१॥

लगे, सो ठीक ही है क्योंकि ये तिर्यच भी कोमल चित्तके धारक मनुष्योंकी मनोहर चेष्टाको समझते हैं—जानते हैं ॥८०-८१॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ-साथ उत्तम गीत गाते हुए हथेलियोंके आघातसे जलका बाजा बजाया । उस जलवाद्यका शब्द मृदंगके शब्दसे भी अधिक मधुर, सुन्दर और विचित्र था ॥८२॥ उस समय रामका चित्त जलक्रीड़ा में आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकारकी उत्तम चतुर चेष्टाओंके करनेमें तत्पर थे । भाईके स्नेहसे भरे एवं समुद्रघोष धनुषसे सहित लक्ष्मण उनके चारों ओर चक्कर लगा रहे थे । यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त वेगसे युक्त थे तो भी उस समय वेगको दूर कर सुन्दर चालके चलनेमें तत्पर थे ॥८३॥ इस प्रकार उज्ज्वल लीलाको धारण करनेवाले राम भाई और स्त्रीके साथ, तटपर स्थित मृगोंको हर्ष उपजानेवाली जलक्रीड़ा इच्छानुसार कर गजराजके समान किनारेपर आनेके लिए उद्यत हुए ॥८४॥ स्नानके बाद वनमें उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओंके द्वारा शरीरवृत्ति अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकारकी कथाएँ करते हुए जहाँ लताओंके मण्डपसे सूर्यका संचार रुक गया था ऐसे दण्डक वनमें देवोंके समान आनन्दसे बैठ गये ॥८५॥ तदनन्तर जटायुके मस्तकपर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बैठो थी ऐसे राम निश्चिन्त चित्त हो इस प्रकार बोले ॥८६॥ कि हे भाई ! यहाँ स्वादिष्ट फलोंसे युक्त नाना प्रकारके वृक्ष हैं, स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ हैं और लताओंसे निर्मित नाना मण्डप हैं ॥८७॥ यह दण्डक नामका महापर्वत अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीड़ाके योग्य नाना प्रदेशोंसे युक्त है ॥८८॥ हम लोग इस पर्वतके समीप अत्यन्त मनोहर नगर बनायें और वनमें उत्पन्न हुई पोषण करनेवाली अनेक भैंसें रख लें ॥८९॥ जहाँ दूसरोंका आना कठिन है ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनमें हम लोग देश बसायें क्योंकि यहाँ मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है ॥९०॥ जिनका चित्त हम लोगोंमें लग रहा है और जो निरन्तर शोकके वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताओंको, अपना हित करनेवाले समस्त परिकर एवं परिवारके साथ, जाओ शीघ्र ही ले आओ

१. रामस्य । २. अस्मिन् म. । ३. सहितैः म. ।

व्रजानय जनन्यौ नौ त्वरितं न न नाथवा । तिष्ठ सुन्दर नैवं मे मानसं शुद्धिमश्नुते ॥९२॥
स्वयमेव गमिष्यामि शरत्समयसंगमे । प्रतिजाग्रद्वान् सीतामिह स्थास्यति यत्नवान् ॥९३॥
ततो लक्ष्मीधरे नम्रे प्रस्थितेऽवस्थिते तथा । प्रेमाद्रिंकृतचेतस्कः पुनः पद्मो जगाविति ॥९४॥
समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते दीप्तभास्करदारुणे । प्राप्तेऽत्यन्तमयं भीमः कालः संप्रति जालदः ॥९५॥
क्षुब्धाकूपारनिर्घोषाश्रलाञ्जननगोपमाः । दिशोऽन्धकारयन्त्येते विष्टुद्रन्तो बलाहकाः ॥९६॥
निरन्तरं तिरोधाद्य गगनं घनविग्रहाः । मुञ्चन्ति कं यथा देवा रत्नराशिं जिनोद्भवे ॥९७॥

उपजातिवृत्तम्

विधाय तुङ्गानचलान् महान्तो धाराभिरुच्चैर्ध्वनयः पयोदाः ।
नभोज्ज्वलेऽभी निभृतं चरन्तः श्रणप्रमासंगमिनो विभान्ति ॥९८॥

वंशस्थवृत्तम्

पयोमुचः केचिदमीं विपाण्डुराः समीरिता वेगवता नभस्वता ।
अमन्ति निष्णातमसंयतात्मना मनोविशेषा इव यौवनश्रिताः ॥९९॥

अयं सख्यभुवं मुक्त्वा मेघो भूभृति वर्षति । अनिश्रितविशेषः सन् कुपात्रे द्रविणी यथा ॥१००॥

मालिनीवृत्तम्

अतिजवमिह काले सिन्धवः संप्रवृत्ता विषमतमविहारोदारपङ्का धरित्री ।
जलपरिमलशीतो वाति चण्डश्च वायुर्न तव गमनयुक्तं तेन मन्ये सुभाव ॥१०१॥

अश्वत्थ नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नहीं है इसमें मेरा मन शुद्धताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥९१-९२॥ ऋतु आनेपर मैं स्वयं जाऊँगा, तुम सीताके प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥९३॥ तदनन्तर रामकी पहली बात सुनकर लक्ष्मण बड़ी नम्रतासे जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये । उसी समय जिनका चित्त प्रेमसे आर्द्र हो रहा था ऐसे रामने पुनः कहा कि देदीप्यमान सूर्यसे दारुण यह ग्रीष्म काल तो व्यतीत हुआ अब यह अत्यन्त भयंकर वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥९४-९५॥ जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान गर्जना कर रहे हैं तथा जो चलते-फिरते अंजनगिरिके समान जान पड़ते हैं ऐसे बिजलीसे युक्त ये मेघ दिशाओंको अन्धकारसे युक्त कर रहे हैं ॥९६॥ जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मके समय देव रत्नराशिकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार मेघोंका शरीर धारण करनेवाले देव निरन्तर रूपसे आकाशको आच्छादित कर जल छोड़ रहे हैं—पानी बरसा रहे हैं ॥९७॥ जो स्वयं महान् हैं, अत्यधिक गर्जना करनेवाले हैं, जो अपनी मोटी धाराओंसे पर्वतोंको और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशागणमें निरन्तर विचरण कर रहे हैं तथा जिनमें बिजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं ॥९८॥ वेगशाली वायुके द्वारा प्रेरित ये कितने ही सफेद मेघ असंयमी मनुष्यों-के तरुण हृदयोंके समान इधर-उधर धूम रहे हैं ॥९९॥ जिस प्रकार विशेषताका निश्चय नहीं करनेवाला घनाढ्य मनुष्य कुपात्रके लिए धन देता है उस प्रकार यह मेघ धान्यकी भूमि छोड़कर पर्वतपर पानी बरसा रहा है ॥१००॥ इस समय बड़े वेगसे नदियाँ बहने लगी हैं, अत्यधिक कीचड़से युक्त हो जानेके कारण पृथिवीपर विहार करना दुर्भर हो गया है और जलके सम्बन्धसे शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिए हे भद्र ! तुम्हारा जाना ठीक नहीं है ॥१०१॥

१. जलदानामयं जालदः मेघसंयन्धो । २. विभृत् ।

इति निगदति पद्मे केकयीसूनुरुचे
 प्रवदसि यदधीशस्त्वं तथाहं करोमि ।
 विविधरसकथाभिः सुन्दरे स्वाश्रये ते
 रविपरिचयमुक्तं कालमस्थुः सुखेन ॥१०२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दण्डकारण्यनिवासाभिधानं नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४२॥



इस प्रकार रामके कहनेपर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मैं करता हूँ । इस तरह अपने सुन्दर निवास स्थलमें वे नाना प्रकारकी स्नेहपूर्ण कथाएँ करते हुए सूर्यके परिचयसे रहित वर्षा काल तक सुखसे रहे ॥१०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें दण्डक वनमें निवासका वर्णन करनेवाला बयालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥



त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व

ततः शरदृतुजित्वा शशाङ्ककरपत्रिभिः । घर्नायं विशुचंश्चक्रे^१ राज्यमाक्रान्तविष्टपः ॥१॥
विकसःपुष्पसंघातान् पादपान् स्निग्धचेतसः । अलंकारोत्तमांस्तस्य जगृहुः ककुबङ्गनाः ॥२॥
जीमूतमलनिर्मुक्तं मित्राञ्जनसनद्युति । अम्बुनेव चिरं धौतं रराज गगनाङ्गणम् ॥३॥
प्रावृट्कालगजो मेघकलशैर्धरिणीश्रियम् । अभिषिच्य गतः क्वापि विद्युत्क्षविराजितः ॥४॥
चिरात् कमलिनीगेहं प्राप्य^२ पक्षभृतां गणाः । उद्भूतमधुरालापाः कामप्यापुः सुखासिकाम् ॥५॥
सिन्धवः स्वच्छकीलाला^३ उन्मज्जत्युलिनाः पराम् । कान्तिमीयुः समासाय शरत्समयकामुकम् ॥६॥
वर्षावातविमुक्तानि चिरात्प्राप्य सुखासिकाम् । काननानि व्यराजन्त संगतानीव निद्रयाः ॥७॥
सरांसि पङ्कजाढ्यानि समं^४ रोधस्समुत्थितैः । पादपैः पक्षिनादेन समालापमिवामजन् ॥८॥
नानापुष्पकृतामोदा रजनीविमलाम्बरा । मृगाङ्गतिलकं भेजे सुकालेशमिवोषती ॥९॥
केतकीसूतिरजसा पाण्डुरीकृतविग्रहः । ववौ समीरणो मन्दं मदयन् कामिनीजनम् ॥१०॥
इति प्रसन्नतां प्राप्ते काले सोत्साहविष्टपे । मृगेन्द्रगतिराश्लिष्टविक्रमैकमहारसः ॥११॥
लब्धवानुमननं ज्येष्ठादाशानिहितवीक्षणः । कदाचिद्वृक्षमणो भ्राम्यन्नेककस्तद्वनान्तिकम् ॥१२॥
अजिग्रदामरं गन्धं विनीतपवनाद्गतम् । अचिन्तयच्च कस्यैष भवेद्गन्धो मनोहरः ॥१३॥

अथानन्तर उज्ज्वल शरद् ऋतु, चन्द्रमाकी किरणरूपी बाणोंके द्वारा मेघसमूहको जीतकर समस्त विश्वमें व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥१॥ जिनका चित्त स्नेहसे भर रहा था ऐसी दिशारूपी स्त्रियोंने उस शरद् ऋतुके स्वागतके लिए ही मानो खिले हुए पुष्पसमूहसे सुशोभित वृक्षरूपी उत्तमोत्तम अलंकार धारण किये थे ॥२॥ मेघरूपी मलसे रहित आकाशरूपी आंगन, मंदित अंजनके समान श्यामवर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानीसे धुल जानेके कारण ही स्वच्छ हो गया है ॥३॥ वर्षा कालरूप हाथी, मेघरूपी कलशोंके द्वारा पृथिवीरूपी लक्ष्मीका अभिषेक कर बिजलीरूपी कक्षाओंमें सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥४॥ भ्रमरोंके समूह बहुत समय बाद कमलिनीके घर जाकर मधुरालाप करते हुए सुखसे बैठे थे ॥५॥ जिनके पुलिन धीरे-धीरे उन्मज्ज हो रहे हैं ऐसी स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ शरत्कालरूपी वल्लभको पाकर परम कान्तिको प्राप्त हो रहीं थीं ॥६॥ वर्षा कालकी तीक्ष्ण वायुसे रहित वन चिरकाल बाद सुखसे बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रासे संगत ही थे—नींद ही ले रहे थे ॥७॥ कमलोंसे युक्त सरोवर तटोंपर उत्पन्न हुए वृक्षोंके साथ पक्षियोंके शब्दके बहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥८॥ जिसने नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धि धारण की थी तथा जो आकाशरूपी स्वच्छ वस्त्रसे सुशोभित थी ऐसी रात्रिरूपी स्त्री उत्तमकालरूपी पतिको पाकर मानो चन्द्रमारूपी तिलकको धारण कर रही थी ॥९॥ केतकीके फूलोंसे उत्पन्न परागके द्वारा शरीर शुक्लवर्ण हो रहा था ऐसी वायु कामिनीजनोंको उन्मत्त करती हुई धीरे-धीरे बह रही थी ॥१०॥ इस प्रकार जिसमें समस्त संसार उत्साहसे युक्त था ऐसे उस शरत्कालके प्रसन्नताको प्राप्त होनेपर सिंहके समान निर्भय विचरनेवाले महापराक्रमी लक्ष्मण बड़े भाई रामसे आज्ञा प्राप्त कर दिशाओंकी ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अकेले ही उस दण्डक वनके समीप घूम रहे थे ॥११-१२॥ उसी समय उन्होंने वनयो पवनके द्वारा लायी हुई दिव्य सुगन्धि सूँघी । उसे सूँघते ही वे विचार करने लगे कि यह मनोहर गन्ध किसकी होनी चाहिए ? ॥१३॥

१. विशदं चक्रे म. । २. भ्रमराणाम् । ३. निर्मलजलयुक्ताः । ४. रोधसमुत्थितैः । ५. लब्धवानुमननं म. ।

पादपानां किमेतेषां स्फुटकुसुमधारिणाम् । अहोस्विन्नम देहस्य कुसुमोत्करशायिनः ॥१४॥
 वैदेह्या संगतो रामः किमुतोपरि तिष्ठति । किंवा कश्चित्समायातो भवेदत्र त्रिविष्टपो^१ ॥१५॥
 ततो मगधराजेन्द्रः पप्रच्छ श्रमणोत्तमम् । भगवन् कस्य गन्धोऽसौ चक्रे विस्मयनं हरेः^२ ॥१६॥
 ततो गणधरोऽवोचज्ज्ञातलोकविचेष्टितः । संदेहतिमिरादिस्यः पापधूलीसमीरणः ॥१७॥
 द्वितीयस्य जिनेन्द्रस्य द्युनिवाससमागमे । विद्याधराय^३ विग्ननाय याताय शरणं विभुम् ॥१८॥
 राक्षसानामधीशेन महाभीमेन धीमता । अस्मोदवाहनायासीत्कृपयेर्युदितो वरः ॥१९॥
 विपुले राक्षसद्वीपे त्रिकूटं नाम पर्वतम् । मेघवाहनविश्रब्धो गच्छ दक्षिणसागरे ॥२०॥
 जम्बूद्वीपस्य जगतीमिमामाश्रित्य दक्षिणम् । लङ्केति नगरी तत्र रक्षोभिर्विनिवेशिता ॥२१॥
 रहस्यमिदमेकं च विद्याधर परं शृणु । जम्बूमरतवर्षस्य दक्षिणाशां समाश्रयत् ॥२२॥
 आश्रयित्वोत्तरं तीरं लवणस्य महोदधेः । वसुन्धरोदरस्थानस्वभावापितमायतम् ॥२३॥
 योजनस्याष्टमं भागं दण्डकाद्वीं गुहाश्रयम् । अधोगत्वा महाद्वारं प्रविश्य मणितोरणम् ॥२४॥
 अलंकारोदयं नाम स्थितं पुरमनुत्तमम् । स्थानीयशतधर्मस्थं दिव्यदेशं निरोक्ष्यते ॥२५॥
 नानाप्रकाररत्नांशुसंतानपरिराजितम् । विस्मयोत्पादने शक्तमपि त्रिदिवसन्ननाम् ॥२६॥
 अप्रतर्क्यं गगनगौर्दुर्गं^४ विद्याविवर्जितैः । सर्वकामगुणोपेतं विचित्रालयसंकुलम् ॥२७॥
 परचक्रसमाक्रान्तो यद्यापस्तु रुदाचन । मवेदुर्गं समास्य तिष्ठेस्त्वं निर्भयस्ततः ॥२८॥
 इत्युक्तस्तेन यातोऽसौ यो विद्याधरबालकः । लङ्कापुरीमभूत्तस्मात् संतानोऽनेकपुंगवः ॥२९॥

क्या यह गन्ध विकसित फूलोंको धारण करनेवाले इन वृक्षोंकी है अथवा पुष्पसमूहपर शयन करने वाले मेरे शरीरकी है ? ॥१४॥ अथवा ऊपर सीताके साथ श्रीराम विराजमान हैं ? या कोई देव यहां आया है ? ॥१५॥ तदनन्तर मगधदेशके सम्राट् राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! वह किसकी गन्ध थी जिसने लक्ष्मणको आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥१६॥ तदनन्तर लोगोंकी चेष्टाओंको जाननेवाले, सन्देहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य एवं पापरूपी धूलिको उड़ानेके लिए वायुस्वरूप गणधर भगवान् बोले ॥१७॥ कि द्वितीय जिनेन्द्र श्री अजितनाथके समवसरणमें मेघवाहन नामका विद्याधर भयभीत होकर प्रभुकी शरणमें आया था । उस समय राक्षसोंके अधिपति बुद्धिमान् महाभीमेने कष्टनावश मेघवाहनके लिए इस प्रकार वर दिया था ॥१८-१९॥ कि हे मेघवाहन ! दक्षिण समुद्रमें एक विशाल राक्षस द्वाप है उसी द्वीपमें त्रिकूट नामका पर्वत है सो तू निश्चिन्त होकर उसी त्रिकूट पर्वतपर चला जा । वहां जम्बूद्वीपकी जगती (वेदिका) का आश्रय कर दक्षिण दिशामें राक्षसोंने एक लंका नामकी नगरी बसायी है । वहां ही तू निवास कर । हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य-गुप्त वार्ता और सुन । जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें लवण समुद्रके उत्तर तटका आश्रय कर पृथिवीके भीतर एक लम्बा-चौड़ा स्वाभाविक स्थान है जो योजनके आठवें भाग विस्तृत है । दण्डक पर्वतके गुफाद्वारसे नीचे जानेपर मणिमय तोरणोंसे देदीप्यमान एक महाद्वार मिलता है उसमें प्रवेश करनेपर अलंकारोदय नामका एक उत्कृष्ट सुन्दर नगर दिखाई देता है ॥२०-२५॥ वह नगर नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंके समूहसे सुशोभित है तथा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमें समर्थ है । आकाशमें गमन करनेवाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्यासे रहित मनुष्योंके लिए वह अत्यन्त दुर्गम है । वह सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित है तथा विविध प्रकारके भवनोंसे व्याप्त है ॥२६-२७॥ यदि कदाचित् तू आपत्तिके समय परचक्रके द्वारा आक्रान्त हो तो उस दुर्गका आश्रय कर निर्भय निवास करना ॥२८॥ इस प्रकार महाभीम

१. देवः । २. लक्ष्मणस्य । ३. भीताय । ४. मेघवाहनाय । ५. दुःखेन गन्तुं शक्यम् ।

राक्षसेन्द्रके कहनेपर जो विद्याधर बालक, लंकापुरी गया था उसीसे अनेक उत्तमोत्तम सन्तति उत्पन्न हुई ॥२९॥ जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो परम सुख है और मिथ्याकल्पित पदार्थोंका ग्रहण करना सो अत्यधिक दुःख है ॥३०॥ विद्याधरों और देवोंके बीच बुद्धिमान् मनुष्योंको शक्ति, कान्ति आदि गुणोंके कारण तिल तथा पर्वतके समान भारी भेद समझना चाहिए ॥३१॥ जिस प्रकार कीचड़ और चन्दन तथा पाषाण और रत्नमें भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवोंमें भेद है ॥३२॥ विद्याधर तो गर्भवासका दुःख भोगकर बादमें कर्मोदयकी अनुकूलतासे विद्यामात्रके धारक होते हैं । ये विद्याधरोंके श्लेष-विजयार्थ पर्वतपर तथा उनके योग्य कुलोंमें उत्पन्न होते हैं तथा आकाशमें चलते हैं इसलिए खेचर कहलाते हैं । परन्तु देवोंका स्वभाव ही मनोहर है ॥३३-३४॥ देव सुन्दर रूप तथा पवित्र शरीरके धारक हैं, गर्भवाससे रहित हैं, मांस-हड्डी तथा स्वेद आदिसे दूर हैं और टिमकार रहित नेत्रोंके धारक हैं ॥३५॥ वे वृद्धावस्था तथा रोगोंसे रहित हैं, सदा जीवनसे सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त, सुख और सौभाग्यके सागर, स्वाभाविक विद्याओंसे सम्पन्न, अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक, इच्छानुसार रूप रखनेवाले, धीर, वीर और स्वच्छन्द गतिसे विचरण करनेवाले हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! लंकामें रहनेवाले विद्याधर न देव हैं और न राक्षस हैं किन्तु राक्षस द्वीपकी रक्षा करते हैं इसलिए राक्षस कहलाते हैं ॥३८॥ अनेक युगान्तरोंके साथ उनके वंशका अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम-परम्परा-के अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है ॥३९॥ राक्षस आदि बहुत-से प्रयांसनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओंके व्यतीत हो चुकनेपर उसी वंशमें तीन खण्डका स्वामी रावण उत्पन्न हुआ है ॥४०॥ उसकी एक दुर्नखा पामकी बहन है जो पृथ्वीपर अपने सौन्दर्यकी उपमा नहीं रखती । उसने महाशक्तिशाली खरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥४१॥ अतिशय बलवान् खरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्योंका विश्वासप्राप्त सेनापति है ॥४२॥ वह दिक्कुमार-भवनवासि देवके समान उदार है । पृथ्वीके मध्यमें स्थित अलंकारपुर नामका नगर उस महाप्रतापीका निवास-स्थान है ॥४३॥ उसके शम्बूक और सुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । साथ ही वह अपने

१. रूपेण प्रतिमा म. ।

गुरुभिर्वार्यमाणोऽपि मृत्युपाशावलोकितः । शम्बुकः सूर्यहासार्थं प्राविशद्भीषणं वनम् ॥४५॥
 यथोक्तमाचरन् राजन्माराधयितुमुद्यतः । एकान्तभुग्विशुद्धात्मा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४६॥
 असंसाप्तोपयोगस्य यो मे दृष्टिपथे स्थितः । वध्योऽसाविति भाषित्वा वंशस्थलमुपाविशत् ॥४७॥
 दण्डकारण्यभागान्तं तां च क्रौंचरवां नदीम् । सागरस्योत्तरं तीरं संसृत्यासाववस्थितः ॥४८॥
 नीरवा द्वादशवर्षाणि ततोऽसावसिरुद्गतः । ग्राह्यः ससदिनं स्थित्वा हन्यात्साधकमन्यथा ॥४९॥
 कैकसेयी^१ सुतस्नेहाद्द्रष्टुमागात् क्षणे क्षणे । अपश्यच्चासिमुद्भूतं काले देवैरधिष्ठितम् ॥५०॥
 प्रसन्नवदना भर्तुर्विजगाद यथाविधि । शम्बुकस्य महाराज सिद्धं तद्योगकारणम् ॥५१॥
 आगमिष्यति मे पुत्रो मेहं कृत्वा प्रदक्षिणम् । अहोभिस्त्रिभिरद्यापि नियमो न समाप्यते ॥५२॥
 एवं मनोरथं सिद्धं दध्यौ चन्द्रनखा सदा । लक्ष्मणश्च तमुदेसं संप्राप्तः पर्यटन् वने ॥५३॥
 सहस्रामरपूज्यस्य सद्गन्धस्य स्वभावतः । अनन्तस्यादिहीनस्य खड्गरत्नस्य तस्य सः ॥५४॥
 दिव्यगन्धानुलिप्तस्य दिव्यस्वगन्धभूषितस्य च । गन्धो भास्करहासस्य लक्ष्मीधरमुपेयितान् ॥५५॥
 लक्ष्मणो विस्मयं प्राप्तः परित्यज्य क्रियान्तरम् । अथासीद् गन्धमार्गेण केसरीव भयोञ्जितः ॥५६॥
 अपश्यच्च तच्छृङ्गं प्रदेशमतिदुर्गमम् । लताजालावलीकृतं तुङ्गपाषाणवेष्टितम् ॥५७॥
 मध्ये च गहनस्यास्य सुसमं धरणीतलम् । विचित्ररत्ननिर्माणमर्चितं कनकाख्यजैः ॥५८॥
 मध्ये तरयापि विपुलं वंशस्तम्बं^२ समुत्थितम् । सौधममिव संद्रष्टुमविज्ञातकुतूहलम् ॥५९॥

सम्बन्धी रावणसे भी पृथ्वीपर गौरवको प्राप्त हुआ था ॥४४॥ जिसे मृत्युका फन्दा देख रहा था ऐसे शम्बुकने गुरुजनोके द्वारा रोके जानेपर भी सूर्यहास नामा खड्ग प्राप्त करनेके लिए भयंकर वन-में प्रवेश किया ॥४५॥ हे राजन् ! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड्गको प्राप्त करनेके लिए उद्यत हुआ । वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्माका धारक है, ब्रह्मचारी है और इन्द्रियोंको जीतनेवाला है, ॥४६॥ 'उपयोग पूर्ण हुए बिना जो मेरी दृष्टिके सामने आवेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा' इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वतपर वंशकी एक झाड़ीमें जा बैठा ॥४७॥ वह दण्डक वनके अन्तमें क्रौंचरवा नदी और समुद्रके उत्तर तटके बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है ॥४८॥ तदनन्तर बारह वर्ष व्यतीत होनेपर वह सूर्यहास नामा खड्ग प्रकट हुआ जो सात दिन ठहरकर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करनेवालेको ही मार डालता ॥४९॥ दुर्नखा (चन्द्रनखा) पुत्रके स्नेहसे उसे बार-बार देखनेके लिए उस स्थानपर आती रहती थी सो उसने उसी क्षण उत्पन्न उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्गको देखा ॥५०॥ जिसका मुख प्रसन्नतासे भर रहा था ऐसी दुर्नखाने अपने पति खरदूषणसे कहा कि हे महाराज ! मेरा पुत्र मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तीन दिनमें आ जायेगा क्योंकि उसका नियम आज भी समाप्त नहीं हुआ है ॥५१-५२॥ इस प्रकार इधर शम्बुककी माता चन्द्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथका सदा ध्यान कर रही थी उधर लक्ष्मण वनमें घूमते हुए उस स्थानपर जा पहुँचे ॥५३॥ एक हजार देव जिसकी पूजा करते थे, जिसकी स्वाभाविक उत्तम गन्ध थी, जिसका न आदि था न अन्त था, जो दिव्यगन्धसे लिप्त था और दिव्यमालाओंसे जो अलंकृत था ऐसे सूर्यहास नामक खड्गरत्नकी गन्ध लक्ष्मण तक पहुँची ॥५४-५५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्गसे गन्ध आ रही थी उसी मार्गसे सिंहके समान निर्भय हो चल पड़े ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने वृक्षोंसे आच्छादित, लताओंके समूहसे घिरा तथा ऊँचे-ऊँचे पाषाणोंसे वेष्टित एक अत्यन्त दुर्गम स्थान देखा ॥५७॥ इसी वनके बीचमें एक समान पृथ्वीतल था जो विचित्र-विचित्र रत्नोंसे बना था तथा सुवर्णमय कमलोंसे अर्चित था ॥५८॥ उसी समान धरातलके मध्यमें एक दाँतोंका विस्तृत स्तम्भ (भिड़ा) था जो किसी अज्ञात कुतूहलके कारण सौधमस्वर्गको

१. दुर्नखा, चन्द्रनखा । २. वंशस्तं वंशमुत्थितं म. (?) ।

अथान्ते तस्य निशिंशं विस्फुरत्करमण्डलम् । सकीचकवनं येन प्रदीप्तमिव लक्ष्यते ॥६०॥
 नष्टशङ्कस्तप्तमादाय लक्ष्मीमात्रावविस्मयः । जिज्ञासंस्तीक्ष्णतामस्य तं वेणुस्तम्बमचिलत् ॥६१॥
 गृहीतलायकं दृष्ट्वा तं सर्वास्तत्र देवताः । अस्माकं स्वाम्यसीत्युक्त्वा सनमस्यमपूजयन् ॥६२॥
 अथावोचत सीतेशः किंचिदस्माकुलक्ष्णः । सौमित्रिश्रियस्यद्य क नु यातो भविष्यति ॥६३॥
 मद्रोत्तिष्ठ जटायुः खं दूरमपत्य सदुतम् । लक्ष्मीधरकुमारस्य निपुणान्वेषणं कुरु ॥६४॥
 इत्युक्तः 'करणं यावत् करोत्युत्पतितुं खगः । अङ्गुलीं तावदायस्य जनकस्याङ्गमावद्वत् ॥६५॥
 अयं कुटुम्बपङ्केन निराज्ञो नाथ लक्ष्मणः । चित्रमास्याम्बरधरः समायाति स्वलंकृतः ॥६६॥
 गृहीतश्रायमेतेन मण्डलाग्नौ रुद्राग्रभः । राजतेऽत्यन्तमेतेन शैलः केसरिणा यथा ॥६७॥
 दृष्ट्वा तमीदृशं रामो विस्मयव्याप्तमानसः । अतः प्रमदं रोद्धुमुत्थाय परिसरब्जे ॥६८॥
 पृष्ठश्च लक्ष्मणः कृत्स्नं स्ववृत्तान्तमवेदयत् । स्थिताश्च ते विचित्राभिः संकथामिर्न्यासुखम् ॥६९॥
 दृष्ट्वा प्रतिदिनं खड्गं सुतं च नियमस्थितम् । यायासीत् सा दिने तस्मिन् कैरलेय्यागतैकका ॥७०॥
 अपश्यच्च विशाराणां वनं कुत्तमशेषतः । अस्मिन्त्यच्च यातः क पुत्रः स्थित्वाटवीनिमास ॥७१॥
 स्थितश्च यत्र संसिद्धमसिरत्नमिदं वनम् । छिन्दात्नेन परीक्षार्थं न युक्तं सुनुता कृतम् ॥७२॥
 तावच्चास्तस्थितादित्यमण्डलप्रतिमं शिरः । सत्कुण्डलं कवचं च ददर्श स्थापुमध्यगम् ॥७३॥

देखनेके लिए ही मानो ऊँचा उठा हुआ था ॥५९॥

अथानन्तर उस बाँसोंके स्तम्भमें देदीप्यमान किरणोंके समूहसे सुशोभित एक खड्ग दिखाई दिया जिससे बाँसोंके साथ-साथ समस्त वन प्रज्वलित-सा जान पड़ता था ॥६०॥ आश्चर्यचकित लक्ष्मणने निःशंक हो वह खड्ग ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसी वंशस्तम्भको उन्होंने काट डाला ॥६१॥ खड्गधारी लक्ष्मणको देखकर वहाँ सब देवताओंने 'आप हमारे स्वामी हो' यह कहकर नमस्कारके साथ-साथ उनकी पूजा की ॥६२॥

अथानन्तर जिनके नेत्र कुछ-कुछ आँसुओंसे भर रहे थे ऐसे रामने यह कहा कि आज लक्ष्मण बड़ी देर कर रहा है कहाँ गया होगा ? ॥६३॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही वाकाशमें दूर तक उड़कर लक्ष्मणकुमारकी अच्छी तरह खोज करो ॥६४॥ इस प्रकार रामके करुणापूर्वक कहनेपर जटायु उड़नेकी तैयारी करता है कि इतनेमें सीता अंगुली ऊपर उठाकर कहती है ॥६५॥ कि जिनका शरीर केशरकी पंक्से लित है, जो नाना प्रकारकी मालाओं और वस्त्रोंको धारण कर रहे हैं तथा जो अलंकारोंसे अलंकृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥६६॥ इन्होंने यह महादेदीप्यमान खड्ग ले रखा है और इससे ये सिंहासे पर्वतके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं ॥६७॥ लक्ष्मणको वैसा देख रामका मन आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा वे हर्षको रोकनेके लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्होंने उठकर उनका आलिंगन किया ॥६८॥ पृष्ठनेपर लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त बतलाया । इस तरह राम-लक्ष्मण और सीता—तीनों प्राणी नाना प्रकारकी 'कथाएँ' करते हुए मुखसे वहाँ ठहरे ॥६९॥

अथानन्तर जो चन्द्रनखा प्रतिदिन खड्गको तथा नियममें स्थित पुत्रको देख जातो थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आयी ॥७०॥ आते ही उसने बाँसोंके उस समस्त वनको सब ओरसे कटा देखा । वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवीमें रहकर अब कहाँ चला गया ? ॥७१॥ जिस वनमें यह रहा तथा जहाँ यह खड्ग रत्न सिद्ध हुआ परीक्षाके लिए उसी वनको काटते हुए पुत्रने अच्छा नहीं किया ॥७२॥ इतनेमें ही उसने अस्ताम्वलपर स्थित सूर्यमण्डलके समान निष्प्रभ, तथा कुण्डलोंसे युक्त शिर और एक ठूँठके बीच पड़ा हुआ पुत्रका धड़ देखा ॥७३॥

१. करणं म. । २. तावत् अङ्गुलीं आयस्य उत्पानखेदेन युक्तं कृत्वा । ३. वंशानाम् । ४. छिन्नम् ।

उपकारः कृतस्तस्याः परमो मूर्च्छया क्षणम् । पुत्रमृत्युसमुत्थेन यज्ञ दुःखेन पीडिता ॥७४॥
 ततः संज्ञां समायाग हाकारमुखरं मुखम् । उक्षिप्य कृच्छ्रतो दृष्टिं तत्र सूर्यन्यपातयत् ॥७५॥
 विलाप च शोकार्ता नन्दनकुलेक्षणा । कुररीवैकिकारणे हृदयाघातकारिणी ॥७६॥
 सिंघो द्वादशवर्षाणि दिनानां च चतुष्टयम् । पुत्रो मे हा परं क्षान्तं न विधे दिवसत्रयम् ॥७७॥
 कृतान्तापकुलं किं ते मया परमनिष्ठुर । येन दृष्टनिधिः पुत्रः सहसा विनिपातितः ॥७८॥
 अपुत्र्यया मया नृमन्यजन्यानि बालकः । कस्या अपहृतो मृत्युं तत्प्रत्यागतमथ ते ॥७९॥
 अयसि पुत्र जातोऽसि कथमेतां स्थितिं गतः । ईदृशोऽपि प्रयच्छैकीं वाचमार्गिक्याशिनीम् ॥८०॥
 मृतिं वत्स भिजे कर्पं पतिवत् मनोहरम् । असन्नलपिदं मायादीप्तं न निरागते ॥८१॥
 स्फुटं आतोऽसि हा वत्स परलोके विधेर्वशात् । अन्यथा चिन्तितं कार्यमिदमुत्पन्नजन्यया ॥८२॥
 अदुष्टितं त्वया मृतुः प्रतिकूलं च जातुचित् । अयुता कारयोन्मु तं किमिदं विनयोजितम् ॥८३॥
 संसिद्धसूर्यहासश्चेदजीविष्यस्त्वमत्र ते । वत्सास्यत् कः पुते लोके चन्द्रहासवृत्तो यथा ॥८४॥
 अजता चन्द्रहासेन पदं मम सहोदरे । सूर्यहासस्य न क्षान्तं नृत्प्राप्यविरोधिनः ॥८५॥
 पृक्तं भीषणेऽरण्ये निर्दोषं शियमस्थितम् । कुशलोः कस्य हन्तुं स्वां गूढस्य प्रसूतः कः ॥८६॥
 अक्षीर्षोऽपि क्षिता तेन अवन्तं निष्पद्योदिता । क गनिष्यति पापोऽन्यौ सांप्रतं हतचेतयः ॥८७॥
 विहापमिति कुयोणां कृत्वाङ्कं सुगमुत्तमम् । लुप्त्ये विदुमन्त्रायलोचना कसंगतम् ॥८८॥

उसी क्षण मूर्च्छति उसका परम उपकार किया जिससे पुत्रकी मृत्युसे उत्पन्न दुःखसे वह पीड़ित नहीं हुई । सचेत होनेपर हाहाकारसे मुखर शिर ऊपर उठाकर उसने बड़ी कठिनाईसे पुत्रके शिरपर दृष्टि डाली ॥७४-७५॥ झरते हुए आँसुओंसे जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी छाती कूट रही थी ऐसी ओकसे पीड़ित चन्द्रनखा, वनमें अकेली कुररीके समान विलाप करने लगी ॥७६॥ मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा । हाय दैव ! इसके आगे तूने तीन दिन सहन नहीं किये ॥७७॥ हे अतिशय निष्ठुर दैव ! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिससे पुत्रको निधि दिखाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥७८॥ निश्चय ही मुझ पापिनीने अन्य जन्ममें किसीका पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥७९॥ हे पुत्र ! तू मुझसे उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशाको कैसे प्राप्त हो गया ? अथवा इसी अवस्थामें तू दुःखको दूर करनेवाला एक वचन तो मुझे दे—एक बार तो मुझसे बोल ॥८०॥ आओ वत्स ! अपना मनोहर रूप धरकर आओ । यह तेरी अमंगल रूप छलक्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥८१॥ हाय वत्स ! भाग्यवत् तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है । यह कार्य अन्य प्रकारसे सोचा था और अन्य प्रकार हो गया ॥८२॥ तूने कभी भी माताके प्रतिकूल कार्य नहीं किया है अब यह अकारण विनयका त्याग क्यों कर रहा है ? ॥८३॥ सूर्यहास खड्ग सिद्ध होनेपर यदि तू जीवित रहेगा तो इस संसारमें चन्द्रहाससे आवृत्तकी तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खड़ा हो सकेगा ? ॥८४॥ चन्द्रहास खड्ग मेरे भाईके पास है सो जान पड़ता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास खड्गको सहन नहीं किया है ॥८५॥ तू इस भयंकर वनमें अकेला रहकर नियमका पालन करता था किसीका कुछ भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्ख दुष्ट शत्रुका हाथ तुझे मारनेके लिए आगे बढ़ा ? ॥८६॥ तुम्हें मारते हुए उस शत्रुने शीघ्र ही प्रकट होनेवाली अपनी उपेक्षा प्रकट की है । अब वह अविचारो पापी कहाँ जायेगा ? ॥८७॥ इस प्रकार उसम पुत्रको गोदमें रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र मूँगाके समान लाल हो गये थे ऐसी चन्द्रनखाने हाथमें लेकर पुत्रका चुम्बन किया ॥८८॥

१. पुत्रमृत्युसमुत्थेन दुःखेन परिपीडिता म. । २. हे दैव ! । ३. दृष्टनिधिः म. । ४. विनयोजितम् म. ।

ततः क्षणात् परिस्थित्य शोकं नष्टास्त्रसंततिः । गृहीत्वा परमं क्रोधमुत्थाय स्फुरितानना ॥८९॥
 संचरन्ती तमुद्देशं स्वैरं मार्गानुलक्षितम् । निरैक्षत युवानौ तौ चित्तबन्धनकारिणौ ॥९०॥
 विनाशमगमत्तस्याः क्रोधोऽसौ तादृशोऽपि सन् । आदेश इव तस्याभूत् स्थाने रागरसः परः ॥९१॥
 ततोऽचिन्तयदेताभ्यां नराभ्यामभिलाषिणम् । वृणोमि नरमित्युच्चैरुर्मिकं दधती मनः ॥९२॥
 इति संचिन्त्य संसाधुकन्याकल्पं समाश्रिता । हृदयेनातुरात्यन्तं भावगह्वरवर्तिना ॥९३॥
 हं पीव पद्मिनीखण्डे महिषीव महाद्रुहे । सस्ये सारङ्गबालेव तत्राभूत् साभिलाषिणी ॥९४॥
 भञ्जनं करशाखानां कुर्वन्ती स्फुटनिस्वनम् । उपविश्य किलोद्विग्ना पुत्रागस्य तलेऽरुन् ॥९५॥
 अतिदीप्तकृतारावां धूमरां वनरेणुना । दृष्ट्वा तां रामरमणी कृपावष्टब्धमानसा ॥९६॥
 उत्थायान्तिकमागत्य करामर्शनतत्परा । मा भैषीरिति भाषित्वा गृहीत्वा पाणिपल्लवे ॥९७॥
 किञ्चित् किल त्रपाभाजं मलिनांशुकधारिणीम् । सान्त्वयन्ती शुभैर्वाक्यै रमणान्तिकमानयत् ॥९८॥
 ततः पद्मो जगादैतां का त्वं श्वापदसेविते । एकाकिनी वने कन्ये चरसीहातिदुःखिता ॥९९॥
 ततः संभाषणं प्राप्य स्फुटं तामरसेक्षणा । जगाद् भ्रमरौघस्य वाचानुकृतिमेतया ॥१००॥
 पुरुषोत्तम मे माता निःसंज्ञायां मृतिं गता । तन्नवेव च शोकेन तातोऽपि विदिपातितः ॥१०१॥
 साहं शूर्तकृतात् पापाद् बन्धुभिः परिवर्जिता । प्रविष्टा दण्डकारण्यं वैराग्यं दधती परम् ॥१०२॥
 पश्य पापस्य माहात्म्यं यद्वाञ्छन्त्यपि पञ्चताम् । अरण्येऽस्मिन् महामोमे न्यालैरपि विवर्जिता ॥१०३॥

तदनन्तर क्षण एकमें शोक छोड़कर वह उठी । उसके अश्रुओंकी धारा नष्ट हो गयी और तीव्र क्रोध धारण करनेसे उसका मुख दमकने लगा ॥८९॥ वह मार्गके समीपमें ही स्थित उस स्थानपर इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी । उसी समय उसने चित्तको बांधनेवाले दोनों तरुण—राम-लक्ष्मणको देखा ॥९०॥ उन्हें देखते ही उसका वैसा तीव्र क्रोध नष्ट हो गया और आदेशके समान उसके स्थानपर परम रागरूपी रस आ जमा ॥९१॥ इसके बाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनों पुरुषोंमेंसे मैं अपने इच्छुक पुरुषको वहाँगी इस प्रकार उसके मनमें ऊँची तरंगें उठने लगीं ॥९२॥ ऐसा विचार कर वह कन्याभावको प्राप्त हुई । वह उस समय भावरूपी गुफामें वर्तमान हृदयसे अत्यन्त आतुर हो रही थी ॥९३॥ जिस प्रकार हंसी कमलिनीके झुण्डमें, महिषी (भैंस) महासरोवरमें और हरिणी धान्यमें अभिलाषासे युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम-लक्ष्मणमें अभिलाषासे युक्त हो गयी ॥९४॥ वह हाथकी अंगुलियाँ चटखाती हुई भय-भीत मुद्रामें पुत्राग वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगी ॥९५॥ जो अत्यन्त दीन शब्द कर रही थी, तथा वनकी धूलिसे धूसरित थी ऐसी उस कन्याको देख सीताका हृदय दयासे द्रवीभूत हो गया ॥९६॥ वह उठकर उसके पास गयी तथा शरीरपर हाथ फेरने लगी । तदनन्तर 'डरो मत' यह कहकर उसका हाथ पकड़कर पतिके पास ले आयी । उस समय वह कुछ-कुछ लज्जित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्रको धारण किये हुई थी । सीता उसे शुभ वचनोंसे सान्त्वना दे रही थी ॥९७-९८॥

तदनन्तर रामने उससे कहा कि हे कन्ये ! जंगली जानवरोंसे भरे इस वनमें अतिशय दुःखसे युक्त तू कौन अकेली विचरण कर रही है ? ॥९९॥ तदनन्तर सम्भाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमलके समान खिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमरसमूहका अनुकरण करनेवाली वाणीसे बोली ॥१००॥ कि हे पुरुषोत्तम ! मूर्च्छा आनेपर मेरी माता मर गयी और उसके उत्पन्न शोकसे पिता भी मर गये ॥१०१॥ इस तरह पूर्वोपाजित पापके कारण बन्धुजनोंसे रहित हो परम वैराग्य-को धारण करती हुई मैं इस दण्डकवनमें प्रविष्ट हुई थी ॥१०२॥ पापका माहात्म्य तो देखो कि

१. मच्छायस्फुरितानना (?) म. । २. यथा व्याकरणे कस्यचित् स्थाने कश्चित् आदेशो भवति तद्वत् । ३. सीता ।

चिरान्मानुषनिर्मुक्ते अगन्त्यास्मिन् वने मया । भवन्तः साधवो दृष्टाः क्षयात् पापस्य कर्मणः ॥१०४॥
 जनोऽधिदितपूर्वो यो जने वध्नाति सौहृदम् । अनादृतश्च सामीप्यं व्रजति त्रययोजितः ॥१०५॥
 अनादृतः प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः । उत्पादयति विद्वेषं कस्य नासौ क्रमोजितः ॥१०६॥
 एवंभूतापि नो 'यावत्प्राणान् मुञ्चामि' सुन्दर । तावदवैव मामिच्छ दुःखितायां दयां कुरु ॥१०७॥
 न्यायेन संगतां साध्वीं सर्वोपलववर्जिताम् । को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितिम् ॥१०८॥
 श्रुत्वा तद्वचनं तस्यास्त्रपया परिवर्जितम् । परस्परं समालोक्य स्थितौ तूष्णीं नरोत्तमौ ॥१०९॥
 सर्वशास्त्रार्थबोधाभ्युक्षालितं हि तयोर्मनः । कृत्याकृत्यविवेकेषु मलमुक्तं प्रकाशते ॥११०॥
 निर्मुक्तदुःखनिश्वासं गच्छामीति तयोर्दिते । पद्मनाभादिभिः सोक्ता यथेष्टं क्रियतामिति ॥१११॥
 तस्यां प्रयातमात्रायां तदाशालीनताहृतौ । ससीतौ चिस्मितौ वीरौ स्मरवन्तौ बभूवतुः ॥११२॥
 अन्तर्हृत्य च संक्रुद्धा संसुप्तस्य त्वरावती । याता चन्द्रनखा धाम निजं शोकसमाकुला ॥११३॥
 शोभयापहतस्तस्या लक्ष्मणस्तरलेक्षणः । पुनरालोकनाकाङ्क्षो विरहादाकुलोऽभवत् ॥११४॥
 'उत्थायान्यापदेशेन राक्षदेवसकाशतः । अटवीं पादपद्माभ्यां वभ्रामान्वेषणातुरः ॥११५॥
 अचिन्तयच्च खिन्नात्मा वाष्पव्याकुललोचनः । आत्मन्यनादृतप्रतिरिति तत्प्रेमनिर्भरः ॥११६॥
 रूपवीवनलादण्यगुणपूर्णा वनस्तवी । मदनाविष्टनानेन्द्रवनितासमगामिनी ॥११७॥
 आयान्त्येव सती कस्माद्दृष्टमात्रा न सा मया । स्तवोपपीडनाश्लेषं परिख्याता हतात्मना ॥११८॥

मैं यद्यपि मृत्युकी इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयंकर वनमें दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते हैं ॥१०३॥ चिरकालसे इस निर्जन वनमें भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्मके क्षयसे आज आप सज्जनों-के दर्शन किये हैं ॥१०४॥ जो पहलेका अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्यसे मैत्रीभाव प्रकट करता है, बिना बुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा बिना आदरके शून्यचित्त हो अधिक भाषण करता है वह क्रमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता ? ॥१०५-१०६॥ ऐसी होनेपर भी हे सुन्दर ! जबतक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तबतक आज ही मुझे चाहो, मेरी इच्छा करो मुझ दुःखिनीपर दया करो ॥१०७॥ जो न्यायसे संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकारकी बाधाओंसे रहित है, तथा जिसकी कल्याणरूप प्रकृति है ऐसी कन्याको इस संसारमें कौन नहीं चाहता ? ॥१०८॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए चुप रह गये ॥१०९॥ समस्त शास्त्रोंके अर्थज्ञानरूपी जलसे धुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्यमें अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥११०॥ दुःख-भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मैं जाती हूँ तब राम आदिने उत्तर दिया कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' ॥१११॥ उसके जाते ही उसकी अकुलीनतासे प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीताके साथ आश्चर्यसे चकित हो हँसने लगे ॥११२॥

तदनन्तर शोकसे व्याकुल चन्द्रनखा मनमार क्रुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गयी ॥११३॥ लक्ष्मण उसकी सुन्दरतासे हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चंचल हो रहे थे । वे उसे पुनः देखनेकी इच्छा करते हुए विरहसे आकुल हो गये ॥११४॥ वे किसी अन्य कार्यके बहाने रामके पाससे उठकर चन्द्रनखाकी खोजमें व्यग्र होते हुए पैदल ही वनमें भ्रमण करने लगे ॥११५॥ जिनका हृदय अत्यन्त खिन्न था, जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषयमें प्रकट हुए चन्द्रनखाके प्रेमकी उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार

१. भूतापितो (?) म. । २. मुञ्चति म. । ३. तस्यः अशालीनता अकुलीनता तथा हृतौ । ४. उत्थायान्याप-
 देशेन म. । अन्यव्याजेन ।

^१अयोगमोहितं चेतश्च्युतं कर्तव्यवस्तुनः । सांप्रतं शोकशिखिना दह्यते मे निरङ्कुशम् ॥११९॥
जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत् । यूथभ्रष्टा मृगीवेयं कुतः प्राप्ता सुलोचना ॥१२०॥
संचिन्त्येति कृतभ्रान्तिस्तामपश्यन् समाकुलः । मेने तद्वनमाकाशपुष्पतुल्यं समन्ततः ॥१२१॥

मालिनीवृत्तम्

अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन हीनं न खलु विमलचित्तैः कार्यमारम्भणीयम् ।
अविषयकृतचित्ता तत्समासक्तिमुक्ता दधति परमशोकं बालवद्वुद्धिहीनाः ॥१२२॥
किमिदमिह मनो मे किं नियोज्यं तदिष्टं कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः ।
इति कृतमतिरुच्यैर्विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गं ॥१२३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शम्भूकवधाभिख्यानं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४३॥



करने लगे कि जो रूप-यौवन-सौन्दर्य तथा अनेक गुणोंसे परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनीके समान चलती थी ऐसी उस सतीका मैंने आने तथा दिखनेके साथ ही स्तनोंको पीड़ित करनेवाला आलिंगन क्यों नहीं किया ॥११६-११८॥ उसके वियोगसे मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु—करने योग्य कार्यसे च्युत होता हुआ इस समय शोकरूपी अग्निके द्वारा निर्वाध रूपसे जल रहा है ॥११९॥ वह किस देशमें उत्पन्न हुई है । किसकी पुत्री है ? यह उत्तम नेत्रोंकी धारक झुण्डसे बिलुड़ी हरिणोंके समान यहाँ कहाँसे आयी थी ? ॥१२०॥ इस प्रकार विचारकर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे तथा उसे न देखकर जो अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे लक्ष्मणने उस वनको सब ओरसे आकाशपुष्पके समान माना था ॥१२१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंको इस तरह परमार्थके जाने बिना निरर्थक कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिए । क्योंकि जो बालकोंके समान निर्वुद्धि मनुष्य अयोग्य विषयमें चित्त लगाते हैं वे उसकी प्राप्तिसे रहित हो परम शोकको धारण करते हैं ॥१२२॥ 'यह क्या है ? इसमें मुझे मन क्यों लगाना चाहिए ? वह इष्ट क्यों है ? और करने योग्य कार्यका अनुसरण करनेवाले मनुष्य ही सुख-शान्ति प्राप्त कर पाते हैं' इस प्रकार विचारकर जो उत्कृष्ट विवेकका कर्ता होता है वह सूर्यकी तरह निर्मल होता हुआ लोकके मार्गमें सुशोभित होता है ॥१२३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें शम्भूकके वधका वर्णन करनेवाला तैत्तलीत्रयां पर्व समाप्त हुआ ॥४३॥



चतुश्चन्द्रारिंशत्तमं पत्रं

अनिच्छयाथ विध्वस्ते^१ खरवत्सा मनोभवे । दुःखपूरः पुनः प्राप्तो भग्नरोधो^२ यथा नदः ॥१॥
 तकार व्याकुलीभूता विविधे परिदेवनम् । शोकपावकतसाक्षा विवस्त्रा^३ बहुला यथा ॥२॥
 वहन्ती चापमानं तं क्रोधदैन्यस्थमानसा । विगलद्भूरिनेत्रास्त्रुत^४ पणेन निरक्षयत ॥३॥
 तां विनष्टानि दृष्ट्वा धरणीधूलिधूमराम् । प्रकीर्णकेशसंमारां शिथिलीभूतमेखलाम् ॥४॥
 नखत्रिशतकश्लोरुकुचक्षणां सशोणिताम् । कर्णामरगनिर्मुक्तां हारलावण्यवर्जिताम् ॥५॥
 विच्छिन्नकञ्चुकां भ्रष्टस्वभावतनुतेजसम् । आलोडितां गजेनेव नलिनीं^५ मदवाहिना ॥६॥
 पप्रच्छ परिस्तान्त्र्यैव कान्ते शीघ्रं निवेदय । अवस्थामिभकां केन प्रापितासि दुरात्मनः ॥७॥
 अद्येन्दुरष्टमः कस्य मृत्युना कोऽवलोकितः । गिरेः स्वपिति कः शृङ्गे मूढः प्रीडति कोऽहिना ॥८॥
 कोऽन्धः कृपं समापन्नो दैवं कस्याशुभावहम् । मत्क्रोधाग्नावयं दीप्ते शलभः कः पतिष्यति ॥९॥
 धिक् तं पशुसमं पापं विवेकत्यक्तमानसम् । अपवित्रसमाचारं लोकद्वितयदूषितम् ॥१०॥
 अलं रुदित्वा नान्येव काचित्त्वं प्राकृतावला । स्पृष्ट्वा येनासितं शंस चाडवाग्निशिखासमा ॥११॥
 अद्यैव तं दुराचारं कृत्वा हस्ततलाहतम् । नेत्ये प्रेतगतिं सिंहो यथा नागं निरंकुशम् ॥१२॥
 एवमुक्ता विसृज्यासौ रुदितं कृच्छ्रतः परात् । अस्रक्लिन्नललाच्छन्नगण्डागादीत् सगद्गदम् ॥१३॥

अथानन्तर जब अनिच्छासे चन्द्रनखाका काम नष्ट हो गया तब तटको भग्न करनेवाले नदके समान दुःखका पूर उसे पुनः प्राप्त हो गया ॥१॥ जिसका शरीर शोकरूपी अग्निसे सन्तप्त हो रहा था ऐसी चन्द्रनखा, मृतवत्सा गायके समान व्याकुल होकर नाना प्रकारका विलाप करने लगी ॥२॥ जो पूर्वोक्त अपमानको धारण कर रही थी, जिसका मन क्रोध और दीनतामें स्थित था तथा जिसके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे ऐसी चन्द्रनखाको खरदूषणने देखा ॥३॥ जिसका वैर्य नष्ट हो गया था, जो पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थी, जिसके केशोंका समूह बिखरा हुआ था, जिसकी मेखला ढीली हो गयी थी, जिसकी बगलों, जाँघों तथा स्तनोंकी भूमि नखोंसे विक्षत थी, जो रुधिरसे युक्त थी, जिसके कर्णभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्यसे रहित थी, जिसकी चोली फट गयी थी, जिसके शरीरका स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो मदोन्मत्त हाथीके द्वारा मर्दित कमलिनीके समान जान पड़ती थी ऐसी चन्द्रनखाको सान्त्वना देकर खरदूषणने पूछा कि हे प्रिये ! शीघ्र ही बताओ तुम किस दुष्टके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त करायी गयी हो ? ॥४-७॥ आज किसका आठवां चन्द्रमा है ? मृत्युके द्वारा कौन देखा गया है ? पहाड़की चोटीपर कौन सो रहा है और कौन मूर्ख सर्पके साथ क्रीड़ा कर रहा है ? ॥८॥ कौन अन्धा कुएँमें आकर पड़ा है ? किसका देव अशुभ है ? और मेरी प्रज्वलित क्रोधाग्निमें कौन पतंग बनकर गिरना चाहता है ? ॥९॥ जिसका मन विवेकसे रहित है, जो अपवित्र आचरण करनेवाला है और जिसने दोनों लोकोंको दूषित किया है उस पशुतुल्य पापीको धिक्कार है ॥१०॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण स्त्रीके समान थोड़े ही हो । वडवानलकी शिखाके समान जिसने तुम्हें छुआ है उसका नाम कहो ॥११॥ निरंकुश हाथीको सिंहके समान मैं आज ही उसे हस्ततलसे पीसकर यमराजके घर भेज दूँगा ॥१२॥ इस प्रकार कहनेपर कड़े कष्टसे रोना छोड़कर वह गद्गद वाणीमें बोली । उस समय उसके कपोल

१. चन्द्रनखायाः । २. भग्नरोधो, भग्नं रोधो यस्यासौ । भग्नरोधो म. । ३. गौरिव । ४. मदवाहिनी म. ।

वनान्तरस्थितं पुत्रं द्रष्टुं यातास्मि स्मंप्रतम् । अपश्यन्तं च केनापि प्रत्यग्रच्छिन्नमूर्धकम् ॥१४॥
 ततः शोणितधाराभिर्निःसृताभिर्निरन्तरम् । प्रदीप्तमिव तन्मूले लक्ष्यते कीचकस्थलम् ॥१५॥
 प्रशान्ताऽवस्थितं हत्वा मे केनापि सुपुत्रकम् । खड्गरत्नं समुत्पन्नं प्राप्तं पूजासमन्वितम् ॥१६॥
 साहं दुःखसहस्राणां भाजनं भाग्यवर्जिता । तन्मूर्धनं निधायाङ्गे विप्रलपं प्रसेविता ॥१७॥
 तावच्च तेन दुष्टेन शम्बूकवधकारिणा । उपगूढास्मि बाहुभ्यां कर्तुं किमपि वाञ्छिता ॥१८॥
 उक्तोऽपि मुञ्च मुञ्चेति घनस्पर्शवशज्जतः । न मुञ्चति हतात्मा मां कोऽपि नीचकुलोद्गतः ॥१९॥
 नखैर्विलुप्य दन्तैश्च तेनाहं विजने वने । पृथिकां प्रापितावस्थां क्वाबला क पुमान् बली ॥२०॥
 तथापि पुण्यशेषेण केनापि परिरक्षिता । अविखण्डितचारित्रा कृच्छ्राद्य निःसृता ततः ॥२१॥
 सर्वविद्याधराधीशस्त्रिलोकक्षोभकारणः । भ्राता मे रावणः ख्यातः शक्रेणाप्यपराजितः ॥२२॥
 खरदूषणनामा त्वं भर्ता कोऽपि विवर्ण्यसे । संप्राप्तास्मि तथाप्येतामवस्थां दैवयोगतः ॥२३॥
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकक्रोधसमाहतः । स्वयं महाजवो गत्वा दृष्ट्वा व्यापादितं सुतम् ॥२४॥
 संपूर्णन्दुसमानोऽपि पूर्वसारङ्गलोचनः । बभूव मीषणाकारो मध्यग्रीष्मार्कसंज्ञिमः ॥२५॥
 भागतश्च हुतं भूयः प्रविश्य भवनं निजम् । सुहृद्भिः सहितश्चक्रे स्वल्पकालप्रधारणम् ॥२६॥
 तत्र केचिद्भुतं प्रोचुः सचिवाः कर्कशाशयाः । राजकीयमभिप्रायं बुद्ध्वा सेवापरायणाः ॥२७॥
 शम्बूकः साधितो येन खड्गरत्नं च हस्तितम् । असावुपेक्षितो राजन् वद किं न करिष्यति ॥२८॥

आंसुओंसे भोग रहे थे तथा बिखरे हुए बालोंसे आच्छन्न थे ॥१३॥ उसने कहा कि मैं अभी वनके मध्यमें स्थित पुत्रको देखनेके लिए गयी थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने काट डाला है ॥१४॥ निरन्तर निकली हुई रुधिरकी धाराओंसे वंशस्थलका मूल भाग अग्निसे प्रज्वलितके समान दिखाई देता है ॥१५॥ शान्तिसे बैठे हुए मेरे सुपुत्रको किसीने मारकर पूजाके साथ-साथ प्राप्त हुआ वह खड्गरत्न ले लिया है ॥१६॥ जो हजारों दुःखोंका पात्र तथा भाग्यसे हीन है ऐसी मैं पुत्रके मस्तकको गोदमें रखकर विलाप कर रही थी ॥१७॥ कि शम्बूकका वध करनेवाले उस दुष्टने दोनों भुजाओंसे मेरा आलिंगन किया तथा कुछ अनर्थ करनेकी इच्छा की ॥१८॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कुलोत्पन्न पुरुष था इसलिए गाढ़ स्पर्शके वशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥१९॥ उसने उस निर्जन वनमें नखों तथा दांतोंसे छिन्न-भिन्न कर मुझे इस दशाको प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिए कि अबला कहाँ और बलवान् पुरुष कहाँ ? ॥२०॥ इतना सब होनेपर भी किसी अवशिष्ट पुण्यने मेरी रक्षा की और मैं चारित्र्यको अखण्डित रखती हुई बड़े कष्टसे आज उससे बचकर निकल सकी हूँ ॥२१॥ जो समस्त विद्याधरोंका स्वामी है, तीन लोकके क्षोभका कारण है, और इन्द्र भी जिसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम खरदूषण नामधारी अद्भुत पुरुष मेरे भर्ता हो फिर भी दैवयोगसे मैं इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ ॥२२-२३॥

तदनन्तर चन्द्रनखाके वचन सुनकर शोक और क्रोधसे ताड़ित हुए महावेगशाली खरदूषणने स्वयं जाकर पुत्रको मरा देखा ॥२४॥ यद्यपि वह पहले मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाला और पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था तो भी पुत्रको मरा देख ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन सूर्यके समान भयंकर हो गया ॥२५॥ उसने शीघ्र ही वापस आकर और अपने भवनमें प्रवेश कर मित्रोंके साथ स्वल्पकालीन मन्त्रणा की ॥२६॥ उनमेंसे कठोर अभिप्रायके धारक तथा सेवामें तत्पर रहनेवाले कितने ही मन्त्री राजाका अभिप्राय जानकर शीघ्र हो कहने लगे कि जिसने शम्बूकको

अचुरन्ये विवेकस्था नाथ नेदं लघुक्रियम् । सामन्तान् दौक्याशेषान् रावणाय च कथ्यताम् ॥२९॥
 यस्यासिरत्नमुत्पन्नं सुसंध्यः स कथं भवेत् । तस्मात् संघातकार्येऽस्मिन्स्वरां कर्तुं न युज्यते ॥३०॥
 गुरवाक्यानुरोधेन राक्षसाधिपसंचिदे । दूतः संप्रेषितस्तेन युवा लङ्कां महाजवः ॥३१॥
 राजधैर्यात् कुतोऽप्येष चिरं यावदवस्थितः । रावणस्यान्तिके दूतः कार्यसाधनतत्परः ॥३२॥
 तीव्रक्रोधपरीतात्मा तावच्च खरदूषणः । अभ्राष्ट पुनः पुनगुणप्रेषितमानसः ॥३३॥
 मायाविनिहतैः क्षुद्रैर्जन्तुभिर्मृगिणोचरैः । दिव्यसेनार्णवः क्षुब्धस्तरितुं नैव शक्यते ॥३४॥
 धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छसि । द्वितीयोऽपि कथं बाहुरिष्यते मम बाहुना ॥३५॥
 हस्त्युत्त्वा परमं विश्रद्धभिमानं त्वशान्वितः । उत्पपात सुहृन्मध्यादाकाशं स्फुरितानसः ॥३६॥
 तयोक्तान्तरं दृष्ट्वा सन्नद्धानि क्षणान्तरे । चतुर्दशसहस्राणि सुहृदो निर्गन्तुः पुरात् ॥३७॥
 तस्य राक्षससैन्यस्य श्रुत्वा वादिप्रतिस्वनम् । क्षुब्धसागरदिर्घोषं पैथिलीं तप्तमागता ॥३८॥
 किं किमेतद्दहो नाथ प्राप्तमिदमुद्गतस्वयः । अलिङ्गयिस्व जावेशं वल्ली कण्ठतरुं यथा ॥३९॥
 न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं इति तां परिग्रह्य स्वः । अभिन्तयदर्थं कस्य भवेच्छब्दः सुहृद्भरः ॥४०॥
 रवः किमेष सिंहस्य भवेज्जलधरस्य वा । आहोस्विदुःखुनाथस्य पूर्यत्यखिलं वनः ॥४१॥
 उवाच च प्रिये नूतनप्री चतुरगान्वितः । नादिनः प्रथमपक्षा राजहंसा नमोऽङ्गणे ॥४२॥

मारा है तथा खड्गरत्न हथिया लिया है । हे राजन् ! यदि उसकी उपेक्षा की जायेगी तो वह क्या नहीं करेगा ? ॥२७-२८॥ कुछ विवेकी मन्त्री इस प्रकार बोले कि हे नाथ ! यह कार्य जल्दी करने-का नहीं है इसलिए सब सामन्तोंकी बुलाओ और रावणकी भी खबर दी जाये ॥२९॥ जिसे खड्गरत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक वशमें कैसे किया जा सकता है ? इसलिए मिलकर समूहके द्वारा करने योग्य इस कार्यमें उतावली करना ठीक नहीं है ॥३०॥

तदनन्तर उसने गुरुजनोंके वचनोंके अनुरोधसे रावणकी खबर देनेके लिए एक तरुण तथा वेगशाली दूत लंकाको भेजा ॥३१॥ उधर कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहनेवाला वह दूत, किसी राज्यधैर्यके कारण चिर काल तक रावणके पास बैठा रहा ॥३२॥ इधर तीव्र क्रोधसे जिसकी आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्रके गुणोंमें बार-बार जा रहा था ऐसा खरदूषण पुनः बोला कि मायासे रहित शुद्ध भूमिगोचरी प्राणियोंके द्वारा, क्षोभको प्राप्त हुआ दिव्य सेनारूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥३३-३४॥ हमारी इस श्रवीरताको धिक्कार है जो अन्य सहायकोंकी वांछा करती है । मेरी वह भुजा किस कामकी जो अपनी ही दूसरी भुजाकी इच्छा करती है ॥३५॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमानकी धारण कर रहा था तथा क्रोधके कारण जिसका मुख कम्पित हो रहा था ऐसा क्षीघ्रतासे भरा खरदूषण मित्रोंके बीचसे उठकर आकाशमें जा उड़ा ॥३६॥ उसे हठमें तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहलेसे तैयार थे क्षण भरमें नगरसे बाहर निकल पड़े ॥३७॥ राक्षसोंकी उस सेनाके, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान शब्दवाले वादित्रोंका शब्द सुनकर सीता खचकी प्राप्त हुई ॥३८॥ हे नाथ ! यह क्या है ? क्या है ? इस प्रकार शब्दोंका उच्चारण करती हुई वह भर्तारसे उस प्रकार लिपट गयी जिस प्रकार कि लता कल्प वृक्षसे लिपट जाती है ॥३९॥ 'नहीं डरना चाहिए, नहीं डरना चाहिए' इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर रामने विचार किया कि यह अत्यन्त दुर्घर शब्द किसका होना चाहिए ? ॥४०॥ क्या यह सिंहका शब्द है या मेघकी ध्वनि है अथवा समुद्रकी गर्जना समस्त आकाशको व्याप्त कर रही है ॥४१॥ उन्होंने सीतासे कहा कि हे प्रिये ! जान पड़ता है ये मनोहर गमन करनेवाले तथा पंखोंको

किं वा दुष्टद्विजाः केचिदन्ये त्वद्भयकारिणः । समर्पय प्रिये चापं प्रलयं प्रापयाम्यमूर्त् ॥४३॥
 अथासन्नत्वमागच्छद् विविधायुधसंकुलम् । वातेरिताम्रवृन्दाभं निरीक्ष्य सुमहद्वलम् ॥४४॥
 जगाद राघवः किं नु नन्दीश्वरममी सुराः । जिनेन्द्रान् वन्दितुं मक्तया प्रस्थिताः स्युर्महौजसः ॥४५॥
 आहो वंशस्थलं छित्वा हत्वा कमपि मानवम् । धसिरत्ने गृहीतेऽस्मिन् प्राप्ता मायाविवैरिणः ॥४६॥
 दुःशीलया तथा नूनं स्त्रिया मायाप्रवीणया । निजाः संक्षोभिता एते स्युरस्मद्दुष्कृतिं प्रति ॥४७॥
 नात्र युक्तमवज्ञातुं सैन्यमभ्यर्णतानितम् । इत्युक्त्वा कवचे दृष्टिं कार्मुके च न्यपातयत् ॥४८॥
 ततस्तत्र अलिं कृत्वा सुमिथाऽतथोऽगदत् । तथि स्थिते न संस्मरतव देव विराजते ॥४९॥
 संरक्ष राजपुत्रीं त्वं प्रत्यराविं व्रजाम्यहम् । ज्ञेया च सिंहनादेन यम यथापदुज्जवेत् ॥५०॥
 इत्युक्त्वा कङ्कटच्छन्नेः ससुपात्तमहायुधः । योद्धुमभ्युद्यतः श्रीभांडुक्ष्मणः प्रैत्यरिस्थितः ॥५१॥
 दृष्ट्वा तमुत्तमाकारं वीरं पुरुषपुंगवम् । पर्वस्तुणन् विहायःस्था जलदा इव पर्वतम् ॥५२॥
 शक्तिमुद्गरचक्राणि कुन्तवाणांश्च खेचरैः । परिकीर्णान्यसौ सस्यक् शस्त्रैरेव न्यवारयत् ॥५३॥
 निरुध्य सर्वशस्त्राणि खेचरैः प्रहितानि सः । वज्रदण्डान् शरास्तेन प्रवृत्तो व्योमगाहिनः ॥५४॥
 एकैकेनैव सा तेन विद्याधरमहाचमूः । रुद्रा बाणैः कदिच्छेव रिक्तानैः संयतात्मना ॥५५॥
 माणिक्यशङ्खलङ्कानि राजमानानि कुण्डलैः । पेतुः शिरसि खाद् भूमौ स्वतः कमलानि वा ॥५६॥
 शैलाभा द्विरदाः पेतुरश्चैः सह महामटाः । कुर्वते निनदं भीमं संदृष्टरत्नवाससः ॥५७॥

हिलानेवाले राजहंस पक्षी आकाशरूपी आँगनमें शब्द करते हुए जा रहे हैं ॥४२॥ अथवा तुझे भय उत्पन्न करनेवाले कोई दूसरे दुष्ट पक्षी ही जा रहे हैं । हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मैं इन्हें प्रलयको प्राप्त करा दूँ ॥४३॥ तदनन्तर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, वायुसे प्रेरित मेवसमूहके समान दीखनेवाली बड़ी भारी सेनाकी समीपमें आती देख रामने कहा कि क्या ये महातेजके धारक देव भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र देवकी वन्दना करनेके लिए नन्दीश्वर द्वीपको जा रहे हैं ॥४४-४५॥ अथवा बाँसके भिड़ेको छेदकर तथा किसी मनुष्यको मारकर यह खड्गरत्न लक्ष्मणने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुँचे हैं ॥४६॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायाविनी स्त्रीने हम लोगोंको दुःख देनेके लिए आश्रमीय जनोंकी क्षोभित किया है ॥४७॥ अब निकटमें आयी हुई सेनाकी उपेक्षा करना उचित नहीं है ऐसा कहकर रामने कवच और धनुष पर दृष्टि डाली ॥४८॥ तब लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा कि हे देव ! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता ॥४९॥ आप राजपुत्रीकी रक्षा कीजिए और मैं शत्रुकी ओर जाता हूँ । यदि मुझपर आपत्ति आवेगी तो मेरे सिंहनादसे उसे समझ लेना ॥५०॥ इतना कहकर जो कवचसे आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये हैं ऐसे लक्ष्मण युद्धके लिए तत्पर हो शत्रुकी ओर मुख कर खड़े हो गये ॥५१॥ उत्तम आकारके धारक, मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरवीर उन लक्ष्मणको देखकर आकाशमें स्थित विद्याधरोंने उन्हें इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वतकी घेर लेते हैं ॥५२॥ विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए शक्ति, मुद्गर, चक्र, भाले और बाणोंका लक्ष्मणने अपने शस्त्रोंसे अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥५३॥ तदनन्तर वे विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए समस्त शस्त्रोंको रोककर उनकी ओर वज्रमय बाण छोड़नेको तत्पर हुए ॥५४॥ अकेले लक्ष्मणने विद्याधरोंकी वह बड़ी भारी सेना अपने बाणोंसे उस प्रकार रोक ली जिस प्रकार कि मुनि विशिष्ट ज्ञानके द्वारा खोटी इच्छाको रोक लेते हैं ॥५५॥ मणिखण्डोंसे युक्त तथा कुण्डलोंसे सुशोभित शत्रुओंके शिर आकाशरूपी सरोवरके कमलोंके समान कट-कटकर आकाशसे पृथिवीपर गिरने लगे ॥५६॥ पर्वतोंके समान

१. छन्नसमुपात्त- म. । २. प्रत्यरि ग. । ३. कुत्सिता इच्छा कदच्छा 'कोः कतस्वरूपेऽपि' इति कुस्थाने कददेशः । ४. भूमिः । ५. गगनसरोवरकमलानि इव शिरांसि । ६. संदृष्टीष्टाः इत्यर्थः, संदृष्टरत्नवाससः म. ।

अयमस्य महान् लाभो निघ्नतस्तस्य तानमून् । यदूर्ध्वगैः शरैर्योधान् विव्याध सहवाहनान् ॥५८॥
 अत्रान्तरे प्रतिप्राप्तः पुष्पकस्थो दशाननः । क्रुद्धः कृताशयो हन्तुं शम्बूकवधकारिणम् ॥५९॥
 अपश्यच्च महामोहसंप्रवेशनकारिणीम् । रत्नरत्नोः समुद्रात्री साक्षाद्भस्मीमिव स्थिताम् ॥६०॥
 चन्द्रमःकान्तवदनां बन्धुकामवराधराम् । तनूदरीं च लक्ष्मीं च जलजच्छदलोचनाम् ॥६१॥
 नहेभकुम्भशिखरप्रोत्तुङ्गविपुलस्तनीम् । यौवनोदयसंपन्नां सर्वस्त्रीगुणसद्गताम् ॥६२॥
 संहितामिव कामेन कान्तिज्यां दृष्टिसायकाम् । निजां चापलतां हन्तुं सुखेनैव यथेप्सितम् ॥६३॥
 सर्वस्मृतिमहाचारीं रूपातिशयवर्तिनीम् । सीतां मनोमवोदारज्वरग्रहणकारिणीम् ॥६४॥
 तस्यामीक्षितमात्रायां क्रोधोऽस्य प्रलयं गतः । अजायतापरो भावश्चित्रा हि मनसो गतिः ॥६५॥
 अचिन्तयच्च किं नाम जीवितं मेऽनया विना । अयुक्तस्यानया का वा श्रीर्नदीयस्य वेश्मनः ॥६६॥
 इमामप्रतिमाकारां ललितां नवयौवनाम् । हराम्यद्यैव यावन्तो कश्चिज्जानात्युपागतम् ॥६७॥
 आरब्धं प्रसभं कार्यं न मे शक्तिर्न विद्यते । किन्त्विदमीदृशं वस्तु यत्कौपीनत्वमर्हति ॥६८॥
 निवेद्यन् गुणांस्तावलोकेऽलं याति लाघवम् । ईदृशान् किं पुनर्दोषान् ख्यापयन्तो प्रियो भवेत् ॥६९॥
 वित्तय सकलं लोकं शशाङ्ककरनिर्मला । कीर्तिर्व्यवस्थिता मामून् सैवं सति मलीमसा ॥७०॥
 तस्मादकीर्तिसंभूतिमकुर्वन् स्वार्थतत्परः । रहःप्रयत्नमारेभे लोको हि परमो गुरुः ॥७१॥

बड़े-बड़े हाथी-घोड़ोंके साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठोंको डंसनेवाले बड़े-बड़े योद्धा भयंकर शब्द करने लगे ॥५७॥ उन सबको मारते हुए लक्ष्मणको यह बड़ा लाभ हुआ कि वे ऊपरकी ओर जानेवाले बाणोंसे योद्धाओंको उनके वाहनोंके साथ ही छेद देते थे अर्थात् एक ही प्रहारमें वाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओंको नष्ट कर देते थे ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमें शम्बूकके वधकर्ताको मारनेके लिए विचार करनेवाला, क्रोधसे भरा रावण पुष्पक विमानमें बैठकर वहाँ आया ॥५९॥ आते ही उसने महामोहमें प्रवेश करानेवाला तथा रति और अरतिको धारण करनेवाली साक्षात् लक्ष्मीके समान स्थित सीताको देखा ॥६०॥ उस सीताका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था, वह बन्धूक पुष्पके समान उत्तम ओष्ठोंको धारण करनेवाली थी, कृशांगी थी, लक्ष्मीके समान थी, कमलदलके समान उसके नेत्र थे ॥६१॥ किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलके अग्रभागके समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवनके उदयसे सम्पन्न तथा समस्त स्त्री गुणोंसे सहित थी ॥६२॥ वह ऐसी जान पड़ती थी मानो इच्छित पुरुषको अनायास ही मारनेके लिए कामदेवके द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो । कान्ति ही उस धनुषरूपी लताकी डोरी थी और नेत्र ही उसपर चढ़ाये हुए बाण थे ॥६३॥ वह सबकी स्मृतिको चुरानेवाली थी, अत्यन्त रूपवती थी और कामरूपी महाज्वरको उत्पन्न करनेवाली थी ॥६४॥ उसे देखते ही रावणका क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक ही है क्योंकि मनकी गति विचित्र है ॥६५॥ वह विचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके बिना मेरे घरकी शोभा क्या है ? ॥६६॥ इसलिए जबतक कोई मेरा आना नहीं जान लेता है तबतक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुन्दरीका अपहरण करता हूँ ॥६७॥ यद्यपि इस कार्यको बलपूर्वक सिद्ध करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि छिपानेके योग्य है ॥६८॥ लोकमें अपने गुणोंको प्रकट करनेवाला मनुष्य भी अत्यधिक लघुताको प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकारके दोषोंको प्रकट करनेवाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥६९॥ मेरी चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त होकर स्थित है सो वह ऐसा काम करनेपर मलिन न हो जाये ॥७०॥ इसलिए अकीर्तिकी उत्पत्तिको बचाता हुआ वह स्वार्थसिद्ध करनेमें

१. यदूर्ध्वगैः म. । २. योद्धां म. । ३. समुद्रात्रीं म. । ४. घराघरां म. । ५. जलजच्छद- म. ।

इति ध्यात्वावलोकिन्या विद्ययोपायमञ्जसा । विवेद हरणे तस्यास्तेषां नामकुलादि यत् ॥७२॥
 अथं स लक्ष्मणः ख्यातो बहुभिः कृतरोधनः । अथं स रामः सीतेयं सा गुणैः परिकीर्तिता ॥७३॥
 अमुष्य व्यसनं कृत्वा सिंहनादं स धन्विनः । गरुडमानिव गृध्रस्य सीतां पेशीमिवाददे ॥७४॥
 जायावैरप्रदीप्तोऽयमजयः खरदूषणः । शक्यादिभिः क्षणादेतौ भ्रातरौ मारयिष्यति ॥७५॥
 महाप्रकृष्टपूरस्य नदस्योद्वारंरंहसः । तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥७६॥
 इति संचिन्त्य कामार्तः शिशुवत्स्वरूपमानसः । विषधन्मरणोपायं हरणं प्रति निश्चितः ॥७७॥
 शस्त्रान्धकारिते जाते तयोरथ महाहवे । कृत्वा सिंहरवं रामरामेति च मुहुर्जगौ ॥७८॥
 तं च सिंहरवं श्रुत्वा स्फुटं लक्ष्मणमाश्रितम् । प्रीत्यारतिर्मयात् पद्मो व्याकुलीभूतमानसः ॥७९॥
 निर्माल्यैर्जानकीं सम्यक् प्रच्छाद्यात्यन्तभूरिमिः । क्षणमेकं प्रिये तिष्ठ मा भौषीरिति संगदन् ॥८०॥
 वयस्यवनितां तावज्जटायू रक्ष यत्नतः । किंचिदस्मत्कृतं भद्र स्मरत्युपकृतं यदि ॥८१॥
 इत्युक्त्वा वार्यमाणोऽपि शकुनैः कन्दनाकुलैः । सतीं मुक्त्वा जनेऽरण्ये वेगवान् प्राविशद् रणम् ॥८२॥
 अत्रान्तरे समागत्य विद्यालोकेन कोविदः । सीतामुत्क्षिप्य बाहुभ्यां नलिनीमिव वारणः ॥८३॥
 कामदाहगृहीतात्मा विस्मृताशेषधर्मधीः । आरोपयितुमारेभे पुष्पकं गगनस्थितम् ॥८४॥

तत्पर हो एकान्तमें प्रयत्न करता है सो ठीक ही है क्योंकि लोक परमगुह है अर्थात् संसारके प्राणी बड़े चतुर हैं ॥७१॥ इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकिनी विद्याके द्वारा सीताके हरण करनेका वास्तविक उपाय जान लिया । राम-लक्ष्मण तथा सीताके नाम-कुल आदि सबका उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो गया ॥७२॥ जिसे अनेक लोग घेरे हुए हैं ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणोंसे प्रसद्धि सीता है ॥७३॥ इसके बाद उस रावणने इस धनुर्धारी रामके लिए आपत्तिस्वरूप सिंहनाद करके सीताको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीधके मुखकी मांसपेशीको ले लेता है ॥७४॥ स्त्रीके वरसे अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ यह खरदूषण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रोंसे इन दोनों भाइयोंको क्षण-भरमें मार डालेगा ॥७५॥ जिसमें बहुत बड़ा पूर चढ़ रहा है तथा जिसका वेग अत्यन्त तीव्र है ऐसे नदमें दोनों तटोंको गिरानेकी शक्ति है यह कौन नहीं मानता है ? ॥७६॥ ऐसा विचारकर कामसे पीड़ित तथा बालकके समान विवेकशून्य हृदयको धारण करनेवाले रावणने सीताके हरण करनेका उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई मारनेके लिए विषधानका निश्चय करता है ॥७७॥

अथानन्तर जब लक्ष्मण और खरदूषणके बीच शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त महायुद्ध हो रहा था तब रावणने सिंहनाद कर बार-बार राम ! राम !! इस प्रकार उच्चारण किया ॥७८॥ उस सिंहनादको सुनकर रामने समझा कि यह लक्ष्मणने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरतिको प्राप्त हुए ॥७९॥ तदनन्तर उन्होंने सीताको अत्यधिक मालाओंसे अच्छी तरह ढक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम क्षण-भर यहाँ ठहरो, भय मत करो ॥८०॥ सीतासे इतना कहनेके बाद उन्होंने जटायुसे भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकारका स्मरण रखते हो तो मित्रकी स्त्रीकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥८१॥ इतना कहकर यद्यपि क्रन्दन करनेवाले पक्षियोंने उन्हें रोका भी था तो भी वे निर्जन वनमें सीताको छोड़कर वेगसे युद्धमें प्रविष्ट हो गये ॥८२॥

इसी बीचमें विद्याके आलोकसे निपुण रावण, कपालिनीको हाथीके समान दोनों भुजाओंसे सीताको उठाकर आकाशमें स्थित पुष्पक विमानमें चढ़ानेका प्रयत्न करने लगा । उस समय

१. जायावीरः ख. । २. नदस्योद्धार-म. । ३. प्रीत्या + अरतिम् + अयात् ।

हियमाणामथ प्रेक्ष्य स्वामिनो वनितां प्रियाम् । संरम्भवद्विदीप्तात्मा समुत्पत्य महाजवः ॥८५॥
 तीक्ष्णकोटिमिरत्यन्तं जटायुर्नखैलाङ्गलैः । दाशाननमुरःक्षेत्रं च कर्पास्यसमाद्रितम् ॥८६॥
 परुषैश्छदनान्तैश्च वातसंपाटितानुकैः । जवान् जवनैर्भूयः सर्वकायमलं बलः ॥८७॥
 दृष्टवस्तुविधातेन रावणः कोपवानथ । हत्वा हस्ततलेनैव महीतलमजीगमत् ॥८८॥
 ततोऽसौ परुषाघाताद् विकलीभूतमानसः । कुर्वन् केकायितं हुःखी खगो मूर्च्छामुपागतः ॥८९॥
 ततो निर्विघ्नमारोप्य पुष्पकं जनकात्मजाम् । जानानः संगतं कामं रावणः स्वेच्छया ययौ ॥९०॥
 ज्ञात्वापहृतमात्मानं रामरागातिशयनात् । सीता शोकवशीभूता विललापार्तनिस्वनार्त् ॥९१॥
 ततः स्वपुरुषासक्तहृदयां कृतरोदनाम् । दृष्ट्वा सीतामभूत् किञ्चिद् विरागीव दशाननः ॥९२॥
 अचिन्त्यच्च मे कास्था कृतोऽन्यस्यैव कस्यचित् । यदियं रीति सक्तासुः कर्षणं विरहाकुला ॥९३॥
 कीर्तयन्तो गुणान् भूयः राधूनामभिसंमतान् । पुरुषान्तरत्वं बन्धानतिशोकपरायणा ॥९४॥
 तत्किमेतेन खड्गेन मूढा व्यापादयाम्यमूम् । अथवा न स्त्रियं हन्तुं मम चेत्तः प्रवर्तते ॥९५॥
 न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्रं नरेश्वरः । अभीष्टं लब्धुमथवा युतिर्वा कीर्तिरेव वा ॥९६॥
 विद्या वामिमता लब्धुं परलौकिक्यापि वा । प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ॥९७॥
 साधूनामग्रतः पूर्वं व्रतमेतन्मयाजितम् । अप्रसन्ना न भोक्तव्या परस्य स्त्री-मयेति च ॥९८॥

उसकी आत्मा कामकी दाहसे दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्मबुद्धिको भुला दिया था ॥८३-८४॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रिय वनिताकी हरी जाती देख जिसकी आत्मा क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो रही थी ऐसा जटायु वेगसे आकाशमें उड़कर खूनसे गीले रावणके वक्षःस्थलरूपी खेतको अत्यन्त तीक्ष्ण अग्रभागको धारण करनेवाले नखरूपी हलोंके द्वारा जोतने लगा ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् अतिशय बलवान् जटायुने वायुके द्वारा वस्त्रोंको फाड़नेवाले कठोर तथा वेगशाली पंखोंके आघातसे रावणके समस्त शरीरको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥८७॥ तदनन्तर दृष्ट वस्तुमें बाधा डालनेसे क्रोधको प्राप्त हुए रावणने हस्ततलके प्रहारसे ही जटायुको मारकर पृथ्वीतलपर भेज दिया अर्थात् नीचे गिरा दिया ॥८८॥ तदनन्तर कठोर प्रहारसे जिसका मन अत्यन्त विकल हो रहा था ऐसा दुःखसे भरा जटायु पक्षी कैं-कैं करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥८९॥ तत्पश्चात् बिना किसी विघ्न-बाधाके सीताको पुष्पक विमानपर चढ़ाकर कामकी ठीक जाननेवाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥९०॥ सीताका राममें अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोकके वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी ॥९१॥ तदनन्तर अपने भर्तामें जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीताको रोती देख रावण कुछ विरक्त-सा हो गया ॥९२॥ वह विचार करने लगा कि इसके हृदयमें मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरेके लिए ही कर्षण रुदन कर रही है उसमें ही इसके प्राण आसक्त हैं तथा उसीके विरहसे आकुल हो रही है ॥९३॥ सत्पुरुषोंको इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष सम्बन्धी गुणोंका बार-बार कथन करती हुई यह अत्यन्त शोकके धारण करनेमें तत्पर है ॥९४॥ तो क्या इस खड्गसे इस मूर्खाको मार डालूँ अथवा नहीं, स्त्रीको मारनेके लिए चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥९५॥ अथवा अधीर होनेकी बात नहीं है क्योंकि जो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार दृष्ट वस्तुका पाना, कान्ति अथवा कीर्तिका प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी क्रिया, मनको आनन्द देनेवाली भार्या अथवा ओर भी जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते—उन्हें प्राप्त करने के लिए समय लगता ही है ॥९६-९७॥ मैंने साधुओंके समक्ष पहले यह नियम लिया था कि

१. नखरूपहलैः । २. दशाननस्यैवं दाशाननम् । दशानन-म., ख. । ३. निस्वनान् म. । ४. मूढा म. ।

५. अभीष्टालम् । अभीष्टलब्ध ज. ।

रक्षजिदं वतं तस्मात् प्रसादं प्रापयाम्यमुम् । भविष्यत्यनुकूलेयं कालेन मम संपदा ॥१९॥
 इति संचित्य तामङ्गात्तले स्वस्मिन्नतिष्ठिपत् । प्रतीक्षते हि तत्कालं मृत्युः कर्मप्रचोदितः ॥१००॥
 अथेषुवारिधाराभिराकुलं रणमण्डलम् । प्रविष्टं राममालोक्य सुमित्रातनयोऽगदत् ॥१०१॥
 हा कष्टं देव कस्मात् त्वं भूमिमेतामुपागतः । एकाकी मैथिलीं मुक्त्वा विपिने विघ्नसंकुले ॥१०२॥
 तेनोक्तस्त्वद्रथं श्रुत्वा प्राप्नोऽस्मि त्वरयान्वितः । सोऽवो वद् गम्यतां शीघ्रं न साधु भवता कृतम् ॥१०३॥
 सर्वथा परमोत्साहो जय त्वं बलिनं रिपुम् । इत्युक्त्वा शङ्कया युक्तो जानकीं प्रति चञ्चलः ॥१०४॥
 क्षणाश्रितवर्तते यावत् तावत्तत्र न दृश्यते । स्तीतेति हतवधेतो रामदच्युतमभ्यन्यत ॥१०५॥
 ही सीत इति भाषित्वा मूर्च्छितो धरणीमगात् । भर्ता तेन परिष्वक्ता सा बभूव विभूषिता ॥१०६॥
 संज्ञां प्राप्य ततो दृष्टिं निक्षिपन् वृक्षसंकुले । इति प्रेमपरीतात्मा जगादात्यन्तमाकुलः ॥१०७॥
 अयि देवि क यातासि शयच्छ वचनं द्रुतम् । चिरं किं प्रतिहास्येन दृष्टासि तस्मध्यग ॥१०८॥
 एहागच्छ-(म)-यातोऽस्मि कार्यं कोपेन किं प्रिये । जानास्येव चिरं कोपात्तत्र देवि न मे सुखम् ॥१०९॥
 एवं कृतध्वनिभ्रमिन् प्रदेशं तं सुगह्यम् । गृध्रं सुशूयुर्गौक्षिष्ठ कृतकेकास्वनं शनैः ॥११०॥
 यतोऽत्यन्तविषण्णात्मा त्रियमागस्य पक्षिणः । कर्णजापं ददौ प्रासस्व तेनामरकायताम् ॥१११॥
 तस्मिन् कालगते पद्मः शोकार्तः केवले वने । वियोगदहनव्यासः पुनर्मूर्च्छामशिश्रियन् ॥११२॥

जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी, मुझपर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूँगा ॥१८॥
 इसलिए इस व्रतकी रक्षा करता हुआ मैं इसे प्रसन्नताको प्राप्त कराता हूँ, सम्भव है कि यह समय
 पाकर मेरी सम्पदाके कारण मेरे अनुकूल हो जावेगी ॥१९॥ ऐसा विचार कर रावणने सीताको
 गोदसे हटाकर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कर्मसे प्रेरित मृत्यु उसके योग्य
 समयकी प्रतीक्षा करती ही है ॥१००॥

अथानन्तर बाणरूपी जलकी धाराओंसे आकुल युद्धके मैदानमें रामको प्रविष्ट देख लक्ष्मण
 ने कहा ॥१०१॥ कि हाय देव ! बड़े दुःखकी बात है आप विघ्नोंसे व्याप्त वनमें सीताको अकेली
 छोड़ इस भूमिमें किस लिए आये ? ॥१०२॥ रामने कहा कि मैं तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रतासे
 यहाँ आया हूँ । इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइए, आपने अच्छा नहीं
 किया ॥१०३॥ 'परम उत्साहसे भरे हुए तुम बलवान् शत्रुको सब प्रकारसे जीतो' इस प्रकार कह-
 तर शंकासे युक्त तथा चंचलचित्तके धारक राम जानकीकी ओर वापस चले गये ॥१०४॥ जब
 राम क्षण-भरमें वहाँ वापस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटनासे रामने अपने
 वित्तको नष्ट हुआ-सा अथवा च्युत हुआ-सा माना ॥१०५॥ हा सीते ! इस प्रकार कहकर राम
 मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और भर्तृके द्वारा आलिंगित भूमि सुशोभित हो उठी ॥१०६॥
 तदनन्तर जब संज्ञाको प्राप्त हुए तत्र वृक्षोंसे व्याप्त वनमें इधर-उधर दृष्टि डालते हुए प्रेमपूर्ण आत्माके
 धारक राम, अत्यन्त व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥१०७॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ
 चली गयी हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करनेसे क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें
 वृक्षोंके मध्य चलती हुई देखा है ॥१०८॥ हे प्रिये ! आओ-आओ, मैं प्रयाण कर रहा हूँ, क्रोध
 करनेसे क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती ही हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे क्रोध
 करनेसे मुझे सुख नहीं होता है ॥१०९॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओंसे युक्त उस स्थानमें
 भ्रमण करते हुए रामने धीरे-धीरे कें-कें करते हुए मरणोन्मुख जटायुको देखा ॥११०॥ तदनन्तर
 अत्यन्त दुःखित होकर रामने उस मरणोन्मुख पक्षीके कानमें णमोकार मन्त्रका जाप दिया और
 उसके प्रभावसे वह पक्षी देवपर्यायको प्राप्त हुआ ॥१११॥ वियोगाग्निसे व्याप्त राम उस पक्षी-

१. भर्ता म. । २. कोपस्तत्र म. । ३. काले गते म. ।

समाश्रय्य च सर्वत्र न्यस्य दृष्टिं समाकुलः । दीनं ललाप नैराश्याद् भूतेनेवार्तमानसः ॥११३॥
 रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना । हरता जानकीं कपटं हतो दुष्करकारिणा ॥११४॥
 दर्शयंस्तामथोत्सृष्टां^१ हरम् शोकमशेषतः । को नाम बान्धवत्वं मे वनेऽस्मिन् परमेव्यति ॥११५॥
 भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया सरोजदललोचना । सुकुमाराङ्गिका^३ भीरुस्वभावा वरगाग्निनी ॥११६॥
 चित्तोत्सवकरी पञ्चरजोगन्धिसुखानिला । अपूर्वा यौषिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदङ्गना ॥११७॥
 कथं निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः । पुनर्मूर्च्छापरीतात्मा धरणीतलमागमत् ॥११८॥
 समाश्रय्य च संकुद्धो वज्रावर्तं महाधनुः । आयोप्यास्फालयन्मुक्तं टङ्कारपुरनिस्वनम् ॥११९॥
 सिंहानां भीतिजननं नृसिंहः सिंहनिस्वनम् । सुमोच मुहुस्त्वुग्रमुत्कर्णद्विरदभ्रुतम् ॥१२०॥
 भूयो विषादमागत्य त्यक्तचापोत्तरीयकम् । उपविश्य प्रमादं स्वं शुशोच फलितं क्षणात् ॥१२१॥
 दुःश्रुत्य दुर्विमर्शो भजता त्वरितां गतिम् । धर्मधीरिव मूढेन हारिता हा मया प्रिया ॥१२२॥
 मानुषत्वं परिभ्रष्टं गहने भवसंकटे । प्राप्तुमस्यद्भुतं भूयः प्राणिनाशुमकर्मणा ॥१२३॥
 त्रैलोक्यगुणवद्भूतं पतितं निम्नगापतौ । लभेत कः पुनर्थन्यः कालेन महताप्यलम् ॥१२४॥
 वनितामृतमेतन्मे कराङ्कस्थं महागुणम् । प्रणष्टं संगतिं भूयः केनोपायेन यास्यति ॥१२५॥
 वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्तं कस्य दोषः प्रदीयते । नूनं मत्त्यागकोपेन कापि याता तपस्विनी ॥१२६॥

के मरनेपर शोकसे पोड़ित हो निर्जन वनमें पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥११२॥ जब सचेत हुए तब सब ओर दृष्टि डालकर निराशताके कारण व्याकुल तथा खिन्न चित्त होकर कष्ट विलाप करने लगे ॥११३॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयंकर वनमें छिद्र पाकर कठोर कार्य करनेवाले किसी दुष्टने सीताका हरण कर मुझे नष्ट किया है ॥११४॥ अब बिछुड़ी हुई उस सीताको दिखाकर समस्त शोकको दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वनमें मेरे परम बान्धवपनेको प्राप्त होगा ॥११५॥ हे वृक्षो ! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है ? जिसको चम्पाके फूलके समान कान्ति है, कमलदलके समान जिनके नेत्र हैं, जिसका शरीर अत्यन्त सुकुमार है, जो स्वभावसे भीरु है, उत्तम गतिसे युक्त है, हृदयमें आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, जिसके मुखकी वायु कमलकी परागके समान सुगन्धित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है ॥११६-११७॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यों हो ? इस प्रकार कहकर उसके गुणोंसे आकृष्ट हुए राम पुनः मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥११८॥ जब सचेत हुए तब कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुषको चढ़ाकर टंकारका विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे । उसी समय नरश्रेष्ठ रामने बार-बार अत्यन्त तीक्ष्ण सिंहनाद किया । उनका वह सिंहनाद सिंहोंको भय उत्पन्न करनेवाला था तथा हाथियोंने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥११९-१२०॥ पुनः विषादको प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तरच्छदको उतारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देनेवाले अपने प्रमादके प्रति शोक करने लगे ॥१२१॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मबुद्धिको हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मणके सिंहनादको अच्छी तरह नहीं श्रवण कर विचारके बिना ही शीघ्रतासे जाते हुए मैंने प्रियाको हरा दिया है ॥१२२॥ जिस प्रकार संसाररूपी वनमें एक बार छूटा हुआ मनुष्य भव, अशुभकार्य करनेवाले प्राणीको पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार प्रियाका पुनः पाना कठिन है । अथवा समुद्रमें गिरे हुए त्रिलोकी मूल्यरत्नको कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकालमें भी पुनः प्राप्त कर सकता है ? ॥१२३-१२४॥ यह महागुणोंसे युक्ता वनितारूपी अमृत मेरे हाथमें स्थित होनेपर भी नष्ट हो गया है सो अब पुनः किस उपायसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥१२५॥ इस निर्जन वनमें किसे दोष दिया जाये ? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी क्रोधसे वह बेचारी कहीं चली गयी है ॥१२६॥

१. तेष स्याद् भ. । २. हरं म. । ३. सुकुमाराङ्गिका म. । ४. मुक्तं टङ्कारनिस्वनं म. ।

अरण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्कमुपेत्य प्रसाद्य च । पृच्छामि दुष्कृताचारो यो मे वार्ता निवेदयेत् ॥१२७॥
 ह्यं ते प्राणतुल्येति चेतःश्रवणयोः परम् । कुर्यात्प्रह्लादनं को मे वचसा मृतदायिना ॥१२८॥
 दयावानोदृशः कोऽस्मिन् लोके पुरुषपुंगवः । यो मे स्मिताननो कान्तां दर्शयेदधवर्जिताम् ॥१२९॥
 हृदयागारमुदीप्तं कान्ताविरहवह्निना । उदन्तजलदानेन को मे निर्वापयिष्यति ॥१३०॥
 ह्युक्त्वा परमोद्विग्नो सहीनिहितलोचनः । असकृत् किमपि ध्यायंस्तस्थौ निश्चलविग्रहः ॥१३१॥
 अथ नाथन्तदूरस्थचक्रवाकीस्वनं कलम् । समाकर्ण्य दृशं तस्या श्रवणं च न्यधापयत् ॥१३२॥
 अचिन्तयदमुष्याद्रेस्तत्संगे गन्धसूचितम् । किमिदं पङ्कजवनं भवेद्याता कुतूहलात् ॥१३३॥
 दृष्टपूर्वं मनोहारि नानाकुसुमसंकुलम् । स्थानं हरति चेतोऽस्याः कदाचित्क्षणमात्रकम् ॥१३४॥
 जगाम च तमुद्देशं यावच्चक्राहमुन्दरी । मया विना क यातीति पुनरुद्देशमागमत् ॥१३५॥
 भो भो महांधराधीश ! धातुमिविविधैश्चित ! सूनुर्दशरथस्य त्वां पद्माख्यः परिपृच्छते ॥१३६॥
 विपुलस्तननघ्राङ्गा बिम्बोष्ठी हंसगमिनी । सज्जितम्बा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ॥१३७॥
 दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क सा क सा । केवलं निगदस्येवं प्रतिशब्दोऽयमोदृशः ॥१३८॥
 ह्युक्त्वा पुनरध्यासीत् किमदृष्टेन चोदिता । कृतान्तशत्रुणा बाला समासञ्चा सती सती ॥१३९॥
 चण्डोर्मिसालयाऽत्यन्तं वेगवत्याविवेकया । कान्ता हता भवेन्नद्या विद्येव दुरितेच्छया ॥१४०॥

मैं पापचारी निर्जन वनमें किसके पास जाकर तथा उसे प्रसन्न कर पूछूँ जो मुझे प्रियाका समाचार बता सके ॥१२७॥ “यह तुम्हारी प्राणतुल्य प्रिया है” इस प्रकार अमृतको प्रदान करनेवाले वचनसे कौन पुरुष मेरे मन और कानोंको परम आनन्द प्रदान कर सकता है ? ॥१२८॥ इस संसारमें ऐसा कौन दयालु श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी सुसकुराती हुई निष्पाप कान्ताको मुझे दिखला सकता है ? ॥१२९॥ प्रियाके विरहरूपी अग्निसे जलते हुए मेरे हृदयरूपी घरको कौन मनुष्य समाचाररूपी जल देकर शान्त करेगा ? ॥१३०॥ इस प्रकार कहकर जो परम उद्वेगको प्राप्त थे, पृथ्वीपर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था ऐसे राम बार-बार कुछ ध्यान करते हुए बैठे थे ॥१३१॥ अथानन्तर कुछ ही दूरीपर उन्होंने चक्रवाकी मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उस दिशामें दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥१३२॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वतके समीप ही गन्धसे सूचित होनेवाला कमल वन है सो क्या वह कुतूहलवश उस कमल वनमें गयी होगी ? ॥१३३॥ नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त तथा मनको हरण करनेवाला वह स्थान उसका पहलेसे देखा हुआ है सो सम्भव है कि वह कदाचित् क्षण-भरके लिए उसके चित्तको हर रहा हो ॥१३४॥ ऐसा विचारकर वे उस स्थानपर गये जहाँ चक्रवा थी । फिर ‘मेरे बिना वह कहाँ जाती है’ यह विचारकर वे पुनः उद्वेगको प्राप्त हो गये ॥१३५॥ अब वे पर्वतको लक्ष्य कर कहने लगे कि हे नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त पर्वतराज ! राजा दशरथका का पुत्र पद्म (राम) तुमसे पूछता है ॥१३६॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्तनोंसे नम्रीभूत है, जिसके ओठ बिम्बके समान हैं । जो हंसके समान चलती है तथा जिसके उत्तम नितम्ब हैं ऐसी मनको आनन्द देनेवाली सीता क्या आपने देखी है ? ॥१३७॥ उसी समय पर्वतसे टकराकर रामके शब्दोंकी प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हाँ देखी है देखी है तो बताओ वह कहाँ है ? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होनेपर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकारकी प्रतिध्वनि हो है ॥१३८॥ इतना कहकर वे पुनः विचार करने लगे कि वह सती बाला दुर्द्वेसे प्रेरित होकर कहाँ गयी

किंवाऽत्यन्तशुभातेन नितान्तकूरचेतसा । इमारिणा भवेद्भुक्ता साधुवर्गस्य वत्सला ॥१४१॥
 पशोर्भौमैककार्यस्य सिंहस्योत्केसरस्य सा । श्रियते दृष्टिमात्रेण नखादिस्पर्शनादिना ॥१४२॥
 भ्राता मम मृधे भीमे लक्ष्मणः संशयं श्रितः । सीतया विरहश्रायं तेन जानामि नो रतिम् ॥१४३॥
 जीवलोकमिमं वेदमि सकलं प्राप्तसंशयम् । जानामि च पुनः शून्यमहो दुःखस्य चित्रता ॥१४४॥
 दुःखस्य यावदेकस्य नावसानं ब्रजाम्यहम् । द्वितीयं तावदायातमहो दुःखार्णवो महान् ॥१४५॥
 खण्डपादस्य खण्डोऽयं हिमदग्धस्य पावकः । स्खलितस्यावटे पातः प्रायोऽनर्था बहुस्वभाः ॥१४६॥
 ततः पर्यं विपिने पश्यन्मृगगरुत्मतः । विवेश स्वाश्रयं भूयः श्रिया शून्यमरण्यकम् ॥१४७॥
 अत्यन्तदीनवदनः कृत्वा निज्यै धनुर्लताम् । सितश्लक्ष्णपटच्छिन्नस्तस्थौ पर्यस्य भूतले ॥१४८॥
 भूयो भूयो बहु ध्यायन् क्षणनिश्चलविग्रहः । निराशतां परिप्राप्तः सूत्कारमुखराननः ॥१४९॥

अतिरुचिराच्छन्दः

महानरानिति पुरुदुःखलङ्घितान् पुराकृतादसुकृतकर्मजृम्भणात् ।

अहो जना भृशमवलोक्य दीयतां मतिः सदा जिनवरधर्मकर्मणि ॥१५०॥

होगी ? जिस प्रकारकी इच्छा विद्याको हर लेती है उसी प्रकार जिसमें बड़ी-बड़ी तीक्ष्ण तरंगें उठ रही हैं । जो अत्यन्त वेगसे बहती है तथा जिसमें विवेक नहीं है ऐसी नदीने कहीं प्रियाको नहीं हर लिया हो ॥१३९-१४०॥ अथवा अत्यन्त भूखसे पीड़ित तथा अतिशय क्रूर चित्तके धारक किसी सिंहने साधुओंके साथ स्नेह करनेवाली उस प्रियाको खा लिया है ॥१४१॥

जिसका कार्य अत्यन्त भयंकर है तथा जिसकी गरदनके बाल खड़े हुए हैं ऐसे सिंहके देखने मात्रसे नखादिके स्पर्शके बिना ही वह मर गयी होगी ॥१४२॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्धमें संशयको प्राप्त है और इधर यह सीताके साथ विरह आ पड़ा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥१४३॥

मैं इस समस्त संसारको संशयमें पड़ा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार शून्य दशाको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःखकी बड़ी विचित्रता है ॥१४४॥ जबतक मैं एक दुःखके अन्तको प्राप्त नहीं हो पाता हूँ तबतक दूसरा दुःख आ पड़ता है । अहो ! यह दुःखरूपी सागर बहुत विशाल है ॥१४५॥

प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लँगड़ा होता है उसीमें चोट लगती है, जो वृक्ष तुषारसे सूख जाता है उसीमें आग लगती है और जो फिसलता है वही गतमें पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहु संख्यामें आते हैं ॥१४६॥ तदनन्तर वनमें भ्रमण कर मृग और पक्षियोंको देखते हुए राम अपने रहनेके स्थानस्वरूप वनमें पुनः प्रविष्ट हुए । वह वन उस समय सीताके बिना शोभासे शून्य जान पड़ता था ॥१४७॥

तदनन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़ रखा था ऐसे राम धनुषकी डोरी रहित कर पृथिवीपर पड़े रहे ॥१४८॥ वे बार-बार बहुत देर तक ध्यान करते रहते थे, क्षण-क्षणमें उनका शरीर निश्चल हो जाता था, वे निराशताको प्राप्त थे तथा सूत्कार शब्दसे उनका मुख शब्दायमान हो रहा था ॥१४९॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो जनो ! इस प्रकार पूर्वोपाजित पाप कर्मके उदयसे बड़े-बड़े पुरुषोंको अतिशय दुःखी देख, जितेन्द्र कथित धर्ममें सदा बुद्धि लगाओ ॥१५०॥

१. सिंहेन । २. नखाहि म. । ३. तिष्ठं म. ।

न ये भवप्रमवदिकारसंगतेः पराङ्मुखा जिनवचनान्युपासते ।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यलं स्वकृतरविः सुदुस्सहः ॥१५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताहरणरामविलापाभिधानं
नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४४॥



जो मनुष्य संसार सम्बन्धी विकारोंकी संगतिसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोंकी उपासना नहीं करते हैं उन शरणरहित तथा इन्द्रियोंके वशीभूत मनुष्योंको अपना पूर्वोपाजित कर्मरूपी दुःसह सूर्य सदा सन्तप्त करता रहता है ॥१५१॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें सीताहरण और रामविलापका वर्णन करनेवाला चौवालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४४॥



पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे^१ प्राप्सः पूर्वशिष्टो विराधितः । समेतः सचिवैश्चरैः^२ संनद्धः शस्त्रसंकुलः ॥१॥
 एकाकिनमसौ ज्ञाता युद्धचमनं महानरम् ।^३ स्वार्थसंसिद्धिसंभूतिं दीप्यमानं महौजसा ॥२॥
 जानुं क्षितितले न्यस्य मूर्द्धन्यस्तकरद्वयः । अश्ववीदिति नम्राङ्गः परमं विनयं वहन् ॥३॥
 नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किंचिद्विशेष्यं श्रूयतां मम । त्वद्विधानां हि संसर्गो निकारक्षयकारणम् ॥४॥
 कृतार्धभाषणस्थास्य करं विन्यस्य मस्तके । पृष्ठतस्तिष्ठ मामैषीरित्यवोचत लक्ष्मणः ॥५॥
 ततः प्रणम्य भूयोऽसौ महाविस्मयसंगतः । जगाद क्षणसंजातमहातेजाः प्रियं वचः ॥६॥
 महाशक्तिमिमं शत्रुं त्वमेकं विनिवारय । रणाजिरे भटान् शेषान् निधनं प्रापयाम्यहम् ॥७॥
 इत्युक्त्वा दौषणं सैन्यं तेन शीघ्रं विराधितम्^४ । अथावद् बलसंपन्नः प्रह्वलद्वेतिसंहतिः ॥८॥
 उवाच च चिरात् सोऽहं^५ चन्द्रोदरनृपात्मजः । प्राप्सो विराधितः ख्यातो रणातिथ्यसमुत्सुकः ॥९॥
 केदानीं गम्यते साधु स्थीयतां युद्धसौण्डिकैः । अथ तद्गः प्रदास्यामि यस्कृतान्तोऽतिदारुणः ॥१०॥
 इत्युक्ते वैरसंपन्नो भटानामतिसंकुलः । बभूव शस्त्रसंपातः सुमहान् जनसंक्षयः ॥११॥
 पत्नयः पतिभिर्लङ्घनाः सादिनः सादिभिः समम् । गजिनो गजिभिः सत्रा रथिनो रथिभिः सह ॥१२॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषणका शत्रु विराधित, मन्त्रियों और शूर-वीरोंसे सहित अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो वहाँ आया ॥१॥ उसने महातेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणको अकेला युद्ध करते देख महापुरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥२॥ पृथिवीतलपर घुटने टेककर तथा मस्तकपर दोनों हाथ लगाकर परम विनयको धारण करनेवाले विराधितने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! मैं आपका भक्त हूँ । मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है सो सुनिए क्योंकि आप-जैसे महापुरुषों-की संगति दुःखक्षयका कारण है ॥३-४॥ विराधित आधी बात ही कह पाया था कि लक्ष्मणने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे खड़े हो जाओ ॥५॥

तदनन्तर जो महाआश्चर्यसे युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुनः प्रणाम कर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु—खरदूषणको तो आप निवारण करो और युद्धके आंगनमें जो अन्य योद्धा हैं मैं उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥६-७॥ इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषणकी सेनाको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । वह सेनाके साथ लहलहाते शस्त्रोंके समूहसे युक्त हो खरदूषणकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥८॥ उसने जाकर कहा कि मैं राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित युद्धमें आतिथ्य पानेके लिए उत्सुक हुआ चिरकाल बाद आया हूँ ॥९॥ अब कहाँ जाइएगा ? जो युद्धमें शूर-वीर हैं वे अच्छी तरह खड़े हो जावें । आज मैं आप लोगोंको वह फल दूँगा जो कि अत्यन्त दारुण—कठोर यमराज देता है ॥१०॥ इतना कहते ही दोनों ओरके योद्धाओंमें वैर भरा तथा मनुष्योंका सहारा करनेवाला बहुत भारी शस्त्रोंका सम्पात होने लगा—दोनों ओरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥११॥ पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, गजसवार गजसवारोंसे और रथसवार रथसवारोंके साथ भिड़

१. नगरे म. । २. श्वरैः म. । ३. सार्थसंपद्विसम्भूति म., ब. । ४. कृतार्धभाषणस्थ-म. । ५. दूष-
 णस्येदं दौषणम् । ६. विराधितः क., ख., ज. । ७. सम्पन्न म. । ८. प्रज्वलद्वेतिसंहतिः । ९. वचः
 सोत्साहं म. ।

परस्परकृताह्वाणैरिति^१ संहर्षिभिर्भटैः । संकुलैर्जनिने युद्धे कृतान्योन्यमहंयुधैः ॥१३॥
 रणाजिरे परं तेजो भजमानो नवं नवम् । दिव्यकामुकमुद्यम्य शरच्छत्रदिगम्बरः ॥१४॥
 खरेण सह संग्रामं चक्रे परममैरवम् । लक्ष्मीधरः शुनासीरः स्वामिनेव सुरद्विषाम् ॥१५॥
 ततः क्रोधपरीतेन खरेण खरनिस्वनम् । अवाचि लक्ष्मणः^२ संख्ये स्फुरल्लोहितचक्षुषा ॥१६॥
 समारम्भजमुदासीनं हत्वा परमचापलः । कान्ताकुचौ च संमृश्य पाषाद्यापि ह्र गम्यते ॥१७॥
 अद्य ते निशितैर्बाणैर्जीर्जितं नाशयाम्यहम् । कृत्वा तथाविधं कर्म फलं तस्यानुभूयताम् ॥१८॥
 अत्यन्तक्षुद्रं निर्लज्जं परस्त्रीसंगलोलुपः । ममाभिमुखतां गत्वा परलोकं वजाधुना ॥१९॥
 ततस्तैः परपैर्वाक्यैः समुदीपितमानसः । उवाच लक्ष्मणो वाचं पूरयन् सकलं नभः ॥२०॥
 किं वृथा गर्जसि क्षुद्र दुःखेचरः शुना समः । अहं नयामि तत्र त्वां यत्र ते तनयो गतः ॥२१॥
 इत्युक्त्वावस्थितं व्योमिनि विरथं खरदूषणम् । चकार लक्ष्मणः छिन्नचापकेतुं च निःप्रभम् ॥२२॥
 ततोऽप्यै पतितः क्षोण्यां नभस्तः क्रोधलोहितः । प्रक्षोणेण्विव पुण्येषु ग्रहस्तरलविग्रहः ॥२३॥
 खड्गांशुलीढदेहश्च सौमित्रिं प्रत्यधावत । असिरस्त्वं समाकृष्य सोऽप्यस्यामिमुखं ययौ ॥२४॥
 इत्यासन्नं तयोरासीच्चित्रं युद्धं मयानकम् । सुमुचुः स्वस्थिता देवाः सपुष्पान् साधुनिस्वनान् ॥२५॥
 तावच्छिरसि संक्रुद्धो दूषणस्य न्यपातयत् । सूर्यहासं यथार्थारख्यं लक्ष्मणोऽक्षतविग्रहः ॥२६॥

गये ॥१२॥ तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरेको बुला रहे थे, जो अत्यन्त हर्षित हो रहे थे, जो अत्यन्त संकुल-व्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरेके बड़े-बड़े शस्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओंके द्वारा उधर महायुद्ध हो रहा था इधर रणके मैदानमें नवीन-नवोन परम तेजको धारण करनेवाला लक्ष्मण, दिव्यधनुष उठाकर बाणोंसे दिशाओं और आकाशको व्याप्त करता हुआ खरके साथ उस तरह अत्यन्त भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि इन्द्र दैत्येन्द्रके साथ करता था ॥१३-१५॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याप्त एवं चंचल और लाल-लाल नेत्रोंको धारण करनेवाले खरदूषणने कठोर शब्दोंमें लक्ष्मणसे कहा कि हे अतिशय चपल पापी ! मेरे निर्वैर पुत्रको मारकर तथा मेरी स्त्रीके स्तनोंका स्पर्श कर अब तू कहाँ जाता है ? ॥१६-१७॥ आज तीक्ष्ण बाणोंसे तेरा जीवन नष्ट करता हूँ । तूने जैसा कर्म किया है वैसा फल भोग ॥१८॥ हे अत्यन्त क्षुद्र ! निर्लज्ज ! परस्त्री संगका लोलुप ! अब मेरे सम्मुख आकर परलोकको प्राप्त हो ॥१९॥

तदनन्तर उन कठोर वचनोंसे जिनका मन प्रदीप्त हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने समस्त आकाशको गुंजाते हुए निम्नांकित वचन कहे । उन्होंने कहा कि रे क्षुद्र विद्याधर ! तू कुत्तेके समान व्यर्थ ही क्यों गरज रहा है ? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वहीं तुझे पहुँचाता हूँ ॥२०-२१॥ इतना कहकर लक्ष्मणने आकाशमें स्थित खरदूषणको रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पताका काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार पुण्यके क्षीण होनेपर चंचल शरीरको धारण करनेवाला ग्रह पृथिवीपर आ पड़ता है उसी प्रकार क्रोधसे लाल-लाल दीखनेवाला खरदूषण आकाशसे पृथिवीपर नीचे आ पड़ा ॥२३॥ खड्गकी किरणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसा खरदूषण लक्ष्मणकी ओर दौड़ा और लक्ष्मण भी सूर्यहास खड्ग खींचकर उसके सामने जा डटे ॥२४॥ इस प्रकार उन दोनोंमें निकटसे नाना प्रकारका भयंकर युद्ध हुआ तथा स्वर्गमें स्थित देवोंने साधु-साधु—धन्य-धन्य शब्दोंके साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥२५॥ उसी समय अखण्डित शरीरके धारक लक्ष्मणने कुपित हो खरदूषणके सिरपर यथार्थ नामवाला सूर्यहास खड्ग गिराया ॥२६॥

१. रिति म. । २. कृतान्योन्य म. । ३. युद्धे । ४. दुष्टः खेचरः दुःखेचरस्तत्सम्बुद्धौ हे दुःखेचर । ५. लीनदेहश्च म. । ६. चित्रयुद्धं म. ।

निर्जीवः पतितः क्षोणः, बभूव खरदूषणः । आलेख्यरविसंकाशो यद्वरस्वर्गच्युतोऽमरः ॥२७॥
 अथवा दयितो रत्या निश्चेष्टीभूतविग्रहः । रत्नपर्वतखण्डो वा दिग्गजेन निपातितः ॥२८॥
 अथ सेनापतिर्नाम्ना दूषणः खरदूषणः । विरथं कर्तुमारम्भे चन्द्रोदरनृपात्मजम् ॥२९॥
 लक्ष्मणेनेपुणा तावद्गाढं मर्मणि ताडितः । बूर्णमानो गतो भूमिं समाश्वसनमाधनुत ॥३०॥
 दत्त्वा विराधितायाथ तद्वलं खरदूषणम् । प्रययौ लक्ष्मणः प्रीतः प्रदेशं पद्मसंश्रितम् ॥३१॥
 यावत्पश्यति तं सुप्तं भूमौ सीताविवर्जितम् । जगौ चोत्तिष्ठ किं नाथ याता क्व वद जानकी ॥३२॥
 उत्थाय सहसा दृष्ट्वा लक्ष्मणं निर्घणाङ्गकम् । किञ्चित्पमोदमाधातः परिष्वजनतत्परः ॥३३॥
 जगाद भद्रं नो वेद्मि देवी केनापि किं हता । उत सिंहेन निर्मुक्ता न दृष्ट्वात्र गवेक्षिता ॥३४॥
 पातालं किं भवेन्नोता ननःशिखरमेव वा । उद्वेगेन विलीना वा सुकुमारशरीरिका ॥३५॥
 ततः क्रोधपरीताङ्गो विषादी लक्ष्मणोऽगदत् । देवीद्वेगानुबन्धेन न किञ्चिदपि कारणम् ॥३६॥
 नूनं दैत्येन केनापि हता केनापि जानकी । ध्रियमाणास्मिमां लप्स्ये कर्तव्योऽत्र न संशयः ॥३७॥
 परितान्त्र्योत्तमैर्विक्रैर्विविधैः श्रुतिपेशलैः । विमलेनाम्भसा तस्य सुखं प्राक्षालयत् सुधीः ॥३८॥
 श्रुत्वा तावदलं तारं शब्दमुत्तापिताननः । अपृच्छत् श्रीधरं रामः संभ्रमं किञ्चिदापयन् ॥३९॥
 किमेवा नर्दति क्षोणी गगनात्किमर्थं ध्वनिः । किं कृतं भवता पूर्वं शत्रुशेषं भयोद्धतम् ॥४०॥

जिससे वह निर्जीव होकर चित्रलिखित सूर्यके समान उस तरह पृथिवीपर आ पड़ा जिस तरह कि स्वर्गसे च्युत हुआ कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥२७॥ पृथिवीपर पड़ा निर्जीव खरदूषण ऐसा जान पड़ता था मानो निश्चेष्ट शरीरका धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गजके द्वारा गिराया हुआ रत्नगिरिका एक खण्ड ही हो ॥२८॥

तदनन्तर खरदूषणका दूषण नामक सेनापति चन्द्रोदर राजाके पुत्र विराधितको रथरहित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥२९॥ उसी समय लक्ष्मणने उसके मर्मस्थलमें बाणसे इतनी गहरी चोट पहुँचायी कि बेचारा धूमता हुआ पृथिवीपर आ गिरा और तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर खरदूषणकी वह समस्त सेना विराधितके लिए देकर प्रीतिसे भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥३१॥ जाते ही लक्ष्मणने सीता रहित रामको पृथिवीपर सोते हुए देखा । देखकर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! उठो और कहो कि सीता कहाँ गयी हैं ? ॥३२॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मणको घाव रहित शरीरका धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिंगन करने लगे ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि हे भद्र ! मैं नहीं जानता हूँ कि देवीको क्या किसीने हर लिया है या सिंहेने खा लिया है । मैंने इस वनमें बहुत खोजा पर दीखी नहीं ॥३४॥ उसे कोई पातालमें ले गया है या आकाशके शिखरमें पहुँचा दी गयी है अथवा वह सुकुमारांगी भयके कारण विलीन हो गयी है ॥३५॥ तदनन्तर जिनका शरीर क्रोधसे व्याप्त था ऐसे लक्ष्मणने विषादयुक्त होकर कहा कि हे देव ! उद्वेगकी परम्परा बढ़ानेसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३६॥ जान पड़ता है कि जानकी किसी दैत्यके द्वारा हरी गयी है सो कोई भी क्यों नहीं इसे धारण किये हो मैं अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमें संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार कानोंको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने निर्मल जलसे रामका मुख धुलाया ॥३८॥ तदनन्तर उस समय अतिशय उच्च शब्द सुन कुछ-कुछ सम्भ्रमको धारण करनेवाले रामने ऊपरकी ओर मुख कर लक्ष्मणसे पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाशसे यह शब्द आ रहा है ? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शत्रुको शेष रहने दिया है ? ॥३९-४०॥

१. खर-दूषणः म., क. । २. कर्मणि म. । ३. लक्ष्मणम् ।

सुमित्राजस्ततोऽबोचन्नाथाऽत्र हि महाहवे । उपकारो महान् काले खेचरेण कृतो मम ॥४१॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विराधित इति श्रुतः । प्रस्तावे दैवतेनैष हितेन परिद्वौकितः ॥४२॥
चतुर्विधेन महता बलेनास्य सुचेतसः । आगच्छतो महानेष शब्दः श्रुतिसुपागतः ॥४३॥
विश्रब्धचेतसोर्यावत् कथेयं वर्त्तते तयोः । तावन्महाबलोपेतः^१ परिप्राप विराधितः ॥४४॥
ततो जयजयस्वानं कृत्वा विरचिताङ्गलिः । जगाद् खेचरस्वामी प्रणतैः सचिवैः समम् ॥४५॥
स्वामी त्वं परमोऽस्माभिश्चिरात् प्राप्तो नरोत्तमः । अतः प्रदीयतामाज्ञा नाथ कर्तव्यवस्तुनि ॥४६॥
इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभाणीत् साधो शृणु सुवर्तनम्^३ । गुरोः केनापि मे पत्नी हता दुर्नयवर्तिना ॥४७॥
तथा विरहितः सोऽयं पद्मः शोकवशीकृतः । यदि नाम त्यजेत् प्राणांस्तावद्दक्षिं विशाम्यहम् ॥४८॥
एतत्प्राणदुदासक्तात् मद्म प्राणानवेहि मे । ततोऽत्र प्रकृते किञ्चित्कर्तव्यं कारणं परम् ॥४९॥
ततो नताननः किञ्चित्स्वगप्रभुरचिन्तयत् । कुत्सपि श्रममेतं मे कष्टमाशा न पूरिता ॥५०॥
सुखं संवसता स्वेष्टं नानावनविहारिणा । पद्मात्मा योजितः कष्टे कथं संशयगह्वरे ॥५१॥
दुःस्वार्णवतटं प्राप्तो यां यां गृह्णाम्यहं लताम् । दैवेनोन्मूल्यते सा सा कृत्स्नं विधिवशं जगत् ॥५२॥
तथाप्युत्साहमाश्रित्य^५ कर्तव्यं ससुपागतम् । करोमि कुर्वतो मद्ममभद्रं वा स्वकर्मजम् ॥५३॥
इति ध्यात्वावहीरूपं^४ भजन्नुत्साहसंस्तुतम् । जगाद् सचिवान् धीरो ववसा स्फुटतेजसा ॥५४॥
पत्नी महामरस्यास्य नीता यदि महीतलम् । अथाकाशं गिरिं वारि स्थलं वा विपिनं पुरम् ॥५५॥
^१ गवेषयत यत्नेन सर्वशासु समन्ततः । यदिच्छत कृतार्थानां तद्वास्यामि महानटाः ॥५६॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्धमें विद्याधरने समयपर मेरा बड़ा उपकार किया है । वह विद्याधर राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित है जो हितकारी देवके द्वारा ही मानो अवसरपर मेरे समीप भेजा गया था ॥४१-४२॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला वह विद्याधर चार प्रकारकी बड़ी भारी सेनाके साथ आपके पास आ रहा है सो यह महान् शब्द उसीका सुनाई दे रहा है ॥४३॥ इधर विश्वस्त चित्तके धारक राम-लक्ष्मणके बीच जबतक यह कथा चलती है तबतक बड़ी भारी सेनाके साथ विराधित वहाँ आ पहुँचा ॥४४॥ तदनन्तर विद्याधरोंके राजा विराधितने नम्नीभूत मन्त्रियोंके साथ-साथ हाथ जोड़कर तथा जय-जय शब्दका उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्योंमें उत्तम उत्कृष्ट स्वामी चिरकाल बाद प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्यके विषयमें मुझे आज्ञा दीजिए ॥४५-४६॥ इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणने कहा कि हे सज्जन ! सुनो, किसी दुराचारीने मेरे अग्रज—रामकी पत्नी हर ली है सो उससे रहित राम, शोकके वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो मैं निश्चय हो अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥४७-४८॥ क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हींके प्राणोंके साथ मजबूत बँधे हुए हैं इसलिए इस विषयमें कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥४९॥ तब विद्याधरोंका राजा विराधित नीचा मुख कर कुछ विचार करने लगा कि अहो ! इतना श्रम करनेपर भी मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥५०॥ मैं पहले सुखसे इच्छानुसार निवास करता था फिर स्थानभ्रष्ट हो नाना वनोंमें भ्रमण करता रहा । अब मैंने अपने आपको इनकी शरणमें सौंपा सो देखो ये स्वयं कष्टकारी संशयके गर्तमें पड़ रहे हैं ॥५१॥ दुःखरूपो सागरके तटको प्राप्त हुआ मैं जिस-जिस लताको पकड़ता हूँ सो दैवके द्वारा वही-वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तवमें समस्त संसार कर्मोंके आधीन है ॥५२॥ यद्यपि ये अपने कर्मके अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ भी करें तो भी मैं उत्साह धारण कर इनके इस उपस्थित कार्यको अवश्य करूँगा ॥५३॥ इस प्रकार अन्तरंगमें विचारकर उत्साहको धारण करते हुए धीर-वीर विराधितने तेजपूर्ण वचनोंमें मन्त्रियोंसे कहा कि इन महामानवकी पत्नी महीतल, आकाश,

१. अवसरे, प्रसवे म. । २. परिप्राप्तो म. । ३. अग्रजस्य । ४. -माकृत्य म. । ५. भजन्नुत्साहमसंस्तुगम् ब. ।

६. गवेषयतो म. ।

इत्युक्त्वाः संमदोपेताः संनद्धाः परमौजसः । नानाकल्पाः खगा जग्मुर्दिशो दश यशोर्थिनः ॥५७॥
 अथार्कजटिनः सूनूर्नाम्ना रत्नजटी खगः । खड्गी द्रागिति शुश्राव दूरतो रुदितध्वनिम् ॥५८॥
 आशां च भजमानस्तामाकर्णदिति निस्वनम्^१ । हा राम हा कुमारैति जलधेरूर्ध्वमम्बरं ॥५९॥
^२परिदेवननिस्वानं श्रुत्वा तं सपरिस्फुटम् । समुत्पपात तं देशं विमानं यावदीक्षते ॥६०॥
 अस्योपरि परिकन्दं कुर्वन्तीमतिविह्वलाम्^३ । वैदेहीं स समालोक्य वभाण क्रोधपूरितः ॥६१॥
 तिष्ठ तिष्ठ महापाप दुष्ट विद्याधराधम । कृत्वापराधमीदृशं क्व स्वया मय्यतेऽधुना ॥६२॥
 दयितां रामदेवस्य प्रभामण्डलसोदराम् । मुञ्च शीघ्रमभीष्टं ते जीवितं यदि दुर्मते ॥६३॥
 ततो दशाननोऽप्येनमाक्रोश्य पश्यरवनम् । युद्धे समुद्यतः क्रुद्धो विह्वलीभूतमानसः ॥६४॥
 पुनश्चाचिन्तयद्युद्धे^४ प्रवृत्ते सति विह्वला । मयानिरूपिता सीता कदाचित्पञ्चतां भजेत् ॥६५॥
 आकुलां^५ रक्षता चैतां परमव्याकुलात्मना । न व्यापादयितुं शक्यः क्षुद्रोऽप्येष नभश्चरः ॥६६॥
 इति संक्षिप्य संभ्रान्तस्थयमौल्युत्तराम्बरः । स्वस्थस्य रत्नजटिनो बलीं^६ विद्यामपाहरत् ॥६७॥
 अथ रत्नजटी त्रस्तः किञ्चिन्तन्प्रमावतः । पपात शनकैरुल्कास्फुलिङ्ग इव मेदिनीम् ॥६८॥
 समुद्रजलमध्यस्थं कम्बुद्वीपं समाश्रितः । आयुर्वर्तनसामर्थ्याद्भग्नपोतो यथा वणिक् ॥६९॥
 निश्चलश्च क्षणं स्थित्वा समुच्छ्वस्यायतं भृशम् । कम्बुपर्वतसांख्य दिशाचक्रं व्यलोकयत् ॥७०॥

पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगरमें कहीं भी ले जायी गयी हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओंमें सब ओरसे उसकी खोज करो । हे महायोद्धाओ ! खोज करनेपर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥५४-५६॥ इस प्रकार कहनेपर हर्षसे युक्त, अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित, परम तेजके धारक, नाना प्रकारकी वेष-भूषासे सुशोभित और यशके इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओंमें गये ॥५७॥

अथानन्तर अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी नामक खड्गधारी विद्याधरने दूरसे शीघ्र ही रोनेका शब्द सुना ॥५८॥ जिस दिशासे रोनेका शब्द आ रहा था उसी दिशामें जाकर उसने समुद्रके ऊपर आकाशमें 'हा राम ! हा कुमार लक्ष्मण !' इस प्रकारका शब्द सुना ॥५९॥ विलापके साथ आते हुए उस अत्यन्त स्पष्ट शब्दको सुनकर जब वह उस स्थानकी ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥६०॥ उस विमानके ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीताको देखकर वह क्रोध-युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर ! ऐसा अपराध कर अब तू कहाँ जाता है ? ॥६१-६२॥ हे दुर्बुद्धे ! यदि तुझे जीवन इष्ट है तो रामदेवकी स्त्री और भामण्डलकी बहनको शीघ्र ही छोड़ ॥६३॥ तदनन्तर कर्कश शब्द कहनेवाले रत्नजटीके प्रति कर्कश शब्दोंका उच्चारण कर क्रोधसे भरा तथा विह्वल चित्तका धारक रावण युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६४॥ फिर उसने विचार किया कि 'युद्ध होनेपर मैं इस विह्वल सीताको देख नहीं सकूँगा और उस दशामें सम्भव है कि यह कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जाये और यदि इस घबड़ायी हुई सीताकी रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यन्त व्याकुल चित्त होनेके कारण, यद्यपि यह विद्याधर क्षुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा' ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचारकर हड़बड़ाहटके कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय दस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे बलवान् रावणने आकाशमें स्थित रत्नजटी विद्याधरकी विद्या हर ली ॥६७॥

अथानन्तर भयभीत रत्नजटी किसी मन्त्रके प्रभावसे उल्काके समान धीरे-धीरे पृथ्वीपर आ पड़ा ॥६८॥ जिसका जहाज डूब गया है ऐसे वणिकके समान वह आयुका अस्तित्व शेष रहनेके कारण समुद्र जलके मध्यमें स्थित कम्बुनामक द्वीपमें पहुँचा ॥६९॥ वहाँ वह क्षण-भर निश्चल बैठा

१. -यति निस्वनम् म. । २. यदि देवेन म. । ३. मतिविह्वलाम् म. । ४. प्रवर्त्ते म. । ५. रक्षितां म. । ६. स्वस्थस्य म. । ७. बलवान् रावणः ।

ततः समुद्रवातेन शिशिरत्वमुपेयुषा ।^१ अपनीतश्रमस्वेदः समाशश्वास दुःखितः ॥७१॥
^२ येऽप्यन्येऽन्वेषणं कर्तुं गतास्तेऽन्विष्य शक्तितः । राधवस्यान्तिकं प्राप्ताः प्रणष्टवदनौजसः ॥७२॥
 तेषां ज्ञात्वा मनः शून्यं महीविन्यस्तचक्षुषाम् । पशो जगाद् दीर्घोष्णं निश्चस्य म्लानलोचनः ॥७३॥
 निजां शक्तिममुञ्चद्भिर्भवद्भिः साधुखेचराः । अस्मत्कार्यं कृतो यत्नो देवं तु प्रतिकूलकम् ॥७४॥
 तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं यात वा स्वं समाश्रयम् ।^३ वाडवास्यगतं रत्नं करात् किं पुनरीक्ष्यते ॥७५॥
 नूनं सर्वं कृतं कर्म प्रापणीयं फलं मया । तत्कर्तुमन्यथा शक्यं न भवद्भिर्मयापि वा ॥७६॥
 विमुक्तं बन्धुभिः कष्टं विर्कृष्टं वनमाश्रितम् । अनुकम्पा न तत्रापि जनिता दैवशत्रुणा ॥७७॥
 मन्ये यथानुबन्धेन लग्नोऽयं विधिरुद्धतः । तथैतस्मात्परं दुःखं किं नामान्यत्करिष्यति ॥७८॥
 परिदेवनमारब्धे कर्तुमेवं नराधिपे । धीरं विराधितोऽवोचन् परिसान्त्वनपण्डितः ॥७९॥
 विषादमतुलं देव किमेवमनुसेवसे । स्वल्पैरेव दिनैः पश्य प्रियामनघविग्रहाम् ॥८०॥
 शोको हि नाम कोऽप्येष विषमेदो महत्तमः । नाशयस्याश्रितं देहं का कथान्येषु वस्तुषु ॥८१॥
 तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं महापुरुषसेवितम् । भवद्भिधा विवेकानो भवनं क्षेत्रमुत्तमम् ॥८२॥
 जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्रितरादपि । ग्रही^४ ह्रस्वमतिर्मदं कृच्छ्रादपि न पश्यति ॥८३॥
 कालो नैष विषादस्य दीयतां कारणे मनः । औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥८४॥

फिर बार-बार लम्बी सांस लेकर वह कम्बु पर्वतपर चढ़कर दिशाओंकी ओर देखने लगा ॥७०॥ तदनन्तर समुद्रकी शीतल वायुसे जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी कुछ सन्तुष्ट हुआ ॥७१॥ जो अन्य विद्याधर सीताकी खोज करनेके लिए गये थे वे शक्ति-भर खोज-कर रामके समीप वापस पहुँचे । उस समय प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होनेसे उनके मुखका तेज नष्ट हो गया था ॥७२॥ जिनके नेत्र पृथ्वीपर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका मन शून्य जानकर म्लाननेत्रोंके धारक रामने लम्बी और गरम सांस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरो ! आप लोगोंने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्यमें प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥७३-७४॥ अब आप लोग अपनी इच्छानुसार बैठिए अथवा अपने-अपने घर जाइए । जो रत्न हाथसे छूटकर बड़वानलमें जा गिरता है वह क्या फिर दिखाई देता है ? ॥७५॥ निश्चय ही जो कुछ कर्म मैंने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्यथा कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ ॥७६॥ मैंने भाई-बन्धुओंसे रहित, कष्टकारी दूरवर्ती वनका आश्रय लिया सो वहाँ भी भाग्यरूपी शत्रुने मुझपर दया नहीं की ॥७७॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुर्दैव मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा ? ॥७८॥ इस प्रकार कहकर राम विलाप करने लगे तब सान्त्वना देनेमें निपुण विराधितने बड़ी धीरतासे कहा कि हे देव ! आप इस तरह अनुपम विषाद क्यों करते हैं ? आप थोड़े ही दिनोंमें निष्पाप शरीरकी धारक प्रियाको देखेंगे ॥७९-८०॥ यथार्थमें यह शोक कोई बड़ा भारी विषका भेद है जो आश्रित शरीरको नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओंकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥८१॥ इसलिए महापुरुषोंके द्वारा सेवित धैर्यका अवलम्बन कीजिए । आप-जैसे उत्तम-पुरुष विवेककी उत्पत्तिके उत्तम क्षेत्र हैं ॥८२॥ धीरवीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो बहुत समय बाद भी कल्याणको देख लेता है और जो तुच्छ बुद्धि-का धारी अधीर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याणको नहीं देख पाता है ॥८३॥ यह विषाद करनेका समय नहीं है कार्य करनेमें मन दीजिए क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करनेवाली है ॥८४॥

१. अपरीतश्रमस्वेदसमाशश्वासदुःखितः म. । २. यथा स्वन्वेषणं म. । ३. वाडवास्यां गतं म., ब. । ४. विद्वरं । ५. गृही ख. । ६. उदासीन म. ।

विद्याधरमहाराजे निहते खरदूषणे । अर्थान्तरमनुप्राप्तं दुरन्तमवधार्यताम् ॥८५॥
 किष्किन्धेन्द्रेन्द्रजिहीरी मानुकर्णस्तथैव च । त्रिशिराः क्षोभणो भीमः क्रूरकर्मा महोदरः ॥८६॥
 एवमाद्या महायोधा नानाविद्यामहौजसः । यास्यन्ति सांप्रतं क्षोभं मित्रस्वजनदुःखतः ॥८७॥
 नानायुद्धसहस्रेषु सर्वे ऽमी लब्धकीर्तयः । विजयार्थं नगावासखगेन्द्रेणाप्यसाधिताः ॥८८॥
 पवनस्यात्मजः ख्यातो यस्य वानरलक्षितम् । केतुं दूरात् समालोक्य विद्रवन्ति^१ द्विषां गणाः^२ ॥८९॥
 तस्याभिमुखतां प्राप्य दैवयोगात् सुरा अपि । त्यजन्ति विजये बुद्धिं स हि कोंऽपि महाशयाः ॥९०॥
 तस्मादुत्तिष्ठ तत् स्थानमलंकारक्यमाश्रिताः । भामण्डलस्वसुवार्ता स्वस्थीभूता लमामहे ॥९१॥
 तद्धि नः पुरमायातमन्वयेन रसातले । तत्र दुर्गं स्थिताः कार्यं चिन्तयामो यथोचितम् ॥९२॥
 इत्युक्ते चतुरैरश्वैश्चतुर्भिर्युक्कमुत्तमम् । भास्वरं रथमारुह्य प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥९३॥
 शुश्रुमाते तदात्यन्तं न तौ पुरुषसत्तमौ । सीतया रहितौ^३ सम्यग्दृष्ट्या बोधशमविव ॥९४॥
 चतुर्विधमहासैन्यसागरेण समानृतः । त्वरावानग्रतस्तस्थौ चन्द्रोदरनृपात्मजः ॥९५॥
 तावच्चन्द्रनखासूनुं नगरद्वारनिःसृतम् । कृतयुद्धं पराजित्य प्रविष्टः परमं पुरम् ॥९६॥
 तत्र देवनिवासाभे पुरे रत्नसमुज्ज्वले^४ । यथोचितं स्थितं चक्रुः खरदूषणवेशमनि ॥९७॥
 तस्मिन्मरसद्याभे भवने रघुनन्दनः । सीताया गमनाल्लेभे धृतिं तु न मनागपि ॥९८॥
 अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागसे । कान्ताविद्योगदग्धस्य सर्वं विन्ध्यवनायते ॥९९॥

विद्याधरोके राजा खरदूषणके मारे जानेपर दूसरी बात हो गयी है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥८५॥ किष्किन्धापुरीका राजा सुग्रीव, इन्द्रजित्, भानुकर्ण, त्रिशिरा, क्षोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि बड़े-बड़े योद्धा जो नाना विद्याओंके धारक तथा महा-तेजस्वी हैं इस समय अपने मित्र — खरदूषणके कुटुम्बी जनोंके दुःखसे क्षोभको प्राप्त होंगे ॥८६-८७॥ इन सब योद्धाओंने नाना प्रकारके हजारों युद्धोंमें सुयश प्राप्त किया है तथा विजयार्थं पर्वतपर रहनेवाला विद्याधरोंका राजा भी इन्हें वश नहीं कर सकता ॥८८॥ पवनंजयका पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओंके झुण्ड दूरसे ही भाग जाते हैं ॥८९॥ दैवयोगसे देव भी उसका सामना कर विजयकी अभिलाषा छोड़ देते हैं यथार्थमें वह कोई अद्भुत महायशस्वी पुरुष है ॥९०॥ इसलिए उठिए, अलंकारपुर नामक सुरक्षित स्थानका आश्रय लें वहाँ निश्चिन्ततासे रहकर भामण्डलीकी बहनका समाचार प्राप्त करें ॥९१॥ वह अलंकारपुर पृथिवीके नीचे है और हम लोगोंकी वंश-परम्परासे चला आया है उसी दुर्गम स्थानमें स्थित रहकर हम लोग यथायोग्य कार्यकी चिन्ता करेंगे ॥९२॥ इस प्रकार कहनेपर चार चतुर घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम देदीप्यमान रथपर सवार होकर राम-लक्ष्मणने प्रस्थान किया ॥९३॥ जिस प्रकार सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान और चारित्र्य सुशोभित नहीं होते हैं उसी प्रकार उस समय सीतासे रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नहीं हो रहे थे ॥९४॥ चार प्रकारकी महासेनारूपी सागरसे घिरा विराधित शीघ्रता करता हुआ उनके आगे स्थित था ॥९५॥ जबतक वह पहुँचा तबतक चन्द्रनखाका पुत्र नगरके द्वारसे निकलकर युद्ध करने लगा सो उसे पराजित कर वह परम सुन्दर नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ ॥९६॥ वह नगर देवोंके निवास-स्थानके समान रत्नोंसे देदीप्यमान था । वहाँ जाकर विराधित तथा राम-लक्ष्मण खरदूषणके भवनमें यथायोग्य निवास करने लगे ॥९७॥ यद्यपि वह भवन देवभवनके समान था तो भी राम सीताके चले जानेसे वहाँ रंच मात्र भी धैर्यकी प्राप्त नहीं होते थे—वहाँ उन्हें सीताके बिना बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था ॥९८॥ स्त्रीके

१. सर्वे संप्राप्तकीर्तयः म. । २. विद्रवन्ति म. । ३. गणः म. । ४. त्यजन्ति विषये म. । ५. सम्यग्दृष्टिर्बोध-म. ।

६. समाकुले म. ।

अथकान्ते गृहस्यास्य तरुपण्डविराजिते । प्रोसादमतुलं वीक्ष्य ससार रघुनन्दनः ॥१००॥
तत्रार्हत्प्रतिमां दृष्ट्वा रत्नपुष्पकृतार्चनाम् । क्षणविरसृतसन्तापः पद्मो धृतिमुपागतः ॥१०१॥
इतस्ततश्च तत्रार्चां वीक्षमाणः कृतानतिः । किञ्चित् प्रक्षान्तदुःखोर्मिरवतस्थे रघूत्तमः ॥१०२॥
आत्मीयबलगुप्तश्च सुन्दो मात्रा समम्बितः । पितृभ्रातृविनाशेन शोको लङ्कासुपाविशत् ॥१०३॥

शालिनीच्छन्दः

एवं संगान् सावधानान् विदिष्वानानादुःखैः प्रापणीयानुपायैः ।
विधैर्युक्तान् भूरिभिर्दुर्निवारैरिच्छां तेषु प्राणिनो मा कुरुध्वम् ॥१०४॥
यद्यप्याशापूर्वकमार्तुभावात् संन कर्तुं जायते प्राणमाजाम् ।
प्राप्य ज्ञानं साधुवर्गोपदेशाद्गन्त्री नाशं सा रवेः शर्वरीव ॥१०५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतावियोगदाहाभिधानं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४५॥



समागममें वन भी रमणीयताको प्राप्त होता है और स्त्रीके वियोगसे जलते हुए मनुष्यको सब कुछ विन्ध्य वनके समान जान पड़ता है ॥१९९॥

अथानन्तर वृक्षोंके समूहसे सुशोभित, उस भवनके एकान्त स्थानमें अनुपम मन्दिर देखकर राम वहाँ गये ॥१००॥ उस मन्दिरमें रत्न तथा पुष्पोंसे जिसकी पूजा की गयी थी ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाके दर्शन कर वे क्षण-भर सब सन्ताप भूलकर परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०१॥ उस मन्दिरमें इधर-उधर जो और भी प्रतिमाएँ थीं उनके दर्शन करते तथा नमस्कार करते हुए राम वहाँ रहने लगे । जिनेन्द्र प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे उनके दुःखकी लहरें कुछ शान्त हो गयी थीं ॥१०२॥ पिता और भाईके मरनेसे जिसे शोक हो रहा था ऐसा सुन्द, अपनी सेनासे सुरक्षित होता हुआ माता चन्द्रनखाके साथ लंकामें चला गया ॥१०३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार जो नाना प्रकारके दुःखदायी उपायोंसे प्राप्त करने योग्य हैं तथा अनेक प्रकारके दुर्निवारसे युक्त हैं ऐसे इन परिग्रहोंको नश्वर जानकर हे भव्यजनो ! उनमें अभिलाषा मत करो ॥१०४॥ यद्यपि पूर्वं कर्मोदयसे प्राणियोंके परिग्रह संज्ञित करने ही आशा होती है तो भी मुनि-समूहके उपदेशसे ज्ञान प्राप्त कर वह आशा उस तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह कि सूर्यसे प्रकाश पाकर रात्रि नष्ट हो जाती है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें सीताके वियोगजन्य दाहका वर्णन करनेवाला पैतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४५॥



षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व

तत्रासावुत्तमे तुङ्गे विमानशिखरे स्थितः । स्वैरं स्वैरं व्रजन् रेजे रावणो दिवि भानुवत् ॥१॥
 सीतायाः शोक्तसाया म्लानं वीक्ष्यास्यपङ्कजम् । रतिरागविमूढात्मा दध्यौ किमपि राघवः ॥२॥
 अंशुदुर्दिनवक्रायाः सीतायाः कृपणं परम् । नानाप्रियशतान्यूचे पृथुः पाश्वतोऽग्रतः ॥३॥
 मारस्यात्यन्तमृदुभिर्हतोऽहं कुसुमेधुमिः । म्रिये यदि ततः साध्वि नरहत्या मवेत्तव ॥४॥
 वक्त्रारविन्दमेतत्ते सकोपमपि सुन्दरि । राजते चारुभावानां सर्वथैव हि चारुता ॥५॥
 प्रसीद देवि भृत्यास्ये सकृच्चक्षुर्विधीयताम् । स्वच्छक्षुःकान्तितोयेन स्नातस्यापैतु मे श्रमः ॥६॥
 यदि दृष्टिप्रसादं मे न करोषि वरानने । एतेन पादपद्मेन सकृत् ताडय मस्तके ॥७॥
 भवत्या रमणोद्याने किं न जातोऽस्म्यशोककः । सुलभा यस्य ते श्लाघ्या पादपद्मतलाहतिः ॥८॥
 कृशोदरि गवाक्षेण विमानशिखरस्थिता । दिशः पश्य प्रयातोऽस्मि वियदूर्ध्वं स्वेरपि ॥९॥
 कुलपर्वतसंयुक्तां समेहं सहसागराम् । पश्य श्रोणीमिमां देवि शिल्पिनेव विनिर्मिताम् ॥१०॥
 एवमुक्ता सती सीता परावीनव्यवस्थिता । अन्तरे तृणमाधाय जगादारुचिताक्षरम् ॥११॥
 अवसर्प ममाङ्गानि मा स्पृशः पुरुषाधम । निन्द्याक्षरामिमां वाणीमोदृशीं भाषसे कथम् ॥१२॥

अथानन्तर विमानके ऊँचे शिखरपर बैठा इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाशमें सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१॥ रति सम्बन्धी रागसे जिसकी आत्मा विमूढ़ हो रही थी ऐसा रावण शोक-सन्तप्त सीताके मुरझाये हुए मुख-कमलका ध्यान कर रहा था—उसी ओर देख रहा था ॥२॥ जिसके मुखसे निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी ऐसी सीताके आगे-पीछे तथा बगलमें खड़ा होकर रावण बड़ी दीनताके साथ नाना प्रकारके सैकड़ों प्रिय वचन बोलता था ॥३॥ वह कहता था कि मैं कामदेवके अतिशय कोमल पुष्पमयी बाणोंसे घायल होकर यदि मर जाऊँगा तो हे साध्वि ! तुझे नरहत्या लगेगी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तेरा यह मुखारविन्द क्रोध सहित होनेपर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि जो सुन्दर हैं उनमें सभी प्रकारसे सुन्दरता रहती है ॥५॥

हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दासके मुखपर एक बार चक्षु डालो । तुम्हारे चक्षुकी कान्तिरूपी जलसे नहानेपर मेरा सब श्रम दूर हो जायेगा ॥६॥ हे सुमुखि ! यदि दृष्टिका प्रसाद नहीं करती हो—आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो इस चरण-कमलसे ही एक बार मेरे मस्तकपर आघात कर दो ॥७॥ मैं तुम्हारे मनोहर उद्यानमें अशोक वृक्ष क्यों नहीं हो गया ? क्योंकि वहाँ तुम्हारे इस चरण-कमलका प्रशंसनीय तल-प्रहार सुलभ रहता ॥८॥ हे कृशोदरि ! विमानकी छतपर बैठकर झरोखेसे जरा दिशाओंको तो देखो मैं सूर्यसे भी कितने ऊपर आकाशमें चल रहा हूँ ॥९॥ हे देवि ! कुलाचलों, मेरु पर्वत और सागरसे सहित इस पृथिवीको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो किसी कारीगरके द्वारा ही बनायी गयी हो ॥१०॥ इस प्रकार कहनेपर पीठ देकर बैठी हुई सीता बीचमें तृण रखकर निम्नांकित अप्रिय वचन बोली ॥११॥

उसने कहा कि हे नीच पुरुष ! हट, मेरे अंग मत छू । तू इस प्रकारकी यह निन्दनीय वाणी

१. अस्तु दुर्दिनवक्रायाः म. । २. संयुक्तं म. । ३. सहसागरम् म. । ४. विनिर्मितम् म. । ५. व्रण- म. । ६. अपसार्य म. ।

पापात्मकमनायुष्यमस्वर्ग्यमयशस्करम् । असदीहितमेतत्ते विरुद्धं मयकारि च ॥१३॥
 परदारान् समाकाङ्क्षन् महादुःखमवाप्स्यसि । पश्चात्तापपरीताङ्गो भस्मच्छन्नलोपमम् ॥१४॥
 महता मोहपङ्केन तवोपचितचेतसः । मुधा घर्मोपदेशोऽयमन्धे नृत्यविलासवत् ॥१५॥
 इच्छामात्रादपि भुङ्क्ते बद्ध्वा पापमनुत्तमम् । नरके वासमासाद्य कष्टं वर्त्तनमाप्स्यसि ॥१६॥
 रूक्षाक्षराभिधानाभिः परं वाणीभिरित्यपि । मदनाहतचित्तस्य प्रेमास्य न निवर्त्तते (न्यवर्त्तते) ॥१७॥
 तत्र दूषणसंग्रामे निवृत्ते परमप्रियाः । शुकहस्तप्रहस्ताद्याः सोद्वेगाः स्वाम्यदर्शनात् ॥१८॥
 चलत्केतुमहाखण्डं कुमारार्कसमप्रभम् । विमानं वीक्ष्य दाशस्यं मुदितास्तं दुडौकिरे ॥१९॥
 प्रदानैर्दिव्यवस्तूनां संमनैश्चादुभिः परैः । तानिश्च भृत्यसंपन्निरभ्राह्मा जनकात्मजा ॥२०॥
 शक्नोति सुखधीः पातुं कः शिखामाशुशुक्षणेः । को वा नागवधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ॥२१॥
 कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि दशङ्गुलिसमाहितम् । ननाम रावणः सीतां निन्दितोऽपि तृणाग्रवत् ॥२२॥
 महेन्द्रसदृशस्तावद्विमयैः सचिवैर्भृशम् । नानादिग्भ्यः समायतैरावृतो रक्षसां पतिः ॥२३॥
 जय वर्धस्व नन्देति शब्दैः श्रवणहारिभिः । उपगीतः परिप्राप्तो लङ्कामाखण्डलोपमः ॥२४॥
 अचिन्तयच्च रामश्चो सोऽयं विद्याधराधिपः । यन्नाचरस्यमर्यादां तत्र किं शरणं भवेत् ॥२५॥
 यावत्प्राप्नोमि नो वार्तां भर्तुः कुशलवर्तिनः । तावदाहारकार्यस्य प्रत्याख्यानमिदं मम ॥२६॥

क्यों बोल रहा है ? ॥१२॥ तेरी यह दुष्ट चेष्टा पापरूप है, आयुको कम करनेवाली है, नरकका कारण है, अपकीर्तिको करनेवाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करनेवाली है ॥१३॥ परस्त्रीकी इच्छा करता हुआ तू महादुःखको प्राप्त होगा तथा भस्मसे आच्छादित अग्निके समान पश्चात्ताप-से तेरा समस्त शरीर व्याप्त होगा ॥१४॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापंकसे व्याप्त है अतः तुझे धर्मका उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अन्धके सामने नृत्यके हाव-भाव दिखाना व्यर्थ होता है ॥१५॥ अरे नीच ! परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे तू बहुत भारी पाप बांधकर नरकमें जायेगा और वहाँ कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त होगा ॥१६॥ इस प्रकार यद्यपि सीताने कठोर अक्षरोंसे भरी वाणीके द्वारा रावणका तिरस्कार किया तो भी कामसे आहत चित्त होनेके कारण उसका प्रेम दूर नहीं हुआ ॥१७॥

वहाँ खरदूषणका युद्ध समाप्त होनेपर भी स्वामी रावणका दर्शन न होनेसे परम स्नेहके भरे शुक, हस्त, प्रहस्त आदि मन्त्री परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे थे सो जब उन्होंने हिलती हुई पताकासे सुशोभित प्रातःकालीन सूर्यके समान रावणका विमान आता देखा तब वे हर्षित होकर उसके पास गये ॥१८-१९॥ उन्होंने दिव्य वस्तुओंकी भेंट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अतिशय प्रिय वचन कहकर रावणकी अगवान्नी की तो भी भृत्योंकी उन सम्पदाओंसे सीता वशीभूत नहीं हुई ॥२०॥ संसारमें ऐसा कोन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिखाका पान कर सके अथवा नागिनके शिरपर स्थित रत्नमयी शलाकाका स्पर्श कर सके ॥२१॥ यद्यपि सीताने तृणके अग्रभागके समान रावणका तिरस्कार किया था तो भी वह दशों अंगुलियोंसे सहित अंजलि शिरपर धारण कर उसे बार-बार नमस्कार करता था ॥२२॥ नाना दिशाओंसे आये हुए तथा इन्द्रके समान पूर्ण वैभवको धारण करनेवाले मन्त्रियोंने जिसे घेर लिया था और 'जय हो, बढ़ते रहो, स्मृदिमान् होओ' इत्यादि कर्णप्रिय वचनोंसे जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसे इन्द्रतुल्य रावणने लंकामें प्रवेश किया ॥२३-२४॥ उस समय सीताने विचार किया कि यह विद्याधरोंका राजा ही जहाँ अमर्यादाका आचरण कर रहा है वहाँ दूसरा कोन शरण हो सकता है ? ॥२५॥ फिर भी मेरा यह नियम है कि जब तक भर्ताका कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेती हूँ तबतक मेरे आहार कार्यका त्याग

१. शुकहस्ताद्याः सोद्वेगाः बभ्राम. म., व. । २. स्वादुभिः म. । ३. शक्नोतिमुखधीः म. ।

उदीचीर्न प्रतीचीर्न तत्रास्ति परमोज्ज्वलम् । गीर्वाणरमणं ख्यातमुद्यानं स्वर्गसंनिभम् ॥२७॥
 तत्र कल्पतरुच्छायमहापादपसंकुले । स्थापयित्वा रहः सीतां विवेश स्वनिकेतनम् ॥२८॥
 तावद्दूषणपञ्चत्वादप्रतोऽस्य महाशुचा । अष्टादश सहस्राणि विप्रलेपुर्महास्वरम् ॥२९॥
 भ्रातृचन्द्रनखा पादौ संस्थान्मुक्तकण्ठकम् । अमाग्या हा हतास्मीति विललापास्तदुर्दिनम् ॥३०॥
 रमणात्मजपञ्चत्ववह्निनिर्दग्धमानसाम् । विलपन्तीमिमां भूरि जगादैवं सहोदरः ॥३१॥
 अलं वत्से रुदित्वा ते प्रसिद्धं किं न विद्यते । जगत्प्राग्विहितं सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥३२॥
 अन्यथा क महीचारा जनाः क्षुद्रकशक्तयः । कायमेवंविधो भर्ता भवत्या व्योमगोचरः ॥३३॥
 मयेदमर्जितं पूर्वं व्यक्तं न्यायागतं फलम् । इति ज्ञात्वा शुचं कर्तुं कस्य सत्यस्य युज्यते ॥३४॥
 नाकाले म्रियते कश्चिद्भ्रजेणापि समाहृतः । मृत्युकालेऽमृतं जन्तोर्विषतां प्रतिपद्यते ॥३५॥
 येन व्यापादितो वत्से समरे खरदूषणः । अन्येषां वाहितेच्छानां मृत्युरेष भवाम्यहम् ॥३६॥
 स्वसारमेवमाश्वास्य दत्तादेशो जिनाचने । दह्यमानमना वासमवनं रावणोऽविशत् ॥३७॥
 तत्रादरनिराकाङ्क्षं तल्पविक्षिप्तविग्रहम् । सोन्मादकेशरिच्छायं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥३८॥
 भर्तारं दुःखयुक्तेव भूषणादरवर्जिता । महादरमुवाचैवमुपसृत्य मयात्मजा ॥३९॥
 किं नाथाकुलतां वत्से खरदूषणमृत्युना । न विषादोऽस्ति शूराणामापत्सु महतीष्वपि ॥४०॥

है ॥२६॥ तदनन्तर पश्चिमोत्तर दिशामें विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्गके समान सुन्दर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्षके समान कान्तिवाले बड़े-बड़े वृक्षोंसे व्याप्त उस उद्यानमें एक जगह सीताको ठहराकर रावण अपने महलमें चला गया ॥२७-२८॥ इतनेमें ही खरदूषणके मरणका समाचार पाकर रावणकी अठारह हजार रानियां बहुत भारी शोकके कारण महाशब्द करती हुई रावणके सामने विलाप करने लगीं ॥२९॥ चन्द्रनखा भाईके चरणोंमें जाकर तथा गला फाड़-फाड़कर 'हाय-हाय मैं अभागिनी मारी गयी' इस तरह अश्रुवर्षसे दुर्दिनको पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥३०॥ पति और पुत्रकी मृत्युरूपी अग्निसे जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चन्द्रनखासे भाई—रावणने इस प्रकार कहा ॥३१॥ कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है । यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि संसारके प्राणी पूर्वभवमें जो कुछ करते हैं उस सबका फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥३२॥ यदि ऐसा नहीं है तो क्षुद्रशक्तिके धारक भूमिगोचरी मनुष्य कहाँ और तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ ? ॥३३॥ 'मैंने यह सब पूर्वमें संचित किया था सो उसीका यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है' ऐसा जानकर किसी मनुष्यको शोक करना उचित नहीं है ॥३४॥ जबतक मृत्यु का समय नहीं आता है तबतक वज्रसे आहत होने पर भी कोई नहीं मरता है और जब मृत्युका समय आ पहुँचता है तब अमृत भी जीवके लिए विष हो जाता है ॥३५॥ हे वत्से ! जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसके साथ अन्य सब शत्रुओंके लिए मैं मृत्युस्वरूप हूँ अर्थात् मैं उन सबको मारूँगा ॥३६॥ इस प्रकार बहन्को आश्वासन तथा जिनेन्द्र देवकी अर्चाका उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निवासगृहमें चला गया ॥३७॥ वहाँ जाकर रावण आदरकी प्रतीक्षा किये बिना ही शय्यापर जा पड़ा । उस समय वह उन्मत्त सिंहके समान अथवा साँस भरते हुए सर्पके समान जान पड़ता था ॥३८॥ भर्ताको ऐसा देख, दुःखयुक्तकी तरह आभूषणोंके आदरसे रहित मन्दोदरी बड़े आदरसे उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥३९॥ कि हे नाथ ! क्या खरदूषणकी मृत्युसे आकुलताको धारण कर रहे हो ? परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि शूर-वीरोंको बड़ी-बड़ी आपत्तियोंमें भी विषाद नहीं होता ॥४०॥

१. तत्तलच्छाये महापादप- म. । २. सर्व म. । ३. मन्दोदरी ।

पुराणेकत्र संग्रामे सुहृदस्ते क्षयं गताः । न च ते शोचिता जातु दूषणं किन्तु शोचसि ॥४१॥
 आसन्महेन्द्रसंज्ञामि श्रीमालिप्रमुखाः नृपाः । बान्धवास्ते क्षयं याताः शोचितास्ते न जातुचिन् ॥४२॥
 अभूतसर्वशोकस्त्वमासीदपि महापति । शोकं किं बहसीदानीं जिज्ञासामि विमो वद ॥४३॥
 ततो महादरः स्वैरं निश्चस्योवाच रावणः । तत्पं किंचित्परित्यज्य धारितोदीरितोक्षरम् ॥४४॥
 शृणु सुन्दरि सद्भावमेकं ते कथयाम्यहम् । स्वामिन्यसि ममासूनां सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥४५॥
 यदि वाञ्छसि जीवन्तं मां ततो देवि नार्हसि । कोपं कतुं ननु प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुनः ॥४६॥
 ततस्तथैवमित्युक्ते शपथैर्विनियम्य ताम् । विलक्ष इव किंचित्स रावणः समभाषत ॥४७॥
 यदि सा वेधसः सुष्टिरपूर्वा दुःखवर्णना । सीता पतिं न मां वष्टि ततो मे नास्ति जीवितम् ॥४८॥
 लावण्यं यौवनं रूपं माधुर्यं चारुचेष्टितम् । प्राप्य तां सुन्दरीमेकां कृतार्थवस्तुप्रागतम् ॥४९॥
 ततो मन्दोदरी कष्टां ज्ञात्वा तस्य दशामिमाम् । विहसन्ती जगादैवं विस्फुरदन्तचन्द्रिका ॥५०॥
 इदं नाथ महाश्चर्यं वरो यत् कुरुतेऽर्थनम् । अपुण्या सावला नूनं या त्वां नार्थयते स्वयम् ॥५१॥
 अथवा निखिले लोके सैवैका परमोदया । या त्वया मानकूटेन याच्यते परमापदा ॥५२॥
 केयूररत्नजटिलैरिभैः करिकरोपमैः । आलिङ्ग्य बाहुभिः कस्माद् बलात् कामयसे न ताम् ॥५३॥
 सोऽवोचेदेवि विज्ञाप्यमस्त्यत्र शृणु कारणम् । प्रसभं येन गृह्णामि न तां सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥५४॥

पहले अनेक संग्रामोंमें तुम्हारे मित्र क्षयको प्राप्त हुए हैं उन सबका तुमने शोक नहीं किया किन्तु आज खरदूषणके प्रति शोक कर रहे हो ? ॥४१॥ राजा इन्द्रके संग्राममें श्रीमाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे बन्धुजन थे क्षयको प्राप्त हुए थे पर उन सबका तुमने कभी शोक नहीं किया ॥४२॥ पहले बड़ी-बड़ी आपत्तिमें रहनेपर भी तुम्हें किसीका शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यों शोकको धारण करते हो यह मैं जानना चाहती हूँ सो हे स्वामिन्, इसका कारण बतलाइए ॥४३॥

तदनन्तर महान् आदरसे युक्त रावण साँस लेकर तथा कुछ शय्या छोड़कर कहने लगा । उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुखके भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥४४॥ उसने कहा कि हे सुन्दरि ! सुनो एक सद्भावकी बात तुमसे कहता हूँ । तुम मेरे प्राणोंकी स्वामिनी हो और सदा मैंने तुम्हें चाहा है ॥४५॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नहीं है, क्योंकि प्राण ही तो सब वस्तुओंके मूल कारण हैं ॥४६॥ तदनन्तर 'ऐसा ही है' इस प्रकार मन्दोदरीके कहनेपर उसे अनेक प्रकारकी शपथोंसे नियममें लाकर कुछ-कुछ लज्जित होते हुए-की तरह रावण कहने लगा ॥४७॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व सृष्टिस्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूपसे नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥४८॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुन्दर चेष्टा सभी उस एक सुन्दरीकी पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए हैं ॥४९॥

तदनन्तर रावणकी इस कष्टकर दशाको जानकर हँसती तथा दाँतोंकी कान्तिरूपी चाँदनी-को फैलाती हुई मन्दोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बड़ा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है । जान पड़ता है कि वह स्त्री पुण्यहीन है जो स्वयं आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है ॥५०-५१॥ अथवा समस्त संसारमें वही एक परम अभ्युदयको धारण करनेवाली है । जिसकी कि तुम्हारे जैसे अभिमानी पुरुष बड़ी दीनतासे याचना करते हैं ॥५२॥ अथवा बाजुबन्दके रत्नोंसे जटिल तथा हाथीकी सूँड़की उपमा धारण करनेवाली इन भुजाओंसे बलपूर्वक आलिंगन कर क्यों नहीं उसे चाह लेते हो ? ॥५३॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि ! मैं जिस कारण उस

१. ततः सहोदरः म. । २. धारिता दारितोक्षरम् (?) । ३. -रसर्वा-म. । ४. -मेतां ल. । ५. परमा यदा ल. ।

आसीदन्तवीर्यस्य मूले भगवतो मया । आत्तमेकं व्रतं साक्षाद्देवि निर्ग्रन्थसंसदि ॥५५॥
 तेन देवेन्द्रवन्द्येन व्याख्यातमिदमोद्दृशम् । तथा निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ॥५६॥
 जन्तूनां दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् । पापान्निवृत्तिरल्पापि संसारोत्तारकारणम् ॥५७॥
 येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते^१ । नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणाः ॥५८॥
 मनुष्याणां पशूनां च तेषां यत् किंचिदन्तरम् । येषां न विद्यते कश्चिद्विरामो मोक्षकारणम् ॥५९॥
 शक्यता मुञ्चत पापानि^२ गृहीत सुकृतं धनम् । जात्यन्धा इव संसारे न भ्राम्यथ यतश्चिरम् ॥६०॥
 एवं भगवतो वक्त्रकमलान्निर्गतं वचः । मधु पीत्वा नराः केचिद्गगनाम्बरतां^३ गताः ॥६१॥
 सागारधर्ममपरे श्रिता विकलशक्तयः । कर्मानुभावतः सर्वे न सवन्ति समक्रियाः ॥६२॥
 एकेन साधुना तत्र प्रोक्तोऽहं सौम्यचेतसा । दशानन गृहाणैकां निवृत्तिमिति शक्तिः ॥६३॥
 धर्मरत्नोज्ज्वलद्वीपं प्राप्तः शून्यमनस्करः । कथं व्रजसि विज्ञानी गुणसंग्रहकोविदः ॥६४॥
 इत्युक्तेन मया देवि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । देवासुरमहर्षाणां प्रत्यक्षमिति माषितम् ॥६५॥
 यावन्नेच्छति मां नारी परकीया मनस्विनी । प्रसभं सा मया तावन्नाभिगम्यापि दुःखिना ॥६६॥
 एतच्चाप्यभिमानेन गृहीतं दयिते व्रतम् । का मां किल समालोक्य साध्वी भानं करिष्यति ॥६७॥
 अतो न तां स्वयं देवि गृह्णामि सुमनोहराम् । सकृज्जल्पन्ति राजानः प्रत्यवायोऽन्यथा महान् ॥६८॥
 यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत् सीता प्रसाद्यताम् । मरमभावङ्गते मेहे कूपखानश्रमो वृथा ॥६९॥

सर्वांग सुन्दरीको जब दर्स्ती ग्रहण नहीं करता हूँ इसमें निवेदन करने योग्य कारण है उसे सुनो ॥५४॥ हे देवि ! मैंने अनन्तवीर्य भगवान्‌के समीप निर्ग्रन्थ मुनियोंकी सभामें साक्षात् एक व्रत लिया था ॥५५॥ इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अनन्तवीर्य भगवान्‌ने एक बार ऐसा व्याख्यान किया कि एक वस्तुका त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥५६॥ दुःखोंसे भरी भव-परम्परामें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके पापसे थोड़ी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके संसारसे पार होनेका कारण हो जाती है ॥५७॥ जिन मनुष्योंके किसी पदार्थके त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घटके समान निर्गुण हैं ॥५८॥ उन मनुष्यों और पशुओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है जिनके कि मोक्षका कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥५९॥ हे भव्य जीवों ! शक्तिके अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धनका संचय करो जिससे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण न करना पड़े ॥६०॥ इस प्रकार भगवान्‌के मुखकमलसे निकले हुए वचनरूपी मकरन्दको पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हुए और हीनशक्तिको धारण करनेवाले कितने ही लोग गृहस्थधर्मको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदयके कारण सब एक समान क्रियाके धारक नहीं होते ॥६१-६२॥ उस समय सौम्य चित्तके धारक एक मुनिराजने मुझसे कहा कि हे दशानन ! शक्तिके अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥६३॥ तुम धर्मरूपी उज्ज्वल रत्नद्वीपको प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणोंके संग्रह करनेमें निपुण होकर भी खाली मन एवं खाली हाथ क्यों जाते हो ॥६४॥ इस प्रकार कहनेपर हे देवि ! मैंने मुनिराजको प्रणाम कर सुर-असुर तथा मुनियोंके समक्ष इस तरह कहा कि जबतक मानवती परस्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तबतक दुखी होनेपर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूँगा ॥६५-६६॥ हे प्रिये ! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देखकर कौन पतिव्रता मान करेगी ? ॥६७॥ इसलिए हे देवि ! मैं उस मनोहरांगीको स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक बार ही कहते हैं अन्यथा बहुत भारी बाधा आ पड़ती है ॥६८॥ अतः जबतक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तबतक सीताको प्रसन्न करो

१. कुतश्चित्पूजायते म. । २. गृहीतं म. । ३. दिगम्बरताम् ।

ततस्तं तादृशं ज्ञात्वा संजातकरुणोदया । बभाण रमणी नाथ स्वल्पमेतत् समोहितम् ॥७०॥
ततः किञ्चिन्मधुस्वादविलासवशवर्तिनी । सा देवरमगोचानं जगाम कमलक्षणा ॥७१॥
तदाज्ञां प्राप्य संपद्भिरष्टादशमहौजसाम् । दशाननवरस्त्रीणां सहस्राण्यनुवव्रजुः ॥७२॥
मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य सीतामेवमभाषत । समस्तनयविज्ञानकृतमण्डनमानसा ॥७३॥
अयि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विधीदसि । त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिर्यस्या दशाननः ॥७४॥
सर्वविद्याधराधीशं पराजितसुराधिपम् । त्रैलोक्यसुन्दरं कस्मात्पतिं नेच्छसि रावणम् ॥७५॥

निःस्वःक्षमागोचरः कोऽपि तस्यार्थं दुःखितासि किम् ।

सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्यं विधीयताम् ॥७६॥

आत्माथं कुर्वतः कर्म सुमहासुखसाधनम् । दोषो न विद्यते कश्चिःसर्वं हि सुखकारणम् ॥७७॥
मयेति गदितं वाक्यं यदि न प्रतिपद्यते । ततो यन्नविता तत्ते शत्रुभिः प्रतिपद्यताम् ॥७८॥
बलीयान् रावणः स्वामी प्रतिपक्षविवर्जितः । कामेन पीडितः कोपं गच्छेत्प्रार्थनभञ्जनान् ॥७९॥
यौ रामलक्ष्मणौ नाम तव कावचि संमतौ । तयोरपि हि सन्देहः क्रद्धे सति दशानने ॥८०॥
प्रतिपद्यस्व तत् क्षिप्रं विद्याधरमहेश्वरम् । ऐश्वर्यं परमं प्राप्ता सौरी लीलां समाश्रय ॥८१॥
इत्युक्ता वाष्पसंभारगद्गदोद्गीर्णवर्णिका । अगाद जानकी जातजललोचनधारिणी ॥८२॥
वनिते सर्वमेतत्ते विरुद्धं वचनं परम् । सतीनामोदृशं वक्त्रात्कथं निर्गन्तुमर्हति ॥८३॥
इदमेव शरीरं मे छिन्द भिन्दाथवा हत । भर्तुः पुरुषमन्यं तु न करोमि मनस्यपि ॥८४॥

वयोंकि घरके भस्म हो जानेपर कूप खुदानेका श्रम व्यर्थ है ॥८५॥

तदनन्तर रावणको वैसा जान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मन्दोदरी बोली कि हे नाथ ! यह तो बहुत छोटी बात है ॥७०॥ तत्पश्चात् कुछ मधुर विलासोंकी वशवर्तिनी कमललोचना मन्दोदरी देवारण्य नामक उद्यानमें गयी ॥७१॥ उसकी आज्ञा पाकर रावणकी अठारह हजार पानवती स्त्रियां भी वैभवके साथ उसके पोछे चली ॥७२॥ समस्त नय-नीतियोंके विज्ञानसे जिसका मन अलंकृत था ऐसी मन्दोदरीने क्रम-क्रमसे सीताके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥७३॥ कि हे सुन्दरि ! हर्षके स्थानमें विषाद क्यों कर रही हो ? वह स्त्री तीनों लोकोंमें धन्य है जिसका कि रावण पति है ॥७४॥ जो समस्त विद्याधरोंका अधिपति है, जिसने इन्द्रको पराजित कर दिया है, तथा जो तीनों लोकोंमें अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावणको तुम पतिरूपसे क्यों नहीं चाहती हो ? ॥७५॥ तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है सो उसके लिए इतना दुखी क्यों हो ? सर्व लोकसे श्रेष्ठ अपने आपको सुखी करना चाहिए ॥७६॥ अपने लिए महासुखके साधनभूत कार्यके करनेवालेको कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्यके सब प्रयत्न सुखके लिए ही होते हैं ॥७७॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत नहीं करती हो तो फिर जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुओंको प्राप्त हो ॥७८॥ रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रुसे रहित है प्रार्थना भंग करनेपर वह कामपीडित हो क्रोधको प्राप्त हो जायेगा ॥७९॥ जो राम-लक्ष्मण नामक कोई पुरुष तुझे इष्ट हैं सो रावणके कुपित होनेपर उन दोनोंका भी सन्देह ही है ॥८०॥ इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरों-के अधिपति रावणको स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्यको प्राप्त हो देवों सम्बन्धी लीलाको धारण करो ॥८१॥

इस प्रकार कहनेपर जिसके मुखसे वाष्पभारके कारण गद्गद वणं निकल रहे थे तथा जो अश्रुपूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते ! तेरे ये सब वचन अत्यन्त विरुद्ध हैं । पतिव्रता स्त्रियोंके मुखसे ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं ? ॥८२-८३॥ मेरे इस शरीर-

१. कोऽयं । २. सुराणामियं सौरी तां देवसंबन्धिनीम् ।

सनत्कुमाररूपोऽपि यदि वाखण्डलोपमः । नरस्तथापि तं मर्तुरन्यं नेच्छामि सर्वथा ॥८५॥
 युष्मान्प्रवीमि संक्षेपाद्वारात् सर्वानिहागतान् । यथा ब्रूत तथा नैतत्करोमि कुशतेप्सितम् ॥८६॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः स्वयमेव दशाननः । स्त्रीतां मदनतापातीं गङ्गावेणीमिव द्विपः ॥८७॥
 समीपीभूय चोवाच परं कथयथा गिरा । किंचिद्विहितं कुर्वन्मुखचन्द्रं महादरः ॥८८॥
 १मा यासीद्वि संश्रासं भक्तोऽहं तव सुन्दरि । शृणु विज्ञाप्यमेकं मे प्रसीदावहिता भव ॥८९॥
 वस्तुना केन हीनोऽहं जगत्त्रितयवर्तिना । न मां वृणोषि यद्योग्यमात्मनः पतिमुत्तमम् ॥९०॥
 इत्युक्त्वा स्त्र्यष्टुकामं तं सीतावोचत्संभ्रमा । २अपसर्पं ममाङ्गानि मा स्पृशः पापमानसः ॥९१॥
 उवाच रावणो देवि त्यज कोपाभिमानताम् । प्रसीद दिव्यभोगानां शचीव स्वामिनी भव ॥९२॥
 सीतोवाच कुशीलस्य विभवाः केवलं मलम् । जनस्य साधुशीलस्य दारिद्र्यमपि भूषणम् ॥९३॥
 चारुर्वशप्रसूतानां जनानां शीलहारतः । लोकद्वयविरोधेन शरणं मरणं वरम् ॥९४॥
 परयोषित्कृताशस्य तवेदं जीवितं मुधा । शीलस्य पालनं कुर्वन् यो जीवति स जीवति ॥९५॥
 एवं तिरस्कृतो मायां कतुं प्रवृत्ते द्रुतम् । नेशुर्देव्यः परित्रस्ताः संजातं सर्वमाकुलम् ॥९६॥
 एतस्मिन्नन्तरे जाते मानुर्मायाभयादिव । सभं किरणचक्रेण प्रविवेशास्तगह्वरम् ॥९७॥
 प्रचण्डैर्विगलद्गण्डैः करिभिर्चनवृंहितैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥९८॥

को तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परन्तु अपने भर्तृके सिवाय अन्य पुरुषको मनमें भी नहीं ला सकती हूँ ॥८४॥ यद्यपि मनुष्य सनत्कुमारके समान रूपका धारक हो अथवा इन्द्रके तुल्य हो तो भी भर्तृके सिवाय अन्य पुरुषकी मैं किसी तरह इच्छा नहीं कर सकती ॥८५॥ मैं यहाँ आयी हुई तुम सब स्त्रियोंसे संक्षेपमें इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मैं नहीं करूँगी तुम जो चाहो सो करो ॥८६॥

इसी बीचमें जिस प्रकार हाथी गंगाकी धाराके पास पहुँचता है उसी प्रकार कामके सन्तापसे दुःखी रावण स्वयं सीताके पास पहुँचा ॥८७॥ और पासमें स्थित हो मुखरूपी चन्द्रमाको कुछ-कुछ हास्यसे युक्त करता हुआ बड़े आदरके साथ अत्यन्त दयनीय वाणीमें बोला कि हे देवि ! भयको प्राप्त मत होओ, हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो ॥८८-८९॥ बताओ कि मैं तीनों लोकोंमें वर्तमान किस वस्तुसे हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो ॥९०॥ इतना कहकर रावणने स्पर्श करनेकी चेष्टा प्रकट की तब सीताने हड़बड़ाकर कहा कि पापी हृदय ! हट, मेरे अंगोंका स्पर्श मत कर ॥९१॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इन्द्राणीके समान दिव्य भोगोंकी स्वामिनी बनो ॥९२॥ सीताने कहा कि कुशील मनुष्यकी सम्पदाएँ केवल मल हैं और सुशील मनुष्यकी दरिद्रता भी आभूषण है ॥९३॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको शीलकी हानि कर दोनों लोकोंके विरुद्ध कार्य करनेसे मरणकी शरणमें जाना ही अच्छा है ॥९४॥ तू परस्त्रीकी आशा रखता है अतः तेरा यह जीवन वृथा है । जो मनुष्य शीलकी रक्षा करता हुआ जीता है वास्तवमें वह जीता है ॥९५॥

इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करनेके लिए प्रवृत्त हुआ । सब देवियाँ भयभीत होकर भाग गयीं और वहाँका सब कुछ आकुलतासे पूर्ण हो गया ॥९६॥ इसी बीच में सूर्य, किरणसमूहके साथ-साथ अस्ताचलकी गुहामें प्रविष्ट हो गया सो मानो रावणकी मायाके भयसे ही प्रविष्ट हो गया था ॥९७॥ जो अत्यन्त क्रोधसे युक्त थे, जिनके गण्डस्थलसे मद चूर रहा था तथा जो अत्यधिक गर्जना कर रहे थे ऐसे हाथियोंसे डराये जानेपर भी सीता रावणकी शरणमें

दंष्ट्राकरालदशनैर्व्याघ्रैर्दुःसहनिःस्वनैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥९९॥
 चलत्केसरसंवृतैः सिंहैरुग्रनखाङ्कुशैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१००॥
 ज्वलत्स्फुलिङ्गभीमाक्षैर्लसजिह्वैर्महोरगैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०१॥
 व्यातःतनैः क्रुतोत्पातपतनैः क्रूरगानरैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०२॥
 तमःषिण्डाभितैस्तुङ्गैर्वेतालैः कृतहुङ्कृतैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०३॥
 एजं नानाविधैरुग्रैरुपसर्गैः क्षणोद्भूतैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०४॥
 तावच्च समतीतायां विमावयां भयादिव । जिनेन्द्रवेश्मसूक्तस्थौ शङ्खभेर्यादिनिःस्वनः ॥१०५॥
 उद्घाटितकपाटानि द्वाराणि वरवेश्मनाम् । प्रभाते गतनिद्राणि लोचनानीव रेजिरे ॥१०६॥
 संध्याया रञ्जिता प्राची दिगत्यन्तमराजत । कुङ्कुमस्येव पङ्केन मानोरागच्छतः कृता ॥१०७॥
 नैशं ध्वान्तं समुत्सार्य कृत्वेन्दुं विगतप्रभम् । उदियाय सहस्रांशुः पङ्कजानि न्यबोधयत् ॥१०८॥
 ततो विमलतां प्राप्ते प्रभाते चलपक्षिणि । विभीषणादयः प्रापुर्दशास्थं प्रियवान्धवाः ॥१०९॥
 खरदूषणशोकेन ते निर्वाक्यनताननाः । सवाष्पलोचना भूमौ समासीना यथोचितम् ॥११०॥
 तावत्पटान्तरस्थाया रुदत्याः शोकनिर्भरम् । शुश्राव योषितः शब्दं मनोभेदं विभीषणः ॥१११॥
 जगाद व्याकुलः किञ्चिदपूर्वैर्महाङ्गना । का नाम कष्टं रौति स्वामिनेव विद्योजिता ॥११२॥

नहीं गयी ॥९८॥ जिनके दाँत दाढ़ीसे अत्यन्त भयंकर दिखाई देते थे और जो दुःसह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥९९॥ जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे तथा जिनके नखरूपी अंकुश अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसे सिंहोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥१००॥ जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगोंके समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थीं ऐसे बड़े-बड़े साँपोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥१०१॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो बार-बार ऊपरकी ओर उड़ान भरते थे तथा नीचेकी ओर गिरते थे ऐसे वानरोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥१०२॥ जो अन्धकारके पिण्डके समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार कर रहे थे ऐसे वेतालोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणके शरणमें नहीं गयी ॥१०३॥ इस प्रकार क्षण-क्षण में किये जानेवाले नाना प्रकारके भयंकर उपसर्गोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥१०४॥

तदनन्तर भयसे ही मानो रात्रि व्यतीत ही गयी और जिन मन्दिरोंमें शंख-भेरी आदिका शब्द होने लगा ॥१०५॥ प्रभात होते ही बड़े-बड़े महलोंके द्वार सम्बन्धी किवाड़ खुल गये सो उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होंने खोले हों ॥१०६॥ सन्ध्यासे रंगी हुई पूर्व दिशा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो आनेवाले सूर्यकी अगवानीके लिए कुंकुमके पंकसे ही लिप्त की गयी हो ॥१०७॥ रात्रि सम्बन्धी अन्धकारको नष्ट कर तथा चन्द्रमाको निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलोंको विकसित करने लगा ॥१०८॥ तदनन्तर जिसमें पक्षी उड़ रहे थे ऐसे प्रातःकालकी निर्मलताको प्राप्त होनेपर विभीषण आदि प्रिय बान्धव रावणके समीप पहुँचे ॥१०९॥ खरदूषणके शोकसे जिसके मुख चुपचाप नीचेकी ओर झुक रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओंसे युक्त थे ऐसे वे सब यथायोग्य भूमिपर बैठ गये ॥११०॥ उसी समय विभीषणने पटके भीतर स्थित शोकके भारसे रोती हुई स्त्रीका हृदय-विदारक शब्द सुना ॥१११॥ सुनकर व्याकुल होते हुए, विभीषणने कहा कि यह यहाँ कौन अपूर्व स्त्री कष्ट शब्द कर

शब्दोऽयं शोकसंभूतमस्याः कम्पं समुत्पन्नम् । निवेदयति देहस्य दुःखसंभारवाहिनः ॥११३॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य सीता तारतरस्वनम् । रुरोद सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ॥११४॥
 जगौ च बाष्पपूर्णस्याप्रस्वलज्जिगताक्षरम् । इह को मे देव बन्धुस्त्वं यत्पृच्छसि वत्सलः ॥११५॥
 सुता जनकराजस्य स्वसा भामण्डलस्य च । काकुत्स्थस्याहर्कं पत्नी सीता दशरथस्नुषा ॥११६॥
 वार्तान्वेष्टी गतो यावद्भर्ता मे आतुराहवे । रन्ध्रेऽहं तावदेतेन हता कुत्सितचेतसा ॥११७॥
 यावज्ज मुञ्चति प्राणान् रामो विरहितो मया । आतरस्मै द्रुतं तावन्नीत्वा मामर्पयोदितः ॥११८॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धचेता विभीषणः । जगाद विनयं विभ्रद् आतरं गुरुवत्सलः ॥११९॥
 आशीविषाग्निभूतेयं मोहाद् भ्रातः कुतस्त्वया । परनारी समानीता सर्वथा भयदायिनी ॥१२०॥
 बालबुद्धेरपि स्वाभिन् विज्ञाप्यं श्रूयतां मम । दत्तो हि मम देवेन प्रसादो वचनं प्रति ॥१२१॥
 मवरकीर्तिलताजालैर्जटिलं बलयं दिशाम् । मा भ्राक्षोदयशोर्दावः प्रसीद स्थितिकोविद ॥१२२॥
 परदारामिलाषोऽयमयुक्तोऽतिमयङ्करः । लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः ॥१२३॥
 धिक्शब्दः प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्यः समन्ततः^१ । सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥१२४॥
 जानन् सकलमर्यादां विद्याधरमहेश्वरः । उवकन्तमुत्सुकं कस्मात्करोषि हृदये निजे ॥१२५॥
 यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिर्निषेवते । नरकं स विशत्येष लोहपिण्डो यथा जलम् ॥१२६॥

रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पतिके साथ वियोगको प्राप्त हुई है ॥११२॥ इसका यह शब्द दुःखके भारको धारण करनेवाले शरीरके शोकोत्पन्न-उत्कट कम्पनको सूचित कर रहा है ॥११३॥ इस प्रकार विभीषणके उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनके आगे शोक बढ़ता है ॥११४॥ उसने अश्रुपूर्ण मुखसे दूटे-फूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहां मेरा बन्धु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेहके साथ पूछ रहा है ॥११५॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहन, रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रवधू सीता हूँ ॥११६॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेने के लिए जबतक भाईके युद्धमें गया था तबतक छिद्र देख इस दुष्ट-हृदयने मेरा हरण किया है ॥११७॥ मुझसे बिल्कुले राम जबतक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तबतक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दं ॥११८॥ इस प्रकार सीताके शब्द सुनकर विभीषण-का चित्त कुपित हो उठा । तदनन्तर विनयको धारण करनेवाले गुरुजन-स्नेही विभीषणने भाईसे कहा कि हे भाई ! आशीविष—सर्पकी विषरूपी अग्निके समान सब प्रकारसे भय उत्पन्न करनेवाली यह पर-नारी तू मोहवश कहांसे ले आया है ? ॥११९-१२०॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मैं बालबुद्धि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिए । वचनके विषयमें आपने मुझपर प्रसन्नता को है अर्थात् मुझे वचन कहने की स्वतन्त्रता दी है ॥१२१॥ हे मर्यादाके जाननेमें निपुण ! यह दिशाओंका समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओंके जालसे व्याप्त हो रहा है सो इसे अपयशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न होइए ॥१२२॥ यह परस्त्रीकी अभिलाषा अनुचित है, अत्यन्त भयंकर है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, घृणित है और दोनों लोकोंको नष्ट करनेवाली है ॥१२३॥ सर्वत्र सज्जनों-से यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सहृदय मनुष्योंके हृदयके विदारण करनेमें समर्थ है अर्थात् लोकनिन्दा विचारवान् मनुष्योंके हृदयको भेदन करनेवाली है ॥१२४॥ आप तो मर्यादाको जानने-वाले, विद्याधरीके अधिपति हैं फिर इस जलते हुए उत्सुकको अपने हृदयपर क्यों रख रहे हो ? ॥१२५॥ जो पापबुद्धि मनुष्य परस्त्रियोंका सेवन करता है वह विनयसे उस तरह नरकमें प्रवेश करता है जिस तरह कि लोहका पिण्ड जलमें प्रवेश करता है ॥१२६॥

१. पूर्णस्यात्सबलं निर्गताक्षरम् म. । २. अपकीर्तिदवाग्निः 'वने च वनवल्ली च दवो दाव इहेष्यते' इत्यमरः ।

३. दिनाशकः म. । ४. समं ततः म. ।

तच्छ्रुत्वा रावणोऽवोचत् किं तद्दृश्यं महीतले । भ्रातर्यस्यास्मि न स्वामी परकीयं कुतो मम ॥१२७॥
 इत्युक्त्वा विकथाः कर्तुं प्रारभे भिन्नमानसः । लब्धान्तरश्च मारीचो महानीतिरवोचत् ॥१२८॥
 जानन्नपि कथं सर्वं लोकवृत्तं दशानन । अकरोदीदृशं कर्म मोहस्येदं विचेष्टितम् ॥१२९॥
 सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा । कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीयं विवेकतः ॥१३०॥
 निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन् धक्तुमेवं महामतौ । सभायाः क्षोभनं कुर्वन्नुत्तस्थौ रक्षसां प्रभुः ॥१३१॥
 त्रिजगन्मण्डनाभिख्यमारुरोह च वारणम् । महर्द्धिमिश्र सामन्तैर्वाहारूढैः समावृतः ॥१३२॥
 पुष्पकाग्रं समारोप्य सीतां शोकसमाकुलात् । पुरः कृत्वा महाभूत्या प्रययौ नगरीदिशा ॥१३३॥
 कुन्तासितोऽमरच्छत्रध्वजाद्यर्पितपाणयः । अग्रतः पुरुषाः सस्रुः कृतसंभ्रमनिस्वनाः ॥१३४॥
 चलिताश्चञ्चलग्रीवाः स्थूरीपृष्ठाः सहस्रशः । चञ्चलसुराननक्षुण्णक्षितयश्चास्त्यादिनः ॥१३५॥
 प्रचण्डनिस्वनदधृष्टाः कृतजीमूतगर्जिताः । प्रचेलुर्वेत्तुभिर्नुज्ञा गण्डशैलसमा गजाः ॥१३६॥
 अट्टहासान् विमुञ्चन्तः कृतमानाविचेष्टिताः । स्फोटयन्त इवाकाशं प्रजग्मुर्मनिवाः पुरः ॥१३७॥
 सहस्रसंख्यतूर्याणां ध्वनिना पूरयन् दिशः । लङ्कां दशाननोऽविशन् मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥१३८॥
 संपद्मिरेवमावाभिर्वृतोऽप्यत्यन्तचारुभिः । सीता दशाननं मेने तृणादपि जघन्यकम् ॥१३९॥
 अकलमघं स्वभावेन वैदेहीमानसं नृपः । न शक्यं लोभमानेतु^३ लेपमप्सु यथाम्बुजम् ॥१४०॥

यह सुनकर रावणने कहा कि हे भाई ! पृथ्वीतलपर वह कौन पदार्थ है जिसका मैं स्वामी न होऊँ ? अतः मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥१२७॥ इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदय-ने विकथाएँ करना प्रारम्भ कर दिया । तदनन्तर अवसर पाकर महानीतिज्ञ मारीच बोला ॥१२८॥ कि हे दशानन ! लोकका सब वृत्तान्त जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया ? यथार्थमें यह मोहकी ही चेष्टा है ॥१२९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको सब तरहसे प्रातःकाल उठकर विवेकपूर्वक अपने हिताहितका विचार करना चाहिए ॥१३०॥ इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भावसे यह सब कह रहा था तब बीचमें ही सभाके क्षोभको करता हुआ रावण उठकर खड़ा हो गया ॥१३१॥ तदनन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियों और अश्वारूढ सामन्तोंसे घिरा हुआ रावण त्रिलोकमण्डन नामक हाथीपर सवार हो गया ॥१३२॥ वह शोकसे व्याकुल सीताको पुष्पक विमानपर चढ़ाकर तथा आगे कर बड़े वैभवसे नगरीकी ओर चला ॥१३३॥ भाले, खड्ग, छत्र तथा ध्वजा आदि जिनके हाथमें थे और जो सम्भ्रमपूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥१३४॥ जिनकी ग्रीवाएँ चंचल थीं, जो सुशोभित खुरोंके अग्रभागसे पृथ्वीको खोद रहे थे तथा जिनपर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारों घोड़े चल पड़े ॥१३५॥ जिनके घण्टे प्रचण्ड शब्द कर रहे थे, जो मेघोंके समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महावत प्रेरित कर रहे थे और गण्डशैल—काली चट्टानोंवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥१३६॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे अर्थात् ठहाका मारकर हँस रहे थे, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाशको फोड़ते हुए-से जान पड़ते थे ऐसे मनुष्य उसके आगे-आगे जा रहे थे ॥१३७॥ इस प्रकार हजारों तुरहियोंके शब्दसे दिशाओंको पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्णनिर्मित तोरणोंसे अलंकृत लंका नगरीमें प्रविष्ट हुआ ॥१३८॥ यद्यपि रावण इस प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर सम्पदाओंसे घिरा हुआ था तो भी सीता उसे तृणसे भी तुच्छ समझती थी ॥१३९॥ स्वभावसे ही निर्मल सीताके मनको रावण उस तरह लोभ प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं हो सका जिस प्रकारकी पानी कमल-को लेप प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं होता है ॥१४०॥

१. रावणः म. । २. ध्वजादपित म., ब. । ३. लोभमाने तु लेपमप्सु यथाम्बुजम् म. ।

समन्तकुसुमं तावज्जानातरुलताकुलम् । प्रमदारुणं वनं सीता जीता नन्दनसुन्दरम् ॥१४१॥
 स्थितं फुल्लनगस्योद्ध्वं दृष्ट्वा यद् दृष्टिवन्धनम् । उन्मादो मनसस्तुङ्गो देवानामपि जायते ॥१४२॥
 गिरिः सप्तभिरुद्यामैवेष्टितः स्वायतैः स च । रराज भद्रशालाद्यैः सूर्यावर्त्त इवोज्ज्वलः ॥१४३॥
 एकदेशानहं तस्य विविधाद्भुतसंकुलान् । नामतः संप्रवक्ष्यामि तव राजन् निबोधयताम् ॥१४४॥
 प्रकीर्णकं जनानन्दं मुखसेव्यं समुच्चयम् । चारणप्रियसंज्ञं च निबोध प्रमदं तथा ॥१४५॥
 प्रकीर्णकं महीपृष्ठे जनानन्दं ततः परम् । यन्नानिषिद्धसंचारी जनः क्रीडति नागरः ॥१४६॥
 तृतीयेऽलं वने रम्ये मृदुपादपसंकुले । घनवृन्दप्रतीकाशे सरिद्धापीमनोहरे ॥१४७॥
 दशव्यामायता वृक्षा रविमार्गोपरोधिनः । केतकीयूथिकोपेतास्ताम्बूलीकृतसंगमाः ॥१४८॥
 निरुपद्रवसञ्चारे तत्रोद्यानसमुच्चये । विलसन्ति धिलासिन्यः कचिदेशे च संनराः ॥१४९॥
 चारणप्रियमुद्यानं मनोज्ञं पापनाशनम् । स्वाध्यायनिरता यत्र श्रमणा व्योमचारिणः ॥१५०॥
 तस्योपरि समारुह्य ययुःपृष्ठमनिन्दितम् । सुखारोहणसोपानं दृश्यते प्रमदाभिधम् ॥१५१॥
 स्नानक्रीडोचिता रम्या वाप्योऽस्मिन् पद्मशोभिता । प्रपाः सभाश्च विद्यन्ते रचितानेकभूमयः ॥१५२॥
 नारिङ्गमातुलिङ्गाद्यैः^३ फलैर्यत्र निरन्तराः । खजूरैर्नालिकेरैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिताः ॥१५३॥
 तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातयः । कुसुमस्तवकैश्छिन्ना गीयन्ते मत्तपट्टपदैः ॥१५४॥

अथानन्तर जिसमें सब ओरसे फूल फूल रहे थे, जो नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त था तथा जो नन्दन वनके समान सुन्दर था ऐसे प्रमद नामक वनमें सीता ले जायी गयी ॥१४१॥ फूलोंके पर्वतके ऊपर स्थिति तथा दृष्टिको बांधनेवाले जिस प्रमदवनको देखकर देवोंके मनमें भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है ॥१४२॥ अत्यन्त लम्बे-लम्बे सात उद्यानोंसे घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाला आदि वनोंसे घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन हैं हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो ॥१४४॥ उस पर्वतपर जो सात वन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रकीर्णक, २ जनानन्द, ३ मुखसेव्य, ४ समुच्चय, ५ चारणप्रिय, ६ निबोध और ७ प्रमद ॥१४५॥ इनमेंसे प्रकीर्णक नामका वन पृथ्वीतल है पर उसके आगे जनानन्द नामका वह वन है जिसमें कि वे ही क्रीड़ा करते हैं जिनका कि आना-जाना निषिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥१४६॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा मुखसेव्य नामका वन है जो कोमल वृक्षोंसे व्याप्त है, मेघसमूहके समान है, तथा नदियों और वापिकाओंसे मनोहर है । उस वनमें सूर्यके मार्गको रोकनेवाले, केतकी और जूहीसे सहित तथा पानकी लताओंसे लिपटे दशवेमां प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष हैं ॥१४७-१४८॥ उसके ऊपर उपद्रव रहित गमनागमनसे युक्त समुच्चय नामका चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भावको धारण करनेवाली स्त्रियां सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं ॥१४९॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पांचवां पापापहारी मनोहर वन है जिसमें चारणश्रद्धिधारी मुनिराज स्वाध्यायमें तत्पर रहते हैं ॥१५०॥ [उसके ऊपर छठवां निबोध नामका का वन है जो ज्ञानका निवास है] और उसके आगे चढ़कर प्रमद नामका सातवां वन है जो घोड़ेके पृष्ठके समान उत्तम प्रथा सुखसे चढ़नेके योग्य सोढियोंसे युक्त दिखलाई देता है ॥१५१॥ इस प्रमद वनमें स्नानक्रीड़ाके योग्य, कमलोंसे सुशोभित मनोहर वापिकाएँ हैं, स्थान-स्थानपर पानीय-शालाएँ और अनेक खण्डोंसे युक्त सभागृह विद्यमान हैं ॥१५२॥ जहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षोंसे घिरे एवं फलोंसे लदे नारिङ्ग और बीजपूर आदिके वृक्ष हैं ॥१५३॥ उस प्रमद नामक

१. नागरः म. । २. ययुः पृष्ठ-म. । ३. मातुलिङ्गाद्यैः म. ।

कुर्वन्तीव^१ लतालोलां कोमलैः पल्लवैः करैः । धूर्णिता मन्दवातेन फलपुष्पमनोहरा ॥१५५॥
 सारङ्गदयितामिश्र प्रलम्बाम्बुदशोभिनः । समस्ततुङ्कतच्छायाः^२ सेव्यन्ते घनपादपाः ॥१५६॥
 विभूतिं तस्य तां धाप्यः सहस्रच्छन्दनाननाः । आलोकन्त इवातृसा असितोत्पललोचनैः ॥१५७॥
 गहनान् कोकिलालापान् नृत्यन्त्यो मन्दवायुना । दीर्घिका विहसन्तीव राजहंसकदम्बकैः ॥१५८॥
 प्रमदाभिर्यमुद्यानं सर्वभोगोत्सवावहम् । अत्र किं बहुनोक्तेन स्याद्वरं नन्दनादपि ॥१५९॥
 अशोकमालिनी नाम पत्रपद्मविराजिता । वापी कमलसोपाना विचित्राकारगोपुरा ॥१६०॥
 मनोहरैर्युहैर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितैः । सल्लतालिङ्गितप्रान्तैर्निर्झरैश्च ससीकरैः ॥१६१॥
 तत्राशोकतच्छन्ने स्थापिता शोकधारिणी । देशे शकालयाद् भ्रष्टा स्वयं श्रीरिव जानकी ॥१६२॥
 तस्मिन् दशाननोक्ताभिः स्त्रीभिरन्तरवर्जितम् । सीता प्रसाद्यते वस्त्रगन्धालंकारपाणिभिः ॥१६३॥
 दिव्यैः सनत्तर्जनीतैर्वाक्यैश्चामृतहारिभिः । अनुनेतुं न सा शक्या संपदा चामरामया ॥१६४॥
 उपर्युपरि संरक्तो दूर्ती विद्याधराधिपः । प्राहिणोद्धि स्मरोदारदावज्वालाकुलीकृतः ॥१६५॥
^३दूति सीतां व्रज ब्रूहि दशास्यमनुरक्तकम् । न सांप्रतमवज्ञातुं प्रसीदेत्यादिमाषते ॥१६६॥
 गताऽऽगता च सा तस्मै वदतीति वितेजसे । देव साहारमुत्सृज्य स्थिता त्वां वृणुते कथम् ॥१६७॥

उद्यानमें वृक्षोंकी सब जातियाँ विद्यमान हैं जो कि फूलोंसे आच्छादित हैं और मदनोन्मत्त भ्रमर जिनपर गुंजार करते हैं ॥१५४॥ वहाँ मन्द-मन्द वायुसे हिलती और फलों तथा फलोंसे मनोहर लता अपने कोमल पल्लवोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो हाथ चलाती हुई नृत्य हो कर रही हो ॥१५५॥ वहाँ नीचे लपकते हुए भेदोंके समान सुशोभित तथा समस्त ऋतुओंमें छाया उत्पन्न करनेवाले सघन वृक्षोंकी हरिणियाँ सदा सेवा करती हैं—उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥१५६॥ कमलरूपी मुखोंसे सहित वहाँकी वापिकाएँ नील कमलरूपी नेत्रोंके द्वारा उस वनकी उस विभूति-को मानो अतृप्त होकर ही सदा देखती रहती हैं ॥१५७॥ जहाँ मन्द-मन्द वायुसे नृत्य करती हुई वापिकाएँ राजहंस पक्षियोंके समूहसे ऐसी जान पड़ती हैं मानो कोकिलाओंके आलापसे युक्त सघन वनोंकी हँसी ही कर रही हों ॥१५८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उत्सवोंकी धारण करनेवाला वह प्रमद नामक उद्यान नन्दन वनसे भी अधिक सुन्दर है ॥१५९॥

उस प्रमद वनमें अशोक मालिनी नामकी वापी है जो कि कमल पत्रोंसे सुशोभित है, स्वर्णमय सोपानोंसे युक्त है, और विचित्र आकारवाले गोपुरसे अलंकृत है ॥१६०॥ इसके सिवाय वह प्रमद वन झरोखे आदिसे अलंकृत तथा उत्तमोत्तम लताओंसे आलिङ्गित मनोहर गृहों और जल कणोंसे युक्त निर्झरोंसे सुशोभित है ॥१६१॥ उस प्रमद वनके अशोक वृक्षसे आच्छादित एक देशमें बैठी शोकवती सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्गसे गिरी साक्षात् लक्ष्मी हो ॥१६२॥ वहाँ रावणकी आज्ञानुसार वस्त्र, गन्ध तथा अलंकारोंको हाथोंमें धारण करनेवाली स्त्रियाँ निरन्तर सीताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती थीं ॥१६३॥ किन्तु नृत्य सहित दिव्य संगीतों, अमृतके समान मनोहर वचनों और देवतुल्य सम्पदाके द्वारा सीता अनुकूल नहीं की जा सकी ॥१६४॥ इतनेपर भी कामरूपी दावानलकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ रागी रावण एकके बाद एक दूती भेजता रहता था ॥१६५॥ वह कहता था कि हे दूति ! जाओ और सीतासे कहो कि अब अनुरागसे भरे रावणकी उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ ॥१६६॥ दूती सीताके पास जाती और वापस आकर तेजरहित रावणसे कहती कि हे देव ! वह तो आहार छोड़कर बैठी है तुम्हें

१. कुर्वन्ती च., ख. । २. सेवन्ते म. । ३. दूति म. ।

न जल्पति निषण्णाङ्गी नाळं कायेन चेष्टते । न ददाति महाशोका दृष्टिमस्मासु जानकी ॥१६८॥
 अमृतदपि सुस्वादैः पयःप्रभृतिभिः श्रितम् । सुगन्धि वृणुते नाङ्गं विचित्रं बहुवर्णकम् ॥१६९॥
 ततो मदनदीप्ताग्निज्वालालीढः समन्ततः । आर्तो^१ व्यचिन्तयन् भूरि मग्नोऽसौ व्यसनार्णवे ॥१७०॥
 शोचत्युन्मुक्तदीर्घोष्णनिश्वासानिलसन्ततिः । शुष्यन्मुखः पुनः, किंचिद्गायत्यविदिताक्षरम् ॥१७१॥
 स्मरप्रालेयनिर्दग्धं धुनाति मुखपङ्कजम् । मुहुः किमपि संचिन्तय स्मरते क्षणनिश्चलः ॥१७२॥
 अनुबन्धमहादाहा समस्ता वयवानलम् । क्षिपत्यविरते भूमौ कुट्टिमायां विवर्त्तकः ॥१७३॥
 उत्तिष्ठति पुनः शून्यः सेवते निजमासनम् । निःकामति पुनर्दृष्ट्वा जनं प्रतिनिवर्त्तते ॥१७४॥
 नागेन्द्र इव हस्तेन सर्वदिङ्मुखगामिना । आस्फालयति निःशङ्कः कुट्टिमं कम्पमानयन् ॥१७५॥
 स्मरन् सीतां मनोयातामात्मानं पौरुषं विधिम् । निरपेक्षमुपालब्धुं^२ साधुनेत्रः प्रवर्त्तते ॥१७६॥
 किंचिदाह्वयते दत्तहुङ्कारश्चातिकैर्जनैः । तूष्णीमास्ते पुनः किं किमिति शून्यं प्रमाषते ॥१७७॥
 सीता सीतेति कृत्वास्यमुत्तानं माषते मुहुः । तिष्ठत्यवाङ्मुखं भूयो नखेन विलिखन् महीम् ॥१७८॥
 करेण हृदयं मार्ष्टि बाहुमूर्द्धानमीक्षते । पुनर्मुञ्चति हुङ्कारं तल्पं मुञ्चति सेवते ॥१७९॥
 दधाति हृदये पशं पुनर्दूरं निरस्यति । मुहुः पठति^३ शृङ्गारं गगनाङ्गणमीक्षते^४ ॥१८०॥

किस प्रकार स्वीकृत करे ॥१६७॥ वह चुपचाप बैठी है, न कुछ बोलती है, न शरीरसे कुछ चेष्टा करती है और न महाशोकसे युक्त होनेके कारण हम लोगोंपर दृष्टि ही डालती है ॥१६८॥ अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट, दूध आदिसे युक्त सुगन्धित, तथा अनेक वर्णका विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥१६९॥ दूतीकी बात सुनकर जो सब ओरसे कामरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुनः चिन्तामें पड़ जाता था ॥१७०॥ वह कभी लम्बी तथा गरम श्वासोच्छ्वासकी वायुको छोड़ता हुआ शोक करता था तो कभी मुख सूख जानेसे अस्पष्ट अक्षरों द्वारा कुछ गाने लगता था ॥१७१॥

वह कामरूपी तुषारसे जले हुए मुखकमलको बार-बार हिलाता था और कभी क्षणभरके लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हँसने लगता था ॥१७२॥ वह रत्नखचित फर्शपर लोटता और महादाहसे युक्त समस्त अवयवोंको बार-बार फैलाता था ॥१७३॥ फिर उठकर खड़ा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसनपर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्यको देखकर फिर लौट जाता ॥१७४॥ जिस प्रकार हाथी सब दिशाओंमें जानेवाली सूँड़से किसीका आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी निःशंक हो सब दिशाओंमें धूमनेवाले अपने हाथसे कम्पित करता हुआ फर्शको आस्फालन करता था अर्थात् फर्शपर घुमा-घुमाकर हाथ पटकता था और उससे फर्शको कम्पित करता था ॥१७५॥ वह मनमें आयी हुई सीताका स्मरण करता हुआ अपने पुरुषार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्यको उलाहना देनेके लिए प्रवृत्त होता था और उस समय उसके नेत्रोंसे अश्रु निकलने लगते थे ॥१७६॥ वह किसीको बुलाता था और समीपवर्ती लोग जब हुँकार देते थे तब चुप रह जाता था । तदनन्तर बार-बार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार बिना किसी लक्ष्यके बकता रहता था ॥१७७॥ वह कभी मुखको ऊपर कर 'सीता सीता' इस प्रकार बार-बार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नखसे पृथिवीको खोदता हुआ चुप बैठा रहता था ॥१७८॥ वह कभी हाथसे वक्षःस्थलको साफ करता था, कभी भुजाओंके अग्रभागको देखता, कभी हुँकार छोड़ता, कभी विस्तरपर जा लोटता था ॥१७९॥ कभी हृदयपर कमल

१. विचिन्तयद् म. । २. स्मरतावयवानवम् म. । ३. -मुपालब्धं म. । ४. यतति म. । ५. -मीक्षते म. ।

हस्तं हस्तेन संस्पृश्य हस्ति पादेन मेदिनीम् । निश्वासदहनश्याममाकृष्याधरमीक्ष्यते ॥१८१॥
 धत्ते कहकहं स्वानं केशान् वर्त्तयति क्षणम् । कोपेन दुस्सहो दृष्टिं कचिदेव विमुञ्चति ॥१८२॥
 जम्भोत्तानीकृतोरस्को वाष्पाच्छादितलोचनः । बाहुतोरणमुद्यम्य भिनत्ति स्फुटदकुलिः ॥१८३॥
 अंशुकान्तेन हृदय बीजयस्याहितेक्षणम् । कुसुमैः कुरुते रूपं पुनर्नाशयति द्रुतम् ॥१८४॥
 चित्रयस्यादरी सीतां द्रवयस्यश्रुभिः पुनः । दीनः क्षिपति हाकारान् न न मामेति जल्पति ॥१८५॥
 एवमाद्याः क्रियाः क्लिष्टा मदनग्रहपीडितः । करोति करुणालापं चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ॥१८६॥
 तस्य स्मराग्निना दीप्तं हृदयेन समं वपुः । अनुबन्धमहाधूपं ज्वलत्याशाकृतेन्धनम् ॥१८७॥
 अचिन्तयच्च हा कष्टं कामवस्थामहं गतः । येनेदमपि शक्नोमि न वोढुं स्वशरीरकम् ॥१८८॥
 दुर्गसागरमध्यस्था बृहद्विद्याधरा मया । जिताः सहस्रक्षो युद्धे किमिदं वर्ततेऽधुना ॥१८९॥
 सर्वत्र जगति ख्यातलोकपालपरिच्छदः । वन्दोगृहमुपानीतो महेन्द्रोऽपि पुरा मया ॥१९०॥
 अनेकयुद्धनिर्भग्ननराधिपकदम्बकः^३ । सोऽहं संप्रति मोहेन भस्मीकृतुं प्रवर्तितः ॥१९१॥
 चिन्तयन्नृदिमन्थच्च कामाचार्यवशंगतः । आस्तां तावदसौ राजक्षिदमन्वद्विबुध्यताम् ॥१९२॥
 आकुलो मन्त्रिभिः सार्कं महामैन्त्रविशारदः । विभीषणः समारंभे निरूपयितुमीदृशम् ॥१९३॥
 स हि रावणराष्ट्रस्य पुरं धत्ते गतश्रमः । समस्तशास्त्रबोधाम्बुधौतनिर्मलमानसः ॥१९४॥

रखता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार शृंगारका पाठ करता—शृंगार भरे शब्दोंका उच्चारण करता और कभी आकाशकी ओर देखने लगता था ॥१८०॥ कभी हाथसे हाथका स्पर्श कर पैरसे पृथिवीको ताड़ित करता था, कभी श्वासोच्छ्वासरूपी अग्निसे काले पड़े हुए अधरोष्ठको खींचकर देखता था ॥१८१॥ कभी 'कह-कह' शब्द करता था, कभी केशोंको खोलकर फैलाता था, कभी किसीपर क्रोधसे दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥१८२॥ कभी जिमुहाई लेते समय वक्षःस्थलको फुलाकर आगेको उभार लेता था, कभी नेत्रोंको आंसुओंसे आच्छादित करता था, कभी भुजाओंका तोरण ऊपर उठा अंगुलियां चटकाता हुआ उसे तोड़ता था ॥१८३॥ कभी हृदयकी ओर दृष्टि डालकर वल्लके अंचलसे हवा करता था, कभी फूलोंसे रूप बनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥१८४॥ कभी आदरके साथ सीताका चित्र बनाता और फिर उसे आंसुओंसे गोला करता था, कभी दीनताके साथ हाहाकार करता और कभी 'न, न' 'मा, मा' शब्दोंका उच्चारण करता था ॥१८५॥ इस प्रकार कामरूपी ग्रहसे पीडित रावण अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करता तथा करुणापूर्ण वार्तालाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि कामकी चेष्टा विचित्र होती है ॥१८६॥ जिसमें वासनारूपी महाधूम उठ रहा था, तथा आशा जिसमें ईंधन बन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्निसे दीप्त हो हृदयके साथ जल रहा था ॥१८७॥ वह कभी विचार करता कि हाथ में किस अवस्थाको प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीरको भी धारण करनेके लिए समर्थ नहीं रहा ॥१८८॥ मैंने दुर्गम समुद्रके बीचमें रहनेवाले हजारों बड़े-बड़े विद्याधर युद्धमें जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है? ॥१८९॥ जिसका लोकपालरूपी परिकर समस्त संसारमें प्रसिद्ध था ऐसे राजा इन्द्रको भी मैंने पहले बन्दीगृहमें डाल रखा था तथा अनेक युद्धोंमें जिसने राजाओंके समूहको पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोहके द्वारा भस्मीभूत हो रहा हूँ ॥१९०-१९१॥ गौतम कहते हैं कि हे राजन् ! यह तथा अन्य वस्तुओंका चिन्तन करना हुआ रावण कामरूपी आचार्यके वशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥१९२॥

अथानन्तर आकुलतासे भरा तथा बड़ी-बड़ी मन्त्रणा करनेमें निपुण विभीषण मन्त्रियोंके साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करनेके लिए तत्पर हुआ ॥१९३॥ यथार्थमें समस्त शास्त्रोंके ज्ञान

१. माकृष्णाधर-म. । २. केशाद्वर्तयति म. । ३. कदम्बकम् म. । ४. महामन्त्रिविशारदः ख. ।

रावणस्य हि तत्सुखो न हितो विद्यते परः । तस्य सर्वोपयोगेन चिन्तनीये स वर्तते ॥१९५॥
 उवाचासावहो वृद्धा राजनीत्यं व्यवस्थिते । उपक्षिपत कर्तव्यमस्माकमधुनोचितम् ॥१९६॥
 विभीषणोदितं श्रुत्वा संभिन्नमतिरभ्यधात् । अतः परं वदामः किं गतं कार्यमकार्यताम् ॥१९७॥
 स्वामिनो दशवक्त्रस्य सहसा दैवयोगतः । दक्षिणः पतितो बाहुः खरदूषणसंज्ञकः ॥१९८॥
 विराधितोऽपरः कोऽपि कारणं यो न कस्यचित् । सोऽयं गोमायुतां मुक्त्वा केसरित्वं समाश्रितः ॥१९९॥
 भव्यतां पश्यतामुष्य साधुकर्मोदयादिमाम् । लक्ष्मणस्याहवे यातो बन्धुतां यत्सुचेष्टितः ॥२००॥
 एतेऽपि बलिनः सर्वे मानिनः कपिकेतवः । भवन्त्याक्रान्तितो वश्या निर्भृत्यास्तु न जातुचित् ॥२०१॥
 अमीषामन्य आकारो मानसं त्वन्यथा स्थितम् । भुजङ्गानामिवात्यन्तमन्तरे दारुणं विषम् ॥२०२॥
 नेता वानरमौलीनामनङ्गकुसुमापतिः । न्यक्षेण भजते पक्षं सुग्रीवस्य मरुत्सुतः ॥२०३॥
 ततः पञ्चमुखोऽवोचद्विधायानादरस्मितम् । खरदूषणवृत्तेन गणितेनेह को गुणः ॥२०४॥
 वृत्तान्तेनामुना कस्य संत्रासोऽकीर्तिरेव च । भवत्येव हि शूराणामीदृशी समरे गतिः ॥२०५॥
 वातेनापहृते सिन्धोः कणे का न्यूनता भवेत् । रावणस्य बलं स्फीतं किं दूषणसमोहया ॥२०६॥
 वीडां व्रजति मे चेतः कुर्वतः संप्रधारणम् । कायं दशाननः स्वामी कान्ये केऽपि वनौकसः ॥२०७॥
 सूर्यहासधरेणापि क्रियते लक्ष्मणेन किम् । विराधितः कः नामैव यस्येच्छामनुवर्तते ॥२०८॥

जलसे घुलकर जिसका मन अत्यन्त निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला था ऐसा विभीषण ही रावणके राष्ट्रका भार धारण करनेवाला था ॥१९४॥ विभीषणके समान रावणका हित करनेवाला दूसरा मनुष्य नहीं था । वह उसके करने योग्य समस्त कार्योंमें सर्व प्रकारका उपयोग लगाकर सदा आगच्छक रहता था ॥१९५॥ विभीषणने मन्त्रियोंसे कहा कि अहो वृद्धजनो ! राजाकी ऐसी चेष्टा होनेपर अब हम लोगोंका क्या कर्तव्य है सो कहो ॥१९६॥ विभीषणका कथन सुनकर संभिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सब कार्य अकार्यताको प्राप्त हो गया है अर्थात् सब कार्य गड़बड़ हो गया है ॥१९७॥ स्वामी दशाननकी दक्षिण भुजाके समान जो खरदूषण था वह दैवयोगसे सहसा नष्ट हो गया ॥१९८॥ वह विराधित नामका विद्याधर जो कि किसीके लिए कुछ भी नहीं था वह आज शृगालपना छोड़कर सिंहपनेको प्राप्त हुआ है ॥१९९॥ पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त हुई इसकी इस भव्यताको तो देखो कि उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला यह युद्धमें लक्ष्मणकी मित्रताको प्राप्त हो गया ॥२००॥ इधर ये सभी वानरवंशी भी अभिमानी तथा बलवान् हो रहे हैं सो ये आक्रमणसे ही वशमें हो सकते हैं बिना आक्रमणके कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥२०१॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकारका स्थित है जिस प्रकार साँपोंके बाह्यमें तो कोमलता रहती है और भीतर दारुण विष रहता है ॥२०२॥ खरदूषणकी पुत्री अनङ्गकुसुमाका पति हनुमान् इस समय वानर वंशियोंका नेता बन रहा है और वह खासकर सुग्रीवका ही पक्ष लेता है । इस प्रकार संभिन्नमतिके कह चुकनेपर पंचमुख मन्त्री अनादरपूर्वक हँसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषणका वृत्तान्त गिननेसे अर्थात् उसकी मृत्युका सोच करनेसे क्या लाभ है ? ॥२०३-२०४॥ इस वृत्तान्तसे किसे भय तथा किसकी अपकीर्ति है ? अर्थात् किसीकी नहीं क्योंकि युद्धमें शूरवीरोंकी ऐसी गति होती ही है ॥२०५॥ वायुके द्वारा समुद्रकी एक कणिका हर लेनेपर समुद्रमें क्या न्यूनता आ गयी ? अर्थात् कुछ भी नहीं । रावणका बल बहुत है, उसके दोष देखनेसे क्या । ऐसी बात सोचते हुए मेरे मनमें लज्जा आती है । कहाँ यह जगत्का स्वामी रावण और कहाँ अन्य वनवासी ? ॥२०६-२०७॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहास खड्गको धारण करनेवाला है तो भी उससे क्या और

१. भुक्त्वा म. । २. 'वातेनापहृते सिन्धोः कणिकान्यूनता भवेत्' म. ।

भृगेन्द्राधिष्ठिताभ्यानमपि काननसंगतम् । दन्द्यते न किं दावो गिरिं परमदुःसहम् ॥२०९॥
 सहस्रमतिनामाथ सचिवोऽनन्तरं जगौ । सूचयन् विरसं वाक्यं पूर्वं मस्तककम्पनात् ॥२१०॥
 मानोद्धतैरिमेर्वाक्यैर्यहो नैः किमीरितैः । मन्त्रणीयं हि संबद्धं स्वामिने हितमिच्छता ॥२११॥
 स्वल्प इत्यनया बुद्ध्या कार्यावज्ञा न वैरिणि । कालं प्राप्य कणो बह्नेर्दहेत् सकलविष्टपम् ॥२१२॥
 अश्वघ्रीवो महासैन्यः ख्यातः सर्वत्र विष्टपे । स्वल्पेनापि त्रिपृष्ठेन निहतो रणमूर्धनि ॥२१३॥
 तस्मात्क्षेपविनिर्मुक्तमियं परमदुर्गमा । नगरी कियतां लङ्का मतिसंदोहशालिभिः ॥२१४॥
 सुघोराणि प्रसार्यन्तां यन्त्राण्येतानि सर्वतः । तुङ्गप्राकारकूटेषु दृश्यतां च कृताकृतम् ॥२१५॥
 सन्मानैर्बहुभिः शश्वत् सेव्यो जनपदोऽखिलः । स्वजनाव्यतिरेकेण दृश्यतां प्रियवादिभिः ॥२१६॥
 सर्वोपायविधानेन रक्षयतां प्रियकारिभिः । राजा दशाननो येन सुखतां प्रतिपद्यते ॥२१७॥
 प्रसाद्यतां सुविज्ञानैर्मैथिली परमैः प्रियैः । मधुरैर्वचनैर्दानैः क्षीरैरहिबभूवि ॥२१८॥
 सुग्रीवं कैकुनगरमन्याश्च भटपुङ्गवान् । बहिः स्थापयतोद्युक्तालग्ना रक्षकारिणः ॥२१९॥
 एवंकृते न ते भेदं जानन्ति बहिराहिताः । कार्ये नियोगदानाच्च जानन्ति स्वामिनं प्रियम् ॥२२०॥
 एवं दुर्गतरे जाने कार्ये सर्वत्र सर्वतः । को जानाति हतां सीतां स्थितामत्रापरत्र वा ॥२२१॥
 रहितश्चानया रामो ध्रुवं प्राणान् विमोक्षयति । यत्प्रेयसीदृशी कान्ता वर्तते विरहे प्रिया ॥२२२॥
 रामे च पञ्चतां प्राप्ते शोकविकलश्च मानसः । एकाकी क्षुद्रयुक्तो वा सौमित्रिः किं करिष्यति ॥२२३॥

विराधित उसकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति करता है—उसका मित्र है इससे भी क्या ? ॥२०८॥ क्योंकि बन सहित एक अत्यन्त दुःसह पर्वत यद्यपि सिंहसे सहित हो तो भी क्या उसे दावानल जला नहीं देता ? ॥२०९॥ तदनन्तर माथा हिलाकर पूर्वं कथित वचनोंको तीरस बताता हुआ सहस्रमति मन्त्री बोला कि मानसे भरे इन निरर्थक वचनोंके कहनेसे क्या लाभ है ? स्वामीका हित चाहनेवाले व्यक्तिको ऐसी मन्त्रणा करनी चाहिए जो प्रकृत बातसे सम्बन्ध रखनेवाली हो ॥२१०-२११॥ 'वह छोटा है' ऐसा समझकर शत्रुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए क्योंकि समय पाकर अग्निका एक कण समस्त संसारको जला सकता है ॥२१२॥ बड़ी भारी सेनाका स्वामी अश्वघ्रीव समस्त संसारमें प्रसिद्ध था तो भी रणके अग्रभागमें छोटे-से त्रिपृष्ठके द्वारा मारा गया था ॥२१३॥ इसलिए बिना किसी विलम्बके इस लंका नगरीको बुद्धिमान् मनुष्योंके द्वारा अत्यन्त दुर्गम बनाया जावे ॥२१४॥ ये महाभयानक यन्त्र सब दिशाओंमें फैला दिये जावें । अत्यन्त उन्नत प्राकारके शिखरों-पर चढ़कर 'क्या किया गया क्या नहीं किया गया' इसकी देख-रेख की जाये ॥२१५॥ अनेक प्रकारके सम्मानोंसे समस्त देशकी निरन्तर सेवा की जाये और मधुर वचन बोलनेवाले राज्याधिकारी सब लोगोंको अपने कुटुम्बीजनोंसे अभिन्न देखें ॥२१६॥ प्रिय करनेवाले मनुष्य सब प्रकारके उपायोंसे राजा दशाननकी रक्षा करें जिससे वह सुखको प्राप्त हो सके ॥२१७॥ जिस प्रकार दूधके द्वारा सर्पिणीको प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चातुर्य, परम प्रिय मधुर वचनों और इष्ट वस्तुओंके दान द्वारा सीताको प्रसन्न किया जाये ॥२१८॥ किष्कु नगरके स्वामी सुग्रीव तथा नगरीकी रक्षा करनेमें उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओंको नगरके बाहर रखा जावे ॥२१९॥ ऐसा करनेपर बाहर रखे हुए सुग्रीवादि अन्तरका भेद नहीं जान सकेंगे और कार्य सौंपा जानेके कारण वे यह समझते रहेंगे कि स्वामी हमपर प्रसन्न है ॥२२०॥ इस तरह जब यहाँका प्रत्येक कार्य सब जगह सब ओरसे अत्यन्त दुर्गम हो जायेगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥२२१॥ सीताके बिना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देगा । क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय स्त्री विरहमें रहेगी वह जीवित रह ही कैसे सकेगा ॥२२२॥ जब राम मृत्युको

१. विदानेन ख. । २. मुख्यतां ख. । ३. क्षीरैरहि-ख. ।

अथवा रामशोकेन मरणं तस्य निश्चितम् । दीपप्रकाशयोर्द्वन्द्वयोः संगतं परम् ॥२२४॥
 अपराधाब्धिमग्नः सन् यास्यति क विराधितः । सुग्रीवस्यापि वाञ्छन्तं श्रूयते लोकतः परम् ॥२२५॥
 मायां सुग्रीवसंदेहकारिणीं यश्च नाशयेत् । दशवक्त्रेश्वरादस्य कोऽसौ लोके भविष्यति ॥२२६॥
 तस्मात्तद्दुर्गसंसिद्धौ स नाथं भजतेतराम् । योगश्चायं विमोर्बाहं परिणामे शुभावहः ॥२२७॥
 प्रकारेणामुना शत्रुनेतानन्यांश्च जेष्यति । दशाननस्ततो यत्नः क्रियतामत्र वस्तुनि ॥२२८॥
 एवं विमृश्य विद्वांसः प्रमोदान्वितमानसाः । यथास्वं निलयं जग्मुः कर्तव्यकृतनिश्चयाः ॥२२९॥
 विभीषणेन यन्त्राद्यैः शालो दुर्गतरिकृतः । विद्याभिश्च विचित्राभिलङ्का गह्वरतारका ॥२३०॥

मन्दाक्रान्ता

कृत्यं किञ्चिद्विशदमनसामाप्तवाक्यानपेक्षं नासैकत्वं फलति पुरुषस्योज्झितं पौरुषेण ।
 दैवापेतं पुरुषकरणं कारणं नेष्टसंगे तस्मान्नव्याः कुरुत यत्नं सर्वहेतुप्रसादे ॥२३१॥
 राजन्कर्मण्युदयसमर्थं सेवमाने जनानां नानाकारं कुशलवचनं नो विशत्येव चेतः ।
 युक्तां तस्मात्स्थितिमनुनयन् कर्म कुर्यात्प्रशस्तं भूयो येन प्रवर्तते रविः शोकरूपो न कष्टः ॥२३२॥
 इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मायाप्रकाराभिधानं नाम षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४६॥



प्राप्त हो जायेगा तब शोकसे दुःखी अकेला अथवा क्षुद्र सहायकोंसे युक्त लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥२२३॥ अथवा रामके शोकसे उसका मरण होना निश्चित है क्योंकि इन दोनोंका समागम दीप और प्रकाशके समान अविनाभावी है ॥२२४॥ विराधित अपराधरूपी समुद्रमें मग्न है अतः कहाँ जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीवके समीप जावेगा ऐसा लोगोंसे सुना जाता है ॥२२५॥ सुग्रीवका सन्देह उत्पन्न करनेवाली मायाको जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष संसारमें स्वामी दशाननसे बड़कर दूसरा कौन होगा ? ॥२२६॥ इसलिए उस कठिन कार्यको सिद्ध करनेके लिए सुग्रीव, स्वामी—दशाननकी सेवा करेगा । और सुग्रीवके साथ दशाननका समागम होना फलकालमें शुभदायक होगा ॥२२७॥ इस विधिसे दशानन इन शत्रुओंको तथा अन्य लोगोंको भी जीत सकेंगे इसलिए इस विषयमें शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥२२८॥ इस प्रकार विचारकर बुद्धिमान् मन्त्री, करने योग्य कार्यका निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥२२९॥ विभीषणने यन्त्र आदिके द्वारा कोटको अत्यन्त दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकारकी विद्याओंके द्वारा लंकाको गह्वरों एवं पाशोंसे युक्त कर दिया ॥२३०॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मलचित्तके धारक मनुष्योंका कोई भी कार्य आप्त वचनोंसे निरपेक्ष नहीं होता अर्थात् आपके कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है । आप्त भगवान् ने मनुष्योंके लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थके बिना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ दैवके बिना इष्ट सिद्धिका कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! सो सबका कारण है उसके प्रसन्न करनेमें प्रयत्न करो ॥२३१॥ हे राजन् ! जबतक मनुष्योंके कर्मका उदय विद्यमान रहता है तबतक नाना प्रकारके कुशल वचन उनके चित्तमें प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य स्थितिके अनुसार प्रशस्त—पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य सन्ताप उत्पन्न न कर सके ॥२३२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें रावणके मायाके

विविध रूपोंका वर्णन करनेवाला छियालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४६॥



१. श्रूयते व. क. । २. दैवोपेतं । ३. यत्नं म. । ४. सेवमाने म. । ५. नानाकारे म. ।

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

किष्किन्धेशस्ततो भ्राम्यन् कान्ताविरहदुःखितः । तं प्रदेशमनुप्राप्तो निवृत्तं यत्र संयुगम् ॥१॥
 तत्राद्राक्षीदयान् मग्नान् गजांश्च गतजीवितान् । सामन्तानश्चसंयुक्तास्त्रिभिर्गच्छिन्नविग्रहान् ॥२॥
 दह्यमानान् नृपान् कांश्चित् कांश्चिन्निशसितांस्तथा । क्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिरपान् मयान् ॥३॥
 विच्छिन्नार्धभुजान् कांश्चित् कांश्चिद्धूर्ध्ववर्जितान् । निःसृतान्त्रचयान् कांश्चिर्कांश्चिदलितमस्तकान् ॥४॥
 गोमायुप्रावृतान् कांश्चित् खगैः कांश्चिन्निषेवितान् । रुदता^१ परिवर्गेण कांश्चिच्छादितविग्रहान् ॥५॥
 किमेतदिति पृष्ठश्च तस्मै कश्चिदवेदयत् । सीताया हरणं ध्वस्तौ जटायुखरदूषणौ ॥६॥
 ततोऽभवद् भृशं दुःखी खरदूषणमृत्युतः । किष्किन्धाधिपतिश्चिन्तामेतामगमदाकुलः ॥७॥
 कष्टं चिन्तितमेतन्मे किलास्मै बलशालिने । निवेद्य दयिताशोकं मोक्षयामीति महाशया ॥८॥
 विधानदन्तिना सोऽपि कथमाशामहाद्रुमः । मग्नो मम विपुण्यस्य कथं शान्तिर्भविष्यति ॥९॥
 किमञ्जनासुतं गत्वा सादरं संश्रयाम्यहम् । मद्रूपधारिणो येन मरणं स करिष्यति ॥१०॥
 उद्योगेन विमुक्तानां जनानां सुखिता कुतः । तस्माद् दुःखविनाशाय श्रयाम्युद्योगमुत्तमम् ॥११॥
 अथवानेकशो दृष्टोऽनादरं^३ स करिष्यति । नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥१२॥
 तस्मान् महाबलं दीप्तं महाविद्याविशारदम् । रावणं शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१३॥

अथानन्तर किष्किन्धापुरका स्वामी सुग्रीव स्त्रीके विरहसे दुःखी हो भ्रमण करता हुआ जहाँ कि खरदूषण तथा लक्ष्मणका युद्ध हुआ था ॥१॥ वहाँ आकर उसने देखा कि कहीं टूटे हुए रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं, कहीं जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये हैं, ऐसे घोड़ोंके साथ सामन्त पड़े हैं ॥२॥ कहीं कोई राजा जल रहे हैं, कोई साँसें भर रहे हैं, कहीं स्वामीके पोछे मरण करनेवाले स्वामिभक्त सुभट पड़े हैं ॥३॥ किन्हींकी आधी भुजा कट गयी है, किन्हींकी आधी जाँघ टूट चुकी है, किन्हींकी आँतोंका समूह निकल आया है, किन्हींके मस्तक फट गये हैं, किन्हींको शृगाल घेरे हुए हैं, किन्हींको पक्षी खा रहे हैं और किन्हींके मृत शरीरको रोते हुए कुटुम्बीजन आच्छादित कर रहे हैं ॥४-५॥ 'यह क्या है ?' इस प्रकार पूछनेपर किसीने उसे बताया कि सीताका हरण हो चुका है और जटायु तथा खरदूषण मारे गये हैं ॥६॥

तदनन्तर खरदूषणकी मृत्युसे किष्किन्धापति सुग्रीव बहुत दुःखी हुआ, वह आकुल होता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि 'हाय मैंने विचार किया था कि 'मैं उस बलशालीके लिए निवेदन कर स्त्री सम्बन्धी शोकसे छूट जाऊँगा' इसी बड़ी आशासे मैं यहाँ आया था पर मेरे भाग्यरूपी हाथीने उस आशाहीन महावृक्षको कैसे गिरा दिया । हाय अब मुझ पापीको किस प्रकार शान्ति होगी ॥७-९॥ क्या अब मैं आदरके साथ हनुमान्का आश्रय लूँ जिससे वह मेरे समान रूपका धारण करनेवाले मायामयी सुग्रीवका भरण कर सके ॥१०॥ उद्योगसे रहित मनुष्योंको सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैं दुःखका नाश करनेके लिए उत्तम उद्योगका आश्रय लेता हूँ ॥११॥ अथवा हनुमान्को अनेक बार देखा है अतः वह अनादर करेगा क्योंकि नवीन चन्द्रमा ही लोगोंके द्वारा अनुरागके साथ वन्दनीय होता है अन्य समय नहीं ॥१२॥ इसलिए महाबलवान्, देदीप्यमान और महाविद्याओंमें निपुण रावणकी शरणमें जाता हूँ वही मुझे शान्ति

अजानानो विशेषं वा क्रोधचोदितमानसः । दशाननः कदाचिन्नौ^१ हन्तुं वाञ्छेदुभावपि ॥१४॥
 मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम् । दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥१५॥
 तस्माद्येनैव संग्रामे निहितः खरदूषणः । तमेव शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१६॥
 तुल्यव्यसनताहेतोः कालोऽयमुपैसर्पति । सज्जावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्थां जना भुवि ॥१७॥
 एवं विमृश्य संजातचारुबुद्धिः समन्ततः । प्रजिघायादराद् दूतं प्रियं कर्तुं विराधितम् ॥१८॥
 सुग्रीवागमने तेन आपितेऽभूद् विराधितः । सविस्मयः सतोषश्च चकार च मनस्यदः ॥१९॥
 चित्रं सुग्रीवराजो मां संसेव्यः सन्निषेवते । अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ॥२०॥
 ततो दुन्दुभिनिर्घोषं समाकर्ण्य घनोपमम् । पातालनगरं जातं मयाकुलमहाजनम् ॥२१॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽपृच्छदनुराधाङ्गसंभवम् । वद तूर्यनिनादोऽयं श्रूयते कस्य संहतः ॥२२॥
 सोऽचोचच्छ्रूयतां देव महाबलसमन्वितः । नाथोऽयं कपिकेतूनां प्राप्तस्त्वां प्रेमतत्परः ॥२३॥
 आतरौ बालिसुग्रीवौ किष्किन्धाननराधिपौ । तिग्मांशुरजसः पुत्रौ प्रख्याताववैनाविभौ ॥२४॥
 बालीति योऽत्र विख्यातः शीलशौर्यादिभिर्गुणैः । अभिमानमहाशैलो नानंसीद् दशवक्त्रकम् ॥२५॥
 परं प्राप्य प्रबोधं स कृत्वा सुग्रीवलाच्छ्रियम् । तपोवनमुपाविशत्सर्वप्रन्थविवर्जितम् ॥२६॥
 सुग्रीवोऽप्यभिसक्तारमा सुतारायां श्रियान्वितः । राज्ये निःकण्टके रेमे शचीयुक्तो यथा हरिः^२ ॥२७॥

प्रदान करेगा ॥१३॥ अथवा जिसका मन क्रोधसे प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेषको न जानता हुआ कदाचित् हम दोनोंको ही मारनेकी इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायेगा ॥१४॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रोंके लिए, मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट स्वभाव और मनकी दाह नहीं बतलानी चाहिए ॥१५॥ इसलिए जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसीके शरणमें जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा ॥१६॥ रामको भी स्त्रीका विरह हुआ है और मैं भी स्त्रीके विरहसे दुःखी हूँ इसलिए एक समान दुःख होनेसे यह समय उनके पास जानेके योग्य है क्योंकि पृथिवीपर समान अवस्थावाले मनुष्य सद्भाव—पारस्परिक प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१७॥ ऐसा विचारकर जिसे सब ओरसे उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुग्रीवने विराधितको अनुकूल करनेके लिए उसके पास अपना दूत भेजा ॥१८॥ जब दूतने सुग्रीवके आगमनका समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और सन्तोषसे युक्त होकर मनमें यह विचार करने लगा कि आश्चर्य है सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है सो ठीक ही है क्योंकि आश्रयकी सामर्थ्यसे मनुष्योंके क्या नहीं होता है ? ॥१९-२०॥

तदनन्तर मेघके समान दुन्दुभिका शब्द सुनकर पातालनगर, (अलंकारपुर), भयसे व्याकुल हैं महाजन जिसमें ऐसा हो गया ॥२१॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने विराधितसे पूछा कि कहो कि यह किसकी तुरहीका शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥२२॥ इसके उत्तरमें विराधितने कहा कि हे देव ! यह महाबलसे सहित, वानरवंशियोंका स्वामी सुग्रीव प्रेमसे युक्त हो आपके पास आया है ॥२३॥ बालि और सुग्रीव ये दोनों भाई किष्किन्धा नगरीके स्वामी हैं, राजा सहस्ररश्मि रजके पुत्र हैं तथा पृथिवीपर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ॥२४॥ इनमें जो बालि नामसे प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणोंसे विख्यात था तथा अभिमानके लिए मानो सुमेरु ही था, उसने रावणको नमस्कार नहीं किया था ॥२५॥ अन्तमें परम प्रबोधको प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुग्रीवके आधीन कर वह सर्वपरिग्रहसे रहित तपोवनमें प्रविष्ट हो गया ॥२६॥ सुग्रीव भी अपनी सुतारा

१. बोधित-म. । २. आवाम् । ३. मुपसर्पणे ख., ज. । ४. तुल्यावाञ्छा म. । ५. प्रख्यातो + अवनो = पृथिव्याम्, इमी । ६. इन्द्रः ।

सुखो यस्याङ्गदामिष्यः गुणरत्नविभूषितः । किष्किन्धाविषये यस्य संकथान्यविवर्जिता ॥२८॥
 तथोरियं कथा यावद्वृत्तं तेऽनन्यचेतसोः । तावत्संप्राप सुग्रीवः श्रीमत्पार्थिवकेतनम् ॥२९॥
 ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य विवेशेक्षितमङ्गलम् । राजाधिकृतलोकेन परमं दर्शितादरः ॥३०॥
 लक्ष्मीधरकुमाराद्यास्तं राजन् प्राप्तविस्मयाः । परिषत्स्वजिरे कान्त्या विकसद्बदनाम्बुजाः ॥३१॥
 उपविष्टाश्च विधिना जाम्बूनदमहीतले । योग्यं संभाषणं चक्रुरमृतोपमया गिरा ॥३२॥
 निवेदितं ततो वृद्धैरिति पञ्चमहीक्षिते^३ । देव किष्किन्धनगरे सुग्रीवाख्योऽवनीश्वरः ॥३३॥
 प्रभुर्महाबलो भोगी गुणवानतिसरिप्रियः । केनापि दुष्टमायेन खगेनानर्थमाहृतः ॥३४॥
 एतस्याकृतिमाश्रित्य राज्यभोगं पुरं बलम् । सुतारां च गृहीतुं तां कोऽपि वाञ्छति दुर्मतिः ॥३५॥
 एतस्य वचनस्यान्ते रामस्तरसंमुखोऽभवत् । अचिन्तयच्च मैत्रोऽपि दुःखितो नाम विद्यते ॥३६॥
 मयार्थं सदृशो मन्ये यदि बाधैरतां मजेत् । येनास्य दृश्यमानैकप्रतिपक्षेण बाधनम् ॥३७॥
 अर्थोऽयं दुस्तरोऽस्त्यन्तं कथमेतद्विष्यति । हानिरेवंविधस्यैषा मद्विधः किं करिष्यति ॥३८॥
 सुमित्रातनयोऽपृच्छत् कृत्स्नं दुःखस्य कारणम् । सुग्रीवस्य मनस्तुल्यं धीरं जाम्बूनदधृतिम् ॥३९॥
 ततोऽसौ मन्त्रिणां मुख्यो जगाद विनयान्वितः । असत्सुग्रीवरूपस्य सत्सुग्रीवस्य चान्तरम् ॥४०॥

नामक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो राज्यलक्ष्मी सहित निष्कण्टक राज्यमें इस प्रकार क्रीड़ा करता था जिस प्रकार कि इन्द्राणी सहित इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥२७॥ उस सुग्रीवका गुणरूपी रत्नोसे विभूषित अंगद नामका ऐसा पुत्र है कि किष्किन्धा देशमें जिसकी कथा अन्य कथाओंसे रहित है अर्थात् अन्य लोगोंकी कथा छोड़कर सम्पूर्ण किष्किन्धा देशमें उसी एककी कथा होती है ॥२८॥ इस प्रकार अनन्यचित्ते के धारक लक्ष्मण तथा विराधितके बीच जबतक यह वार्ता चल रही थी कि तबतक सुग्रीव राजभवनमें आ पहुँचा ॥२९॥ राजाके अधिकारी लोगोंने ज्ञात होनेपर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया । तदनन्तर अनुमति पाकर उसने मंगलाचारका अवलोकन करते हुए राजभवनमें प्रवेश किया ॥३०॥ हे राजन् ! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुखकमल कान्तिसे खिल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदिने उसका आलिंगन किया ॥३१॥ शिष्टाचारके उपरान्त सब विधिपूर्वक स्वर्णमय पृथिवी तलपर बैठे और अमृततुल्य वाणीसे परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥३२॥

तदनन्तर वृद्धजनोंने राजा रामचन्द्रके लिए परिचय दिया कि हे देव ! यह किष्किन्ध नगरका राजा सुग्रीव है ॥३३॥ यह महाऐश्वर्यशाली, महाबलवान्, भोगी, गुणवान् तथा सज्जनों-को अतिशय प्यारा है । परन्तु किसी दुष्ट मायावी विद्याधरने इसे अनर्थ—आपत्तिमें डाल दिया है ॥३४॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्यभोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुताराको भी ग्रहण करना चाहता है ॥३५॥ तदनन्तर वृद्धजनोंके उक्त वचन पूर्ण होनेके बाद राम, सुग्रीवके सम्मुख उसकी ओर देखने लगे । रामने मनमें विचार किया कि अरे ! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥३६॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समझता हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनताको प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही बाधा पहुँचा रहा है ॥३७॥ इसका यह कार्य अत्यन्त कठिन है सो किस प्रकार होगा । इसकी यह बड़ी हानि हो रही है मेरा-जैसा व्यक्ति क्या करेगा ? ॥३८॥ लक्ष्मणने सुग्रीवके मनके समान जो जाम्बूनद नामक धीर-वीर मन्त्री था उससे दुःखका समस्त कारण पूछा ॥३९॥

तदनन्तर मन्त्रियोंमें मुख्य जाम्बूनदने बड़ी विनयसे मायामय सुग्रीव और वास्तविक

१. संप्राप्तः म. । २. विवेशे कृतमङ्गलः म. । ३. महीक्षितो ख. । ४. माहृतः म., ब. । ५. मदपेक्षयापि ।
 ६. अधरतां = हीमतां । ७. लक्ष्मण- म. ।

राजन् दारुणानङ्गलतापाशवशीकृतः । रूपं रूपवशः कोऽपि समं कृत्वास्य मायया ॥४१॥
 अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्थ सर्वस्यात्मजनस्य च । सुग्रीवान्तःपुरं दुष्टः प्राविशत्पापचेतनः ॥४२॥
 प्रविशन्तं च तं दृष्ट्वा सुताराङ्गा परा सती । महादेवी जगादास्य समुद्विग्ना निजं जनम् ॥४३॥
 दुष्टविद्याधरः कोऽपि सुग्रीवाकृतिरेषकः । आयाति पापपूर्णमा चारुलक्ष्णवर्जितः ॥४४॥
 अभ्युत्थानादिकामस्य क्रियां माकाष्टं पूर्ववत् । केनापि तरेणोऽयमभ्युपायेन दुर्णयः ॥४५॥
 अथाशङ्काचिसुक्तात्मा गम्भीरी लीलयान्वितः । गत्वा सुग्रीववद्भजे सौग्रीवं स वरासनम् ॥४६॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप बालिराजानुजः क्रमात् । अद्राक्षीच्च जनं दीनमप्राक्षीच्च समाकुलः ॥४७॥
 कस्मादयं जनोऽस्माकं म्लानवक्त्रेक्षणो भृशम् । विषादं वहते स्थाने स्थाने कृतसमागमः ॥४८॥
 किमङ्गदो गतो मेरुं वन्दनार्थं चिरायति । किं वा^३ प्रमादतो देवी कस्याप्युपगता हृषम् ॥४९॥
 जन्ममृत्युजरात्युग्रनानासंसारदुःखतः ।^५ विभ्यद् विभीषणः किं स्यात्तपोवनमुपागतः ॥५०॥
 चिन्तयन्तित्यतिक्रम्य द्वाराणि मणितेजसा । मासमानानि सर्वाणि संयुक्तानि सुतोरणैः ॥५१॥
 गीतजल्पितमुक्तानि सुसानीव समंततः । शङ्कितद्वारपालानि प्रयातान्यन्यतामिव ॥५२॥
 प्रासादप्रवरोत्संगे विक्षिपन् दृष्टिमायताम् । अपश्यत्स्त्रीजनान्तस्थमात्मानं दुष्टखेचरम् ॥५३॥
 दिव्यहाराम्बरं दृष्ट्वा तं शोभां दधत् पुरः । चित्रावतंसकं कान्त्या विकसद्बदनाम्बुजम् ॥५४॥

सुग्रीवका अन्तर बताया ॥४०॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अतिशय दारुण कामरूपी लताके पाशसे विवश तथा सुताराके रूपसे मोहित कोई पापी विद्याधर मायासे इसका रूप बनाकर मन्त्रिवर्ग तथा समस्त परिजनोंके बिना जाने, सन्तुष्ट हो सुग्रीवके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ ॥४१-४२॥ उसे प्रवेश करते देख सुतारा नामकी परम सती महादेवीने भयभीत होकर अपने परिजनसे कहा कि जिसकी आत्मा पापसे पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणोंसे रहित है ऐसा यह कोई दुष्ट विद्याधर सुग्रीवका वेष रखकर आता है अतः पहलेकी तरह तुम लोग इसका सत्कार नहीं करो। यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपायसे तिरने योग्य है—पार करने योग्य है ॥४३-४५॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा शंकासे रहित थी, जो गम्भीर था और लीलासे सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीवके समान जाकर उसके सिंहासन पर आ बैठा ॥४६॥ इसी बीचमें बालिराजाका अनुज वास्तविक सुग्रीव, यथाक्रमसे वहाँ आया। आते ही उसने अपने परिजनको दीन देखकर व्यग्र हो उनसे पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यन्त म्लानमुख एवं म्लाननेत्र होकर विषाद क्यों धारण कर रहे हैं तथा स्थान-स्थानपर इकट्ठे हो रहे हैं? ॥४७-४८॥ वन्दनाकी अभिलाषासे अंगद सुमेरु पर्वतपर गया था सो क्या आनेमें विलम्ब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमादके कारण किसीपर रोषको प्राप्त हुई है? ॥४९॥ अथवा जन्म, मृत्यु और जरासे अत्यन्त उग्र संसारके नाना दुःखोंसे भयभीत होकर विभीषण तपोवनको प्राप्त हुआ है ॥५०॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ सुग्रीव, मणियोंके तेजसे देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणोंसे संयुक्त उन समस्त द्वारोंको उल्लंघन कर महलके भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय वार्तालापसे रहित थे, सब ओर से सन्तप्त हुएके समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शंकासे युक्त थे तथा जो अन्यरूपताको प्राप्त हुएके समान जान पड़ते थे ॥५१-५२॥ जब उसने महलके उत्तम मध्यभागमें अपनी लम्बी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनोंके पास बैठे हुए अपनी ही समान आभावाले एक दुष्ट विद्याधरको देखा ॥५३॥ जो दिव्य हार और वस्त्रोंको धारण कर रहा था, परम शोभाका धारक था, चित्र-विचित्र आभूषणोंसे युक्त था, तथा कान्तसे जिसका मुखकमल विकसित हो रहा था ऐसे दुष्ट विद्याधरको सामने

क्रुद्धो जगज्जं सुग्रीवः प्रावृषेण्यवनोपमम् । दिङ्मुखेषु क्षिपन् मासमक्ष्णोः संध्यावनारुणम् ॥५५॥
 ततः सुग्रीवतुल्योऽपि कुर्वन् पक्षगर्जितम् । उत्तस्थौ कोरकास्यः करोव मदविह्वलः ॥५६॥
 संदष्टोऽष्टौ महासखौ दृष्ट्वा तौ योद्धुमुद्यतौ । साम्ना^१ निरुद्धुः क्षिप्रं श्रीचन्द्राद्याः सुमन्त्रिणः ॥५७॥
 सुतारोति ततोऽवोचत् दुष्टोऽयं कोऽपि खेचरः । तुल्यः सर्वेण देहेन बलेन वचसा रुचा ॥५८॥
 पत्युर्मम न तुल्यस्तु लक्षणैर्मनकौगपि । प्रासादशङ्खकुम्भाद्यैश्चिरसंस्थितलक्षितैः ॥५९॥
 मर्तुर्मे भूषिताङ्गस्य महापुरुषलक्षणैः । कस्यापि वार्धमस्यास्य वाजिवालेयतुल्यता ॥६०॥
 श्रुत्वापीदं सुतारोक्तं सादृश्यद्वतचित्तैकैः । मन्त्रिभिस्तदवज्ञातं निःस्वोक्तं धनिमिर्यथा ॥६१॥
 एकीभूय च तैः सर्वैर्मन्त्रिभिर्मतिशालिमिः । गदितं संप्रभार्येदं संदेहहृतमानसैः ॥६२॥
 मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याव्यसनिनः^३ शिशोः । प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुधैः ॥६३॥
 अत्यन्तदुर्लभा लोके मोत्रशुद्धिस्तथा विना । नितान्तपरमेणापि न राज्येन प्रयोजनम् ॥६४॥
 संप्राप्य निर्मलं गोत्रं मय्यं शीलादिभूषितैः । तस्मादन्तःपुरं यत्नादिदं रक्ष्यं सुनिर्मलम् ॥६५॥
 अकीर्तिरिति निन्द्येयमस्य नोत्पद्यते यथा । कुरुध्वमतियत्नेन विमर्ज्याखिलमेतयोः ॥६६॥
 अङ्गः कृत्रिमसुग्रीवं पितृभ्रान्त्या समाश्रितः । अङ्गदः सत्यसुग्रीवं मातृवाक्यानुरोधतः ॥६७॥

देख सुग्रीव, क्रुद्ध होकर सन्ध्याके मेघ समान लाल नेत्रोंकी कान्तिको दिशाओंमें फैलाता हुआ वर्षा ऋतुके मेघके समान गरजा ॥५४-५५॥ तदनन्तर सुग्रीवके समान रूपको धारण करनेवाला विद्याधर भी क्रोधसे रक्तमुख हो हाथीके ससान मदसे विह्वल होता और कठोर गर्जना करता हुआ उठा ॥५६॥

अथानन्तर ओठोंको डँसते हुए उन दोनों बलवानोंको युद्धके लिए उद्यत देख श्रीचन्द्र आदि मन्त्रियोंने शान्तिपूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया ॥५७॥ तत्पश्चात् सुताराने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है । यद्यपि समस्त शरीर, बल, वचन और कान्तिसे तुल्य दिखता है परन्तु प्रासाद, शंख, कलश आदि लक्षणोंसे जो कि मेरे पतिके शरीरमें चिरकालसे स्थित हैं तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किंचित् भी मेरे पतिके समान नहीं है ॥५८-५९॥ महापुरुषोंके लक्षणोंसे जिनका शरीर भूषित है ऐसे मेरे पतिकी तथा इस किसी नीचकी तुल्यता छोड़े और गधेकी तुल्यताके समान है ॥६०॥

तदनन्तर दोनोंकी सदृशताके कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मन्त्रियोंने सुताराके इन शब्दोंको सुनकर भी उनको उस तरह अवज्ञा कर दी जिस प्रकार कि धनी मनुष्य निर्धन मनुष्यके वचनोंकी अवज्ञा कर देते हैं ॥६१॥ सन्देहने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धिशाली मन्त्रियोंने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि मद्यपायी, अत्यन्त वृद्ध, वेश्या व्यसनी, बालक और स्त्रियोंके वचन विद्वज्जननोंको कभी नहीं मानना चाहिए ॥६२-६३॥ लोकमें गोत्रकी शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए उसके बिना बहुत भारी राज्यसे भी प्रयोजन नहीं है ॥६४॥ निर्मल गोत्र पाकर ही शीलादि आभूषणोंसे विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अन्तःपुरकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए ॥६५॥

जिस तरहसे सुग्रीव निन्दनीय अपकीर्ति न हो उस तरह इन दोनोंका सब विभाग कर अतियत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥६६॥ अंग नामका पुत्र पिताकी भ्रान्तिसे कृत्रिम-बनावटी सुग्रीवके पास गया और अंगद नामका पुत्र माताके वचनोंके अनुरोधसे सत्य सुग्रीवके

१. संदष्टौ म. । २. सास्ना म. । ३. मनागपि ईषदपि-‘अव्ययसर्वनाम्नामकञ् प्राक्तेः’ इत्यकञ् । ४. वाद्यम-स्यास्य म. । ५. वित्तकैः म. । ६. व्यसनस्य शिशोः म. । ७. विभिद्या- म. ।

सन्दिहाना निजे नाथे वयमन्यतिसाम्यतः । सुतारावचनादेनं पुरस्कृत्य व्यवस्थिताः ॥६८॥
 अक्षौहिण्यस्ततः सप्त प्रभुमेकमुपाश्रिताः । इतरं चापि तावन्त्यः संशयस्य वशं गताः ॥६९॥
 पुरस्य दक्षिणे भागे सुग्रीवः कृत्रिमः कृतः । उत्तरे तस्य सुग्रीवः स्थापितश्च यथाविधि ॥७०॥
 अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च प्रतिज्ञामिति संशये । बालिपुत्रो ततः कुर्वन् सर्वतः प्रतिपालनम् ॥७१॥
 सुताराभवनद्वारं यो व्रजेत्कश्चिदस्य सः । प्रौढेन्दीवरशोभस्य वध्यः खड्गस्य मे ध्रुवम् ॥७२॥
 ततः कपिध्वजावेवं स्थापितौ तालुभावपि । अपश्यन्तो सुतारास्यं निमग्नौ व्यसनार्णवे ॥७३॥
 ततोऽयं सत्यसुग्रीवो दयितात्रिरहाकुलः । बहुशः शोकहानार्थमगच्छत् खरदूषणम् ॥७४॥
 पुनश्च मारुतेः पार्श्वमव्रवीच्च पुनः पुनः । परित्रायस्व दुःखार्तं प्रसादं कुरु बान्धव ॥७५॥
 मदीयं रूपमासाद्य मायया कोऽपि पापधीः । कुरुते मे परां बाधां स गत्वा भार्यतां हुतम् ॥७६॥
 सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तदवस्थस्य शोकिनः । अजनातनयः क्रोधाद्वाढवाग्निसमोऽभवत् ॥७७॥
 विमानं परमच्छायमप्रतीघातसंज्ञितम् । नानालंकारभूयिष्ठं त्रिदशावाससंनिभम् ॥७८॥
 उत्साहं परमं विभ्रदारुह्य सचिवैर्द्वृतः । किष्किन्धनगरं प्राप स्वर्गं सुकृतभागिव ॥७९॥
 श्रुत्वा प्राप्तं हनुमन्तमसकौ विगतज्वरः । आरुह्य द्विरदं ग्रीतः सुग्रीव इव निर्ययौ ॥८०॥
 तं कपिध्वजमालोक्य परं सादृश्यमागतम् । विस्मितो वायुपुत्रोऽपि पतितः संशयार्णवे ॥८१॥
 अचिन्तयच्च सुव्यक्तं सुग्रीवो द्वाविमौ कथम् । एतयोः कतरं हन्मि यद्विशेषो न लभ्यते ॥८२॥

पास गया ॥६७॥ हम लोग भी अत्यन्त सदृशताके कारण अपने स्वामीके विषयमें सन्देहशील हैं परन्तु सुताराके कहनेसे इसीको आगे कर स्थित हैं ॥६८॥ संशयके वशमें पड़ी सात अक्षौहिणी सेनाएँ एक सुग्रीवके आश्रय गयीं और उतनी ही दूसरे सुग्रीवके अधीन हुई ॥६९॥ नगरके दक्षिण भागमें कृत्रिम सुग्रीव रखा गया और वास्तविक सुग्रीव नगरके उत्तर भागमें विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥७०॥

सब ओरसे रक्षा करनेवाले बालिके पुत्र चन्द्ररश्मिने संशय उपस्थित होनेपर इस प्रकारकी प्रतिज्ञा की कि इन दोनोंमें जो भी सुताराके भवनके द्वारपर जावेगा वह तरुण इन्दीवर—नीलकमलके समान सुशोभित मेरी खड्गके द्वारा अवश्य ही बध्य होगा—मेरी तलवारके द्वारा मारा जायेगा ॥७१-७२॥ तदनन्तर इस प्रकार रखे हुए दोनों सुग्रीव सुताराका मुख न देखते हुए व्यसनरूपी सागरमें निमग्न हो गये ॥७३॥

अथानन्तर स्त्रीके विरहसे आकुल सत्य सुग्रीव, शोक दूर करनेके लिए अनेक बार खरदूषणके पास आया ॥७४॥ फिर हनुमान्के पास जाकर उसने बार-बार कहा कि हे बान्धव ! मैं दुःखसे पीडित हूँ अतः मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥७५॥ कोई पापबुद्धि विद्याधर मायासे मेरा रूप रखकर मुझे अत्यन्त बाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र हो मारो ॥७६॥ उस प्रकारकी अवस्थामें पड़े शोकयुक्त सुग्रीवके वचन सुनकर हनुमान् क्रोधसे बड़वानलके समान हो गया ॥७७॥ वह परम उत्साहको धारण करता हुआ मन्त्रियोंके साथ, अत्यन्त कान्तिमान्, नाना अलंकारोंसे प्रचुर, स्वर्गंतुल्य अप्रतीघात नामक विमानमें सवार हो उस तरह किष्किन्ध नगर पहुँचा जिस तरह कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गमें पहुँचता है ॥७८-७९॥ हनुमान्को आया सुन वह शीघ्र ही हाथीपर सवार हो प्रसन्नताके साथ सुग्रीवकी तरह नगरसे बाहर निकला ॥८०॥ अत्यन्त सादृश्यको प्राप्त हुए उस कपिध्वजको देखकर हनुमान् भी विस्मित हो संशयरूपी सागरमें पड़ गया ॥८१॥ वह विचार करने लगा स्पष्ट ही ये दोनों सुग्रीव हैं जबतक कि विशेषता नहीं जान

अविदितानयोर्भेदमुभयोर्वानरेन्द्रयोः । कदाचिद् वधिषं माऽहं सुग्रीवं सुहृदां वरम् ॥८३॥
 सुहृत् मन्त्रिभिः सार्धं विमृश्य च यथाविधि । उदासीनतया देव मारुतिः स्वपुरं गतः ॥८४॥
 निवृत्ते मरुतः पुत्रे सुग्रीवोऽभवदाकुलः । असौ च सदृशोऽमुष्य तथैवातिष्ठदाशया ॥८५॥
 मायासहस्रसंपन्नो महावीर्यो महोदयः । उल्कायुधोऽपि संदेहं प्राप कष्टमिदं परम् ॥८६॥
 निमग्नं संशयाम्भोवौ व्यसनग्राहलंकटे । न जानाम्यधुना देव क इमं तारयिष्यति ॥८७॥
 कान्तावियोगदात्रेण प्रदीप्तं कपिकेतनम् । कृतज्ञं भज सुग्रीवं प्रसीद रघुनन्दन ॥८८॥
 अयं शरणमायातो भवन्तं धितैश्चलम् । सत्रद्विधशरीरं हि परदुःखस्य नाशनम् ॥८९॥
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा धिस्मयव्याप्तमानसाः । जाताः पद्मादयः सर्वे धिगहोहीतिभाणिः ॥९०॥
 अचिन्तयन् पद्मोऽतः सवार्थं मम दुःखतः । जातोऽपरः समानेषु प्रायः प्रेमोपजायते ॥९१॥
 एष प्रत्युपकारं मे यदि कतुं न शक्यति । निर्ग्रन्थश्रमणो भूत्वा साधयिष्यामि विवृतिम् ॥९२॥
 एवं ध्यात्वा नुं राधाद्यैः समं संगन्ध्य च क्षणम् । कपिमौलीन्द्रमाहूय पद्मनाभोऽभ्यभाषत् ॥९३॥
 सत्सुग्रीवो भवान्यो वा सर्वथा त्वं मयेप्सितः । विजित्य सबलस्तुल्यं पदं यच्छाभि ते निजम् ॥९४॥
 तथाविधं पुरा राज्यं प्राप्य योगं सुतारया । सेवस्व सुदितोऽत्यन्तभग्ननिःशेषकण्टकम् ॥९५॥

पड़ती है तबतक इन दोनों से एकको कैसे मारूँ ? ॥८२॥ इन दोनों वानर राजाओंका अन्तर जाने बिना मैं कदाचित् मित्रोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवको ही न मार बैठूँ ॥८३॥

इस प्रकार सुहृत् भर मन्त्रियोंके साथ विधिपूर्वक विचार कर उदासीन भावसे हनुमान् अपने नगरको वापस चला गया ॥८४॥ हनुमान्के वापस लौट जानेपर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुआ । और जो इसके समान दूसरा मायावी सुग्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥८५॥

यद्यपि सुग्रीव हजारों प्रकारकी मायासे स्वयं सम्पन्न है, महाशक्तिशाली है, महान् अभ्युदयका धारक है, और उल्कारूप अस्त्रोंका धारक है तो भी सन्देहको प्राप्त हो रहा है यह बड़े कष्टकी बात है ॥८६॥ हे देव ! व्यसनरूपी मगरमच्छोंसे भरे हुए संशयरूपी सागरमें निमग्न इस सुग्रीवको कौन तारेगा यह नहीं जान पड़ता ॥८७॥

हे राघव ! स्त्रीवियोगरूपी दावानलसे प्रदीप्त तथा कृत उपकारको माननेवाले इस कपिध्वज सुग्रीवकी सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥८८॥ यह आपको आश्रितवत्सल सुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थमें आप-जैसे महापुरुषका शरीर परदुःखका नाश करनेवाला है ॥८९॥

तदनन्तर उसके वचन सुनकर जिज्जे हृदय आश्चर्यसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि सभी लोग 'धिक्' 'अहो' 'ही' आदि शब्दोंका उच्चारण करने लगे ॥९०॥ रामने विचार किया कि अब यह दुःखके कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योंकि प्रायःकर समान मनुष्योंमें ही प्रेम होता है ॥९१॥ यदि यह मेरा प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं होगा तो मैं निर्ग्रन्थ साधु होकर मोक्षका साधन करूँगा ॥९२॥

इस प्रकार ध्यान कर तथा विराधित आदिके साथ क्षण-भर मन्त्रणा कर सुग्रीवको बुला रामने उससे कहा ॥९३॥ कि तुम चाहे यथार्थ सुग्रीव होओ और चाहे कृत्रिम सुग्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मारकर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूँ ॥९४॥ तुम पहलेकी भाँति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त शत्रुओंको निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुताराके साथ ममागमकी प्राप्त होओ ॥९५॥

१. -द्विद्विषमहं म. । २. शृणु वत्सकम् म. । ३. पद्माभः ख., ज., क. । ४. -नुरोधार्थः म. ।

यदि मे निश्चयोपेतः प्राणेशोऽपि गरीयसीम् । सीतां तां गुणसंपूर्णां भद्रोपलभसे प्रियाम् ॥९६॥
 कपिकेतुस्त्वाचेदं यदि तां तव न प्रियाम् । सप्ताहाभ्यन्तरे वेष्टि विशामि ज्वलनं तदा ॥९७॥
 अमीभिरक्षरैः पद्मः परं प्रह्लादमाश्रितः । शशाङ्करश्मिसदृशैर्दधानः कुमुदोपमाम् ॥९८॥
 प्रवाहेणामृतस्येव प्लावितो विकचाननः । रोमाञ्चनिर्भरं देहं बभार च समन्ततः ॥९९॥
 अन्योन्यस्य दधं द्रोहरहिताविति चादरात् । समयं चक्रतुर्जनं तस्मिन्नेव जिनालये ॥१००॥
 ततो रथवराखण्डौ महासामन्तसेवितौ । किष्किन्धनगरं तेन प्रयातौ रामलक्ष्मणौ ॥१०१॥
 समीपीभूय दूतश्च प्रहितः कपिमौलिना । निर्भस्मितश्च कूटेन सुग्रीवेणागतः पुनः ॥१०२॥
 ततश्चालीकसुग्रीवः संनह्य स्यन्दनस्थितः । युद्धाय निर्ययौ क्रुद्धः पृथुसैन्यसमावृतः ॥१०३॥
 अथ कूटमटाटोपः संकटश्चण्डनिस्त्वनः । संप्रहारो महानासीदग्रसंलग्नसेनयोः ॥१०४॥
 सुग्रीवमेव सुग्रीवो जगामोद्ग्रीवमुग्ररुदः । विद्यायाः करणासक्तो दृढं योद्धुं समुद्यतः ॥१०५॥
 संप्रहारो महान् जातस्तथोश्रक्रेषुसायकैः । अन्धकारीकृताकाशश्चिरमप्राप्तयोः श्रमम् ॥१०६॥
 अथ सुग्रीवमाहृत्य गदस्यालीकवानरी । विशाय मृत इत्येवं तुष्टः परमुपाविशत् ॥१०७॥
 निश्चेष्टविग्रहश्चार्थं सत्यशाखामृगध्वजः । निजं शिविरमानीतः परिवार्य सुहृज्जनैः ॥१०८॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करनेके बाद यदि तुम मेरी प्राणाधिका तथा गुणोंसे परिपूर्ण सीताका पता चला सके तो उत्तम बात है ॥९६॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि यदि मैं सात दिनके भीतर आपकी प्रियाका पता न चला दूँ तो अग्निमें प्रवेश करूँ ॥९७॥

चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुग्रीवके इन अक्षरोंसे राम कुमुदकी उपमा धारण करते हुए परम आह्लादको प्राप्त हुए ॥९८॥ अमृतके प्रवाहसे तर हुएके समान उनका मुख-कमल खिल उठा तथा शरीर सब ओरसे रोमांचोंसे व्याप्त हो गया ॥९९॥ हम दोनों परस्पर द्रोहसे रहित हैं—एक दूसरेके मित्र हैं इस प्रकार आदरके साथ उन दोनोंने उस जिनालयमें जिन-धर्मानुसार शपथ धारण की ॥१००॥

तदनन्तर महासामन्तोंसे सेवित राम-लक्ष्मण सुग्रीवके साथ उत्तम रथपर आरुढ़ हो किष्किन्ध नगरकी ओर चले ॥१०१॥ नगरके समीप पहुँचकर मुकुटमें वानरका चिह्न धारण करनेवाले सुग्रीवने दूत भेजा सो मायावी सुग्रीवके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापस आ गया ॥१०२॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा कृत्रिम सुग्रीव तैयार हो रथपर बैठकर बड़ी सेनासे आवृत होता हुआ युद्धके लिए निकला ॥१०३॥

अथानन्तर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनोंमें महायुद्ध प्रारम्भ हुआ । उनका वह महायुद्ध कपटी योद्धाओंके विस्तारसे युक्त था, संकटपूर्ण था तथा तीक्ष्ण शब्दोंसे सहित था ॥१०४॥ जो तीक्ष्ण क्रोधका धारक था, तथा विद्याओंके करनेमें आसक्त था ऐसा सुग्रीव, अहंकारसे ग्रीवाको ऊपर उठानेवाले कृत्रिम सुग्रीवसे दृढ़ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१०५॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद भी जिनमें थकावटका अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों सुग्रीवोंमें महान् युद्ध हुआ । उनके उस युद्धमें चक्र, बाण तथा खड्ग आदि शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार फैल रहा था ॥१०६॥

अथानन्तर कृत्रिम सुग्रीव, गदाके द्वारा सुग्रीवको चोट पहुँचाकर तथा 'यह मर गया' ऐसा समझकर सन्तुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०७॥ इधर जिसका शरीर निश्चेष्ट पड़ा था

अत्रयीलुब्धमंजुश्च नाथ हस्तमुपागतः । जीवन्नेव कथं चौरः पुरं मम पुनर्गतः ॥१०९॥
 नूनं न भवितव्यं मे दुःखस्यान्तेन राघव । भवन्तमपि संप्राप्य किंतु^१ कष्टमतः परम् ॥११०॥
 ततः पद्मप्रभोऽवोचद्भवतोर्ध्वमानयोः । विशेषो न मया ज्ञातो न हतस्तेन ते समः ॥१११॥
 अज्ञानदोषतो नाशं मानैषीष्वैव जातुचित् । सुहृद् जैनवाक्येन जनितं प्रियसंगमम् ॥११२॥
 अथाहूतः पुनः प्राप्तः सुग्रीवप्रतिभो बली । संरम्भवह्निना दीप्तः पद्मेनाभिमुखीकृतः ॥११३॥
 अद्रिणेव स रामेण क्षोभितः सागरोपमः । निस्त्रिंशद्ग्राह्यं वातसंचारात्यन्तसंकुलः ॥११४॥
 लक्ष्मणेनैव सुग्रीवः परिष्वज्य दृढं धृतः । स्त्रीवैरतः समीपं मा शत्रोः कोपेन गादिति ॥११५॥
 ततः ससार पद्माभः सुग्रीवामं समाह्वयन् । ज्वलन् संग्रामसंप्राप्तिजनितेनोस्तेजसा ॥११६॥
 अथ पद्मं समालोक्य समामृच्छ्य च साधकम् । बैताली निःसृता विद्या नारीबोद्धतचेष्टिता ॥११७॥
 सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तं धानराक्खिविजितम् । सहसा साहसगतिमिन्द्रनीलनगोपमम् ॥११८॥
 स्वभावमागतं दृष्ट्वा निःकान्तमिव कञ्चुकात् । शास्त्राभ्युपगच्छाः सर्वे संभ्रम्यैकत्वमाश्रिताः ॥११९॥
 नानायुद्धाश्च संक्रुद्धा बलिनस्तमभूयुधन् । सोऽयं सोऽयमितिस्वानं कुर्वाणाः पश्यतेति च ॥१२०॥
 तेन तेजस्विना सैन्यं तद्विप्रासुशक्तिना । पुरस्कृतं दिशो भेजे यथा^२ तूलं नमस्वता ॥१२१॥

ऐसे यथार्थ सुग्रीवको उसके मित्र जन घेरकर अपने शिविरमें ले आये ॥१०८॥ जब सचेत हुआ तब रामसे बोला कि नाथ ! हाथमें आया चोर जीवित हो पुनः मेरे नगरमें कैसे चला गया ॥१०९॥

जान पड़ता है कि राघव ! अब मेरे दुःखका अन्त नहीं होगा और फिर आपको प्राप्त कर भी । इससे बढ़कर कष्ट और क्या होगा ? ॥११०॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि मैं युद्ध करते हुए तुम दोनोंकी विशेषता नहीं जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सदृशता करनेवाले सुग्रीवको नहीं मारा है ॥१११॥ जिनागमका उच्चारण कर तू मेरा मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोषसे तुझे ही नष्ट नहीं कर दूँ इस भयसे मैं चुप रहा ॥११२॥

अथानन्तर उस कृत्रिम सुग्रीवको फिरसे ललकारा सो वह बलवान् क्रोधाग्निसे दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा रामने उसका सामना किया ॥११३॥ जिस प्रकार पर्वतके द्वारा समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी मगरमच्छोंके संचारसे अतिशय भरा हुआ वह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुग्रीव रामके द्वारा क्षोभको प्राप्त हुआ ॥११४॥ इधर लक्ष्मणने वास्तविक सुग्रीवका दृढ़ आलिंगन कर उसे इस अभिप्रायसे रोक लिया कि कहीं यह स्त्रीके वैरके कारण क्रोधसे शत्रुके पास न पहुँच जाये ॥११५॥

तदनन्तर युद्धकी प्राप्तिसे उत्पन्न विशाल तेजसे देदीप्यमान राम, कृत्रिम सुग्रीवको ललकारते हुए आगे बढ़े ॥११६॥ अथानन्तर रामको आया देख सिद्ध करनेवालेसे पूछकर बैताली विद्या उसके शरीरसे इस प्रकार निकल गयी कि जिस प्रकार उद्धत चेष्टाकी धारण करनेवाली स्त्री निकल जाती है ॥११७॥ तत्पश्चात् जो सुग्रीवकी आकृतिसे रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इन्द्रनील मणिके समान जान पड़ता था, और जो आवरणसे निकले हुएके समान अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित था ऐसे साहसगतिको देखकर सब वानरवंशी क्षुभित हो एकरूपताको प्राप्त हो गये ॥११८-११९॥ नाना शस्त्रोंसे सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर 'यह वही है यह वही है देखो देखो' आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥१२०॥ सो विशाल शक्तिके धारक उस तेजस्वीने शत्रुओंकी उस सेनाको जब आगे कर खदेड़ा तब वह दिशाओंको उस

तावत्ससायकं कृत्वा धनुरुद्धतविक्रमः । अधावत्पद्ममुद्दिश्य धनाघनचयोपमः ॥१२२॥
 शरधारो क्षिपत्यस्मिन् भृशस्वादहितान्तरम् । विधाय मण्डपं बाणैरस्थात् काकुस्थनन्दनः ॥१२३॥
 समं साहसयानेन पद्मस्याभूत्परं मृधम् । आनन्दो हि स पद्मस्य चिरं यः कुरुते रणम् ॥१२४॥
 ततः कृत्वा रणक्रीडां चिरमूर्जितविक्रमः । क्षुरप्रैरस्य कवचं विच्छेद रघुनन्दनः ॥१२५॥
 तितवाकारदेहोऽथ कृतस्तीक्ष्णैः शिलीमुखैः । गतः सुसाहसो भूमिमालिलिङ्ग गतप्रमः ॥१२६॥
 समासाद्य च तैः सर्वैः कुतूहलिभिरीक्षितः । दुष्टः साहसयानोऽसाविति ज्ञातश्च निश्चितम् ॥१२७॥
 ततः सभ्रातृकं पद्मं सुग्रीवः पर्यपूजयत् । स्तुतिभिश्चाभिरम्याभिस्तुष्टावोदात्तसंमदः ॥१२८॥
 पुरे कारयितुं शोभां परमां हतकण्ठके । यातः कान्तासमायोगं समुत्कण्ठां वदन् पराम् ॥१२९॥
 भोगसागरमग्नोऽसौ नैवाज्ञासीदहर्निशम् । चिरं दृष्टः सुतारायां न्यस्तनिःशेषचेतनः ॥१३०॥
 रात्रिमेकां बहिर्वीत्वा पद्मानमप्रमुखा नृपाः । कदम्बा प्रविश्य किष्किन्धं महाबलसमन्विताः ॥१३१॥
 आनन्दोद्यानमाश्रित्य नन्दनश्रीविडम्बकम् । स्वेच्छयावस्थितिं चक्रुर्लोकपालसुराश्रितः ॥१३२॥
 तस्या^१ वर्णनमेवातिवर्णनारम्यतापि तु^२ । उद्यानस्यान्यथा कोऽसौ शक्तस्तद्गुणवर्णने ॥१३३॥
 रम्यं चैत्यगृहं तत्र न्यस्तचन्द्रप्रभाचनम् । तद्विघ्नघ्नं प्रणम्यैतावासीनौ रामलक्ष्मणौ ॥१३४॥

प्रकार प्राप्त हुई जिस प्रकारकी पवनसे प्रेरित रुई प्राप्त होती है ॥१२१॥ उस समय उद्धत पराक्रम तथा मेघसमूहकी उपमा धारण करनेवाला साहसगति, धनुषपर बाण चढ़ाकर रामकी ओर दौड़ा ॥१२२॥ उधर जब वह लगातार बाणसमूहकी वर्षा कर रहा था तब इधर राम भी बाणोंके द्वारा मण्डप बनाकर स्थित थे—राम भी घनघोर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥१२३॥ इस प्रकार रामका साहसगतिके साथ परम युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि जो चिरकाल तक युद्ध करता था वह रामको आनन्ददायी होता था ॥१२४॥ तदनन्तर अत्यधिक पराक्रमके धारक रामचन्द्रने चिरकाल तक रणक्रीड़ा कर बाणोंसे उसका कवच छेद दिया ॥१२५॥ तत्पश्चात् तीक्ष्ण बाणोंसे जिसका शरीर चलनीके समान सच्छिद्र हो गया था ऐसे साहसगतिने प्रभारहित हो पृथिवीका आलिंगन किया अर्थात् प्राणरहित हो पृथिवीपर गिर पड़ा ॥१२६॥ कुतूहलसे भरे सब विद्याधरोंने आकर उसे देखा तथा निश्चयसे जाना कि यह साहसगति ही है ॥१२७॥

तदनन्तर उत्कट हर्षके धारक सुग्रीवने भाई—लक्ष्मण सहित रामकी पूजा की तथा मनोहर स्तुतियोंसे स्तुति की ॥१२८॥ शत्रुरहित नगरमें परमशोभा करानेके लिए परम उत्कण्ठाको धारण करता हुआ वह स्त्रीके साथ समागमको प्राप्त हुआ ॥१२९॥

वह भोगरूपी सागरमें ऐसा मग्न हुआ कि रात-दिनका भी उसे ज्ञान नहीं रहा । वह चिरकाल बाद दिखा था अतः सुताराके लिए ही उसने अपनी समस्त चेतना समर्पित कर दी ॥१३०॥ महाबलसे सहित राम आदि प्रमुख राजाओंने एक रात्रि नगरसे बाहर बिताकर वैभवके साथ किष्किन्ध नगरमें प्रवेश किया ॥१३१॥ वहाँ लोकपाल देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले राम आदि प्रमुख राजा, नन्दनवनकी शोभाको विडम्बित करनेवाले आनन्द नामक उद्यानमें स्वेच्छासे ठहरे ॥१३२॥

उस उद्यानकी सुन्दरताका वर्णन नहीं करना ही उसकी सबसे बड़ी सुन्दरता थी अन्यथा उसके गुण वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? ॥१३३॥ उस उद्यानमें चन्द्रप्रभ भगवान्की प्रतिमासे सुशोभित मनोहर चैत्यालय था सो समस्त विघ्नोंको नष्ट करनेवाले चन्द्रप्रभ भगवान्को नमस्कार कर राम-लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥१३४॥

१. चिरं दृष्टः म. । २. स्य वर्णन-म. । ३. पितुः म. ।

बहिश्चैत्यालयस्यास्य चन्द्रोदरसुतादयः । स्वसैन्यावासनं कृत्वा बभूवुर्विगतश्रमाः ॥१३५॥
 गुणश्रुत्यनुरागेण स्वयंवरणबुद्धयः । त्रयोदश सुताः पद्मं सुग्रीवस्य ययुर्मुदा ॥१३६॥
 चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या द्वितीया हृदयावली । अन्या हृदयधर्मेति चेतसः संकटोपमा ॥१३७॥
 तुरीयानुन्धरो नाम्ना श्रीकान्ता श्रीरिवापरा । सुन्दरी सर्वतश्चित्तसुन्दरोत्परोदिता ॥१३८॥
 अन्या सुरवती नाम सुरस्त्रीसमविभ्रमा । मनोवाहिन्यभिरुयाता मनोवहनकोविदा ॥१३९॥
 चारुश्रीरिति विरुयाता चारुश्रीः परमार्थतः । मदनोत्सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा ॥१४०॥
 अन्या गुणवती नाम गुणमालाविभूषिता । एका पद्मावती ख्याता बुद्धपद्मसमानना ॥१४१॥
 तथा जिनमतिर्नित्यं जिनपूजनतत्परा । एताः कन्याः समादाय ययौ तासां परिच्छदः ॥१४२॥
 प्रणम्य च जगौ रामं नार्थतासां स्वयंवृतम् । शरणं भव लोकेश कन्यानां बन्धुरत्तम ॥१४३॥
 दुर्विदग्धैः खर्गैर्माभूत् विवाहोऽस्माकमित्यलम् । जातमासां मनःश्रुत्वा गोत्रस्य त्वानुपालकम् ॥१४४॥
 ततो हीभारनन्नास्या वशिताः शोभया विभुम् । पद्माभमुपसंग्रस्ताः पद्माभा नवयौवनाः ॥१४५॥
 विद्युद्वह्निसुवर्णाब्जगर्ममासां महीयसाम् । देहमासां विकासेन तासां रेजे नमस्तलम् ॥१४६॥
 उपविश्य विनीतास्ता लावण्यान्वितविग्रहाः । समीपे पद्मनाभस्य तस्थुः पूजितचेष्टिताः ॥१४७॥

चन्द्रोदरके पुत्र—विराधित आदि उस चैत्यालयके बाहर अपनी सेनाएँ ठहराकर श्रमसे रहित हुए ॥१३५॥

तदनन्तर रामके गुण श्रवण कर अनुरागसे भरी सुग्रीवकी तेरह पुत्रियाँ स्वयंवरणकी इच्छासे हर्षपूर्वक वहाँ आयीं ॥१३६॥ वे तेरह पुत्रियाँ इस प्रकार थीं—पहली चन्द्रमाके समान मुखवाली चन्द्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदयके लिए संकटकी उपमा धारण करनेवाली हृदयधर्मा, चौथी अनुन्धरी, पाँचवीं द्वितीय लक्ष्मीके समान श्रीकान्ता, छठी सर्वप्रकारसे सुन्दर चित्त सुन्दरी, सातवीं देवांगनाके समान विभ्रमको धारण करनेवाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करनेमें निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थमें उत्तम शोभाको धारण करनेवाली चारुश्री, दशवीं मदनके उत्सवस्वरूप मदनोत्सवा, ग्यारहवीं गुणोंकी मालासे विभूषित गुणवती, बारहवीं विकसित कमलके समान मुखको धारण करनेवाली पद्मावती और तेरहवीं निरन्तर जिनपूजनमें तत्पर रहनेवाली जिनमती । इन सब कन्याओंको लेकर उनका परिकर रामके पास आया ॥१३७-१४२॥

रामको प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ ! आप इन सब कन्याओंके स्वयंवृत शरण होओ । हे लोकेश ! इन कन्याओंके उत्तम बन्धु आप ही हैं ॥१४३॥ गोत्रकी रक्षा करनेवाले आपका नाम सुनकर इन कन्याओंका मन स्वभावसे ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधरोंके साथ न हो ॥१४४॥

तदनन्तर लज्जाके भारसे जिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभासे युक्त थीं, जिनकी आभा कमलके समान थी तथा जो नवयौवनसे परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचन्द्रके पास आयीं ॥१४५॥

बिजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमलके भीतरी दलके समान उनकी शरीरकी विपुल कान्तिके विकाससे आकाश मुशोभित होने लगा ॥१४६॥

विनीत, लावण्ययुक्त शरीरकी धारक एवं प्रशस्त चेष्टाओंसे युक्त वे सब कन्याएँ रामके पास आकर बैठ गईं ॥१४७॥

१. कण्टकोपमा म. । २. बुद्धपद्मा समानसा- म. ।

आचार्यचिन्तः

रमते कचिदपि चित्तं पुरुषरवेः पूर्वजन्मसंबन्धात् ।

एषा भवपरिवर्ते सर्वेषां श्रेणिकावस्था ॥१४८॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विटसुग्रीववधाख्यातं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४७॥



गीतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुरुषोंमें सूर्य समान रामचन्द्रका भी चित्त किन्हींमें रमणको प्राप्त हुआ सो यह दशा समस्त संसारी जीवोंकी है ॥१४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें विट सुग्रीवके वधका कथन करनेवाला सैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४७॥



अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथोपलालनं^१ तस्य वान्छन्त्यो वरकन्यकाः । बहुभेदाः क्रियाश्चकुर्वन्लोकादिवागताः ॥१॥
 वीणादिवादनैस्तासां गीतैश्चातिमनोहरैः । ललिताभिश्च लीलाभिर्हृतं तस्य न मानसम् ॥२॥
 सर्वाकारसमानीतो विभवस्तस्य पुष्कलः । न भोगेषु मनश्चक्रे वैदेहीं प्रति संहतम् ॥३॥
 अनन्यमानसोऽसौ हि मुक्तनिःशेषचेष्टितः । सीतां मुनिरिव ध्यायन्^२ सिद्धिमास्थान्महादरः ॥४॥
 न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद् रूपं पश्यति नापरम् । जानकीमयमेवास्य सर्वं प्रत्यवभासते ॥५॥
 न करोति कथामन्यां कुरुते जानकीकथाम् । अन्यामपि च पार्श्वस्थां जानकीत्यभिमाषते ॥६॥
 वायसं पृच्छति प्रीत्या गिरैव^३ कलनादया । आम्यता विपुलं देशं दृष्ट्वा स्यात् मैथिली कचित् ॥७॥
 सरस्युभिद्वपद्यादिकिञ्चलकलंकृताम्भसि । चक्राङ्गमिधुनं दृष्ट्वा किञ्चित् संचिन्त्य कुप्यति ॥८॥
 सीताशरीरसंपर्कशङ्कया बहुमानवत् । निमील्यलोचने किञ्चित् समालिङ्गति^४ मातुम् ॥९॥
 पृतस्यां सा निषण्णेति वसुधां बहु मन्यते । जुगुप्सितस्तया^५ नूनमिति चन्द्रसुदीक्षते ॥१०॥
 अचिन्तयच्च किं सीता मद्वियोगाग्निदीपिता । तामवस्थां भवेत् प्राप्ता स्यादस्या यापदैषिणाम् ॥११॥
 किमियं जानकी नैषा लता मन्दानिलेखिता । किमंशुकमिदं नैतच्चलत्प्रकटम्बकम् ॥१२॥

अथानन्तर श्रीरामको प्रसन्न करनेकी इच्छा करती हुई वे उत्तम कन्याएँ नाना प्रकारकी क्रियाएँ करने लगीं । वे कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोके ही आयी हों ॥१॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्र बजाती थीं, कभी अत्यन्त मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करती थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओंसे रामका मन नहीं हरा गया ॥२॥ यद्यपि उन्हें सब प्रकारकी पुष्कल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीताकी ओर आकर्षित मनको उन्होंने भोगोंमें नहीं लगाया ॥३॥ जिस प्रकार मुनि मुक्तिका ध्यान करते हैं उसी प्रकार राम अन्य सब चेष्टाओंको छोड़कर अनन्यचित्त हो आदरके साथ सीताका ही ध्यान करते थे ॥४॥ वे न तो उन कन्याओंके शब्दोंको सुनते थे और न उनके रूपको ही देखते थे । उन्हें सब संसार सीतामय ही जान पड़ता था ॥५॥

वे एक सीताकी ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे । यदि पासमें खड़ी किसी दूसरी स्त्रीसे बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥६॥ वे कभी मधुरवाणीमें कौएसे इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई ! तू तो समस्त देशमें भ्रमण करता है अतः तूने कहीं सीताको तो नहीं देखा ॥७॥ खिले हुए कमल आदि पुष्पोंकी परागसे जिसका जल अलंकृत था ऐसे सरोवरमें क्रीड़ा करते चक्रवा-चकवीके युगलको देखकर वे कुछ सोच-विचारमें पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते ॥८॥ कभी नेत्र बन्द कर बड़े सम्मानके साथ वायुका यह विचारकर आलिंगन करते कि सम्भव है कभी इसने सीताका स्पर्श किया हो ॥९॥ इस पृथिवी पर सीता बैठी थी । यह सोचकर उसे धन्य समझते और चन्द्रमाको यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उसके द्वारा अपनी आभासे तिरस्कृत किया गया था ॥१०॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्निसे जलकर कहीं उस अवस्थाकी तो प्राप्त नहीं हो गयी होगी जो विपत्तिग्रस्त प्राणियोंकी होती है ॥११॥ क्या यह सीता है ? मन्द-मन्द वायुसे हिलती हुई लता नहीं है ? क्या

१. लालयं हा. । २. सिद्धि मास्थान् म. । ३. गिरैव म. । ४. समालिङ्गति म. । ५. तथा म. ।

एते किं लोचने तस्या नैते पुष्पे^१ सषट्पदे । करोऽयं किं चलस्तस्या नार्यं प्रत्यग्रपल्लवः ॥१३॥
 केशमारं मयूरीषु तस्याः पद्यामि सुन्दरम् । अपर्यासशशङ्के च लक्ष्मीमलिकसंभवाम् ॥१४॥
 त्रिवर्णाम्बोजखण्डेषु श्रियं लोचनगोचराम् । शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पे स्मितखिपम् ॥१५॥
 स्तवकेषु सुजातेषु कान्तिमयसु स्तनत्रियम् । जिनस्तनपनवेदीनां शोभां मध्येषु मध्यमाम् ॥१६॥
 तामामेवोर्ध्वभागेषु नितम्बभरताकृतिम् । ऊरुशोभां सुजातासु कदलीस्तम्भिकासुताम् ॥१७॥
 पद्मेषु चरणाभिष्यां^४ स्थलसंप्राप्तजन्मसु । शोभां तु समुदायस्य तस्याः पद्यामि न कश्चित् ॥१८॥
 चिरायति कथं सोऽपि सुग्रीवः कारणं तु किम् । दृष्ट्वा नाम भवेत् सीता किं तेन शुभदर्शिना ॥१९॥
 मद्बियोगेन तस्मां वा विलीनां तां सुशीलकाम् । ज्ञात्वा निवेदनेऽशक्तः किमसी नैति दर्शनम् ॥२०॥
 किं वा कृताथतां प्राप्तः प्राप्यं राज्यं पुनर्निजम् । स्वस्थीभूतो भवेद् दुःखं मम विस्तृत्य खेचरः ॥२१॥
 एवं चिन्तयतस्तस्य वाष्पविप्लुतचक्षुषः । अस्तालसशरीरस्य विवेदावरजो^५ मनः ॥२२॥
 ततः ससंभ्रमं स्वान्तःकोषारुणितलोचनः । ययौ सुग्रीवमुद्दिश्य नगनासिविलसत्करः ॥२३॥
 गच्छतस्तस्य वातेन जह्वास्तम्भासजम्भना । दोलायितमभूत् सर्वं महोपाताकुलं पुरम् ॥२४॥
 वेगनिक्षिप्तनिःशेषराजाधिकृतमानवैः^६ । प्रविश्य तद्गृहं दृष्ट्वा सुग्रीवमिदमभ्यधात् ॥२५॥
 आः पाप दयितादुःखनिमग्ने परमेश्वरे । भार्यया सहितः सौख्यं कथं भजसि दुर्मते ॥२६॥

यह उसका वस्त्र है, चंचल पत्रोंका समूह नहीं है ? ॥१२॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, भ्रमर सहित पुष्प नहीं हैं ? और क्या यह उसका चंचल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है ? ॥१३॥ मैं उसका सुन्दर केशपाश मयूरियोंमें, ललाटकी शोभा अर्धचन्द्रमें, नेत्रोंकी शोभा तीन रंगके कमलोंमें, मन्द मुसकानकी शोभा लाल-लाल पल्लवोंके मध्यमें स्थित पुष्पमें, स्तनोंकी शोभा कान्तिसम्पन्न उत्तम गुच्छोंमें, मध्यभागकी शोभा जिनाभिषेककी वेदिकाओंके मध्यभागमें, नितम्बकी स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओंके ऊर्ध्वभागमें, ऊरुओंकी अनुपम शोभा केलेके सुन्दर स्तम्भोंमें, और चरणोंकी शोभा स्थलकमलों अर्थात् गुलाबके पुष्पोंमें देखता हूँ परन्तु इन सबके समुदाय स्वरूप सीताकी शोभा किसीमें नहीं देखता हूँ ॥१४-१८॥

वह सुग्रीव भी बिना कारण क्यों देर कर रहा है ? शुभ पदार्थोंको देखनेवाले उसने क्या किसीसे सीताका समाचार पूछा होगा ? ॥१९॥ अथवा वह शीलवती मेरे वियोगसे सन्तप्त होकर नष्ट हो गयी है ऐसा वह जानता है तो भी कहनेमें असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है ? ॥२०॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनन्दमें निमग्न हो गया है ॥२१॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्ययुक्त हो गया था ऐसे रामके अभिप्रायको लक्ष्मण समझ गये ॥२२॥

तदनन्तर जिनका चित्त क्षोभसे युक्त था, नेत्र क्रोधसे लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवारपर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुग्रीवको लक्ष्य कर चले ॥२३॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मणकी जंघाओंरूपी स्तम्भोंसे उत्पन्न वायुके द्वारा समस्त नगर ऐसा कम्पायमान हो गया मानो महान् उत्पातसे आकुल होकर ही कम्पायमान हो गया हो ॥२४॥ राजाके समस्त अधिकारी मनुष्योंको अपने वेगसे गिराकर वे सुग्रीवके घरमें प्रविष्ट हो सुग्रीवसे इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥ अरे पापी ! जब कि परमेश्वर-राम स्त्रीके दुःखमें निमग्न हैं तब रे दुर्बुद्धे ! तू स्त्रीके साथ सुखका

१. पुष्पेषु षट्पदाः म. । २. शशङ्के म. । ३. नतत्रियम् (?) म. । ४. 'अभिष्या नामशोभयोः' इत्यमरः । ५. संप्रापनजन्मसु (?) म. । ६. दृष्ट्वा म. । ७. प्राप्ता म. । ८. प्राप्ये म. । ९. अनुजो लक्ष्मणः । १०. ससंभ्रमः स्वान्तः म. । ११. मानतः म. ।

अहं त्वां खेचरध्वाङ्क्ष मोगे दुर्लङ्घितं खल । नयामि तत्र नाथेन यत्र नीतस्त्वदाकृतिः ॥२७॥
 एवमुग्रान् विमुञ्चन्तं वर्णान् कोपकणानिव । लक्ष्मीधरं प्रणामेन सुग्रीवः शममानयत् ॥२८॥
 उवाच चेदमेकं मे क्षम्यतां देव विस्मृतम् । क्षुद्राणां हि भवत्येव मादृशां दुर्विचेष्टितम् ॥२९॥
 तस्यार्धपाणयो दाराः संभ्रान्ताः कम्पमूर्तयः । संप्रणामेन निःशेषं जहूर्लक्ष्मणसंभ्रमम् ॥३०॥
 सज्जनाम्भोदवात्तोयधारानिकरसंगतः । प्रयाति विलयं कापि जनारणिमवोऽनलः ॥३१॥
 प्रणाममात्रसाध्यो हि महतां चेतसः शमः । महद्भिरपि नो दानैरुपशाम्यन्ति दुर्जनाः ॥३२॥
 प्रतिज्ञां स्मारयंस्तस्य चक्रे लक्ष्मीधरः परम् । उपकारं यथा योगी यक्षदत्तस्य मातरम् ॥३३॥
 पप्रच्छ भगवाधीशो गणेश्वरमिहान्तरे । यक्षदत्तस्य वृत्तान्तं नाथेच्छामि विवेदितुम् ॥३४॥
 ततो गणधरोऽवोचच्छृणु श्रेणिकभूपते । चकार यक्षदत्तस्य यथा मातुः स्मृतिं मुनिः ॥३५॥
 अस्ति क्रौञ्चपुरं नाम नगरं तत्र पार्थिवः । यक्षसंज्ञः प्रिया तस्य राजिलेति प्रकीर्तिता ॥३६॥
 तत्पुत्रो यक्षदत्ताख्यः स बाह्यां विहरन् सुखम् । अपश्यत् परमां नारीं स्थितां दुर्विधपाटके ॥३७॥
 स्मरेपुहत्चित्तोऽसौ तामुद्दिश्य व्रजजिनि । मुनिनावधियुक्तेन मैवमित्यभ्यमायत ॥३८॥
 ततस्तं विद्युदुद्योतद्योतितं वृक्षमूलगम् । ऐक्षतायननामानं मुनिं सायकशानिकः ॥३९॥
 तमुपेत्य नतिं कृत्वा पप्रच्छ विनयान्वितः । भगवन् किं स्वया मेति निषिद्धं कौतुकं मम ॥४०॥

उपभोग क्यों कर रहा है ? ॥२६॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुझ भोगासक्तको वहाँ पहुँचाता हूँ जहाँ कि रामने तेरी आकृतिको धारण करनेवाले कृत्रिम सुग्रीवको पहुँचाया है ॥२७॥ इस प्रकार क्रोधाग्निके कणोंके समान उग्रवचन छोड़नेवाले लक्ष्मणको सुग्रीवने नमस्कार कर शान्त किया ॥२८॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाय क्योंकि मेरे जैसे क्षुद्र मनुष्योंकी खोटी चेष्टा होती ही है ॥२९॥ जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसी सुग्रीवकी घबड़ायी हुई स्त्रियाँ हाथमें अर्घ ले-लेकर बाहर निकल आयीं और उन्होंने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मणके समस्त क्रोधको नष्ट कर दिया ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्यरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई क्रोधाग्नि, सज्जनरूपी मेघ सम्बन्धी वचनरूपी जलधाराओंके साथ मिलकर शीघ्र ही कहीं विलीन हो जाती है ॥३१॥ निश्चयसे महापुरुषोंके चित्तको शान्ति प्रणाममात्रसे सिद्ध हो जाती है जब कि दुर्जन बड़े-बड़े दानोंसे भी शान्त नहीं होते ॥३२॥ लक्ष्मणने प्रतिज्ञाका स्मरण कराते हुए सुग्रीवका उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी अर्थात् मुनिने यक्षदत्तकी माताका किया था ॥३३॥

इसी बीचमें राजा श्रेणिकने गीतमस्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! मैं यक्षदत्तका वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ॥३४॥ तदनन्तर गणधर भगवान्ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनिने जिस प्रकार यक्षदत्तकी माताको स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ एक क्रौञ्चपुर नामका नगर है उसमें यक्ष नामका राजा था और राजिला नामसे प्रसिद्ध उसकी स्त्री थी ॥३६॥ उन दोनोंके यक्षदत्त नामका पुत्र था । एक दिन उसने नगरके बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय द्रविद्रोंकी बस्तीमें स्थित एक परमसुन्दरी स्त्री देखी ॥३७॥ देखते ही कामके बाणोंसे उसका हृदय हरा गया सो वह रात्रिके समय उसके उद्देश्यसे जा रहा था कि अवधिज्ञानसे युक्त मुनिराजने 'मा अर्थात् नहीं' इस प्रकार उच्चारण किया ॥३८॥ तदनन्तर उसी समय बिजली चमकी सो उसके प्रकाशमें हाथमें तलवार धारण करनेवाले यक्षदत्तने एक वृक्षके नीचे बैठे हुए अयन नामक मुनिराजको देखा ॥३९॥ उसने बड़ी विनयसे उनके पास जाकर तथा नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्दका उच्चारण कर निषेध किसलिए किया । इसका मुझे बड़ा कौतुक

सोऽवोचद् यां समुद्दिश्य प्रस्थितः कामुको भवान् ।
 सा ते माता ततस्तां मा यासीः कामोति वारितः ॥४१॥
 सोऽवोचत् कथमित्याख्यं ततोऽस्मिन् प्रस्तुतं मुनिः ।
 मानसानि मुनीनां हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ॥४२॥
 शृण्वस्ति मृत्तिकावती कनको नाम वाणिजः ।

धूर्नाग्नि तस्य भार्यायां बन्धुदत्तः सुतोऽभवत् ॥४३॥

भार्या मित्रवती तस्य लतादत्तसमुद्भवा । कृत्वास्या गर्भमज्ञातं पोतेन प्रस्थितः पतिः ॥४४॥
 श्वसुराभ्यां ततो ज्ञात्वा गर्भं दुश्चरितेति सा । निराकृता पुरात् क्षिप्रं दास्योत्पलिकया सह ॥४५॥
 प्रस्थिता च पितुर्गोहं सार्थेन महता समम् । सर्पेणोत्पलिका दृष्टा मृता च विपिनान्तरे ॥४६॥
 ततः सख्या विमुक्तया शीलमात्रसहायिका । इमं क्रौञ्चपुरं प्राप्ता महाशोकसमाकुला ॥४७॥
 स्फीतदेवार्चकारामे प्रसूता यावदम्बरम् । आरात् क्षालयितुं याता शिशुस्तावद्वृतः शुना ॥४८॥
 सुतं स्वैरं समादाय रत्नकम्बलवेष्टितम् । ददौ यक्षमहीपाय नीत्वा स ह्यस्य वल्लभः ॥४९॥
 ततोऽग्नेन विपुत्राया राजिलायाः समर्पितः । सार्थां च यक्षदत्ताख्यां प्रापितस्त्वं स वर्तसे ॥५०॥
 प्रत्यावृत्त्य च संभ्रान्तमपश्यन्ती प्रसूतकम् । विप्रलापं चिरं चक्रे दुःखान् मित्रवती परम् ॥५१॥
 देवार्चकेन सा दृष्टा कृपया कृतसान्त्वना । त्वं मे स्वसेति भाषित्वा स्वकेऽवस्थापितोदजे ॥५२॥
 सहायरहितत्वेन त्रपयाकीर्तिभीतितः । न सा गता पितुर्गोहं तत्रैव निरता ततः ॥५३॥

है ? ॥४०॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्यसे जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए 'मत जाओ' यह कहकर मैंने रोका है ॥४१॥ यक्षदत्तने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है ? इसके उत्तरमें मुनिराजने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके मन अनुकम्पासे युक्त होते ही हैं ॥४२॥ उन्होंने कहा कि मुनी, मृत्तिकावती नामक नगरीमें एक कनक नामका वाणिज रहता था, उसकी धूर् नामकी स्त्रीमें एक बन्धुदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥४३॥ बन्धुदत्तकी स्त्रीका नाम मित्रवती था जो कि लतादत्तकी पुत्री थी । एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूपसे मित्रवतीको गर्भधारण कराकर जहाजसे अन्यत्र चला गया ॥४४॥ तदनन्तर साश्वसुरने गर्भका ज्ञान होने पर उसे दुश्चरिता समझकर नगरसे निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिका नामक दासीको साथ ले एक बड़े बनजारोंके संघके साथ अपने पिताके घरकी ओर चली । परन्तु जंगलके बीच उत्पलिकाको सांपने डँस लिया जिससे वह मर गयी ॥४५-४६॥ तब वह सखीसे रहित, एक शीलव्रत रूपी सहायिकासे युक्त हो महाशोकसे व्याकुल होती हुई इस क्रौंचपुर नगरीमें आयी ॥४७॥ यहाँ स्फीत नामक देवार्चकके उपवनमें उसने पुत्र उत्पन्न किया । तदनन्तर पुत्रको रत्नकम्बलमें लपेट कर जब तक वह समीपवर्ती सरोवरमें वस्त्र धोनेके लिए गयी तब तक एक कुत्ता उस पुत्रको उठा ले गया ॥४८॥ वह कुत्ता राजाका पालतू प्यारा कुत्ता था इसलिए उगने रत्नकम्बलमें लिपटे हुए उस पुत्रको अच्छी तरह ले जाकर राजा यक्षके लिए दे दिया ॥४९॥ राजाने वह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नामकी रानीके लिए दे दिया तथा उसका यक्षदत्त यह सार्थक नाम रखा क्योंकि यक्ष कुत्ताका नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा दिया गया था । वही यक्षदत्त तू है ॥५०॥ जब मित्रवती लौटकर आयी और उसने अपना पुत्र नहीं देखा तब वह दुःखसे चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही ॥५१॥ तदनन्तर उपवनके स्वामी देवार्चकने उसे देखकर दया पूर्वक सान्त्वना दी और यह कह कर कि 'तू हमारी बहन है' अपनी कुटीमें रक्खी ॥५२॥ सहायक न होनेसे, लज्जासे अथवा अपकीर्तिके भयसे वह फिर पिताके घर नहीं गयी और वही

सेयमत्यन्तशीलाढ्या जिनधर्मपरायणा । कुटीरे दुर्विधस्यास्ते भ्रमता या त्वयेक्षिता ॥५४॥
 व्रजता बन्धुदत्तेन यद्वत् रत्नकम्बलम् । अस्यास्तद्वैश्वभवेने तिष्ठत्यद्यापि रक्षितम् ॥५५॥
 इत्युक्ते संयतं नत्वा स्तुत्वा च हितकारिणम् । इयाय खड्गवानेव संभ्रमी यक्षसंनिधिम् ॥५६॥
 ऊचे च तेऽसिनानेन छिनत्रि नियतं शिरः । संयतो यदि मे जन्म न शास्ति स्फुटकारणम् ॥५७॥
 यथावद् वेदितं तेन रत्नकम्बललक्षितम् । अयं जरायुलेपेन तिष्ठत्यद्यापि दिग्भक्तः ॥५८॥
 प्रथमाभ्यां ततस्तस्य पितृभ्यां सह संगमः । जातो महोत्सवोपेतः महाविभवविस्मितः ॥५९॥
 कथितं ते महाराज वृत्तान्तादिदमागतम् । अधुना प्रकृतं वक्ष्ये भवावहितमानसः ॥६०॥
 लक्ष्मीधरं पुरस्कृत्य सुग्रीवस्त्वरितं ययौ । समीपं रामदेवस्य स तस्थौ विहितानतिः ॥६१॥
 ततो विक्रमगर्वेण सदा प्रकटचेष्टितान् । आहूय किङ्करान् सर्वान् महाकुलसमुद्रवान् ॥६२॥
 कांश्चिदश्रुतवृत्तान्तान् महामोग हतात्मिकान् । वेदयन् विस्मयप्राप्तान् पद्मनिर्मितमद्भुतम् ॥६३॥
 कांश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान् प्रभुकार्यपरायणान् । जगौ प्रत्युपकाराय वाचा संमानयन्निदम् ॥६४॥
 भो भो सुविभ्रमाः सर्वे शृणुत श्रीसमुत्सवाः । सीतामुपलमध्वं द्राक् क वर्तत इति स्फुटम् ॥६५॥
 महोत्सवे समस्तेऽस्मिन् पाताले खे जले स्थले । जम्बूद्वीपे पयोनाथे द्वीपे वा धातकीमति ॥६६॥
 कुलपर्वतकुक्षेषु काननान्तेषु मेरुषु । नगरेषु विचित्रेषु रम्येषु व्योमचारिणाम् ॥६७॥
 गहनेषु समस्तेषु नानाविद्यापराक्रमाः । जानीत दिक्षु सर्वासु सतीं भूविबरेषु च ॥६८॥

रहने लगी ॥५३॥ वह अत्यन्त शीलवती तथा जिनधर्मके धारण करनेमें तत्पर रहती हुई दरिद्र देवार्चककी कुटीमें बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे देखा ॥५४॥ उसके पति बन्धुदत्ते परदेशको जाते समय उसे जो रत्नकम्बल दिया था वह आज भी राजा यक्षके घरमें सुरक्षित रखा है ॥५५॥ इस प्रकार कहनेपर उसने हितकारी मुनिराजको नमस्कार कर उनकी बहुत स्तुति की । तदनन्तर वह तलवार लिये ही शीघ्रतासे राजा यक्षके पास गया ॥५६॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्मका सच-सच कारण स्पष्ट नहीं बताता है तो मैं इसी तलवारसे तेरा मस्तक काट डालूंगा ॥५७॥ इतना कहनेपर राजा यक्षने सब कारण ज्यों-का-त्यों बतला दिया और साथ ही वह रत्नकम्बल दिखलाते हुए कहा कि यह अब भी जरायुके लेपसे लिप्त है ॥५८॥ तदनन्तर उसका अपने पूर्व माता-पिताके साथ सभागम हो गया और महावैभवसे आश्चर्यमें डालनेवाला बड़ा उत्सव हुआ ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! प्रकरण आ जानेसे यह वृत्तान्त मैंने तुझसे कहा अब फिर प्रकृत बात कहता हूँ सो सावधान होकर श्रवण कर ॥६०॥

तदनन्तर सुग्रीव, लक्ष्मणको आगे कर शीघ्र ही रामके समीप आया और नमस्कार कर खड़ा हो गया ॥६१॥ तत्पश्चात् उसने पराक्रमके गर्वसे सदा स्पष्ट चेष्टाओंके करनेवाले एवं उच्च कुलोंमें उत्पन्न समस्त किकरोंको बुलाकर जिन महामोगी किकरोंने यह वृत्तान्त नहीं सुना था उन्हें रामका अद्भुत कार्य बतलाकर आश्चर्यसे चकित किया ॥६२-६३॥ तथा जो इस वृत्तान्तको जानते थे प्रभुका कार्य करनेमें तत्पर रहनेवाले उन किकरोंका वचन द्वारा सम्मान करते हुए उनसे रामका प्रत्युपकार करनेके लिए यह कहा ॥६४॥ कि हे उत्तम विभ्रमोंको धारण करनेवाले श्रीसम्पन्न समस्त पुरुषो ! तुम लोग शीघ्र ही सीताका पता चलाओ कि वह कहाँ है ? ॥६५॥ तुम लोग नाना प्रकारकी विद्याओं और पराक्रमसे युक्त हो अतः इस समस्त भूतलमें, पातालमें, आकाशमें, जलमें, धलमें, जम्बूद्वीपमें, समुद्रमें, धातकीखण्ड द्वीपमें, कुलाचलोके निकुंजोंमें, वनके

१. 'सत्पयो यदि मे जन्म नास्ति त्वं स्फुटकारणम्' म. । २. प्राकृते म. । ३. महामोहहतात्मिकान् म. ।

४. श्रीमन्दुत्सवाः (?) म. ।

शेषामिव ततो मूर्ध्नि ते कृत्वाऽज्ञां प्रमोदिनः । उत्पत्य दिक्षु सर्वासु हुतं जग्मुरहंयवः ॥६९॥
 युवविद्याभृता लेखं नाययित्वा यथाविधि । ज्ञातनिःशेषवृत्तान्तो वैदेहोऽप्युपपादितः ॥७०॥
 ततोऽसौ स्वसद्गुःखेन नितान्तोद्विग्नमानसः । सुग्रीव इव रामस्य नितरां निभृतोऽभवत् ॥७१॥
 स्वयमेव च सुग्रीवः पर्यटन् भानुवर्त्मना । तारानिकरचक्रेण संप्रवृत्तो गवेषणे ॥७२॥
 दुष्टविद्याधरानेकपुरान्वेषणतत्परः । ध्वजं दूरात् समालोक्य समीरणविकम्पितम् ॥७३॥
 जम्बूद्वीपमहीध्रस्य शिखरेणोपलक्षितम् । नभस्तलं परं प्राप चलदंशुकपल्लवः^३ ॥७४॥
 विद्यतोऽवतरद् वीक्ष्य विमानं भानुभासुरम् । उत्पाताशङ्कितो जातो रत्नकेशी समाकुलः ॥७५॥
 आसीदनुसमालोक्य तदसावतिविह्वलः । वैनतेयात् परित्रस्तः संयुकोच यथोरगः ॥७६॥
 आसन्नं च परिज्ञाय ध्वजेन कपिलक्ष्मणम् । रत्नकेशी गतश्चिन्तामिति मृत्युमयाकुलः ॥७७॥
 लङ्काधिपतिना नूनं क्रुद्धेन जनितागसा । प्रेषितो मद्भ्रिनाशाय सुग्रीवोऽयमुपागतः ॥७८॥
 किं न प्रतिभये शीघ्रं मृतो रत्नाकराम्भसि । हा धिगन्त्रान्तरे द्वीपे मरणं समुपागतम्^४ ॥७९॥
 मनोरथं पुरस्कृत्य विद्यावीर्यविवर्जितः । जीवितं स्पृहयादिष्टः प्रापयिष्यामि किंत्वहम् ॥८०॥
 इति चिन्तयतस्तस्य संप्राप्तो वानरध्वजः । द्योतयन् सहसा द्वीपं द्वितीय इव मास्करः ॥८१॥
 तर्कं धूसरसर्वाङ्गमालोक्य वनर्पासुभिः । वानराङ्गध्वजोऽपृच्छदनुकम्पां समुद्वहन् ॥८२॥

अन्त भागोंमें, सुमेरु पर्वतोंमें, विद्याधरोंके चित्र-विचित्र मनोहर नगरोंमें, समस्त दिशाओंमें और भूमिके विवरों अर्थात् कन्दराओंमें सीताका पता चलाओ ॥६६-६८॥

तदनन्तर हर्षसे भरे अहंकारी वानर शेषाक्षतकी तरह सुग्रीवकी आज्ञाको शिरपर धारण कर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओंमें चले गये ॥६९॥ एक तरुण विद्याधरके द्वारा विधिपूर्वक पत्र भेजकर भामण्डलके लिए भी समस्त वृत्तान्तसे अवगत कराया गया ॥७०॥ तदनन्तर वहनके दुःखसे भामण्डल अत्यन्त दुखी हुआ और सुग्रीवके समान रामका अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥७१॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीताकी खोज करनेके लिए ताराओंके समूहके साथ आकाशमार्गसे चला ॥७२॥ वह दुष्ट विद्याधरोंके अनेक नगरोंके बीच सीताकी खोज करनेमें तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था । तदनन्तर हवासे हिलती हुई ध्वजाको दूरसे देखकर वह जम्बूद्वीपके एक पर्वतके शिखरसे उपलक्षित आकाशमें पहुँचा । उस समय उसके वस्त्रका अंचल हवासे हिल रहा था ॥७३-७४॥ उस पर्वत-पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाशसे उतरते हुए सूर्यके समान देदीप्यमान सुग्रीवके विमानको देखकर उत्पातकी आशंकासे युक्त हो गया ॥७५॥ विमान को देखकर वह अत्यन्त विह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुड़से भयभीत हो सर्प संकुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमानसे भयभीत हो संकुचित होकर रह गया ॥७६॥ जब सुग्रीव बिलकुल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजासे वानरवंशी जानकर रत्नकेशी मृत्युके भयसे व्याकुल होता हुआ इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७७॥ जान पड़ता है कि मैंने लंकाधिपति-रावणका अपराध किया था अतः कुपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करनेके लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥७८॥ हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लवण समुद्रमें गिरकर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया । मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीपमें मरण प्राप्त हुआ है—मरनेका अवसर प्राप्त हो रहा है ॥७९॥ मैं विद्याबलसे रहित होकर भी इच्छाओंको आगे कर जीवित रहनेकी इच्छासे युक्त हूँ भी देखूँ अब क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥८०॥ इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर ही रहा था कि इतनेमें द्वितीय सूर्यके समान द्वीपको प्रकाशित करता हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा ॥८१॥ वनकी धूलिसे

१. अहंकारयुक्ता- । २. जम्बूद्वीपमहीन्द्रस्य म. । जम्बूद्वीपमहेन्द्रस्य क. । ३. पल्लवम् म. । ४. समुपागतः म. । ५. जीवितः स्पृहया म. । ६. -दनुकम्प- म. ।

स त्वं रत्नजटी पूर्वमासीद् विद्यासमुज्जतः । अवस्थामीदृशीं कस्मादधुना भद्र संगतः ॥८३॥
 इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन सुग्रीवेण सुखाकरम् । सर्वाङ्गं कम्पयन् भीत्या दीनो रत्नजटी भृशम् ॥८४॥
 मा भैषीमद्र मा भैषीरित्युक्तश्च पुनः पुनः । जगौ कृतानतिर्धौरमतिः प्रकटिताक्षरम् ॥८५॥
 प्रतिपक्षी भवन् साधो रावणेन दुरात्मना । सीताहरणसन्केन छिन्नविद्योऽहमोदृशः ॥८६॥
 जीविताशां समालम्ब्य कथंचिद्वैवयोगतः । ध्वजमेतं समुत्सृज्य स्थितोऽस्मि कपिपुंगव ॥८७॥
 उपलब्धप्रवृत्तिश्च तोषोद्वेगं वहन् द्रुतम् । गृहीत्वा रत्नजटिनं सुग्रीवः स्वपुरं ययौ ॥८८॥
 समक्षं लक्ष्मणस्याथ महतां च खगामिनाम् । जगौ रत्नजटी पद्म विनयी विहिताञ्जलिः ॥८९॥
 देव देवी नृशंसेन सती सीता दुरात्मना । हता लङ्कापुरीन्द्रेण विद्या च मम कोपिनः ॥९०॥
 कुर्वन्ती सा महाक्रन्दं ध्वनिना चित्तहारिणा । मृगोव व्याकुलीभूता नीता तेन बलीयसा ॥९१॥
 येनासीत् समरे भीमे निर्जित्य सुमहाबलः । इन्द्रो विद्याभूतामीशो बन्दिप्रहमुपाहृतः ॥९२॥
 स्वामी भरतखण्डानां यस्त्रयाणां निरङ्कुशः । कैलासोद्धरणे येन विशालं संगतं यशः ॥९३॥
 सागरान्ता मही यस्य दासीयाज्ञां प्रतीच्छति । सुरासुरैर्न यो जेतुं संहतैरपि शक्यते ॥९४॥
 श्रेष्ठेन विदुषां तेन धर्माधर्मविवेकिना । कर्मदं निर्मितं क्रूरं मोहो जयति पापिनाम् ॥९५॥
 तच्छ्रुत्वा विविधं बिभ्रद्रसं काकुत्स्थनन्दनः । अङ्गस्पृशं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेशिने ॥९६॥
 देवोपगीतसञ्ज्ञे च पुरे गोत्रक्रमागतम् । अन्वजानादधीशत्वं विच्छिन्नमरिभिश्चिरम् ॥९७॥

जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था ऐसे उस रत्नकेशीको देखकर दया धारण करते हुए सुग्रीवने पूछा ॥८२॥ कि तू रत्नजटी तो पहले विद्याओंसे समुन्नत था । हे भद्र ! अब ऐसी दशाको किस कारण प्राप्त हुआ है ? ॥८३॥ इस प्रकार दयाके धारक सुग्रीवने उससे सुखसमाचार पूछा तो भी भयके कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यन्त दीन जान पड़ता था ॥८४॥ तदनन्तर सुग्रीवने जब उससे बार-बार कहा कि हे भद्र ! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब कहीं धैर्य धारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अक्षरोंमें कहा कि हे सत्पुरुष ! दुष्ट रावण सीताके हरनेमें तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएँ छीनकर मुझे ऐसा कर दिया ॥८५-८६॥ हे कपिश्रेष्ठ ! दैवयोगसे जीवित रहनेकी आशासे मैं यहाँ इस ध्वजाको ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ—रह रहा हूँ ॥८७॥ तदनन्तर समाचार प्राप्त हो जानेसे जो हर्षजन्य उद्वेगको धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटीको लेकर अपने नगरकी ओर गया ॥८८॥

अथानन्तर विनयसे भरे रत्नजटीने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े-बड़े विद्याधरोंके सामने रामसे कहा कि हे देव ! अतिशय दुष्ट, लंकापुरीके राजा क्रूर रावणने पतिव्रता सीतादेवीको तथा क्रोध करनेवाले मुझ रत्नजटीकी विद्याको हरा है ॥८९-९०॥ जो चित्तको हरण करनेवाली ध्वनिसे महाहदन करती हुई मृगीके समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीताको वह बलवान् हरकर ले गया है ॥९१॥ जिसने भयंकर संग्राममें अत्यन्त बलवान्, विद्याधरोंके अधिपति इन्द्रको जीतकर कारागारमें डाला था ॥९२॥ जो भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलास पर्वतके उठानेमें विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रान्त पृथ्वी दासीके समान जिसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ है तथा धर्म-अधर्मके विवेकसे युक्त है, उसी रावणने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवोंका मोह बड़ा प्रबल है ॥९३-९५॥ यह सुनकर नाना प्रकारके स्नेहको धारण करते हुए रामने आदरके साथ रत्नजटीके लिए अपने शरीरका स्पर्श दिया अर्थात् उसका आलिंगन किया ॥९६॥ और देवोपगीत नामक नगरका स्वामित्व रत्नजटीके वंशपरम्परासे चला आता था पर बीच-में शत्रुओंने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया—वहाँका राजा बनाया ॥९७॥

पुनः पुनरपृच्छच्च वार्त्तामालिङ्ग्य तं नृपः । पुनः पुनर्जगादासौ प्रमोदव्याकुलाक्षरः ॥९८॥
 ततः समुत्सुकः पद्मः पर्यपृच्छदतिदुतम् । लङ्कापुरी क्रियद्वरे विवेदयत खेचरा ॥९९॥
 इत्युक्तास्ते गता मोहं निश्चलीभूतविग्रहाः । अवाङ्मुखा गतच्छाया बभूवुर्वाग्विवर्जिताः ॥१००॥
 अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा विशीर्णहृदयास्तके । अवज्ञामन्दया दृष्ट्वा राघवेन विलोकिताः ॥१०१॥
 अथ भीतिपरिग्रस्ताः ज्ञाताः स्म इति लज्जिताः । ऊचुर्धोरं मनः कृत्वा करकुड्मलमस्तकाः ॥१०२॥
 यदीयं देव नामापि कथंचित्समुदीरितम् । ज्वरमानयति प्रासाद्वदामस्त्वपुः कथम् ॥१०३॥
 क्व वयं क्षुद्रसामर्थ्याः क्व च लङ्कामहेश्वरः । त्यजानुबन्धमेतस्मिन् ज्ञाते संप्रति वस्तुनि ॥१०४॥
 अथावश्यमिदं वस्तु श्रोतव्यं श्रूयतां प्रभो । कोऽत्र दोषः समक्षं ते किंचिद्वक्तुं हि शक्यते ॥१०५॥
 अस्त्यत्र लवणाम्मोर्ध्वं कूर्प्राहसमाकुले । प्रख्यातो राक्षसद्वीपः प्रभूताद्भुतसंकुलः ॥१०६॥
 शतानि सप्त विस्तीर्णो योजनानां समन्ततः । परिक्षेपेण तान्येव साधिकान्येकविंशतिः ॥१०७॥
 मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य त्रिकूटो नाम पर्वतः । योजनानि नवोत्तुङ्गपञ्चाशद्विपुलत्वतः ॥१०८॥
 हेमनानामणिस्फीतः शिलाजालावलीचिह्नः । आसीत्तोयैर्दवाहस्य दत्तो नाथेन रक्षसाम् ॥१०९॥
 तस्य कूल्यैर्द्रुमैश्चैत्रैः शिखरे कृतभूषणे । लङ्केति नगरी भाति मणिरत्नमरीचिभिः ॥११०॥
 विमानसदृशैः रम्यैः प्रासादैः स्वर्गसंनिभैः । मनोहरैः प्रदेशैश्च क्रीडनादिक्रियोचितैः ॥१११॥
 त्रिशद् योजनमानेन परिच्छिन्ना समन्ततः । महाप्राकारपरिखा द्वितीयेन वसुन्धरा ॥११२॥

राम, बार-बार आलिंगन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्षसे स्खलित होते हुए अक्षरोमे बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥९८॥

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकतासे भरे रामने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है ? ॥९९॥ इस प्रकार रामके कहनेपर सब विद्याधर मोहको प्राप्त हो गये । उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्रमुख, कान्तिहीन और वचनोंसे रहित हो गये ॥१००॥ तदनन्तर जिनके हृदय भयसे विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका अभिप्राय जानकर रामने उनकी ओर अवज्ञापूर्ण दृष्टिसे देखा ॥१०१॥ तत्पश्चात् 'हम श्रीरामकी दृष्टिमें भयभीत जाने गये हैं' इस विचारसे जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मनको धीर कर कहा कि ॥१०२॥ हे देव ! किसी तरह उच्चारण किया हुआ जिसका नाम ही भयसे ज्वर उत्पन्न कर देता है उसके विषयमें हम आपके सामने क्या कहें ? ॥१०३॥ क्षुद्र शक्तिके धारक हम लोग कहाँ और लंकाका स्वामी रावण कहाँ ? अतः इस समय आप इस जानी हुई वस्तुकी हठ छोड़िए ॥१०४॥ अथवा हे प्रभो ! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहनेमें क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है ॥१०५॥ दुष्ट मगरमच्छोंसे भरे हुए इस लवणसमुद्रमें अनेक आश्चर्यकारी स्थानोंसे युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥१०६॥ जो सब ओरसे सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥१०७॥ उसके बीचमें सुमेरु पर्वतके समान त्रिकूट नामका पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१०८॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकारके मणियोंसे देदीप्यमान एवं शिलाओंके समूहसे व्याप्त है । राक्षसोंके इन्द्र भीमने मेघवाहनके लिए वह दिया था ॥१०९॥ तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके चित्र-विचित्र वृक्षोंसे सुशोभित उस त्रिकूटाचलके शिखरपर लंका नामकी नगरी है जो मणि और रत्नोंकी किरणों तथा स्वर्गके विमानोंके समान मनोहर महलों एवं क्रीडा आदिके योग्य सुन्दर प्रदेशोंसे अत्यन्त शोभायमान है ॥११०-१११॥ जो सब ओरसे तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और

१. नवोत्तुङ्गपञ्च- म. । २. मेघवाहनस्य । ३. कल्पद्रुमैः ख. । ४. द्वितीयेन म. ।

लङ्कायाः परिपार्श्वेषु सन्त्यन्येऽपि मनोहराः । स्वमावावस्थिता रत्नमणिकाञ्चनमूर्तयः ॥११३॥
 प्रदेशा नगरोपेता रक्षसां क्रीडभूमयः । अधिष्ठिता महाभोगैस्ते च सर्वे नभश्चरैः ॥११४॥
 सन्ध्याकारः सुवेलश्च काञ्चनो ह्लादनस्तथा । योधनो हंसनामा च हरिसागरनिस्वनः ॥११५॥
 अर्द्धस्वर्गोदयश्चान्ये द्वीपाः सर्वर्द्धिभोगदाः । प्रदेशा इव नाकस्य काननादिविभूषिताः ॥११६॥
 सुहृन्निभ्रातृभिः पुत्रैः कलत्रैर्बान्धवैः सह । रमते येषु लङ्केशो भृत्यवर्गसमावृतः ॥११७॥
 तं क्रीडन्तं जनो दृष्ट्वा महाविद्याधराधिपम् । देवाधिपोऽपि मन्येऽहं समाशङ्कं प्रपद्यते ॥११८॥
 भ्राता विभीषणो यस्य बली लोकसमुत्कटः । परैरपि परैराजावजय्यो राजपुंगवः ॥११९॥
 त्रिदशस्तत्समो बुद्ध्या नास्ति नास्त्येव मानुषः । तेनैकेनैव पर्याप्तं रावणस्य जगत्प्रभोः ॥१२०॥
 अपरोऽप्यनुजस्तस्य विद्यते गुणभूषणः । मानुकर्ण इति ख्यातस्त्रिशूलपरमायुधः ॥१२१॥
 भ्रकुटिं कुटिलां यस्य भोष्मां कालकुटीमिव । न शक्नुवन्ति संग्रामे सुरा अप्यबलौकितुम् ॥१२२॥
 महेन्द्रजितसंज्ञश्च क्षितौ ख्यातिमुपागतः । तस्यैव तनयो यस्य जगदाभासते करे ॥१२३॥
 एवमाद्याः सुबहवः प्रणतास्तस्य किङ्कराः । नानाविद्यानुतोपेताः प्रतापप्रणतारयः ॥१२४॥
 यस्यातपत्रमालोक्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । त्यजन्ति रिपवो दर्पं समरे चिरपोषितम् ॥१२५॥
 अमुष्य पुस्तकमपि चित्रं वा सहसेक्षितम् । नाम चोच्चारितं शक्तमरीणां त्रासकर्मणि ॥१२६॥
 एवंविधमसुं युद्धे कः शक्तो जेतुमुद्धतः । कथा चैषा न कर्तव्या चिन्त्यतामपरा गतिः ॥१२७॥

परिखासे युक्त होनेके कारण दूसरी पृथिवीके समान जान पड़ती है ॥११२॥ लंकाके समीपमें और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्न, मणि तथा स्वर्णसे निर्मित हैं ॥११३॥ वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरोंसे युक्त हैं, राक्षसोंकी क्रीड़ा-भूमि हैं तथा महाभोगोंसे युक्त विद्याधरोंसे सहित हैं ॥११४॥ सन्ध्याकार, सुवेल, कांचन, ह्लादन, योधन, हंस, हरिसागर और अर्द्ध स्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगोंको देनेवाले हैं, वन-उपवन आदिसे विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशोंके समान जान पड़ते हैं ॥११५-११६॥ लंकाधिपति रावण भृत्यवर्गसे आवृत हो मित्रों, भाइयों, पुत्रों, स्त्रियों तथा अन्य इष्टजनोंके साथ उन प्रदेशोंमें क्रीड़ा किया करता है ॥११७॥ क्रीड़ा करते हुए उस विद्याधरोंके अधिपतिको देखकर मैं समझता हूँ कि इन्द्र भी आशंकाको प्राप्त हो जाता है ॥११८॥ जिसका भाई विभीषण लोकमें अत्यधिक बलवान् है, युद्धमें बड़े-बड़े लोगोंके द्वारा भी अजेय है और राजाओंमें श्रेष्ठ है ॥११९॥ बुद्धि द्वारा उसकी समानता करनेवाला देव भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है । जगत्प्रभु रावणको उसी एक भाईका संसर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है ॥१२०॥ उसका गुणरूपी आभूषणोंसे सहित एक छोटा भाई भी है जो कुम्भकर्ण इस नामसे प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्रसे सहित है ॥१२१॥ युद्धमें यमराजकी कुटीके समान जिसकी भयंकर कुटिल भ्रकुटीको देव भी देखनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१२२॥ युद्धमें ख्यातिको प्राप्त होनेवाला इन्द्रजित्, उसीका पुत्र है ऐसा पुत्र जिसके हाथमें सारा संसार जान पड़ता है ॥१२३॥ इन सबको आदि लेकर रावणके ऐसे अनेक किकर हैं जो नाना प्रकारकी विद्याओंके आश्चर्यसे सहित हैं तथा प्रतापसे जिन्होंने शत्रुओंको नम्रोभूत बना दिया है ॥१२४॥ पूर्ण चन्द्रके समान आभावाले जिसके छत्रको देखकर शत्रु युद्धमें अपना चिरसंचित अहंकार छोड़ देते हैं ॥१२५॥ सहसा दृष्टिमें आया इसका पुतला, अथवा चित्र अथवा उच्चारण किया हुआ नाम भी शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेमें समर्थ है ॥१२६॥ इस प्रकार-के इस रावणको युद्धमें जीतनेके लिए कौन बलवान् समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए यह

१. मरुत्यमरोपेते ख. । २. माजी = संग्रामे, अजय्य इतिच्छेदः । ३. कर्मणि म. ।

ततोऽनादरतस्तेषामैकैकं वीक्ष्य लक्ष्मणः । अभाणीदूर्जितं वाक्यं धनाघनघनस्वनः ॥१२८॥
 सत्यं यदीदृशः ख्यातः शक्तिमान् दशवक्त्रकः । तत् किमश्रोव्यनाम स्वमसौ स्त्रीतस्करो भवेत् ॥१२९॥
 दाम्भिकस्यातिभीतस्य मोहिनः पापकर्मणः । रक्षोऽधमस्य तस्यास्ति कुतः स्वल्पापि शूरता ॥१३०॥
 अब्रवीत्पद्मनाभश्च किमुक्तेनेह भूरिणा । वार्तागमोऽपि दुःप्रापो दिष्ट्या लब्धो मया स च ॥१३१॥
 चिन्त्यमस्त्यपरं नातः क्षोभ्यतां राक्षसाधमः । जायतामुचितं भावि फलं कर्मानिलेरितम् ॥१३२॥
 अथैनमूचिरे वृद्धाः क्षणं स्थित्वेव सादराः । शोकं जहीहि पद्माम भवास्माकमधीश्वरः ॥१३३॥
 विद्याधरकुमारीणां गुणैरप्सरसामिव । भव मर्ता असन् लोके त्रियुक्ताशेषदुःखधीः ॥१३४॥
 पद्मोऽब्रुवन् मेऽन्याभिः प्रमदाभिः प्रयोजनम् । विजयन्ते महालीलां यदि शक्या अपि स्त्रियः ॥१३५॥
 प्रीतिश्चेन्मयि युष्माकमस्ति कापि नभश्चराः । अनुकम्पापि वा सीतां ततो दर्शयन् द्रुतम् ॥१३६॥
 जाम्बूनदस्ततोऽवोचत्प्रभो मूढग्रहैस्त्वया । त्यज्यतां क्षुद्रचन्मा भूमयूर इव दुःखितः ॥१३७॥
 अस्ति वेणातटे मेही नाम्ना सर्वरुचिः किल । सुतो विनयदत्तोऽस्य गुणपूर्णासमुद्रवः ॥१३८॥
 विशालभूतिसंज्ञश्च वयस्योऽस्यातिबल्लभः । तद्भार्यायां समासक्तो गृहलक्ष्म्यां दुरात्मकः ॥१३९॥
 तस्या एव च वाक्येन विद्वत्किञ्चिद्वना वनम् । नीत्वा विनयदत्तं स यन्त्रधोपरि शाखिनः ॥१४०॥
 बध्वा च तं ततो गेहं क्रूरकर्मा हताशयः । विधाय चोत्तरं किञ्चिदवतस्थे कृतार्थवत् ॥१४१॥

कथा ही छोड़िए, कोई दूसरा उपाय सोचिए ॥१२७॥

तदनन्तर अनादरसे उनमें प्रत्येककी ओर देखकर मेघके समान गम्भीर शब्दको धारण करनेवाले लक्ष्मणने इस प्रकार बलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा स्त्रीका चोर क्यों होता ? ॥१२८-१२९॥ वह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमें थोड़ी भी शूरवीरता कहाँ है ? ॥१३०॥ रामने भी कहा कि इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? जिस समाचारका मिलना भी दुष्कर था वह समाचार देवकी अनुकूलतासे हमने प्राप्त कर लिया है ॥१३१॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचनेकी आवश्यकता नहीं है, अब तो उस नीच राक्षसको क्षोभित किया जाये । कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥१३२॥

अथानन्तर क्षण-भर ठहरकर वृद्ध लोगोंने आदरपूर्वक कहा कि पद्माम ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणोंसे अप्सराओंकी समानता करनेवालीं विद्याधर कुमारियोंके भर्ता होओ तथा सब दुःख छोड़कर आनन्दसे लोकमें भ्रमण करो ॥१३३-१३४॥ रामने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियोंसे प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इन्द्राणीकी महालीलाको जीतती हों ॥१३५॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगोंकी मुझपर कुछ भी प्रीति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीताको दिखाओ ॥१३६॥ तदनन्तर जाम्बूनदने कहा कि हे प्रभो ! इस मूर्ख हठको छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूरके विषयमें क्षुद्रनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस तरह तुम दुःखी मत होओ ॥१३७॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो—

वेणातट नामक नगरमें सर्वरुचि नामका एक गृहस्थ रहता था । उसके गुणपूर्णा नामक स्त्रीसे उत्पन्न विनयदत्त नामका पुत्र था ॥१३८॥ विनयदत्तका एक विशालभूति नामक अत्यन्त प्यारा मित्र था सो वह पापी, विनयदत्तकी स्त्री गृहलक्ष्मीमें आसक्त हो गया ॥१३९॥ एक दिन उसी स्त्रीके कहनेसे विशालभूति विनयदत्तको भ्रमण करनेके छलसे वनमें ले गया और उसे वृक्षके ऊपर बाँध आया ॥१४०॥ दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाला क्रूरकर्मा विशालभूति घर आकर

अत्रान्तरे तमुद्देशं दिग्मूढः प्रच्युतः पथः । आजगाम भ्रमन् खिन्नः क्षुद्रोऽपश्यच्च तं तस्मै ॥१४२॥
घनच्छायाकृतश्रद्धस्तस्याधश्च जगाम सः । कणितं वाश्रुणोन्मन्दमुन्मुखश्च व्यलोकयत् ॥१४३॥
यावत्पश्यति तं बद्धं निविडं दृढरज्जुभिः । अत्यन्ततुङ्गशाखाग्रे निश्चेष्टीकृतविग्रहम् ॥१४४॥
आरुह्य तेन मुक्तः सोऽनुकम्पासक्तचेतसा । गतो विनयदत्तस्तु स्वं तेनैव समाश्रयम् ॥१४५॥
स्वजनस्योत्पत्तेर्जातो महानन्दसमुत्कटः । विशालभूतिरालोक्य तं च दूरात्पलायितः ॥१४६॥
क्षुद्रस्याथ शिखो जातु शिखिपत्रमयोऽन्यथा । रमणो वात्यया नीतः संप्राप्तो राजसूनुता ॥१४७॥
तन्निमित्तं महाशोकः क्षुद्रो मित्रमभाषत । मां चेदिच्छसि जीवन्तं^१ यच्छ तन्मे मयूरकम् ॥१४८॥
बद्धस्तथाविधो वृक्षे मया त्वं परिमोचितः । अस्थोपकारमुख्यस्य प्रतिदानं प्रयच्छ मे ॥१४९॥
ततो विनयदत्तस्तमुवाचान्यमयूरकम् । गृहाण मणिरत्नं वा कुतस्तं ते ददाम्यहम् ॥१५०॥
सोऽवोचदीयतां मह्यं स एवेति पुनः पुनः । मूढस्तथाविधो जातो मवानपि नरोत्तमः ॥१५१॥
राजपुत्रकरं प्राप्ता कृत्रिमासौ मयूरिका । कथं लभ्या बधो यस्माद्विभ्यते यत्र तत्परैः ॥१५२॥
त्रिवर्णाभोजनेत्राणां कन्यानां कनकत्विषास् । पीवरस्तनकुम्भानां विशालजघनश्रियाम् ॥१५३॥
वक्त्रकान्तिजितेन्दूनां पूर्णानां चारुमिर्गुणैः । पतिर्भव महाभोग प्रसीद रघुनन्दन ॥१५४॥

कृतकृत्यकी तरह आनन्दसे रहने लगा तथा पूछनेपर विनयदत्तके विषयमें कुछ इधर-उधरका उत्तर देकर चुप हो जाता ॥१४१॥ इसी बीचमें क्षुद्र नामका एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्गसे च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदखिन्न हो वहाँसे निकला और उसने उस वृक्षको देखा ॥१४२॥ वृक्षकी सघन छाया देखकर विश्राम करनेकी इच्छासे वह वृक्षके नीचे गया । वहाँ उसने विनयदत्तके कराहनेका मन्द-मन्द शब्द सुन ऊपरकी मुख उठाकर देखा ॥१४३॥ तो उसे अत्यन्त ऊँची शाखाके अग्रभागपर मजबूत रस्तियोंसे बँधा हुआ निश्चेष्ट शरीरका धारक विनयदत्त दिखा ॥१४४॥ जिसका चित्त दयामें आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुषने ऊपर चढ़कर उसे बन्धन मुक्त किया । तदनन्तर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्रको साथ ले अपने घर चला गया ॥१४५॥ विनयदत्तके लानेसे उसके घरमें महान् आनन्दसे युक्त उत्सव हुआ और विशालभूति उसे देख दूर भाग गया ॥१४६॥ क्षुद्र, विनयदत्तके घर रहने लगा उसके पास मयूरपत्रका बना हुआ एक मयूरका खिलौना था सो वह खिलौना एक दिन हवामें उड़ गया और राजाके पुत्रको मिल गया ॥१४७॥ उस कृत्रिम मयूरके निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्रसे बोला कि हे मित्र ! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥१४८॥ मैंने तुझे उस तरह वृक्षपर बँधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकारका बदला मेरे लिए देओ ॥१४९॥ तब विनयदत्तने उससे कहा कि तुम उसके बदले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँसे दूँ ॥१५०॥ इसके उत्तरमें वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वहीं मयूर देओ । सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप तो नरोत्तम होकर भी ऐसी हठ कर रहे हैं ॥१५१॥ आप ही कहो कि राजपुत्रके हाथमें पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी । राजपुत्रसे तो केवल माँगनेवालोंको मृत्यु ही मिल सकती थी ॥१५२॥ इसलिए हे रघुनन्दन ! सीताकी इच्छा छोड़ो और जिनके नेत्र सफेद, काले तथा लाल रंगके हैं, जिनकी कान्ति सुवर्णके समान है, जिनके स्तनकलश अत्यन्त स्थूल हैं, जिनके जघनकी शोभा विशाल है, जिन्होंने मुखकी कान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है तथा जो अनेक सुन्दर गुणोंसे युक्त हैं ऐसी कन्याओंके पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥१५३-१५४॥ इस हास्यजनक दुःखवर्धक हठको छोड़ो और

अनुबन्धमिदं हास्यं त्यज दुःखविवर्धनम् । मयूरशष्पशोकार्तो माभूः क्षुद्रकवद् बुध ॥१५५॥
 सर्वदा सुलभाः पुंसः शिखिशष्पोपमाः स्त्रियः । ब्रवीमि राघव त्वाहं प्राज्ञैः शोको न धार्यते ॥१५६॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्परमो वाक्यवर्त्मनि । जाम्बूनदेदृशं नेदमिदमेतादृशं शृणु ॥१५७॥
 आसीद्गृहपतिः ख्यातः पुरे कुसुमनामनि । प्रभवारुहः प्रिया तस्य यमुनेति प्रकीर्तिता ॥१५८॥
 धनबन्धुगृहक्षेत्रपशुप्रभृतयः सुताः । पालान्तास्तस्य सेवन्ते शब्दानामन्तमागताः ॥१५९॥
 अन्वयसंज्ञकास्ते च कुटुम्बार्थं सदोद्यताः । कुर्वन्ति कर्म विश्रान्तिं क्षणमप्यनुपागताः ॥१६०॥
 आत्मश्रेयोभिधानश्च सुतोऽस्यैवाखिलाधरः । पुण्योदयादसौ भोगान् भुङ्क्ते देवकुमारवत् ॥१६१॥
 'आतृभिः स पितृभ्यां च चिरं' कटुभिरक्षरैः । निर्भस्मितोऽन्यदा यातो मानी बाह्यां परिभ्रमन् ॥१६२॥
 सुकुमारशरीरोऽसौ निर्वेदं परमं गतः । कर्म कर्तुमशक्तात्मा मरणं स्वस्य वाञ्छति ॥१६३॥
 पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरितः पथिकश्च तम् । समागत्यामणीदेवं श्रूयतामयि मानव ॥१६४॥
 पृथुस्थानाधिपस्याहं सुमातुरिति नन्दनः । गोत्रिकाक्रान्तदेशः सन् कुर्वन्निमित्तमाधितम् ॥१६५॥
 पर्थन् वसुधाभेतां दैवात् कूर्मपुरं गतः । आचार्येणाभियोग्येन संगं प्राप्नोऽस्मि तत्र च ॥१६६॥
 अयोमयमिदं तेनं दत्तं मे वलयं शुभम् । मार्गदुःखाभिभूताय काष्ठण्याकरचेतसा ॥१६७॥
 एतच्च सर्वरोगाणां शमनं बुद्धिवर्धनम् । ग्रहोरगपिशाचादिवशीकरणमुत्तमम् ॥१६८॥

हे विद्वन् ! क्षुद्रके समान मयूररूपी तूणके शोकसे पीड़ित नहीं होओ ॥१५५॥ मयूररूपी तूणके समान स्त्रियाँ पुरुषको सदा सुलभ हैं इसलिए हे राघव ! मैं आपसे कह रहा हूँ । बुद्धिमान् मनुष्य कभी शोक धारण नहीं करते ॥१५६॥

तदनन्तर वचनोंके मार्गमें अतिशय निपुण लक्ष्मणने कहा कि हे जाम्बूनद ! यह बात ऐसी नहीं है किन्तु ऐसी है सो सुनो ॥१५७॥ कुसुमपुर नामक नगरमें एक प्रभव नामका प्रसिद्ध गृहस्थ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम यमुना था ॥१५८॥ उन दोनोंके धनपाल, बन्धुपाल, गृहपाल, क्षेत्रपाल और पशुपाल नामके पाँच पुत्र थे ॥१५९॥ ये सभी पुत्र सार्थक नामवाले थे और कुटुम्बके पालनके लिए सदा तत्पर रहते थे तथा क्षणभरके लिए भी अपने कार्यसे विश्राम नहीं लेते थे ॥१६०॥ इनमें सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था सो वह पुण्योदयसे देवकुमारके समान भोग भोगता था ॥१६१॥

कुछ करता नहीं था इसलिए भाई तथा माता-पिता निरन्तर कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे । एक दिन वह मानी घरसे निकलकर नगरके बाहर चला गया ॥१६२॥ अत्यन्त सुकुमार शरीरका धारक था इसलिए कुछ कर सकनेके लिए समर्थ नहीं था अतः परम निर्वेदको प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥१६३॥ उसी समय पूर्व कर्मोदयसे प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला कि हे मनुष्य ! सुन ॥१६४॥ मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र सुभानु हूँ । निमित्तज्ञानीके आदेशका पालन करता हुआ मैं अब तक अनेक देशोंमें भ्रमण करता रहा हूँ ॥१६५॥

इस पृथ्वीपर भ्रमण करता हुआ मैं दैवयोगसे कूर्मपुर नामा नगरमें पहुँचा । वहाँ एक उत्तम आचार्यके साथ समागमकी प्राप्त हुआ ॥१६६॥ मैं मार्गके दुःखसे दुःखी था इसलिए दयालु चित्तके धारक उन आचार्यने मुझे यह लोहेका कड़ा दिया था ॥१६७॥ यह कड़ा समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला तथा बुद्धिको बढ़ानेवाला है और ग्रह, उरग, पिशाच आदिका उत्तम वशीकरण

१. शिखिशष्पोपमाः म. । २. श्रियः म. । ३. विश्रान्ति लक्षमप्यनु- म. । ४. खिला धरा म. । ५. मातृभिः
 ६. कटुकैरक्षरैः म. । ७. निमित्त व. ।

नैमित्तादिष्टकालस्य संप्राप्तश्च ममावधिः । आत्मीयमधुना राज्यं कर्तुं यामि निजं पुरम् ॥१६९॥
 राज्यस्थस्य प्रमादाश्च जायन्ते गणनोज्झिताः । एतच्च छिद्रमासाद्य नियतं नाशकारणम् ॥१७०॥
 'गृहाणैतत्तत्स्तुभ्यं यच्छामि वलयं पुरम् । उपसर्गविनिर्मुक्तं यदि वाञ्छसि जीवितम् ॥१७१॥
 लब्धस्य च पुनर्दानं शंसन्ति सुमहाफलम् । यशश्च प्राप्यते लोके पूजयन्ति च तं जनाः ॥१७२॥
 ततस्तमेवमित्युक्त्वा गृहीत्वाङ्गदमायसम् । आत्मश्रेयो गतो धाम सुभानुश्च निजं निजम् ॥१७३॥
 यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य दृष्टा^१ श्वसनभोजिना । निश्चेष्टा दग्धुमानीता चितोद्देशे^२ स पश्यति ॥१७४॥
 कटकस्थ प्रसादेन तस्य लोहमयस्य ताम् । जीवयित्वा परं प्रापदसौ पूजां नरेन्द्रतः ॥१७५॥
 महान्तस्तस्य संजाता भोगाः परमसौख्यदाः । सर्वबन्धुसमेतस्य पुण्यकर्मनुभावतः ॥१७६॥
 उत्तरीयांशुकस्योर्ध्वं निधाय वलयं सरः । प्रविष्टो यावदादाय गोधेरोऽनश्यदुद्धतः^३ ॥१७७॥
 महातरोरधस्तावत् प्रविवेश विलं महत् । शिलानिकरसंछन्नं निर्हारं वीरनिस्वनम् ॥१७८॥
 तेन गोधेरशब्देन किल नित्यप्रवृत्तिना । बभूव स्थानमप्येतत्प्रलयाशङ्किमानसम् ॥१७९॥
 आत्मश्रेयस्ततो वृक्षमुन्मूल्य स शिलाधनम् । गोधेरं नाशयित्वा तं निधानं प्राप्य साङ्गदम् ॥१८०॥
 आत्मश्रेयःसमः पद्मः सीता वलयमूर्तिवत् । प्रमादवच्च कौसीद्यं शब्दस्तच्छब्दवद्विप्रोः ॥१८१॥
 महानिधानवल्लुका गोधेरो दशवक्रकः । जनास्त इव निर्भोता यूयं भवत सांप्रतम् ॥१८२॥

है ॥१६८॥ निमित्तज्ञानीने मुझे भ्रमण करनेके लिए जो समय बताया था अब उसकी अवधि आ गयी है इसलिए मैं अपना राज्य करनेके लिए अपने नगरको जाता हूँ ॥१६९॥ राज्य कार्यमें स्थिर रहनेवाले पुरुषके अगणित प्रमाद होते रहते हैं और किसी प्रमादको पाकर यह कड़ा निश्चित ही नाशका कारण बन सकता है ॥१७०॥ इसलिए यदि तू उपसर्ग रहित जीवन चाहता है तो इस उत्तम कड़ेको ले ले मैं तुझे देता हूँ ॥१७१॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तुका दूसरेके लिए दे देना महाफलकारक है, उससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१७२॥ तदनन्तर उससे 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा लोहेका कड़ा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥१७३॥ इतनेमें ही राजाकी पत्नीको साँपने डँस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गयी थी तथा जलानेके लिए श्मशानमें लायी गयी थी । आत्मश्रेयने उसे देखा ॥१७४॥ और देखते ही उस लोह निर्मित कड़ेके प्रसादसे उसे जिलाकर उसने राजासे बहुत सन्मान प्राप्त किया ॥१७५॥ अब पुण्य कर्मके प्रभावसे उसके लिए समस्त बन्धुओंके साथ-साथ परम सुख देनेवाले बड़े-बड़े भोग प्राप्त हो गये ॥१७६॥ एक बार उसने उस कड़ेको उत्तरीय वस्त्रके ऊपर रखकर जबतक सरोवरमें प्रवेश किया तबतक एक उद्दण्ड गुहेरा उसे लेकर चला गया ॥१७७॥ वह गुहेरा एक महावृक्षके नीचे बने हुए अपने बड़े बिलमें घुस गया । उसका वह बिल शिलाओंके समूहसे आच्छादित, प्रवेश करनेके अयोग्य तथा भयंकर शब्दसे युक्त था ॥१७८॥ वह गुहेरा उस बिलमें बैठकर निरन्तर शब्द करता रहता था जिससे उस बिलको देख मनमें प्रलयकी आशंका होती थी ॥१७९॥ तदनन्तर आत्मश्रेयने शिलाओंसे सघन उस वृक्षके मूलको उखाड़कर तथा गुहेरे-को मारकर कड़ेके साथ-साथ उसका सब खजाना ले लिया ॥१८०॥ सो राम तो आत्मश्रेयके समान हैं, सीता कड़ेके समान है, लाभकी इच्छा प्रमादके समान है, शत्रुका शब्द गुहेरेके शब्दके समान है, लंका महानिधानके समान है, रावण गुहेरेके समान है, इसलिए हे विद्याधरो ! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥१८१-१८२॥

१. गृहाण तत्त्वतस्तुभ्यं ज. । २. गृहीताङ्गद म. । ३. श्वसनभोगिना म. । नागेनेत्यर्थः । ४. श्मशाने । ५. दूर्ध्वतः म. ।

तच्छ्रुत्वा समुपाख्यानं जितजाम्बूनदोदितम् । बहवो विस्मयापन्ना बभूवुः स्मितकारिणः ॥१८३॥
 जाम्बूनदादयः सर्वे ततः कृत्वा प्रचारणम् । इदमृचुः पुनः पद्मं शृणु राजन् समाहितः ॥१८४॥
 अनन्तवीर्ययोगीन्द्रं संप्रणम्य पुरा मुदा । रावणेनात्मनो मृत्युं परिपृष्टः समादिशत् ॥१८५॥
 यो निर्वाणशिलां पुण्यामतुलामर्चितां सुरैः । समुद्यतां स ते मृत्योः कारणत्वं गमिष्यति ॥१८६॥
 सर्वज्ञोक्तं निशम्यैतदचिन्तयदसाविदम् । भविता पुरुषः कोऽसौ तां यश्चालयितुं क्षमः ॥१८७॥
 नास्त्येव मरणे हेतुर्नमेत्युक्तं भवत्यदः । वचोयुक्तिर्विचित्रा हि विदुषामर्थदेशने ॥१८८॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवोचद्गच्छामो न चिरं हितम् । ईक्षामहे शिलां सैद्धीं भव्यानां रोमहर्षणाम् ॥१८९॥
 रहस्यमेतत्सन्मनस्य सुनिश्चित्य समन्ततः । सर्वे ते गन्तुमुद्युक्ताः प्रमादपरिवर्जिताः ॥१९०॥
 जाम्बूनदो महाबुद्धिः किष्किन्धाधिपतिस्तथा । विराधितोऽर्कमाली च नलनीलौ विचक्षणौ ॥१९१॥
 सपुरस्कारमारोप्य विमाने रामलक्ष्मणौ । संप्रयाता द्रुतं ज्योमिनि रात्रौ तमसि गह्वरे ॥१९२॥
 अचतरेः समीपे च यत्र सा सुमनोहरा । शिला परमगम्भीरा सुरासुरमस्कृता ॥१९३॥
 उपससृश्च ते सर्वे मस्तकम्यस्तपाणयः । आशारक्षानवस्थाप्य प्रयातान् सुसमाहितान् ॥१९४॥
 सुगन्धिभिर्महामौजैः पूर्णेन्दुपरिमण्डलैः । अन्यैश्च कुसुमैश्चित्रैर्विक्ता तैरसौ शिला ॥१९५॥
 सितचन्दनदिग्धाङ्गा कुङ्कुमांशुकधारिणी । पृतालंकरणा मयि सा शचीव मनोरमा ॥१९६॥

इस प्रकार जाम्बूनदके कथनको खण्डित करनेवाला लक्ष्मणका उपाख्यान सुन बहुत लोग आश्चर्यको प्राप्त हो मन्दहास्य करने लगे ॥१८३॥ तत्पश्चात् जाम्बूनद आदि सभी विद्याधर परस्परमें विचारकर रामसे यह कहने लगे कि हे राजन् ! एकाग्र चित्त होकर सुनिए ॥१८४॥ पहले एक बार रावणने हर्षपूर्वक अनन्तवीर्यनामा योगीन्द्रको नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्युका कारण पूछा था सो उन योगीन्द्रने कहा था कि जो देवोंके द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यसयी निर्वाण शिला—कोटिशिलाको उठावेगा वही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥१८५-१८६॥ सर्वज्ञके यह वचन सुन रावणने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलानेके लिए समर्थ होगा ॥१८७॥ भगवान्के कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे मरणका कोई भी कारण नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि अर्थके प्रकट करनेमें विद्वानोंकी वचन योजना विचित्र होती है ॥१८८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हम लोग अभी चलते हैं विलम्ब करना हितकारी नहीं है, अन्य जीवोंको आनन्द देनेवाली सिद्धशिलाके अभी दर्शन करेंगे ॥१८९॥ तत्पश्चात् सब लोग परस्परमें मन्त्रणा कर तथा सब ओरसे निश्चय कर प्रमाद छोड़ लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्यत हुए ॥१९०॥ महाबुद्धिमान् जाम्बूनद, किष्किन्धाका स्वामी—सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सम्मानके साथ राम और लक्ष्मणको विमानपर बैठाकर रात्रिके सघन अन्धकारमें शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥१९१-१९२॥ और जहाँ वह अत्यन्त मनोहर परम गम्भीर एवं सुर-असुरोंके द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पासमें थी वहाँ उतरे ॥१९३॥ तदनन्तर सावधान चित्त होकर आगे गये हुए दिशारक्षकोंको नियुक्त कर वे सब हाथ जोड़ मस्तकसे लगा उस सिद्धशिलाके समीप गये ॥१९४॥ वहाँ जाकर उन्होंने अत्यन्त सुगन्धित तथा पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बके समान सुशोभित बड़े-बड़े कमलों तथा नाना प्रकारके अन्ध पुष्पोंसे उस शिलाकी पूजा की ॥१९५॥

जिसके ऊपर सफेद चन्दनका लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्रकी धारण कर रही थी, तथा जो नाना अलंकारोंसे अलंकृत थी ऐसी वह शिला उस समय इन्द्राणोंके समान

तस्यां सिद्धान्तमस्कृत्य शिरस्थैः करकुड्मलाः । भक्त्या प्रदक्षिणं चक्रुः क्रमेण विधिपण्डिताः ॥१९७॥
 ततः परिकरं बद्ध्वा सौमित्रिविनयं वहन् । नमस्कारपरो भक्तः स्तुतिं कर्तुं समुद्यतः ॥१९८॥
 जयशब्दं समुद्धोष्य प्रहृष्टा वानरध्वजाः । स्तोत्रं परिपठन्तीदमुत्तमं सिद्धमङ्गलम् ॥१९९॥
 स्थितां छैलोक्यशिखरे स्वयं परममास्वरे । स्वरूपभूतया स्थितया पुनर्जन्मविवर्जितान् ॥२००॥
 भवार्णवसमुत्तीर्णानिःश्रेयसं समुद्भवान् । आचारान्मुक्तिसौख्यस्य केवलज्ञानदर्शनान् ॥२०१॥
 अनन्तवीर्यसंनतान् स्वभावसमवस्थितान् । सुसमीचीनतायुक्तानिःशेषक्षीणकर्मणः ॥२०२॥
 अवगाहनधर्मोक्तानमूर्तान् सूक्ष्मतायुजः । गुह्यत्वलघुतामुक्तानसंख्यातप्रदेशिनः ॥२०३॥
 अप्रमेयगुणाधारान् क्रमादिपरिवर्जितान् । साधारणान् स्वरूपेण स्वार्थकाष्टामुपागतान् ॥२०४॥
 तार्था शुद्धभावांश्च ज्ञातज्ञेयान्निर्जनान् । दग्धकर्ममहाकृषान् विशुद्धध्यानतेजसा ॥२०५॥
 तेजःपटपरीतेन भक्तितो वज्रपाणिना । संस्तुतान् भवभीतेन चक्रवर्त्यादिभिस्तथा ॥२०६॥
 संसारधर्मनिर्मुक्तान् सिद्धधर्मसमाश्रितान् । सर्वान् वन्दामहे सिद्धान् सर्वसिद्धिसमावहान् ॥२०७॥
 अस्यां च ये गताः सिद्धिं शिलायां शीलधारिणः । उपगीताः पुराणेषु सर्वकर्मविवर्जिताः ॥२०८॥
 जिनेन्द्रसमतां याताः कृतकृत्या महीजसः । मङ्गलस्मरणेनैतान् भक्त्या वन्दामहे मुहुः ॥२०९॥

मनोहर जान पड़ती थी ॥१९६॥ उस शिलासे जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये थे तथा जो सब प्रकारकी विधि-विधानमें निपुण थे ऐसे उन सब लोगोंने भक्तिपूर्वक क्रमसे उस शिलाकी प्रदक्षिणा दी ॥१९७॥

तदनन्तर विनयको धारण करनेवाले, नमस्कार करनेमें तत्पर एवं भक्तिसे भरे लक्ष्मण कमर कस कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१९८॥ हर्षसे भरे वानरध्वज राजा, जय-जय शब्दका उच्चारण कर सिद्ध भगवान्‌के निम्नांकित स्तोत्रको पढ़ने लगे ॥१९९॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेष्ठियोंको नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय देवीप्यमान तीन लोकके शिखरपर स्वयं विराजमान हैं, आत्माकी स्वरूपभूत स्थितिसे युक्त हैं तथा पुनर्जन्मसे रहित हैं ॥२००॥ जो संसार सागरसे पार हो चुके हैं, परमकल्याणसे युक्त हैं, मोक्ष मुखके आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित हैं ॥२०१॥ जो अनन्त बलसे युक्त हैं, आत्मस्वभावमें स्थित हैं, श्रेष्ठतासे युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥२०२॥ जो अवगाहन गुणसे युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्मत्व गुणसे सहित हैं, गुह्यता और लघुतासे रहित तथा असंख्यात-प्रदेशो हैं ॥२०३॥ जो अपरिमित—अनन्तगुणोंके आधार हैं, क्रम आदिसे रहित हैं, आत्मस्वरूपकी अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजनकी अन्तिम सीमाको प्राप्त हैं—कृतकृत्य हैं ॥२०४॥ जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं, जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो निर्जन—कर्म कालिमासे रहित हैं और निर्मल ध्यान शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाअटवीको भस्म कर दिया है ॥२०५॥ संसारसे भयभीत तथा तेजरूपी पटसे परिवृत इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥२०६॥ जो संसाररूप धर्मसे रहित हैं, सिद्धरूप धर्मको प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको धारण करनेवाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेष्ठियोंको हम नमस्कार करते हैं ॥२०७॥ शीलको धारण करनेवाले जो भी पुरुष इस शिलासे सिद्धिकी प्राप्त हुए हैं, पुराणोंमें जिनका कथन है, जो सर्व कर्मोंसे रहित हैं, जिनेन्द्र देवकी समानताको प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महाप्रतापके धारक हैं उन सबको हम भक्तिपूर्वक मंगल स्मरण करते हुए बार-बार वन्दना करते हैं ॥२०८-२०९॥ इस प्रकार चिरकाल तक स्तुति क

१. शिरसि करकुड्मलाः म. । २. निःश्रेयसः समुद्भवान् ।

एवं च सुचिरं^१ स्तुत्वा पुनरेवं बभाषिरे । लक्ष्मीधरं समुद्दिश्य स्थापितैकाग्रमानसाः ॥२१०॥
 शिलायामिह ये सिद्धा ये चान्ये हतकिल्बिषाः । ते विघ्नसूदनाः सर्वे भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२११॥
 अर्हन्तो मङ्गलं सन्तु तव सिद्धाश्च मङ्गलम् । मङ्गलं साधवः सर्वे मङ्गलं जिनशासनम् ॥२१२॥
 इति मङ्गलनिस्वानैर्विहायस्तकचारिणाम् । शिलामचालयत् क्षिप्रं लक्ष्मणो विमलद्युतिः ॥२१३॥
 सा लक्ष्मणकुमारेण नानालंकारभूषणा । केयूरकान्तबाहुभ्यां धृता कुलवधूरिव ॥२१४॥
 अथान्तरिक्षे देवानां महाशब्दो महानभूत् । सुग्रीवाद्याश्च राजेन्द्रा विस्मयं परमं ययुः ॥२१५॥
 ततः सिद्धान् प्रसोदाब्ज्याः प्रणम्य भयवर्जिताः । सम्मेदशिखरस्थं च जिनेन्द्रं मुनिसुव्रतम् ॥२१६॥
^२निषद्या ऋषभादीनाभ्यर्च्य च यथाविधि । सकलं भरतक्षेत्रं यश्चमुस्ते प्रदक्षिणम् ॥२१७॥
 सायाह्ने सौम्यवपुषो दिव्यैर्यनिर्मनोजवैः । कृताभिवन्दना शब्दैर्जयनन्दादिभिर्भुशम् ॥२१८॥
 परिवार्य महावीर्यं रामं लक्ष्मणसंगतम् । किष्किन्धनगरं प्रापुर्विविशुश्च महर्द्धयः ॥२१९॥
 शयिताश्च यथास्थानं विस्मितेनान्तरात्मना । एकीभूय पुनः प्रोता इत्यन्योन्यं बभाषिरे ॥२२०॥
 वीक्ष्यध्वं वासरैः स्वल्पैः पृथिव्यां राज्यमेतयोः । निःशेषैः कण्टकैर्मुक्तं शक्तिं धारयतोः पराम् ॥२२१॥
 सा निर्वाणशिला येन चालयित्वा समुद्धृता । उत्सादयत्ययं क्षिप्रं रावणं नात्र संशयः ॥२२२॥
 तथापरे वचः प्राहुः कैलासो येन भूधरः । तदा समुद्धृतः सोऽयं शिलोद्धारस्थ किं समः ॥२२३॥
 आहुरन्ये समुद्धारः कैलासस्य कृतो यदि । विद्यावले यतस्तत्र विस्मयः कस्य जायते ॥२२४॥

एकाग्रचित्तके धारण उन विद्याधरोने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि इस शिलासे जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुरुषोंने पापकर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों ॥२१०-२११॥ अरहन्त भगवान् तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों, सिद्ध परमेष्ठी मंगलरूप हों । सर्व साधु परमेष्ठी मंगलस्वरूप हों और जिन शासन मंगलरूप हो ॥२१२॥ इस प्रकार विद्याधरोंकी मंगल-ध्वनिके साथ, महातेजको धारण करनेवाले लक्ष्मणने शीघ्र ही उस शिलाको हिला दिया ॥२१३॥ तदनन्तर लक्ष्मण कुमारने कुलवधूके समान नाना अलंकारोंसे सुशोभित उस शिलाको बाजूबन्दोंसे सुशोभित अपनी भुजाओंसे ऊपर उठा लिया ॥२१४॥ उसी समय आकाशमें देवोंका महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२१५॥

तदनन्तर हर्षसे भरे सब लोग भयसे रहित सिद्ध परमेष्ठियों, सम्मेद शिखरपर विराजमान श्री मुनिसुव्रत नाथ जिनेन्द्रकी तथा ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके निर्वाणस्थान कैलास आदिकी विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्रमें धूमे ॥२१६-२१७॥ तदनन्तर वन्दना करनेके बाद सौम्यशरीरके धारक तथा महावैभवसे सम्पन्न सब लोगोंसे सायंकालके समय मनके समान वेगशाली दिव्य विमानों द्वारा 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके साथ महापराक्रमी राम-लक्ष्मणको घेरकर किष्किन्धननगरमें प्रवेश किया ॥२१८-२१९॥ सबने यथास्थान शयन किया । तदनन्तर आश्चर्य-चकित चित्तसे एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नतासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥२२०॥ कि तुम लोग परम शक्तिको धारण करनेवाले इन दोनोंका कुछ ही दिनोंमें पृथिवीपर समस्त कण्टकों अर्थात् शत्रुओंसे रहित राज्य देखोगे ॥२२१॥ जिसने उस निर्वाणशिलाको चलाकर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावणको मारेगा इसमें संशय नहीं है ॥२२२॥ कुछ लोग इस प्रकार कहने लगे कि उस समय जिसने कैलास उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठानेवालेके समान है ? ॥२२३॥

कुछ अन्य लोग कहने लगे कि यदि रावणने कैलास पर्वत उठाया था तो इससे

एके च वचनं प्रोचुः किं विवादैरिमैर्मुधा । जगद्धिताय संध्यर्थं किं नोपायो निरूप्यते ॥२२५॥
 तस्मादानीयतां सीतां समभ्यर्च्य दशाननम् । राघवायार्पयिष्यामि विग्रहे किं प्रयोजनम् ॥२२६॥
 संग्रामे तारको नष्टो मेरुकश्च महाबलः । कृतवीर्यसुताद्याश्च महासैन्यसमन्विताः ॥२२७॥
 एते खण्डप्रयाधीना महाभागा महीजसः । अन्ये हि बहवो नष्टा रणे सामन्ततः परम् ॥२२८॥
 अन्योन्यमभिमन्त्र्यैव विद्याविधिविशारदाः । राघवं विनयोपेताः संभूय ययुरादरात् ॥२२९॥
 सुग्रीवाद्याः समासीना नयनानन्दकारिणम् । विरेजुः परितो रामममरेन्द्रमिवामराः ॥२३०॥
 पञ्चानामस्ततोऽवोचत् किमद्याप्यबलम्वयते । मया विनान्तरे द्वीपे दुःखं तिष्ठति मैथिली ॥२३१॥
 दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य क्षिप्रमद्यैव सर्वथा । त्रिकूटगमने सज्जिः क्रियते न किमुद्यमः ॥२३२॥
 तमूचुर्मन्त्रिणो वृद्धा नयविस्तरकोविदाः । संशयेनात्र किं देव कथ्यतामेकनिश्चयः ॥२३३॥
 किं त्वमिच्छसि वैदेहीं विरोधमथ रक्षसाम् । विजयः प्राप्यते दुःखं नायं सदृशविग्रहः ॥२३४॥
 भरतस्य त्रिखण्डस्य प्रतिपक्षोज्झितः प्रभुः । सागरद्वीपविरुद्धात् एक एव दशाननः ॥२३५॥
 शङ्कितो धातकीद्वीपे द्योतिषामपि मीतिदः । जाम्बूद्वीपे परं प्राप्नो महिमानं खगाधिपः ॥२३६॥
 शल्यभूतोऽस्य विश्वस्य कृतानेकाद्भुतक्रियः । ईदृशो राक्षसो राम कथं संसाध्यते त्वया ॥२३७॥
 तस्माद्वृद्धिं रणे त्यक्त्वा यद् वयं संवदामहे । प्रसीद क्रियतां देव तदेवोच्छल शान्तये ॥२३८॥
 मा भूतस्मिन् कृतक्रोधे जगदेतन्महाभयम् । विध्वस्तप्राणिसंघातं नष्टनिःशेषसक्रियम् ॥२३९॥

क्या हुआ क्योंकि विद्याबलके रहते हुए उसके इस कार्यमें किसे आश्चर्य हो सकता है ? ॥२२५॥
 कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थके विवादोंसे क्या लाभ है ? जगत्का कल्याण करनेके लिए
 सन्धिकी उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥२२५॥ इसलिए रावणकी पूजा कर सीताको लाया
 जावे उसे हम रामके लिये सौंप देंगे फिर युद्धका क्या प्रयोजन है ? ॥२२६॥ संग्राममें तारक, महा-
 बलवान् मेरुक और बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित कृतवीर्यके पुत्र आदि मारे गये हैं ॥२२७॥ ये सभी
 तीन खण्डके स्वामी महाभागवान् तथा महाप्रतापी थे । इनके सिवाय और भी अनेक राजा रणमें
 सब ओर नष्ट हुए हैं ॥२२८॥ इस प्रकार विद्याओंके प्रयोग करनेमें निपुण सब लोग परस्पर सलाह
 कर विनय सहित आदरपूर्वक मिलकर रामके पास आये ॥२२९॥ नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाले
 रामके चारों ओर बैठे हुए सुग्रीव आदि राजा उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि
 अमरेन्द्रके चारों ओर देव सुशोभित होते हैं ॥२३०॥ तदनन्तर रामने कहा कि अब और किसकी
 अपेक्षा की जा रही है ? दूसरे द्वीपमें सीता मेरे बिना दुःखी होती होगी ॥२३१॥ शीघ्र ही दीर्घ-
 सूत्रताको छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकूटाचलपर चलनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करते हैं ? ॥२३२॥
 तब नीतिके विस्तारमें निपुण वृद्ध मन्त्रियोंने कहा कि हे देव ! इस विषयमें संशयकी क्या बात है ?
 निश्चय बताइए कि ॥२३३॥ आप सीताको चाहते हैं या राक्षसोंके साथ युद्ध ? यदि युद्ध चाहते हैं तो
 विजय कठिनाईसे प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसोंका और आपका यह युद्ध सदृश युद्ध—बराबरीवालों-
 का युद्ध नहीं है ॥२३४॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरोंमें प्रसिद्ध, तीन खण्ड भरतका शत्रुरहित
 एक—अद्वितीय ही प्रभु है ॥२३५॥ धातकीखण्ड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शंकित रहता है, वह
 ज्योतिषी देवोंको भी भय उत्पन्न करनेवाला है तथा जम्बूद्वीपमें परम महिमाको प्राप्त अद्वितीय
 विद्याधरोंका स्वामी है ॥२३६॥ जो समस्त संसारके लिए शल्य स्वरूप है, तथा जिसने अनेक
 अद्भुत कार्य किये हैं ऐसा राक्षस हे राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२३७॥
 इसलिए हे देव ! रणकी भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे हैं वही कीजिए, प्रसन्न होइए और
 शान्तिके लिए उद्योग कीजिए ॥२३८॥ उसके कुपित होनेपर यह संसार महाभयसे युक्त न हो,

१. दीर्घस्तत्र त्व म. । २. शिल्पीभूतोऽस्य म. । ३. सक्रियम् म. ।

योऽसौ विभीषणः ख्यातः स्वयं ब्रह्मा स कीर्तितः । क्रूरकर्मनिवृत्तात्मः भावितोऽणुव्रतैर्दृढम् ॥२४०॥
 अलङ्घ्यवचनं तस्य कुरुते खेचराधिपः । तयोर्हि परमा त्रीतिरन्तरायविवर्जिता ॥२४१॥
 बोधितस्तेन दाक्षिण्याद् यशःपालनतोऽपि वा । लज्जया वा विदेहस्य तनया प्रेषयिष्यति ॥२४२॥
 विज्ञापनवचोयुक्तिकुशलो नयपेशलः । अन्विष्यतामरं कश्चित्पसादी रावणस्य यः ॥२४३॥
 ततो महोदधिर्नाम्ना ख्यातो विद्याधराधिपः । अवर्षादेश वृत्तान्तो भवतां नागतः श्रुतिम् ॥२४४॥
 अन्धैर्बहुजनक्षोदैर्लङ्काऽगम्या निरन्तरम् । कृतातिशयदुःप्रेक्षा सुभीमात्यन्तगह्वरा ॥२४५॥
 एषां मध्ये न पश्यामि महाविद्यं नभश्चरम् । लङ्कां गत्वा द्रुतं भूयो यः समर्थो निवर्तितुम् ॥२४६॥
 पवनजयराजस्य श्रीशैलः प्रथितः सुतः । विद्यासत्त्वप्रतापाढ्यो बलौत्तुङ्गः स याच्यताम् ॥२४७॥
 समं दशाननेनास्य विद्यतेऽजयमुत्तमम् । युक्तः करोत्यसौ साम्यं निर्विघ्नं पुरुषोत्तमः ॥२४८॥
 प्रतिपन्नैस्ततः सर्वैरेवमस्त्विति सादरैः । मारुतेरन्तिकं दूतः श्रीभूतिः प्रहितो द्रुतम् ॥२४९॥
 शक्तिं दधतापि परं प्राप्यापि परं प्रबोधमारभ्ये । भवितव्यं नयरतिना रविरिव काले स यात्युदयम् ॥२५०॥
 इत्यार्षे रविवेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे कोटिशिलोत्क्षेपणाभिधानं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४८॥

प्राणियोंके समूहका विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥२३९॥ रावणका भाई विभीषण अत्यन्त प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है । वह दुष्टतापूर्ण कार्योंसे सदा दूर रहता है और अणुव्रतोंका दृढ़तासे पालन करता है ॥२४०॥ उसके वचन अलङ्घ्य हैं वह जो कहता है रावण वही करता है । यथार्थमें उन दोनोंमें निर्वाध परम प्रेम है ॥२४१॥ विभीषण उसे समझावेगा इसलिए, अथवा उदारतासे, अथवा कीर्ति रक्षा के अभिप्रायसे अथवा लज्जाके कारण रावण सीताको भेज देगा ॥२४२॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुषको खोज की जाये जो निवेदन करनेवाले वचनोंकी योजनामें कुशल हो, नीतिनिपुण हो और रावणको प्रसन्न करनेवाला हो ॥२४३॥

तदनन्तर महोदधि नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंके राजाने कहा कि क्या यह वृत्तान्त आप लोगोंके श्रवणमें नहीं आया ॥२४४॥ कि लंका अनेक जनोंका विघात करनेवाले यन्त्रोंसे निरन्तर अगम्य कर दी गयी है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यन्त भयंकर गम्भीर गर्तोंसे युक्त हो गयी है ॥२४५॥ इन सबके बीचमें महाविद्याओंके धारक एक भी ऐसे विद्याधरको नहीं देखता हूँ कि जो लंका जाकर शीघ्र ही पुनः लौटनेके लिए समर्थ हो ॥२४६॥ हाँ, पवनजय राजाका पुत्र श्रीशैल विद्या, सत्त्व और प्रतापसे सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाये ॥२४७॥ इसका दशाननके साथ उत्तम सम्बन्ध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाये तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्न रूपसे शान्ति स्थापित कर सकता है ॥२४८॥ तदनन्तर सब विद्याधरोंने 'एवमस्तु' कहकर महोदधि विद्याधरका प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशैल (हनुमान्) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नामका दूत भेजा ॥२४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्तिके धारक राजाको भी प्रारम्भ करने योग्य कार्योंके विषयमें परम विवेकको प्राप्त कर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्यके समान समय आनेपर अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥२५०॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविवेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें कोटिशिला
 उठानेका वर्णन करनेवाला अड़तालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४८॥



१. महोदधिनाम्ना म. । २. भवतां श्रुति न आगतः । ३. बालौत्तुङ्गः म. । बलौत्तुङ्ग ख. । ४. अजयं संगतं । विद्यते नयमुत्तमं ख., म. । ५. बोधमारभ्यः म. । ६. नरपतिता ख. ।

एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व

ततो नमः समुत्पत्य जगामासौ^१ भरुजवः । अत्युत्तुङ्गैर्गृहैः पूर्णं श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥१॥
तत्र हेमद्रवमस्तलेप्यतेजःसमुज्ज्वलम् । कुन्दाभवलभीशोभि रत्ननिमित्तशेखरम् ॥२॥
मुक्तादामसमाकीर्णं वातायनविराजितम् । उद्यानाकीर्णपर्यन्तं प्राविशन्सारुतेर्गृहम् ॥३॥
अपूर्वलोकसंघातं पश्यतस्तस्य सान्द्रतम् । मनोगतागतं भूयो गतं कृच्छ्रेण धीरताम् ॥४॥
प्रविष्टे सारुतेर्गृहं तस्मिन् दूते ससंभ्रमे । अनङ्गकुसुमोत्पातं जगामेन्दुनखात्मजा ॥५॥
सस्पन्दं दक्षिणं चक्षुरवधार्य व्यचिन्तयत् । प्राप्तव्यं विधियोगेन कर्म कर्तुं न शक्यते ॥६॥
क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुषास्तावदासताम् । न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥७॥
वेदितागमनस्तावद् दूतो नर्मदया सभाम् । प्रस्वेदकणसंपूर्णः प्रतीहार्या प्रवेशितः ॥८॥
जगादाथ यथावृत्तं निःशेषं प्रणताननः । दण्डकाद्रिं समायाताः पद्मनामादयः पुरा ॥९॥
शम्बूकस्य वधं युद्धं विषमं खरदूषणम् । पद्मतागमनं तस्य मानवैरुत्तमैः सह ॥१०॥
ततो निशम्य तां वार्तां शोकविह्वलविग्रहा । अनङ्गकुसुमा मूर्छामुपेता मुकुलेक्षणा ॥११॥
चान्दनेन द्रवेणैतां सिच्यमानां क्रियोज्जिताम् । विलोक्यान्तःपुराग्मोधिः परमं क्षोभमागतः ॥१२॥
वीणातन्त्रीसहस्राणां प्राप्तानां कोणताडनम् । क्रन्दन्तीनां समं रम्यो ध्वनिः स्त्रीणां समद्वगतः ॥१३॥

तदनन्तर—वायुके समान वेगका धारक श्रीभूति दूत, आकाशमें उड़कर अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे महलोंसे परिपूर्ण, लक्ष्मीके घरस्वरूप श्रीपुर नगरमें पहुँचा ॥१॥ वहाँ जाकर उसने श्रीशैलेके उस भवनमें प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानीके लेपसे उत्पन्न तेजसे अत्यन्त देदीप्यमान था, कुन्दके समान उज्ज्वल अट्टालिकाओंसे सुशोभित था, रत्नमयी शिखरोंसे जगमगा रहा था, मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, झरोखोंसे सुशोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश बाग-बगीचोंसे व्याप्त था ॥२-३॥ वहाँ लोगोंकी अपूर्व भोड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक यातायात देख श्रीभूतिका मन बड़ी कठिनाईसे धीरताको प्राप्त हुआ ॥४॥ जब आश्चर्यमें पड़े हुए श्रीभूति दूतने हनुमान्के घरमें प्रवेश किया तब चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा उत्पातको प्राप्त हुई ॥५॥ दक्षिण नेत्रको फड़कते देख उसने विचार किया कि देवयोगसे जो कार्य जैसा होना होता है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥६॥ हीन शक्तिके धारक मनुष्य तो दूर रहें देवोंके द्वारा भी कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥७॥ तदनन्तर अनङ्गकुसुमाकी प्रहासिका सखीने जिसके आगमन की सूचना दी थी, और स्वेदके कणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस श्रीभूति दूतको प्रतीहारोंने सभाके भीतर प्रविष्ट कराया ॥८॥

अथानन्तर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम आदि दण्डक वनमें आये, शम्बूकका वध हुआ, खरदूषणके साथ विषम युद्ध हुआ, और उत्तम मनुष्योंके साथ खरदूषण मारा गया ॥९-१०॥ तदनन्तर यह वार्ता सुन अनङ्गकुसुमा शोकसे विह्वल शरीर हो मूर्च्छित हो गयी तथा उसके नेत्र निमीलित हो गये ॥११॥ उसका हलन-चलन बन्द हो गया तथा चन्दनके द्रवसे उसे सींचा जाने लगा, यह देख समस्त अन्तःपुररूपी सागर परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१२॥ अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ एक साथ रुदन करने लगीं सो उनके

अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रालम्बिता प्राणसंगमम् । अश्रुसिक्तस्तनी तारं विललापातिदुःखिता ॥१४॥
 हा तात क प्रयातोऽसि प्रयच्छ वचनं मम । हा आतः किमिदं जातं दीयतां दर्शनं सकृत् ॥१५॥
 वनेऽतिमीषणे कष्टं रणामिमुखतां गतः । भूगोचरैः कथं तात मरणत्वमुपाहृतः ॥१६॥
 शोकाकुलजनाकीर्णं जाते श्रीशैलवेशमनि । नीतो नर्मदया दूतः प्रदेशं वचनोचितम् ॥१७॥
 पितुर्भ्रतिश्च दुःखेन तसा चन्दनखात्मजा । कृच्छ्रेण शमनं नीता सन्निः प्रशमकोविदैः ॥१८॥
 जिनमार्गप्रवीणाक्षौ बुद्ध्वा संसारसंस्थितिम् । लोकाचारानुकूलत्वाच्चक्रे प्रेतक्रियाविधिम् ॥१९॥
 अन्येषुदूतमाहूय पवनं जयनन्दनः । अपृच्छच्छोकसंपृष्टः मौललोकसमावृतः ॥२०॥
 निःशेषं दूत यद्वृत्तं तन्निवेदय सांप्रतम् । इत्युक्त्वा कारणं मृत्योः खरदूषणमस्मरत् ॥२१॥
 ततोऽस्य क्रोधसरूढसर्वाङ्गस्य महाद्युतेः । भ्रूस्तरङ्गवती रेजे तद्दिद्रेखेव चञ्चला ॥२२॥
 ततस्त्रासपरीताङ्गो मुहुर्दूतः प्रतापवान् । जगाद मधुरं प्राज्ञः कोपविध्वंसकारणम् ॥२३॥
 ज्ञातमेव हि देवस्य किष्किन्धाधिपतेः परम् । दयितादुःखमुत्पन्नं तत्समाकारहेतुकम् ॥२४॥
 आर्तस्तेन स दुःखेन पद्मं शरणमागमत् । प्रतीक्ष्य सोऽर्तिविध्वंसं किष्किन्धनगरं गतः ॥२५॥
 सुग्रीवाकृतिचौरेण समं तत्र महानभूत् । चिरं श्रान्तमहायोधः संप्रामः श्वसुरस्य ते ॥२६॥
 उत्थाय पद्मनाभेन ततो भूयो महौजसा । तस्याहृतस्य नष्टासी वेताली स्तेयकारणम् ॥२७॥
 ततः साहसगत्याख्यः स्वस्वभावं समाश्रितः । विशातो रामनिर्मुक्तैर्मृत्युं नीतः शिलीमुखैः ॥२८॥

रुदनका शब्द ऐसा उठा मानो वीणाओंके हजारों तार कोणके ताड़नको प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हों ॥१३॥ तदनन्तर अनंगकुसुमा बड़े कष्टसे प्राणोंके समागमको प्राप्त हुई अर्थात् सचेत हुई। सचेत होनेपर अश्रुओंसे स्तनोंको सिक्त करती तथा अतिशय दुःख प्रकट करती हुई वह जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥१४॥ वह कहने लगी कि हाय तात ! तुम कहाँ गये; मुझे वचन देओ—मुझसे वार्तालाप करो। हाय भाई ! यह क्या हुआ ? एक बार तो दर्शन देओ ॥१५॥ हे तात ! अत्यन्त भयंकर वनमें रणके सम्मुख हुए तुम भूमिगोचरियोंके द्वारा मरणको कैसे प्राप्त हो गये ? ॥१६॥ इस प्रकार जब श्रीशैलका भवन शोकाकुल मनुष्योंसे भर गया तब अनंगकुसुमाकी नर्मदा—सखी दूतको बात करने योग्य स्थानपर ले गयी ॥१७॥ पिता और भाईके दुःखसे सन्तप्त चन्दनखाकी पुत्री अनंगकुसुमा, सान्त्वना देनेमें निपुण सत्पुरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे शान्तिको प्राप्त कराया गया ॥१८॥ जिनमार्गमें प्रवीण अनंगकुसुमाने संसारकी स्थिति जानकर लोकाचारके अनुकूल पिताकी मरणोत्तर क्रिया की ॥१९॥

अथानन्तर दूसरे दिन शोकसे व्याप्त तथा मन्त्री आदि मौलवर्गसे परिवृत श्रीशैल—हनुमान्ने दूतको बुलाकर पूछा कि हे दूत ! खरदूषणकी मृत्युका जो कुछ कारण हुआ है वह सब कही, यह कहकर हनुमान् खरदूषणका स्मरण करने लगा ॥२०—२१॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महादोषिमान् हनुमान्की फड़कती हुई भौंह चंचल बिजली की रेखाके समान जान पड़ती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् भयसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी बुद्धिमान्ने हनुमान्का क्रोध दूर करनेवाले निम्नांकित मधुर वचन कहे ॥२३॥ उसने कहा कि हे देव ! आपको यह तो विदित ही है कि किष्किन्धाके अधिपति सुग्रीवको उसीके समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधरके कारण स्त्रीसम्बन्धी दुःख उपस्थित हुआ था ॥२४॥ उस दुःखसे दुखो हुआ सुग्रीव रामकी शरणमें आया था और राम भी उसका दुःख नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर किष्किन्धनगर गये थे ॥२५॥ वहाँ आपके श्वसुर—सुग्रीवका, उसकी आकृतिके चौर—कृत्रिम सुग्रीवके साथ बड़े-बड़े योद्धाओंको थका देनेवाला चिरकाल तक महायुद्ध हुआ ॥२६॥ तदनन्तर महातेजस्वी रामने उठकर उसे ललकारा। उन्हें देखते ही चोरीका कारण जो वेताली-विद्या थी वह नष्ट हो गयी ॥२७॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूपको प्राप्त हो गया, सबकी

तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो जातः पवननन्दनः । पुनरुक्तं जगौ तुष्टः विकसनमुखपङ्कजः ॥२९॥
 कृतं कृतमहो साधु प्रियं पथेन नः परम् । यत्सुग्रीवकुलं मज्जदकीर्तौ क्षिप्रमुद्धृतम् ॥३०॥
 हेमकुम्भोपमं गोत्रं अयशःकूपगह्वरे । निमज्जद्गुणहस्तेन तेन सन्मतिनोद्धृतम् ॥३१॥
 एवमादिपरं भूरि प्रशंसन् रामलक्ष्मणौ । कस्मिन्नपि भमज्जासौ सारसौख्यमहाणवे ॥३२॥
 श्रुत्वा पङ्कजरागाथाः पितुः शोकपरिक्षयम् । उत्सवः सुमहान् जातो दानपूजादिसंस्तुतः ॥३३॥
 उद्भगानन्दसंपन्नं हतच्छायसमुज्ज्वलम् । श्रीशैलभवनं जातं रसद्वयसमुत्कटम् ॥३४॥
 एवं विषमतां प्राप्ते स्वजने पावनंजयिः । किञ्चित्समत्वमाधाय किञ्चिन्धाभिमुखं ययौ ॥३५॥
 ऋध्याभिगच्छतस्तस्य बलेनात्यर्थं भूरिणा । जगद्वन्द्यदिवोद्भूतमाकाशपरिवर्जितम् ॥३६॥
 विमानं सुमहत्तस्य मणिरत्नसमुज्ज्वलम् । प्रमोदं दिवसरत्नस्य जहार स्वमरीचिभिः ॥३७॥
 गच्छन्तं तं महाभाग्यं शतशो बन्धुपार्थिवाः । अनुजग्मुः सुनासीरं यथा त्रिदशपुंगवाः ॥३८॥
 अग्रतः पृष्ठतश्चास्थ पार्श्वतश्च जयस्वनैः । गच्छतां खेचरेन्द्राणामासीच्छब्दमयं नमः ॥३९॥
 चित्रमासीद्यदश्वानां विहायस्तलगामिनाम् । मनोहारी गजानां च विलासः स्वतनूचितः ॥४०॥
 महातुरङ्गसंयुक्तैः रथैश्चिह्नतकेतुभिः । विहायसस्तलं जातं मन्ये कल्पनगाकुलम् ॥४१॥
 सितानामातपत्राणां गण्डलेन महीयसा । जातं कुमुदखण्डानामिव पूर्णं वियत्तलम् ॥४२॥

पहचानमें आया और रामके द्वारा छोड़े हुए वाणोंसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥२८॥ यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया । प्रसन्नतासे उसका मुखकमल खिल उठा और सन्तुष्ट होकर उसने बार-बार कहा कि अहो ! रामने बहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने अपकीर्तिमें डूबते हुए सुग्रीवके कुलका शीघ्र ही उद्धार कर लिया ॥२९-३०॥ स्वर्णकलशके समान सुग्रीवका कुल अपयशरूपी कूपके गर्तमें पड़कर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धिके धारक रामने गुणरूपी रस्सी हाथमें ले उसे निकाला है ॥३१॥ इस प्रकार रामलक्ष्मणकी अत्यधिक प्रशंसा करता हुआ हनुमान् किसी अद्भुत श्रेष्ठ सुखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥३२॥

हनुमान्की दूसरी स्त्री सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा थी सो पिताके शोकका क्षय सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ । उसने दान-पूजा आदिके द्वारा महाउत्सव किया ॥३३॥ उस समय हनुमान्के भवनमें एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था । वह एक ओर तो कान्तिसे शून्य हो रहा था और दूसरी ओर देदीप्यमान हो रहा था । इस प्रकार दो स्त्रियोंके कारण वह दो प्रकारके रससे युक्त था ॥३४॥ इस प्रकार जब कुटुम्बके लोग विषमताको प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान् कुछ-कुछ मध्यस्थताको धारण कर किञ्चिन्धानगरकी ओर चला ॥३५॥ वैभवके साथ जाते हुए हनुमान्की बहुत बड़ी सेनासे उस समय संसार आकाशसे रहित होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥३६॥ मणियों और रत्नोंसे जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणोंसे सूर्यकी प्रभाको हर रहा था ॥३७॥ जाते हुए उस महाभाग्यशालीके पीछे सैकड़ों मित्रराजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इन्द्रके पीछे उत्तमोत्तम देव चलते हैं ॥३८॥ उसके आगे-पीछे और दोनों ओर चलनेवाले विद्याधर राजाओंकी जयध्वनिसे आकाश शब्दमय हो गया था ॥३९॥ आकाशतलमें चलनेवाले उसके घोड़ोंसे आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था तथा हाथियोंकी अपने शरीरके अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रही थी ॥४०॥ जिनमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हुए थे तथा जिनपर पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे रथोंसे उस समय आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कल्पवृक्षोंसे व्याप्त ही हो ॥४१॥ धवल छत्रोंके विशाल समूहसे आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कुमुदोंके समूहसे ही व्याप्त

गम्भीरो दौन्दुभो धीरो ध्वानो ध्वस्तापरध्वनिः । चक्रबालं दिशां व्याप्य प्रतिध्वनिघनः स्थितः ॥४३॥
 संकुलं चलता येन सैन्येन गगनाङ्गणम् । खण्डखण्डैरिवच्छन्नमन्तरेषु व्यलोक्यते ॥४४॥
 मासां भूषणजातानां बहुवर्णयुजां चयैः^१ । विशिष्टशिल्पिना रक्तं नमो वस्त्रमिवामवत् ॥४५॥
 ध्वनिं मारुतितूर्यस्य श्रुत्वा संनह्य गह्वरम् । तोषं कपिध्वजाः प्रापुः शिखिनोऽब्धध्वनिं यथा ॥४६॥
 कृतापणमहाशोभं ध्वजमालासमाकुलम् । रत्नतोरणसंयुक्तं किष्किन्धनगरं कृतम् ॥४७॥
 बहुभिः पूज्यमानोऽसौ विभवैस्त्रिदशोपमैः । विवेश नगरं सद्यः सुग्रीवस्य च पुष्कलम् ॥४८॥
 सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च यथाहं रचितादरः । कथितं चाखिलं तस्य पद्मानामादिचेष्टितम् ॥४९॥
 अनेनैव ततो युक्ताः सुग्रीवाद्या नरेश्वराः । चारयन्तः परं हर्षं पद्मानाममुपाययुः ॥५०॥
 अपश्यच्च नरश्रेष्ठं तं लक्ष्मीधरपूर्वजम् । नीलकुञ्चितसूक्ष्मातिस्निग्धकेशं मरुसुतः ॥५१॥
 लक्ष्मीलताविषकाङ्गं कुमारमिव भास्करम् । शशाङ्कमिव लिम्पन्तं^२ कान्तिपङ्केन पुष्करम्^३ ॥५२॥
 नयनानां समानन्दं मनोहरणकोविदम् । अपूर्वकर्मणां स्वर्गं स्वर्गादिव समागतम् ॥५३॥
 ज्वलद्बिजुद्धरूपांस्त्र्यम्बुहर्गभसमप्रभम् । मनोज्ञा गतनासाग्रं संगतश्रवणद्वयम्^४ ॥५४॥
 मूर्तिमन्तमिवानङ्गं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । चापानतभ्रुवं पूर्णसारदेन्दुनिभाननम् ॥५५॥
 बिम्बप्रवालरक्तोष्ठं कुन्दश्वेतद्विजावलिम् । कम्बुकण्ठं मृगेन्द्रामवक्षोभाजं महाभुजम् ॥५६॥

हो ॥४२॥ दूसरोंकी ध्वनिको नष्ट करनेवाला उसकी दुन्दुभिका धीर गम्भीर शब्द दिशाओंके मण्डलको व्याप्त कर स्थित था तथा उसकी जोरदार प्रतिध्वनि उठ रही थी ॥४३॥ उसकी चलती हुई सेनासे व्याप्त आकाशांगण ऐसा दिखाई देता था मानो बीच-बीचमें खण्ड-खण्डोंसे आच्छादित हो ॥४४॥ उसके नाना प्रकारके भूषणोंके समूहकी कान्तिसे रंगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट—कुशल शिल्पीके द्वारा रंगा वस्त्र ही हो ॥४५॥ हनुमान्की तुरहीका गम्भीर शब्द श्रवण कर सब वानरवंशी इस प्रकार सन्तोषको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि मेघका शब्द सुनकर मयूर सन्तोषको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ उस समय किष्किन्धननगरके बाजारोंमें महाशोभा की गयी; ध्वजाओं तथा मालाओंसे नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणोंसे युक्त किया गया ॥४७॥ देवोंके समान अनेक विद्याधरोंने बड़े वैभवसे जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुग्रीवके विशाल महलमें प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ सुग्रीवने यथायोग्य आदर कर उसका सम्मान किया तथा राम आदिकी समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कहीं ॥४९॥ तदनन्तर हनुमान्से युक्त सुग्रीव आदि राजा परम हर्षकी धारण करते हुए रामके समीप आये ॥५०॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने उन श्रीरामको देखा जो मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, लक्ष्मणके अग्रज थे, जिनके केश काले, घुँघराले, सूक्ष्म तथा अत्यन्त स्निग्ध थे ॥५१॥

जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित था, जो बालपूर्यके समान जान पड़ते थे अथवा जो कान्तिरूपी पंक्के आकाशको लिप्त करते हुए चन्द्रमाके समान मुशोभित थे ॥५२॥ जो नेत्रोंकी आनन्द देनेवाले थे, मनके हरण करनेमें निपुण थे, अपूर्व कर्मोंकी मानो सृष्टि ही थे और स्वर्गसे आये हुए के समान जान पड़ते थे ॥५३॥ देदीप्यमान निर्मल स्वर्ण-कमलके भोतरी भागके समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासाका अग्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम सुडौल अथवा सज्जनकोंकी प्रिय थे ॥५४॥ जो मूर्तिधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे, जिनकी भौंह चढ़े हुए धनुषके समान नम्रीभूत थी, जिनका मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान था ॥५५॥ जिनका ओंठ बिम्ब अथवा मूंगा या किसलयके समान

१. वयैः म. । २. कान्तिपङ्केन । ३. पुष्कलम् ख. । ४. मनोज्ञां गतनासाग्रं । ५. सङ्गतं श्रवणद्वयम् म. ।

श्रीवत्सकान्तिसंपूर्णमहाशोभस्तनान्तरम् । गम्भीरनाभिवत्क्षाममध्यदेशविराजितम् ॥५७॥
 प्रशान्तगुणसंपूर्णं नानालक्षणभूषितम् । सुकुमारकरं वृत्तपीवरोरुद्वयस्तुतम् ॥५८॥
 कूर्मपृष्ठमहातेजःसुकुमारक्रमद्वयम् । चन्द्राङ्कुरारुणच्छायानखपङ्क्तिस्तमुज्ज्वलम् ॥५९॥
 अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीरं वज्रसंवातविग्रहम् । सर्वसुन्दरसन्दोहमिव कृत्वा विनिर्मितम् ॥६०॥
 महाप्रभावसंपन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । प्रियाङ्गनावियोगेन बालसिंहमिवाकुलम् ॥६१॥
 शच्येव रहितं शक्रं रोहिण्येव विना विधुम् । रूपसौभाग्यसंपन्नं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥६२॥
 शौर्यमाहात्म्यसंयुक्तं मेघादिगुणसंयुतम् । पूर्वविधं समालोक्य मारुतिः क्षोभमागतः ॥६३॥
 अचिन्तयन्न स्रान्तस्तत्प्रभाववशीकृतः । तच्छरीरप्रमाजालसमालिङ्गितविग्रहः ॥६४॥
 श्रीमानयमसौ राजा रामो दशरथात्मजः । यस्येह लक्ष्मणो भ्राता लोकश्रेष्ठः स्थितो वशे ॥६५॥
 यस्यालोक्य तदा संख्ये^१ छत्रं शीतांशुसंनिभम् । सा साहसगतेर्माया वैताली परिनिःसृता ॥६६॥
 दृष्ट्वा वज्रधरं^२ पूर्व हृदयं यन्न कम्पितम् । तदथ मम दृष्ट्वै^३ न संक्षोभं परमं गतम् ॥६७॥
 इति विस्मयमापन्नः समनुसृत्य तान् गुणान् । ससार^४ पावनिः पद्यं श्रीमदम्भोजलोचनम् ॥६८॥
 दूरादुत्थाय दृष्ट्वै^५ पद्मलक्ष्मीधरादिभिः । असौ प्रहृष्टचेतोभिः परिष्वक्तो यथाक्रमम् ॥६९॥
 परस्परं समालोक्य संभाष्य विनयोचितम् । उपधानविचित्रेषु^६ स्वासनेष्ववतस्थिरे ॥७०॥

लाल था जिसकी दाँतोंकी पंक्ति कुन्द कुसुमके समान शुक्ल थी, कण्ठ शंखके समान था, जो सिंहके समान विस्तृत वक्षःस्थलके धारक थे, महाभुजाओंसे युक्त थे ॥५६॥ जिनके स्तनोंका मध्यभाग श्रीवत्स चिह्नकी कान्तिसे परिपूर्ण महाशोभाको धारण करनेवाला था, जो गम्भीर नाभिसे युक्त तथा पतली कमरसे सुशोभित थे ॥५७॥ जो प्रशान्त गुणोंसे युक्त थे, नाना लक्षणोंसे विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यन्त सुकुमार थे, जिनकी दोनों जाँघें गोल तथा स्थूल थीं ॥५८॥ जिनके दोनों चरण कछुवेके पृष्ठभागके समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चन्द्रमाकी किरणरूपी अङ्कुरोंसे लाल-लाल दीखनेवाली नखावलीसे उज्ज्वल थे ॥५९॥ जो अक्षोभ्य धैर्यसे गम्भीर थे, जिनका शरीर मानो वज्रका समूह ही था, अथवा समस्त सुन्दर वस्तुओंको एकत्रित कर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥६०॥ जो महाप्रभावसे युक्त थे, न्यग्रोध अर्थात् वट-वृक्षके समान जिनका मण्डल था, जो प्रिय स्त्रीके विरहके कारण बालसिंहके समान व्याकुल थे ॥६१॥ जो इन्द्राणीसे रहित इन्द्रके समान, अथवा रोहिणीसे रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनोंसे युक्त थे, समस्त शास्त्रोंमें निपुण थे ॥६२॥ शूर-वीरताके माहात्म्यसे युक्त थे तथा मेघा—सद्बुद्धि आदि गुणोंसे युक्त थे । ऐसे श्रीरामको देखकर हनुमान् क्षोभको प्राप्त हुआ ॥६३॥

तदनन्तर जो रामके प्रभावसे वशीभूत हो गया था और उनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर आलिंगित हो रहा था ऐसा हनुमान् सम्भ्रममें पड़ विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह वही दशरथके पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचन्द्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आज्ञाकारी है ॥६५॥ उस समय युद्धमें जिनका चन्द्रतुल्य छत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गयी ॥६६॥ मेरा जो हृदय पहले इन्द्रको देखकर भी कम्पित नहीं हुआ वह आज इन्हें देखकर परम क्षोभको प्राप्त हुआ है ॥६७॥ इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणोंका अनुसरण कर कमललोचन रामके पास पहुँचा ॥६८॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदिने इसे देख दूरसे ही उठाकर यथाक्रमसे इसका आलिंगन किया ॥६९॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर तथा विनयके योग्य वार्तालाप कर सब नाना प्रकार तालियोंसे

१. युद्धे । २. सर्व म. । ३. पवनस्यापत्यं पुमान् पावनिः हनुमान् । ४. स्वासनेष्ववतस्थिते म. ।

तत्र भद्रासने रम्ये स्थितः काकुरस्थनन्दनः । केयूरभूषितभुजो ज्वललक्ष्म्या समन्ततः ॥७१॥
 स्वच्छनीलाम्बरधरश्चूडामणिरिवोज्ज्वलः । रराज वरहारेण सोडुचन्द्र इवोद्गतः ॥७२॥
 दिव्यपीताम्बरधरो हारकेयूरकुण्डली । सुमित्रातनयो रेजे सतडिजलदो यथा ॥७३॥
 वानगभोगमुकुटः सुरवारणविक्रमः । अमात्सुग्रीवराजोऽपि लोकपाल इवोर्जितः ॥७४॥
 विराधितः कुमारोऽपि सौमित्रेः पृष्ठतः स्थितः । अलक्ष्यत नृसिंहस्य चक्ररत्नमिवौजसा^१ ॥७५॥
 हनूमानप्यलं रेजे पद्मनाभस्य धीमतः । समीपे पूर्णचन्द्रस्य स्फीतो बुध इवोदितः ॥७६॥
 सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यैरलंकारैश्च भूषितौ । अङ्गाङ्गदावैभासेतां यमवैश्रवणाविव ॥७७॥
 नलनीलप्रभृतयः शतशोऽन्ये च पार्थिवाः । आसीता रेजुरत्यन्तमावृत्य रघुनन्दनम् ॥७८॥
 पञ्चसदगन्धताम्बूलगन्धसंगतमारुता । विभूषणकृतोद्योता सा सभेन्द्रसमीपमा ॥७९॥
 विस्मिय सुचिरं रामं प्रीतः पावनिरब्रवीत् । समक्षं न गुणा प्राप्या भवतो रघुनन्दन ॥८०॥
 इहापि निखिले लोके दृश्यते स्थितिरिदृशी । किमपि प्रियवक्तृणां प्रत्यक्षगुणकीर्तनम्^२ ॥८१॥
 आसीद्यस्याधिमाहात्म्यं श्रुतमस्मामिरुर्जितम् । दृष्टः सत्त्वहितः स त्वं सत्त्ववान् चक्षुषा स्वयम् ॥८२॥
 सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य गुणरत्नाकरस्य ते । शुभ्रेण यशसा राजन् जगदेतदलङ्कृतम् ॥८३॥

सुशोभित अपने-अपने आसनोपर बैठ गये ॥७०॥ वहाँ जो उत्तम आसनपर विराजमान थे, जिनको भुजा बाजूबन्दसे सुशोभित थी, जो लक्ष्मीके द्वारा सब ओरसे देदीप्यमान थे, जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हारसे सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्र सहित उदित हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥७१-७२॥ दिव्य पीताम्बरको धारण करनेवाले तथा हार, केयूर और कुण्डलोसे अलंकृत लक्ष्मण बिजली सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ जिसका सुविस्तृत मुकुट वानरके चिह्नसे युक्त था, तथा देवगज—ऐरावतके समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीवराजा भी अतिशय बलवान् लोकपालके समान सुशोभित हो रहा था ॥७४॥ लक्ष्मणके पीछे बैठा विराधित कुमार भी अपने तेजसे ऐसा दिखाई देता था मानो नारायणके समीप रखा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥७५॥

अतिशय बुद्धिमान् रामचन्द्रके समीप हनुमान् भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचन्द्रके समीप उदित हुआ अत्यन्त देदीप्यमान बुधग्रह ही हो ॥७६॥ सुगन्धित माला तथा वस्त्रादि एवं अलंकारोंसे अलंकृत अंग और अंगद यम तथा वैश्रवणके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७७॥ इनके सिवाय रामको घेर कर बैठे हुए नल, नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ नाना प्रकारकी उत्तम गन्धसे युक्त ताम्बूल तथा सुगन्धित अन्य पदार्थोंके समागमसे जहाँ वायु सुगन्धित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणोंके द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी वह सभा इन्द्रकी सभाके समान जान पड़ती थी ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक आश्चर्यमें पड़कर प्रीतियुक्त हनुमान्ने रामसे कहा कि हे राघव ! यद्यपि आपके गुण आपके ही समक्ष नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोकमें भी ऐसी ही रीति देखी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करनेकी उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता हैं उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणोंका कथन करना अद्भुत आह्लादकारी होता है ॥८०-८२॥ जिनका बलपूर्ण लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहलेसे सुन रखा था उन प्राणि हितकारी धैर्यशाली आपको मैं स्वयं नेत्रोंसे देख रहा हूँ ॥८३॥ हे राजन् ! आप सम्पूर्ण सौन्दर्यसे युक्त हैं,

१. स्वस्थ म. । २. मुकुटमुखारण म. । ३. -मिवौजसः म. । ४. सुगन्ध्य म. । ५. ववासन्तो म. ख., क. । ६. कीर्तिराम ख. ।

धनुर्लम्बोदये^१ लब्धः सहस्रामररक्षिते । सीतास्वयंवरैऽस्माभिः श्रुतस्तव पराक्रमः ॥८४॥
 पिता दशरथो यस्य यस्य भामण्डलः सुहृत् । आता यस्य च सौमित्रिः स त्वं राम जगत्पतिः ॥८५॥
 अहो शक्तिरहोरूपमेष नारायणः स्वयम् । समुद्रावर्तचापेशो यस्याज्ञाकरणे रतः ॥८६॥
 अहो धैर्यमहो त्यागो यत्पितुः पालयन् वचः । महाप्रतिभयाकारं प्रविष्टो दण्डकं वनम् ॥८७॥
 एतन्न कुरुते वन्धुस्तुष्टश्च त्रिदशाधिपः । अहो त्वया नाथ कृतं यदस्माकमतिप्रियम् ॥८८॥
 सुग्रीवरूपसंपन्नं हत्वा संयति साहसम् । यत्कपिध्वजवंशस्य कलङ्को दूरमुज्जितः ॥८९॥
 विद्याबलविधिज्ञैर्यस्य मायामयं वपुः । अस्माभिरपि नो सद्यं दुर्जयं च विशेषतः ॥९०॥
 तेन सुग्रीवरूपेण ग्रहीतुं प्लावगं बलम् । दर्शनादेव युष्माकं तद्रूपं तस्य निःसृतम् ॥९१॥
 कर्तुं प्रत्युपकारं यो न शक्तोऽप्युपकारिणः । सुलभां भावशुद्धिं स तस्मै न कुरुते कुतः ॥९२॥
 का तस्य बुद्धिर्न्यायेषु भवेदेकमपि क्षणम् । यः कृतस्योपकारस्य विशेषं नावबुध्यते ॥९३॥
 श्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्धृणः । असंभाष्यः सतां नित्यं योऽकृतज्ञो नराधमः ॥९४॥
 स्वशरीरमपि त्यक्त्वा सत्यं वयमनन्यगाः । सर्वे समुद्यताः कर्तुमुपकारं तव प्रभो ॥९५॥
 गत्वा प्रबोधयिष्यामि त्रिकूटाधिपतिं शुभम् । तव पत्नीं महाबाहो त्वरावानानयाम्यहम् ॥९६॥
 सीताया वदनाम्भोजं प्रसन्नेन्दुमिवोदितम् । संदेहेन विनिर्मुक्तं शीघ्रं पश्यसि राघव ॥९७॥

तथा गुणरूपी रत्नोंकी आकर अर्थात् खान अथवा समुद्र हैं । आपके शुक्ल यशसे यह संसार अलंकृत हो रहा है ॥८३॥ हे नाथ ! वज्रावर्त धनुषकी प्राप्तिसे जिसका अभ्युदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीताके स्वयंवरमें आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥८४॥ दशरथ जिनका पिता है, भामण्डल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगत्के स्वामी राजा राम हैं ॥८५॥ अहो ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो ! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुषका स्वामी नारायण स्वयं ही जिनकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर है ॥८६॥ अहो ! आपका धैर्य आश्चर्यकारी है, अहो ! आपका त्याग अद्भुत है जो पिताके वचनका पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दण्डक वनमें प्रविष्ट हुए हैं ॥८७॥ हे नाथ ! आपने हम लोगोंका जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न सन्तुष्ट हुआ इन्द्र ही ॥८८॥ आपने सुग्रीवका रूप धारण करनेवाले साहसगतिको युद्धमें मारकर वानरवंशका कलंक दूर किया है ॥८९॥ विद्याबलकी विधिके जाननेवाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीरको सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगोंके लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगतिने वानर वंशी सेनाको प्राप्त करनेके लिए कितना प्रयत्न किया परन्तु आपके दर्शनमात्रसे उसका वह रूप निकल गया ॥९०-९१॥ जो अत्यन्त उपकारी मनुष्यका प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं है वह उसके विषयमें भावशुद्धि क्यों नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जबकि यह भावशुद्धि बिलकुल ही सुलभ है ॥९२॥ जो मनुष्य, किये हुए उपकार की विशेषताको नहीं जानता है उसकी एक अज्ञके लिए भी न्यायमें बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥९३॥ जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ है वह चाण्डालसे भी अधिक पापी है, शिकारीसे भी अधिक निर्दय है और सत्पुरुषोंसे निरन्तर वार्तालाप करनेके लिए भी योग्य नहीं है ॥९४॥ हे प्रभो ! हम सब किसी अन्य की शरणमें न जाकर आपकी ही शरणमें आये हैं और मचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करनेके लिए उद्यत हैं ॥९५॥ हे महाबाहो ! मैं जाकर रावणको समझाऊँगा । वह बुद्धिमान् है अतः अवश्य समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नीको वापस ले आता हूँ ॥९६॥ हे राघव ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम उदित हुए

१. धनुर्लम्बाद्वये लब्धे म. ।

मन्त्री जाम्बूनदोऽवोचत्ततो वाक्यं परं हितम् । वत्स वत्स मरुपुत्र त्वमेकोऽस्माकमाश्रयः ॥९८॥
 अप्रमत्तेन गन्तव्यं लङ्कां रावणपालिताम् । न विरोधः क्वचित् कार्यः कदाचित् केनचित्सह ॥९९॥
 एवमस्त्विति संभाष्य तं संप्रस्थितमुद्यतम् । विलोक्य परमां प्रीतिं पद्मनाभः समागमत् ॥१००॥
 पुनः पुनः समाहूय मारुतिं^१ चारुलक्षणम् । सर्वादरं जगादेदं स्फीता^२ राजीवलोचनः ॥१०१॥
 मद्राक्यादुच्यतां सीता स्वद्वियोगात् स राघवः । अधुना विन्दते साध्वि य मनोनिर्वृतिं क्वचित् ॥१०२॥
 अत्यन्तं तदहं मन्ये हतं पौरुषमात्मनः । प्रतिरोधं प्रपञ्चासि वर्तमानेऽपि यन्मयि ॥१०३॥
 वेद्यि निर्मलशीलाख्या यथा त्वं मदनुव्रता । जीवितं^३ वान्छसि त्यक्तुं मद्द्वियोगेन दुःखिता ॥१०४॥
 अलं तथापि सद्गुणैः दुःसमाधानमृत्युना । धार्यन्तां मैथिलिं^४ प्राणा न जीवं त्यक्तुमर्हसि ॥१०५॥
 दुर्लभः संगमो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु । ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदोद्गतः ॥१०६॥
 दुर्लभादप्यलं तस्मान्मरणं सुसमाहितम् । तस्मिन्नसति जन्मेदं तुषनिःसारमीक्षितम् ॥१०७॥
 इदं च प्रत्ययोत्पादि प्रियायै मम जीवतः । सततं संस्तुतं देवमङ्गलीयकमुत्तमम् ॥१०८॥
 वायुपुत्र द्रुतं गत्वा सीतायास्तं महाप्रभम् । भमापि प्रत्यक्षकरं चूडामणिमिहानय ॥१०९॥
 यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा रत्नवानरमौलिभृत् । कृताञ्जलिपुरो नत्वा सौमित्रि च समौञ्जलिः ॥११०॥
 बहिर्विनिर्ययौ हृष्टः पूर्यमाणो विभूतिभिः । क्षीभयन् तेजसा सर्वं सुग्रीवभवनाजिरम् ॥१११॥

चन्द्रमाके समान निर्मल सीताका मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥९७॥

तदनन्तर सुग्रीवके मन्त्री जाम्बूनदने परम हितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमान् ! हम लोगोंका आधार एक तू ही है ॥९८॥ अतः तुझे सावधान होकर रावणके द्वारा पालित लंका जाना चाहिए और कहीं कभी किसीके साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥९९॥ 'एवमस्तु'—'ऐसा ही हो' यह कहकर उदार हनुमान् लंकाकी ओर प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परम प्रीतिकी प्राप्त हुए ॥१००॥ विदलित कमललोचन रामने सुन्दर लक्षणोंके धारक हनुमान्को बार-बार बुलाकर बड़े आदरके साथ यह कहा कि तुम मेरी ओरसे सीतासे कहना कि हे साध्वि ! इस समय राम तुम्हारे वियोगसे किसी भी वस्तुमें मानसिक शान्तिकी प्राप्त नहीं हो रहे हैं—उनका मन किसी भी पदार्थमें नहीं लगता है ॥१०१-१०२॥ मेरे रहते हुए जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध—रुकावटकी प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुषका अत्यधिक घात समझता हूँ ॥१०३॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रतसे सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करती हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे वियोगसे दुःखी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुखि ! तो भी खोटे परिणामोंसे मरना व्यर्थ है । हे मैथिलि ! प्राण धारण करो । जीवनका त्याग करना उचित नहीं है ॥१०४-१०५॥ सर्व वस्तुओंका पुनः उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहन्त भगवान्के मुखारविन्दसे प्रकट हुआ धर्म है ॥१०६॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि-मरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि मरणके बिना यह जीवन तुषके समान साररहित देखा गया है ॥१०७॥ और प्रियाके लिए मेरे जीवित रहनेका प्रत्यय—विश्वास उत्पन्न हो जाये इसलिए यह सदाकी परिचित उत्तम अँगूठी उसे दे देना ॥१०८॥ तथा हे पवनपुत्र ! तुम शीघ्र ही जाकर मुझे विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीताका महाकान्तिमान् चूडामणि यहाँ ले आना ॥१०९॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर रत्नमय वानरसे चिह्नित मुकुटकी धारण करनेवाला हनुमान् राम तथा लक्ष्मणको हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निकल आया । उस समय वह अत्यन्त हर्षित था, विभूतियोंसे युक्त था और अपने तेजसे सुग्रीवके भवन सम्बन्धी समस्त आंगनको

१. चारुतामरसेक्षणम् ज. । २. कमलनेत्रः । स्फीत्या राजीवलोचनः म. । ३. जीवितुं म. । ४. मैथिली म. ।

५. कृताञ्जलिः म. ।

संदिदेश च सुग्रीवं यावदागमनं मम । स्थातव्यं तावदत्रैव प्रमादपरिवर्जितैः ॥११२॥
विमानं चारुशिखरमारूढो मारुतिस्ततः । विभाति मस्तके मेरोश्चैत्यालय इवोज्ज्वलः ॥११३॥
प्रययौ परया युत्वा सितच्छत्रोपशोभितः । विलसद्दंसेसंकाशैश्चामरैरुपजीवितः ॥११४॥
वायुसावैसमैरश्वैर्जङ्घमाद्रिसमैर्गजैः । सैन्यैस्त्रिदशसंकाशैर्जगाम परितो वृतः ॥११५॥
एवं युक्तो महाभूत्या रामादिभिर्दक्षितः । समाक्रम्य रवेर्भागमयासीत्सुनिरन्तरम् ॥११६॥

उपजातिवृत्तम्

पूर्णं जगत्तिष्ठति जन्तुवर्गैर्नानाविधैरुत्तमभोगयुक्तैः ।
कश्चित्तु तेषां परमार्थकृत्ये निशुज्यते यत्परमं यशस्तत् ॥११७॥
कृतं परेणाप्युपकारयोगं स्मरन्ति नित्यं कृतिभो मनुष्याः ।
तेषां न तुल्यो भुवने शशाङ्को न वा कुबेरो न रविर्न शक्रः ॥११८॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमत्प्रस्थानं नाम एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व ॥४९॥



क्षोभयुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ उसने सुग्रीवसे कहा कि जबतक मैं न आ जाऊँ तबतक आपको यहीं सावधान होकर ठहरना चाहिए ॥११२॥

तदनन्तर हनुमान् सुन्दर शिखरसे युक्त विमानपर आरूढ़ हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरुके शिखरपर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥११३॥ तत्पश्चात् उसने परम कान्तिसे युक्त हो प्रयाण किया । उस समय वह सफेद छत्रसे सुशोभित था और उड़ते हुए हंसोंकी समानता करनेवाले चमर उसपर ढोरे जा रहे थे ॥११४॥ वह वायुके समान वेगशाली घोड़ों, चलते-फिरते पर्वतोंके समान हाथियों और देवोंके समान सैनिकोंसे घिरा हुआ जा रहा था ॥११५॥ इस प्रकार जो महाविभूतिसे युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपरकी दृष्टि कर देख रहे थे, ऐसा वह हनुमान् सूर्यके मार्गका उल्लंघन कर निरन्तर आगे बढ़ा जाता था ॥११६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त संसार नाना प्रकारके उत्तम भोगोंसे युक्त जन्तुओंसे भरा हुआ है । उनमेंसे कोई विरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्यमें लगता है तथा परम यशको प्राप्त होता है ॥११७॥ जो उत्तम मनुष्य दूसरेके द्वारा किये हुए उपकारका निरन्तर स्मरण रखते हैं इस संसारमें उनके समान न चन्द्रमा है, न कुबेर है, न सूर्य है और न इन्द्र ही है ॥११८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें हनुमान्के प्रस्थानका वर्णन करनेवाला उनचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४९॥



पञ्चाशत्तमं पर्व

अथासावाञ्जनो गच्छन्नम्बरे परमोदयः । स्वसारमिव वैदेहीमानिनीषुरराजत् ॥१॥
 सुहृदाज्ञाप्रवृत्तस्य विनीतस्य महात्मनः । शुद्धभावस्य तस्यासीदुत्सवः कोऽपि चेतसः ॥२॥
 पश्यतः प्रौढया दृष्ट्या स्थितस्य रत्रिगोचरे । दिशां मण्डलमस्यासीच्छरीरावयवोपमम् ॥३॥
 लङ्कां जिगमिषोरस्य महेन्द्रनगरोपमम् । महेन्द्रनगरं दृष्टेराभिमुख्यमुपागतम् ॥४॥
 वेदिकापुण्डरीकाभैः प्रासादैः शशिपाण्डुरैः । पर्वतस्य स्थितं मूर्ध्नि तद्विदूरे प्रकाशते ॥५॥
 वज्रपाणेखिवामुख्य^१ तस्मिन् वालिपुरोपमे । न बभूवतरां प्रीतिः तस्मादेवमचिन्तयत् ॥६॥
 हृदं शिखरिणो मूर्ध्नि तन्महेन्द्रपुरं स्थितम् । महेन्द्रको नृपो यत्र दुर्मतिः सोऽवतिष्ठते ॥७॥
 दुःखतापितसर्वाङ्गा माता येनागता मम । निर्वासिता मयि प्राप्ते कुक्षिवासं दुरात्मना ॥८॥
 एषाऽसौ विजनेऽरण्ये गुहा यत्र स सन्मुनिः । पथंक्लृथोगयुक्तात्मा नाम्नामितगतिः स्थितः ॥९॥
 अस्यां भगवता तेन साधुवाक्यैः कृपा कृता । माता मां जनिताश्वासा प्रसूता बन्धुवर्जिता ॥१०॥
 श्रुतं केसरिजं कृच्छ्रं श्रुत्वा^२ मातुरुपप्लवम् । साधोश्च संगमं सैषा रम्या रम्या च मे गुहा ॥११॥
 मातरं शरणं प्राप्तो मम निर्वास्य यः कृती । व्यसनप्रतिदानेन महेन्द्रं किमु^३ तं भजेत् ॥१२॥
 अहंयुरयमत्यन्तं मां किल द्वेष्टि संततम् । महेन्द्र (महेन्द्रो) गर्वमेतस्य तस्मादपनयाम्यहम् ॥१३॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हनुमान् आकाशमें जाता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बह्म सीताको लेनेके लिए भामण्डल ही जा रहा हो ॥१॥ मित्र— श्रीरामकी आज्ञामें प्रवृत्त, विनयवान्, उदाराशय एवं शुद्धभावके धारक हनुमान्के हृदयमें उस समय कोई अद्भुत आनन्द छाया हुआ था ॥२॥ सूर्यके मार्गमें स्थित हनुमान् जब प्रौढ़ दृष्टिसे दिङ्मण्डलकी ओर देखता था तब उसे दिङ्मण्डल शरीरके अवयवोंके समान जान पड़ता था ॥३॥ लंकाकी ओर जानेके लिए इच्छुक हनुमान्की दृष्टिके सामने राजा महेन्द्रका नगर आया जो इन्द्रके नगरके समान जान पड़ता था ॥४॥ वह नगर पर्वतके शिखरपर स्थित था तथा वेदिका-पर स्थित सफेद कमलोंके समान आभाकी धारण करनेवाले चन्द्रतुल्य धवल भवनोंके द्वारा दूरसे ही प्रकाशित हो रहा था ॥५॥ जिस प्रकार बालिके नगरमें इन्द्रको प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेन्द्रके उस नगरमें हनुमान्को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥६॥ कि यह पर्वतके शिखरपर राजा महेन्द्रका नगर स्थित है जिसमें कि वह दुर्बुद्धि राजा महेन्द्र निवास करता है ॥७॥ मेरे गर्भवासके समय दुःखसे भरी मेरी माता इसके नगर आयी पर इस दृष्टने उसे निकाल दिया ॥८॥ तब मेरी माता निर्जन वनकी उस गुफामें-जिनमें कि पर्यंक योगसे अमितगति नामा मुनि विराजमान थे-रहीं ! इसी गुफामें उन दयालु मुनिराजने उत्तम वचनों-के द्वारा उसे सान्त्वना दी और बन्धुजनोंसे रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥९-१०॥ इसी गुफामें माताको सिंहसे उत्पन्न कष्ट प्राप्त हुआ था और इसी गुफामें उसे मुनिराजका सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ जो मेरी शरणागत माताको निकाल-कर कृतकृत्य हुआ था उस महेन्द्रको अब मैं कष्टका बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥१२॥ यह महेन्द्र बड़ा अहंकारी है तथा मुझसे निरन्तर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर

१. -नभीषुः रराज सः म., ब. । २. लङ्का म. । ३. मुख्यस् म. । ४. स्थिताः म. । ५. तुरुपप्लव म. । ६. किंतु न भजेत् म., क. ।

प्रलम्बाङ्गुदवृन्दोरुनादा दुन्दुमयस्ततः । महाकम्पाकभेर्यश्च पटहाश्च समाहताः ॥१४॥
 ध्माताः शङ्खा जगत्कम्पा भटैरुत्कटचेष्टितैः । युद्धशौण्डैः समुत्कृष्टं समुल्लासितहेतिभिः ॥१५॥
 श्रुत्वा परबलं प्राप्तं महेन्द्रः सर्वसेनया । प्रत्यैक्षत विनिःक्रम्य मेघवृन्दमिवाचलः ॥१६॥
 संप्रहारैस्ततो लग्नैर्दृष्ट्वासीदग्निजं बलम् । चापमुद्यम्य माहेन्द्रिः प्राप्तश्छत्री रथस्थितः ॥१७॥
 हनुमानिषुभिस्तस्य धनुस्तिसृभिरायतम् । चिच्छेद गुप्तिभिर्योगी यथामानं समुत्थितम् ॥१८॥
 चार्प यावद्वितीयं स गृह्णात्याकुलमानसः । शरैस्तावद्रथान्मुक्ताः प्रचण्डास्तस्य वाजिनः ॥१९॥
 रथात्ते विगताः शीघ्राश्चपला बभ्रमुर्भृशम् । हृषीकाणीव मनसो^३ मुक्तानि विषयैषिणः ॥२०॥
 माहेन्द्रिरथ संभ्रान्तो विमानं वरमाश्रितः । तदप्यस्य शरैर्लुप्तं मतं दृष्टमतेरिव ॥२१॥
 माहेन्द्रिर्मुदितो भूयो विद्याबलविकारगः । पतत्रिचक्रकनकैर्युग्धेऽलातमासुरैः ॥२२॥
 विषयाऽनिलपुत्रोऽपि तं शस्त्रौघमवारयत् । यथात्मचिन्तया योगी परीषहकदम्बकम् ॥२३॥
 निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽसावास्तृणानो महाग्निवत् । गृहीतो वायुपुत्रेण गरुडेनैव पन्नगः ॥२४॥
 प्रांसरोधं सुतं दृष्ट्वा महेन्द्रः क्रोधलोहितः । रथी मारुतिमभ्यार रामं सुग्रीवरूपवत् ॥२५॥
 अर्काभस्यन्दनः सोऽपि हारिहरो धनुर्धरः । शूराणामग्रणी दीप्तो मातुः पितरमभ्यगात् ॥२६॥

करता हूँ ॥१३॥ तदनन्तर ऐसा विचार कर उसने घूमते हुए मेघसमूहके समान उच्च शब्द करने-
 वाली दुन्दुभियाँ, महाविकट शब्द करनेवाली भेरियाँ और नगाड़े बजवाये ॥१४॥ उत्कृष्ट चेष्टाओंको
 धारण करनेवाले योद्धाओंने जगत्को कँपा देनेवाले शंख फूँके तथा शस्त्रोंको चमकानेवाले रणवीर
 योद्धाओंने जोरसे गर्जना की ॥१५॥ परबलको आया सुन, राजा महेन्द्र सर्व सेनाके साथ बाहर
 निकला और जिस प्रकार पर्वत, मेघसमूहको रोकता है उसी प्रकार उसने हनुमान्के दलको
 रोका ॥१६॥ तदनन्तर लगी हुई चोटोंसे अपनी सेनाको नष्ट होती देख, छत्रधारी, तथा रथपर
 बैठा हुआ राजा महेन्द्रका पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥१७॥ सो हनुमान्ने तीन बाण छोड़कर
 उसके लम्बे धनुषको उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तियोंके द्वारा उठते हुए
 मानको छेद डालते हैं ॥१८॥ वह व्याकुल चित्त होकर जबतक दूसरा धनुष लेता है तबतक
 हनुमान्ने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसके चंचल घोड़े रथसे छुड़ा दिये ॥१९॥ सो रथसे छूटे हुए वे
 चंचल घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर इस प्रकार घूमने लगे जिस प्रकार कि विषयाभिलाषी मनुष्यको
 मनसे छूटी हुई इन्द्रियाँ इधर-उधर घूमने लगती हैं ॥२०॥ अथानन्तर महेन्द्रका पुत्र घबड़ाकर
 उत्तम विमानपर आरुढ़ हुआ सो हनुमान्के वाणोंसे वह विमान भी उस तरह खण्डित हो गया
 जिस तरह कि किसी दुर्बुद्धिका मत खण्डित हो जाता है ॥२१॥ तदनन्तर विद्याके बलसे विकारको
 प्राप्त हुआ महेन्द्रपुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्रके समान देदीप्यमान बाण, चक्र तथा कनक नामक
 शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ तब हनुमान्ने भी विद्याके द्वारा उस शस्त्रसमूहको उस तरह
 रोका जिस तरह कि योगी आत्मध्यानके द्वारा परीषहोंके समूहको रोकता है ॥२३॥ तदनन्तर जो
 निर्दयताके साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचण्ड अग्निके समान सब ओरसे आच्छादित कर रहा
 था ऐसे महेन्द्रपुत्रको हनुमान्ने उस तरह पकड़ लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्पको पकड़ लेता
 है ॥२४॥ पुत्रको पकड़ा देख क्रोधसे लाल होता हुआ महेन्द्र रथपर सवार हो हनुमान्के सम्मुख
 उस तरह आया जिस तरह कि सुग्रीवका रूप धारण करनेवाला कृत्रिम सुग्रीव रामके सम्मुख
 आया था ॥२५॥

तदनन्तर जिसका रथ सूर्यके समान देदीप्यमान था, जो सुन्दर हारका धारक था, धनुर्धारी

१. जगत्पंका म. । २. संप्रहारे ततो लग्ने ज. । ३. मुक्ता निर्विषयैषिणः म. । ४. अर्काभः स्पन्दनः म. ।

तयोरभूमहसंख्यं क्रकचासिशिलीमुखैः । परस्परकृताघातं वायुवश्याब्दयोरिव ॥२७॥
 सिंहाविव महारोषौ तातुद्धतबलान्वितौ । उवलत्स्फुलिङ्गरक्ताक्षौ इवसन्तौ भुजगाविव ॥२८॥
 परस्परकृताक्षेपौ गर्वाहासस्फुटस्वनौ । भिक् ते शौर्यमहो युद्धमित्यादिवचनोद्यतौ ॥२९॥
 चक्रतुः परमं युद्धं मायाबलसमन्वितौ । हाकारजयकारादि कारयन्तौ मुहुर्निजैः ॥३०॥
 महेन्द्रोऽथ महावीर्यो विक्रियाशक्तिसंगतः । क्रोधस्फुरितदेहश्रीमुंमोचायुधसंहतिम् ॥३१॥
 भुषुण्डीः परशून् बाणान् शतघ्नीमुद्गरान् गदाः । शिखराणि च शैलानां शालन्यग्रोधपादान् ॥३२॥
 एतैरन्यैश्च विविधैरायुधैर्धर्मैरुत्तुतः । न विव्यथे यथा शैलो महामेघकदम्बकैः ॥३३॥
 तद्विव्यमायया सृष्टं शस्त्रवर्षं महेन्द्रजम् । उत्काविद्याप्रभावेण वायुसूनुश्चूर्णयत् ॥३४॥
 उत्पत्य च रथे तस्य निपत्य सुमहाजवः । ककुप्करिकराकारकराभ्यां कृतरोधनम् ॥३५॥
 मातामहं समादाय बलं बिभ्रदनुत्तमम् । दत्तसाधुं स्वनः शूरैः समारोहजिज्ञं रथम् ॥३६॥
 उत्कालाङ्गूलपाणिं ते दौहित्रं परमोदयम् । प्रशंसितुं समारब्धो महेन्द्रः सौम्यया गिरा ॥३७॥
 अहो ते वत्स माहात्म्यं परमेतन्मया श्रुतम् । पूर्वमासीदिदानीं तु नियतं प्रत्यक्षगोचरम् ॥३८॥
 आसीदेवेन्द्रयुद्धेऽपि निर्जितो यो न केनचित् । विजयार्धनगस्योर्ध्वमहाविद्यायुष्माकुले ॥३९॥

था, शूरोमें श्रेष्ठ था तथा अतिशय देदीप्यमान था ऐसा हनुमान् भी माताके पिता राजा महेन्द्रके सम्मुख गया ॥२६॥ तदनन्तर वायुके वशीभूत दो मेघोंमें जिस प्रकार परस्पर टक्कर होती है उसी प्रकार उन दोनोंमें करोत, खड्ग तथा बाणोंके द्वारा परस्पर एक दूसरेका घात करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥२७॥ जो सिंहोंके समान महाक्रोधी तथा उत्कट बलसे सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगोंके समान लाल थे, जो सर्पोंके समान साँसें भर रहे थे—फुंकार रहे थे, जो एक दूसरेपर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहंकारपूर्ण हास्यका स्फुट शब्द हो रहा था, 'तेरी शूर-वीरताको धिक्कार है, अहो ! युद्ध करने चला है' जो इस प्रकारके शब्द कह रहे थे, जो मायाबलसे सहित थे और जो अपने पक्षके लोगोंसे कभी हाहाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनुमान् तथा राजा महेन्द्र दोनों ही चिरकाल तक परमयुद्ध करते रहे ॥३८-३०॥ तदनन्तर जो महाबलवान् था, विक्रिया शक्तिसे संगत था और क्रोधसे जिसके शरीरकी शोभा देदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेन्द्र हनुमान्के ऊपर शस्त्रोंका समूह छोड़ने लगा ॥३१॥ भुषुण्डी, परशु, बाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ोंके शिखर और सागौन तथा वटके वृक्ष उसने हनुमान्पर छोड़े ॥३२॥ सो इनसे तथा नाना प्रकारके अन्य शस्त्रोंके समूहसे हनुमान् उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघोंके समूहसे पर्वत विचलित नहीं होता है ॥३३॥ राजा महेन्द्रकी दिव्यमायासे उत्पन्न शस्त्रोंकी उस वर्षाकी पवन-पुत्र हनुमान्ने अपनी उत्का-विद्याके प्रभावसे चूर-चूर कर डाला ॥३४॥ और उसी समय वेगसे भरे, दिग्गजोंके शृण्डादण्डके समान विशाल हाथोंसे युक्त तथा उत्तम बलकी धारण करनेवाले हनुमान्ने मातामह महेन्द्रके रथपर उछलकर उसे रोकनेपर भी पकड़ लिया । शूरवीरोने उसे साधुवाद दिया और वह पकड़े हुआ मातामहको लेकर अपने रथपर आरूढ़ हो गया ॥३५-३६॥ वहाँ जिसकी विक्रियाकृत लागल और हाथोंसे उत्काएँ निकल रही थीं तथा जो परम अभ्युदयकी धारण करनेवाला था ऐसे दौहित्र-हनुमान्की वह महेन्द्र सौम्य वाणी द्वारा स्तुति करने लगा ॥३७॥ कि अहो वत्स ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहलेसे सुन रखा था पर आज प्रत्यक्ष ही देख लिया ॥३८॥ विजयार्ध पर्वतके ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रोंसे आकुल इन्द्र विद्याधरके युद्धमें भी जो किसीके द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो

असौ प्रसन्नकीर्तिर्मे पुत्रो माहात्म्यसंगतः । स्वया पराजितः प्राप्तो रोद्धुं चित्रमिदं परम् ॥४०॥
 अहो पराक्रमो भद्र तव धैर्यमहो परम् । अहो रूपमनौपम्यमहो संग्रामशौण्डता ॥४१॥
 प्रजातेन स्वया वरस महानिश्चययोगिता । कुलमुद्योतितं सर्वमस्मदीयं सुकर्मणा ॥४२॥
 विनयाद्यैर्गुणैर्युक्तो राशिः परमतेजसः । कल्याणमूर्तिरस्यैव कल्पवृक्षस्त्वमुद्गतः ॥४३॥
 जगतो गुरुभूतस्त्वं बान्धवानां समाश्रयः । दुःखादित्यप्रतप्तानां समस्तानां घनाघनः ॥४४॥
 इति प्रशस्य तं स्नेहादुदन्नाक्षश्चलत्करः । अजिघ्रन्मस्तके नम्रं पुलकी परिष्वजे ॥४५॥
 प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि तमार्यं विहिताब्जलिः । अतितिक्षद्विनीतात्मा क्षणाघातोऽन्यतामिव ॥४६॥
 मया शिशुतया किञ्चिदायं यत्ते विचेष्टितम् । दोषमेवं समस्तं मे प्रतीक्ष्य अन्तुमर्हसि ॥४७॥
 समस्तं च समाख्यातं तेनागमनकारणम् । पद्मागमादिकं यावदात्मागमनमादृतम् ॥४८॥
 अहमार्यं गमिष्यामि त्रिकूटमतिकारणम् । त्वं किष्किन्धपुरं गच्छ कार्यं दाशरथेः कुरु ॥४९॥
 इत्युक्त्वा वायुसंभूतः खमुत्पत्य ययौ सुखम् । त्रिकूटमिमुखः क्षिप्रं सुरलोकमिवामरः ॥५०॥
 गत्वा महेन्द्रकेतुश्च तनयां नयकोविदः । प्रसन्नकीर्तिना सार्द्धं वत्सलः समपूजयत् ॥५१॥
 मातापितृसमायोगं सोदरस्य च दर्शनम् । अञ्जनासुन्दरी प्राप्य जगाम परमां धृतिम् ॥५२॥
 महेन्द्रं निभृतं श्रुत्वा किष्किन्धामिमुखोऽगमन् । विराधितप्रभृतयस्तोषमाययुरुत्तमम् ॥५३॥

माहात्म्यसे युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो बन्धनको प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है ॥३९-४०॥ अहो भद्र ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्धकी सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥४१॥ हे वत्स ! निश्चयको धारण करनेवाले तुमने हमारे पुण्योदयसे जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है ॥४२॥ तू विनयादि गुणोंसे युक्त है, परम तेजकी राशि है, कल्याणकी मूर्ति है तथा कल्पवृक्षके समान उदयको प्राप्त हुआ है ॥४३॥ तू जगत्का गुरु है, बान्धवजनोंका आधार है और दुःखरूपी सूर्यसे सन्तप्त समस्त मनुष्योंके लिए मेघस्वरूप है ॥४४॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेहके कारण जिसके नेत्रोंसे अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेन्द्रने उसका मस्तक सूँघा और रोमांचित हो उसका आलिंगन किया ॥४५॥ वायुपुत्र—हनुमान्ने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामहको प्रणाम किया तथा क्षमाके प्रभावसे विनीतात्मा होकर वह क्षणभरमें ऐसा हो गया मानो अन्यरूपताको ही प्राप्त हुआ हो ॥४६॥ उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लड़कपन-के कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराधको आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥४७॥

उसने रामचन्द्रके आगमनको आदि लेकर अपने आगमन तकका समस्त वृत्तान्त बड़े आदरके साथ प्रकट किया ॥४८॥ उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मैं अत्यावश्यक कारणसे त्रिकूटाचलको जाता हूँ तब तक तुम किष्किन्धपुर जाओ और श्रीरामका काम करो ॥४९॥ इतना कह हनुमान् आकाशमें उड़कर शीघ्र त्रिकूटाचलकी ओर सुखपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्गकी ओर जाता है ॥५०॥ नीतिनिपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेन्द्रकेतुने अपने प्रियपुत्र प्रसन्नकीर्तिके साथ जाकर पुत्री—अञ्जनाका सम्मान किया ॥५१॥ अञ्जना सुन्दरी, माता-पिताके साथ समागम तथा भाईका दर्शन प्राप्त कर परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५२॥ राजा महेन्द्रको आया सुनकर किष्किन्धाका पति सुग्रीव उसे लेनेके लिए सम्मुख गया तथा विराधित आदि उत्तम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥५३॥

१. क्षणाघातोऽन्यतामिव म. । २. दत्ते म. । ३. हे पूज्य ।

वंशस्थवृत्तम्

पुरा विशिष्टं चरितं कृतात्मनां सुचेतसामुत्तमचारतेजसाम् ।
 महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५४॥
 ततः समन्तादनुपाल्य मानसं जना यतध्वं सततं सुकर्मणि ।
 फलं यदीयं समवाप्य पुष्कलं रवेः समानामुपयाध दीप्ताम् ॥५५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे महेन्द्रदुहितासमागमाभिधानं नाम पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५०॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा जीवोंका पूर्वचरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशीभित्त बलशाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५४॥ इसलिए हे भव्यजनों ! सब ओरसे मनकी रक्षा कर सदा उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्ताको प्राप्त होओ ॥५५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें महेन्द्रका पुत्रोंके साथ समागमका वर्णन करनेवाला पचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५०॥



एकपञ्चाशत्तमं पर्व

श्रीशैलस्य विद्यत्युच्चैर्विमानस्थस्य गच्छतः । बभूव सुगुणैर्युक्तो द्वीपो दधिमुखोऽन्तरे ॥१॥
यस्मिन् दधिमुखं नामा प्रासादैर्दधिपाण्डुरैः । पुरं परममायामि^१ चारुकाञ्चनतोरणम् ॥२॥
नन्दमेघप्रतीकाशैरुद्यानैः कुसुमोज्ज्वलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनक्षत्रास्वरोपमाः ॥३॥
स्फटिकस्वच्छकलिला चाप्यः सोपानशोभिताः । पञ्चोत्पलादिभिश्चला यत्र भान्ति कचित् कचित् ॥४॥
तस्मिन् विप्रकृष्टे^२ तु देशे नगरगोचरात् । बृहतृणलतावल्लीद्रुमकण्टकसंकटे ॥५॥
शुष्कागकनसंरोधे रौद्रश्चापदनादिते । घोरैः^३ पतिरूपाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥
पतितोदारवृक्षौ^४ महाभयसमावहे । विशुद्धक्षारसरसि कङ्कगृद्धादिसेविते ॥७॥
^५ दुर्जने विजने राजन्^५ साधुयुग्मं नभश्चरम् । अष्टाहं लम्बितभुजं योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥
तस्य क्रोशचतुर्भागाभात्रदेशे व्यवस्थिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितवस्त्रा जटाधराः ॥९॥
तप्यन्ते विधिवद्घोरं तपस्तिष्ठः सुचेतसः । शोभालोकत्रयस्येव नवभूषणतां गताः^६ ॥१०॥
अथासौ साधुयुगलं ग्रस्यमानं महाम्बिनम् । अञ्जनतनयोऽपश्यत् पादपद्मयनिश्चलम् ॥११॥
असमाप्तव्रताः ताश्च कन्याः लावण्यपूरिताः । उद्गमद्भूमजालेन स्पृष्टा बहलवर्दिना ॥१२॥
अथातस्थौ सनिग्रन्थौ युक्तयोगौ शिवस्पृहौ । त्यक्तारागादिसंगेच्छौ निरस्तांशुकभूषणौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनुमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणोंसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो दहीके समान सफेद महलोंसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोंसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पोंसे उज्ज्वल उद्यानोंसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयंकर वन मिला जो बड़े-बड़े तृणों, लताओं, वेलों, वृक्षों और काँटोंसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूखे वृक्षोंसे घिरा था, भयंकर जंगली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयंकर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चंचल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षोंके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त खारे जलके सरोवरोंसे सहित था, कंक, गृद्ध आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वनमें दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे । उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं ॥६-८॥ उन मुनियोंसे पावकोश दूरी-पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रही थीं, मुद्ग हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानो शोभा थीं । और नूतन आभूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाअग्निसे ग्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल खड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनों कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पृष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

१. -मायाति म. । २. विप्रकृष्टेन म. । ३. घोरै पतिरूपाकारे म. । ४. दुर्जने म. । ५. राजत् म. । ६. गतः म. । ७. उद्गमद्भूम- म. ।

प्रलम्बितमहाबाहु प्रशान्तवदनाकृती । युगान्तापितसद्गुह्ये प्रतिमास्थानमाश्रितौ ॥१४॥
 मृत्युजीवननिःकाङ्क्षावनघौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासंगौ समपाषाणकाञ्चनौ ॥१५॥
 दावेन^१ महता राजन् तेनात्यासन्नवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्यं कर्तुमुद्यतः ॥१६॥
 आकृष्य सागरजलं मेघहस्तः ससंभ्रमः । अवर्षदुन्नतो व्योम्नि परमं भक्तिसंगतः ॥१७॥
 सुभृशं तेन वह्निः स वारिपूरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्भूतः शान्तिभावेन साधुना ॥१८॥
 यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्भेदन्तयोर्नापुष्पादिद्रव्यसंपदा ॥१९॥
 तावत्ताः सिद्धसंसाध्या मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्सकाशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुभनोहराः ॥२०॥
 प्रणेमुश्च समं तेन साधू^२ ध्यानपरायणौ । विनयान्वितया बुद्ध्या प्रशशंसुश्च मारुतिम् ॥२१॥
 अहो जिनेश्वरे भक्तिर्जगता कापि यद्भुतम् । स्वया तात परिश्रिता वयं साधुसमाश्रयात् ॥२२॥
 अस्मद्द्वारासमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोकेनाप्तो न योगिभ्यामहो नो भवितव्यता ॥२३॥
 अथाज्जनात्मजोऽपृच्छदेवं संशुद्धमानसः । भवन्त्य इह निःशून्ये^३ का वनेऽत्यन्तभीषणे ॥२४॥
 अबोचज्ज्यायसी तासां पुरे दधिमुखाह्वये । अत्र गन्धर्वराजस्य वयं तिष्ठोऽमरासुताः ॥२५॥
 प्रथमा चन्द्रलेखाख्या ज्येष्ठा विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वगोत्रस्य बल्लभाः ॥२६॥

हनुमान्के हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई । तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्षकी इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचेकी ओर लटका रखी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरीपर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकांक्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट-अनिष्ट समागममें मध्यस्थ थे, तथा पाषाण और कांचनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंकी अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन् ! हनुमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१३-१६॥

भक्तिसे भरे हनुमान्ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस बरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गयी जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिसे भरा हनुमान् जबतक नाना प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है तबतक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गयीं ॥१९-२०॥

उन्होंने ध्यानमें तत्पर दोनों मुनियोंको हनुमान्के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनुमान्की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो ! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१-२२॥ हमारे निमित्तसे यह महाउपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंकी रंचमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया । अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनुमान्ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त भयंकर निर्जन वनमें आप लोग कौन हैं ? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरा नामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरंगमाला है । हम सभी

१. युगान्तावित-म. । २. दावेन म. । ३. साधु म. । ४. कान्ते ख., म. । कुवने क. ।

यावन्तो भुवने केचिद्विजयाद्वादिंसंभवाः । विद्याधरकुमारेन्द्राः कुलपुष्करमास्कराः ॥२७॥
 तेऽस्मदर्थे शिवं कापि न विन्दन्तेऽर्थिनो मृशम् । दुष्टस्त्वङ्गारको नाम तार्प धत्ते विशेषतः ॥२८॥
 अन्यदा परिपृष्टश्च तातेनाष्टाङ्गविन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केषु मध्या दुहितरो मम ॥२९॥
 सोऽबोचत् साहसगतिं यो हनिष्यति संयुगे । आसां कतिपयाहोभो रमणोऽसौ भविष्यति ॥३०॥
 निशम्यामोघवाद्यस्य मुनेस्तद्वचनं ततः । अचिन्तयत् पिताऽस्माकं विधाय स्मरमाननम् ॥३१॥
 कस्त्वसौ भविता लोके नरो वज्रायुधोपमः । विजयार्थोत्तरश्रेणीश्रेष्ठं यो हन्ति साहसम् ॥३२॥
 अथवा न मुनेर्वक्तव्यं कदाचिज्जायतेऽनृतम् । इति विस्मयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥
 चिरं प्रार्थयमानोऽपि यदासौ लब्धवान्नरः । तदास्मद्दुःखचिन्तारथः संजातोऽङ्गारकेतुकः ॥३४॥
 ततः प्रभृति चास्माकमयमेव मनोरथः । द्रक्ष्यामस्तं कदा वीरमिति साहसमूदनम् ॥३५॥
 पुनश्च वनमायाता दाहणहुमसंकटम् । मनोऽनुगामिनीं नाम विद्यां साधयितुं पराम् ॥३६॥
 दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य साधुयुग्मस्य वर्हते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥
 अङ्गारकेतुना तेन वीक्षिताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥
 ततोऽस्माकं वधं कर्तुमेता दश दिशः क्षणात् । धूमाङ्गारकवर्षेण वह्निना पिञ्जरोकृताः ॥३९॥
 षड्भिः संवत्सरैः साप्रैर्यद्दुःसाध्यं प्रसाध्यते । दत्वाङ्गमुपसर्गस्य तदद्यैव हि साधितम् ॥४०॥
 हहापदि महाभाग नामविष्यद् भवान् यदि । अभक्ष्याम हि योगिभ्यां सहाण्यं ततो भुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी हैं ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्थ आदि स्थानोंमें उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर कुमार हैं वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इच्छुक हो कहीं भी सुख नहीं पा रहे हैं। उन कुमारोंमें अंगारक नामक दुष्ट कुमार विशेष रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक दिन हमारे पिताने अष्टांगनिमित्तके ज्ञाता मुनिराजसे पूछा कि हे भगवन् ! मेरी पुत्रियाँ किन स्थानोंमें जन्मवेंगी ॥२९॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमें साहसगतिकी मारेगा वह कुछ ही दिनोंमें इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर अमोघ वचनके धारक मुनिराजका वह वचन सुन हमारे पिता मुखको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसारमें इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रेष्ठ साहसगतिकी मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचारकर माता-पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करनेपर भी जब अंगारक हम लोगोंको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले कारणोंकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोंका यही एक मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिकी नष्ट करनेवाले उस वीरको कब देखेंगी ॥३५॥ हम तीनों कन्याएँ मनोनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृत्तोंसे युक्त इस वनमें आयी थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोंका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोंको यहाँ देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम लोगोंका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओंको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली अग्निसे पिंजर वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छह वर्षसे भी अधिक समयमें बड़ी कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गयी ॥४०॥ हे महाभाग ! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनों मुनियोंके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

१. भर्ता म. । २. अस्मान् । न सः म. । लब्धवान् ताः ख. । ३. परम् म. ।

साधु साध्विति संस्मृत्य ततो मारुतिरब्रवीत् । 'भवतीनां श्रमः श्लाघ्यः फलयुक्तश्च निश्चयः ॥४२॥
 अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः । अहो भव्यस्वमुत्तुङ्गं येन विद्या प्रसाधिता ॥४३॥
 आख्यातं च क्रमात् सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । पद्मागमादिकं यावदात्मागमनकारणम् ॥४४॥
 तत्तश्च श्रुतवृत्तान्तो गन्धर्वोऽमरया सह । समागतो महातेजास्तमुद्देशं सहानुगः ॥४५॥
 नमश्चरसमायोगे देवागमननिभे । क्षणेन तद्वनं जातं सर्वं नन्दनसुन्दरम् ॥४६॥
 किष्किन्धं च पुरं गत्वा भूत्या दुहितृभिः समम् । शासने पद्मनाभस्य गन्धर्वो रतिमाश्रयत् ॥४७॥
 ताश्च निस्सीमसौभाग्या विभूत्या पर्यान्विताः । उपनिन्ये पराः कन्या राभायाक्लिष्टकर्मणे ॥४८॥
 एताभिः पराभिश्च सेव्यमानो विभूतिभिः । अपश्यन् जानकीं पद्मो मेने शून्या दिशो दश ॥४९॥

अतिरुचिरावृत्तम्

गुणान्वितैर्भवति जनैरलंकृता समस्तभूः शुभकलितैः सुसुन्दरैः ।
 विना 'जनं मनसि कृतास्पदं सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५०॥
 पुराकृतादतिनिवितात् समुत्कटाज्जनः परां रतिमनुयाति कर्मणः ।
 ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मस्य गन्धर्वकन्यालाभाभिधानं नाम एकपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५१॥



तदनन्तरं हनुमान्ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मन्दहास पूर्वक कहा कि आप लोगोंका श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित ही फलसे युक्त है ॥४२॥ अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है । अहो ! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थानमें लगा । अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध की ॥४३॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने रामके आगमनकी आदि लेकर अपने यहाँ आने तकका समस्त वृत्तान्त ज्योंका त्यों विस्तारके साथ क्रमपूर्वक कहा ॥४४॥ तदनन्तर समाचार सुनकर महातेजस्वी गन्धर्व राजा अपनी अमरा नामकी रानी और अनुचरोंके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ इस प्रकार क्षण-भरमें वह समस्त वन देवागमनके समान विद्याधरोंका समागम होनेसे नन्दन वनके समान हो गया ॥४६॥ तदनन्तर राजा गन्धर्व पुत्रियोंको साथ ले बड़े वैभवसे किष्किन्धपुर गया और वहाँ रामकी आज्ञामें रहकर प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥४७॥ उसने असीम सौभाग्यकी धारक तथा परम विभूतिसे युक्त तीनों उत्कृष्ट कन्याएँ शान्त चेष्टाके धारक रामके लिए समर्पित कीं ॥४८॥ सो राम इन कन्याओंसे तथा अन्य विभूतियोंसे यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीताको न देखते हुए वे दशों दिशाओंको शून्य मानते ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि समस्त भूमि गुणोंसे सहित, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा अतिशय सुन्दर मनुष्योंसे अलंकृत रहे तो भी मनमें वास करनेवाले मनुष्यके बिना वह भूमि गहन वन की तुल्यता धारण करती है ॥५०॥ पूर्वोपाजित तथा तीव्र रूपसे बन्धको प्राप्त हुए उत्कट कर्मसे यह जीव परम रतिको प्राप्त होता है और उस रतिके कारण यह समस्त संसार अपने अधीन रहता है तथा कर्मरूपी सूर्यसे प्रकाशमान होता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें रामकी गन्धर्व कन्याओंकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५१॥



१. 'भवतीनां श्रमः' इत्यारभ्य 'अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः' इत्यन्तः पाठः ख. पुस्तके नास्ति ।
 २. जनैः म. ।

द्विपञ्चाशत्तमं पर्व

सौ पवनपुत्रोऽपि प्रतापाढ्यो महाबलः । त्रिकूटामिसुखोऽयासीत् सोमवन्मन्दरं प्रति ॥१॥
 अथास्य वज्रतो व्योम्नि सुमहाकार्मुकाकृतिम् । वक्रमेघाप्रतोकाशं जातं सैन्यं निरोधवत् ॥२॥
 उवाच च गतिः केन मम सैन्यस्य विघ्नता । अहो विज्ञायतां क्षिप्रं कस्येदमनुचेष्टितम् ॥३॥
 किं स्यादसुरनाशोऽयं चमरो गर्वपर्वतः । आखण्डलः शिखण्डी वा नैषामेकोऽपि युज्यते ॥४॥
 प्रतिमा किंतु जैनेन्द्री शिखरेऽस्य महीभृतः । सवेद् वा भगवान् कश्चिन्मुनिश्चरमविग्रहः ॥५॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वितर्ककृतवर्त्तनम् । मन्त्री पृथुमतिर्नाम वाक्यमेतदुदाहरत् ॥६॥
 निवर्त्तरन् महाबुद्धे श्रीशैल ननु किं तव । क्रूरयन्त्रयुतो नायं मायाशालो मतिं गतः ॥७॥
 चक्षुरततो नियुज्यासावपश्यत्पद्मलोचनः । दुःप्रवेशं महाशालं विरक्तस्त्रीमनःसमम् ॥८॥
 अनेकाकारवक्त्राढ्यं मीमसाशालिकात्मकम् । त्रिदशैरपि दुर्द्वैत्र्यं सर्वभक्षं प्रभासुरम् ॥९॥
 संकटोत्कटतीक्ष्णाग्रककचादलिवेष्टितम् । रुधिरोद्गारविह्वलसहस्रविलसत्पटम् ॥१०॥
 क्रुरदभुजङ्गविस्फारिफणाशूकारशब्दितम् । विषधूमान्धकारान्तज्वलदङ्गारदुःसहम् ॥११॥
 यस्तं सर्पति मूढात्मा शौर्यमानसमुद्धतः । निःकामति न भूयोऽसौ मण्डूकोऽहिसुखादिषु ॥१२॥
 लङ्काशालपरिक्षेपं सूर्यमार्गसमुन्नतम् । दुर्लङ्घ्यं दुर्निरीक्ष्यं च सर्वदिक्षु सुयोजितम् ॥१३॥
 युगान्तकालभेद्यनिर्घोषममभीषणम् । हिंसाग्रन्थमिवात्यन्तपापकर्मविनिर्मितम् ॥१४॥

अथानन्तर प्रतापसे सहित महाबलवान् हनुमान् त्रिकूटाचलके सम्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरुके सम्मुख सोम चलता है ॥१॥ तदनन्तर आकाशमें चलते हुए हनुमानकी सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुषके समान हो गयी और ऐसी जान पड़ने लगी माना कुटिल मेघोंका समूह ही हो ॥२॥ यह देख, हनुमानने कहा कि मेरी सेनाकी गति किसने रोकी है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥३॥ क्या यहाँ असुरोंका इन्द्र चमर है, अथवा इन्द्र है या शिखण्डी है ? अथवा इनमेंसे यहाँ एकका भी होना उचित नहीं जान पड़ता ॥४॥ किन्तु हो सकता है कि इस पर्वतके शिखरपर जैनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी मुनिराज विराजमान हों ॥५॥ तदनन्तर हनुमान्के वितर्कपूर्ण वचन सुनकर पृथुमति मन्त्रीने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमत् श्रीशैल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यन्त्रोंसे युक्त मायामयी कोट जान पड़ता है ॥६-७॥ तत्पश्चात् कमल-लोचन हनुमान्ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त मायामयी महाकोटको देखा । वह कोट विरक्त स्त्रोके मनके समान दुष्प्रवेश था ॥८॥ अनेक आकारके मुखोंसे सहित था, भयंकर पुतलियोंसे युक्त था, सबको भक्षण करनेवाला था, देदीप्यमान था और देवोंके द्वारा भी दुर्गम्य था ॥९॥ जिनके अग्रभाग संकटसे उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसी करोंतोंकी श्रेणीसे वह कोट वेष्टित था, तथा उसके तट रुधिरकी उगलनेवाली हजारों जिह्वाओंके अग्रभागसे सुशोभित थे ॥१०॥ चंचल सर्पोंके तने हुए फणाओंकी शूत्कारसे शब्दायमान था तथा जिनसे विपेला धूमरूपी अन्धकार उठ रहा था ऐसे जलते हुए अंगारोंसे दुःसह था ॥११॥ गुरवीरताके अहंकारसे उद्धत जो मनुष्य उस कोटके पास जाता है वह फिर उम तरह लौटकर नहीं आता जिस प्रकार कि साँपके मुखसे मेढक ॥१२॥ यह

१. वक्र मेघा प्रतिकाशं म. । २. तिरोभवत् म. । ३. खगतिः म. । ४. विघ्नता म. । ५. मुनीश्वरम-विग्रहः (?) म. । ६. महान् बुद्धे ख. । ७. युतेनायं म., ब. । ८. जिह्वाग्रं म. ।

तं दृष्ट्वा मारुतिर्दध्यावहो नाथेन रक्षसाम् । दाक्षिण्यमुज्झितं पूर्वं मायाप्राकारकारिणां ॥१५॥
 उन्मूलयन्तिदं यन्त्रं विद्याबलसमूर्जितम् । मानमुन्मूलयाम्यस्य ध्यानी मोहमलं^३ यथा ॥१६॥
 युद्धे च मानसं कृत्वा तत्सैन्यं^४ स्वं महास्वनम् । गगने सागराकारं समयेऽतिष्ठिषत् सुधीः ॥१७॥
 विद्याकवचयुक्तं च^५ कृत्वात्मानं गदाकरः । विवेश सालिकावक्त्रं राहुवक्त्रं रविर्यथा ॥१८॥
 ततः कुक्षिगुहां तस्याः परीतकैकसावृताम् । विद्यानखैरलं तीक्ष्णैः केसरीव व्यपाटयत् ॥१९॥
 निर्दयैश्च गदाघातैर्घोरघोरैश्चूर्णयत् । घातिकर्मस्थितिं यद्ब्रह्मचानी भावैः सुनिर्मलैः ॥२०॥
 अथाशालिकविद्याया यास्या भेदं भयावहम् । समो नीलाम्बुवाहानामभूच्चटचटाध्वनिः ॥२१॥
 तेन संभान्यमानोऽसौ शालो नष्टोऽतिचञ्चलः । स्तोत्रेणैव जिनेन्द्राणां कलुषः कर्मसंचयः ॥२२॥
 ततस्तन्निनन्दं श्रुत्वा युगान्तजलदोन्नतम् । दुष्टा विशीर्यमाणं च यन्त्रप्राकारमण्डलम् ॥२३॥
 राजन् वज्रमुखः क्रुद्धः शालरक्षाधिकारवान् । त्वरितं रथमारुह्य सिंहो दावमिवाभ्यगात् ॥२४॥
 ततोऽभिमुखमेतस्य वीक्ष्य मारुतनन्दनम् । नानायानयुधा योधाः प्रचण्डा योद्धुमुद्यताः ॥२५॥
 बलं वाज्रमुखं दुष्टा प्रबलं योद्धुमुद्यतम् । परमं क्षोभमायातं हनूमत्सैन्यमुत्थितम् ॥२६॥
 किमत्र बहुनोक्तेन प्रवृत्तं तत्तथा रणम् । यथा स्वामिकृते पूर्व^६ सन्माननविमानने ॥२७॥

लंकाके कोटका घेरा सूर्यके मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लभ है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओंमें फैला है, प्रलयकालीन मेघसमूहकी गर्जनाके समान तीक्ष्ण गर्जनासे भयंकर है, तथा हिसामय शास्त्रके समान अत्यन्त पापकर्मा जनकों द्वारा निर्मित है ॥१३-१४॥ उसे देखकर हनुमान्ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोटका निर्माण करनेवाले रावणने अपनी पहलेकी सरलता छोड़ दी है ॥१५॥ मैं विद्याबलसे बलिष्ठ इस यन्त्रको उखाड़ता हुआ इसके मानको उस तरह उखाड़ दूँगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोहको उखाड़ देता है ॥१६॥

तदनन्तर बुद्धिमान् हनुमान्ने युद्धमें मन लगाकर अर्थात् युद्धका विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेनाको तो संकेत देकर आकाशमें खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारण कर तथा गदा हाथमें ले पुतलीके मुखमें उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहुके मुखमें सूर्य प्रवेश करता है ॥१७-१८॥ तत्पश्चात् चारों ओरसे हड्डियोंसे आवृत उस पुतलीकी उदररूपी गुहाको उसने सिंहकी भाँति विद्यामयी तीक्ष्ण नखोंसे अच्छी तरह चीर डाला ॥१९॥ और भयंकर शब्द करनेवाले गदाके निर्दय प्रहारोंसे उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावोंसे घातिया कर्मोंकी स्थितिको चूर-चूर कर डालता है ॥२०॥ तदनन्तर भंगको प्राप्त होती हुई आशालिक विद्याका नील मेघोंके समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ ॥२१॥ उस शब्दसे यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान्की स्तुतिसे पापकर्मोंका समूह नष्ट हो जाता है ॥२२॥

तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान उन्नत उस शब्दको सुनकर तथा यन्त्रमय कोटकी नष्ट होता देख, कोटकी रक्षाका अधिकारी वज्रमुख नामका राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरुढ़ हो हनुमान्के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानलके सम्मुख जाता है ॥२३-२४॥ तदनन्तर हनुमान्को उसके सन्मुख देख, नाना प्रकारके वाहनों और शस्त्रोंसे सहित प्रचण्ड योधा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥२५॥ इधर वज्रमुखकी प्रबल सेनाको युद्धके लिए उद्यत देख परम शोभको प्राप्त हुई हनुमान्की सेना भी युद्धके लिए उठी ॥२६॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? उन दोनों सेनाओंमें उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले

१. -मूर्जितं म. । २. -कारिणां म. । ३. मोहबलं म., ख. । ४. सुमहास्वन म. । ५. कृत्वा मानं म. ।

६. राजा म. । ७. वज्रमुखं म. । ८. सस्मावन म., ब. ।

स्वामिनो दृष्टिमार्गस्थाः सुमटाः कृतगर्जिताः । जीवितेष्वपि विस्नेहा बभूवुः किमिहोच्यताम् ॥२८॥
 ततः कपिध्वजैर्योधाश्चिरंकृतमहाहवाः । वज्रायुधस्य निर्भग्नाः क्षणान्नेषुरितस्ततः ॥२९॥
 चक्रेणानिलसूनुश्च तेजोऽहरत् विद्विषाम् । ऋक्षविम्बमिवाकाशादपातयदरेः शिरः ॥३०॥
 संख्ये वितुर्वधं दृष्ट्वा तं लङ्कासुन्दरी तदा । निखम्य कृच्छ्रतः शोकममर्षविषदूषिता ॥३१॥
 जवनाश्वरधारुढा कुण्डलोद्योतितानना । शरासनायतोरस्का कुञ्चितभ्रूलतायुगा ॥३२॥
 उल्केव संगतादित्यतेजोमण्डलधारिणी । धूमोद्गारसमायुक्ता घनप्राग्भारवर्तिनी ॥३३॥
 संरम्भवशसंकुललोहिताम्भोजलोचना । क्रूरसंदृष्टविम्बोष्ठी क्रुद्धेव श्रीः शचीपतेः ॥३४॥
 अघावदिपुमुदृश्य 'कथ्यमाना मनोहरा' । मया श्रीशैल दृष्टोऽसि तिष्ठ ते शक्तिरस्ति चेत् ॥३५॥
 अद्य ते रावणः क्रुद्धो नभश्चरमहेश्वरः । करिष्यति यदेतत्से करोमि हतचेष्टित ॥३६॥
 'इयं यमालयं पापं भवन्तं प्रेषयाम्यहम् । दिग्मूढ इव जातस्त्वमनिष्टस्थानगोचरः ॥३७॥
 तस्यास्त्वरितमायान्त्या यावच्छत्रमपातयत् । बाणेन तावदेतस्य तथा चापं द्विधा कृतम् ॥३८॥
 सा यावदगृहीच्छक्तिं तावन्मासतिना शरैः । नभश्छन्नं समायान्ती भिन्ना शक्तिश्च सान्तरे ॥३९॥
 सा विद्याबलगम्भीरा वज्रदण्डसमान् शरान् । परशुकुन्तचक्राणि शतधनीमुशालान् शिलाः ॥४०॥
 बवर्ष वायुपुत्रस्य रथे हिमवदुन्नते । विकाले वारिणी भेदान् मेघसंख्या यथोन्नता ॥४१॥

स्वामीके द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कारमें होता है ॥२७॥ जो योद्धा स्वामीकी दृष्टिके मार्गमें स्थित थे अर्थात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणोंका भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषयमें अधिक क्या कहा जाये ? ॥२८॥ तदनन्तर जिन्होंने चिरकाल तक बड़े-बड़े युद्ध किये थे ऐसे वज्रायुद्धके योद्धा वानरोके द्वारा क्षणभरमें पराजित होकर इधर-उधर नष्ट हो गये—भाग गये ॥२९॥ और हनुमान्ने चक्रके द्वारा शत्रुओंका तेज हर लिया तथा नक्षत्र विम्बके समान शत्रुका शिर काटकर आकाशसे नीचे गिरा दिया ॥३०॥ युद्धमें पिताका वध देख वज्रायुधकी पुत्री लंकासुन्दरी कठिनाईसे शोकको रोककर क्रोधरूपी विषसे दूषित हो हनुमान्की ओर दौड़ी । उस समय वह वेगशाली घोड़ोंके रथपर बैठी थी, कुण्डलोंके प्रकाशसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुषके समान उसका वक्षःस्थल आयत था, उसकी दोनों भ्रुकुटियां टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्यके समान तेजका मण्डल धारण कर रही थी, धूमके उद्गारसे सहित थी, अर्थात् उसके शरीरसे कुछ-कुछ धुआँ-सा निकलता दिखता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूहके बीचमें विद्यमान थी, क्रोधके कारण उसके नेत्र फूले हुए लाल कमलोंके समान जान पड़ते थे, वह क्रोधसे अपना ओठ चाब रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोधसे भरी इन्द्रकी लक्ष्मी ही हो ॥३१-३४॥ वह देखनेमें सुन्दर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुषपर बाण चढ़ाकर वह दौड़ी और बोली कि अरे श्रीशैल ! मैंने तुझे देख लिया है, यदि तुझमें कुछ शक्ति है तो खड़ा रह ॥३५॥ आज कुपित हुआ विद्याधरोंका राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मैं तेरा करती हूँ ॥३६॥ यह मैं तुझ पापीको यमराजके घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रान्तकी तरह आज इस अनिष्ट स्थानमें आ पड़ा है ॥३७॥ वेगसे आती हुई लंकासुन्दरीका छत्र जबतक हनुमान्ने नीचे गिराया तबतक उसने एक बाण छोड़कर हनुमान्के धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३८॥ लंकासुन्दरी जबतक शक्ति नामक शस्त्र उठाती है तबतक हनुमान्ने बाणोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी शक्तिको बीचमें ही तोड़ डाला ॥३९॥ विद्याबलसे गम्भीर लंकासुन्दरीने हनुमान्के हिमालयके समान ऊँचे रथपर वज्रदण्डके समान बाण, परशु, कुन्त,

१. कच्छमाना म. । २. मनोहरं ख., ज., क. । ३. हतचेष्टितः म. । ४. इमं म. । ५. शिलान् म. ।

तथा नानायुधादौषैः सर्ववेगसमीरितैः । आच्छाद्यत महातेजाः^१ शुचिसूर्य इवाग्बुधैः ॥४२॥
 विक्रान्तः स च शस्त्रौघमनिर्विण्णोऽन्तरस्थितम् । व्यपोहत निजैः शस्त्रैर्मयाविधिविशारदः ॥४३॥
 शराः शरैरुप्यन्त तोमराद्याः स्वजातिभिः । शक्तयः शक्तिभिर्नुन्ना समोल्ला दूरमुद्युः ॥४४॥
 चक्रकक्रचक्रचक्रकनकादोर्षाञ्ज्रम् । बभूव भीषणं व्योम विद्युद्भिरिव संकुलम् ॥४५॥
 तं लङ्कासुन्दरी भूयो रूपेण्यलवधमनिमा । धीरा स्वभावतो^२ राजन् लक्ष्मीः कमललोचना ॥४६॥
 ज्ञानध्यानहरैः कान्तैर्दुर्द्धैर्गुणसन्तैः । लावण्याहतसौन्दर्यैर्मनोऽन्तर्भेदकोविदैः ॥४७॥
 नेत्रचायविनिर्मुक्तैर्विषये स्मरसायकैः । तथेतरधनुर्मुक्तैः शरैराकर्णसंहतैः ॥४८॥
 विस्मये जगतः शक्ता सौभाग्यगुणगर्विता । तस्यालसक्रियस्यैवं प्रविष्टा हृदयोदरम् ॥४९॥
 शरशक्तिशतधनीभिर्न तथा समपीड्यत । यथा मदनबाणैर्धैर्मर्मदारणकारिभिः ॥५०॥
 द्रुं मनोहराकारा ललितैर्विशिखैरेषि । सबाह्याभ्यन्तरं हन्ति मामित्येवमचिन्तयत् ॥५१॥
 दमस्त्रिन् मधुधे सृष्ट्युः पूर्यमाणस्य सायकैः । अनया विप्रयुक्तस्य जीवितं न सुरालये ॥५२॥
 चिन्तयत्येवमेतस्मिन् साप्यनङ्गेन चोदिता । त्रिकूटसुन्दरी कन्या करुणासक्तमानसा ॥५३॥
 विकस्वरमनोदेहं तं पद्मचललोचनम् । अवालेन्दुमुखं बालं किरीटन्यस्तवानरम् ॥५४॥
 मूर्तियुक्तमिवानङ्गं सुन्दरं वायुनन्दनम् । हन्तुं समुद्यतां शक्तिं संजहार त्वरावती^३ ॥५५॥

चक्र, शतधनी, मुसल तथा शिलाएँ उस प्रकार बरसायीं जिस प्रकार कि उत्पातके समय उच्च मेघावली नाना प्रकारके जल बरसाती है ॥४०-४१॥ उसके पूर्ण वेगसे छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्रसमूहमे महातेजस्वी हनुमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघोसे आषाढ़का सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥४२॥ इतना सब होनेपर भी खेदसे रहित, पराक्रमी एवं मायाके विस्तारमें निपुण हनुमान्ने अपने शस्त्रोंके द्वारा उसके शस्त्रसमूहको बीचमें ही दूर कर दिया ॥४३॥ उसके बाण बाणोंसे लुप्त हो गये, तोमर आदि तोमर आदिके द्वारा, तथा शक्तियाँ शक्तियोंके द्वारा खण्डित होकर उल्काओंके समान दूर जा गिरीं ॥४४॥ चक्र, कक्रच, संवर्तक तथा कनक आदिके विस्तारसे पीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो बिजलियोंसे हो व्याप्त हो गया हो ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर रूपसे अनुपम, स्वभावसे धीर, कमललोचना, लक्ष्मीके समान लंकासुन्दरी, नेत्ररूपी धनुषसे छोड़े हुए कामके बाणों अर्थात् कटाक्षोंसे हनुमान्को उधर पृथक् भेद रही थी और इधर अन्य धनुषसे छोड़े तथा कान तक खींचे हुए बाणोंसे पृथक् भेद रही थी । लंकासुन्दरीके वे कामबाण, ज्ञान-ध्यानके हरनेवाले थे, मनोहर थे, दुर्धर थे, गुणोंसे युक्त थे, लावण्यके द्वारा सौन्दर्यको हरनेवाले थे, और मनके भीतर भेदनेमें निपुण थे ॥४६-४८॥ इस तरह जगत्को आश्चर्य करनेमें समर्थ तथा सौभाग्यरूपी गुणसे गर्वित लंकासुन्दरी हनुमान्के हृदयके भीतर प्रविष्ट हो गयी ॥४९॥ वह हनुमान्, बाण, शक्ति तथा शतधनी आदि शस्त्रोंसे उस प्रकार पीड़ित नहीं हुआ था जिस प्रकार कि मर्मको विदारण करनेवाले कामके बाणोंसे पीड़ित हुआ था ॥५०॥ हनुमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकारकी धारक, अपनी ललित नेष्टारूपी बाणोंसे मुझे भीतर और बाहर दोनों ही स्थानोंपर घायल कर रही है ॥५१॥ इस युद्धमें बाणोंसे भरकर मर जाना अच्छा है किन्तु इसके बिना स्वर्गमें भी जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥५२॥ इधर इस प्रकार हनुमान् विचार कर रहा था उधर जिसका मन दयामे आतन्त था तथा जो त्रिकूटाचलकी अद्वितीय सुन्दरी थी ऐसी कन्या लंकासुन्दरीने कामसे प्रेरित हो, वैदीप्यमान मन तथा शरीरके धारक, कमलदललोचन, तरुण चन्द्रवदन, मुकुट-परवानरका चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवनसे युक्त एवं मूर्तिधारी कामदेवके समान सुन्दर

१. आषाढमाससूर्य इव । २. राजलक्ष्मीः म. । ३. त्वरावता म. ।

दध्यौ च मारयास्येतं कथं दोषमपि श्रितम् । रूपेणानुपमानेन छिन्ते मर्माणि यो मम ॥५६॥
यद्यनेन समं सक्ता कामभोगोदयद्युतिम्^१ । न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥५७॥
अतः सत्पथमुद्दिश्य स्वनामाङ्कं हनूमते । प्रजिघाय शरं मुग्धा विह्वलेनान्तरात्मना ॥५८॥
पराजिता त्वया नाथ साहं मन्मथसायकैः । सुरैरपि न या शक्या जेतुं संघातवर्तिभिः ॥५९॥
^२प्रवाच्य मारुतिर्बाणमङ्कं स्वैरुपपागतम् । धृतिं परां परिप्राप्तो रथादरमवातरत् ॥६०॥
उपसृत्य च तां कन्यां मृगेन्द्रसमविक्रमः । कृत्वाङ्के गाढमालिङ्गत् कामो रतिमिवापराम् ॥६१॥
अथ^३ प्रशान्तवैरासावस्तुर्दिनलोचना । तातप्रयाणशोकार्ता जगदे वायुसुनुना ॥६२॥
मा रोदीः सौम्यवक्त्रे^४ स्वमलं शोकेन भामिनि । विहिता गतिरैषैव क्षात्रधर्मे सनातने ॥६३॥
ननु ते ज्ञातमेवैतद्यथा राज्यविधौ स्थिताः । पित्रादीनपि निघ्नन्ति नराः कर्मबलेरिताः ॥६४॥
वृथा रोदिषि किन्त्वेतद्धानमातं विवर्जय । अस्मिन् हि सकले लोके विहितं मुज्यते प्रिये ॥६५॥
निहितोऽयमनेनेति द्विदत्र व्याजमात्रकम् । आयुःकर्मानुभावेन प्राप्तकालो विपद्यते ॥६६॥
वचोभिरेमिरन्त्रैश्च मुक्तशोका व्यराजत । सहिता वातिना^५ यद्वदिन्दुना निर्घना निशा ॥६७॥
प्रेमनिर्झरपूर्णं तथोरालिङ्गनेन सः । संग्रामजः श्रमो कूरमथायातः सुचेतसोः ॥६८॥

हनुमान्को मारनेके लिए उठायी हुई शक्ति शीघ्र ही संहृत कर ली—पीछे हटा ली ॥५३-५५॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिताके मारनेसे दोषी है तो भी जो अनुपम रूपसे मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूँ ? ॥५६॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदयका सेवन न करूँ तो इस लोकमें मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥५७॥ तदनन्तर विह्वल मनसे मुग्ध उस लंकामुन्दरीने समीचीन मार्गके उद्देश्यसे अपने नामसे अंकित एक बाण हनुमान्के पास भेजा ॥५८॥ उस बाणमें उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इकट्ठे हुए देवोंके द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा कामके बाणोंसे पराजित हो गयी ॥५९॥ गोदमें आये हुए उस बाणको अच्छी तरह बाँच कर परम धैर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् शीघ्र ही रथसे उतरा ॥६०॥ और उसके पास जाकर सिंहके समान पराक्रमी हनुमान् उसे गोदमें बिठा उसका ऐसा गाढ आलिंगन किया मानो कामदेवने दूसरी रतिका ही आलिंगन किया हो ॥६१॥

तदनन्तर जिसका वैर शान्त हो गया था, जिसके नेत्रोंसे दुर्दिन की भाँति अविरल अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी तथा जो पिताके मरण-सम्बन्धी शोकसे पीड़ित थी ऐसी उस लंकामुन्दरीसे हनुमान्ने कहा ॥६२॥ कि हे सौम्यमुखि ! रोओ मत । हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन क्षत्रिय धर्मकी तो यही रीति है ॥६३॥ यह तो तुम्हें विदित ही है कि राजकार्यमें स्थित मनुष्य, कर्मबलसे प्रेरित हो पिता आदिको भी मार डालते हैं ॥६४॥ व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? इस आर्तध्यानको छोड़ो । हे प्रिये ! इस समस्त संसारमें अपना किया हुआ ही सब भोगते हैं अर्थात् जो जैसा करता है वैसा भोगता है ॥६५॥ 'यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया' यह कहना तो छलमात्र है । यथार्थमें तो आयुर्कर्मके प्रभावसे समय पाकर यह जीव मरता है ॥६६॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनोंसे जिसका शोक छूट गया था ऐसी लंकामुन्दरी हनुमान्के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चन्द्रमाके साथ सुशोभित होती है ॥६७॥ तदनन्तर उत्तम हृदयके धारक उन दोनोंका संग्रामसे उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्झरसे परिपूर्ण आलिंगनके द्वारा दूर भाग गया ॥६८॥

१. युतिः म. । कामभोगादय युतिम् ज. । २. प्रोवाच म. । ३. प्रशान्तवैरा + असौ + अस्तुर्दिन ।

४. सौम्यवक्त्रे म. । ५. वातस्यापत्यं पुमान् वातिः, तेन हनूमता ।

ततो यत्र नमोदेशे स्तम्भिन्या विद्यया खगाः । स्तम्भिता बलमत्रैव रचितावासमाश्रितम् ॥६९॥
 संध्यास्काभ्रसंकाशं गीर्वाणनगरोपमम् । श्रीशैलस्य तद्व्यन्तं शिविरं पर्यराजत ॥७०॥
 गजवाजिविमानस्था रथस्थाश्च महानृपाः । तत्पुरं ध्वजमालाढ्यं विविशुः पृष्टवातयः ॥७१॥
 स्थितास्तत्र यथान्ध्यायं लब्धोत्साहसमुत्सवाः । कथाभिरतिचित्राभिः सूरसंग्रामजन्मभिः ॥७२॥
 अथ तं त्वरितात्मानं वार्तिं गन्तुं समुद्यतम् । बाला विश्रब्धमप्राक्षीदिति प्रेमपरायणा ॥७३॥
 विविधागोभिरापूर्णः श्रुतदुःसहविक्रमः । कान्तं लङ्कां किमर्थं त्वं वद गन्तुं समुद्यतः ॥७४॥
 तस्यै जगाद् वृत्तान्तमशेषं वायुमन्दनः । कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥७५॥
 सीतया सह रामस्य भद्रे भैद्रसमागमः । हृतया राक्षसेन्द्रेण कर्तव्यः सर्वथा मया ॥७६॥
 साऽब्रवीत् समतिक्रान्तं सौहार्दं तत्पुरातनम् । श्रद्धास्नेहक्षये नष्टा प्रदीपस्य यथा शिखा ॥७७॥
 आसीद् रथ्योपशोभाढ्यां ध्वजमालाकुलीकृतम् । प्राविक्षदादृतो लङ्कां भवान् दिवसिवामरः ॥७८॥
 अधुना त्वयि दोषाब्धे रावणश्चण्डशासनः । प्रकाशं व्रजति क्रोधं गृहीष्यति न संशयः ॥७९॥
 यदोपलभ्यते चार्वां विशुद्धिः कालदेशयोः । विशुद्धात्मानमव्यग्रं तदा तं द्रष्टुमर्हसि ॥८०॥
 एवमेवेति सोऽबोचयद्ब्रवीषि विचक्षणे । आकूतं तस्य विज्ञातुं गत्वा बाण्ड्यामि सुन्दरि ॥८१॥
 कीदृशी वा सती सीता रूपेण प्रथिता भवेत् । चालितं मेरुवद्भीरं रावणस्य मनो यथा ॥८२॥

तदनन्तर स्तम्भिनी विद्याके द्वारा आकाशके जिस प्रदेशमें विद्याधर रोक दिये गये थे उस प्रदेशमें आवास बनाकर वह सेना ठहरायी गयी ॥६९॥ सन्ध्याके रक्त मेघके समान दिखनेवाला उसी हनुमान्का वह शिविर देवनगरके तुल्य अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥७०॥ उस सेनामें जो बड़े-बड़े राजा थे उन्होंने हनुमान्से पूछकर हाथियों, घोड़ों, विमानों तथा रथोंपर सवार हो ध्वजाओंके समूहसे युक्त उस नगरमें प्रवेश किया ॥७१॥ वे शूर-वीरोंके संग्रामसे उत्पन्न नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए उस नगरमें उत्साह और उल्लासको प्राप्त कर यथायोग्य ठहरे ॥७२॥

अथानन्तर जिसका मन शीघ्रतासे युक्त था ऐसे हनुमान्को जानेके लिए उद्यत देख प्रेमसे भरी लंकासुन्दरीने एकान्तमें उससे पूछा कि ॥७३॥ हे नाथ ! आप रावणके दुःसह पराक्रमकी बात सुन चुके हैं और स्वयं नाना अपराधोंसे परिपूर्ण हैं फिर किसलिए लंका जानेको उद्यत हैं सो तो कहो ॥७४॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने उसे सब वृत्तान्त कहा और यह बताया कि प्रत्युपकारका करना बन्धुजनोंके द्वारा अनुमोदित है ॥७५॥ हे भद्रे ! राक्षसोंका इन्द्र रावण सीताको हर ले गया है सो उसके साथ रामका समागम मुझे अवश्य कराना है ॥७६॥ यह सुन लंकासुन्दरीने कहा कि रावणके साथ आपका जो पुराना सौहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार नेत्रके नष्ट हो जानेसे दीपकी शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति श्रद्धाके नष्ट हो जानेसे रावणका सौहार्द नष्ट हो गया है ॥७७॥ एक समय था कि जब आप मार्गोंकी शोभासे युक्त तथा ध्वजाओंकी पवित्रसे अलंकृत लंकामें बड़े आदरके साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्गमें प्रवेश करता है ॥७८॥ परन्तु आज आप अपराधी होकर यदि लंकामें प्रकट रूपसे जाते हैं तो कठोर शासनकी धारण करनेवाला रावण आपपर क्रोध ग्रहण करेगा इसमें संशय नहीं है ॥७९॥ अतः जिस समय देश और कालकी उत्तम शुद्धि—अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावणका हृदय शुद्ध एवं व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है ॥८०॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने कहा कि विदुषि ! तुमने जैसा कहा है यथार्थमें वैसा ही है । किन्तु हे सुन्दरि ! मैं रावणका अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥८१॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह सती सीता

एवमुक्त्वा मरुत्पुत्रस्तद्विन्यस्तमहाबलः । तथा मुक्तो विवेकिन्या त्रिकूटाभिमुखं ययौ ॥८३॥

दोधकवृत्तम्

चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृशं रसमेकम् ।
तत्क्षणेव विशुद्धशरीरं जन्तुहपैति रसान्तरसंगम् ॥८४॥
कर्मविचेष्टितमेतदमुष्मिन् किन्त्वथवाहुतमस्ति निसर्गं ।
सर्वमिदं स्वशरीरनिबद्धं दक्षिणमुत्तरतश्च रवीहा ॥८५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमत्लङ्कासुन्दरीकन्यालामाभिधानं
नाम द्विपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५२॥



कैसी रूपवती है कि जिसने मेरुके समान धोर, वीर रावणका मन विचलित कर दिया है ॥८२॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसीके पास छोड़कर हनुमान् उस विवेकवतीसे छूटकर त्रिकूटाचल-को ओर चला ॥८३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस संसारमें यह परम आश्चर्यकी बात है कि प्राणी एक रसको छोड़कर उसी क्षण विशुद्ध रूपको धारण करनेवाले दूसरे रसको प्राप्त हो जाता है ॥८४॥ सो इस संसारमें यह प्राणियोंके कर्मकी ही अद्भुत चेष्टा है । जिस प्रकार सूर्यकी गति कभी दक्षिण दिशाकी ओर होती है और कभी उत्तर दिशाकी ओर । उसी प्रकार प्राणियोंके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सब व्यवहार कर्मकी चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥८५॥

इस प्रकार आर्षं नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनुमान्को लंकासुन्दरी कन्याकी प्रासिका वर्णन करनेवाला बावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५२॥



त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्र ततो वातिः प्रभावोदयसंगतः । लङ्कां विवेश निःशंकः स्वल्पानुगसमन्वितः ॥१॥
द्वारे च रचिताभ्यर्च्ये विभीषणनिकेतनम् । निवेशं योग्यमेतेन सम्मानं च समाहृतः ॥२॥
ततः स्थित्वा क्षणं किञ्चित् संस्पृष्टाभिः परस्परम् । वार्ताभिरिति सद्वाक्यं व्याजहार मरुसुतः ॥३॥
उचितं किमिदं कतुं^१ यद्वास्याद्धपतिः स्वयम् । कुरुते क्षुद्रवत्कश्चिच्चोरणं परयोषितः ॥४॥
मर्यादानां नृपो मूलमापगानां यथा नगः । अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५॥
ईदृशे चरिते कृत्ये सर्वलोकविनिन्दिते । सहनीयं समस्तानां दुःखमेष्यति नो भुवम् ॥६॥
तत् क्षेमंकरमस्माकं हिताय जगतां तथा । उच्यतां रावणः शीघ्रं वचो न्यायानुपालकम् ॥७॥
यथा किल द्वये लोके निन्दनीयं विचेष्टितम् । मा कार्षीः जगतो नाथ कीर्तिविध्वंसकारणम् ॥८॥
विमलं चरितं लोके न केवलमिदं दृश्यते । किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभिः सुरैः ॥९॥
^२कैकसीनन्दनोऽवोचद् बहुशोऽभिहितो मया । ततः प्रभृति नैवासौ मया संसाधते सभम् ॥१०॥
तथापि भवतो वाक्यान् श्वः समेत्य नरेश्वरम् । वक्तास्मि किन्तु दुःखेन^३ त्यज्यस्येतदसौ प्रहम् ॥११॥
अहोऽद्यैकादशं जातं सीताया^४ वल्लभनोऽज्ञने । तथापि विरतिः काचिल्लङ्केन्द्रस्य न जायते ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा वचनं सद्यः महाकाण्ड्यसंगतः । प्रमदाह्वयमुद्यानं मारुतिर्गन्तुमुद्यतः ॥१३॥
अपश्यच्च लताजालैस्तन्नैराकुलीकृतम् । अरुणैः पल्लवैः व्याप्तं वरस्त्रीकरचारुभिः ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधराज ! प्रभाव और अभ्युदयसे सहित तथा स्वल्प अनुचरोसे युक्त हनुमान्ने निःशंक होकर लंकामें प्रवेश किया ॥१॥ वहाँ जिसके द्वारपर सत्कार किया गया था ऐसे विभीषणके महलमें प्रवेश किया और विभीषणने यथायोग्य उनका सम्मान किया ॥२॥ तदनन्तर वहाँ परस्पर इधर-उधरकी कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनुमान्ने इस प्रकारके सद्वचन कहे कि तीन खण्डका अधिपति किसी क्षुद्र मनुष्यकी तरह पर-स्त्रीकी चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥३-४॥ जिस प्रकार पर्वत नदियोंका मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओंका मूल है । यदि राजा स्वयं अनाचारमें स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचारमें प्रवृत्ति करने लगती है ॥५॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिन्दित है—सब लोगोंकी निन्दाका पात्र है । इसके करने पर सब लोगोंको दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगोंको तो निश्चित ही दुःख प्राप्त होता है ॥६॥ इसलिए हम सबके कल्याणके लिए शीघ्र ही रावणसे ऐसे वचन कहिए जो न्यायकी रक्षा करनेवाले हों ॥७॥ उन्हें बतलाइए कि हे जगत्के नाथ ! दोनों लोकोंमें निन्दनीय तथा कीर्तिको नष्ट करनेवाली चेष्टा मत कीजिए ॥८॥ निर्मल-निर्दोष चरित्रकी न केवल इस लोकमें चाह है अपितु स्वर्गलोकमें देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते हैं ॥९॥ तदनन्तर विभीषणने कहा कि मैंने रावणसे अनेक बार कहा है पर वह उस समयसे मेरे साथ बात ही नहीं करता है ॥१०॥ फिर भी आपके कहनेसे मैं कल राजाके पास जाकर कहूँगा किन्तु यह निश्चित है कि वह बड़े दुःखसे ही इस हठको छोड़ेगा ॥११॥ यद्यपि आज सीताको आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लंकाधिपतिको कुछ भी विरति नहीं है—इस कार्यसे रंचमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥१२॥ विभीषणके यह वचन सुन महादयाभावसे युक्त हनुमान् प्रमदोद्यानमें जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१३॥ जाकर उसने उस प्रमदोद्यानको देखा जो कि

१. त्रिखण्डभरताधिपः । २. विभीषणः । ३. त्यज्यते न ह्यसौ म. । ४. वल्लभोऽज्ञने म. । ५. -स्तत्र वैराकुलीकृतम् म. ।

अमरप्रावृत्तैर्गुच्छैः सुजातैर्बद्धशेखरम् । फलेरानतशाखाग्रं किञ्चित् पवनकम्पितम् ॥१५॥
 पद्मादिच्छादितैः स्वच्छैः सरोभिः सदलंकृतम् । भासुरं कल्पवल्लीभिः संगताभिर्महातरुम् ॥१६॥
 गीर्वाणकुलदेशाभं प्रसूनरजसावृतम् । नन्दनस्य दधत्सान्यमनेकाहुतसंकुलम् ॥१७॥
 ततो लीलां वहन् रम्यां वायू राजीवलीचनः । विवेश परमोद्यानं सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥१८॥
 प्रजिघास च सर्वासु दिक्षु चक्षुरतित्वरम् । विविधद्रुमदेशेषु गहनेषु दलादिभिः ॥१९॥
 दृष्ट्वा च दूरतः सीतामन्यदर्शनवर्जितः । अचिन्तयदसौ सैषा रामदेवस्य सुन्दरी ॥२०॥
 स्निग्धज्वलनसंकाशा वाष्पपूरितलोचना । करविन्यस्तवक्त्रेन्दुमुक्तकेशी कृशोदरी ॥२१॥
 अहो रूपमिदं लोके जिताशेषमनोहरम् । परमां ख्यातिमायातं सत्यवस्तुनिबन्धनम् ॥२२॥
 'रहिता शतपत्रेण नास्या लक्ष्मीः समा भवेत् । दुःखार्णवं गताप्येषा सदृशी नान्ययोषिता ॥२३॥
 निपत्य शिखरादद्वेरेस्य मृत्युमुपैग्यहम् । विरहे पद्मानाभस्य धारयामि न जीवितम् ॥२४॥
 कृतप्रचिन्तनामेवं बैदेहीं पवनात्मजः । निःशब्दपादसंपातः प्राप्नो रूपान्तरं दधत् ॥२५॥
 ततोऽङ्गुलीयकं तस्या विससर्जाङ्गवाससि । सहसा सा तमालोक्त्य स्मेराऽभूपुलकाचिता ॥२६॥
 तस्यामेवैवमवस्थायां गत्वा नार्यंस्त्वरान्विताः । तोषादवर्धयन् दिष्ट्या रावणं तत्परायणम् ॥२७॥

नयी-नयी लताओंके समूहसे व्याप्त था, उत्तम स्त्रियोंके हाथोंके समान सुन्दर लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त था, अमरोंसे आच्छादित सुन्दर गुच्छोंके द्वारा जिसपर सेहरा बँध रहा था, जहाँ फलोंके भारसे शाखाओंके अग्रभाग नम्रीभूत हो रहे थे, जो वायुके द्वारा कुछ-कुछ हिल रहा था, कमल आदिसे आच्छादित स्वच्छ सरोवरोंसे जो अलंकृत था, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपटी हुई कल्पलताओंसे देदीप्यमान था, जो देवकुरु प्रदेशके समान जान पड़ता था, फूलोंकी परागसे आवृत था, अनेक आश्चर्योंसे व्याप्त था तथा नन्दनवनकी समानता धारण कर रहा था ॥१४-१७॥ तदनन्तर मनोहर लीलाको धारण करता हुआ कमललोचन हनुमान् सीताके दर्शनकी इच्छासे उस उत्कृष्ट उद्यानमें प्रविष्ट हुआ ॥१८॥

वहाँ जाकर उसने शीघ्र ही समस्त दिशाओंमें तथा पल्लवों आदिसे सघन नाना वृक्षोंके समूहमें दृष्टि डाली ॥१९॥ वहाँ दूरसे ही सीताको देखकर वह अन्य वस्तुओंके दर्शनसे रहित हो गया अर्थात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा । तदनन्तर उसने विचार किया कि वह रामदेवकी सुन्दरी यही है ॥२०॥ यह स्निग्ध अग्निके समान है, इसके नेत्र आँसुओंसे भर रहे हैं, वह हथेलीपर मुखरूपी चन्द्रमाको रखे हुई है, केश इसके खुले हुए हैं तथा उदर इसका अत्यन्त कृश है ॥२१॥ उसे देखकर हनुमान् विचार करने लगा कि अहो ! लोकमें इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थोंको पराजित करनेवाला है, परम ख्यातिको प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओंका कारण है ॥२२॥ कमलसे रहित लक्ष्मी अर्थात् कमलसे निकली हुई साक्षात् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती । अहो ! यह दुःखरूपी सागरमें निमग्न है तो भी अन्य स्त्रियोंके समान नहीं है ॥२३॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वतके शिखरसे गिरकर मृत्युको प्राप्त कर सकती हूँ परन्तु रामके विरहमें जीवन नहीं धारण करूँगी ॥२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई सीताके पास, हनुमान् चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥२५॥

तदनन्तर हनुमान्ने सीताकी गोदके वस्त्रपर अँगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमांचोंसे युक्त हो गयी ॥२६॥ सीताकी ऐसी अवस्था होनेपर वहाँ जो स्त्रियाँ थी उन्होंने शीघ्रतासे जाकर सीताका समाचार जाननेमें तत्पर रहनेवाले रावणको शुभ समाचार सुना हर्षसे

संतुष्टोऽङ्गगतं ताम्ब्यो वस्त्ररत्नादिकं ददौ । श्रुत्वा स्मेराननां सीतां सिद्धं कार्यं विचिन्तयन् ॥२८॥
 विधातुं सहिमानं च किंचिदादिशदुःसुकः । सुधापरमिव प्राप्तः समुल्लासधरे हृदि ॥२९॥
 स्वनाथवचनात् साध्वी सर्वान्तःपुरसंयुता । गता मन्दोदरी शीघ्रं यत्रासौ जनकात्मजा ॥३०॥
 विकचास्थद्युतिं सीतां दृष्ट्वा मन्दोदरी चिरात् । जगौ बाले त्वयाऽस्माकं परमोऽनुग्रहः कृतः ॥३१॥
 अधुना भज लोकेशं रावणं शोकवर्जिता । सुराणां श्रीरिवाधीशं लब्धनिःशेषसंपदम् ॥३२॥
 इत्युक्ता कुपिताबोचयदीदं भवतीरितस् । पद्मः खेचरि जानाति म्रियते ते पतिर्ध्रुवम् ॥३३॥
 वार्ता समागता भर्तुरिति तोषसुपागता । अकार्षं वदनं स्मेरं भजन्ती परमां धृतिम् ॥३४॥
 इति ता वचनं श्रुत्वा राक्षसेशस्य योषितः । उज्जुः क्षुब्धवातेन लपत्येषेति सस्मिता ॥३५॥
 ततः श्रेणिक वैदेही नितान्तं तुङ्गया गिरा । परमं विस्मयं प्राप्ता जगादैवं समुत्सुका ॥३६॥
 गताया व्यसनं घोरमब्धिद्वीपे महामये । कोऽयं संनिहितः साधुर्वन्धुभूतोऽतिवत्सलः ॥३७॥
 ततो नभस्वतः स्रुतुरेवमर्थितदर्शनः । अभिप्रायमिमं चक्रे साधुतायुक्तमानसः ॥३८॥
 परार्थं यः पुरस्कृत्य पुनः स्वं विनिगूहति । सोऽतिभीहतयात्यन्तं जायते निकृतो नरः ॥३९॥
 परमापदि सीदन्तं जन्म संधारयन्ति ये । अनुकम्पनशीलानां तेषां जन्म सुनिर्मलम् ॥४०॥
 हानिः पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते । प्रकाश्ये गुरुतां याति जगति श्रीर्यशस्विनी ॥४१॥

वृद्धिगत किया ॥२७॥ रावणने सन्तुष्ट होकर उन स्त्रियोंके लिए अपने शरीरपर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिये और सीताको प्रसन्नमुखो सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥२८॥ उसके हृदयमें इतना उल्लास हुआ मानो अमृतके पूरको ही प्राप्त हुआ हो । उसी समय उसने उत्सुक हो अनिर्वचनीय उत्सव करनेका आदेश दिया ॥२९॥ अपने पतिके कहनेसे पतिव्रता मन्दोदरी भी समस्त अन्तःपुरके साथ शीघ्र ही वहाँ गयी जहाँ सीता विद्यमान थी ॥३०॥ बहुत दिन बाद आज जिसके मुखकमलकी कान्ति विकसित हो रही थी ऐसी सीताको देख मन्दोदरीने कहा कि हे बाले ! आज तूने हम सबपर बड़ा अनुग्रह किया है ॥३१॥ जिस प्रकार समस्त सम्पदाओंसे युक्त देवेन्द्रकी लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावणकी सेवा कर ॥३२॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधर ! यदि तेरा यह कहना राम जान पावे तो तेरा पति निश्चित ही मारा जावे ॥३३॥ आज मेरे भर्ताका समाचार आया है इसलिए सन्तोषको प्राप्त हो परम धैर्यको प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैंने मुखको मन्दहास्यसे युक्त किया है ॥३४॥ सीताके यह वचन सुनकर स्त्रियाँ कहने लगीं कि क्षुधाके कारण इसे वायुरोग हो गया है इसीलिए यह हँसती हुई ऐसा बक रही है ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद परम आश्चर्यको प्राप्त हुई सीताने अत्यन्त उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणीमें इस प्रकार कहा कि जो समुद्रके भीतर विद्यमान महाभयदायक इस द्वीपमें कष्टको प्राप्त हुई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बन्धु यहाँ निकट आया है ॥३६-३७॥

तदनन्तर जिसके दर्शनकी प्रार्थना की गयी थी तथा जिसका मन सज्जनतासे युक्त था ऐसे हनुमान्ने इस प्रकार विचार किया कि ॥३८॥ जो मनुष्य दूसरेका कार्य आगे कर अर्थात् पहलेसे स्वीकृत कर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यन्त भीरु होनेके कारण नीच मनुष्य होता है ॥३९॥ और जो आपत्तिमें पड़े हुए दूसरे मनुष्यको आलम्बन देते हैं उन दयालु मनुष्योंका जन्म अत्यन्त निर्मल होता है ॥४०॥ इसके सिवाय अपने आपको प्रकट कर देनेमें पुरुषत्वकी कुछ हानि भी तो नहीं मालूम होती अपितु प्रकट कर देनेपर यशस्विनी लक्ष्मी संसारमें गौरवको प्राप्त होती है ॥४१॥ तदनन्तर हनुमान् भामण्डलको नाई हजारों उत्तम स्त्रियोंके बीच बैठी हुई सीताके समीप

उत्तमस्त्रीसहस्राणां ततो मध्यगताभिमां । प्रभामण्डलकल्पोऽसौ पद्मपत्नीमुपागमत् ॥४२॥
 निःशङ्कद्विपविकान्तः संपूर्णेन्दुसमाननः । सहस्रांशुसमो दीप्यता माल्याम्बरविभूषितः ॥४३॥
 रूपेणप्रतिमो युक्तः कान्त्या निर्भृगचन्द्रमाः । किरीटे वानरं बिभ्रदामोदाहतषट्पदः ॥४४॥
 चन्दनाचितसर्वाङ्गः पीतचर्चाविराजितः । ताम्बूलारक्तबिम्बोष्ठः प्रलम्बांशुकशोभितः ॥४५॥
 चलत्कुण्डलविद्योतविहसद्गण्डमण्डलः । परं संहननं बिभ्रद्वीर्येणान्तविवर्जितः ॥४६॥
 सर्पन् सीतां समुद्दिश्य हनूमान् गुणभूषणः । महाप्रतापसंयुक्तः शोभाभुषयौ पराम् ॥४७॥
 कान्तिमासिमुखं दृष्ट्वा तं युतं परया श्रिया । पद्मायतेक्षणा नार्यस्ता बभूवुः समाकुलाः ॥४८॥
 दधती हृदये कम्पं मन्दोदर्यासविस्मया । समालोक्य सीतायाः समीपे वायुनन्दनम् ॥४९॥
 उपगम्य ततः सीतां विनीतः पवनारामजः । करकुङ्कुमलमाधाय मस्तके नम्रतायुधि ॥५०॥
 कुलं गोत्रं च संश्राप्य पितरं जननीं तथा । अवेदयच्च विश्रब्धं पद्मनाथेन चोदितम् ॥५१॥
 त्रिविष्टपसमे साध्वि विमाने विभवान्विते । रतिं न लभते रामो मग्नस्त्वद्विरहाण्वे ॥५२॥
 त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो मौनं प्रायेण धारयन् । स त्वां मुनिरिव ध्यायन्नेकतानोऽवतिष्ठते ॥५३॥
 वेणुतन्त्रीसमायुक्तं गीतं प्रवरयोषिताम् । न कर्णजाहमेतस्य कदाचिद्याति पावने ॥५४॥
 सदा करोति सर्वस्मै कथां स्वामिनि ते मुदा । त्वदीक्षणाशया प्राणान् बद्ध्वा धत्ते स केवलम् ॥५५॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा पतिजीवनवेदनम् । प्रमोदं परमं प्राप्ता सीता विकमितेक्षणा ॥५६॥
 विषादं संगता भूयो जलपूरितलोचना । उच्चैः शान्ता हनूमन्तं विनीतं स्थितमग्रतः ॥५७॥

गया ॥४२॥ जो शंका रहित हाथीके समान पराक्रमी था, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर था, जो दीप्तिसे सूर्यके समान था, माला और वस्त्रोंसे सुशोभित था । रूपसे अनुपम था । कान्तिसे मृग रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ता था, मुकुटमें वानरका चिह्न धारण कर रहा था, सुगन्धिसे जो भ्रमरोंको आकर्षित कर रहा था, चन्दनसे जिसका समस्त शरीर चर्चित था, जो पीत विलेपनसे सुशोभित था, जिसका बिम्बोष्ठ ताम्बूलके रससे लाल था, जो नीचे लटकते हुए वस्त्रसे सुशोभित था, चंचल कुण्डलोंके प्रकाशसे जिसका गण्डस्थल सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट संहननको धारण कर रहा था, जिसके पराक्रमकी सीमा नहीं थी, जो गुणरूपी आभूषणोंसे युक्त था, तथा महाप्रतापसे सहित था ऐसा हनुमान् सीताको लक्ष्य कर धीरे-धीरे जाता हुआ परम शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥४३-४७॥ जिसका मुख कान्तिसे सुशोभित था, ऐसे उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हनुमान्को देखकर वे कमललोचना स्त्रियाँ व्याकुल हो उठीं ॥४८॥ जिसके हृदयमें कँपकँपी छूट रही थी ऐसी मन्दोदरीने सीताके समीप हनुमान्को आश्चर्यके साथ देखा ॥४९॥

तदनन्तर सीताके समीप पहुँचकर परम विनीत हनुमान्ने झुके हुए मस्तकपर अंजलि बाँध पहले अपने कुल, गोत्र तथा माता-पिताका नाम सुनाया । उसके बाद निश्चिन्त हो रामका सन्देश कहा ॥५०-५१॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते ! तुम्हारे विरहरूपी सागरमें डूबे राम, स्वर्गके समान वैभवसे युक्त विमानमें भी रतिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥५२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर वे प्रायः मौन धारण किये रहते हैं और मुनिकी भाँति एकाग्र चित्त हो तुम्हारा ध्यान करते हुए बैठे रहते हैं ॥५३॥ हे पावने—हे पवित्रकारिणि ! बाँसुरी तथा वीणासे युक्त उत्तम स्त्रियोंका संगीत कभी भी उनके कर्णमूलमें नहीं पहुँचता है ॥५४॥ हे स्वामिनि ! वे सदा सबके सामने बड़े हर्षसे तुम्हारी ही कथा करते रहते हैं और केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषासे ही प्राणोंको बाँधकर धारण किये हुए हैं ॥५५॥ इस प्रकार पतिके जीवनको सूचित करनेवाले हनुमान्के वचन सुन सीता परम प्रमोदको प्राप्त हुई । उसके नेत्र-कमल खिल उठे ॥५६॥

तदनन्तर विषादको प्राप्त, शान्त सीताने नेत्रमें जल भरकर सामने बैठे हुए विनय

साहमस्यामवस्थायां निमग्ना कपिलक्षणा । तुष्टा किं ते प्रयच्छामि हतेन विधिनान्विता ॥५८॥
 ऊचे च वायुपुत्रेण दर्शनेनैव ते शुभे । अद्य मे सुलभं सर्वं जातं जगति पूजिते ॥५९॥
 ततो मुक्ताफलस्थूलवाष्पविन्दुचिताधरा । सीता श्रीरिव दुःखार्ता पप्रच्छ कपिलक्षणां ॥६०॥
 मकरग्राहनादिक्षोभितं भीममर्णवम् । भद्रं दुस्तरमुल्लङ्घ्य विस्तीर्णं कथमागतः ॥६१॥
 अवस्थां वा गतामेतां कायसंसिद्धिमागताम् । किमर्थं मामिहागत्य नयस्याश्वासमुत्तमम् ॥६२॥
 लावण्यद्युतिरूपाढ्यः कान्तिसागरसंवृतः । श्रिया कीर्त्या च संयुक्तः प्रियो मे भद्र बान्धवः ॥६३॥
 प्रदेशे स त्वया कस्मिन् प्राणनाथो ममेक्षितः । सत्यं जीवति सद्गोत्रं कचिल्लक्ष्मणसंगतः ॥६४॥
 किं नु दुःखेचरैः संख्ये भीमैः व्यापादितोऽनुजः । लक्ष्मणेनैव तुल्यः स्यात्पद्मः पद्मामलोचनः ॥६५॥
 किं वा मद्विरहादुपद्रुःखं नाथः समाश्रितः । संदिश्य भवतः किंचिद्वने लोकान्तरं गतः ॥६६॥
 जिनेन्द्रविहिते मार्गे निःशेषग्रन्थवर्जितः । तपस्यन् किमसावास्ते भवनिर्घटपण्डितः ॥६७॥
 शिथिलीभूतनिःशेषशरीरस्य वियोगतः । अङ्गुलीतश्च्युतं प्राप्तं त्वया स्यादङ्गुलीयकम् ॥६८॥
 त्वया सह परिज्ञातिनीसीदेव मम प्रभोः । कार्येण रहितः प्राप्तः कथं त्वं तस्य मित्रताम् ॥६९॥
 न च प्रत्युपकाराय शक्ता तुष्टाप्यहं तव । अङ्गुलीयकमेतच्च समानीतं कृपावता ॥७०॥
 एतत्सर्वं मम भ्रातः समाचक्ष्व विशेषतः । सत्येन श्रावितः पित्रोर्देवस्य च मनोजुषः ॥७१॥
 इति वृष्टः समाधानी शाखामृगकिरीटभृत् । शिरस्थकरराजीवो जगाद विकचेक्षणः ॥७२॥

हनुमान्से कहा कि हे कपिध्वज ! मैं इस अवस्थामें निमग्न तथा दुर्भाग्यसे युक्त हूँ । सन्तुष्ट होकर तुझे क्या दूँ ? ॥५७-५८॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने कहा कि हे शुभे—हे मंगलरूपिणि ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शनसे ही मुझे संसारमें सब कुछ सुलभ हो गया है ॥५९॥ तदनन्तर मोतियोंके समान बड़ी-बड़ी अश्रुओंकी बूँदोंसे जिसका आँठ व्याप्त हो रहा था तथा जो दुःखसे पीड़ित लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सीताने हनुमान्से पूछा कि हे भद्र ! मकर—ग्राह तथा नाक आदिसे क्षोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लम्बे-चौड़े समुद्रको लाँघकर तू किस प्रकार आया है ? इस अवस्था अथवा कार्यकी सिद्धिको प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किस लिए उत्तम धैर्य प्राप्त करा रहा है ॥६०-६२॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कान्ति तथा रूपसे सहित, कान्तिरूपी सागरसे घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्तिसे युक्त मेरा प्यारा भाई ही है ॥६३॥ तूने मेरे प्राणनाथको कहाँ देखा था ? हे कुलीन ! क्या सचमुच ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मणके साथ कहीं जीवित हैं ? ॥६४॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधरोंके द्वारा युद्धमें छोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःखसे दुःखी हो कमललोचन राम भी उसीकी तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हों ॥६५॥ अथवा तुम्हें सन्देश देनेके बाद मेरे विरहसे अत्यन्त उग्र दुःखको प्राप्त हो नाथ, किसी वनमें लोकान्तरको प्राप्त हो गये हों ? ॥६६॥ अथवा वे संसारसे विरक्त रहनेमें निपुण थे अतः समस्त परिग्रहका त्यागकर जिनेन्द्र प्रणीत मार्गमें दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥६७॥ अथवा वियोगके कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीरामकी अँगुलीसे यह अँगूठी कहीं गिर गयी होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥६८॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामीका परिचय पहले नहीं था फिर बिना कारण तू उनकी मित्रताको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६९॥ तू दयालु होकर यह अँगूठा लाया है सो सन्तुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥७०॥ हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदयमें विद्यमान श्रीजिनेन्द्रदेवके कारण सत्य ही कथन करेगा ॥७१॥ इस प्रकार पूछे जानेपर चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वानर-चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रोंसे सहित हनुमान्, हस्त-कमल जोड़ मस्तकसे लगा इस प्रकार कहने लगा ॥७२॥ कि

१. प्राणनाथे म. । २. व्यापादितानुजः क., ख. । ३. ते पश्यन् (?) म. । ४. मनोजुषा ब. बारण-म. ।

सायके रविहासाख्ये लक्ष्मणेन निजीकृते । गत्वा चन्द्रनखानिष्टा रमणं समरोषयत् ॥७३॥
 यावदाहूयते स्वामी रक्षसां सुमहाबलः । दूषणस्तावदायातो योद्धुं दातारथिं द्रुतम् ॥७४॥
 लक्ष्मणो दूषणेनामा युध्यते यावदुद्धतम् । तावद्दशमुखः प्राप्तस्तमुद्देशं बलान्वितः ॥७५॥
 धर्माधर्मविवेकज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । भवतीं वीक्ष्य स क्षुब्धो बभूव मनसो वशः ॥७६॥
 भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च निस्सारीभूतचेतनः । मायासिंहस्वनं चक्रे भवतीस्तेनकारणम् ॥७७॥
 श्रुत्वा सिंहस्वनं पद्मो ययौ यावद्गणस्थितम् । लक्ष्मणं तावदेतेन पापेन त्वमिहाहता ॥७८॥
 प्रेषितः पद्मनाभश्च लक्ष्मणेन त्वरावता । गत्वा भूयस्तमुद्देशं न त्वामैक्षत सत्तमे ॥७९॥
 ततश्चिरं वनं भ्रान्त्वा त्वद्गवेषणकारणम् । ईक्षांचक्रे इत्यप्राणं मृत्युवासवं जटायुषम् ॥८०॥
 तस्मै दत्त्वा स जैनेन्द्रो म्रियमाणाय देशनाम् । अवतस्थे वने दुःखी भवतीगतमानसः ॥८१॥
 गतश्च लक्ष्मणः पद्मं निहत्य खरदूषणम् । आनीता रत्नजटिना त्वत्प्रवृत्तिः प्रियस्य ते ॥८२॥
 सुग्रीवरूपसंयुक्तः पद्मनाभेन साहसः । बलं हन्तुं समुद्युक्तो विद्यया वर्जितो हतः ॥८३॥
 कृतस्यास्योपकारस्य कुलपावनकारिणः । अहं प्रत्युपकाराय प्रेषितो गुरुबान्धवैः ॥८४॥
 प्रीत्या विमोचयामि त्वां विप्रहो निःप्रयोजनः । कार्यसिद्धिरिहामीष्टा सर्वथा नयशालिभिः ॥८५॥
 सोऽयं लङ्कापुरीनाथो घृणावान् विनयान्वितः । धर्मार्थकामवान् धीरो हृदयेन मृदुः परम् ॥८६॥
 सौम्यः कौर्यविनिर्मुक्तः सत्यव्रतकृतस्थितिः । करिष्यति वचो नूनं मम त्वामपयिष्यति ॥८७॥

जब लक्ष्मणने सूर्यहास खड्ग अपने आधीन कर लिया और चन्द्रनखाको जब राम-लक्ष्मणने चाहा नहीं तब उसने अपने पति खरदूषणको रोषयुक्त कर दिया अर्थात् विपरीत भिड़ाकर उसे कुपित कर दिया ॥७३॥ सहायताके लिए जबतक महाबलवान् राक्षसोंके स्वामी—रावणको बुलाया तबतक खरदूषण शीघ्र ही युद्ध करनेके लिए रामके समीप आया ॥७४॥ उधर लक्ष्मण जबतक खरदूषणके साथ विकट युद्ध करता है तबतक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थानपर आता है ॥७५॥ यद्यपि रावण धर्म-अधर्मके विवेकको जाननेवाला एवं समस्त शास्त्रोंका विशारद था, तो भी वह क्षुद्र आपको देख मनके वशीभूत हो गया ॥७६॥ तदनन्तर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गयी थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावणने आपको चुरानेके लिए मायामय सिंहनाद किया ॥७७॥ उस सिंहनादको सुन जबतक राम, युद्धमें स्थित लक्ष्मणके पास गये तबतक यह पापी तुम्हें हरकर यहाँ ले आया ॥७८॥ उधर लक्ष्मणने शीघ्र ही युद्धक्षेत्रसे रामको वापस किया सो वहाँसे आकर जब वे पुनः उस स्थानपर आये तब हे पतिव्रते! उन्होंने तुम्हें नहीं देखा ॥७९॥ तदनन्तर तुम्हें खोजनेके लिए चिरकाल तक वनमें भ्रमण कर उन्होंने शिथिल प्राण एवं मरणासन्न जटायुको देखा ॥८०॥ तदनन्तर उस मरणोन्मुखके लिए जिनेन्द्र धर्मका उपदेश देकर वे दुःखी हो वनमें बैठ गये । उस समय उनका मन एक आपमें ही लग रहा था ॥८१॥

लक्ष्मण, खरदूषणको मारकर रामके पास आये और रत्नजटो तुम्हारे पतिके लिए तुम्हारा वृत्तान्त ले आया ॥८२॥ इसी बीचमें सुग्रीवके रूपसे युक्त साहसगति नामका विद्याधर रामको मारनेके लिए उद्यत हुआ परन्तु रामके प्रभावसे विद्यासे रहित होनेके कारण वह स्वयं मारा गया ॥८३॥ इस प्रकार रामने हमारे कुलको पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार किया था उसका बदला चुकानेके लिए ही गुरुजनोंने मुझे भेजा है ॥८४॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक छुड़वाता हूँ । युद्ध करना निष्प्रयोजन है क्योंकि नीतिज्ञ मनुष्योंकी सब तरहसे कार्यकी सिद्धि करना ही संसारमें इष्ट है ॥८५॥ यह लङ्कापुरीका राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे सहित है, धीर है, हृदयसे अत्यन्त कोमल है ॥८६॥ सौम्य है, क्रूरतासे रहित है और सत्यव्रतका पालनेवाला है, अतः निश्चित ही मेरा कहा करेगा और तुम्हें मेरे लिए सौंप देगा ॥८७॥

कीर्तिरस्य निजा पाल्या धवला लोकविश्रुता । लोकापवादतश्चैष बिभेति नितरां कृती ॥८८॥
 ततः परं परिप्राप्ता प्रमोदं जनकात्मजा । हनूमन्तमिदं वाक्यं जगाद विपुलेक्षणा ॥८९॥
 पराक्रमेण धैर्येण रूपेण विनयेन च । कपिध्वजास्त्वया तुल्याः कियन्तो मत्प्रियाश्रिताः ॥९०॥
 मन्दोदरी ततोऽवोचच्छूराः सत्त्वयशोऽन्विताः । गुणोत्कटा न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ॥९१॥
 वैदेहि तव न ज्ञातः किमयं येन पृच्छसि । कपिध्वजः समानोऽस्य वास्येऽप्यस्मिन्न विद्यते ॥९२॥
 विमानवाहनघण्टासंघटपरिमण्डले । रणे दशमुखस्यायं प्राप्तः साहाय्यकं परम् ॥९३॥
 दशाननसहायत्वं कृतं येन महारणे । स हनूमानिति ख्यातश्चाज्जनानतनयः परः ॥९४॥
 महापदि निमग्नस्य दशवक्त्रस्य विद्विषः । खेडा मनोव्यधामिख्या एकेनानेन निर्जिताः ॥९५॥
 अनङ्गकुसुमा लब्धा येन चन्द्रनखात्मजा । गम्भीरस्य जनो यस्य सदा वाञ्छति दर्शनम् ॥९६॥
 अस्थ पौरसमुद्रस्य यः कान्तः शिशिरांशुवत् । सहोदरसमं वेत्ति यं लङ्कापरमेश्वरः ॥९७॥
 हनूमानिति विख्यातः सोऽयं सकलविष्टे । गुणैः समुन्नतो नीतो दूतत्वं क्षितिगोचरैः ॥९८॥
 अहो परमिदं चित्रं निन्दनीयं विशेषतः । नीतः प्राकृतवत्कश्चिद्भूगैर्यदभ्युत्थतामयम् ॥९९॥
 इत्युक्ते वचनं वातिर्जगाद स्थिरमानसः । अहो परममूढत्वं भवत्येदमनुष्ठितम् ॥१००॥
 सुखं प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वितः । अकार्यं वाञ्छतस्तस्य दीयते न मतिः कथम् ॥१०१॥
 आहारं भोक्तुकामस्य विज्ञातं विषमिश्रितम् । मित्रस्य कृतकामस्य कथं न प्रतिविध्यते ॥१०२॥

इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्तिकी भी तो रक्षा करनी है अतः यह विद्वान् लोकापवादसे बहुत डरता है ॥८८॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त हुई विशाललोचना सीता हनुमान्से यह वचन बोली कि पराक्रमसे, धैर्यसे, रूपसे और विनयसे तुम्हारी सदृशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज हमारे प्राणनाथके साथ हैं ? ॥८९-९०॥ तब मन्दोदरी बोली कि जो शूरवीर हैं, सत्त्व और यशसे सहित हैं, गुणोंसे उत्कट हैं तथा धीर-वीर हैं ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥९१॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे पूछ रही है ? इस भरत क्षेत्र-भरमें इसके समान दूसरा वानरध्वज नहीं है ॥९२॥

विमानों तथा नाना प्रकारके वाहनोंके समूहकी जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे संग्राममें यह रावणकी परम सहायता करता है ॥९३॥ जिसने महायुद्धमें रावणकी सहायता की है ऐसा यह हनुमान् इस नामसे प्रसिद्ध अंजनाका उत्कृष्ट पुत्र है ॥९४॥ एक बार रावण महा-विपत्तिमें फँस गया था तब उसके ऐसे अनेक शत्रु विद्याधरोंको इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुनने मात्रसे मनको पीड़ा होती थी ॥९५॥ जिसने चन्द्रनखाकी पुत्री अंग-कुसुमा प्राप्त की है । जो इतना गम्भीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥९६॥ जो यहाँके नागरिक जनरूपी समुद्रको वृद्धिगत करनेके लिए चन्द्रमाके समान मनोहर है और लंकाका अधिपति रावण जिसे भाईके समान समझता है ॥९७॥ ऐसा यह हनुमान् समस्त संसारमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट गुणोंका धारक है फिर भी भूमिगोचरियोंने इसे दूत बनाया है ॥९८॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है । इससे अधिक निन्दनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्यके समान, भूमिगोचरियों-ने दासता प्राप्त करायी है अर्थात् अपना दास बनाया है ॥९९॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर दृढ़चित्तके धारक हनुमान्ने इस प्रकार कहा कि अहो ! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम मूर्खता की है ॥१००॥

जिसके प्रसादसे वैभवके साथ सुखपूर्वक जीवन बिताया जा रहा है वह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥१०१॥ इच्छानुसार काम करनेवाला मित्र यदि विषमिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्यों नहीं किया जाता

भवितव्यं कृतज्ञेन जनेन सुखमीयुषा । वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम् ॥१०३॥
 मन्दोदरि परं गर्वं निःसारं वहसे मुधा । यदग्रमहिषी भूत्वा दूतीत्वमसि संश्रिता ॥१०४॥
 क यातमधुना तत्ते सौभाग्यं रूपमुन्नतम् । अन्यस्त्रीगतचित्तस्य दूतीत्वं संश्रितासि यत् ॥१०५॥
 प्राकृता परमा सा त्वं वर्त्तसे रतिवस्तुनि । महिषीत्वं न मन्येऽहं जाता गौरसि दुर्भगे ॥१०६॥
 मन्दोदरी ततोऽवोचत् कोपालिङ्गितमानसा । अहो तव सदोषस्य प्रगल्भत्वं निरर्थकम् ॥१०७॥
 दूतत्वेनागतं सीतां यदि त्वां वेत्ति रावणः । भवेत्प्रकरणं तत्ते जातं यज्ञैव कस्यचित् ॥१०८॥
 येनैवेन्दुनखानाथो दैवयोगेन मारितः । पुरस्कृत्य तमेवास्य कथं सुग्रीवकादयः ॥१०९॥
 भृत्यत्वं दशवक्त्रस्य विस्मृत्य स्वल्पचेतसः । स्थिताः किमथवा कुर्युर्वराकाः कालचोदिताः ॥११०॥
 अतिमूढहतात्मानो निर्लज्जाः क्षुद्रवृत्तयः । अकृतज्ञा वृधोत्सिक्ताः स्थितास्ते मृत्युसंनिधौ ॥१११॥
 इत्युक्ते वचनं सीता जगौ कोपसमाश्रिता । मन्दोदरि सुमन्दा त्वमेवं या कृत्यसे वृथा ॥११२॥
 शूरकोविद्गोष्ठीषु कीर्त्यमानो न किं त्वया । प्रियो मे पद्मनाभोऽसौ श्रुतोऽस्यद्भुतविक्रमः ॥११३॥
 वज्रावर्तधनुर्धोषं श्रुत्वा यस्य रणागमे । भयज्वरितकम्पाङ्गाः सीदन्ति रणशालिनः ॥११४॥
 लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । शत्रुपक्षक्षयं कर्तुं समर्थो वीक्षणादपि ॥११५॥
 किमत्र बहुनोक्तेन समुत्तीर्य महार्णवम् । पतिरेष समायाति लक्ष्मणेन समन्वितः ॥११६॥

है ? ॥१०२॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिए । जो सुखदायकके लाभको नहीं समझता है उसका जीवन पशुके समान है ॥१०३॥ हे मन्दोदरि ! तुम व्यर्थ ही निःसार गर्व धारण करती हो जो पटराज्ञी होकर भी दूतीका कार्य कर रही हो ॥१०४॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नत रूप इस समय कहाँ गया जो परस्त्रीसक्त पुरुषको दूती बनने बैठी हो ? ॥१०५॥ जान पड़ता है कि तुम रतिकार्यके विषयमें अत्यन्त साधारण स्त्री हो गयी हो । अब मैं तुममें महिषीत्व (पट्टरानीपना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गी हो गयी हो ॥१०६॥

तदनन्तर जिसका मन क्रोधसे आलिङ्गित हो रहा था ऐसी मन्दोदरीने कहा कि अहो ! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता बता रहा है—बढ़-बढ़कर बात कर रहा है ॥१०७॥ तू दूत बनकर सीताके पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसीकी नहीं हुई होगी ॥१०८॥ जिसने देव योगसे चन्द्रनखाके पति—खरदूषणको मारा है उसीको आगे कर ये क्षुद्रचेता सुग्रीवादि रावणकी दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यमके प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥१०९-११०॥ जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यन्त मूढ़तासे उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, क्षुद्रचेष्टाके धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकारमें फूल रहे हैं ऐसे वे सब मृत्युके निकट आ पहुँचे हैं ॥१११॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे मन्दोदरि ! तू अत्यन्त मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥११२॥

शूरवीर तथा विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिनकी अत्यन्त प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रमके धारक हैं ऐसे मेरे पति रामका नाम क्या तूने नहीं सुना है ? ॥११३॥ रणके प्रारम्भमें जिनके वज्रावर्त धनुषका शब्द सुनकर युद्धमें निपुण मनुष्य ज्वरसे कांपते हुए दुःखी होने लगते हैं ॥११४॥ जिसके शरीरमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखने मात्रसे शत्रुपक्षका क्षय करनेमें समर्थ है ॥११५॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हमारा पति लक्ष्मणके साथ समुद्रको तैरकर अभी आता है ॥११६॥

१. वज्रावर्त धनुर्धोषं म. ।

पश्याम्यभ्यं पतिं युद्धे स्वरूपकैरेव वासरैः । निहतं मम नाथेन जगदुत्कटतेजसा ॥११७॥
 एषा गन्तासि वैधव्यं क्रन्दस्येषा विरोज्जिता । या त्वं पापतेर्मर्तुरनुकूलत्वमागता ॥११८॥
 मयदैत्याध्मजा तीव्रमेवमुक्तिकोपणा । परमं क्षोभमायाता कम्पमानाऽधराधरा ॥११९॥
 एका नानासपत्नीनां सहस्रैः संभ्रमस्पृशाम्^१ । अष्टादशमिरत्युग्रैः कोपकम्पितमूर्तिभिः ॥१२०॥
 समं करतलैर्हन्तुमुद्यता वेगधारिभिः । निर्मत्स्यमतिक्रूरैराक्रोशैः कुर्वती भुशम् ॥१२१॥
 श्रीमांस्तावन्मरुपुत्रः समुत्थाय जवान्वितः । अवस्थितोऽन्तरे तासां सरितामिव भूधरः ॥१२२॥
 ता दुःखहेतवः सर्वा वैदेहीं हन्तुमुद्यताः । वेदना इव वैद्येन श्रीशैलेन निवारिताः ॥१२३॥
 पादताडितभूभागा विभूषादरवर्जिताः । ययुः क्रूराक्षयाः सर्वा वनितास्ता दशाननम् ॥१२४॥
 आज्ञेन ततः सीता प्रणिपत्य महादरम् । विज्ञापिता सुवाक्येन भोजनं प्रति साधुना ॥१२५॥
 समर्थितप्रतिज्ञासौ सुनिर्मलमनोरथा । अभ्युपागच्छदाहारं कालदेशज्ञमनसा ॥१२६॥
 ससागरा महो देवि रामदेवस्य शासने । वर्त्तते तेन नैवेदमन्नं सत्यकृतमर्हसि ॥१२७॥
 एवं हि बोधिता तेन वैदेही कण्ठावनिः । ऐच्छदन्नं यतः साध्वी सर्वाचारविचक्षणा ॥१२८॥
 इरा नाम ततस्तेन चोदिता कुलपालिता । यथान्नं प्रवरं श्लाघ्यं हुतमानीश्रतामिति ॥१२९॥
 मुक्ता कन्या स्वशिविरं श्रीशैलेन क्षपाक्षये । मानावभ्युदिते जातो विभीषणसमागमः ॥१३०॥

तू कुछ ही दिनोंमें लोकोत्तर तेजके धारक मेरे पतिके द्वारा अपने पतिकी युद्धमें मरा हुआ देखेगी ॥११७॥ जो तू पापमें प्रीति रखनेवाले पतिकी अनुकूलताको प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्यको प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकाल तक रुदन करेगी ॥११८॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर जो अत्यन्त कोपको प्राप्त हो रही थी तथा जो कांपते हुए ओठको धारण कर रही थी ऐसी मन्दोदरी परम क्षोभको प्राप्त हुई ॥११९॥ यद्यपि मन्दोदरी एक थी तो भी वह सम्भ्रमको प्राप्त तथा क्रोधसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाली अपनी अठारह हजार सपत्नियोंके साथ सीताको वेगशाली करतलसे मारनेके लिए उद्यत हुई । वह उस समय अत्यन्त क्रूर अपशब्दोंसे उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥१२०-१२१॥ उसी समय लक्ष्मीसे सुशोभित तथा वेगसे युक्त हनुमान् उठकर उन सबके बीचमें उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियोंके बीच कोई पर्वत आ खड़ा होता है ॥१२२॥ दुःखकी कारण, तथा सीताको मारनेके लिए उद्यत उन सब स्त्रियोंको हनुमान्ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओंको रोक देता है ॥१२३॥ तदनन्तर जो पैरोंसे पृथिवीके प्रदेश ताडित कर रही थीं तथा जिन्होंने आभूषण धारण करनेका आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली वे सब स्त्रियाँ रावणके पास गयीं ॥१२४॥

तदनन्तर साधु स्वभावके धारक हनुमान्ने बड़े आदरके साथ सीताको प्रणाम कर उत्तम वचनोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥१२५॥ सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी, जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश कालका ज्ञाता था ऐसी सीताने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥१२६॥ प्रार्थना करते समय हनुमान्ने इस प्रकार समझाया था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी राम देवके शासनमें है इसलिए यहाँका यह अन्न छोड़नेके योग्य नहीं है ॥१२७॥ इस प्रकार समझाये जानेपर दयाकी भूमि सीताने अन्न ग्रहण करनेकी इच्छा की थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ॥१२८॥ तदनन्तर हनुमान्ने इरा नामकी कुलपालितासे कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशंसनीय अन्न लाओ ॥१२९॥ इस प्रकार कहनेपर कन्या अपने शिविर अर्थात् डेरेमें गयी और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होनेपर हनुमान्का विभीषणके साथ समागम हुआ ॥१३०॥

आहारो वायुपुत्रेण तत्र भुक्तो मनोहरः । एवं कर्तव्ययोगो मुहूर्तास्ते त्रयो गताः ॥१३१॥
 मुहूर्तं चतुर्थं नु समानीतमिरास्रिया । आहारं मैथिलीमुक्तमिति जानन्ति कीविदाः ॥१३२॥
 चन्दनादिभिरालिसे भूतले दर्पणप्रभे । पुण्योपकारसंपन्ने नलिनीपत्रशोभिनि ॥१३३॥
 सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं पथ्यं पेयादिपूर्वकम् । स्थाल्यादिभिर्महापात्रैः सौवर्णादिभिराहृतम् ॥१३४॥
 घृतसूपैदिभिः काश्चित्पात्राण्यो राजन्ति पूरिताः । कुन्दपुष्पसमच्छादैः^१ शालीनां काश्चिदोदनैः ॥१३५॥
 षट्सैरुपदंशैश्च काश्चिदोदनकारिभिः । व्यञ्जनैस्तरलैः काश्चिद्विण्डीबन्धोचितैस्तथा ॥१३६॥
 पयसा संस्कृतैः काश्चिदन्याः परमदाधिकैः । लहैः काश्चिन्महास्वादैरन्याः^२ पश्यान्निपेक्षितैः ॥१३७॥
 एवं परममाहारमिरा परिजनान्विता । हनूमन्तं पुरस्कृत्य भ्रातृभावेन वत्सला ॥१३८॥
 महाश्रद्धान्वितस्त्वान्ता प्रणिपत्य जिनेश्वरान् । समाप्य नियमं धीरा ध्यातातिथिसमागमा ॥१३९॥
 निधाय हृदये रामममिरामं पतिव्रता । पवित्राङ्गा दिने भुङ्क्ते साधुलोकप्रपूजितम् ॥१४०॥
 रविरश्मिकृतोद्योतं सुपवित्रं मनोहरम् । पुण्यवर्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते ॥१४१॥
 निवृत्तभोजनविधिः किञ्चिद्विश्रद्धतां गता । विज्ञापितेति श्रूयोऽपि सीता पवनसूनुना ॥१४२॥
 आरोह देवि मे स्कन्धे पवित्रे गुणभूषणे । समुल्लङ्घ्य नदीनाथं नेष्यामि भवतीं क्षणात् ॥१४३॥
^३ पश्य तं विमवैर्युक्तं राघवं स्वत्परायणम् । भवद्योगसमानन्दं जनोऽनुभवतु प्रियः ॥१४४॥

हनुमान्ने विभोषणके घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया । इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन मुहूर्त निकल गये ॥१३१॥ तदनन्तर चतुर्थ मुहूर्तमें इरा, सीताके भोजनके योग्य आहार ले आयी ॥१३२॥ वहाँकी भूमि चन्दनादिसे लीपकर दर्पणके समान स्वच्छ की गयी, फूलोंके उपकारसे सजायो गयी जिससे वह कमलिनी पत्रके समान सुशोभित हो उठी ॥१३३॥ स्वर्ण आदिसे बने हुए स्थाली आदि बड़े-बड़े पात्रोंमें सुगन्धित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥१३४॥ वहाँ कितनी ही थालियाँ दाल आदिसे भरी हुई सुशोभित हो रही थीं, कितनी ही कुन्दके फूलके समान उज्ज्वल धानके भातसे युक्त थीं ॥१३५॥ कितनी ही थालियाँ रुचि बढ़ानेवाले षट्सके भोजनोंसे परिपूर्ण थीं, कितनी ही पतली तथा कितनी ही पिण्ड बँधनेके योग्य व्यंजनोंसे युक्त थीं ॥१३६॥ कितनी ही दूधसे निर्मित, कितनी ही दहीसे निर्मित पदार्थोंसे युक्त थीं, कितनी ही चाटनेके योग्य रबड़ी आदिसे, कितनी ही महास्वादयुक्त भोजनोंसे तथा कितनी ही भोजनके बाद सेवन करने योग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण थीं ॥१३७॥ इस प्रकार इरा अपने परिजनके साथ उत्तम आहार ले आयी, सो हनुमान्को आगे कर जिसके भाईका स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीताने हृदयमें महाश्रद्धा धारण कर जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया, 'जबतक पत्तिका समाचार नहीं मिलेगा तबतक आहार नहीं लूँगी' यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरतासे समाप्त किया । अतिथियोंके समागमका विचार किया, स्नानादिकसे शरीरको पवित्र किया । तदनन्तर अभिराम (मनोहर) रामको हृदयमें धारण कर उस पतिव्रताने दिनके समय साधुजनोंके द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित है, अतिशय पवित्र है, मनोहर है, पुण्यको बढ़ानेवाला है, आरोग्यदायक है और दिनमें ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥१३८-१४१॥

तदनन्तर भोजन करनेके बाद जब सीता कुछ विश्रामको प्राप्त हो चुकी तब हनुमान्ने जाकर उससे पुनः इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि ! हे पवित्रे ! हे गुणभूषणे ! मेरे कन्धेपर चढ़ो मैं समुद्रकी लांघकर अभी क्षण-भरमें आपको ले चलूँगा ॥१४२-१४३॥ तुम वैभवसे युक्त एवं तुम्हारे ध्यानमें तत्पर रहनेवाले रामके दर्शन करो तथा प्रेमी जन—मित्रगण आप दोनोंके

१. घृतसूपैदिभिः म. । २. शालीनैः म. । ३. रन्ध्रैः म. । ४. पश्यन्तं म. ।

ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा रुदती जनकात्मजा । जगादादरसंयुक्ता विचिन्तितयथास्थितिः ॥१४५॥
 'अन्तरेण प्रमोराज्ञौ गमनं मे न युज्यते । इत्यवस्थां गता दास्ये तस्मै किमहमुत्तरम् ॥१४६॥
 प्रत्येति नाबुता लोकः शुद्धिं मे मृत्युना विना । नाथ एव ततः कृत्यं मम ज्ञास्यति सांप्रतम् ॥१४७॥
 यावन्नोपद्रवः कश्चिज्जायते दशवक्त्रकात् । तावद्भज द्रुतं भ्रातर्नालम्बनमिह क्षणम् ॥१४८॥
 त्वया मद्रचनाद् वाच्यः सम्यक् प्राणमहेश्वरः । अभिधानैरिमैर्मूर्ध्नि निधाय करकुड्मलम् ॥१४९॥
 तस्मिन् देव मया सार्द्धं मृत्यो व्योमचारिणः । वन्दिताः परमं भक्त्या त्वया स्तवनकारिणा ॥१५०॥
 विमलाम्बुसि पद्मिन्या नितरासुपशोभिते । सरसि क्रीडतां स्वेच्छमस्माक्रमतिसुन्दरम् ॥१५१॥
 आरप्यकस्तदा हस्ती समायातो मयंकरः । ततो मया समाहूतस्त्वमुन्मग्नो जलान्तरात् ॥१५२॥
 उद्दामाऽसौ महानागाश्चापक्रीडनकारिणा । समस्तं त्याजितो दुर्पं भवता निश्चलीकृतः ॥१५३॥
 आसीच्च तन्दनच्छाये वने पुष्पमरानते । शाखां पल्वलोभेन नमयन्ती प्रयासिनी ॥१५४॥
 भ्रमद्भिश्चञ्चलैर्मृङ्गैरभिभूता ससंभ्रमा । भुजाभ्यां भवताश्चिष्य जनिताकुलतोऽजिता ॥१५५॥
 उद्यन्तमन्यदा भातुं माहेन्द्रीदिग्विभूषणम् । अहमग्मोजपण्डस्य त्वया सह तटे स्थिता ॥१५६॥
 अशंसिषं ततः किञ्चिदोष्यारसमुपेयुषा । बालेनोत्पलनालेन मधुरं ताडिता त्वया ॥१५७॥
 अन्यदा रतिशैलस्य प्राग्भारस्य मया प्रिय । पृष्ठस्त्वमिति विभ्रत्या कौतुकं परशोभया ॥१५८॥
 एतस्मिन् कुसुमैः पूर्णा विपुला स्निग्धताज्जुवः । किनामानो दुमा नाथ मनोहरणकोविदाः ॥१५९॥

समागमसे उत्पन्न होनेवाले हर्षका अनुभव करें ॥१४४॥ तदनन्तर सब स्थितिका यथायोग्य विचार करनेवाली एवं आदरसे संयुक्त सीताने हाथ जोड़कर रोती हुई यह कहा कि स्वामीकी आज्ञाके बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । इस अवस्थामें पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगी ॥१४५-१४६॥ इस समय लोग मृत्युके बिना मेरी शुद्धिका प्रत्यय नहीं करेंगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्यको योग्य जानेंगे ॥१४७॥ हे भाई ! जबतक रावणकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं होता है तबतक तू शीघ्र ही यहाँसे चला जा । यहाँ क्षणभर भी विलम्ब मत कर ॥१४८॥ तू हाथ जोड़ मस्तकसे लगा, इन परिचायक कथानकोंके साथ-साथ मेरे वचनोंमें प्राणनाथसे अच्छी तरह कहना कि हे देव ! उस वनमें एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बड़ी भक्तिसे आकाशगामी मुनियोंकी वन्दना की थी ॥१४९-१५०॥ एक बार निर्मल जलसे युक्त तथा कमलिनियोंसे सुशोभित सरोवरमें हम लोग इच्छानुसार सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमें एक भयंकर जंगली हाथी वहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जलके मध्यसे तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥१५१-१५२॥ और सुन्दर क्रीड़ा करते हुए आपने उस उद्दण्ड महाहस्तीका सब गर्व लुड़ाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥१५३॥ एक बार तन्दनवनके समान सुन्दर तथा फूलोंके भारसे झुके हुए वनमें, मैं नूतन पत्रोंके लोभसे प्रयत्नपूर्वक वृक्षकी एक शाखाको झुका रही थी । तब उड़ते हुए चंचल भ्रमरोने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ घबड़ायी हुईको आपने अपनी भुजाओंसे आलिंगन कर लुड़ाया था ॥१५४-१५५॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवनके तटपर बैठी थी उसी समय पूर्व दिशाके आभूषणस्वरूप सूर्यको उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसा की थी तब आपने कुछ ईर्ष्यारसको प्राप्त हो मुझे नीलकमलकी एक छोटी-सी दण्डीसे मधुर रीतिसे ताडित किया ॥१५६-१५७॥ एक बार रतिगिरिके शिखरपर अत्यधिक शोभाके कारण कौतुकको धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय ! इधर फूलोंसे परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धताको धारण करनेवाले एवं मनके हरण करनेमें निपुण ये कौन-से वृक्ष हैं ? ॥१५८-१५९॥

१. विना । २. समाहृतः म. । ३. उद्दामोऽसौ म. । ४. रतिभूता म. ।

ततस्त्वयेति पृष्टेन प्रसन्नमुखशोभिना । आख्यातमिति देव्येते यथा नन्दिदुमा इति ॥१६०॥
 कर्णकुण्डलनद्याश्च स्थितास्तोरे वयं यदा । तदा संनिहितौ जातौ मध्याह्ने व्योमगौ मुनी ॥१६१॥
 स्वया मया च भिक्षार्थं तयोरागतयोस्ततः । अभ्युत्थाय महाश्राद्धं रचितं पूजनं महत् ॥१६२॥
 अन्नं च परमं ताभ्यां दत्तं विधिसमन्वितम् । पञ्च चातिशया जातास्तत्प्रभावेन सुन्दराः ॥१६३॥
 पात्रदानमहोदानं महादानमिति ध्वनिः । अन्तरिक्षेऽमरैश्चक्रे साधु सम्यग्ध्वनिश्रितः ॥१६४॥
 अदृष्टतनुमिदं वै दुन्दुभिः सध्वनिः कृतः । पपात गगनाद्दृष्टिः कौसुमी भृङ्गनादिता ॥१६५॥
 सुखशीतो ववौ वायुः सुगन्धिर्नरिजो मृदुः । मणिस्तनसुवर्णाङ्गा धाराश्रममपूरयत् ॥१६६॥
 चूडामणिमिमं चोद्धूतं दृढप्रत्ययकारणम् । दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यात्यन्तमयं प्रियः ॥१६७॥
 जानामि नाथ ते मावं प्रसादिनमलं मयि । तथापि यत्नतः प्राणाः पाल्याः संगमनाश्रया ॥१६८॥
 प्रमादाद्भवतो जातो वियोगोऽयं मया सह । सांप्रतं त्वयि यत्नस्थे संगमो नौ^२ विसंशयः ॥१६९॥
 ह्युक्ते रुदतीं सीतां समाश्रय्य प्रयत्नतः । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा^३ निरैसीताप्रदेशतः ॥१७०॥
 पाण्यङ्गुलीयकं सीता तदाशक्तशरीरिका । मानसस्य कृताश्वासं मेने पत्युः समागमम् ॥१७१॥
 अयोधानगता नार्यस्तत्सारङ्गलोचनाः । वायुनन्दनमालोक्य स्मितविस्मितसंगताः ॥१७२॥
 परस्परं समालापमिति कर्तुं समुद्यताः । अस्य पुष्पनगस्योद्धूर्व^१ कोऽप्यहो नरपुङ्गवः ॥१७३॥
 अवतीर्णः किमेष स्याद्विग्रही कुसुमायुधः । देवः कोऽपि तु शैलस्य शोभां द्रष्टुं समागतः ॥१७४॥

तब इस प्रकार पूछे जानेपर आपने प्रसन्न मुखमूद्रासे सुशोभित हुए कहा कि हे देवि ! ये नन्दि वृक्ष हैं ॥१६०॥ एक बार हम सब कर्णकुण्डल नदीके तीरपर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न कालमें दो आकाशगामी मुनि निकट आये थे ॥१६१॥ तब आपने और मैंने उठकर, भिक्षाके लिए आये हुए उन मुनियोंकी बड़ी श्रद्धाके साथ विशाल पूजा की थी ॥१६२॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभावसे वहाँ अत्यन्त सुन्दर पंच आश्चर्य हुए थे ॥१६३॥ आकाशमें देवोंने यह मधुर शब्द किये कि अहो ! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥१६४॥ जिनका शरीर दोख नहीं रहा था ऐसे देवोंने दुन्दुभि बाजे बजाये, आकाशसे जिसपर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पवृष्टि हुई ॥१६५॥ सुखकारी, शीतल, सुगन्धित एवं धूलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्णकी धाराने उस आश्रमको भर दिया था ॥१६६॥ हे भाई ! इसके बाद दृढ़ विश्वासका कारण यह उत्तम चूडामणि प्राणनाथको दिखाना, क्योंकि यह उन्हें अत्यन्त प्रिय था ॥१६७॥ ऊपरसे यह सन्देश कहना कि हे नाथ ! आपका मुझपर अतिशय प्रसन्नतासे भरा जो भाव है उसे मैं यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागमकी आशासे प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥१६८॥ प्रमादके कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परन्तु इस समय जबकि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनोंका समागम निःसन्देह होगा ॥१६९॥ इतना कहकर सीता रोने लगी, तदनन्तर उसे प्रयत्नपूर्वक सान्त्वना देकर और 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर हनुमान्, सीताके उस स्थानसे बाहर निकल आया ॥१७०॥ उस समय जिसका शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीताने अँगूठीको हाथमें पहनकर ऐसा माना था मानो मनको आनन्द देनेवाला पतिका समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥१७१॥

अथानन्तर उस उद्यानमें भयभीत मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली जो स्त्रियाँ थीं वे हनुमान्को देख मन्द मुसकान और आश्चर्यसे युक्त हो परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं कि अहो ! इस फूलोंके पर्वतके ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीर-धारी कामदेव है ? अथवा पर्वतकी शोभा देखनेके लिए कोई देव आया है ? ॥१७२-१७४॥

१. चोर्ध्व म., ख. । २. आवयोः । ३. निरगच्छत् ।

तासामाकुलिका काचिन्निधाय शिरसि स्रजम् । उपवीणनमारेभे कर्तुं किन्नरनिस्वना ॥१७५॥
 काचिदिन्दुमुखी वामे हस्तेऽवस्थाप्य दर्पणम् । दिदृक्षन्ती समालोक्य तं बभूवान्यथामनाः ॥१७६॥
 ईषत्काचिदभिज्ञाय वधुरिदमचिन्तयत् । अलब्धद्वारसंमानः कुतो मारुतिरागतः ॥१७७॥
 वरस्त्रीजनमुद्याने कृत्वा संभ्रान्तमानसम् । हारमाल्याम्बरधरो मास्वान् वह्नि कुमारवत् ॥१७८॥
 निसर्गकान्तया गत्वा प्रदेशं किञ्चिद्भ्यगात् । तथाविधां च तां वार्त्तामशृणोद्वाक्षसाधिपः ॥१७९॥
 क्रोधसंप्लुष्टचित्तेन निरपेक्षत्वमीयुषा । तावदाज्ञापिताः शूरा रावणेनोऽग्रकिङ्कराः ॥१८०॥
 विचारेण न चः कृत्यं पुष्पोद्यानान्निरति यः । मद्द्रोही कोऽप्ययं क्षिप्रं नीयतामन्तमायुषः ॥१८१॥
 अमी ततः समागत्य दध्युर्विस्मयमागताः । किमिन्द्रजिन्नरेशः स्याद्वास्करः श्रवणोऽथवा ॥१८२॥
 पश्यामस्तावदित्युक्त्वा तैरित्युक्तं समन्ततः । भो भो शृणुत निःशेषा उद्यानस्याभिरक्षकाः ॥१८३॥
 किं तिष्ठत सुविश्रब्धाः किङ्कराः कृतितां धृताः । किमिति श्रुतमस्माभिः कथ्यमानमिदं बहिः ॥१८४॥
 कोऽप्युद्यामतथोद्यानं प्रविष्टो दुष्टखेचरः । स क्षिप्रं मार्यतामेष गृह्यतां दुर्विनीतकः ॥१८५॥
 धावध्वमसकौ कोऽसौ सोऽयमेव यतः कुतः । कस्य कस्तादृशः क्वेति किङ्करध्वनिरुद्गतः ॥१८६॥
 ततः कामुकिकान् दृष्ट्वा शक्तिकान् गदिकांश्च तान् । खड्गिकान् कौन्तिकान् बद्धसंघातानायतो बहून् ॥१८७॥
 किञ्चित् संभ्रान्तधीर्वर्तिर्मुग्धाधिपपराक्रमः । रत्नशाखामृगच्छायाससु दीपितपुष्करः ॥१८८॥
 अवरोहंस्ततो देशात्तैरदृश्यत किङ्करैः । आकुलत्वविनिर्मुक्तः प्रलम्बं बिभ्रदम्बरम् ॥१८९॥

उन स्त्रियोंमें कामसे आकुल होकर कोई स्त्री सिरपर माला रख किन्नरके समान मधुर स्वरसे वीणा बजाने लगी ॥१७५॥ कोई चन्द्रमुखी बायें हाथमें दर्पण रख उसमें हनुमान्का प्रतिबिम्ब देखनेकी इच्छा करती हुई अन्यथा चित्त हो गयी ॥१७६॥ कोई स्त्री कुछ-कुछ पहचानकर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वारपर सम्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहाँ कहाँ आ गया ? ॥१७७॥ इस प्रकार वनमें स्थित उत्तम स्त्रियोंको सम्भ्रान्त चित्त कर हार, माला तथा उत्तम वस्त्रोंको धारण करनेवाला एवं अग्निकुमारके समान देदीप्यमान हनुमान्, अपनी स्वभावसुन्दर चालसे किसी स्थानकी ओर जा रहा था कि रावणने यह सब समाचार सुना ॥१७८-१७९॥ सुनते ही जिसका चित्त आगबबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भावको प्राप्त हो चुका था—सब प्रकारका स्नेह भुला चुका था ऐसे रावणने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किकरोंको आज्ञा दी कि तुम लोगोंको विचार करनेसे प्रयोजन नहीं है । पुष्पोद्यानसे जो पुष्प बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयुका अन्त कराया जाये—मारा जाये ॥१८०-१८१॥

तदनन्तर किकर आकर आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इन्द्रको जीतनेवाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है ? ॥१८२॥ अथवा कुछ भी हो चलकर देखते हैं इस प्रकार कहकर उन्होंने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यानके समस्त रक्षको ! सुनो, तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हो ? हमने उद्यानके बाहर चर्चा सुनी है कि कोई एक दुष्ट विद्याधर अपनी उद्दण्डतासे उद्यानमें प्रविष्ट हुआ है सो यह क्या बात है ? उस दुर्विनीतको शीघ्र ही मारा जाये अथवा पकड़ा जाये ॥१८३-१८५॥ रावणके प्रधान किकरोंकी बात सुनकर उद्यानके किकरोंने 'दौड़ो, कौन है वह, यहीं कहीं होगा, वह किसका कौन है ? उसके समान कौन कहाँ ?' इस प्रकारका हल्ला मचाया ॥१८६॥ उन किकरोंमें कोई धनुष लिये हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदाके धारक थे, कोई तलवारोंसे युक्त थे, कोई भाले सँभाले हुए थे, और कोई झुण्ड-के-झुण्ड बनाकर बहुसंख्यामें आ रहे थे । उन सबको देख हनुमान्के मनमें कुछ सम्भ्रम उत्पन्न हुआ परन्तु वह तो सिंहके समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी बानर-जैसे कान्तिसे आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥१८७-१८८॥ तदनन्तर आकुलतासे रहित एवं लटकते

ततस्तमुद्यदादित्यमण्डलप्रतिमस्विषम् । प्रदष्टाधरमालोक्य विशीर्णाः किङ्करा गणाः ॥१९०॥
 ततः किलापरैः क्रूरैः प्रख्यातैः किङ्कराधिपैः । तत्किङ्करबलं गच्छदितश्चेतश्च धारितम् ॥१९१॥
 शक्तितोमरचक्रासिगदाकारमुक्तापाणयः । सर्वतो वास्तुर्णन्नेतं मुखराः किङ्करास्ततः ॥१९२॥
 मुमुक्षुश्च घनं शस्त्रं ज्येष्ठवाता यथा युज्यते । अदृष्टमास्करोद्योताः परं संघातवर्त्तिनः ॥१९३॥
 उत्पात्य वायुपुत्रोऽपि निःशस्त्रो धीरपुङ्गवः । संघातं तुङ्गवृक्षाणां शिलानां वारमक्षिपत् ॥१९४॥
 भीमभोगिमहद्भोगमास्वजुज्ज्वरितैः । पादपादिभिराहिंसन् कालमेघ इवोन्नतः ॥१९५॥
 अश्वस्थान् शालन्यग्रोधान्निदचम्पककेसरान् । नीपाशोककदम्बांश्च पुन्नागानर्जुनान् धवान् ॥१९६॥
 आम्रानाम्रातकांल्लोघ्रां (स्तृणराजान्) स्पर्धायसैः । विशालान् पनसाद्यांश्च चिक्षेप क्षेपवर्जितः ॥१९७॥
 बभञ्ज त्वरितं कांश्चिदपराधुनमूलयत् । मुष्टिपादप्रहारेण पिपेषान्यान् महाबलः ॥१९८॥
 'आकूपारसमं तेन सैन्यमेकेन तत्कृतम् । समाकुलं गतं कापि क्षणेन प्रियजीवितम् ॥१९९॥
 सहायैर्मृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम् । कियद्भिरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ॥२००॥
 पुष्पाद्रेवतीर्णस्य कैकुब्जलयरोधनम् । भूयो युद्धमभूदुग्रं प्रान्तविध्वस्तकिङ्करम् ॥२०१॥

हुए लम्बे वस्त्रको धारण करनेवाला हनुमान् जब उद्यानके उस प्रदेशसे नीचे उतर रहा था तब किकरोंने उसे देखा ॥१८९॥ उस समय क्रोधके कारण हनुमान्की कान्ति उदित होते हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ चबा रहा था । उसे देख किकरोंके झुण्ड भाग खड़े हुए ॥१९०॥ तदनन्तर जो किकरोंमें प्रधान क्रूर एवं प्रसिद्ध दूसरे किकर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किकरोंके दलको इकट्ठा किया ॥१९१॥ तदनन्तर जिनके हाथमें शक्ति, तोमर, चक्र, खड्ग, गदा और धनुष थे ऐसे उन किकरोंने चिल्लाकर सब ओरसे हनुमान्को घेर लिया ॥१९२॥

वे किकर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था । तदनन्तर जिस प्रकार जेठ मासकी वायु भूसा उड़ाती है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥१९३॥ धीरशिरोमणि पवन-पुत्र हनुमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परन्तु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओंके समूह उखाड़-उखाड़कर फेंके ॥१९४॥ भयंकर शेषनागके शरीरके समान मुशोभित भुजाओंके वेगसे फेंके हुए वृक्ष आदिसे प्रहार करता हुआ हनुमान् उस समय प्रलयकालके उन्नत मेघके समान जान पड़ता था ॥१९५॥ हनुमान् बिना किसी विलम्बके पीपल, सागौन, वट, नन्दी, चम्पक, बकुल, नीम, अशोक, कदम्ब, नागकेसर, कोहा, धवा, आम, मिलमाँ, लोघ्र, खजूर तथा कटहल आदिके बड़े मोटे तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको उखाड़कर फेंक रहा था ॥१९६-१९७॥

उस महाबलवान्ने ही लोगोंको शीघ्र ही खण्डित कर दिया, कितने ही योधाओंको उखाड़ डाला—पैर पकड़कर पछाड़ दिया और कितने ही किकरोंको लात तथा घुँसोंके प्रहारसे पीस डाला ॥१९८॥ उस अकेले ही समुद्रके समान भारी सेनाकी वह दशा की कि जिससे वह व्याकुल हो क्षण भरमें प्राण बचाकर कहीं भाग गयी ॥१९९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मृगोंपर शासन करनेवाले मृगराज—सिंहको अन्य सहायकोंकी क्या आवश्यकता है ? और जो स्वाभाविक तेजकी छोड़ चुके हैं उन्हें दूसरे सहायकोंसे क्या लाभ है—निस्तेज मनुष्यका अन्य सहायक क्या भला कर सकते हैं ? ॥२००॥

तदनन्तर पुष्पगिरिसे नीचे उतरे हुए हनुमान्का दिङ्मण्डलको रोकनेवाला तथा जिसमें

१. वाष्पन्नेतं म. । २. यथाम्बुदम् म. । ३. अतिस्थूलान् । ४. सागरसदृशम् । ५. चक्रवर्त्यलयरोधनम् म. ।

सभावापीविमानानामुद्यानोत्तमसञ्चानाम् । चूर्णितानां तदाघातैर्भूमयः केवलाः स्थिताः ॥२०२॥
 पादमार्गप्रदेशेषु ध्वस्तेषु वनवेदमसु । महारथ्यापथा जाताः शुष्कसागरसंनिभाः ॥२०३॥
 मग्नोत्तुङ्गापणश्रेणिः पातितानेककिङ्करः । बभूव राजमार्गोऽपि महासंप्रामभूसमः ॥२०४॥
 पतद्भिस्तोरणैस्तुङ्गैः कम्पितध्वजपङ्क्तिभिः । बभूवाम्बरमुत्पातादिव भ्रश्यत्सुरायुधम् ॥२०५॥
 जङ्घावेगास्समुद्यन्ती रजोभिर्बहुवर्णकैः । इन्द्रायुधसहस्राणि रचितानीव पुष्करे ॥२०६॥
 पादावष्टम्भभिन्नेषु भूभागेषु निमज्जताम् । बभूव गृहशैलानां पातालैष्विव निस्वनः ॥२०७॥
 दृष्ट्या कंचित्करेणान्यं कंचित्पादेन किङ्करम् । उरसा कंचिर्दसेन वातेनान्यं जघान सः ॥२०८॥
 आलीयमानमाश्राणां किङ्कराणां सहस्रशः । पततामुत्करै रथ्या जाता पूरसमागता ॥२०९॥
 हाहाहीकारगम्भीरः पौराणामुद्गतो ध्वनिः । कचिच्च स्तनकूटानां मङ्गाक्षणकणस्वनः ॥२१०॥
 वेगेनोत्पततस्तस्य समाकृष्टमहाध्वजाः । कोपादिवोथयुः पश्चात्कृतघण्टादिभिः स्वनः ॥२११॥
 उन्मूलितमहालानां अभ्रमुः परमा गजाः । वायुमण्डलवर्णानामाश्वास्तुल्यत्वमागताः ॥२१२॥
 अधस्तात् स्फुटिता वाप्यः प्राप्ताः पङ्कावशेषताम् । चक्रारुदेव निःशेषा जाता लङ्का समाकुला ॥२१३॥
 लङ्काकमलिनीखण्डं ध्वस्तराक्षसमीनकम् । श्रीशैलवारणो यावद्विश्वोभ्य बहिराश्रितः ॥२१४॥

निकटवर्ती किंकर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुनः हुआ ॥२०१॥ उस समय हनुमान्‌के प्रहारसे जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, वापिका, विमान तथा बाग बगीचोंसे सुशोभित मकानोंमें केवल भूमि ही शेष रह गयी थी ॥२०२॥ उसके पैदल चलनेके मार्गोंमें जो बाग-बगीचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लम्बे-चौड़े मार्ग सूखे समुद्रके समान हो गये थे ॥२०३॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊँची दुकानोंकी पंक्तियाँ तोड़कर गिरा दी गयी थीं, तथा अनेक किंकर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्धकी भूमिके समान हो गया था ॥२०४॥

गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणों और कांपती हुई ध्वजाओंकी पंक्तिसे उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पातके कारण उससे वज्र ही गिर रहा हो ॥२०५॥ जंघाओंके वेगसे उड़ती हुई रंग विरंगी धूलियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें हजारों इन्द्रधनुष ही बनाये गये हों ॥२०६॥ चरणोंके प्रहारसे विदीर्ण हुई भूमिमें महलरूपी पर्वत नीचेकी धँस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महल रूपी पर्वत पातालमें ही धँसे जा रहे हों ॥२०७॥ वह किसी किंकरको दृष्टिसे मार रहा था, किसीको हाथसे पीस रहा था, किसीको पैरसे पीट रहा था, किसीको वक्षःस्थलसे मार रहा था, किसीको कन्धसे नष्ट कर रहा था और किसीको वायुसे ही उड़ा रहा था ॥२०८॥ आते ही के साथ गिरनेवाले हजारों किंकरोंके समूहसे वह लम्बा-चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमें पूर ही आ गया हो ॥२०९॥ कहीं नागरिक जनोंका हा हा ही आदिका गम्भीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमय शिखरोंके टूटनेसे कण-कण शब्द हो रहा था ॥२१०॥ जब हनुमान् ऊपरको छलांग भरता था तब उसके वेगसे बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खिंचीं चली जाती थीं जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो घण्टाका शब्द करती हुई क्रोधसे उसके पीछे ही उड़ी जा रही हों ॥२११॥ बड़े-बड़े हाथी खम्भे उखाड़ कर इधर-उधर घूमने लगे और घोड़े वायु मण्डलसे उड़ते हुए पत्तोंकी तुल्यताको प्राप्त हो गये ॥२१२॥ वापिकाएँ नीचेसे फूटकर बह गयीं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा सम्पूर्ण लंका चक्र पर चढ़ी हुईके समान व्याकुल हो उठी ॥२१३॥

जिसमें राक्षसरूपी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवनको क्षोभित कर ज्योंही

तावत्तोयद्वाहेन समं संनद्य वेगतः । पञ्चादिन्द्रजितो लग्नो द्विपस्थन्दनमध्यगः ॥२१५॥
 हनूमान्वावदेतेन समं योद्धुं समुद्यतः । प्राप्तं तावदितं तस्य बलं यन्मेघपृष्ठगम् ॥२१६॥
 बाह्यायां भुवि लङ्कायां महाप्रतिभयं रणम् । जातं हनूमतः खेटैः लक्ष्मणस्येव दौषणम् ॥२१७॥
 युक्तं सुचतुरैरश्वै रथमारुह्य पावनिः । समुद्रदृष्ट्य शरं सैन्यं राक्षसानामधावत ॥२१८॥
 अथेन्द्रजितवीरेण पाशैर्महोरगैस्सितः^१ । चिरमायोधितो नीतः पुरं किञ्चिद्विचिन्तयन् ॥२१९॥
 ततो नगरलोकेन विश्रब्धं स निरीक्षितः । कुर्वन् मञ्जनमासीद्यो विद्युद्दण्डवदीक्षितः ॥२२०॥
 प्रवेशितस्य चास्थान्यां तस्य दोषान् दृशाननः । कथ्यमानान् शृणोति स्म तद्विद्धिः पुरुषैर्निजैः ॥२२१॥
 दूताहूतः समायातः किष्किन्धं स्वपुरादयम् । महेन्द्रनगरध्वंसं चक्रे तं च वशं रिपोः ॥२२२॥
 साधूपसर्गमथने द्वीपे दधिमुखाह्वये । गन्धर्वकन्यकास्तिस्रः पद्मस्याभ्यनुमोदिताः ॥२२३॥
 विध्वंसं वज्रशालस्य चक्रे वज्रमुखस्य च । कन्यामभिलपन्त्यस्य बहिरस्थापयद् बलम् ॥२२४॥
 मग्नं पुष्पनगोद्यानं तत्पाल्यः^२ विह्वलीकृताः । बहवः किङ्करा ध्वस्ताः प्रपादि च विनाशितम् ॥२२५॥
 घटस्तनविमुक्तेन पुत्रस्नेहान्निरन्तरम् । पयसा पोषिताः स्त्रीभिर्वृक्षका ध्वंसमाहृताः ॥२२६॥
 वृक्षैर्वियोजिता बल्लवस्तरलायिनपल्लवाः । धरण्यां पतिता भान्ति विधवा इव योषिताः ॥२२७॥
 फलपुष्पभरानघ्रा विविधास्तरुजातयः । इमशानपादपच्छाया एतेन ध्वंसिताः स्थिताः ॥२२८॥

हनुमान् रूपी हाथी बाहर आया ॥२१४॥ त्योंहो हाथियोंके रथपर सवार इन्द्रजित मेघवाहनके साथ तैयार होकर शीघ्र ही उसके पीछे लग गया ॥२१५॥ हनुमान् जब तक इसके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ तब तक मेघ-वाहनके पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥२१६॥ तदनन्तर लंकाकी बाह्यभूमिमें हनुमान् का विद्याधरोंके साथ उस तरह महाभयंकर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लक्ष्मणका खरदूषणके साथ हुआ था ॥२१७॥ हनुमान् चार घोड़ोंसे जुते रथ पर सवार हो बाण खींचकर राक्षसोंकी ओर दौड़ा ॥२१८॥ अथानन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो वीर इन्द्रजितके द्वारा नागपाशसे बाँध लिया गया था ऐसा हनुमान् कुछ विचार करता हुआ नगरके भीतर ले जाया गया ॥२१९॥ जो पहले तोड़-फोड़ करता हुआ विद्युद्दण्डके समान देखा गया था वही हनुमान् अब नगरवासियोंके द्वारा निश्चिन्ततापूर्वक देखा गया ॥२२०॥ तदनन्तर वह रावणकी सभामें ले जाया गया वहाँ रावणने अपने विज्ञ पुरुषोंके द्वारा कहे हुए उसके अपराध श्रवण किये ॥२२१॥ विज्ञ पुरुषोंने उसके विषयमें बताया कि यह दूतके द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगरसे किष्किन्ध नगर गया । वहाँसे लंका आते समय इसने राजा महेन्द्रका नगर ध्वस्त किया तथा उसे शत्रुके आधीन किया ॥२२२॥ दधिमुखनामक द्वीपमें मुनियुगलका उपसर्ग दूर किया और गन्धर्वराजकी तीन कन्याएँ रामको वरनेके लिए उत्सुक थीं सो उनका अनुमोदन किया ॥२२३॥ राजा वज्रमुखके वज्रकोटका विध्वंस किया तथा उसकी कन्या लंकामुन्दरीको स्वीकृत कर उसके नगरके बाहर अपनी सेना रक्खी ॥२२४॥ पुष्पगिरिका उद्यान नष्ट किया, उसकी रक्षक स्त्रियोंको विह्वल किया, बहुतसे किकर नष्ट किये और प्रपा-पानी पीने आदिके स्थान विनष्ट किये ॥२२५॥ स्त्रियोंने जिन्हें पुत्रके समान स्नेहसे घट रूपी स्तनोंसे छोड़े हुए जलके द्वारा निरन्तर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये हैं ॥२२६॥ जिनके पल्लव चंचल हो रहे हैं ऐसी लताएँ इसने वृक्षोंसे अलग कर पृथिवीपर गिरा दी हैं जिससे वे विधवा स्त्रियोंके समान जान पड़ती हैं ॥२२७॥ फल और फूलोंके भारसे झुकी हुई नाना वृक्षोंकी जातियाँ इसके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी हैं जिससे वे

१. महोरगसम्बन्धिभिः । २. बद्धः । स्मितः ख. । ३. तत्पाल्या विह्वलाः कृताः ब. । प्रपा पानीयशालिका तत्प्रभृति ।

अपराधानिमान् श्रुत्वा रावणः कोपमागतः । अवन्ध्यत्तमाहूय विनागं लोहशृङ्खलैः ॥२२९॥
 उपविष्टोऽर्कसंकाशो दशास्यः सिंहविष्टरे । पूजायोग्यं पुरा वातिमाक्रोशदिति निर्दयम् ॥२३०॥
 उद्वृत्तोऽयमसौ पापः निरपेक्षस्त्रपोज्जितः । अधुनैतस्य का छाया धिगेतेनेक्षितेन किम् ॥२३१॥
 व्यापाद्यते न किं दुष्टः कर्ता नानागसामयम् । कथं न गणितं पूर्वं मम दाक्षिण्यमुन्नतम् ॥२३२॥
 ततस्तन्मण्डलप्रान्तस्थिताः प्रवरविभ्रमाः । महाभाग्या विलासिन्यो नवयौवनपूजिताः ॥२३३॥
 कोपस्मितसमायुक्ता निमीलितविलोचनाः । विधाय शिरसः कम्पमेवमुचुरनादरात् ॥२३४॥
 प्रसादाद्यस्य यातोऽसि प्रभुतां क्षितिमण्डले । पृथिव्यां विचरन् स्वेच्छं समस्तबलवर्जितः ॥२३५॥
 एतत्तस्वामिनः प्रीतेर्भवता दर्शितं फलम् । भूमिगोचरदूतत्वं यत्प्राप्तोऽस्यतिनिन्दितम् ॥२३६॥
 सुकृतं दशवक्त्रस्य कथमाधाय पृष्ठतः । वसुधाहिण्डनविलष्टौ भवता तौ पुरस्कृतौ ॥२३७॥
 पवनस्य सुतो न त्वं जातोऽस्यन्येन केनचित् । अदृष्टमकुलीनस्य निवेदयति चेष्टितम् ॥२३८॥
 चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित् । अनार्यमाचरन् किञ्चिजायते नीचगोचरः ॥२३९॥
 मत्ताः केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् । नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ॥२४०॥
 सर्वस्वेनापि यः पूज्यो यद्यप्यसकृदागतः । सुचिरादागतो द्रोही त्वं निग्राह्यस्तु वर्तसे ॥२४१॥
 इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुतिः । को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ॥२४२॥

श्मशानके वृक्षोंके समान जान पड़ने लगी हैं ॥२२८॥ हनुमान्‌के इन अपराधोंको सुनकर रावण क्रोधको प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकारके नागपाशसे वेष्टित हुए उसे समीपमें बुलाकर लोहेकी साँकलोंसे बँधवा दिया ॥२२९॥

तदनन्तर सिंहासनपर बैठा, सूर्यके समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसकी पूजा करता था ऐसे हनुमान्‌के प्रति निर्दयताके साथ इस प्रकार कठोर वचन बकने लगा ॥२३०॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है ? इसे धिक्कार है, इसके देखनेसे क्या लाभ है ? ॥२३१॥ नाना अपराधोंको करनेवाला यह दुष्ट क्यों नहीं मारा जाय ? अरे ! मैंने पहले इसके साथ जो अत्यन्त उदारताका व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥२३२॥ तदनन्तर रावणके समीप ही उत्तम चेष्टाओंसे युक्त महाभाग्यशाली एवं नवयौवनसे सुशोभित जो विलासिनी स्त्रियाँ खड़ी थीं वे क्रोध तथा मन्द हास्यसे युक्त हो नेत्र बन्द करतीं तथा शिर हिलाती हुई अनादरसे इस प्रकार कहने लगीं कि हे हनुमान् ! तू जिसके प्रसादसे पृथिवीमण्डलपर प्रभुताको प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकारके बलसे रहित होकर भी पृथिवीपर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥२३३-२३५॥ उस स्वामीकी प्रसन्नताका तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियोंकी अतिशय निन्दनीय दूतताको प्राप्त हुआ है ॥२३६॥ रावणके द्वारा किये हुए उपकारको पीछे कर तुमने पृथिवीपर परिभ्रमण करनेसे खेदको प्राप्त हुए राम-लक्ष्मणको कैसे आगे किया ॥२३७॥ जान पड़ता है कि तू पवनजयका पुत्र नहीं है, किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्यकी चेष्टा ही उसके अदृष्ट कार्यको सूचित कर देती है ॥२३८॥ जारसे उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरपर कोई चिह्न नहीं होते, किन्तु जब वह खोटा आचरण करता है तभी नीच जान पड़ता है ॥२३९॥ वनमें क्या मदोन्मत्त सिंह सियारोंकी सेवा करते हैं ? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नीचका आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥२४०॥ तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर भी सर्वस्वके द्वारा पूज्य रहा परन्तु अबकी बार बहुत काल बाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निग्रह करनेके योग्य है ॥२४१॥ इन वचनोंसे हनुमान्‌को क्रोध आ गया जिससे वह हँस कर बोला कि कौन जानता है पुण्यके बिना विधाताका निग्राह्य—दण्ड देने योग्य कौन है ॥२४२॥

स्वयं दुर्मतिना सार्द्धमनेनासन्नमृत्युना । हतो दिनैः कतिपयैर्द्रक्ष्यामः क प्रयास्यथ ॥२४३॥
 सौमित्रिः सह पथेन बलोत्तुङ्गः समापतन् । न मेघ इव संरोद्धुं नगैः शक्यो सवेन्नृपैः ॥२४४॥
 अतुष्टः परमाहारैः कामिकैरमृतोपमैः । याति कश्चिद्यथा नाशमेकेन विषबिन्दुना ॥२४५॥
 अतुष्टः स्त्रीसहस्रोघैरिन्धनैरिव पावकः । परस्त्रीतृष्णया सोऽयं विनाशं क्षिप्रमेष्यति ॥२४६॥
 या येन भाविता बुद्धिः शुमाशुमगता दृढम् । न सा शक्याऽन्यथाकृत् पुरन्दरसमैरपि ॥२४७॥
 निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मतिः । नूनं विहितमस्यैतद्विहितेन हतो हतः ॥२४८॥
 प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विन्द्यति । विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाकं विचेष्टते ॥२४९॥
 'मर्त्यधर्मा यथा कश्चित्सुगन्धि मधुरं पयः । प्रमादो विषसन्मिश्रं पीत्वा ध्वंसं प्रपद्यते ॥२५०॥
 तथाविधो दशास्य त्वं परस्त्रीसुखलोलुपः । वचनेन विना क्षिप्रं विनाशं प्रतिपत्स्यते ॥२५१॥
 गुरून् परिजन वृद्धान् मित्राणि प्रियवान्धवान् । भ्रात्रादीनपकर्ष्य त्वं^३ प्रवृत्तः पापवस्तुनि ॥२५२॥
 कदाचारसमुद्भूतं त्वं मदनावर्तमन्धगः । प्राप्सो नरकपातालं कष्टं दुःखमवाप्स्यसि ॥२५३॥
 त्वया दशास्य जातेन महारत्नश्रवो नृपान् । अन्वयोऽधमपुत्रेण रक्षसां क्षयमाहृतः ॥२५४॥
 अनुपालितमर्यादाः क्षितौ पूजितचेष्टिताः । पुङ्गवा मघतो वंश्यास्त्वं तु^४ तेषां पुलाकवत् ॥२५५॥
 इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः खड्गमालोक्य रावणः । जगाद दुर्विनीतोऽयं सुदुर्वचननिर्भरः ॥२५६॥
 त्यक्तमृत्युभयो विभ्रतप्रगल्भत्वं समाप्रतः । द्राक् खलीक्रियतां मध्ये नगरस्य दुरीहितः ॥२५७॥

जिसकी मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्बुद्धिके साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनोंमें देखेंगे कहाँ जाओगे ॥२४३॥
 प्रचण्ड बलका धारो लक्ष्मण रामके साथ आ रहा है सो जिस प्रकार पर्वत मेघको नहीं रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नहीं रोक सकते ॥२४४॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारोंसे तृप्त नहीं होनेवाला कोई मनुष्य विषकी एक बूँदसे नाशको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईर्ष्यासे अग्निके समान हजारों स्त्रियोंके समूहसे तृप्त नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्रीकी तृष्णासे शीघ्र ही नाशको प्राप्त होगा ॥२४५-२४६॥ जिसने जो शुभ-अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इन्द्रके समान पुरुष भी अन्यथा करनेके लिए समर्थ नहीं है ॥२४७॥ दुर्बुद्धि मनुष्यके लिए सैकड़ों प्रियवचनोंके द्वारा हितका उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है । जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अतः वह अपनी होनहारसे ही नष्ट होता है ॥२४८॥ विनाशका अवसर प्राप्त होनेपर जीवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है । सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यताके द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदयके अनुसार चेष्टा करता है ॥२४९॥ जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विषमिश्रित सुगन्धित मधुर दुग्ध पीकर विनाशको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे रावण ! तू परस्त्री सुखका लोभी हुआ बिना कुछ कहे ही शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होगा ॥२५०-२५१॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियबन्धु तथा माता आदिको अनसुना कर तू पापकर्ममें प्रवृत्त हुआ है ॥२५२॥ तू दुराचाररूप समुद्रमें कामरूपी भ्रमरके बीच फँसकर नीचे नरकमें जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा ॥२५३॥ हे दशानन ! महाराजा रत्नश्रवासे उत्पन्न हुए तुझ अधम पुत्रने राक्षसोंका वंश नष्ट कर दिया ॥२५४॥ तुम्हारे वंशज पृथिवीपर मर्यादाका पालन करनेवाले प्रशस्त चेष्टाके धारक उत्तम पुरुष हुए परन्तु तू उन सबमें छिलकेके समान निःसार हुआ है ॥२५५॥

इस प्रकार कहनेपर रावण क्रोधसे लाल हो गया । वह कृपाणकी ओर देखकर बोला कि यह उदण्ड अत्यधिक दुर्वचनोंसे भरा है तथा मृत्युका भय छोड़कर मेरे सामने बड़प्पन धारण कर रहा है अतः नगरके बीच ले जाकर इस दुष्ट की शीघ्र ही दुर्दशा की जाये ॥२५६-२५७॥

१. सत्यधर्मो म. । २. वमनेन म. । ३. नपकर्मत्वं म. । ४. नु म. ।

सशब्दैरायतैः स्थूलैर्बद्धो रज्जुभिरायसैः^१ । ग्रीवायां हस्तपादे च रेणुक्षितविग्रहः ॥२५८॥
 वेष्टितः किङ्करैः क्रूरैर्भ्रात्र्यतां च गृहे गृहे । हास्यमानः खरैर्वाक्यैः कृतमण्डलपूतः ॥२५९॥
 ह्रमकं वनिता दृष्ट्वा नराश्च पुरवासिनः । शोचन्ति कृतधिकारा^२ विकृता कम्पिताननाः ॥२६०॥
 क्षितिगोचरदूतोऽयं सोऽयं दूतः प्रपूजितः । पश्यतैनमिति स्वानः पुरे सर्वत्र घोष्यताम् ॥२६१॥
 ततस्तैर्विविधाक्रोशैः संप्राप्तः कोपमुत्तमम् । अयासीद् बन्धनं छित्वा मोहपाशं यथा यतिः ॥२६२॥
 पादविन्यासमात्रेण भङ्क्त्वा गोपुरमुन्नतम् । द्वाराणि च तथान्यानि खमुत्पत्य ययौ मुदा ॥२६३॥
 शक्रप्रासादसंकाशं मवनं रक्षसां विभोः । हनुमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसंकुलम् ॥२६४॥
 पतता वेश्मना तेन यन्नित्रतापि महानगैः । धरणी कम्पमानौघा पादवेगानुघाततः ॥२६५॥
 भूमिमंप्राप्तसौवर्णप्राकारं रन्ध्रगह्वरम् । वज्रचूर्णितशैलान्नं जातं दाशमुखं गृहम् ॥२६६॥
 कपिमौलिभृतामीशं श्रुत्वैवंविधविक्रमम् । प्रमोदं जानकी प्राप्ता विषादं च मुहुर्मुहुः ॥२६७॥
 वज्रोदरी ततोऽवोचत् किं वृथा देवि रोदिषि । संत्रोव्य शृङ्खलं पश्य यातं मारुतिमम्बरम् ॥२६८॥
 निशम्य वचनं तस्या विक्रसन्नेत्रपङ्कजा । गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा निजसैन्यसमागतम् ॥२६९॥
 अचिन्तयदर्थं वार्तां मह्यं नाथस्य मे ध्रुवम् । कथयिष्यति यस्यैष गच्छतः प्रवरो जवः ॥२७०॥
 पृष्ठतश्चास्य सानन्ता पुष्पाञ्जलिमुञ्चत । समाधानपरा भूत्वा श्रीरिवेशस्य तेजसाम् ॥२७१॥
 उवाच च ग्रहाः सर्वे भवन्तु सुखदास्तव । हतविघ्नश्चिरंजीव भोगवान् वायुनन्दन ॥२७२॥

शब्द करनेवाली लम्बी मोटी लोहेकी सांकलोंसे इसे गरदन तथा हाथों और पैरोंमें कसकर बांधा जाये, धूलिसे इसकी शरीर धूसर किया जाये, दुष्ट किकर इसे घेरकर कठोर वचनोंसे इसकी हँसी करें तथा घर-घर घुमावें । इस दुर्दशासे यह रो उठेगा ॥२५८-२५९॥ इसे देख स्त्रियाँ तथा नगरके लोग धिक्कार देते तथा मुखको विकृत और कम्पित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेंगे ॥२६०॥ इसके आगे-आगे नगरमें सर्वत्र यह घोषणा की जाये कि यह वही सम्मानको प्राप्त हुआ भूमिगोचरीका दूत है इसे सब लोग देखें ॥२६१॥

तदनन्तर उन विविध प्रकारके अपशब्दोंसे परम क्रोधको प्राप्त हुआ हनुमान् बन्धनको छेदकर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाशको छेदकर चला जाता है ॥२६२॥ वह पैर रखने मात्रसे उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजोंको तोड़कर हर्षपूर्वक आकाशमें था उड़ा ॥२६३॥ रावणका जो भवन इन्द्रभवनके समान था वह हनुमान्के पैरकी आघातसे इस प्रकार बिखर गया कि उसमें खाली खम्भे-ही-खम्भे शेष रह गये ॥२६४॥ यद्यपि वहाँकी पृथिवी बड़े-बड़े पर्वतोंसे जकड़ी हुई थी तथापि चरणोंके वेगके अनुघातसे गिरते हुए उस भवनके द्वारा हिल उठी ॥२६५॥ जिसका स्वर्णमय कोट भूमिमें मिल गया था तथा जिसमें अनेक गहरे गड्ढे हो गये थे ऐसा रावणका घर वज्रसे चूर-चूर हुए पर्वतके समान हो गया ॥२६६॥ मुकुटमें कपिका चित्त धारण करनेवाले वानरवंशियोंके राजा हनुमान्को इस प्रकारका पराक्रमी सुन सीता हर्षको प्राप्त हुई तथा बन्धनका समाचार सुन बार-बार विषादको प्राप्त हुई ॥२६७॥ तदनन्तर पासमें बैठी हुई वज्रोदरीने कहा कि हे देवि ! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो ? देखो, वह हनुमान् बन्धन तोड़कर आकाशमें उड़ा जा रहा है ॥२६८॥ उसके उक्त वचन सुन तथा अपनी सेनाके साथ हनुमान्को जाता देख सीताके नयनकमल खिल उठे ॥२६९॥ वह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनुमान् अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथको वार्ता कहेगा ॥२७०॥ इस प्रकार विचारकर सावधान चित्त की धारक सीताने हर्षपूर्वक हनुमान्के पीछे उस प्रकार पुष्पाञ्जलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेजके स्वामीके पीछे छोड़ती है ॥२७१॥ साथ ही उसने

मालिनीवृत्तम्

इति सुविहितवृत्ताः पूर्वजन्मन्युदाराः सकलभुवनरोधि व्याप्यकीर्तिप्रधानाः ।
 अभिसरपरिमुक्ताः कर्म तत्कर्तुमीशाः जनयति परमं तद्विस्मयं दुर्विचिन्त्यम् ॥२७३॥
 भजत सुकृतसंगं तेन निमुच्य सर्वं विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात् ।
 भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ताः परिजितरविभासो जन्तवः कान्तलीलाः ॥२७४॥
 इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमत्प्रत्यभिगमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५३॥



यह कहा कि हे पवन पुत्र ! समस्त ग्रह तेरे लिए सुखदायक हों तथा तू विघ्नोंको नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥२७२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है, जो उदार है, तथा जिनको कीर्तिका समूह समस्त संसारमें व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिभ्रमणसे रहित हो वह कर्म करनेके लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिन्तनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥२७३॥ इसलिए नीरस फल देनेवाले समस्त क्षुद्र कर्मको प्रयत्न पूर्वक छोड़ कर एक पुण्यका हो समागम प्राप्त करो जिससे परम सुखके आस्वादके लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको जीतनेवाला एवं मनोहर लीलाओंका धारक होता है ॥२७४॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें हनुमान्के लौटने आदिका वर्णन करनेवाला तिरपनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५३॥



चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाससाद कैष्किन्धं हनुमान् बलमग्रतः । विधाय^१ पुरि विध्वस्तध्वजलज्ज्वादिचरुताम् ॥१॥
 बहिर्निष्क्रान्तकैष्किन्धिजनसागरवीक्षितः । विवेश नगरं धीरो निसर्गोदारविभ्रमः ॥२॥
^२विक्षताङ्गान् महायोधान् द्रष्टुं नगरयोषिताम् । गवाक्षार्पितवक्त्राणां संभ्रमः परमोऽभवत् ॥३॥
 प्राप्य च वासमात्मीयं हितो भूत्वा पिता यथा । वातिरावासयत्^३ सैन्यं यथायोग्यं समन्ततः ॥४॥
 ततः सुग्रीवराजेन संगत्य ज्ञापितक्रियः । जगाम पद्मनाभस्य पादमूलं निवेदितुम् ॥५॥
 प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य सारुतिः । वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम् ॥६॥
 क्षीणमत्यमिरामाङ्गं क्षीयमाणं निरङ्कुशम् । वियोगवह्निना नागं दावेनैवाकुलीकृतम् ॥७॥
 वर्तमानं महाशोकपाताले द्विष्टविष्टपम् । पद्मं वातिरूपासर्पन् भूर्धन्यस्तकराम्बुरुद ॥८॥
 प्रथमं वातिना हर्षप्रियमाणोरुचक्षुषा । वक्त्रेण जानकीवार्ता शिष्टावार्चा ततोऽखिला ॥९॥
 अभिज्ञानादिकं सर्वं निवेद्योक्तं स सीतया । चूडामणिं नरेन्द्राय समर्प्यागात् कृतार्थताम् ॥१०॥
 चिन्तयेव हतच्छायो निषण्णः श्रान्तवल्करे^४ । शोककलान्त इवासीत्स वेणीबन्धमलीमसः ॥११॥

अथानन्तर—जिसकी ध्वजाओं और लज्जादिकी सुन्दरता नष्ट हो गयी थी ऐसी सेना आगे कर हनुमान् किष्किन्धा नगरीको प्राप्त हुआ ॥१॥ तदनन्तर किष्किन्धा निवासी मनुष्योंकी सागरके समान अपार भीड़ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभावसे ही उत्तम चेष्टाओंका धारक था ऐसे हनुमान्ने नगरमें प्रवेश किया ॥२॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीरके धारक महायोधाओंकी देखनेके लिए जिन्होंने झरोखोंमें मुख लगा रखे थे, ऐसी नगर-निवासिनी स्त्रियोंमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥३॥ तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनुमान्ने पिताकी तरह हितकारी हो सेनाकी सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥४॥ तदनन्तर राजा सुग्रीवके साथ मिलकर, लंकामें जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया । तत्पश्चात् समाचार देनेके लिए रामके चरणमूलमें गया ॥५॥ उस समय श्रीराम इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनुमान् आकर मुझसे कहेगा कि हे भद्र ! तुम्हारी प्रिया जीवित है ॥६॥ अत्यन्त सुन्दर शरीरके धारक राम क्षीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे । वे वियोगरूपी अग्नि-से उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानलसे कोई हाथी आकुलित होता है ॥७॥ वे महा शोकरूपी पातालमें विद्यमान थे तथा समस्त संसृष्टि उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था । हनुमान् हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तकसे लगाकर उनके पास गया ॥८॥ प्रथम तो हनुमान्ने, जिसके विशाल नेत्र, हर्षसे युक्त थे ऐसे मुखके द्वारा जानकीका समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनोंके द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥९॥ सीताने जो कुछ अभिज्ञान अर्थात् परिचय कारक वृत्तान्त कहे थे वे सब कह चुकनेके बाद उसने राजा रामचन्द्रके लिए चूडामणि दिया और इस तरह वह कृतकृत्यताकी प्राप्त हुआ ॥१०॥ वह चूडामणि कान्ति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता मानो चिन्ताके कारण ही उसकी कान्ति जाती रही हो । वह रामके हाथमें इस प्रकार विद्यमान था मानो थककर ही बैठा हो और सीताकी चोटीमें बँधे रहनेसे मलिन हो गया था सो ऐसा जान

१. पुरविध्वस्तध्वज -क. । पुरि विध्वस्त ख. । २. वीक्षिताङ्गान् म. । ३. -राश्वारायन् म. । ४. शिष्टावार्ता म. ।

५. शान्तवल्करः म. ।

पश्यत्याञ्जलियोतोऽसौ पतद्वाष्पो हतप्रभः । दृशा दृष्टो नु पीतो नु वार्ता पृष्ठानुं संभ्रमात् ॥१२॥
 आसीनमञ्जलवेनं दौर्बल्यविरलाङ्गुलौ । गलत्किरणधारौघं शुश्रोच धरणीपतिः ॥१३॥
 पूरिताञ्जलिमंशूनामालोकेन तमानने । चक्रे सोऽपि रुदित्वैव नरेशः सलिलाञ्जलिम् ॥१४॥
 प्रियायास्तदभिज्ञानं यत्राप्यङ्गे नियोजितम् । तेन तस्यापि बैदेहोपरिष्वङ्गः इवाभवत् ॥१५॥
 सर्वव्यापी समुद्भिन्नो रोमाञ्चः कर्कशो घनः । अङ्गेष्वसंभवस्तस्य प्रमोद इव निर्झरः ॥१६॥
 अपृच्छच्च परिष्वज्य सारुतिं कृतसंभ्रमः । अपि सत्यं प्रिया प्राणान् धारयत्यतिक्रमला ॥१७॥
 जगाद प्रणतो वातिः नाथ जीवति नान्यथा । मया वार्ता समानीता सुखी भव हर्लापते ॥१८॥
 किंतु त्वद्विरहोदासदावमध्यविवर्तिनी । गुणौघनिम्नगा बाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना ॥१९॥
 वेणीबन्धच्युतिच्छायैर्मूर्द्धजात्यन्तदुःखिता । मुहुर्निश्चसती दीनं चिन्तासागरवर्तिनी ॥२०॥
 तन्दूरी स्वभावेन विशेषेण वियोगतः । आराध्यमानिका स्त्रीभिः कुडाम्भी रक्षसां विभोः ॥२१॥
 सततं चिन्तयन्ती त्वां त्यक्तसर्वतनुस्थितिः । दुःखं जीवति ते कान्ता कुरु देव यथोचितम् ॥२२॥
 सामीरणिवचः श्रुत्वा म्लानपद्मेक्षणश्चिरम् । चिन्तयाकुलितः पद्मो बभूवात्यन्तदुःखितः ॥२३॥
 दीर्घमुष्णं च निश्चस्य स्वस्तालसशरीरभृत् । निनिन्द जीवितं स्वस्थ जन्म चानेकथा भृशम् ॥२४॥

पड़ता था मानो शोकसे ही दुःखी होकर मलिन गया हो ॥११॥ वह प्रभाहीन चूडामणि रामकी अंजलिमें पहुँचकर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड़ रहा हो । रामने उसे बड़ी उत्सुकताके कारण नेत्रोंसे देखा था, या पिया था, या उससे कुशल समाचार पूछा था सो कहनेमें नहीं आता ॥१२॥ दुर्बलताके कारण जिसकी अंगुलियाँ विरल हो गयी थीं ऐसी अंजलिमें विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धाराओंका समूह झर रहा था ऐसे उस चूडामणिके प्रति रामने शोक प्रकट किया ॥१३॥ तदनन्तर किरणोंके प्रकाशसे जिसने अंजलि भर दी थी ऐसे उस चूडामणिको रामने मस्तकपर धारण किया । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस चूडामणिने स्वयं रोकर ही जलकी अंजलि भर दी हो ॥१४॥ प्रियाके उस अभिज्ञानको रामने अपने जिस अंगपर धारण किया उसीने मानो सीताका आलिंगन प्राप्त कर लिया था ॥१५॥ उस समय उनके समस्त अंगोंमें जिसकी सम्भावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमांच निकल आया मानो हर्षका निर्झर ही फूट पड़ा हो ॥१६॥ रामने बड़े सम्भ्रमके साथ हनुमान्का आलिंगन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलांगी प्रिया प्राण धारण कर रही है—जीवित है ? ॥१७॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने नम्रोभूत होकर कहा कि हे नाथ ! जीवित है । मैं अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन् ! सुखी होइए ॥१८॥ किन्तु इतना अवश्य है कि गुणोंके समूहकी नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरहरूपी दावानलके मध्यमें वर्तमान है, अश्रुओंके द्वारा दुर्दिन बना रही है—निरन्तर वर्षा करती रहती है ॥१९॥ वेणीबन्धनके छूट जानेसे उसके केश कान्तिहीन हो गये हैं, वह अत्यन्त दुःखी है, बार-बार दीनतापूर्वक साँसें भरती है और चिन्तारूपी सागरमें डूबी है ॥२०॥ वह कुशोदरी तो स्वभावसे ही थी पर अब आपके वियोगसे और भी अधिक कुशोदरी जान पड़ती है । रावणकी क्रोधभरी स्त्रियाँ उसकी निरन्तर आराधना करती रहती हैं ॥२१॥ वह शरीरकी सर्व चिन्ता छोड़ निरन्तर आपको ही चिन्ता करती रहती हैं । इस तरह हे देव ! आपकी प्रियवल्लभा दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है अतः यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ हनुमान्के उक्त वचन सुनकर रामके नेत्रकमल म्लान हो गये । वे बहुत देर तक चिन्तासे आकुलित हो अत्यन्त दुःखी हो उठे ॥२३॥ शिथिल एवं अलसाये शरीरको धारण करनेवाले राम लम्बी तथा

१. जातोऽसौ म. । २. पृष्ठानुसंभ्रमात् म. । ३. रुदित्वा च. म. । ४. हे महीपते ! । ५. च्युतच्छाय स्व. ।

ततस्तदिदं ज्ञात्वा सौमित्रिरिदमब्रवीत् । किं शोचसि महाबुद्धे कर्तव्ये दीयतां मनः ॥२५॥
 लक्ष्यते दीर्घसूत्रत्वं किष्किन्धनगरप्रभोः । कृताह्वानश्च भूयोऽपि सीताभ्राता चिरायति ॥२६॥
 'दशास्यकस्य नगरीं श्वो गन्तास्मै विसंशयम् । नौभिरणवसुत्तोर्यं बाहुभ्यामेव वा द्रुतम् ॥२७॥
 अथोचे सिंहनादाख्यो मधुरो खेचरो महान् । अभिमानिसमं मैवं माषिष्ठोः कौविदो भवान् ॥२८॥
 भवतो या गतिः सैव जातास्माकमिहाधुना । अतो निरूप्य कर्तव्यं सर्वेभ्यो हितमादरात् ॥२९॥
 गत्वा पवनपुत्रेण सप्राकाराद्वि^३ गोपुरा । लङ्का विध्वंसिता तेन सोद्यानोपवनान्विता ॥३०॥
 अधुना रावणे क्रुद्धे महाविद्याधराधिपे । संघातमृत्युरस्माकं संप्राप्तोऽयं विधेर्वशात् ॥३१॥
 ऊचे चन्द्रमरीचिश्च परं वचनमूर्धितम् । किं त्वं हरेरिव प्राप्तः संघातं मृगवत्परम् ॥३२॥
 बिभेति दशवक्त्राह्^४ को वासौ किं प्रयोजनम् । अन्यायकारिणस्तस्य वर्तते मृत्युरग्रतः ॥३३॥
 अस्माकं बहवः सन्ति स्वेचरेन्द्रा महारथाः । विद्याविभवसंपन्नाः कृताश्रयाः सहस्रशः ॥३४॥
 रूपातो घनगतिस्तीक्ष्णो भूतनादो गजस्वनः । क्रूरः केली किलो भीमः कुण्डो गोरतिरङ्गदः ॥३५॥
 नलो नीलो तडिद्वक्त्रो मन्दरोऽशनिर्णवः । चन्द्रज्योतिर्मृगेन्द्राह्^५ वज्रदंष्ट्रो दिवाकरः ॥३६॥
 उल्कालाङ्ग लुदिव्यासप्रत्यूहोज्झितपौषः । हनूमान् सुमहाविधः प्रभामण्डलसुन्दरः ॥३७॥
 महेन्द्रकेतुश्चुसमीरणपराक्रमः । प्रसन्नकीर्तिरुद्वृत्तः सुतास्तस्य महाबलाः ॥३८॥

गरम साँस भरकर अपने जीवनकी अनेक प्रकारसे अत्यधिक निन्दा करने लगे ॥२४॥ तदनन्तर उनकी चेष्टा जानकर हनुमान्ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान् ! शोक क्यों करते हो ? कर्तव्यमें मन दीजिए ॥२५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीवकी दीर्घसूत्रता जान पड़ती है और सीताका भाई भामण्डल बार-बार बुलानेपर भी देर कर रहा है ॥२६॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओंसे ही शीघ्र समुद्रको तैरकर कल ही निःसन्देह नीच रावणकी नगरी लंकाको चलेंगे ॥२७॥

तदनन्तर सिंहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधरने कहा कि इस तरह अभिमानोके समान मत कहो । आप विद्वान् पुरुष हैं ॥२८॥ आपकी जो दशा लंकामें हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगोंकी होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुछ निश्चय कर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥२९॥ पवनपुत्र हनुमान्ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा गोपुरोंसे सहित एवं बाग-बगीचोंसे सुशोभित लंका-पुरीको नष्ट किया है ॥३०॥ इसलिए महाविद्याधरोंका अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर दैववश हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥३१॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचि नामक विद्याधरने अत्यन्त ओजपूर्ण वचन कहे कि क्या तुम सिंहसे हरिणके समान अत्यन्त भयको प्राप्त हो रहे हो ? ॥३२॥ भयभीत तो रावणको होना चाहिए अथवा वह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है ? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥३३॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावेगशाली हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥३४॥ उनके नाम हैं घनगति, तीक्ष्ण, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुण्ड, गोरति, अंगद, नल, नील, तडिद्वक्त्र, मन्दर, अशनि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदंष्ट, दिवाकर, उल्का और लांगूल नामक दिव्य अस्त्रोंके समूहमें निर्वाध पौरुषको धारण करनेवाला हनुमान्, महाविद्याओंका स्वामी भामण्डल, तीक्ष्ण पवनके समान पराक्रमका धारक महेन्द्रकेतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र । इनके

१. 'दशास्य नगरीं श्वो हि गन्तास्मेति विसंशयम्' म. । २. भाषिष्ठ म. । ३. सप्ताकाराद्विगोपुरा म. । ४. वक्त्राख्यः ख. । ५. गोरविरंगदः ज. ।

किष्किन्धस्वामिनोऽन्येऽपि सामन्ताः परमौजसः । विद्यन्तेऽक्षतकर्मणो निर्भृश्याः शासनैषिणः ॥३९॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा खेचराश्वक्षुरानतम् । लक्ष्मीधराग्रजं तेन निदधुर्विनयान्वितम् ॥४०॥
अथेक्षाचकिरे तस्य वदनेऽन्यक्तसौम्यके । अकुटीजालकं भीमं मृत्योरिव लतागृहम् ॥४१॥
लङ्कायां तेन विनयस्तां दृष्टि शोणस्फुरत्विषम् । केतुरेखामिवोद्यातां राक्षसक्षयशंसिनीम् ॥४२॥
तामेव च पुनर्यस्तां चिरमध्यस्थतां गते । दृष्ट्वा स्थामिनिजे चापे कृतान्तभ्रूलतोपमे ॥४३॥
कोपकम्पश्चल्यं चास्य केशमारं स्फुरद्युतिम् । निधानमिव कालस्य निरोद्धुं तमसा जगत् ॥४४॥
तथाविधं च तद्वक्त्रं ज्योतिर्विलयमध्यगम् । जरटीभवदुत्पातप्रभाभास्करसंनिभम् ॥४५॥
गृहीतगमनक्ष्वेडं^१ रक्षसां नाशनायतम् । दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जाता संभ्रान्तमानसाः ॥४६॥
राघवाकृतनुनान्स्ते संप्रज्येन्दुश्रुतेगिराम् । चलिताः व्योमगाश्चित्रहेतयः संपदान्विताः ॥४७॥
प्रयाणतूर्यसंघातं नादपूरितगह्वरम् । दापयित्वा रणौत्सुक्यौ प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥४८॥
बहुले मार्गशीर्षस्य पञ्चम्यामुदिते रवौ । सोत्साहैः शकुनैरेभिस्तेषां ज्ञेयं प्रयाणकम् ॥४९॥
दक्षिणावर्त्तनिधूमज्वाला रम्यस्वनः शिखी । परमालङ्कृता नारी सुरभिःशोकोऽनिलः ॥५०॥
निर्ग्रन्थसंयतश्च ग्रम्भीरं वाजिहेषितम् । घण्टाभिस्त्वितं कान्तं कलशो दधिपूरितः ॥५१॥

सिवाय किष्किन्धनगरके स्वामी राजा सुग्रीवके और भी अनेक महापराक्रमी सामन्त हैं जो कार्यको प्रारम्भ कर बीचमें नहीं छोड़ते, आज्ञाकारी हैं और आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥३९-३९॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचिके वचन सुनकर विद्याधरोंने अपने नीचे नेत्र विनयपूर्वक रामके ऊपर लगाये अर्थात् उनकी ओर देखा ॥४०॥ तत्पश्चात् जिसका सौम्यभाव अव्यक्त था ऐसे रामके मुखपर उन्होंने वह भयंकर भृकुटीका जाल देखा जो कि यमराजके लतागृह-निकुंजके समान जान पड़ता था ॥४१॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लंकाकी ओर जो लाल-लाल दृष्टि लगाये हुए हैं, वह राक्षसोंका क्षय सूचित करनेके लिए उदित केतुकी रेखाके समान जान पड़ती है ॥४२॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि रामने वही दृष्टि अपने उस सुदृढ़ धनुष पर लगा रखी है जो चिरकालसे मध्यस्थताको प्राप्त हुआ है, तथा यमराजकी भृकुटीरूपी लताकी उपमा धारण करनेवाला है ॥४३॥ उनका केशोंका समूह क्रोधसे कम्पित तथा शिथिल होकर बिखर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकारके द्वारा जगत्को व्याप्त करनेके लिए यमराजका खजाना ही खुल गया था ॥४४॥ तेजोमण्डलके बीचमें स्थित उनका उस प्रकारका मुख ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलय कालका देदीप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥४५॥ इस तरह राक्षसोंका नाश करनेके लिए जो गमन सम्बन्धी उतावली कर रहे थे ऐसे रामको देखकर उन सब विद्याधरोंके मन क्षुभित हो उठे तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर रामकी चेष्टाओंसे प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चन्द्रमरीचिकी वाणीका सम्मान कर आकाशमार्गसे चल पड़े । उस समय वे सब विद्याधर नाना प्रकारके शस्त्र धारण किये हुए थे और उत्तमोत्तम सम्पदाओंसे सहित थे ॥४७॥ युद्धकी उत्कण्ठासे युक्त राम और लक्ष्मणने, ध्वनिके द्वारा गुफाओंको पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक बाजे बजवाकर प्रस्थान किया ॥४८॥ मार्गशीर्ष वदी पंचमीके दिन सूर्योदयके समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रस्थान कालमें होनेवाले निम्नांकित शुभ शकुनोंसे उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥४९॥ उस समय उन्होंने देखा कि 'निधूम अग्नि'की ज्वाला दक्षिणावर्त्तसे प्रज्वलित हो रही है, समीप ही मयूर मनोहर शब्द कर रहा है, उत्तमोत्तम अलंकारोंसे युक्त स्त्री सामने खड़ी है, सुगन्धिकी फैलानेवाली वायु बह रही है ॥५०॥

१. कृतकर्मणो ज., क. । २. चक्षुरानलं ज. । ३. दृष्ट्वा म. । ४. जरटीभव-म. । ५. गमने ज. । ६. सोत्साहं च दापयित्वा म. ।

उत्किरन्नितरां दृष्टो वामतो गोमयं नवम् । वायसो विस्फुरत्पक्षो निर्मुक्तमधुरस्वरः ॥५२॥
 भेरीशंखरवः सिद्धिर्जय नन्दं व्रज द्रुतम् । निर्विघ्नमिति शब्दाश्च तेषां मङ्गलमुद्ययुः ॥५३॥
 चतुर्दिग्भ्यः समायतैः पूर्यमाणो नभश्चरैः । सुग्रीवो गन्तुमुद्युक्तः सितपञ्चविधूपमः ॥५४॥
 नानायानविमानास्ते नानावाहनकेतनाः । व्रजन्तो व्योम्नि वेगेन बभूवुः खेचरपुंगवाः ॥५५॥
 किष्किन्धाधिपतिर्वातिः शल्यो दुर्मर्षणो नलः । नीलः कालः सुषेणश्च कुमुदाद्यास्तथा नृपाः ॥५६॥
 एते ध्वजोपरिस्थस्तमहाभासुरवानराः । असमाना इवाकाशं प्रवृत्ताः सुमहाबलाः ॥५७॥
 रेजे विराधितस्यापि हारो निज्झरमासुरः । जाम्बवस्य महावृक्षो व्याघ्रो सिंहरवस्य च ॥५८॥
 वारणो मेघकान्तस्य शेषाणामन्वयागताः । ध्वजेषु चिह्नतां याता मावाश्छत्रेषु चोज्ज्वलाः ॥५९॥
 तेषां बभूव तेजस्वी भूतनादः पुरस्सरः । लोकपालोपमस्तस्य स्थितः पश्चान्मरुतुतः ॥६०॥
 वृताः सामन्तचक्रेण यथास्त्वं परमौजसः । लङ्कां प्रति व्रजन्तस्ते रेजुः संजातसंमदाः ॥६१॥
 सुकेशतनयाः पूर्वं लङ्कां माल्यादयो यथा । विमानशिखरारूढाश्चेलुः पद्मादयो नृपाः ॥६२॥
 पार्श्वस्थः पद्मनामस्थ विराधितनभश्चरः । पृष्ठतो जाम्बवस्तस्थौ सचिवैरन्वितो निजैः ॥६३॥
 वामे भुजे सुषेणश्च सुग्रीवो दक्षिणे स्थितः । निमेषेण च संप्राप्ता वेलन्धरमहीधरम् ॥६४॥
 वेलन्धरपुरस्वामी समुद्रो नाम तत्र च । नलस्य परमं युद्धमातिथ्यं समुपानयन् ॥६५॥

निर्ग्रन्थ मुनिराज सामनेसे आ रहे हैं, आकाशमें छत्र फिर रहा है, घोड़ोंकी गम्भीर हिनहिनाहट फैल रही है, घण्टाका मधुर शब्द हो रहा है, दहीसे भरा कलश सामनेसे आ रहा है ॥५१॥ बायों ओर नवीन गोबरकी बार-बार बिल्वेरता तथा पंखोंकी फौलाता हुआ काक मधुर शब्द कर रहा है ॥५२॥ भेरी और शंखका शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान् होओ, तथा किसी विघ्न-बाधाके बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो । इत्यादि मंगल शब्द हो रहे हैं ॥५३॥ इन मंगलरूप शुभशकुनोंसे उन सबका उत्साह वृद्धिगत हो रहा था । चारों दिशाओंसे आये हुए विद्याधरोंसे जिसकी सेना बढ़ रही थी और इसलिए जो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी उपमा धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥ जो नाना प्रकारके यान और विमानोंसे सहित थे तथा जिनका वाहनोंपर नाना प्रकारकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेगसे आकाशमें जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीव, हनुमान्, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुषेण तथा कुमुद आदि राजा आकाशमें उड़े जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओंमें अत्यन्त देदीप्यमान वानरके चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाशको ग्रसनके लिए ही उद्यत हुए हों ॥५६-५७॥ विराधितकी ध्वजामें निज्झरके समान हार, जाम्बवकी ध्वजामें महावृक्ष, सिंहरवकी ध्वजामें व्याघ्र, मेघकान्तकी ध्वजामें हाथी तथा अन्य विद्याधरोंकी ध्वजाओंमें वंश-परम्परासे चले आये अनेक चिह्न सुशोभित थे । ये सभी उज्ज्वल छत्रोंके धारक थे ॥५८-५९॥ अत्यन्त तेजस्वी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकपालके समान हनुमान् उसके पीछे स्थित था ॥६०॥ यथायोग्य सामन्तोंके समूहसे घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्षसे भरे वे सब विद्याधर लंका जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥६१॥ जिस प्रकार पहले सुकेशके पुत्र माल्य आदिने लंकाकी ओर प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओंने विमानोंके अग्रभागपर आरूढ़ हो लंकाकी ओर प्रयाण किया ॥६२॥ विराधित विद्याधर रामकी बगलमें स्थित था और अपने मन्त्रियोंसे सहित जाम्बव उनके पीछे चल रहा था ॥६३॥ बायें हाथकी ओर सुषेण और दाहिने हाथकी ओर सुग्रीव स्थित था । इस प्रकार व्यवस्थासे चलते हुए वे सब निमेष मात्रमें वेलन्धर नामक पर्वतपर जा पहुँचे ॥६४॥ वेलन्धर नगरका स्वामी समुद्र नामका विद्याधर था सो उसने परम युद्धके द्वारा

ततो नलेन सस्पृहं जित्वा निहतसैनिकः । बद्धो बाहुबलाब्धेन समुद्रः खेचरः परः ॥६६॥
 संपूज्य च पुनर्मुक्तः पद्मनाभस्य शासने । स्थापितोऽवस्थिताश्रिते पुरे तत्र यथोचितम् ॥६७॥
 सत्यश्रीः कमला चैव गुणमाला तथापराः । रत्नचूला तथा कन्या समुद्रेण प्रमोदिता ॥६८॥
 कल्पिताः 'पुरुषोभाष्याः योषिद्गुणविभूषिताः । लक्ष्मीधरकुमाराय सुरस्त्रीसमविभ्रमाः ॥६९॥
 तत्रैकां रजनीं स्थित्वा सुवेलमचलं गताः । सुवेलनगरे तत्र सुवेढो नाम खेचरः ॥७०॥
 जित्वा तमपि संग्रामे हेलामात्रेण खेचराः । चिक्रीडुमुदितास्तत्र त्रिदशा इव नन्दने ॥७१॥
 तत्राक्षयवने रम्ये सुखेनाक्षेपितक्षपाः । अन्येद्युरुद्यता गन्तुं लङ्कां तेन सुविभ्रमाः ॥७२॥
 तुङ्गप्राकारयुक्तां तां हेमसदृशमाकुलाम् । कैलासशिखराकरैः पुण्डरीकैर्विराजिताम् ॥७३॥
 विधिवैः कुट्टिमतलैराढ्योकेनावमासतीम् । पद्मोद्यानसमायुक्तां प्रपादिकृतिभूषणाम् ॥७४॥
 चैत्यालयेरलतुङ्गैर्नानावर्णसमुज्ज्वलैः । विभूषितां पवित्रां च महेन्द्रनगरीसमाम् ॥७५॥
 लङ्कां दृष्ट्वा समासन्तां सर्वे खेचरपुंगवाः । हंसद्वीपकृतावासा बभूवुः परमोदयाः ॥७६॥
 युद्धे हंसरथं तत्र विजित्य सुमहाबलम् । रम्ये हंसपुरे क्रीडां चक्रुर्लङ्कानुगामिनीम् ॥७७॥
 सुदुः प्रेषितदूतोऽयमद्य इवो वा विसंशयम् । भामण्डलः समायातीत्येवमाकाङ्क्षयास्थिताः ॥७८॥

मन्दाक्रान्ता

यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणमाजः श्रयन्ते तस्मिन्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसंगं भजन्ते ।
 नद्येतेषां परजनमतं किञ्चिदापद्युतानां सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥७९॥

नलका आतिथ्य किया ॥६५॥ तदनन्तर बाहुबलसे युक्त नलने स्पृहार्थी के साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बांध लिया ॥६६॥ तदनन्तर रामका आज्ञाकारी होनेपर उसे सम्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगरका राजा बना दिया । राम आदि सन्त लोग भी उसके नगरमें यथायोग्य ठहरे ॥६७॥ राजा समुद्रकी सत्यश्री, कमला, गुणमाला और रत्नचूला नामकी कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभासे युक्त थीं, स्त्रियोंके गुणोंसे विभूषित थीं तथा देवांगनाओंके समान जान पड़ती थीं । हर्षसे भरे राजा समुद्रने वे सब कन्याएँ लक्ष्मणके लिए समर्पित कीं ॥६८-६९॥ उस नगरमें एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरिको चले गये । वहाँ सुवेल नगरमें सुवेल नामका विद्याधर राज्य करता था ॥७०॥ सो उसे भी युद्धमें अनायास जीतकर विद्याधरोंने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीड़ा की जिस प्रकार कि देव नन्दन वनमें रहते हैं ॥७१॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वनमें कुशलतापूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर लंका जानेके लिए उद्यत हुए ॥७२॥

तदनन्तर जो ऊँचे प्राकारसे युक्त थी, सुवर्णमय भवनोंसे व्याप्त थी, कैलासके शिखरके समान सफेद कमलोंसे सुशोभित थी, नाना प्रकारके फर्शों और प्रकाशसे देदीप्यमान थी, कमल वनोंसे युक्त थी, प्याऊ आदिकी रचनाओंसे अलंकृत थी, नाना रंगोंसे उज्ज्वल ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिरोसे अलंकृत तथा पवित्र थी और महेन्द्रकी नगरीके समान जान पड़ती थी ऐसी लंकाको निकटवर्तिनी देख परम वैभवके धारक विद्याधर हंसद्वीपमें ठहर गये ॥७३-७६॥ वहाँके हंसपुर नामा नगरमें महाबलवान् राजा हंसरथको जीतकर सबने इच्छानुसार क्रीड़ा की ॥७७॥ जिसके पास बार-बार दूत भेजा गया है ऐसा भामण्डल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे ॥७८॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें वे

तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः । इलाध्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गतः सर्वसारः ।
आस्तां तावत्क्षयपरिचितो भोगसंगोऽपि मोक्षम् । धर्मादस्माद् व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोकः॥८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लङ्काप्रस्थानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५४॥



शत्रुओंको जीतकर भोगोंका समागम प्राप्त करते हैं । उद्यमशील पुण्यात्मा जीवोंके लिए कोई भी वस्तु परके हाथमें नहीं रहती । समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथमें आ जाती हैं ॥७९॥ इसलिए जो भव्य संसारमें उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेन्द्रदेवके मुखारविन्दसे उदित सर्वश्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्मका पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगोंका नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्मके प्रभावसे सूर्यसे भी अधिक उज्ज्वल मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लंकाके लिए प्रस्थानका वर्णन करनेवाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५४॥



पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाभ्यर्णस्थितं ज्ञात्वा प्रतिसैन्यबलं पुरु । युगान्ताभ्योधिबलेव लङ्का क्षोभमुपागतम् ॥१॥
संभ्रान्तमानसः किञ्चित्कोपमाप दशाननः । चक्रे रणकथां लोको वृन्दबन्धव्यवस्थितः ॥२॥
महार्णवरत्ना भेर्यस्ताडिताः सुभयावहाः । तूर्यशङ्खस्वनस्तुङ्गो बभ्राम गगनाङ्गणे ॥३॥
रणभेरीनिनादेन परं प्रमुदिता भटाः । संनद्धा रावणं तेन प्राप्ताः स्वामिहितैषिणः ॥४॥
मारीचोऽमलचन्द्रश्च भास्करः स्यन्दनो विभुः । तथा हस्तप्रहस्ताद्याः संनद्धाः स्वामिनं श्रिताः ॥५॥
अथ लङ्केश्वरं वीरं संग्रामाय समुद्यतम् । विभीषणोऽभ्युपागम्य प्रणम्य रचिताञ्जलिः ॥६॥
शास्त्रानुगतमैश्वर्यं शिष्टानामतिसंमतम् । आयत्त्यां च तदात्वे च हितं स्वस्थ जनस्थ च ॥७॥
शिवं सौम्याननो वाक्यं पदवाक्यविशारदः । प्रमाणकोविदो धीरः प्रशान्तमिदमब्रवीत् ॥८॥
विस्तोर्णां प्रवरा संपन्नहेन्द्रस्येव ते प्रभोः । स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्तिः कुन्ददलामला ॥९॥
स्त्रीहेतोः क्षणमात्रेण सेयं मागात् परिक्षयम् । स्वामिन् संध्याभरेखेव प्रसीद परमेश्वर ॥१०॥
क्षिप्रं समर्प्यतां सीता तव किं कार्यमेतया । दृश्यते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टः केवलो गुणः ॥११॥
सुखोदधौ निमग्नस्त्वं स्वस्थस्तिष्ठ विचक्षण । अनवद्यो महाभोगस्तवात्मीयं समन्ततः ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुको बड़ी भारी सेनाको निकटमें स्थित जानकर लंका, प्रलयकालीन समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१॥ जिसका चित्त सम्भ्रान्त हो रहा था ऐसा रावण कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ और गोलाकार झुण्डोंके बीच बैठे हुए लोग रणकी चर्चा करने लगे ॥२॥ जिनका शब्द महासागरकी गर्जनाके समान था ऐसी भय उत्पन्न करनेवाली भेरियां बजायी गयीं तथा तुरही और शंखोंका विशाल शब्द आकाशरूपी अंगणमें घूमने लगा ॥३॥ उस रणभेरीके शब्दसे परम प्रमोदको प्राप्त हुए, स्वामीके हितचिन्तक योद्धा तैयार होकर रावणके समीप आने लगे ॥४॥ मारीच, अमलचन्द्र, भास्कर, स्यन्दन, हस्त, प्रहस्त आदि अनेक योद्धा कवच धारण कर स्वामीके पास आये ॥५॥

अथानन्तर लंकाके अधिपति वीर रावणको युद्धके लिए उद्यत देख विभीषण उसके समीप गया और हाथ जोड़ प्रणाम कर शास्त्रानुकूल, अत्यन्त श्रेष्ठ, शिष्ट मनुष्योंके लिए अत्यन्त इष्ट, आगामी तथा वर्तमान कालमें हितकारी, आनन्दरूप एवं शान्तिपूर्ण निम्नांकित वचन कहने लगा । विभीषण, सौम्यमुखका धारी, पदवाक्यका विद्वान्, प्रमाणशास्त्रमें निपुण एवं अत्यन्त धीर था ॥६-८॥ उसने कहा कि हे प्रभो ! आपकी सम्पदा इन्द्रकी सम्पदाके समान अत्यन्त विस्तृत तथा उत्कृष्ट है और आपकी कुन्दकलीके समान निर्मल कीर्ति आकाश एवं पृथिवीको व्याप्त कर स्थित है ॥९॥

हे स्वामिन् ! हे परमेश्वर ! परस्त्रीके कारण आपकी यह निर्मल कीर्ति सन्ध्या-कालीन मेघकी रेखाके समान क्षणभरमें नष्ट न हो जाये अतः प्रसन्न होओ ॥१०॥ इसलिए शीघ्र ही सीता रामके लिए सौंप दी जाये । इससे आपको क्या कार्य ही है ? सौंप देनेमें दोष नहीं दिखाई देता है ॥११॥ हे बुद्धिमन् ! तुम तो सुखरूपी सागरमें निमग्न हो सुखसे बैठो । तुम्हारे अपने सब महाभोग सब ओरसे निर्दोष हैं ॥१२॥

समाने जानकी तस्मिन् पद्मनाभे नियुज्यताम् । निजः प्रकृतिसंबन्धः सर्वथैव प्रशस्यते ॥१३॥
 श्रुत्वा तदिन्द्रजिह्वाक्यं जगाद पितृचित्तवित् । स्वभावात्यन्तमानाख्यमागमप्रतिकूलनम् ॥१४॥
 साधो केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव । येनैवं माघसे वाक्यमुन्मत्तगदितोपमम् ॥१५॥
 अत्यन्तं यद्यधीरस्त्वं भीरुश्च क्लीबमानसः । स्वबेधमविवरे स्वस्थस्तिष्ठ किं तव माधितैः ॥१६॥
 'यदर्थं मत्तमातङ्गमहावृन्दान्धकारिणि । पतद्विविधशस्त्रौघे संग्रामेऽत्यन्तभीषणे ॥१७॥
 हत्वा शत्रून् समुद्रवृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया । भुजेनोपाज्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी ॥१८॥
 तुदुर्लभममिदं प्राप्य तस्त्रीरत्नमनुत्तमम् । मूढबन्मुच्यते^३ कस्मात् स्वया व्ययमुदाहृतम् ॥१९॥
 ततो विभीषणोऽबोचदिति निर्भर्त्सनोद्यतः । पुत्रनामासि शत्रुस्त्वमस्य दुःस्थितचेतसः ॥२०॥
 महाशीतपरीतस्त्वमजानन् हितमात्मनः । अन्यचित्तानुरोधेन हिमवारिणि मञ्जसि ॥२१॥
 उद्भूतं भवने वह्निं शुष्कैः पूरयसीन्धनैः । अहो मोहप्रहार्तस्य विपरीतं तवेहितम् ॥२२॥
 जाम्बूनदमयो यावत्सप्राकारविमानिका । लक्ष्मणेन शरैस्तीक्ष्णैर्लङ्का न परिचूर्यते ॥२३॥
 तावन्पुत्रसुतां साध्वीं पद्माय स्थिरचेतसे । क्षेमाय सर्वलोकस्य युक्तमर्पयितुं द्रुतम् ॥२४॥
 नैषा सीता समानीता पित्रा तव कुबुद्धिना । रक्षोभोगिविलं लङ्कामेषानीता विषौषधिः ॥२५॥
 सुमित्रानन्दनं क्रुद्धं तं लक्ष्मीधरपुंगवम् । सिंहं रणमुखे शक्ता न यूयं व्यूहितुं गजाः^४ ॥२६॥

श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो उनका सम्मान कर सीता उन्हें सौंप दी जाये क्योंकि अपने स्वभावका सम्बन्ध ही सर्व प्रकारसे प्रशंसनीय है ॥१३॥

तदनन्तर पिताके चित्तको जाननेवाला इन्द्रजित् विभीषणके उक्त वचन सुन, स्वभावसे ही अत्यन्त मानपूर्ण तथा आगमके विरुद्ध निम्नांकित वचन बोला ॥१४॥ उसने कहा कि हे भले पुरुष ! तुमसे किसने पूछा है ? तथा तुम्हें क्या अधिकार है ? जिससे इस तरह उन्मत्तके वचनोंके समान वचन बोले जा रहे हो ? ॥१५॥ यदि तुम अत्यन्त अधीर-डरपोक या तपुंसक-जैसे दोनहृदय-के धारक हो तो अपने घरके बिलमें आरामसे बैठो । तुम्हें इस प्रकारके शब्द कहनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१६॥ जिसके लिए मदोन्मत्त हाथियोंके झुण्डसे अन्धकार युक्त, पड़ते हुए अनेक शस्त्रोंके समूहसे सहित एवं अत्यन्त भयदायक संग्राममें तलवारकी पैनी धारासे उद्दण्ड शत्रुओंको मारकर अपनी भुजाओं द्वारा बड़े कष्टसे वीर सुन्दरी लक्ष्मीका उपार्जन किया जाता है ऐसे उस सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्री-रत्नको पाकर मूर्ख पुरुषकी तरह क्यों छोड़ दिया जाये ? इसलिए तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है ॥१७-१९॥

तदनन्तर डाँट दिखानेमें तत्पर विभीषणने इस प्रकार कहा कि तू मलिनचित्तको धारण करनेवाले इस रावणका पुत्र नामधारी शत्रु है ॥२०॥ तू अपना हित नहीं जानता हुआ महाशीतकी बाधासे युक्त हो दूसरेको इच्छानुसार शीतल जलमें डूब रहा है—गोता लगा रहा है ॥२१॥ तू गृहमें लगी अग्निको सूखे ईंधनसे पूर्ण कर रहा है, अहो ! मोहरूपी पिशाचसे पीड़ित होनेके कारण तेरी विपरीत चेष्टा हो रही है ॥२२॥ इसलिए यह कोट तथा उत्तम भवनोंसे युक्त सुवर्णमयी लंका जबतक लक्ष्मणके बाणोंसे चूर नहीं की जाती है तबतक गम्भीर चित्तके धारक रामके लिए शीघ्र ही पतिव्रता राजपुत्री—सीताका सौंप देना सब लोगोंके कल्याणके लिए उचित है ॥२३-२४॥ तेरा दुर्बुद्धि पिता यह सीता नहीं लाया है किन्तु राक्षसरूपी सर्पोंके रहनेके लिए बिलस्वरूप इस लंका नगरीमें विषकी औषधि लाया है ॥२५॥ लक्ष्मीधरोंमें श्रेष्ठ एवं क्रोधसे युक्त लक्ष्मण सिंहके समान है और तुम लोग हाथियोंके तुल्य हो अतः रणके अग्रभागमें उसे घेरनेके लिए तुम समर्थ नहीं

१. यदर्थं म. । २. मुकुताद्वीरसुन्दरीः म. । ३. मुञ्चये म. । ४. गताः म. ।

अर्णवाहं धनुर्धस्य यस्यादित्यमुखाः शराः । पक्षे मामण्डलो यस्य स कथं जीयते जनैः ॥२७॥
 ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः खेचराणां महाधिपाः । महेन्द्रा मलयास्तीराः श्रीपर्वततनूरुहाः ॥२८॥
 किष्किन्धास्त्रिपुरा रत्नद्वीपवेलन्धरालकाः । कैलीकिला खतिलका सन्ध्याह्वाः हैहयास्तथा ॥२९॥
 प्राग्भारदधिवक्त्राश्च तथान्ये सुमहाबलाः । विद्याविभवसंपन्नास्ते तु विद्याधरा न किम् ॥३०॥
 एवं प्रवदमानं तं क्रोधप्रेरितमानसः । उत्खाय रावणः खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यतः ॥३१॥
 तेनापि कोपवश्येन दृष्टान्तेनोपदेशने । उन्मूलितः प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान् ॥३२॥
 युद्धार्थमुद्गतावेतौ भ्रातरावुग्रतेजसौ । सचिवैर्वीरितौ कृच्छ्राद्गतौ स्वं स्वं निवेशनम् ॥३३॥
 कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुखैरैतैः प्रत्यायितस्ततः । जगाद् रावणो बिभ्रन्मानसं पौरुषाशयम् ॥३४॥
 आश्रयाश इव स्वस्य स्थानस्याहिततत्परः । दुरात्मा मत्पुत्रीतोऽयं परिनिःक्रामतु द्रुतम् ॥३५॥
 अनर्थोद्यतचित्तेन स्थितेन किमिहामुना । स्वाङ्गेनापि न मे कृत्यं प्रतिकूलप्रवृत्तिना ॥३६॥
 तिष्ठन्तमिह मृत्युं चेदेतकं न नयाम्यहम् । ततो रावण एवाहं न भवामि विवशयम् ॥३७॥
 श्रीरत्नश्रवसः पुत्रः सोऽप्यहं न भवामि किम् । इत्युक्त्वा निर्ययौ मानी लङ्कातोऽथ विभीषणः ॥३८॥
 साग्राभिश्चाश्वशस्त्राभिः त्रिशङ्गिः परिवारितः । अशौहिणीभिस्त्यक्तो गन्तुं पद्मस्य संश्रयम् ॥३९॥
 विद्युद्धनेभवज्रेन्द्रप्रचण्डचपलाभिधाः । उद्गाताशनिर्घाताः कालाद्याश्च महाबलाः ॥४०॥
 शूराः परमसामन्ता विभीषणसमाश्रयाः । सान्तःपुराः ससर्वस्वा नानाशस्त्रविराजिताः ॥४१॥

हो ॥२६॥ जिसके पास सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख बाण हैं तथा भामण्डल जिसके पक्षमें है वह तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२७॥ जो महेन्द्र, मलय, तीर, श्रीपर्वत, किष्किन्धा, त्रिपुर, रत्नद्वीप, वेलन्धर, अलका, कैलीकिल, गगनतिलक, सन्ध्या, हैहय, प्राग्भार तथा दधिमुख आदिके बड़े-बड़े अभिमानों राजा तथा विद्याविभवसे सम्पन्न अतिशय बलवान् अन्य नृपति उन्हें प्रणाम कर रहे हैं—उनसे जा मिले हैं, सो क्या वे विद्याधर नहीं हैं ॥२८-३०॥ इस प्रकार उच्च स्वरसे कहनेवाले विभीषणको मारनेके लिए उधर क्रोधसे भरा रावण तलवार उभारकर खड़ा हो गया ॥३१॥ और इधर उपदेश देनेके लिए जिसका दृष्टान्त दिया जाता था ऐसे महाबलवान् विभीषणने भी क्रोधके वशीभूत हो एक वज्रमयी बड़ा खम्भा उखाड़ लिया ॥३२॥ युद्धके लिए उद्यत, उग्र तेजके धारक इन दोनों भाइयोंको मन्त्रियोंने बड़ी कठिनाईसे रोका । तदनन्तर रोके जानेपर वे अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥३३॥

तत्पश्चात् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि मुख्य-मुख्य आप्त जनोंने जिसे विश्वास दिलाया था ऐसा रावण कठोर चित्तको धारण करता हुआ बोला कि जो अग्निके समान अपने ही आश्रयका अहित करनेमें तत्पर है ऐसा यह दुष्ट शीघ्र ही मेरे नगरसे निकल जावे ॥३४-३५॥ जिसका चित्त अनर्थ करनेमें उद्यत रहता है ऐसे इसके यहाँ रहनेसे क्या लाभ है ? मुझे तो विपरीत प्रवृत्ति करनेवाले अपने अंगसे भी कार्य नहीं है ॥३६॥ यहाँ रहते हुए इसे यदि मैं मृत्युको प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण ही नहीं कहलाऊँ ॥३७॥

अथानन्तर 'क्या मैं भी रत्नश्रवाका पुत्र नहीं हूँ' यह कहकर मानी विभीषण लंकासे निकल गया ॥३८॥ वह सुन्दर शस्त्रोंको धारण करनेवाली कुछ अधिक तीस अशौहिणी सेनाओंसे परिवृत हो रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३९॥ विद्युद्धन, इभवज्र, इन्द्रप्रचण्ड, चपल, काल, महाकाल आदि जो बड़े-बड़े शूरवीर सामन्त विभीषणके आश्रयमें रहनेवाले थे वे वज्रमय शस्त्र उभारकर अपने-अपने अन्तःपुर और सारभूत श्रेष्ठ धन लेकर नाना शस्त्रोंसे

व्रजन्तो वाहचैश्चित्रैर्द्विद्विषत्वा नमस्तलम् । परिच्छदसमायुक्ताः हंसद्वीपं समागताः ॥४२॥
 द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते सुमनोज्ञे ततस्तटे । ते सरिच्चुटिवते तस्थुः सुरा नन्दीश्वरे यथा ॥४३॥
 विभीषणागमे जाते जातो वानरिणो महान् । हिमागमे दरिद्राणामिवाकम्पः समन्ततः ॥४४॥
 समुद्रावर्तमृत्सूर्यहासं लक्ष्मीमृदैश्च । वज्रावर्तं धनुः पद्मः परामृशदुदादरः ॥४५॥
 अमन्त्रयन्त सभूय मन्त्रिणः स्वैरमाकुलाः । सिंहादैर्ममिव त्रस्तं वृन्दबन्धमगाद् बलम् ॥४६॥
 युवा विभीषणेनाथ दण्डपाणिर्विचक्षणः । प्रेषितः पद्मनाथस्य सकाशं मधुराक्षरः ॥४७॥
 समायामुपविष्टोऽसौ कृतप्रणतिराहृतः । निजगादानुपूर्वेण विरोधं भ्रातृसंभवम् ॥४८॥
 इति चावेद्यज्ञाथ तव पद्म विभीषणः । पादौ विज्ञापयत्येवं धर्मकार्यसमुद्यतः ॥४९॥
 भवन्तं शरणं मत्तः प्राप्तोऽहं श्रितवत्सल । आज्ञादानेन मे तस्मात्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥५०॥
 प्रदेशान्तरमेतस्मिन् प्रतीहारेण भाषिते । संमन्त्रो मन्त्रिभिः सार्द्धं पद्मस्यैवमजायत ॥५१॥
 भक्तिकान्तोऽब्रवीत्पद्मं कदाचिच्छृण्वन्मनैषकः । प्रेषितः स्याद्देशास्येन विचित्रं हि नृपेहितम् ॥५२॥
 परस्पराम्बिधाताद्वा कलुषत्वमुपागतम् । प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५३॥
 ततो भतिसमुद्रेण जगदे मतिशालिना । विरोधो हि तयोर्जातः श्रयते जनवक्त्रतः ॥५४॥
 धर्मपक्षो महानीतिः शास्त्राम्बुधालिताशयः । अनुग्रहपरो नित्यं श्रूयते हि विभीषणः ॥५५॥
 सौदर्यकारणं नात्र कर्महेतुः पृथक् पृथक् । सततं तत्प्रभावेण स्थिता जगति चित्रता ॥५६॥

सुशोभित होते हुए चल पड़े ॥४०-४१॥ नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाशको आच्छादित कर अपने परिवारके साथ जाते हुए वे हंसद्वीपमें पहुँचे ॥४२॥ और नदियोंसे सुशोभित उस द्वीपके सुन्दर तटपर इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि देव नन्दीश्वर द्वीपमें ठहरते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार शीतकालके आनेपर दरिद्रोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगती है उसी प्रकार विभीषणका आगमन होते ही वानरोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगी ॥४४॥ सागरावर्त धनुषको धारण करनेवाले लक्ष्मणने सूर्यहास खड्गकी ओर देखा तथा उत्कृष्ट आदर धारण करनेवाले रामने वज्रावर्त धनुषका स्पर्श किया ॥४५॥ घबड़ाये हुए मन्त्री एकत्रित हो इच्छानुसार मन्त्रणा करने लगे तथा जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर हाथियोंकी सेना झुण्डके रूपमें एकत्रित हो जाती है उसी प्रकार वानरोंकी समस्त सेना भयभीत हो झुण्डके रूपमें एकत्रित होने लगी ॥४६॥

तदनन्तर विभीषणने अपना बुद्धिमान् एवं मधुरभाषी द्वारपाल रामके पास भेजा ॥४७॥ बुलाये जानेपर वह सभामें गया और प्रणाम कर बैठ गया । तदनन्तर उसने यथाक्रमसे दोनों भाइयोंके विरोधकी बात कही ॥४८॥ तत्पश्चात् यह कहा कि हे नाथ ! हे पद्म ! सदा धर्म कार्यमें उद्यत रहनेवाला विभीषण आपके चरणोंमें इस प्रकार निवेदन करता है कि हे आश्रितवत्सल ! मैं भक्तिसे युक्त हो आपकी शरणमें आया हूँ, सो आप आज्ञा देकर मुझे कृतकृत्य कीजिए ॥४९-५०॥ इस प्रकार जब द्वारपालने कहा तब रामके निकटस्थ मन्त्रियोंके साथ इस तरह उत्तम सलाह हुई ॥५१॥ भक्तिकान्त मन्त्रीने कहा कि कदाचित् रावणने छलसे इसे भेजा हो क्योंकि राजाओंकी चेष्टा विचित्र होती है ॥५२॥ अथवा परस्परके विरोधसे कलुषताको प्राप्त हुआ कुल, जलकी तरह निश्चित ही फिरसे प्रसाद (पक्षमें स्वच्छता) को प्राप्त हो जाता है ॥५३॥ तदनन्तर बुद्धिशाली भतिसागर नामक मन्त्रीने कहा कि लोगोंके मुखसे यह तो सुना है कि इन दोनों भाइयोंमें विरोध हो गया है ॥५४॥ सुना जाता है कि विभीषण धर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जलसे उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरन्तर अनुग्रह—उपकार करनेमें तत्पर रहता है ॥५५॥ इसमें भाईपना कारण नहीं है किन्तु अपना पृथक्-पृथक् कर्म ही कारण है । कर्मके

प्रकृतेऽस्मिन् त्वमाख्यानं श्रुतौ कुरुत नैषिके^१ । गिरिगोभूतिनामानावभूतां वदुःकौ किल ॥५७॥
 तस्मिंश्च सूर्यदेवस्य राज्ञो नाम्ना मतिप्रिया । अददाद् व्रतकं ताम्भ्यामिदं सुकृतवाञ्छया ॥५८॥
^२ओदनच्छादिते हेमपूर्णं पृथुकपालिके । गिरिः सुवर्णमालोक्य लोभादितरमक्षिणोत् ॥५९॥
 अन्यच्च खलु कौशल्यां वणिग्नाम्ना बृहद्घनः । तद्भार्यां कुरुविन्दाख्या तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥६०॥
 अहिदेवमहीदेवौ तौ मृते जनके गतौ । सुधनौ यानपात्रेण विमवच्छेदभीरुकौ ॥६१॥
 सर्वभाण्डेन तौ रत्नमेकमानयतां परम् । यस्य तज्जायते हस्ते स जिघांसति हीतरम् ॥६२॥
 परस्परं च दुश्चिन्तां तौ विवेच्य समं गतौ । मात्रे चानीय तद्वत्त्वं विरागाभ्यां समर्पितम् ॥६३॥
 माता विषेण तौ हन्तुमैच्छद्बोधमिता पुनः । कालिन्ध्यां तैर्विरक्तैस्तद्वत्त्वं क्षिप्तं श्वषोऽगिलत् ॥६४॥
 आनाथिकगृहीतोऽसौ विक्रीतस्तद्गृहे पुनः । ततस्तयोः स्वसा मत्स्यं छिन्दाना रत्नमैक्षत ॥६५॥
 मातरं भ्रातरौ चैषा विष्यान्कतुं ततोऽलपत् । लोभमोहप्रभावेण स्नेहाच्च शममागतौ ॥६६॥
 ग्राह्या निश्चूर्ण्य तद्वत्त्वं ज्ञाताकूताः परस्परम् । संसारभावनिर्विण्णाः समस्तास्ते प्रववजुः ॥६७॥
 तस्माद्द्रव्यादिलोभेन आत्रादीनामपि स्फुटम् । संसारे जायते वैरं यौनबन्धो न कारणम् ॥६८॥
 दृश्यते वैरमेतस्मिन् दैवयोगात् पुनः शमः । गोभूतिः सोदरो लोभाद्गिरिणा हत एव सः ॥६९॥
 तस्मात्प्रेषितदूतोऽयं महाबुद्धिविभीषणः । आनीयतां न योनीयदृष्टान्तोऽत्र परस्फुटः ॥७०॥

प्रभावसे ही संसारमें यह विचित्रता स्थित है ॥५६॥ इस प्रकरणमें तुम एक कथा सुनो—नैषिक नामक ग्राममें गिरि और गोभूति नामक दो ब्राह्मणोंके बालक थे ॥५७॥ उसी ग्राममें राजा सूर्यदेवकी रानी मतिप्रियाने पुण्यकी इच्छासे एक व्रतके रूपमें उन दोनों बालकोंके लिए मिट्टीके बड़े-बड़े कपालोंमें स्वर्ण रखकर तथा ऊपरसे भात ढककर दान दिया । उन दोनों बालकोंमें से गिरि नामक बालकने देख लिया कि इन कपालोंमें स्वर्ण है तब उसने स्वर्णके लोभसे दूसरे बालकको मार डाला और उसका स्वर्ण ले लिया ॥५८-५९॥ दूसरी कथा यह है कि कौशाम्बी नामा नगरीमें एक बृहद्घन नामका वणिक् रहता था । कुरुविन्दा उसकी स्त्रीका नाम था और उससे उसके अहिदेव और महीदेव नामके दो पुत्र हुए थे । जब उन पुत्रोंका पिता मर गया तब वे जहाजमें बैठकर कहीं गये । 'सूनेमें कोई धन चुरा न ले' इस भयसे वे अपना सारभूत धन साथ ले गये थे । वहाँ सब बर्तन आदि बेचकर वे एक उत्तम रत्न लाये । वह रत्न दोनों भाइयोंमेंसे जिसके हाथमें जाता था वह दूसरे भाईको मारनेकी इच्छा करने लगता था ॥६०-६२॥ दोनों भाई अपने छोटे विचार एक दूसरेको बताकर साथ-ही-साथ घर आये और दोनोंने विरक्त होकर वह रत्न माताके लिए दे दिया ॥६३॥ माताने भी विष देकर पहले उन दोनों पुत्रोंको मारनेकी इच्छा की परन्तु पीछे चलकर वह ज्ञानको प्राप्त हो गयी । तदनन्तर माता और दोनों पुत्रोंने विरक्त होकर वह रत्न यमुना नदीमें फेंक दिया जिसे एक मच्छने निगल लिया ॥६४॥ उस मच्छको एक धोवर पकड़ लाया जो इन्हीं तीनोंके घर बेचा गया । तदनन्तर इनकी बहनने मच्छको काटते समय वह रत्न देखा ॥६५॥ सो लोभ और मोहके प्रभावसे वह माता तथा दोनों भाइयोंको विष देकर मारनेकी इच्छा करने लगी, परन्तु स्नेहवश पीछे शान्त हो गयी ॥६६॥ तदनन्तर परस्पर एक दूसरेका अभिप्राय जानकर उन्होंने उस रत्नको पत्थरसे चूर-चूरकर फेंक दिया और उसके बाद संसारकी दशासे विरक्त हो सभी ने दीक्षा धारण कर ली ॥६७॥ इस कथासे यह स्पष्ट सिद्ध है कि द्रव्य आदिके लोभसे भाई आदिके बीच भी संसारमें वैर होता है इसमें यौनि सम्बन्ध कारण नहीं है ॥६८॥ इस कथामें वैर दिखाई तो दिया है परन्तु दैवयोगसे पुनः शान्त होता गया है और पूर्व कथामें गिरिने अपने सगे भाई गोभूतिको मार ही डाला है ॥६९॥ इसलिए दूत भेजनेवाले इस

१. नैषिके म. । २. उदन ज., ख. । ३. यमुनायां । ४. शममागतः म. । ५. ज्ञाताहूताः म. ।

ततो दण्डिनमाहूय जगुरेत्विति तेन च । गत्वा निवेदिते प्राप्तो पद्मं रत्नश्रवःसुतः ॥७१॥
 ऊचे विभीषणो नत्वा प्रभुः त्वमिह जन्मनि । परत्र जिननाथश्च ममायं निश्चयः प्रभो ॥७२॥
 समये हि कृते तेन प्रोचे रामो विसंशयम् । योजयामि त्वकं लङ्कां भव संदेहवर्जितः ॥७३॥
 विभीषणसमायोगे वर्त्तते यावदुत्सवः । तावत्सिद्धमहाविद्यः प्राप्तः पुष्पवतीसुतः ॥७४॥
 प्रभामण्डलमायातं विजयार्द्धखगाधिपम् । पद्मादयः परं दृष्ट्वा समान्त्युः प्रभाविणम् ॥७५॥
 निर्वाह्य दिवसानष्टौ नगरे हंसनामनि । सम्यग्निश्चितकर्तव्या लङ्कामिमुखमवजन् ॥७६॥
 स्यन्दनैर्विविधैर्यानैः स्थूरीपृष्ठैर्महज्जैः । प्रावृषेण्यघनच्छायैरनेकपद्मैः ॥७७॥
 अनुरागोत्कटभृशैः वीरैः सन्नाहभूषणैः । ययुः खेचरसामन्ताः समन्ताच्छङ्खपुष्कराः ॥७८॥
 अग्रप्रयाणकन्धस्ताः प्रवीराः कविकेतवः । संप्रामधर्यां प्रापुस्तद्योग्यत्वमुदाहृतम् ॥७९॥
 विंशतिर्योजनान्यस्या रुद्रतापारिकीर्तिता । आयामस्य तु नैवास्ति परिच्छेदो रणक्षितेः ॥८०॥
 नानायुधैर्विचिह्नानां सहस्रैरुपलक्षिता । मृत्युच्छङ्क्रमणश्चैव समवर्त्तत युद्धभूः ॥८१॥
 ततो नागाश्वसिंहानां दुन्दुभिर्भो च निःस्वनम् । श्रुत्वा हर्षं दशास्योऽगाधिरागैरर्णोत्सवः ॥८२॥
 आज्ञादानेन चशेषान् सः समन्तान्समबोभवत् । नहि ते वञ्चितास्तेन युद्धानन्देन जातुचित् ॥८३॥
 मास्करभाः पथोदाह्राः काञ्चना व्योमवल्लभाः । गन्धर्वगीतनगराः कम्पनाः शिवमन्दिराः ॥८४॥

महाबुद्धिमान् विभीषणको बुलाया जाय । इसके विषयमें योनि सम्बन्धी दृष्टान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनिसे उत्पन्न होनेके कारण जिस प्रकार रावण दुष्ट है उसी प्रकार विभीषणको भी दुष्ट होना चाहिए यह बात नहीं है ॥७०॥

तदनन्तर द्वारपालको बुलाकर सबने कहा कि विभीषण आवे । तत्पश्चात् द्वारपालके द्वारा जाकर खबर दी जानेपर विभीषण रामके पास आया ॥७१॥ उसने आते ही प्रणामकर कहा कि हे प्रभो ! मेरा यह निश्चय है कि इस जन्ममें आप मेरे स्वामी हैं और पर जन्ममें भी श्री जिनेन्द्र देव ॥७२॥ जब विभीषण निश्छलताकी शपथ कर चुका तब रामने संशय रहित होकर कहा कि तुम्हें लंकाका राजा बनाऊंगा, सन्देह रहित होओ ॥७३॥ इधर विभीषणका समागम होनेसे जब तक उत्सव मनाया जा रहा था तब तक उधर अनेक महाविद्याओंको सिद्ध करनेवाला पुष्पवतीका पुत्र भामण्डल आ पहुँचा ॥७४॥ विजयार्धके अधिपति, परम प्रभावशाली भामण्डल को आया देख राम आदिने उसका अत्यधिक सन्मान किया ॥७५॥ तदनन्तर उस हंस नामक नगरमें आठ दिन बिताकर और अपने कर्तव्यका अच्छी तरह निश्चितकर सबने लंकाकी ओर प्रयाण किया ॥७६॥

अथानन्तर रथों, नाना प्रकारके वाहनों, वायुके समान वेगशाली घोड़ों, वर्षाकालीन मेघोंके समान कान्तिवाले हाथियोंके समूहों, अनुरागसे भरे भृत्यों और कवचरूपी आभूषणोंसे विभूषित वीर योद्धाओंके द्वारा जिन्होंने आकाशको सब ओरसे आच्छादित कर लिया था ऐसे विद्याधर राजा बड़े उत्साहसे आ रहे थे ॥७७-७८॥ वे सबके आगे चलनेवाले अत्यन्त वीर वानरवंशी राजा युद्धको भूमिमें सबसे पहले जा पहुँचे सो यह उनके लिए उचित ही था ॥७९॥ इस रणभूमिकी चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाईका कुछ परिमाण ही नहीं था ॥८०॥ नाना प्रकार शस्त्र और विविध चिह्नोंको धारण करनेवाले हजारों योद्धाओंसे सहित वह युद्धको भूमि मृत्युकी संसार भूमिके समान जान पड़ती थी ॥८१॥ तदनन्तर जिसे चिरकाल बाद उत्सव प्राप्त हुआ था ऐसा रावण हाथी, घोड़े, सिंह और दुन्दुभियोंका शब्द सुन परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८२॥ उसने आज्ञा देकर समस्त सामन्तोंका आदर किया सो ठीक ही है क्योंकि उसने उन्हें युद्धके आनन्दसे कभी वंचित नहीं किया था ॥८३॥ सूर्याभपुर, मेघपुर, कांचनपुर, गगनवल्लभपुर,

१. नानायुद्ध—ज. । २. विरागतरणोत्सवः म. । ३. समवामवन् म., समनीवयत् ज. ।

सूर्योदयामृताभिख्याः शोभासिंहपुराभिधाः । नृत्यगीतपुरालक्ष्मीकिन्नरस्वनसंज्ञकाः ॥८५॥
 बहुनादा महाशैलश्रकाह्याः सुरनूपुराः । श्रीमन्तो मलयानन्दाः श्रीगुहा श्रीमनोहराः ॥८६॥
 रिपुञ्जयाः शशिस्थानाः मार्तण्डाभविशालकाः । ज्योतिर्दण्डाः परिक्षोदा अश्वरत्नपराजयाः ॥८७॥
 एवमाद्याः पुराभिख्याः महास्त्रेचरपार्थिवाः । सचिवैरन्विताः प्रीता दशाननमुपागताः ॥८८॥
 अस्त्रवाहनसंनाहप्रभृतिप्रतिपत्तिभिः । रावणोऽपूजयद्भूपान्^१ सुत्रामा त्रिदशानिव ॥८९॥
 अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वारि त्रिककुप् प्रभोः । स्वशक्तिजनितं प्रोक्तं बलस्य प्रमितं बुधैः ॥९०॥
 एकमक्षौहिणीनां तु किष्किन्धनगरप्रभोः । सहस्रं सायमेकं तु भामण्डलविमोरपि ॥९१॥
 सुग्रीवः सचिवैः साकं तथा पुण्यवतीसुतः । आवृत्य परमोद्युक्तौ तस्थतुः^२ पञ्चलक्ष्मणौ ॥९२॥
 अनेकगोत्रचरणा नानाजात्युपलक्षणाः । नानागुणक्रियाख्याता नानाशब्दा नमश्चराः ॥९३॥
 पुण्यानुभावेन महानराणां भवन्ति शत्रोरपि पार्थिवाः स्वाः ।
 कुपुण्यभाजां तु चिरं सुशक्ता^३ विनाशकाले परतां मज्जन्ते ॥९४॥
 भ्राता ममार्यं सुहृद्देशं वश्यो ममैष बन्धुः सुखदः सदेति ।
 संसारवैचित्र्यविदा नरेण नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्या ॥९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पञ्चपुराणे विभीषणसमागमामिधानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व ॥९५॥



गन्धर्वगीतनगर, कम्पनपुर, शिवमन्दिरपुर, सूर्योदयपुर, अमृत, शोभापुर, सिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मीगीतपुर, किन्नरगीतपुर, बहुनादपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, सुरनूपुर, श्रीमन्तपुर, मलयानन्दपुर, श्रीगुहापुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुञ्जयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तण्डाभपुर, विशालपुर, ज्योतिर्दण्डपुर, परिक्षोदपुर, अश्वपुर, रत्नपुर और पराजयपुर आदि अनेक नगरोंके बड़े-बड़े विद्याधर राजा, प्रसन्न हो, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ रावणके समीप आ गये ॥८४-८८॥ रावणने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर उन सब राजाओंका उस तरह सम्मान किया जिस तरह कि इन्द्र देवोंका सम्मान करता है ॥८९॥ विद्वानोंने रावणकी सेनाका प्रमाण चार हजार अक्षौहिणी दल बतलाया है । उनका यह दल अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण था ॥९०॥ किष्किन्धनगरके राजा सुग्रीवकी सेनाका प्रमाण एक हजार अक्षौहिणी और भामण्डलकी सेनाका प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी दल था ॥९१॥ परम उद्योगी सदा सावधान रहनेवाले सुग्रीव और भामण्डल, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ सदा राम-लक्ष्मणके समीप रहते थे ॥९२॥ उस समय युद्ध-भूमिमें नानावंश, नानाजातियाँ, नानागुण तथा नानाक्रियाओंसे प्रसिद्ध एवं नानाप्रकारके शब्दोंका उच्चारण करनेवाले विद्याधर एकत्रित हुए थे ॥९३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पुण्यके प्रभावसे महापुरुषोंके शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीन मनुष्योंके चिरकालीन मित्र भी विनाशके समय पर हो जाते हैं ॥९४॥ यह मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, यह मेरे आधीन है, यह मेरा बन्धु है और यह मेरा सदा सुख देनेवाला है, इस प्रकार बृद्धिरूपी सूर्यसे सहित तथा संसारकी विचित्रताको जाननेवाले मनुष्यको कभी नहीं विचारना चाहिए ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पञ्चपुराणमें विभीषणके समागमका वर्णन करनेवाला पञ्चपनवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥९५॥



षट्पञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत् पुनरेवं गणेश्वरम् । अक्षौहिण्याः प्रमाणं मे वक्तुमर्हसि संमुने ॥१॥
 शक्रभूतिरथागादीच्छन् श्रेणिक पार्थिव । अक्षौहिण्याः प्रमाणं ते संक्षेपेण वदाम्यहम् ॥२॥
 अष्टाविमे गताः ख्यातिं प्रकारा गणनाकृताः । चतुर्णां भेदमङ्गानां कीर्त्यमानं विबोध्यताम् ॥३॥
 पत्तिः प्रथमभेदोऽत्र तथा सेना प्रकीर्तिता । सेनामुखं ततो गुल्मं वाहिनी पृतना चमूः ॥४॥
 अष्टमोऽनीकिनीसंज्ञस्तत्र भेदो बुधैः स्मृतः । यथा भवन्त्यमी भेदास्तथेदानीं वदामि ते ॥५॥
 एको रथो गजश्चैकस्तथा पञ्च पदातयः । त्रयस्तुरङ्गमाः सैषा पत्तिरित्यभिधीयते ॥६॥
 पत्तिस्त्रिगुणिता सेना तिस्रः सेनामुखं च ताः । सेनामुखानि च त्रीणि गुल्ममित्यनुकीर्त्यते ॥७॥
 वाहिनी त्रीणि गुल्मानि पृतना वाहिनीत्रयम् । चमूस्त्रिपृतना ज्ञेया चमूत्रयमनीकिनी ॥८॥
 अनीकिन्यो दश प्रोक्ता प्राज्ञैरक्षौहिणीति सा । तत्राङ्गानां पृथक् संख्यां चतुर्णां कथयामि ते ॥९॥
 अक्षौहिण्यां प्रकीर्त्यानि रथानां सूर्यवर्चसाम् । एकविंशतिसंख्यानि सहस्राणि विचक्षणैः ॥१०॥
 अष्टौ शतानि सप्तत्या सहितान्यपराणि च । गजानां कथितं ज्ञेयं संख्यातं रथसंख्यया ॥११॥
 एकलक्षं सहस्राणि नव, पञ्चाशदन्वितम् । शतत्रयं च विज्ञेयमक्षौहिण्याः पदातयः ॥१२॥
 पञ्चषष्टिसहस्राणि षट्शती च दशोत्तरा । अक्षौहिण्यामित्यं संख्यां वाजिनानां परिकीर्तिता ॥१३॥
 एवं संख्यबलोपेतं विज्ञायापि दशाननम् । बलं कैष्किन्धमभ्यार तं भयेन विवर्जितम् ॥१४॥
 तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते पद्मनाभप्रभोर्बले । जनानामित्यभूद्वाणी नानापक्षगतात्मनाम् ॥१५॥

अथानन्तर मगधपति राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे इस प्रकार पूछा कि हे सन्मुने ! मेरे लिए अक्षौहिणिका प्रमाण कहिए ॥१॥ इसके उत्तरमें इन्द्रभूति—गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् श्रेणिक ! सुन, मैं तेरे लिए संक्षेपसे अक्षौहिणी प्रमाण कहता हूँ ॥२॥ हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये सेनाके चार अंग कहे गये हैं । इनकी गणना करनेके लिए नीचे लिखे आठ भेद प्रसिद्ध हैं ॥३॥ प्रथम भेद पत्ति, दूसरा सेना, तीसरा सेनामुख, चौथा गुल्म, पाँचवाँ वाहिनी, छठा पृतना, सातवाँ चमू और आठवाँ अनीकिनी । अब उक्त चार अंगोंमें ये जिस प्रकार होते हैं उनका कथन करता हूँ ॥४-५॥ जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच पयादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहलाता है ॥६॥ तीन पत्तिकी एक सेना होती है, तीन सेनाओंका एक सेनामुख होता है, तीन सेनामुखोंका एक गुल्म कहलाता है ॥७॥ तीन गुल्मोंकी एक वाहिनी होती है, तीन वाहिनियोंकी एक पृतना होती है, तीन पृतनाओंकी एक चमू होती है और तीन चमूकी एक अनीकिनी होती है ॥८॥ विद्वानोंने दस अनीकिनीकी एक अक्षौहिणी कही है । हे श्रेणिक ! अब मैं तेरे लिए अक्षौहिणीके चारों अंगोंकी पृथक्-पृथक् संख्या कहता हूँ ॥९॥ विद्वानोंने एक अक्षौहिणीमें सूर्यके समान देदीप्यमान रथों की संख्या इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर बतलायी है । हाथियोंकी संख्या रथोंकी संख्याके समान जानना चाहिए ॥१०-११॥ पदाति एक लाख नी हजार तीन सौ पचास होते हैं और घोड़ोंकी संख्या पैंसठ हजार छह सौ दस कही गयी है ॥१२-१३॥ इस प्रकार चार हजार अक्षौहिणी रावणके पास थीं । सो इस प्रकारकी सेना से सहित रावणको अतिशय बलवान् जानकर भी किष्किन्धपति—सुग्रीवकी सेना निर्भय होकर रावणके सम्मुख चली ॥१४॥ जब रामकी सेना निकट आयी तब नाना पक्षमें विभक्त लोगोंमें इस प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥१५॥

पश्यताम्बरयानोद्गुणेशः शास्त्रधीकरः । दत्तास्यचन्द्रमादृक्कः परस्त्रीच्छावलाहकैः ॥१६॥
 अष्टादश सहस्राणि पत्नीनां यस्य सुखिषाम् । सीतायाः पश्यतैकस्याः कृते तं शोकशल्यितम् ॥१७॥
 रक्षसां वानराणां च कस्य नाम क्षयो भवेत् । एवं बभूव संदेहः सैन्यद्वितयवर्तिनाम् ॥१८॥
 बलेऽस्मिन्मारदेशीयो मारुतिर्नाम भीषणः । विस्फुरच्छौर्यतिग्मांशुः सूर्यतुल्योऽत्र शकजित् ॥१९॥
 सागरोदारमत्स्यग्रं साक्षादितिबलोपमम्^१ । साधनं रावणस्येति नराः केचिद् बभाषिरे ॥२०॥
 अन्तरं विश्व शूरस्याशूरस्य च न जातुचित् । न तज्ज्ञातमतिक्रान्तं किं न वो^२ धीरबोधनम् ॥२१॥
 यद्वृत्तं दण्डकाख्यस्य वनस्य महतोऽन्तरे । अत्यन्तदारुणं युद्धं लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥२२॥
 चन्द्रोदरमुतं प्राप्य तुल्यं स्वाङ्गेन केवलम् । मृत्योरातिथ्यमानोतो येनासौ खरदूषणः ॥२३॥
 अतिप्रकटवीर्यस्य लक्ष्मीनिलयवक्षसः । भवतां तस्य न ज्ञातं किं वा बलमनुत्तमम् ॥२४॥
 एकेन वायुपुत्रेण निर्भर्त्स्य मयसंभवाम् । रामपत्नीं समाश्वास्य परार्थासक्तवृत्तिना ॥२५॥
 रावणस्य महामैन्यं विजित्वात्यन्तदारुणम् । लङ्कापुरी परिध्वस्ता भग्नप्राकारतोरणा ॥२६॥
 एवं विदिततरवानां स्फुटं वचसि निर्गते । जगाद प्रहसन् वाक्यं सुवक्त्रो गर्वनिर्भरः ॥२७॥
 गोष्पदप्रमितं कृतद्वलं वानरलक्ष्मणाम् । क्व चैतस्सागरोदारं सैन्यं त्रैकूटमुद्धतम् ॥२८॥
 इन्द्रेण साधितो यो न पतिर्विद्याभृतामयम् । एकस्य चाग्निः साध्यो रावणः किं नु जायते ॥२९॥
 सर्वतेजस्विमूर्धानं विभोरस्याधितिष्ठतः । श्रोतुं नामापि कः शक्तश्चेतनश्चक्रवर्तिनः ॥३०॥

कोई कहता था कि देखो जो विद्याधररूपी नक्षत्रोंके समूहका स्वामी है और जो शास्त्र-ज्ञानरूपी किरणोंसे सहित है ऐसा यह रावणरूपी चन्द्रमा परनारीकी इच्छारूपी मेघोंसे आच्छादित हो रहा है ॥१६॥ जिसको उत्तम कान्तिको धारण करनेवाली अठारह हजार स्त्रियाँ हैं वह एक सीताके लिए देखो शोकसे शल्ययुक्त हो रहा है ॥१७॥ देखें राक्षसों और वानरोंमेंसे किसका क्षय होता है ? इस प्रकार दोनों सेनाओंके लोगोंको सन्देह हो रहा था ॥१८॥ उधर वानरोंकी सेनामें कामदेवके समान जो हनुमान् है वह अत्यन्त भयंकर है, उसका शौर्यरूपी सूर्य अतिशय देदीप्यमान हो रहा है और इधर राक्षसोंकी सेनामें इन्द्रजित् सूर्यके समान है ॥१९॥ कोई कह रहे थे कि रावणकी यह सेना समुद्रके समान विशाल, अत्यन्त उग्र तथा साक्षात् दैत्योंकी सेनाके समान है ॥२०॥ क्या तुम कभी शूर-वीर और अशूर-वीरका अन्तर नहीं जानते ? क्या तुम्हें पिछली बात याद नहीं है ? और क्या तुम सबको धीर-वीर मनुष्यकी पहचान नहीं है ? ॥२१॥ कोई कह रहे थे कि विशाल दण्डकवनके मध्यमें महाबलवान् लक्ष्मणका जो युद्ध हुआ था और उसमें केवल अपने शरीरके तुल्य चन्द्रोदरके पुत्र—विराधितको पाकर उसने खरदूषणको यमका अतिथि बना दिया था । इस प्रकार अत्यन्त प्रकट पराक्रमके धारक लक्ष्मणका उत्कृष्ट बल क्या आप लोगोंको विदित नहीं है ? ॥२२-२४॥ कोई कह रहा था कि उस समय परहितमें लगे हुए अकेले हनुमान्ने मन्दोदरीको डाँटकर तथा सीताको सान्त्वना देकर रावणकी अत्यन्त उग्र सेना जीत ली थी तथा जिसके कोट और तोरण तोड़ दिये गये थे ऐसी लंकाको क्षत-विक्षत कर दिया था ॥२५-२६॥

इस प्रकार तत्त्वज्ञ मनुष्योंके स्पष्ट वचन निकलनेपर गर्वसे भरा सुमुख राक्षस हँसता हुआ निम्न प्रकारके वचन बोला ॥२७॥ वह कहने लगा कि वानर चिह्नको धारण करनेवाले वानर-वंशियोंकी यह गोखुरके समान तुच्छ सेना कहाँ ? और यह त्रिकूटवासियोंकी समुद्रके समान विशाल एवं उत्कट सेना कहाँ ? ॥२८॥ जो विद्याधरोंका अधिपति रावण इन्द्रके द्वारा भी वशमें नहीं किया जा सका वह एक धनुर्धारीके वश कैसे हो सकता है ? ॥२९॥ जो समस्त तेजस्वी मनुष्योंके मस्तकपर अधिष्ठित है अर्थात् समस्त प्रतापी मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ऐसे (अर्थ) चक्रवर्ती रावणका नाम

१. सुकान्तिपुक्तानां । २. शोकसंचितम् म. । ३. साक्षाद्विबलोपमम् (इति भवेत्) । ४. युष्माकम् ।

सुपीवरभुजो वीरो दुर्धरश्चिदशैरपि । भुवने कस्य न ज्ञातः कुम्भकर्णो महाबलः ॥३१॥
 यस्त्रिशूलधरः संख्ये कालाग्निरिव दीप्यते । सोऽयं विजीयते केन जगदुत्कटविक्रमः ॥३२॥
 यस्यात्पत्रमालोक्य शरदिन्दुभिर्वोद्गतम् । शत्रुसैन्यतमोर्ध्वं समुपयाति समन्ततः ॥३३॥
 उदात्ततेजसस्तस्य स्थातुं यस्याग्रतोऽपि कः । समर्थः पुरुषो लोके निजजीवितनिस्पृहः ॥३४॥
 इति बहुविधवाचां द्वेषरागाश्रितानां प्रकटितनिजचित्तप्रार्थनासंकटानाम् ।
 द्वितयबलजनानां दृष्टनानाक्रियाणाम् अजनि जनितशङ्को भावमार्गो विचित्रः ॥३५॥
 चरितजननकालाऽभ्यस्तारागेतराणां भवमपरमितानामप्यथ चित्तमार्गः ।
 भवति खलु तथैव व्यक्तमेतं हि लोकं स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥३६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे उभयबलप्रमाणविधानं नाम षट्पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५६॥



भी सुननेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३०॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल हैं एवं जो देवोंके द्वारा भी दुर्धर है—रोका नहीं जा सकता ऐसे महाबलवान् कुम्भकर्णको कौन नहीं जानता ? ॥३१॥ जो त्रिशूलका धारक, युद्धमें प्रलयकालकी अग्निके समान देदीप्यमान होता है तथा जिसका पराक्रम संसारमें सबसे अधिक है ऐसा यह कुम्भकर्ण किसके द्वारा जीता जा सकता है ? ॥३२॥ उदित हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान जिसका छत्र देखकर शत्रुओंको सेनारूपी अन्धकार सब ओरसे नष्ट हो जाता है उस प्रबल पराक्रमी कुम्भकर्णके सामने संसारमें ऐसा कौन समर्थ मनुष्य है जो अपने जीवनसे निःस्पृह हो खड़ा होनेके लिए भी समर्थ हो ॥३३-३४॥ इस प्रकार जो नाना भाँतिके वचन बोल रहे थे, जो राग और द्वेषके आधार थे, जिन्होंने अपने मनोगत विचारोंके संकट प्रकट किये थे, तथा जिनकी नाना प्रकारकी क्रियाएँ देखी गयी थीं ऐसे उभयपक्षके लोगोंकी विचारधारा विचित्र एवं शंकाको उत्पन्न करनेवाली हुई थीं ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य संयम उत्पत्तिके योग्य समयमें भी रागी, द्वेषी बने रहते हैं अन्य भवमें पहुँच जानेपर भी उनका मनोमार्ग वास्तवमें वैसा ही रहा आता है—राग-द्वेषका अभ्यासी बना रहता है सो उचित ही है क्योंकि मनुष्यका अपना चारित्ररूपी सूर्य ही उसे आत्म-कार्यमें प्रेरित करता रहता है ॥३६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें राम और रावणकी सेनाओंके प्रयोगका कथन करनेवाला छप्पनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥



१. समर्थपुरुषः म. । २. विरतिजनन- ख. । ३. कालोऽभ्यस्त- ज. । ४. अपरिजितानां ज. ।

सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व

परमैश्वर्यसाम्राज्यपद्मभूषणोऽथ मानवाः । उदगच्छद्दर्पसंक्षोभ्या हृष्टाः संनद्धमुद्यताः ॥१॥
 उद्देष्टुं दधित्वा दधुपाशं कृच्छ्रेण केचन । संश्रुभ्य सिंहसंकाशा लङ्कातो निर्ययुर्मटाः ॥२॥
 वीरपत्नी प्रियं काविकालिङ्गचैवमनापन । श्रुतानेकगर्हायोधपरमाहवविभ्रमा ॥३॥
 संग्रामे प्रियं प्रष्टुं यदि नाथगमिष्यसि । दुर्यशस्तदहं प्राणान् मोक्षयामि श्रुतिमात्रतः ॥४॥
 भिक्षुराणामतः शून्यो वीराणामेतैरिगविताः । भिक्षुश्च मे प्रदास्यन्ति किं नु कष्टमतः परम् ॥५॥
 रणप्रत्यागतं धीरुरोद्यमविभूषणम् । विशीर्णकवचं प्राप्तजयलब्धभटस्तवम् ॥६॥
 द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं भवन्तमविकल्पयन् । जिनेन्द्रानर्चयिष्यामि ततो जाम्बूनदाम्बुजैः ॥७॥
 आभिमुख्यमर्तं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः । पराङ्मुखा न जीवन्तो भिक्षुश्च दमलिनीकृताः ॥८॥
 स्तनद्वयसम्पर्कादं काचिदालिङ्ग्य मानवम् । जगाद पुनरेवं सा ग्रहीष्यामि जयान्वितम् ॥९॥
 भवद्भक्षस्थलस्त्वानरकचन्दनचर्चया । परां स्तनद्वयं शोभां मम यास्यति सर्वथा ॥१०॥
 प्राविशेद्विक्रयोधानामपि पत्नीं जितप्रियाम् । न सदे कुत एवेश सहिष्ये त्वां विनिर्जितम् ॥११॥
 काचिजगाद ते नाथं हताशं व्रणभूषणम् । पुराणं रुद्धकं जातं ततो नैवातिशोभते ॥१२॥
 अतो नवतथान्यस्तस्त्वामण्डलसौख्यदम् । द्रक्ष्येऽहं वीरपत्नीभिर्विकासिमुखपङ्कजा ॥१३॥

अथानन्तर पराक्रमके आक्रमणको नहीं सहन करनेवाले मनुष्य उठते हुए अहंकारसे क्षुभित हो हर्षपूर्वक कवच आदिक धारण करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ सिंहकी समानता करनेवाले कितने ही शूर-वीर योद्धा गलेमें पड़े हुए प्राणवत्लभाके बाहुपाशको बड़ी कठिनाईसे दूर कर क्षुभित हो लंकासे बाहर निकल आये ॥२॥ जिसने महायुद्धमें अनेक बड़े-बड़े योद्धाओंकी चेष्टाओंका वर्णन सुन रखा था, ऐसी किसी वीरपत्नीने पतिका आलिंगन कर इस प्रकार कहा कि ॥३॥ हे नाथ ! यदि संग्रामसे घायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्रसे ही मैं प्राण छोड़ दूँगी ॥४॥ क्योंकि ऐसा होनेसे वीर किकरोंकी गर्वीली पत्नियाँ मुझे धिक्कार देंगी । इससे बढ़कर कष्टकी बात और क्या होगी ? ॥५॥ जिनके वक्षस्थलमें घाव आभूषणके समान सुशोभित हैं, जिनका कवच टूट गया है, प्राप्त हुई विजयसे योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अनिश्चय और हैं तथा गम्भीरताके कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्धसे लौटा हुआ यदि देखूँगी तो मैं सुवर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करूँगी ॥६-७॥ महा-योद्धाओंका सम्मुखगत मृत्युकी प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुखकी धिक्कार शब्दसे मलिन जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥८॥ कोई स्त्री दोनों स्तनोंसे पतिका आलिंगन कर बोली कि जब आप विजयी हो लौटकर आवेंगे तब फिर ऐसा ही आलिंगन करूँगी ॥९॥ आपके वक्षस्थल-के गाढ़े-गाढ़े रक्तरूपी चन्दनोंकी चर्चासे मेरे दोनों स्तन सब प्रकारसे परम शोभाको प्राप्त होंगे ॥१०॥ हे स्वामिन् ! जिसका पति हार जाता है ऐसी पड़ोसी योद्धाओंकी पत्नीको भी मैं सहन नहीं करती फिर हारे हुए आपको किस प्रकार सहन करूँगी ? ॥११॥ कोई स्त्री बोली कि हे नाथ ! आपका यह अभाग पुराना घावरूपी आभूषण रूढ़ हो गया है—पुरकर सूख गया है, इसलिए आप अधिक सुशोभित नहीं हो रहे हैं ॥१२॥ अब नूतन घावपर रखे हुए स्तनमण्डलकी सुख

काचिदूचे यथैतत्ते वदनं चुम्बितं मया । यथा^१ वक्षसि संजातं चुम्बिष्यामि व्रणाननम् ॥१४॥
 अनतिप्रौढिका काचिद्वधूरभिनवोढिका । संग्रामे प्रोद्यते नाथे प्रौढत्वं समुपागता ॥१५॥
 चिराय रक्षितं मानं काचिन्नाथे रणोन्मुखे । तत्प्राप्त्यैकपदे कान्ता कान्तसंक्षेपतत्परा ॥१६॥
^२अवितृप्तं मटी काचिद्भर्तृवक्त्रासवं पपौ । तथापि मदनप्राप्ता रणयोग्यमशिक्षयत् ॥१७॥
 काचिदुत्तानितं^३ भर्तुर्वदनं वनजेक्षणा । नैमिषोज्झितमदाक्षीत् सुचिरं कृतचुम्बना ॥१८॥
 काचिद्वक्षस्तटे भर्तुः करजव्रणमुज्ज्वलम् । भविष्यच्छस्त्रपातस्य सत्यंकारमिवाप्ययत् ॥१९॥
 इति संजातचेष्टासु दयितासु यथायथम् । भटानामित्यभूद्वाणी महासंग्रामशालिनाम् ॥२०॥
 नरास्ते दयिते श्लाघ्या ये गता रणवस्तकम् । त्यजन्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥२१॥
 उन्नद्धदन्तिदन्ताग्रदोलादुर्लभितं भटाः । कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुभिर्घोषितस्तवा ॥२२॥
 गजदन्ताग्रभिदास्य कुम्भदारणकारिणः । यत्सुखं नरसिंहस्य तत् कः कथयितुं क्षमः ॥२३॥
 त्रस्तं शरणमायातं दत्तपृष्ठं द्युतायुधम् । परित्यज्य पतिव्यामो दयिते शत्रुमस्तके ॥२४॥
 भवत्या वाञ्छितं कृत्वा प्रत्यागत्य रणाजिरात् । प्रार्थयिष्ये समाश्लेषं भवन्तीं तोषकारिणीम्^४ ॥२५॥
 एवमादिमिरालापैः परित्याज्य निजप्रियाः । धीरा निर्गन्तुमुद्युक्ताः^५ संख्यसौख्यसमुत्सुकाः ॥२६॥

पहुँचानेवाले आपको जब देखूँगी तो मेरा मुखकमल खिल उठेगा और वीर पत्नियाँ मुझे दड़े गौरवसे देखेंगी ॥१३॥ कोई स्त्री बोली कि मैंने जिस प्रकार आपके इस मुखका चुम्बन किया है उसी प्रकार वक्षस्थलपर उत्पन्न हुए घावके मुखका चुम्बन करूँगी ॥१४॥ कोई नवविवाहिता स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि पतिके युद्धके लिए उद्यत होनेपर प्रौढ़ताको प्राप्त हो गयी ॥१५॥ कोई स्त्री चिरकालसे मानकी रक्षा करती बैठी थी परन्तु जब पति युद्धके सम्मुख हो गया तब उसने सब मान एक साथ छोड़ दिया और पतिका आलिङ्गन करनेमें तत्पर हो गयी ॥१६॥ यद्यपि किसी योद्धाकी स्त्री पतिके मुखकी मदिरा पीती-पीती तृप्त नहीं हुई थी तथापि कामाकुलित हो उसने पतिके लिए रणके योग्य शिक्षा दी थी ॥१७॥ कोई कमललोचना स्त्री पतिके ऊपर उठाये हुए मुखको टिमकाररहित नेत्रोंसे चिरकाल तक देखती रही और उसका चुम्बन करती रही ॥१८॥ किसी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर नखका उज्ज्वल धाव बना दिया मानो आगे चलकर जो शस्त्रपात होगा उसका बयाना ही दे दिया था ॥१९॥

इस प्रकार जब स्त्रियोंमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ हो रही थीं तब महायुद्धसे सुशोभित योद्धाओंकी इस प्रकार वाणी प्रकट हुई ॥२०॥ कोई बोला कि हे प्रिये ! वे मनुष्य प्रशंसनीय हैं जो रणाग्रभागमें जाकर शत्रुओंके समुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुयश प्राप्त करते हैं ॥२१॥ शत्रु भी जिनका विरद बखान रहे हैं, ऐसे योद्धा पुण्यके बिना मदनोन्मत्त हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागसे झूला नहीं झूल सकते ॥२२॥ हाथीदाँतके अग्रभागसे विदीर्ण तथा हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यको जो सुख होता है उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ कोई कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं भयभीत, शरणागत, पीठ दिखा देनेवाला एवं शस्त्र डाल देनेवाले पुरुषको छोड़ शत्रुके मस्तकपर टूट पड़ूँगा ॥२४॥ कोई कहने लगा कि मैं आपकी अगिलापा पूर्ण कर तथा रणाग्रभागसे लौटकर जब आपको सन्तुष्ट कर दूँगा तभी आपसे आलिङ्गनकी प्रार्थना करूँगा ॥२५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारके वार्तालापोंसे अपनी प्राण-वल्लभाओंको सान्त्वना देकर युद्धसम्बन्धी सुख प्राप्त करनेमें उत्सुक वीर मनुष्य घरोंसे बाहर

१. यथा म. । २. अवितृप्तमटी म. । ३. मदनं प्राप्ता म. । ४. दुत्तानितुं म. । ५. प्रापयिष्ये म. ।
 ६. तोषकारिणीम् ज. । ७. संख्ये ज. ।

प्रियासोः शस्त्रहस्तस्य कण्ठार्पितभुजद्वया । काचिदोलम्बनं चक्रे गजेन्द्रस्येव पद्मिनी ॥२७॥
 काचित्सनाहकस्य पत्युर्दहस्य संगमम् । अप्राप्य परमं प्राप्ता पीडामङ्गमपि श्रिता ॥२८॥
 'अर्द्धबाहुलिकां दृष्ट्वा काचित्कान्तस्य वक्षसि । ईर्ष्यासेन संस्पृष्टा किंचित्कुञ्चितलोचना ॥२९॥
 अर्द्धमनाहनाभायं मया परिहिता प्रिये । इति पुंशब्दयोगेन पुनस्तोषमुपागता ॥३०॥
 ताम्बूलप्रार्थनव्यङ्ग्यान् काचित् प्राप्य प्रियाधरम् । अमुञ्चत् सुखिनी कृच्छ्रात् कृत्वा धनविभूषितम् ॥३१॥
 काचिन्निवर्त्यमानाणि प्रियेण रणकाङ्क्षिणा । संनाहकण्ठसूत्रस्य बन्धव्याजेन गच्छति ॥३२॥
 एकतो दयितादृष्टिरन्यतः तूर्यनिस्वनः । इति हेतुद्वयादोलामारुढं भटमानसम् ॥३३॥
 स्त्रीणां परिहरन्तीनां वाष्पपातममङ्गलम् । सत्यामपि दिदृक्षायां निमेषो नाभवत् दृशाम् ॥३४॥
 अगृहीद्यैव संनाहं केचित् स्वरितमानसाः । यथालब्धायुधं योधा नियुर्मुदपंक्षालिनः ॥३५॥
 रणसंज्ञातोषेण शरीरे पुष्टिमागते । कस्यचिद् रणशौण्डस्य वर्म माति स्म नो निजम् ॥३६॥
 श्रुत्वा परचमूर्त्यस्वनं कश्चिद् भटोत्तमः । चिररुदैर्ग्रणै रक्तं मुमोचोल्वासविग्रहः ॥३७॥
 पिनद्धं कस्यचिद् वर्म सुदृढं तोषहारिणः । वर्द्धमानं ततः शीघ्रं पुराणं कट्टायितम् ॥३८॥
 विश्रब्धं कस्यचिज्जाया समाधानपरायणा । सारयन्ती मुहुस्तस्मै शिरस्त्राणं सुमाषिता ॥३९॥
 प्रियापरिमलं कश्चिद्दीयमानैः स्वयक्षसः । कङ्कटं प्रति नो चक्रे मनः संग्रामलालसः ॥४०॥
 एवं विनिर्गता शोधाः कृच्छ्रतः सान्त्वितप्रियाः । आकुलीभूतचित्ताश्च शयनीयेषु ताः स्थिताः ॥४१॥

निकलनेके लिए उद्यत हुए ॥२६॥ किसीका पति हाथमें शस्त्र लेकर जब जाने लगा तब वह उसके गलेमें दोनों भुजाएँ डालकर ऐसी झूल गयी मानो किसी गजराजके गलेमें कमलिनी ही झूल रही हो ॥२७॥ किसी स्त्रीके पतिने कवच पहन रखा था इसलिए उसके शरीरका संगम न प्राप्त होनेसे वह गोदमें स्थित होनेपर भी परम पीड़ाको प्राप्त हो रही थी ॥२८॥ कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थल-पर अर्द्धबाहुलिका देख ईर्ष्यासे भर गयी तथा उसके नेत्र कुछ-कुछ संकुचित हो गये ॥२९॥ उसे अप्रसन्न जान पतिने कहा कि हे प्रिये ! यह आधा कवच मैंने पहना है । इस प्रकार पतिके कहनेसे पुनः सन्तोषको प्राप्त हो गयी ॥३०॥ किसी सुखिया स्त्रीने ताम्बूल याचनाके बहाने पतिका अधरोष्ठ पाकर उसे दन्ताघातसे विभूषित कर बड़ी कठिनाईसे छोड़ा ॥३१॥ रणके अभिलाषी किसी पुरुषने यद्यपि अपनी स्त्रीको लौटा दिया था तथापि वह कवचके कण्ठका सूत्र बाँधनेके बहाने चली जा रही थी ॥३२॥ एक ओर तो बल्लभाकी दृष्टि और दूसरी ओर तुरहीका शब्द, इस प्रकार योद्धाका मन दो कारणरूपी दोलाके ऊपर आरुढ़ हो रहा था ॥३३॥ अमांगलिक अशुपातको बचानेवाली स्त्रियोंके यद्यपि पतिको देखनेकी इच्छा थी तो भी वे नेत्रोंका पलक नहीं झपाती थीं ॥३४॥ जिनके मन उतावलीसे भर रहे थे ऐसे कितने ही अहंकारी योद्धा, कवच पहने बिना ही जो शस्त्र मिला उसे ही लेकर निकल पड़े ॥३५॥ किसी रणवीरका शरीर रणसे उत्पन्न सन्तोषके कारण इतना पुष्ट हो गया कि उसका निजका कवच भी शरीरमें नहीं माता था ॥३६॥ किसी उत्तम योद्धाका शरीर पर-चक्रकी तुरहीका शब्द सुनकर इतना फूल गया कि वह चिरकालके भरे घावोंसे रक्त छोड़ने लगा ॥३७॥ किसी योद्धाने नया मजबूत कवच पहना था परन्तु हृषित होनेके कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवचके समान जान पड़ने लगा ॥३८॥ किसीका टोप ठीक नहीं बैठ रहा था सो उसे ठीक करनेमें तत्पर उसकी स्त्री निश्चिन्ततापूर्वक मधुर शब्द कहती हुई बार-बार टोपको चला रही थी ॥३९॥ किसीकी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर सुगन्धिका लेप लगा दिया था सो उसकी रक्षा करते हुए उसने युद्धकी अभिलाषा होते हुए भी कवच धारण करनेकी ओर मन नहीं किया था—कवच धारण करनेका विचार नहीं किया था ॥४०॥ इस प्रकार जो

अथायकीर्तिमाध्वीकरसास्वादवलालसौ । द्विरदस्यन्दनारूढावसोढारिवलस्वनो ॥४२॥
 प्रथमं निर्गतोदात्तप्रतीकं शौर्यशालिनौ । हस्तप्रहस्तनामानौ लङ्कातो निर्गतौ नृपौ ॥४३॥
 अनामृच्छयाऽपि लंकाले स्वामिनौ राजते तयोः । दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तादे प्रविषदते ॥४४॥
 मारीचः सिंहजवनः स्वयम्भूः शम्भुस्तमः । पृथुः पृथुवलोपेतश्चन्द्रार्कौ शुक्रपारणौ ॥४५॥
 गजवीमत्स्यनामानौ वज्राक्षौ वज्रभृद्युतिः । गम्भीरनिनदो नक्रो मकरः कुलिशस्वयः ॥४६॥
 उग्रनादस्तथा सुन्दः निकुम्भकुम्भशदितः । संध्याक्षो विभ्रमक्रूरो माल्यवान् खरनिस्वनः ॥४७॥
 जम्बूमाली शिखावीरो दुर्द्वेषश्च महाबलः । एते केसरिभिर्युक्तैः सामन्ता निर्ययू रथैः ॥४८॥
 वज्रोदरोऽथ शक्राभः कृतान्तो विघटोदरः । महाशनिरवधन्द्रनखो मृत्युः सुभीषणः ॥४९॥
 कुलिशोदरनामा च धूम्राक्षो मुदितस्तथा । विद्युजिह्वो महामाली कनकः क्रोधनध्वनिः ॥५०॥
 क्षोभणो धुन्धुरुद्धामा डिण्डिडिण्डिमडम्बरः । प्रचण्डो डमरश्चण्डकुण्डहालाहलादयः ॥५१॥
 व्याघ्रयुक्तैरिमैस्तुङ्गै रथैरुद्धासिताम्बरैः । अहंयवो विनिर्गताः शत्रुविध्वंसयुद्धाः ॥५२॥
 विद्याकीशिकविरूपाक्षः सर्पबाहुर्महाद्युतिः । शंखप्रशंखनामानौ रागो भिन्नाञ्जनप्रभः ॥५३॥
 पुष्पचूडो महारक्तो घटास्त्रः पुष्पक्षेचरः । अनङ्गकुसुमः कामः कामावर्त्तस्मरायणौ ॥५४॥
 कामाग्निः कामराशिश्च कनकाभः शिलीमुखः । सौम्यवक्त्रो महाकामो हेमगौरादयस्तथा ॥५५॥
 एतेऽपि वातरंढाभी रथैर्युक्तुरङ्गमैः । यथायथं विनिर्जम्बुरालयेभ्यो रसद्वयः ॥५६॥
 कदम्बविटपौ भीमो भीमनादो भयानकः । शार्दूलक्रीडितः हिंस्रशलाङ्गो विद्युदम्बुकः ॥५७॥

बड़ी कठिनाईसे प्रियाओंको समझा-बुझा सके थे ऐसे योधा तो बाहर निकले और उनकी स्त्रियाँ व्याकुलचित्त होती हुई शय्याओंपर पड़ रहीं ॥४१॥ अथानन्तर उत्तम कीर्तिस्वामी मधुरसके आस्वादनमें जिनका मन लग रहा था, जो हाथियोंके रथपर आरूढ़ थे, जिन्होंने शत्रु सेनाका शब्द सहन नहीं किया था, जिनका उत्कट प्रताप पहले ही निकल चुका था, और जो शूरवीरतासे सुशोभित थे, ऐसे हस्त और प्रहस्त नामके दो राजा लंकासे सर्वप्रथम निकले ॥४२-४३॥ यद्यपि वे दोनों स्वामीसे पूछकर नहीं निकले थे तथापि उस समय उनका स्वामीसे नहीं पूछना शोभा देता था क्योंकि अवसरपर दोष भी गुणरूपताको प्राप्त हो जाता है ॥४४॥ मारीच, सिंहजवन, स्वयम्भू, शम्भु, उत्तम, विशाल सेनासे सुशोभित पृथु, चन्द्र, सूर्य, शुक, सारण, गज, वीभत्स इन्द्रके समान कान्तिको धारण करनेवाला वज्राक्ष, गम्भीर-नाद, नक्र, वज्रनाद, उग्रवाय, सुन्द, निकुम्भ, सन्ध्याक्ष, विभ्रम, क्रूर, माल्यवान्, खरनाद, जम्बूमाली, शिखावीर और महाबलवान् दुर्द्वेष ये सब सामन्त सिंहोंसे जुते हुए रथोंपर सवार हो बाहर निकले ॥४५-४८॥ उनके पीछे वज्रोदर, शक्राभ, कृतान्त, विघटोदर, महावज्रख, चन्द्रनख, मृत्यु, सुभीषण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युजिह्व, महामाली, कनक, क्रोधनध्वनि, क्षोभण, धुन्धु, उद्धामा, डिण्ड, डिण्डिम, डम्बर, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड और हालाहल आदि सामन्त, जिनमें व्याघ्र जुते थे, जो ऊँचे थे तथा आकाशको देदीप्यमान करनेवाले थे ऐसे रथोंपर सवार हो बाहर निकले । ये सभी सामन्त महाअहंकारी तथा शत्रुनाशकी भावना रखनेवाले थे ॥४९-५२॥ उनके पीछे विद्याकीशिक, सर्पबाहु, महाद्युति, शंख, प्रशंख, राग, भिन्नाञ्जनप्रभ, पुष्पचूड, महारक्त, घटास्त्र, पुष्पक्षेचर, अनङ्गकुसुम, काम, कामावर्त्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकाभ, शिलीमुख, सौम्यवक्त्र, महाकाम तथा हेमगौर आदि सामन्त, वायुके समान वेगशाली घोड़ोंके रथोंमें सवार हो यथायोग्य अपने-अपने घरोंसे निकले । इन सबकी सेनाएँ प्रचण्ड शब्द कर रही थीं ॥५३-५६॥ तदनन्तर

१. -वसोढी विरलस्वनो म. । २. प्रयाणे म. । ३. सिंहजवनः ज., ख. । ४. वज्राक्षो म. । ५. गम्भीरो निनदो म. । ६. विभ्रमः क्रूरो म., ख. । ७. -प्रभो म. ।

ह्लादनचपलचोलचलचञ्चल आदयः । गजादिभिरिमेयुं क्तैर्निर्ययुर्भास्वरैः रथैः ॥५८॥
 कियन्तः कथयिष्यन्ते नाम्ना प्राग्रहराः नराः । अध्यर्द्धपञ्चमीकोट्यः कुमाराणां स्मृता बुधैः ॥५९॥
 विशुद्धराक्षसानूकाः कुमारास्तुल्यविक्रमाः । प्रख्यातयशसः सर्वे विज्ञेया गुणमण्डनाः ॥६०॥
 आवृतास्ते समुद्युक्ताः कुमारैर्मरविभ्रमाः । बलिनो मेघवाहाद्याः कुमारैन्द्रा विनिर्ययुः ॥६१॥
 अर्ककीर्तिसमो भूत्वा दशाननमहाप्रियः । इन्द्रजिन्निर्ययौ कान्तो जयन्त इव धीरधीः ॥६२॥
 विमानमर्कसंकाशं नाम्ना ज्योतिःप्रभं महत् । कुम्भकर्णः समारूढस्त्रिशूलस्तो विनिरगतः ॥६३॥
 मेरुशृङ्गप्रतीकाशं लोकत्रितयशब्दितम् । विमानं पुष्पकाभिरुयाभारूढः शक्रविक्रमः ॥६४॥
 संछाद्य रोदसी सैन्यैर्मास्वरायुधपाणिभिः । निष्क्रान्तो रावणस्तिग्मकिरणप्रतिमद्युतिः ॥६५॥
 स्यन्दनैर्वारणैः सिंहैर्वराहैः रुक्मिर्मृगैः । समरैर्विहगैश्चित्रैः सौरभैः क्रमेलकैः ॥६६॥
 ययुर्भिमहिषैरन्यैर्जलस्थलसमुद्भवैः । सामन्ता निर्ययुः शीघ्रं बाहनैर्बहुरुपकैः ॥६७॥
 भामण्डलं प्रतिकुद्धाः किम्किन्धाधिपतिं तथा । हिता राक्षसनाथाय निर्ययुः खेचराधिपाः ॥६८॥
 अथ दक्षिणतो दृष्टा भयानकमहास्वनाः । प्रयाणवारणोद्युक्ता मल्लका बद्धमण्डलाः ॥६९॥
 बद्धान्धतमसा पक्षैर्गृद्धा विकृतनिस्वनाः । भ्राम्यन्ति गगने भीमाः कथयन्तो महाक्षयम् ॥७०॥
 अन्येऽपि शकुनाः क्रूरं क्रन्दन्तो भयशंसिनः । बभूवुराकुलीभूता भीमा वैहायसास्तथा ॥७१॥
 शौर्यातिगर्वसंमूढा विदन्तोऽप्यशुमानिमान् । महासैन्योद्धता योद्धुं रक्षोवर्गा विनिर्ययुः ॥७२॥

कदम्ब, विटप, भीम, भीमनाद, भयानक, शार्दूलविक्रीडित, सिंह, चलांग, विद्युदम्बुक, ह्लादन, चपल, चोल, चल और चंचल आदि सामन्त हाथियों आदिसे जुते हुए देदीप्यमान रथोंपर आरूढ़ होकर निकले ॥५७-५८॥ गीतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाम ले-लेकर कितने प्रधान पुरुष कहे जावेंगे ? उस समय सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ कुमार बाहर निकले थे ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥५९॥ ये सभी कुमार विशुद्ध राक्षसवंशी, समान पराक्रमके धारी, प्रसिद्ध यशसे सुशोभित एवं गुणरूपी आभूषणोंकी धारण करनेवाले थे ॥६०॥ युद्धके लिए उद्यत इन सब कुमारोंसे घिरे, कामके समान सुन्दर, महाबलवान् मेघवाहन आदि श्रेष्ठ राजकुमार भी बाहर निकले ॥६१॥ तदनन्तर जो विभूतिसे सूर्यके समान था और रावणको अतिशय प्यारा था, ऐसा धीर-वीर बुद्धिका धारक सुन्दर इन्द्रजित्, जयन्तके समान बाहर निकला ॥६२॥ त्रिशूल शस्त्रका धारी कुम्भकर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान ज्योतिःप्रभ नामक विशाल विमानपर आरूढ़ होकर निकला ॥६३॥ तदनन्तर जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मेरुके शिखरके समान सुशोभित पुष्पक विमानपर आरूढ़ था, इन्द्रके समान पराक्रमी था और सूर्यके समान कान्तिका धारक था ऐसा रावण हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले सैनिकोंसे आकाश और पृथ्वीके अन्तरालको आच्छादित कर निकला ॥६४-६५॥ तत्पश्चात् रथ, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, रामर, नाना प्रकारके पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि जलथलमें उत्पन्न हुए नाना प्रकारके वाहनोंपर सवार होकर सामन्त लोग बाहर निकले ॥६६-६७॥ जो भामण्डल और सुग्रीवके प्रति क्रुद्ध थे तथा रावणके हितकारी थे ऐसा विद्याधर राजा बाहर निकले ॥६८॥ अथानन्तर जो महाभयंकर शब्द कर रहे थे, जो प्रयाणके रोकनेमें तत्पर थे तथा जो मण्डल बाँधकर खड़े हुए थे ऐसे रीछ दक्षिणकी ओर दिखाई दिये ॥६९॥ जिन्होंने अपने पंखोंसे गाढ़ अन्धकार उत्पन्न कर रखा था, जिनका शब्द अत्यन्त विकृत था तथा जो महाविनाशकी सूचना दे रहे थे ऐसे भयंकर गीध आकाशमें उड़ रहे थे ॥७०॥ इम प्रकार क्रूर शब्द करते तथा भयकी सूचना देते हुए पृथ्वी तथा आकाशमें चलनेवाले अन्य अनेक पक्षी व्याकुल हो रहे थे ॥७१॥ शूरवीरताके बहुत

प्राप्ते काले कर्मणामानुरूप्यादातुं योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् ।
 शक्तो रोद्धुं नैव शक्नोऽपि लोके वार्तान्येषां केव वाङ्मात्रमाजाम् ॥७३॥
 वीरा योद्धुं दत्तचित्ता महान्तो वाहारूढाः शस्त्रभाराजिहस्ताः ।
 कृत्वावज्ञां वारकाणां समेषां यान्त्यप्युद्ग्राही रविं प्रत्यभीताः ॥७४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणबलनिर्गमनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५७॥



भारी गर्वसे मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओंसे उद्धत राक्षसोंके समूह यद्यपि इन अशुभ स्वप्नको जानते थे तो भी युद्ध करनेके लिए बराबर नगरीसे बाहर निकल रहे थे ॥७२॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जब कर्मोंकी अनुकूलताका समय आता है तब देनेके योग्य समस्त पर्यायकी प्राप्ति निश्चयसे होती है उसे रोकनेके लिए लोकमें इन्द्र भी समर्थ नहीं है । फिर दूसरे प्राणियोंकी तो वार्ता ही क्या है ॥७३॥ जिनका चित्त युद्धमें लग रहा था, जो स्वयं महान् थे, वाहनोपर सवार थे और शस्त्रोंकी कान्तिका समूह जिनके हाथमें था अथवा जिनके हाथ शस्त्रोंकी कान्तिसे सुशोभित थे ऐसे शूरवीर मनुष्य निर्भीक हो निषेध करनेवाले इन समस्त अशकुनोंकी उपेक्षा करते हुए उस प्रकार आगे बढ़े जाते थे जिस प्रकार राहु सूर्यमण्डलके प्रति बढ़ता जाता है ॥७४॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें रावणकी सेना लंकासे बाहर निकली इस बातका वर्णन करनेवाला सत्ताननवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५७॥



अष्टपञ्चाशत्तमं पर्व

आस्तुण्दवीक्ष्य तत्सैन्यमुद्वेलमिव सागरम् । नलनीलमरुत्पुत्रजाम्बवाद्याः सुखेवरः ॥१॥
 रामकार्यसमुद्युक्ताः परमोदारचेष्टिताः । महाद्विपयुतैर्दीप्तैः स्यन्दनैर्निर्ययुर्वरैः ॥२॥
 संमानो जयमित्रश्च चन्द्राभो रतिवर्धनः । कुमुदावर्तसंज्ञश्च महेन्द्रो भानुमण्डलः ॥३॥
 अनुद्धरो दृढरथः प्रीतिकण्ठो^२ महाबलः । समुन्नतबलः^३ सूर्यज्योतिः सर्वप्रियो बलः ॥४॥
 सर्वसारश्च दुर्बुद्धिः सर्वदः सरभो मरः । अभृष्टो निर्विनष्टश्च संत्रासो विघ्नसूदनः ॥५॥
 नादो वर्वरकः पापो लोलपाटनमण्डलौ । संग्रामचपलाद्याश्च परमा खेचराधिपाः ॥६॥
 शार्ङ्गलसंगतैस्तुङ्गै रथैः परमसुन्दरैः । नानायुधधृताटोपा निर्जग्मुः पृथुतेजसः ॥७॥
 प्रस्तरौ हिमवान् सङ्गः प्रियरूपादयस्तथा । एते द्विपयुतैर्योद्भुं निर्ययुः सुमहारथैः^४ ॥८॥
 दुःप्रेक्षः पूर्णचन्द्रश्च विधिः सागरनिःस्वनः । प्रियविग्रहनामा च स्कन्दश्चन्दनपादपः ॥९॥
 चन्द्रांशुरप्रतोघातो महाभैरवकीर्तनः । दुष्टसिंहकटिः क्रुष्टः समाधिबहुलो हलः ॥१०॥
 इन्द्रायुधो गतत्रासः संकटप्रहरादयः । एते हरियुतैस्तूष्णं सामन्ता निर्ययू रथैः ॥११॥
 विद्युत्कर्णो बलः शीलः स्वपक्षरचनो घनः । सम्मेदो विचलः सालः कालः क्षितिवरोऽङ्गदः ॥१२॥
 विकालो लोलकः कालिर्मङ्गलश्चण्डोर्मिरुजितः । तरङ्गस्तिलकः कीलः सुषेणस्तरलो बलिः ॥१३॥
 भीमो भीमरथो धर्मो मनोहरमुखः सुखः । प्रमत्तो मर्दको मत्तः सारो रत्नजटो शिवः ॥१४॥
 दूषणो भीषणः कोणः विघटाख्यो विराधितः । मेरु रणखनिः क्षेमः बेलाक्षेपी महाधरः ॥१५॥
 नक्षत्रलुब्धसंज्ञश्च संग्रामो विजयो जयः । नक्षत्रमालकः क्षौदः तथातिविजयादयः ॥१६॥

अथानन्तर लहराते हुए सागरके समान व्याप्त होती हुई रावणकी उस सेनाको देख, श्रीरामके कार्य करनेमें उद्यत परम उदार चेष्टाओंके धारक नल, नील, हनुमान्, जाम्बव आदि विद्याधर, महागर्जोसे जुते देदीप्यमान उत्तम हाथियोंसे युक्त रथोंपर सवार हो कटकसे निकले ॥१-२॥ सम्मान, जयमित्र, चन्द्राभ, रतिवर्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भानुमण्डल, अनुद्धर, दृढरथ, प्रीतिकण्ठ, महाबल, समुन्नतबल, सूर्यज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, दुर्बुद्धि, सर्वद, सरभ, भर, अभृष्ट, निर्विनष्ट, संत्रास, विघ्नसूदन, नाद, वर्वरक, पाप, लोल, पाटनमण्डल और संग्रामचपल आदि उत्तमोत्तम विद्याधर राजा व्याघ्रोंसे जुते हुए परम सुन्दर ऊँचे रथोंपर सवार हो बाहर निकले । ये सभी विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्रोंके समूहको धारण कर रहे थे तथा विशाल तेजके धारक थे ॥३-७॥ प्रस्तर, हिमवान्, भंग तथा प्रियरूप आदि ये सब हाथियोंसे जुते उत्तम रथोंपर सवार हो युद्धके लिए निकले ॥८॥ दुःप्रेक्ष, पूर्णचन्द्र, विधि, सागरनिःस्वन, प्रियविग्रह, स्कन्द, चन्दनपादप, चन्द्रांशु, अप्रतोघात, महाभैरव, दुष्ट, सिंहकटि, क्रुष्ट, समाधिबहुल, हल, इन्द्रायुध, गतत्रास और संकटप्रहार आदि, ये सब सामन्त सिंहांसे जुते रथोंपर सवार हो शीघ्र ही निकले ॥९-११॥ विद्युत्कर्ण, बल, शील, स्वपक्षरचन, घन, सम्मेद, विचल, साल, काल, क्षितिवर, अंगद, विकाल, लोलक, कालि, भंग, चण्डोर्मि, ऊर्जित, तरंग, तिलक, कील, सुषेण, तरल, बलि, भीम, भीमरथ, धर्म, मनोहरमुख, सुख, प्रमत्त, मर्दक, मत्त, सार, रत्नजटो, शिव, दूषण, भीषण, कोण, विघ्न, विराधित, मेरु, रणखनि, क्षेम, बेलाक्षेपी, महाधर, नक्षत्रलुब्ध, संग्राम, विजय, रथ,

१. आस्तुण् ल. । २. प्रीतिकण्ठमहाबलो ज. । ३. सूर्यः ज्योतिः ज. । ४. सुमहारथाः म., ज. ।

एते वाजियुतैः कान्तैर्मनोरथजै रथैः । महामैनिकमध्यस्थैरध्यासत रणाजिरम् ॥१७॥
 विद्युद्वाहो मरुद्वाहुः सानुर्जलदवाहनः । रवियानः प्रचण्डालिरिमेऽपि घनसंनिभैः ॥१८॥
 महारथवरैर्नानावाहनोद्भासिताम्बरैः । युद्धश्रद्धासमायुक्ता दध्वाकुर्भास्तैः समाः ॥१९॥
 विमानमुत्तमाकारं नाम्ना रत्नप्रभं महत् । आरूढो यत्नवानस्थात् पद्मपक्षो विमंषणः ॥२०॥
 युद्धावर्त्तो वसन्तश्च कान्तः कौमुदिनन्दनः । भूरिः कोलाहलो हेडो भावितः साधुवत्सलः ॥२१॥
 अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा सागरः सागरोपमः । मनोज्ञो जिनसंज्ञश्च तथा जिनमतादयः ॥२२॥
 नानावर्णविमानाश्चभूमिकास्थितमूर्तयः । दुर्धरा निर्यगुयौद्धं बद्धसंनाहविग्रहाः ॥२३॥
 पद्मनाभः सुमित्राजः सुग्रीवो जनकात्मजः । एते हंसविमानस्था विरेजुर्गंगनान्तरे ॥२४॥
 महाम्बुदप्रतीकाद्या नानायानसमाश्रिताः । लङ्काभिमुखमुद्युक्ता गन्तुं सेचरपार्थिवाः ॥२५॥
 संचारलम्बिताम्बोददृन्दनिर्धोषभैरवाः । शङ्खकोटिस्वनोन्मिश्रास्तूर्याणामुद्युः स्वनाः ॥२६॥
 मम्मामेधो मृदङ्गाश्च लम्पाका धुन्धुमण्डुकाः । झम्लाम्लातकहक्काश्च हुङ्कारा दुन्दुकाणकाः ॥२७॥
 झर्झरा हेतुगुञ्जाश्च काहला दर्दुरादयः । समाहता महानादं मुसुसुः कर्णधूर्णकम् ॥२८॥
 वेणुनादाट्टहासाश्च ताराहलहलारवाः । ययुः सिंहद्विपस्वाना महिषस्थन्दनरचनाः ॥२९॥
 क्रमेलककहारावा निनादा मृगपक्षिणाम् । उत्तस्थुः पिहिताशेषाशेषविष्टपनिःस्वनाः ॥३०॥
 तयोर्न्योन्यमासंगे जाते परमसैन्ययोः । लोकः संशयमारूढः समस्तो जादितं प्रति ॥३१॥
 क्षोणी क्षोभं परं प्राप्ता विकम्पितमहीधरा । प्रशीघ्रं गन्तुमाख्यः प्रक्षुब्धः क्षारसागरः ॥३२॥

नक्षत्रमालक, क्षोद तथा अतिविजय आदि घोड़ोंसे जुते मनोहर, इच्छानुसार वेगवाले, तथा महा-
 सैनिकोंके मध्य स्थित रथोंपर सवार हो रणांगणमें पहुँचे ॥१२-१७॥ विद्युद्वाह, मरुद्वाहु, सानु, मेघ-
 वाहन, रवियान और प्रचण्डालि ये सब सामन्त भी मेघोंके समान नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाश-
 को देदीप्यमान करनेवाले उत्तमोत्तम रथोंपर सवार हो युद्धकी अभिलाषासे दौड़े ! ये सब वायुके
 समान तीव्र वेगवाले थे ॥१८-१९॥ जिसे रामकी पक्ष थी ऐसा यत्नवान् विमोषण रत्नप्रभ नामक
 उत्तम विमानपर आरूढ़ हुआ ॥२०॥ युद्धावर्त्त, वसन्त, कान्त, कौमुदिनन्दन, भूरि, कोलाहल,
 हेड, भावित, साधुवत्सल, अर्द्धचन्द्र, जिनप्रेमा, सागर, सागरोपम, मनोज्ञ, जिनसंज्ञ तथा जिनमत
 आदि घोड़ा युद्ध करनेके लिए बाहर निकले । ये सब नाना वर्णोंवाले विमानोंकी अग्रभूमिमें स्थित
 थे, दुर्धर थे और सबके शरीर कवचोंसे कसे हुए थे ॥२१-२३॥ पद्मनाभ—राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और
 भामण्डल ये सब हंसोंके विमानोंमें बैठे हुए आकाशके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥
 जो महामेघके समान जान पड़ते थे तथा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ थे, ऐसे विद्याधर राजा
 लंकाकी ओर जानेके लिए तत्पर हुए ॥२५॥ प्रलयकालीन घनघटाकी गर्जनाके समान जिनके भयंकर
 शत्रु थे, तथा जो करोड़ों शंखोंके शब्दसे मिले हुए थे ऐसे तुरही वादियोंके शब्द उत्पन्न होने लगे ॥२६॥
 भंभा, भेरी, मृदंग, लम्पाक, धुन्धु, मण्डुक, झम्ला, अम्लातक, हक्का, हुंकार, दुन्दुकाणक, झर्झर,
 हेतुगुञ्जा, काहल और दर्दुर आदि बाजे ताड़ित होकर कानोंको घुमानेवाले महाशब्द छोड़ने
 लगे ॥२७-२८॥ बाँसीके शब्द, अट्टहासकी ध्वनि, तारा तथा हलहलके शब्द, सिंहों और हाथियोंके
 शब्द, भैंसाओं और रथोंके शब्द, ऊँटोंके विशाल शब्द तथा मृग और पक्षियोंके शब्द उठने
 लगे । इन सबके शब्दोंने शेष समस्त संसारके शब्दोंको आच्छादित कर दिया ॥२९-३०॥ जब उन
 दोनों विशाल सेनाओंका परस्परमें समागम हुआ तब समस्त लोक अपने जीवनके प्रति संशयमें
 पड़ गये ॥३१॥ पृथिवी अत्यन्त क्षोभको प्राप्त हुई, पर्वत हिलने लगे और क्षुभित हुआ लवण समुद्र

१. कौमुदिनन्दनः म. । २. प्रलय- म. । ३. धूर्णनम् म. । ४. लवणसमुद्रः ।

सदपेर्निर्गतेष्वधैरसहैर्निजवर्गतः । दन्तुरीभूतमस्थुग्रं बलद्वयमलक्ष्यत ॥३३॥
 चक्रक्रकचकुन्तासिगदाशक्तिशिलीमुखैः । भिण्डिमालादिभिश्चोग्रं प्रवृत्तं युद्धमेतयोः ॥३४॥
 ओह्यन्तः सुसंनद्धाः शस्त्रज्वलितबाहवः । समुत्पेतुर्मटाः शूराः परसैन्यं विवक्षवः ॥३५॥
 अतिवेगसमुत्पाताः प्रविष्टाः शात्रवं बलम् । शस्त्रसंचारमार्गार्थमससुः पुनर्मनाक् ॥३६॥
 लङ्कानिवासिभिर्योधैरुद्गतैरतिभूरिभिः । सिंहैरिव गजा मङ्गं नीता वानरपक्षिणः ॥३७॥
 पुनरन्यैर्भटैः शीघ्रमसौदन्तः समुज्ज्वलाः । रक्षोयोधान् विनिर्जघ्नुर्भासुरा वानरध्वजाः ॥३८॥
 भेद्यमानं बलं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य सर्वतः । स्वामिरागसमाकृष्टौ महाबलसमावृतौ ॥३९॥
 गजध्वजसमालक्ष्यौ गजस्यन्दनवर्तिनौ । सा भैष्टेति कृतस्वानौ परमोक्तद्विप्रहौ ॥४०॥
 हस्तप्रहस्तसामन्तावुत्थाय सुमहाजवौ । निन्यतुः परमं भङ्गं बलं वानरलक्ष्मणाम् ॥४१॥
 शाखामृगध्वजौ तावत्प्रतापं विश्रुतौ परम् । क्रोडवारणसंवृत्तबाहव्यूढमहारथौ ॥४२॥
 शौर्यगर्वाविवायुक्तशरीरौ परमद्युतौ । नलनीलौ परिकुद्धौ मीपणौ धोदुमुद्यतौ ॥४३॥
 ततो बहुविधैः शस्त्रैश्चिरं जाते महाहवे । क्रमाप्तसाधुनिस्वाने निपतद्भटसकटे ॥४४॥
 नलेनोत्पत्य हस्तो वा विह्वलो विरथोऽकृतः । प्रहस्त इव नीलेन कृतश्च गतजीवितः ॥४५॥
 तावालोक्ष्य ततो राजन् विपर्यस्तौ महीतले । विनायका बभूवैतद्वाहिनीयं पराङ्मुखा ॥४६॥

शोषणको प्राप्त होने लगा ॥३२॥ अपने-अपने वर्गसे निकलकर बाहर आये हुए, असह्यशील, अहंकारी योद्धाओंसे व्याप्त हुई दोनों सेनाएँ अत्यन्त भयंकर दिखने लगीं ॥३३॥ कुछ ही समय बाद दोनों सेनाओंमें चक्र, क्रकच, कुन्त, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और भिण्डिमाल आदि शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥३४॥ जो एक दूसरेको बुला रहे थे, जो कवचोंसे युक्त थे, जिनकी भुजाएँ शस्त्रोंसे देदीप्यमान हो रही थीं और जो पर-चक्रमें प्रवेश करना चाहते थे ऐसे शूरवीर योद्धा उछल रहे थे ॥३५॥ ये योद्धा अत्यन्त वेगसे उछलकर पहले तो शत्रुओंके दलमें जा चुके अनन्तर शस्त्र चलानेके योग्य मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छासे पुनः कुछ पीछे हट गये ॥३६॥ लंका निवासी योद्धा अधिक संख्या में थे तथा अत्यधिक शक्तिशाली थे इसलिए उन्होंने वानर-पक्षके योद्धाओंको उस तरह पराजित कर दिया जिस तरह कि सिंह हाथियोंको पराजित कर देते हैं ॥३७॥ तदनन्तर शीघ्र ही जो अन्य योद्धाओंके द्वारा नहीं दबाये जा सकते थे ऐसे प्रतापी तथा देदीप्यमान वानर राजाओंने राक्षस योद्धाओंको मारना शुरू किया ॥३८॥ तत्पश्चात् रावणकी सेनाको सब ओरसे नष्ट होती देख स्वामीके प्रेमसे खिन्ने तथा बड़ी भारी सेनासे घिरे हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त उठकर आगे आये । ये हाथीके चिह्नसे सुशोभित ध्वजासे पृथक् ही जान पड़ते थे, हाथियोंके रथपर आरूढ़ थे, 'डरो मत, डरो मत' यह शब्द कर रहे थे, अत्यन्त उत्कृष्ट शरीरके धारक थे और महावेगशाली थे । इन्होंने आते ही वानरोंकी सेनामें तीव्र मार-काट मचा दी ॥३९-४१॥ यह देख जो परम प्रतापको धारण कर रहे थे, सूकर, हाथी तथा घोड़े जिनके बड़े-बड़े रथ खींच रहे थे, जो शरीरधारी शूरवीरता और गर्वके समान जान पड़ते थे, परमदीप्तिके धारक थे, अत्यन्त क्रुद्ध एवं भयंकर थे, ऐसे वानरवंशी नल और नील युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥४२-४३॥

तदनन्तर जिसमें क्रम-क्रमसे साधु-साधु बहुत अच्छा बहुत अच्छाका शब्द हो रहा था तथा जो गिरते हुए योद्धाओंसे व्याप्त था ऐसा महायुद्ध जब चिरकाल तक नाना प्रकारके शस्त्रोंसे हो चुका तब नलने उछलकर हस्तको रथ रहित तथा विह्वल कर दिया और नीलने प्रहस्तको निर्जीव बना दिया ॥४४-४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर हस्त और प्रहस्तको

चंशस्थवृत्तम्

विमर्ति तावद् दृढनिश्चयं जनः प्रभोर्मुखं पश्यति यावदुत्तमम् ।
गते विनाशं स्वपतौ विशीर्यते यथारचक्रं परिशीर्णतुम्बकम् ॥४७॥

उपेन्द्रचक्रावृत्तम्

सुनिश्चितानामपि संनराणां विना प्रधानेन न कार्ययोगः ।
शिरस्थपेते हि शरीरस्थन्धः प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ॥४८॥
प्रधानसंबन्धमिदं हि सर्वं जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं प्रयाति मन्दो निकरः करणाम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीरविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तवधाभिधानं नामाष्टपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५८॥



पृथ्वीपर पड़ा देख रावणकी सेना, नायकसे रहित होनेके कारण विमुख हो गयी—भाग खड़ी हुई ॥४६॥ सो ठीक ही है क्योंकि जबतक यह मनुष्य, स्वामीके ऊँचे उठे मुखको देखता रहता है तभी तक निश्चयको धारण करता है और जब अपना स्वामी नष्ट हो जाता है तब समस्त सेना जिसका पुट्टा बिखर गया है ऐसी गाड़ीके पहियेके समान बिखर जाती है ॥४७॥ आचार्य कहते हैं कि यद्यपि निश्चित किये हुए मनुष्योंका कार्य किसी प्रधान पुरुष के बिना नहीं होता है क्योंकि शिर नष्ट हो जानेपर शरीर सब ओर से नाश ही को प्राप्त होता है ॥४८॥ प्रधानके साथ सम्बन्ध रखनेवाला यह समस्त जगत् यथेष्ट फलको प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि राहुके द्वारा आक्रान्त सूर्यकी किरणोंका समूह मन्द होता हुआ विनाशको ही प्राप्त होता है ॥४९॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हस्त-प्रहस्तके वधका कथन करनेवाला अष्टावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५८॥

एकोनपष्ठितमं पर्व

उवाच श्रेणिकोऽथैवं विद्याविधिविशारदौ । हस्तप्रहस्तसामन्तौ जितपूर्वौ न केनचित् ॥१॥
 महदाश्चर्यमेतन्मे ताभ्यां तौ निहतौ कथम् । अत्र मे कारणं नाथ गणधरवन्तुमर्हसि ॥२॥
 ततो गणधरोऽब्रुवच्चक्षुः तत्त्वविशारदः । राजन् कर्माभिनुन्नानां जन्तूनां गतिरीदृशी ॥३॥
 पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुःकृतिनामियम् । असौ मारयिता तस्य यो येन निहितः पुरा ॥४॥
 असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु । यो येन मोचितं पूर्वमनर्थे पतितो नरः ॥५॥
 आसँलौकिकमर्यादाः प्रातिवेदिमकवातिनः । निःस्वाः कुटुम्बिनः स्थाने कुशस्थलकनामनि ॥६॥
 इन्धकः पल्लवश्चैव तत्रैकोदरसंभवौ । पुत्रदारपरिक्लिष्टौ विप्रौ लाङ्गलकर्मकौ ॥७॥
 साधुकम्पौ स्वभावेन साधुनिन्दापराङ्मुखौ । जैनमित्रपरिषङ्गाद् भिक्षादानादिसेविनौ ॥८॥
 द्वितीयं निःस्वयुगलं प्रतिवेद्मोषितं तयोः । स्वभावनिर्दयं क्रूरं लौकिकोन्मार्गमोहितम् ॥९॥
 वण्टने राजदानस्य संजाते कलहे सति । ताभ्यामत्यन्तरौद्राभ्यां तताविन्धकपल्लवौ ॥१०॥
 साधुदानाद्विरक्षेत्रे जातौ सद्भोगभोजिनौ । पल्यद्वयक्षये जातौ देवलोकनिवेशिनौ ॥११॥
 अधर्मपरिणामेन क्रूरौ तु प्राप्तपञ्चतौ । शशौ कालंजरारण्ये जातौ दुःखातिसंकटे ॥१२॥
 मिथ्यादर्शनयुक्तानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्राणिनां पापकूटानां भवस्येवेदृशी गतिः ॥१३॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! विद्याओंकी विधिमें निपुण जो हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त पहले किसीके द्वारा नहीं जोते जा सके वे बड़ा आश्चर्य है कि नल और नोलके द्वारा कैसे मारे गये ? हे नाथ ! आप मेरे लिए इसका कारण कहिए ॥१-२॥ तदनन्तर श्रुत रहस्यके ज्ञाता गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् ! कर्मसे प्रेरित प्राणियोंकी ऐसी ही गति होती है ॥३॥ पूर्वकर्मके प्रभावसे पापी जीवोंकी यह दशा है कि पहले जो जिसके द्वारा मारा जाता है वह उसे मारता है ॥४॥ पहले जिसने विपत्तिमें पड़े हुए जिस मनुष्यको उस विपत्तिसे छुड़ाया है वह उसे भी बन्धन तथा व्यसन-संकट आदिके समय छुड़ाता है ॥५॥ इनकी कथा इस प्रकार है कि कुशस्थल नामक नगरमें लौकिक मर्यादाको पालनेवाले कुछ दरिद्र कुटुम्बी पास-पासमें रहते थे ॥६॥ उनमें इन्धक और पल्लवक नामक दो भाई थे जो एक ही माताके उदरसे उत्पन्न थे, पुत्रों तथा स्त्रियोंके कारण क्लेशको प्राप्त रहते थे, जातिके ब्राह्मण थे, हल चलानेका काम करते थे, स्वभावसे दयालु थे, साधुओंकी निन्दासे विमुख थे, तथा अपने एक जैन-मित्रकी संगतिसे आहारदान आदि कार्योंमें तत्पर रहते थे ॥७-८॥ उन दोनोंके पड़ोसमें ही एक दूसरा दरिद्र कुटुम्बियोंका युगल रहता था जो स्वभावसे निर्दय था, दुष्ट था और लौकिक मिथ्या प्रवृत्तियोंसे मोहित रहता था ॥९॥ एक बार राजाकी ओरसे जो दान बँटता था उसमें कलह हो गयी जिससे अत्यन्त क्रूर परिणामोंके धारक उन दरिद्र कुटुम्बियोंके द्वारा इन्धक और पल्लवक मारे गये ॥१०॥ मुनिदानके प्रभावसे दोनों, हरिक्षेत्रमें उत्तम भोगोंको भोगनेवाले आर्य हुए । वहाँ दो पल्यकी उनकी आयु थी । उसके पूर्ण होनेपर दोनों ही देवलोकमें उत्पन्न हुए ॥११॥ दूसरे जो क्रूर दरिद्र कुटुम्बी थे वे अधर्मरूप परिणामसे मरकर दुःखांसे परिपूर्ण कालंजर नामक वनमें खरगोश हुए ॥१२॥ सो ठीक ही है क्योंकि मिथ्यादर्शनसे युक्त तथा साधुओंकी निन्दा

१. चक्षुः तत्त्वविशारदः म. । २. पुत्रादर- म. । ३. विद्धौ म. । ४. विभागकरणे, बन्धने म. । ५. काले जरारण्ये म. ।

ततस्तिर्यक्षु सुचिरं भ्राम्वा विविधयोनिषु । कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्तौ तापसत्वमुपागतौ ॥१४॥
 बृहज्जटौ बृहत्कायो फलपर्णादिभोजिनौ । तयोभिः कश्चित् तोद्रेः कुञ्जाने द्वौ मृतौ च तौ ॥१५॥
 क्रमादरिजं जातावशिण्याः कुक्षिसंभवौ । पुत्री वह्नि कुमारस्य विजयादस्य दक्षिणे ॥१६॥
 आशुकाराशुराकाराविमौ जगति विश्रुतौ । हस्तप्रहस्तनामानौ सचिवौ रक्षसां विभोः ॥१७॥
 पूर्वौ तु प्रच्युतौ नाकात् सुमनुष्यत्वागतौ । गृहाश्रमे तपः कृत्वा पुनर्जातौ सुरोत्तमौ ॥१८॥
 पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टौ स्वर्गादिन्धकपलवौ । किष्कुर्वंसं पुरं जातौ नलनीलौ महाबलौ ॥१९॥
 यत्तद्वस्तुप्रहस्ताभ्यां नलनीलौ भवान्तरे । निहतौ फलमेतस्य परावृत्य तदागतम् ॥२०॥
 हतवान् हन्यते पृथं पालकः पाल्यतेऽधुना ।^१ उदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ॥२१॥
 यं वीक्ष्य जायते कोभो दृष्टकारणवजितः । निःसंदिग्धं परिज्ञेयः स रिपुः पारलौकिकः ॥२२॥
 यं वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषा^२ । भयंदिग्धं सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ॥२३॥
 क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः^३ शीर्णपोतं ज्ञपादयः । स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते यत्तद्दुःकृतजं फलम् ॥२४॥
 मत्तैर्गिरिनिभैर्गिर्योर्वैर्बुविधायुजैः । सुवेगैर्वाजिभिर्दुसैर्भृत्यैश्च कवचावृतैः ॥२५॥
 विग्रहेऽविग्रहे वापि निःप्रमादस्य संवतम् । जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ॥२६॥
 निरस्तमपि^४ निर्यन्तं यत्र तत्र^५ स्थितं परम् । तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवः ॥२७॥

करनेवाले पापी प्राणियों को ऐसी ही गति होती है ॥१३॥ तदनन्तर तिर्यचोंकी नाना योनियोंमें चिरकाल तक भ्रमण कर दोनों बड़ी कठिनातासे मनुष्य पर्याय प्राप्त कर तापस हुए ॥१४॥ वहाँ वे बड़ी-बड़ी जटाएँ रखाये हुए थे, डील-डौलके विशाल थे, फल तथा पत्ते आदिका भोजन करते थे और तीव्र तपस्यासे दुर्बल हो रहे थे । मिथ्याज्ञानके समय ही दोनोंकी मृत्यु हुई ॥१५॥ दोनों ही मरकर विजयाधं पर्वतके दक्षिणमें वह्निकुमार विद्याधरकी अश्विनी नामा स्त्रीकी कुक्षिसे दो पुत्र हुए ॥१६॥ ये दोनों ही शीघ्रतासे कार्य करनेवाले असुरोंके समान आकारके धारक थे, जगत्में अतिशय प्रसिद्ध थे तथा आगे चलकर रावणके हस्त, प्रहस्त नामक मन्त्री हुए थे ॥१७॥ पहले जितका कथन कर आये हैं ऐसे इन्धक और पल्लवक स्वर्गसे च्युत होकर उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए । तदनन्तर गृहस्थाश्रममें ही तपकर दोनों उत्तम देव हुए ॥१८॥ फिर पुण्यका क्षय होनेसे स्वर्गसे च्युत हो किष्कु नामक नगरमें महाबलके धारक नल और नील हुए ॥१९॥ हस्त और प्रहस्तने भवान्तरमें जो नल और नीलको मारा था इसका फल लीटकर इस भवमें उन्हींको प्राप्त हुआ अर्थात् उनके द्वारा वे मारे गये ॥२०॥ पूर्वभवमें जो जिसे मारता है वह इस भवमें उसके द्वारा मारा जाता है, पूर्वभवमें जो जिसकी रक्षा करता है वह इस भवमें उसके द्वारा रक्षित होता है तथा पूर्वभवमें जो जिसके प्रति उदासीन रहता है वह इस भवमें उसके प्रति उदासीन रहता है ॥२१॥ जिसे देखकर अकारण क्रोध उत्पन्न होता है उसे निःसन्देह परलोक सम्बन्धी शत्रु जानना चाहिए ॥२२॥ और जिसे देखकर नेत्रोंके साथ-साथ मन आह्लादित हो जाता है उसे निःसन्देह पूर्वभवका मित्र जानना चाहिए ॥२३॥ समुद्रके लहराते जलमें जर्जर नाववाले मनुष्यको जो मगर, मच्छ आदि बाधा पहुँचाते हैं तथा स्थलमें म्लेच्छ पीड़ा पहुँचाते हैं वह सब पापकर्मका फल है ॥२४॥ पर्वतोंके समान मदोन्मत्त हाथियों, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले योद्धाओं, तीव्र वेगके धारक घोड़ों एवं कवच धारण करनेवाले अहंकारी भृत्योंके साथ युद्ध हो अथवा नहीं हो और आप स्वयं सदा प्रमादरहित सावधान रहे तो भी पुण्यहीन मनुष्यकी रक्षा नहीं होती ॥२५-२६॥ इसके विपरीत पुण्यात्मा मनुष्य जहाँसे हटता है, जहाँसे बाहर निकलता है

१. आशुकारशराकाशै ज. ख., आशुकारशुराकारौ क. । २. उदासीन- म. । ३. चक्षुषाम् म. । ४. शीर्ण पोतं म. । ५. नियतं म. । ६. स्थिरं म. ।

दृश्यते बन्धुमध्यस्थ पित्राप्यालिङ्गितो धनी । स्त्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्यः शक्तोऽमिरक्षितुम् ॥२८॥

पात्रदानैः घनैः शीलैः सम्यक्त्वपरितोषितैः । विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नरः ॥२९॥

दयादानादिना येन धर्मो नोपाजितः पुरा । जीवितं चेष्ट्यते दीर्घं बाल्छा तस्यातिनिःफला ॥३०॥

न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना ।

इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिद्विरिष्वपि ॥३१॥

दोधकवृत्तम्

एष ममोपकरोति सुचेताः दुष्टतरोऽपकरोति ममायम् ।

बुद्धिरियं निपुणा न जनानां कारणमत्र निजार्जितकर्म ॥३२॥

इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्बाह्यसुखासुखगौणनिमित्तैः ।

रागतरं कलुषं च निमित्तं कृत्यमपोज्झितकुत्सितचेष्टैः ॥३३॥

भूविबरेषु निपातमुपैति प्रावणि सज्जति गच्छति सर्पम् ।

संतमसा पिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकटत्वे ॥३४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तनलीलपूर्वभवानुकीर्तनं नामैकोनषष्टितमं पर्व ॥५९॥



अथवा जहाँ स्थिर रहता है वहाँ तप तथा दान ही उसकी रक्षा करते हैं, यथार्थमें न देव रक्षा करते हैं और न भाई-बन्धु ही ॥२७॥ देखा जाता है कि जो भाई-बन्धुओंके मध्यमें स्थित है, पिता जिसका आलिप्तन कर रहा है, जो धनी और अत्यन्त शूरवीर है वह भी मृत्युको प्राप्त होता है, कोई दूसरा पुरुष उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥२८॥ युद्ध हो चाहे न हो सम्यग्दर्शनके साथ-साथ अच्छी तरह पाले हुए पात्रदान, व्रत तथा शील ही इस मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥२९॥ जिसने पूर्व पर्यायमें दया, दान आदि के द्वारा धर्मका उपार्जन नहीं किया है और फिर भी दीर्घ जीवनकी इच्छा करता है सो उसकी वह इच्छा अत्यन्त निष्फल है ॥३०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि 'तपके बिना मनुष्योंके कर्म नष्ट नहीं होते' यह जानकर विज्ञ पुरुषोंको शत्रुओंपर भी क्षमा करनी चाहिए ॥३१॥ यह उत्तम हृदयका धारक पुरुष मेरा उपकार करता है और यह अतिशय दुष्ट मनुष्य मेरा अपकार करता है । लोगोंको ऐसा विचार करना अच्छा नहीं है क्योंकि इसमें अपने ही द्वारा अर्जित कर्म कारण हैं ॥३२॥ ऐसा जानकर जिन्होंने सुख-दुःखके बाह्य निमित्तोंको गौण कर छोटी चेष्टाओंका परित्याग कर दिया है ऐसे श्रेष्ठ विद्वानोंको निमित्त कारणोंमें तीव्र राग अथवा दोष नहीं करना चाहिए ॥३३॥ गाढ़ अन्धकारके द्वारा आच्छादित मार्ग जब सूर्यके द्वारा प्रकाशित हो जाता है तब नेत्रवान् मनुष्य न तो पृथ्वीके गड्ढोंमें गिरता है; न पत्थर-पर टकराता है और न सर्प ही को प्राप्त होता है ॥३४॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें हस्त-प्रहस्त और

नल-नीलके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला उनसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५९॥



षष्ठितमं पर्व

हस्तप्रहस्तसद्भीरौ विज्ञाय निहतौ ततः । अन्येद्युद्धुरक्रोधा बहवो योद्धुमुद्यताः ॥१॥
 मारीचः सिंहजघनः स्वयम्भुः शम्भुरुजितः । शुकसारणचन्द्रार्कजगद्भीमत्सनिःस्वनाः ॥२॥
 ज्वरोग्रनक्रमकरा वज्राक्षोद्यामनिष्ठुराः । गम्भीरनिनदाद्याश्च संनद्धा रमसान्विताः ॥३॥
 सिंहसंवृद्धैर्बाहोदस्यन्दनार्पितमूर्तयः । क्षोभयन्तः परिप्राप्ताः कपिकेतुवरूथिनीम् ॥४॥
 तान् समापततो दृष्ट्वा राक्षसान् पार्थिवान्परान् । इमे वानरवंशाग्राः पार्थिवा योद्धुमुद्यताः ॥५॥
 मदनान्कुरसंतापप्रस्थिताक्रोशनन्दनाः । दुरितानघपुष्पास्त्रविघ्नप्रीतिकरादयः ॥६॥
 अन्योन्याहृतमेतेषामसवत् परमं रणम् । कुर्वद्भिर्जटिलं व्योम शस्त्रैर्बहुविधैर्धनम् ॥७॥
 अभिलष्यति संतापो मारीचं समरे तदा । प्रथितः सिंहजघनमुद्यानं विघ्नसंज्ञकः ॥८॥
 आक्रोशः सारणं पापः शुकार्क्यं नन्दनो ज्वरम् । तेषां स्पृष्ट्वावतामेवं युद्धं जातं निग्रन्थितम् ॥९॥
 ततः क्लिष्टेन संतापो मारीचेन निपातितः । नन्दनेन हतः कृच्छ्राज्ज्वरः कुन्तेन वक्षसि ॥१०॥
 प्रथितः सिंहकटिना विघ्नश्चोदामकीर्तिना । हतोऽथ युद्धसंहारः श्वितास्तं समागमत् ॥११॥
 श्रुत्वा स्वं स्वं हतं नार्थं निमग्नाः शोकसागरे । स्त्रियो विभावरीमेतामनन्तामिव मेनिरे ॥१२॥
 अन्येद्युः संततक्रोधाः सामन्ता योद्धुमुद्यताः । वज्राक्ष्यः क्षपितारिश्च मृगेन्द्रदमनो विधिः ॥१३॥
 शम्भुः स्वयंभुश्चन्द्रार्कस्तथा वज्रोदरादयः । राक्षसाधिपवर्गीयास्तेभ्योऽन्ये वानरध्वजाः ॥१४॥

अयानन्तर हस्त और प्रहस्त वीरोंको मरा सुन दूसरे दिन उत्कट क्रोधसे भरे बहुत-से योद्धा युद्ध करनेके लिए उग्रत हुए ॥१॥ जिनके कुछ नाम इस प्रकार हैं—मारीच, सिंहजघन, स्वयम्भू, शम्भु, अर्जित, शुक, सारण, चन्द्र, अर्क, जगद्भीमत्स, निःस्वन, ज्वर, उग्र, नक्र, मकर, वज्राक्ष्य, उद्याम, निष्ठुर और गम्भीर, निनद आदि । ये सभी योद्धा कवच धारण कर युद्धके लिए तैयार थे, वेगसे सहित थे, सिंहों और परिपुष्ट घोड़ोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ़ थे तथा वानर-वंशियोंकी सेनाको क्षोभित करते हुए आ पहुँचे ॥२-४॥ उन राक्षसवंशी उत्तमोत्तम राजाओंको आते देख वानरवंशके प्रधान राजा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥५॥ इनमें-से कुछके नाम इस प्रकार हैं—मदन, अंकुर, सन्ताप, प्रस्थित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिकर आदि ॥६॥ आकाशको अत्यन्त जटिल करनेवाले नाना प्रकारके शस्त्रोंसे दोनों पक्षके लोगोंका एक दूसरेको ललकार-ललकारकर भयंकर युद्ध हुआ ॥७॥

उस समय युद्धमें सन्ताप, मारीचको चाह रहा था; प्रथित, सिंहजघनको; विघ्न, उद्यामको; आक्रोश, सारणको; पाप, शुकको और नन्दन, ज्वरको; देख रहा था । इस प्रकार स्पर्धासे भरे हुए इन सब योद्धाओंका विकट युद्ध हुआ ॥८-९॥ तदनन्तर क्लेशसे भरे हुए मारीचने सन्तापको गिरा दिया । नन्दनने वक्षःस्थलमें भालेका प्रहार कर बड़े कष्टसे ज्वरको मार डाला ॥१०॥ सिंह-जघनने प्रथितको और उद्यामने विघ्नको मार गिराया । तदनन्तर सूर्य अस्त हुआ और उस दिनके युद्धका उपसंहार हुआ ॥११॥ अपने-अपने पतिको मरा सुन स्त्रियाँ शोकरूपी सागरमें निमग्न हुईं और उस रात्रिको अनन्त—बहुत भारी मानने लगीं ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन तीव्र क्रोधसे भरे वज्राक्ष्य, क्षपितारि, मृगेन्द्रदमन, विधि, शम्भु, स्वयम्भु, चन्द्र, अर्क तथा वज्रोदर आदि राक्षस पक्षके और उनसे भिन्न दूसरे वानर पक्षके योद्धा

१. वज्राक्षो घाति निष्ठुराः म., क.; वज्राक्षोद्यामनिष्ठुराः ज., क. । २. संवृत्त-ज. । ३. क्रोध-ज. । ४. शुकार्क म. । ५. वज्राक्षः म. ।

जन्मान्तराजितक्रोधकर्मबन्धोदयेन ते । योद्धुं परममासक्ता निजजीवितनिस्पृहाः ॥१५॥
 क्षपितारिः समाहूतः संक्रोधेन महारुषा । शृगारिदमनो बलिना संहृतो बाहुशालिना ॥१६॥
 विधिर्वितापिनाऽन्योन्यमेवं जाते महाहवे । भटेष्वाज्ञातसंज्ञेषु निपतस्सूपलेष्विव ॥१७॥
 शार्दूलस्ताडितः पूर्वं वज्रोदरमताडयत् । सक्रोधं सुचिरं युद्धं क्षपितारिमारयत् ॥१८॥
 विशालद्युतिनामा च शम्भुना विनिपातितः । मृत्युं स्वयंभुवा नीतो विजयो यष्टिताडितः ॥१९॥
 वितापिर्विधिना ध्वस्तो गदाघातेन कृच्छ्रतः । सामन्तैरिति हन्यन्ते सामन्ताः शतशस्तदा ॥२०॥
 अवसीदन्तो दृष्ट्वा स्वं किष्किन्धपतिर्बलम् । परमक्रोधसंभारो यावत्स्यन्दधुमुद्यतः ॥२१॥
 अञ्जनातनयस्तावत्तत्स्वसैन्येन युग्महीम् । वारणोदं रथं हेमसारुहो योद्धुमुद्ययौ ॥२२॥
 रक्षःसामन्तसंघातो दृष्ट्वैव पचनात्मजम् । गवामिव गणो भ्रान्तस्त्रस्तः केशरिदर्शनात् ॥२३॥
 उचुश्च राक्षसाः सोऽयं हनुमान् वानरध्वजः । अद्यैव विधवा योषाः परं बह्वीः करिष्यति ॥२४॥
 माली तस्याग्रतो भूतो युद्धार्थो राक्षसोत्तमः । समुद्दृष्ट्य शरं तस्य पुरो वातिरजायत ॥२५॥
 तयोरभ्रन्महद्युद्धं शरैराकर्णसंहितैः । उपात्तसाधुनिस्त्वानं क्रमेण परमोद्धतम् ॥२६॥
 सचिवाः सचिवैः साकं रथिनो रथिभिस्तथा । सादिनो सादिभिः सत्रा लग्ना युक्तरणोद्यताः ॥२७॥
 मालिनं नष्टमालोक्य शक्त्या पवनजन्मनः । वज्रोदरोऽभवत्तस्य पुरः परमविक्रमः ॥२८॥
 चिरं कृतरणोऽथायं वातिना विरथीकृतः । रथमन्यं समारुह्य मारुतिं समयावत ॥२९॥
 कृत्वा तं विरथं भूयो मारुतिः परमोदयः । उपर्येवाहयत्तस्य रथं मारुतरंहसम् ॥३०॥

युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१२-१४॥ जन्मान्तरोंमें संचित क्रोध कर्मके तीव्र उदयसे वे अपने जीवनसे निःस्पृह हो भयंकर युद्ध करनेमें जुट पड़े ॥१५॥ महाक्रोधसे भरे संक्रोधने क्षपितारिको ललकारा, भुजाओंसे मुशोभित बलीने सिंहदमनको बुलाया और वितापिने विधिको पुकारा । इस प्रकार परस्पर महायुद्ध होनेपर जिनके नामोंका पता नहीं था ऐसे अनेक योद्धा मर-मरकर ऐसे गिरने लगे मानो पत्थर ही बरस रहे हों ॥१६-१७॥ जिसपर पहले प्रहार किया गया था ऐसे शार्दूलने वज्रोदरको मारा । दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले संक्रोधकी क्षपितारिने मार डाला ॥१८॥ शम्भुने विशालद्युतिको मार गिराया, स्वयम्भूने यष्टिकी चोटसे विजयको मृत्यु प्राप्त करा दी और विधिने गदाके प्रहारसे वितापिको बड़ी कठिनाईसे मारा था । इस प्रकार उस समय सामन्तोंके द्वारा सैकड़ों सामन्त मारे गये थे ॥१९-२०॥ तदनन्तर अपनी सेनाको नष्ट होती देख परमक्रोधसे भरा सुग्रीव जबतक कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ तबतक अपनी सेनासे पृथिवीको व्याप्त करनेवाला हनुमान् हाथियोंसे जुते स्वर्णमय रथपर सवार हो युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ ॥२१-२२॥ जिस प्रकार सिंहको देखकर गायोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगता है, उसी प्रकार हनुमान्को देख राक्षस-सामन्तोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगा ॥२३॥ राक्षस परस्पर कहने लगे कि यह हनुमान् आज ही अनेक स्त्रियोंको विधवाएँ कर देगा ॥२४॥ तदनन्तर युद्धका अभिलाषी राक्षसोंका शिरोमणि, माली हनुमान्के आगे आया सो हनुमान् भी बाण निकालकर उसके सामने जा पहुँचा ॥२५॥ कानों तक खींच-खींचकर चढ़ाये हुए बाणोंसे उन दोनोंका ऐसा महायुद्ध हुआ कि जिसमें क्रम-क्रमसे ठीक-ठीक शब्दका उच्चारण हो रहा था, तथा जो परम उद्धततासे युक्त था ॥२६॥ योग्य युद्ध करनेमें तत्पर सचिव सचिवोंके साथ, रथी रथियोंके साथ और घुड़यवार घुड़सवारोंके साथ जूझ पड़े ॥२७॥ हनुमान्की शक्तिसे मालीको नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी वज्रोदर उसके सामने आया ॥२८॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद हनुमान् ने जब उसे रथरहित कर दिया तब वह दूसरे रथपर सवार हो हनुमान्की ओर दौड़ा ॥२९॥ परम

स्थन्दनोद्वाहिनागां हि चूर्णितः स रणाजिरे । अमुञ्चत द्रुतं प्राणान् हुङ्कारेणापि वर्जितः ॥३१॥
 ततोऽस्याभिमुखं तस्थौ स्वपक्षवधकोपितः । जम्बूमालीति विख्यातो रावणस्य सुतो बली ॥३२॥
 असावुत्थितमात्रश्च ध्वजं वानरलान्छनम् । चिच्छेद् वायुपुत्रस्य चन्द्रार्द्धसदृशे पुण्ड्रं ॥३३॥
 केतुकल्पनहृष्टेन तस्य माहतिना धनुः । कवचं च ततो नीतं पुराणतृणशीर्णताम् ॥३४॥
 ततस्तनूदरीसूनुर्वध्वान्यं कवचं वृढम् । अताडयन्मस्तूनुं तीक्ष्णैर्वक्षसि सायकैः ॥३५॥
 बालनीलोत्पलम्लाननालस्पर्शसमुद्भवैः । असेवत स तैः सौख्यं धरणीधरधीरधीः ॥३६॥
 अथास्य वायुपुत्रेण रथयुक्तं महोद्धतम् । मुक्तं सिंहशतं षष्ठीचन्द्रवक्त्रेण पत्रिणा ॥३७॥
 दंष्ट्राकरालवदनैः स्फुरन्नोहितलोचनैः । तैरुपत्य निजं सैन्यं सकलं विह्वलीकृतम् ॥३८॥
 महाकल्लोलसंक्राशास्तस्थ सैन्यार्णवस्य ते । क्रूरनक्रसमाना वा जाताः प्रबलमूर्त्यः ॥३९॥
 चण्डसौदामिनीदण्डमण्डलाकारहारिणः । सैन्यमेघसमूहं ते परमं क्षोभमानयन् ॥४०॥
 रणसंसारचक्रोऽसौ सैन्यलोकः समन्ततः । सिंहकर्मभिरत्यर्थमहादुःखवशीकृतः ॥४१॥
 वाजिनो वारणा मत्ता रथारोहाश्च विह्वलाः । रणव्यापारनिर्मुक्तानेशुर्दश दिशस्ततः ॥४२॥
 ततो नष्टेषु सर्वेषु सामन्तेषु यथायथम् । अपश्यद्वावणं चातिदूरैर्विस्थितमग्रतः ॥४३॥
 आरुह्य च रथं सिंहैर्युक्तं परमभासुरैः । अघावद्बाणमुदृत्य विंशत्यर्द्धमुखं प्रति ॥४४॥

अभ्युदयके धारक हनुमान्ने उसे पुनः रथरहित कर दिया और उसके ऊपर वायुके समान वेगशाली अपना रथ चढ़ा दिया ॥३०॥ जिससे रथको खींचनेवाले हाथियोंके पैरोंसे चूर-चूर होकर उसने रणांगणमें शीघ्र ही प्राण छोड़ दिये । अब हुँकारसे भी रहित हो गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणका जम्बूमाली नामका प्रसिद्ध बलवान् पुत्र, अपने पक्षके लोगोंकी मृत्युसे कुपित हो हनुमान्के सामने खड़ा हुआ ॥३२॥ इसने खड़े होते ही, अर्धचन्द्र सदृश बाणके द्वारा हनुमान् की वानरचिह्नित ध्वजा छेद डाली ॥३३॥ तदनन्तर ध्वजाके छेदसे हर्षित हुए हनुमान्ने उसके धनुष और कवचको जीर्ण तृणके समान जर्जरताको प्राप्त करा दो अर्थात् उसका धनुष और कवच दोनों ही तोड़ दिये ॥३४॥ तदनन्तर मन्दोदरीके पुत्र जम्बूमालीने तत्काल ही दूसरा मजबूत कवच धारण कर तीक्ष्ण बाणों द्वारा हनुमान्के वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥३५॥ सो पहाड़के समान अत्यन्त धीर बुद्धिको धारण करनेवाले हनुमान्ने उन बाणोंसे ऐसे सुखका अनुभव किया मानो बाल नीलकमलके मुरझाये हुए नालोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखका ही अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ तदनन्तर हनुमान्ने षष्ठीके चन्द्रमाके समान कुटिल बाणके द्वारा जम्बूमालीके रथमें जुते हुए महा उद्धत सौ सिंह छोड़ दिये अर्थात् एक ऐसा बाण चलाया कि उससे जम्बूमालीके रथमें जुते सौ सिंह छूट गये ॥३७॥ जिनके मुख दाढ़ोंसे भयंकर थे तथा लाल-लाल आँखें चमक रही थीं ऐसे उन सिंहोंने उछलकर अपनी समस्त सेनाको विह्वल कर दिया ॥३८॥ उस सेनारूपी सागरके मध्यमें वे सिंह बड़ी-बड़ी तरंगोंके समान जान पड़ते थे अथवा अतिशय बलवान् क्रूर मगर-मच्छोंके समान दिखाई देते थे ॥३९॥ चमकते हुए विद्युद्दण्डके समूहका आकार धारण करनेवाले उन सिंहोंने सेनारूपी मेघोंके समूहको अत्यन्त क्षोभ प्राप्त कराया था ॥४०॥ युद्धरूपी संसारचक्रके बीचमें सैनिकरूपी प्राणी, सिंहरूपी कर्मोंके द्वारा सब ओरसे अत्यन्त दुःखी किये गये थे ॥४१॥ घोड़े, मदनोन्मत्त हाथी और रथोंके सवार—सभी लोग विह्वल हो युद्ध सम्बन्धी कार्य छोड़ दशों दिशाओंमें भागने लगे ॥४२॥ तदनन्तर यथायोग्य रीतिसे सब सामन्तोंके भाग जानेपर हनुमान्ने कुछ दूर सामने स्थित रावणको देखा ॥४३॥

तदनन्तर वह अत्यन्त देदीप्यमान सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो बाण खींचकर रावणकी

१. मन्दोदरीपुत्रः । २. तीक्ष्ण म. । ३. शतः म. । ४. इत्यर्थमहादुःख—म. ।

दशास्यस्त्रासितं वीक्ष्य निजं केसरिभिर्बलम् । समीपं चाञ्जनासूनुं कृतान्तमिव दुर्द्धरम् ॥४५॥
चक्रे योद्धुमभिप्रायं यावत्संनाहतत्परः । तावन्महोदरोऽस्यान्ते संरम्भेण^१ समुद्ययौ ॥४६॥
महोदरस्य च वातेश्च वर्तते यावदाहवः । तावत्ते हरयः प्राज्ञैर्गृहीताः स्वामिभिः शनैः ॥४७॥
वशीभूतेषु सिंहेषु जाता संतो महारुषः । वायुपुत्रं समुत्पेतुः समस्ता राक्षसध्वजाः ॥४८॥
^२तथाप्यनिलसूनुस्तान् मुञ्चतः शरसंहतीः । धधार मण्डलीभूतान् पतत्रिसचिवैः कृती ॥४९॥
ते शिलीमुखमघाताः प्रहितास्तस्य राक्षसैः । संयतस्य यथाऽऽक्रोशा नाभवन्कम्पकारिणः ॥५०॥
रक्षोभिर्वेष्टितं दृष्ट्वा तैस्तमतिमूरिमिः । इमे वानरवर्गोणाः समराय समुद्ययुः ॥५१॥
सुषेणो नलनीलौ च प्रीतिकरो विराधितः । सन्त्रासको^३ हरिकटिः सूर्यज्योतिर्महाबलः ॥५२॥
जाम्बूनदसुताद्याश्च सिंहमाश्रययुतैः रथैः । कृच्छ्राद्रावणसैन्यस्य निवारयितुमुद्यताः ॥५३॥
तैः समापतितैः सैन्यं दशग्रीवस्य सर्वतः । परीषहैरिव ध्वस्तं महातुच्छदत्तं व्रतम् ॥५४॥
आत्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा युयुत्सुं च दशाननम् । आदित्यश्रवणो योद्धुमुद्युगतो सुमहाबलः ॥५५॥
दृष्ट्वा तमुद्युगतं वीरं ज्वलन्तं रणतेजसा । सुषेणादीनिमे प्रापुः साधारयितुमाकुलाः ॥५६॥
^४इन्द्ररश्मिजयस्कन्दश्चन्द्राभो रतिवर्धनः । अङ्गोऽङ्गदोऽथ समेदः कुमुदः शशिमण्डलः ॥५७॥
बलिश्चण्डतरङ्गश्च सारो रत्नजटी जयः । बेलाक्षेपी वसन्तश्च तथा कोलाहलादयः ॥५८॥
ततस्ते बहुबलत्वेन प्रवीराः पद्मपक्षिणः । लग्ना महाहवं कर्तुं शत्रुसामन्तदुःसहम् ॥५९॥

और दौड़ा ॥४४॥ अपनी सेनाको सिंहोंके द्वारा त्रासित तथा यमराजके समान दुर्धर हनुमान्को पास आया देख, कवच आदि धारण करनेमें तत्पर रावणने ज्योंही युद्धका विचार किया त्योंही उसके पास बैठा महोदर क्रोधपूर्वक उठ खड़ा हुआ ॥४५-४६॥ इधर जबतक महोदर और हनुमान्का युद्ध होता है तबतक वे लूटे हुए सिंह धीरे-धीरे बुद्धिमान् स्वामियोंके द्वारा पकड़ लिये गये ॥४७॥ सिंहोंके वशीभूत होनेपर जिनका तीव्र क्रोध बढ़ रहा था ऐसे समस्त राक्षस यद्यपि पवनपुत्रपर दूट पड़े ॥४८॥ तथापि अतिशय कुशल हनुमान्ने, बाणसमूहको छोड़नेवाले उन समस्त राक्षसोंको बाणरूपी मन्त्रियोंके द्वारा रोक लिया ॥४९॥ जिस प्रकार दुर्जन मनुष्योंके द्वारा कहे हुए दुर्वचन संयमी मनुष्यके कम्पन उत्पन्न करनेवाले नहीं होते उसी प्रकार राक्षसोंके द्वारा छोड़े हुए बाणोंके समूह हनुमान्के कम्पन उत्पन्न करनेवाले नहीं हुए अर्थात् धीरवीर हनुमान्, राक्षसोंके बाणोंसे कुछ भी निचलित नहीं हुआ ॥५०॥

तदनन्तर हनुमान्को बहुत-से राक्षसोंके द्वारा घिरा देख वानर पक्षके ये योद्धा युद्धके लिए उद्यत हुए ॥५१॥ सुषेण, नल, नील, प्रीतिकर, विराधित, सन्त्रासक, हरिकटि, सूर्यज्योति, महाबल और जाम्बूनदके पुत्र आदि । ये सब सिंह, हाथी और घोड़ोंसे जुते हुए रथोंपर सवार हो बड़ी कठिनाईसे रावणकी सेनाको रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५२-५३॥ जिस प्रकार किसी अत्यन्त तुच्छ पुरुषके द्वारा धारण किया हुआ व्रत परिषहोंके द्वारा ध्वस्त—नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार सब ओरसे आते हुए वानरपक्षके योद्धाओंसे रावणकी सेना ध्वस्त हो गयी ॥५४॥ अपने पक्षके लोगोंको व्याकुल देख रावण युद्ध करनेका अभिलाषी हुआ, सो उसे देख महाबलवान् भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) युद्ध करनेके लिए उठा ॥५५॥ रणके तेजसे देदीप्यमान वीर भानुकर्णको उठा देख, ये लोग सुषेण आदिको सहारा देनेके लिए पहुँचे ॥५६॥ चन्द्ररश्मि, जयस्कन्द, चन्द्राभ, रतिवर्धन, अंग, अंगद, सम्भेद, कुमुद, चन्द्रमण्डल, बलि, चण्डतरंग, सार, रत्नजटी, जय, बेलाक्षेपी, वसन्त, तथा कोलाहल आदि ॥५७-५८॥ ये सब राम पक्षके अत्यन्त बलवान् योद्धा, ऐसा महायुद्ध करने

१. सक्रोधेन म. । २. सूतोश्च म. । ३. संवाहको हरिकोटिः म. । ४. इन्द्ररश्मि म. क. । ५. शत्रुणा-
मतिदुःसहम् म. ।

कुद्देन कुम्भकर्णेन ततस्ते रणपामनाः । विद्याया स्वापिताः सर्वे दर्शनावरणीजया ॥६०॥
 निद्रावृणितनेत्राणां तेषां शस्त्रावसंनिनाम् । करेभ्यः सायकाः पेतुः शिथिलेभ्यः समन्ततः ॥६१॥
 निद्राविद्राणामंग्रामानेतानव्यक्तचेतनान् । दृष्ट्वाऽमुञ्जत सुग्रीवो विद्यां द्राक्प्रतिबोधिनाम् ॥६२॥
 प्रतिबुद्धास्तथा तेऽथ सुतरां जाततेजसः । हनूमदादयो योद्धुं प्रवृत्ताः संकुलं परम् ॥६३॥
 शाखाकेसरिचिह्नानां बलमत्यर्थपुष्कलम् । छत्रासिपत्रसंकीर्णमच्छिन्नरणलालसम् ॥६४॥
 स्पर्द्धमानं समालोक्य क्षुब्धसागरसंनिभम् । अवस्थां च स्ववाहिन्याः परिप्राप्तमसुन्दरीम् ॥६५॥
 उत्सेहे रावणो योद्धुं प्रणम्य च तस्मिन्द्रजित् । कृताञ्जलिर्दिदं वाक्यमभाषत महाद्युतिः ॥६६॥
 तात तात न ते युक्तं संप्राप्तं मयि तिष्ठति । निष्फलत्वं हि मे जन्म सत्येवं प्रतिपद्यते ॥६७॥
 नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुचिता गतिः । ततो भयं सुविश्रब्धः करोम्येष तवेप्सितम् ॥६८॥
 इत्युक्त्वा मुदितोऽत्यन्तमारुह्य गिरिसंनिभम् । त्रैलोक्यकण्टकाभिख्यं गजेन्द्रं परमप्रियम् ॥६९॥
 गृहीतादरसर्वस्वो महापचिवसंगतः । ऋद्ध्याखण्डलसंकाशः प्रवीरो योद्धुमुद्यतः ॥७०॥
 कपिध्वजबलं तेन विविधायुधसंकटम् । प्रस्तमुत्थितमात्रेण महावीर्येण मानिना ॥७१॥
 किंकिन्धाधिपतेः सैन्ये न सोऽस्ति कपिकेतनः । यो न शक्यता विद्धः शरैराकर्णसंहितैः ॥७२॥
 किमयं शक्यजिज्ञास्यं शक्रो वह्निरियं नु किम् । उतायमपरो भानुरिति वाचः समुद्ययुः ॥७३॥

लगे कि जो शत्रु-सामन्तोंको अत्यन्त दुःसह था ॥५९॥ तदनन्तर रणकी खाजसे युक्त उन सब वीरोंको क्रोधसे भरे भानुकर्णने निद्रा नामा विद्याके द्वारा सुला दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् निद्रासे जिनके नेत्र घूम रहे थे ऐसे शस्त्रोंकी धारण करनेवाले उन वीरोंके हाथ सब ओरसे शिथिल पड़ गये तथा उनसे अस्त्र-शस्त्र नीचे गिरने लगे ॥६१॥ निद्राके कारण जिनका युद्ध बन्द हो गया था तथा जिनकी चेतना अव्यक्त हो चुकी थी ऐसे उन सबको देख सुग्रीवने शीघ्र ही प्रतिबोधिनी नामकी विद्या छोड़ी ॥६२॥ तदनन्तर उस विद्याके प्रभावसे प्रतिबुद्ध होनेके कारण जिनका तेज अत्यन्त बढ़ गया था ऐसे हनुमान् आदि वीर अत्यन्त भयंकर युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुए ॥६३॥ वानरवंशियोंकी वह सेना बहुत बड़ी थी, छत्र, खड्ग तथा वाहनोंसे व्याप्त थी, उसकी युद्धकी लालसा समाप्त नहीं हुई थी, उत्तरोत्तर स्पर्धा करनेवाली थी, और क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान जान पड़ती थी। इसके विपरीत रावणकी सेनाकी दशा अत्यन्त अशोभनीय हो रही थी सो वानरवंशियोंकी सेना तथा अपनी सेनाकी दशा देख रावण युद्धके लिए उत्साही हुआ सो महादीप्तिका धारक इन्द्रजित् प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर यह कहने लगा कि ॥६४-६६॥ हे तात ! हे तात ! मेरे रहते हुए इस समय आपका युद्धके लिए तत्पर होना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होनेपर मेरा जन्म निष्फलताको प्राप्त होता है ॥६७॥ अरे ! जो तृण नखके द्वारा छेदा जा सकता है वहाँ परशुका प्रयोग करना क्या उचित है ? इसलिए आप निश्चिन्त रहिए आका मनोरथ मैं पूर्ण करता हूँ ॥६८॥ इतना कहकर अत्यधिक प्रसन्नतासे भरा इन्द्रजित् पर्वतके समान त्रैलोक्यकण्टक नामक अपने परम प्रिय गजेन्द्रपर सवार होकर युद्धके लिए उद्यत हुआ। उस समय जिसने आदररूपी सर्वस्व ग्रहण किया था, ऐसा वह इन्द्रजित् महामन्त्रियोंसे सहित था, सम्पदासे इन्द्रके समान जान पड़ता था तथा अतिशय धीर-वीर था ॥६९-७०॥ उस महाबलवान् मानी इन्द्रजित्ने उठते ही नाना शस्त्रोंसे भरी वानरोंकी सेना क्षणमात्रमें प्रसली—दबा दी ॥७१॥ सुग्रीवकी सेनामें ऐसा एक भी वानर नहीं था जिसे इन्द्रजित्ने कान तक खिचे हुए बाणोंसे घायल नहीं किया हो ॥७२॥ उस समय लोगोंके मुखसे

१. यथा म., क., ज. । २. स वाहिन्याः म. । ३. उत्सेहे म. । ४. परमं प्रियः म. । ५. मस्थित-म. ।

६. वह्निरियं म. ।

ग्रस्यमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य शक्रजिता ततः । सुग्रीवः स्वयमुच्चातः प्रभामण्डल एव च ॥७४॥
तन्मदानामभूद्बुद्धमन्योन्याह्वानसंकुलम् । शस्त्रान्धकारिताकाशमनपेक्षितजीवितम् ॥७५॥
^१अश्वैरथाः समं लग्नाः नागा नागै रथा रथैः । निजनाथानुरागेण महोत्साहा^२ भटा भटैः ॥७६॥
जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः किष्किन्धेशं पुरः स्थितम् । अपूर्वशस्त्रभूतेन स्वरेण गगनस्पृशा ॥७७॥
दशास्यशासनं त्यक्त्वा शास्त्रामृगपशो त्वया । काधुना गम्यते पाप मयि कोपमुपागते ॥७८॥
इन्दीवरनिभेनाद्य रायकेन तवामुना । शिरश्छिनद्मि संरक्षां कुरुतां क्षितिगोचरी ॥७९॥
किष्किन्धेशस्ततोऽवोचत् किमेमिर्गजितैर्मुधा । मानश्चङ्क्रमिदं भग्नं तत्तु पश्य मयाधुना ॥८०॥
इत्युक्ते कोपसंभारं वहन्निन्द्रजितोऽद्भुतम् । चापमास्फालयन्नस्य समीपत्वमुपागतः ॥८१॥
शशिमण्डलसंकाशच्छत्रच्छायायानुसेवितः । मुमोच शरसंधातं किष्किन्धाधिपतिं प्रति ॥८२॥
सोऽप्याकर्णसमाकृष्टान् बाणान्नादोपलक्षितान् । निजरक्षामहादक्षश्चिक्षेपेन्द्रजितं प्रति ॥८३॥
तेन बाणसमूहेन संततेन निरन्तरम् । जातं नमस्तलं सर्वं मूर्तिर्युक्तमिवापरम् ॥८४॥
मेघवाहनवीरेण प्रभामण्डलसुन्दरः । आहूतो वज्रनक्रश्च विराधितमहीभृता ॥८५॥
विराधितनरेन्द्रेण वज्रनक्रनरोत्तमः । राजन् वक्षसि चक्रेण भासुरेणामिपातितः ॥८६॥
ताडितो वज्रनक्रेण सोऽपि चक्रेण वक्षसि । बिना हि प्रतिदानेन महती जायते व्रथा ॥८७॥
चक्रमन्ताहनिष्पेषजन्मवह्निकणोत्करैः । चञ्चदुल्कास्फुलिङ्गैर्वपिङ्गतां गगनं गतम् ॥८८॥

इस प्रकारके वचन निकल रहे थे कि—यह इन्द्रजित् नहीं है ? किन्तु इन्द्र है ? अथवा अग्निकुमार देव है, अथवा कोई दूसरा सूर्य ही उदित हुआ है ॥७३॥ तदनन्तर अपनी सेनाको इन्द्रजित्के द्वारा दबो देख स्वयं सुग्रीव और भामण्डल युद्धके लिए उठे ॥७४॥ तत्पश्चात् उनके योद्धाओंमें ऐसा युद्ध हुआ कि जो परस्परके बुलानेके शब्दसे व्याप्त था, शस्त्रोंके द्वारा जिसमें आकाश अन्धकारयुक्त हो रहा था और जिसमें प्राणोंकी अपेक्षा नहीं थी ॥७५॥ घोड़े घोड़ोंसे, हाथी हाथियोंसे, रथ रथोंसे और अपने स्वामीके अनुरागके कारण महोत्साहसे युक्त पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंसे भिड़ गये ॥७६॥

अथानन्तर क्रोधसे भरा इन्द्रजित् सामने खड़े हुए सुग्रीवको लक्ष्य कर अपूर्व शस्त्रभूत गगनस्पर्शी स्वरसे बोला ॥७७॥ कि अरे ! पशुतुल्य नीच वानर ! पापी ! रावणकी आज्ञा छोड़कर अब तू मेरे कुपित रहते हुए कहाँ जाता है ? ॥७८॥ आज मैं इस नील कमलके समान श्याम तलवारसे तेरा मस्तक काटता हूँ, भूमिगोचरी राम-लक्ष्मण तेरी रक्षा करें ॥७९॥ तदनन्तर सुग्रीवने कहा कि इन व्यर्थकी गजनाओंसे क्या लाभ है ? देख तेरा मानरूपी शिखर मैं अभी ही भग्न करता हूँ ॥८०॥ इतना कहते ही क्रोधके भारकी धारण करनेवाला इन्द्रजित् अद्भुत रूपसे धनुषका आस्फालन करता हुआ सुग्रीवके समीप पहुँचा ॥८१॥ तत्पश्चात् इधर चन्द्रमण्डलके समान छत्रकी छायासे सेवित इन्द्रजित्ने सुग्रीवको लक्ष्य कर बाणोंका समूह छोड़ा ॥८२॥ उधर अपनी रक्षा करनेमें अत्यन्त चतुर सुग्रीवने भी कान तक खिन्ने तथा शब्दसे युक्त बाण इन्द्रजित्की ओर छोड़े ॥८३॥ उन विस्तृत बाणोंके समूहसे निरन्तर व्याप्त हुआ समस्त आकाश ऐसा हो गया मानो मूर्तिधारी दूसरा ही आकाश हो ॥८४॥ उधरसे वीर मेघवाहनने भामण्डलको ललकारा और इधरसे राजा विराधितने वज्रनक्रको पुकारा ॥८५॥ गीतम स्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! राजा विराधितने वज्रनक्र राजाकी छातीपर देदीप्यमान चक्रकी चोट देकर उसे गिरा दिया ॥८६॥ इसके बदले वज्रनक्रने भी सँभलकर विराधितकी छातीपर चक्रका प्रहार किया सो ठीक ही है क्योंकि बदला चुकाये बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है ॥८७॥ उस समय चक्र और

१. अश्वैरथैः म. । २. महोत्साहभटाः म. । ३. समाकृष्यन् म. । ४. निजरक्षमहारक्ष -म. । ५. राजवक्षसि म. ।

लङ्कानाथस्य पुत्रेण निरखः सूर्यनन्दनः । कृतः संग्रामशौण्डेन संग्रामादनिवर्तकः ॥८९॥
 तेनापि तस्य वज्रेण सर्वशस्त्रं निराकृतम् । पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥९०॥
 अवतीर्थ ततः क्रुद्धो नागादिन्द्रजितो द्रुतम् । सिंहस्थन्दनमारुह्य पित्ररीकृतपुष्करम् ॥९१॥
 समाहितमतिनीनाविद्यास्त्रगतिपण्डितः । योद्धुमभ्युद्यतो विश्वद्रसन्नवमिवाहवे ॥९२॥
 अस्त्रं घनौघनिर्योषं संप्रयुज्य सवारुणम् । दिशः^१ किष्किन्धराजस्य चकारालोकवर्जिताः^२ ॥९३॥
 तेनापि पवनस्त्रेण कृसछत्रध्वजादिना । तदस्त्रं वारुणं कापि नातं तूलोत्करोपमम् ॥९४॥
 घनवाहनवीरोऽपि भ्रामण्डलभूभृतः । आग्नेयास्त्रनियोगेन चकार धनुर्निधनम् ॥९५॥
 तस्य स्फुलिङ्गसंस्पर्शादन्येषामपि चापिनाम् । धूमोद्गारानमुञ्चन्त धनूषि भयवीक्षितम् ॥९६॥
 नितान्तबहुशोद्भूनां जीवितग्रसनादिव । प्राप्तानां परमाजीर्णं धनुषां ते तदामवन् ॥९७॥
 वारुणेन ततोऽस्त्रेण स्वरितं जनकात्मजः । आग्नेयास्त्रं निराचक्रे स्वचक्रे कृतपालनः ॥९८॥
 ततो मन्शोदरीसुनुश्चक्रे तं रथवर्जितम् । तथाविधमहासत्त्वमाकुलत्वविवर्जितम् ॥९९॥
 प्रयोगकुशलश्चारुमस्त्रं तामसमक्षिपत् । तेनान्धकारितं सैन्यं सर्वं जनकजन्मनः ॥१००॥
^३ स नाजानाद् द्विषं न क्ष्मां नात्मीर्यं न च शात्रवम् । अन्धध्वान्तपरिच्छन्नो मूर्च्छामिथ समागतः ॥१०१॥

कवचकी टक्करसे जो अग्निके कण उत्पन्न हुए थे, उनके समूहसे आकाश इस प्रकार पीला हो गया मानो चमकती हुई उल्काओंके तिलगोंके समूहसे ही पीला हो रहा हो ॥८८॥ युद्ध-निपुण लंकानाथके पुत्र इन्द्रजित्ने सुग्रीवको निःशस्त्र कर दिया फिर भी वह संग्रामसे पीछे नहीं हटा ॥८९॥ प्रत्युत इसके विपरीत सुग्रीवने भी वज्रके द्वारा इन्द्रजित्के सर्वशस्त्र दूर कर दिये सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा जीवोंके किसी कार्यमें अन्तर नहीं पड़ता ॥९०॥ तदनन्तर क्रोध से भरा इन्द्रजित् शीघ्र ही हाथीसे उतरकर आकाशको पीला करनेवाले सिंहोंके रथपर आरुढ़ हुआ ॥९१॥ तत्पश्चात् जिसको बुद्धि स्थिर थी, जो नाना विद्यामय अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें निपुण था और जो युद्धमें मानो नवीन रस धारण कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् मायामय युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ प्रथम ही उसने मेघ-समूहके समान गर्जना करनेवाला वारुण अस्त्र छोड़कर सुग्रीवकी दिशाओंको प्रकाशसे रहित कर दिया ॥९३॥ इसके बड़े सुग्रीवने भी छत्र तथा ध्वजा आदिको छेदनेवाला पवन बाण चलाया जिससे इन्द्रजित्का वारुण अस्त्र रुईके समूहके समान कहीं चला गया ॥९४॥

उधर वीर मेघवाहनने भी आग्नेय बाण चलाकर राजा भ्रामण्डलके धनुषको ईन्धन बना दिया अर्थात् जला दिया ॥९५॥ उस धनुषके तिलगोंके सम्बन्धसे अन्य धनुषधारियोंके धनुष भी धूम छोड़ने लगे जिसे सब सेनाने बड़े भयसे देखा ॥९६॥ उन धनुषोंने अनेक योद्धाओंके प्राण प्रसित किये थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें अत्यधिक अजीर्ण ही हो गया हो ॥९७॥ तदनन्तर अपने चक्र—सेनाकी रक्षा करते हुए भ्रामण्डलने शीघ्र ही वारुण अस्त्र छोड़कर आग्नेय अस्त्रका निराकरण कर दिया ॥९८॥ तत्पश्चात् मन्शोदरीके पुत्र मेघवाहनने उस प्रकारके महापराक्रमी एवं आकुलतासे रहित भ्रामण्डलको रथरहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला ॥९९॥ यही नहीं प्रयोग करनेमें कुशल मेघवाहनने सुन्दर तामस बाण भी चलाया जिससे भ्रामण्डलकी समस्त सेना अन्धकारसे युक्त हो गयी ॥१००॥ वह उस समय अन्धकारके कारण न अपने हाथी तथा पृथिवीको जान पाता था, न शत्रु सम्बन्धी हाथी तथा पृथिवी ही को जान पाता था। गाढ़ अन्धकारसे आच्छादित हुआ वह मानो मूर्च्छाकी ही प्राप्त हो रहा था ॥१०१॥

१. दिश म. । २. वर्जिता म. । ३. स नो जनो द्विषो न क्षमा म. ।

अन्धीभूतो दशास्यस्य सुतेन जनकात्मजः । विमुक्तविषधूमौघैः वेष्टितो नागसायकैः ॥१०२॥
 तैरसौ व्यासैरर्वाङ्गो विस्फुरद्भोगभासुरैः । चन्दनद्रुमसंकाशः पपात वसुधातले ॥१०३॥
 एवमिन्द्रजितेनापि कृता किष्किन्ध्रभूभृतः । अवस्थाध्वान्तनागास्त्रद्वयव्यापारकारिणा ॥१०४॥
 ततो विभीषणो विद्वान् विद्यास्त्ररणवस्तुनि । कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि बभाषे पञ्चलक्ष्मणौ ॥१०५॥
 पञ्च पञ्च महाबाहो वीर लक्ष्मण लक्ष्मण । एताः पश्य दिशच्छत्राः शरैस्त्रिजितैरितैः ॥१०६॥
 वियत्तलं धरित्री च तस्य बाणैर्निरन्तरैः । उत्पातभूतनागाभैरानेनेऽत्यन्तदुःखदैः ॥१०७॥
 कृतौ सुग्रीववैदेहौ निरखौ नागसायकैः । बद्धौ निपातितौ भूमौ मयजासुतनिःसृतैः ॥१०८॥
 उदारे विजिते देवौ श्रीभामण्डलपण्डिते । वीरौ सुग्रीवराजे च बहुविद्याधराधिपे ॥१०९॥
 संघातमृत्युमस्माकमासन्नं विद्धि राघव । एतौ हि नायकावुग्रावस्मत्पक्षस्य केवलौ ॥११०॥
 एतामनायकीभूतां विद्याधरवरूथिनीम् । पलायनोद्यतां पश्य समाश्रित्य दिशो दश ॥१११॥
 आदित्यश्रवणेनासौ पश्य मास्तनन्दनः । विजित्य सुमहायुद्धे कराभ्यां बद्धविग्रहः ॥११२॥
 शरजर्जरितच्छत्रकेतुकामुक्कङ्कटः । गृहीतः प्रसभं वीरः प्लवङ्गध्वजपुगवः ॥११३॥
 यावत्सुग्रीवमाचैक्रौ पतितौ धरणीतले । न संभावयते क्षिप्रं रावणो रणकोविदः ॥११४॥
 तावदेतौ स्वयं गत्वा निश्चेष्टावानयाम्यहम् । त्वं साधारय निर्नाथाभिमां खेचरवाहिनीम् ॥११५॥
 यावदेवमसौ पञ्च लक्ष्मणं चाभिमाषते । सुतारातनयस्तावद् गत्वा स्वैरभलक्षितः ॥११६॥

जब भामण्डल उस तामसबाणसे अन्धा हो रहा था तब मेघवाहनने उसे विषरूपी धूमका समूह छोड़नेवाले नागबाणोंसे वेष्टित कर लिया ॥१०२॥ उठते हुए फनोंसे सुशोभित उन नागोंसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था और इसलिए जो चन्दन वृक्षके समान जान पड़ता था ऐसा भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा ॥१०३॥ इसी प्रकार तामस और नागपाश इन दो अस्त्रोंकी चलानेवाले इन्द्रजित्ने भी सुग्रीवकी दशा की अर्थात् उसे तामसास्त्रसे अन्धा कर नागपाशसे बांध लिया ॥१०४॥

तदनन्तर विद्यामय शस्त्रोंसे युद्ध करनेमें कुशल विभीषणने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा राम-लक्ष्मणसे कहा कि हे महाबाहो ! राम ! राम ! हे वीर ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देखो, ये दिशाएँ इन्द्रजित्के द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे आच्छादित हो रही हैं ॥१०५-१०६॥ उत्पातकारी नागोंके समान आभावाले, अत्यन्त दुःखदायी उसके निरन्तर बाणोंसे आकाश और पृथिवी व्याप्त हो रही है ॥१०७॥ मन्दोदरीके पुत्रोंने सुग्रीव और भामण्डलको अस्त्ररहित कर दिया है, तथा अपने द्वारा छोड़े हुए नाग बाणोंसे उन्हें बांधकर पृथिवीपर गिरा दिया है ॥१०८॥ हे देव ! अतिशय चतुर भामण्डल और अनेक विद्याधरोंके राजा वीर सुग्रीवके पराजित होनेपर हे राघव ! समझ लीजिए कि हम लोगोंकी सामूहिक मृत्यु निकटवर्ती है, क्योंकि ये दोनों ही हमारे पक्षके प्रमुख नायक हैं ॥१०९-११०॥ इधर देखो, यह विद्याधरोंकी सेना नायकसे रहित होनेके कारण दशों दिशाओंमें भागनेके लिए उद्यत हो रही है ॥१११॥ उधर देखो, कुम्भकर्णने महायुद्धमें हनुमान्को जीतकर अपने हाथोंसे उसे कैद कर रखा है ॥११२॥ जिसका छत्र, ध्वज, धनुष और कवच बाणोंसे जर्जर कर दिया गया है, ऐसा यह वीर हनुमान् बलात् कैद किया गया है ॥११३॥ रणविशारद रावणका पुत्र, जबतक पृथिवीपर पड़े हुए सुग्रीव और भामण्डलके समीप शीघ्रतासे नहीं पहुँचता है तबतक निश्चेष्ट पड़े हुए इन दोनोंको मैं स्वयं जाकर ले आता हूँ, तुम नायक-रहित इस विद्याधर सेनाको आश्रय दो ॥११४-११५॥ इस तरह जबतक विभीषण राम और लक्ष्मणसे कहता है

१. म. पुस्तके त्वेवं पाठः 'सर्वाङ्गे विस्फुरद्भोगभासुरैश्चन्दनद्रुमः । यथा तथायं तैर्युक्तः पपात वसुधातले ॥'

२. निरस्तो म. । ३. मन्दोदरीपुत्र । ४. देवे म. । ५. भामण्डली ।

अम्बरं भानुकर्णस्य परिधानममुञ्चत । ह्रीमाराकुलितो जातः स तैद्धरणविह्वलः ॥११७॥
 यावद्वासःसमाधानपरोऽसौ राक्षसोऽभवत् । भुजपाशोदरादस्य निःसृतस्तावदानिलिः ॥११८॥
 नवो बद्धो यथा पक्षी निर्गतः पञ्जरोदरात् । आसीत्सुवर्कितो वातिः प्रत्युद्युतिसंगतः ॥११९॥
 ततो मुद्रितसंग्रीतो विमानशिखरस्थितो । हनून्पदङ्गदो वीरौ रेजतुः सुरसंनिभौ ॥१२०॥
 ताम्यामङ्गकुमारेण चन्द्रोदरमुतेन च । समं लक्ष्मीधरः सेनां समाश्वासयितुं स्थितः ॥१२१॥
 मन्दोदरीसुतं तावदभियाय विभीषणः । स वितृष्य सगालोक्य चिन्तामेतामुपागतः ॥१२२॥
 तातस्यास्य च की मेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते । ततोऽभिप्रायमेतस्य नावस्थातुं प्रशस्यते ॥१२३॥
 नागपाशैरिमौ बद्धौ मृत्युं यातौ विसंशयम् । एतावच्चेह कर्तव्यं युक्तं तदवसर्पणम् ॥१२४॥
 इति संचिन्त्य निर्याताविन्द्रजिम्बेघवाहनौ । गहनाहवमेदिन्याः कृतार्थत्वाभिमानिनौ ॥१२५॥
 अन्तर्द्वौ सेविते ताम्भ्यां संश्रान्तात्मा विभीषणः । त्रिशूलहेतिरामुककङ्कटस्तरलेक्षणः ॥१२६॥
 उत्तीर्य स्वस्थाद्वीरस्तयोर्निष्कम्पदेहयोः । अवस्थान्तरमद्राक्षीन्नागसायकनिर्मितम् ॥१२७॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽबोचत् पद्मानामं विचक्षणः । श्रूयतां नाथ यत्रेमौ महाविद्याधराधिपौ ॥१२८॥
 अत्यूर्जितौ महासैन्यौ महाशक्तिसमन्वितौ । श्रीभामण्डलसुग्रीवौ नीतावस्त्रविमुक्तताम् ॥१२९॥
 रावणस्य कुमाराम्भ्यां स्फूर्तायुगमार्गणैः । तत्र त्वया मया वापि साध्यते किं दृशाननः ॥१३०॥
 ततः पुण्योदयात्पद्मः स्मृत्वा लक्ष्मणमब्रवीत् । तदा स्मरं वरं लब्धं योग्युपद्रवनाशने ॥१३१॥

तबतक सुतारके पुत्र अंगदने छिपे-छिपे जाकर कुम्भकर्णका अधोवस्त्र खोल दिया जिससे वह लज्जासे व्याकुल हो वस्त्रके सँभालनेमें लग गया ॥११६-११७॥ जबतक कुम्भकर्ण वस्त्रके सँभालनेमें लगता है तबतक हनुमान् उसके भुजापाशके मध्यसे निकल भागा ॥११८॥ जिस प्रकार नया बँधा पक्षी पिंजड़ेके मध्यसे निकलनेपर चकित हो जाता है, उसी प्रकार हनुमान् भी कुम्भकर्णके भुजबन्धनसे निकलनेपर चकित तथा उग्र तेजसे युक्त हो गया ॥११९॥ तदनन्तर प्रसन्नता और सन्तोषसे युक्त वीर हनुमान् और अंगद विमानके अग्रभागपर बैठ देवोंके समान सुशोभित होने लगे ॥१२०॥ उधर अंगदके भाई अंग और चन्द्रोदरके पुत्र विराधितके साथ लक्ष्मण, विद्याधरोंकी सेनाको धैर्य बँधानेके लिए जा डटे ॥१२१॥ अब विभीषण, मन्दोदरी के पुत्र इन्द्रजित्-के सामने गया सो वह काकाको देख इस चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२२॥ कि यदि न्यायसे देखा जाये तो पितामें और इसमें क्या भेद है ? इसलिए इसके सम्मुख खड़ा रहना अच्छा नहीं है ॥१२३॥ ये सुग्रीव और विभीषण नागपाशसे बँधे हैं सो निःसन्देह मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, इसलिए इस समय यहाँसे चला जाना ही उचित है ॥१२४॥ ऐसा विचारकर कृतकृत्यताके अहंकारसे भरे इन्द्रजित् और मेघवाहन दोनों ही युद्धभूमिसे बाहर निकल गये ॥१२५॥ उन दोनोंके अन्तर्हित हो जानेपर जिसकी आत्मा घबड़ा रही थी, जो त्रिशूल नामक शस्त्र धारण कर रहा था, जिसने कवच पहन रखा था, तथा जिसके नेत्र अत्यन्त चंचल थे ऐसा वीर विभीषण अपने रथसे उतरकर वहाँ गया जहाँ सुग्रीव और भामण्डल निश्चेष्ट पड़े हुए थे । वहाँ जाकर उसने नागपाशसे निर्मित दोनोंकी चिन्तनीय दशा देखी ॥१२६-१२७॥

तदनन्तर बुद्धिमान् लक्ष्मणने रामसे कहा कि हे नाथ ! सुनिए, जहाँ वे महाविद्याधरोंके स्वामी, अतिशय बलवान्, बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित और महाशक्तिसे सम्पन्न ये भामण्डल और सुग्रीव भी रावणके पुत्रों द्वारा अस्त्र रहित अवस्थाको प्राप्त हो नागपाशसे बाँध लिये गये हैं वहाँ क्या तुम्हारे या हमारे द्वारा रावण जीता जा सकता है ? ॥१२८-१३०॥ तब पुण्योदयसे स्मरण कर रामने लक्ष्मणसे कहा कि भाई ! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनियोंका उपसर्ग दूर करनेपर

१. शरद्धरण- म. । २. स्फूर्तायुगमार्गणैः म. ।

महालोचनदेवस्य तदभिधानमात्रतः । सुखावस्थस्य सहसा सिंहासनमकम्पत ॥१३२॥
 आलोक्यावधिनेत्रेण ततो विज्ञाय संभ्रमी । विद्याभ्यां प्राहिणोद्युक्तं चिन्तावेगं निजं सुरम् ॥१३३॥
^१ गत्वा कथितः क्षेमः संदेशः सादरं सुरः । ताभ्यामुद्धे ददौ विद्ये परिवारसमन्विते ॥१३४॥
^२ सैहं पद्मावदातस्य यानमर्पयद्वहुतम् । समुद्योतितदिक्चक्रं सौमित्राय च गारुडम् ॥१३५॥
^३ विद्ये संप्राप्य संमान्य धीरौ चिन्तागतिं मुदा । पृष्ट्वातौ जिनेन्द्राणां पूजां तौ चक्रतुः परम् ॥१३६॥
 परं साधुप्रवादं च प्रस्तावे संगतोदयम् । सशंसतुर्मुदोदारगुणग्रहणतत्परौ ॥१३७॥
^४ भद्रां च सुरास्त्राणि भासुराणि सहस्रशः । वारुणाग्निमरुत्सृष्टिप्रभृतीनि सुविभ्रमौ ॥१३८॥
 चन्द्रादित्यसमे छत्रे चारुचामरमण्डिते । रत्नानि च प्रदत्तानि पिहितानि निजौजसा ॥१३९॥
 गदाप्रहरणं विद्युद्वक्त्रा लक्ष्मीधरं श्रिता । हलं समुसलं पद्मं दैत्यानां भयकारणम् ॥१४०॥
 महिमानं परं प्राप्य ताभ्यां संमदसंगतः । आसीःशतानि दत्त्वासौ गतो देवस्त्रिविष्टपम् ॥१४१॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्थानवद्यस्य धौर्ज्ञेयं स्तुत्यं फलमनुपमं युक्तकालोपजातम् ।
 यस्यप्राप्य प्रमदकलिताः दूरमुक्तोपसर्गाः संजायन्ते स्वपरकुशलं कर्तुमुद्भूतवीर्याः ॥१४२॥

हम लोगोको जो वर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो ॥१३१॥ उसी समय रामके स्मरण मात्रसे मुखसे बैठे हुए महालोचन नामक गरुडेन्द्रका सिंहासन सहसा कम्पायमान हुआ ॥१३२॥ तदनन्तर अवधिज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा सब समाचार जानकर गरुडेन्द्रने शीघ्र ही दो विद्याओंके साथ अपना चिन्तावेग नामक देव भेजा ॥१३३॥ वहाँ जाकर जिसने आदरके साथ कुशल सन्देश सुनाया था ऐसे उस देवने राम-लक्ष्मणके लिए परिवारसे सहित दो प्रशस्त विद्याएँ दीं ॥१३४॥ रामके लिए तो आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मणके लिए दिक्समूहको देदीप्यमान करनेवाली गरुडवाहिनी विद्या दी ॥१३५॥ धीरवीर राम-लक्ष्मणने, दोनों विद्याएँ प्राप्त कर चिन्तागति देवका बड़ा सम्मान किया, उससे कुशल समाचार पूछा और तदनन्तर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम पूजा की ॥१३६॥ उत्तम गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर रहनेवाले राम-लक्ष्मणने योग्य अवसरपर प्राप्त हुए गरुडेन्द्रके उस उत्तम प्रसादकी बड़े हर्षसे स्तुतिकी प्रशंसा की ॥१३७॥ उत्तम शोभाको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणने उसी समय वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनात देदीप्यमान शस्त्र सामने खड़े देखे अर्थात् उस देवने वे सब शस्त्र उन्हें दिये ॥१३८॥

सुन्दर चमरोंसे सुशोभित चन्द्रमा और सूर्यके समान छत्र तथा अपनी कान्तिसे आच्छादित अनेक रत्न भी उस देवने प्रदान किये ॥१३९॥ विद्युद्वक्त्र नामक गदा लक्ष्मणको प्राप्त हुई और दैत्योंको भय उत्पन्न करनेवाले हल तथा मुसल नामक शस्त्र रामको प्राप्त हुए ॥१४०॥ इस प्रकार वह देव राम-लक्ष्मणके साथ हर्षपूर्वक मिलकर तथा परम महिमाको प्राप्त कर उन्हें सैकड़ों आशीर्वाद देता हुआ अपने स्थानको चला गया है ॥१४१॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जो योग्य समयपर प्रशंसनीय एवं अनुपम फलकी प्राप्ति होती है वह विधिपूर्वक किये हुए निर्दोष धर्मका ही फल है ऐसा धीरवीर मनुष्योंको जानना चाहिए । धर्मसे वह फल प्राप्त होता है जिसे पाकर मनुष्य उत्तम हर्षसे युक्त होते हैं, उनके उपसर्ग दूरसे ही छूट जाते हैं और वे महाशक्तिसे सम्पन्न हो स्वपरका कल्याण

१. गत्वा कथितः क्षेमः संदेशः म. । २. उद्योः म. । ३. विद्येजं प्राप्य । ४. चित्तगति म. । ५. आदत्तां म. ।

आस्तां तावन्मनुजजनिताः^१ संपदः काङ्क्षितानां यच्छन्तीष्टादधिकमतुलं वस्तु नाकश्चितोऽपि ।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सततं हे जनाः सौख्यकाङ्क्षाः येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विद्यालाभो नाम षष्ठितमं पर्व ॥६०॥



करनेमें समर्थ होते हैं ॥१४२॥ अथवा मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होनेवाली सम्पदाओंकी बात दूर रहे, स्वर्ग सम्बन्धी सम्पदाएँ भी इसे इच्छासे भी अधिक अनुपम सामग्री प्रदान करती हैं । इसलिए सुखकी इच्छा रखनेवाले हे भव्यजनो ! निरन्तर पुण्य करो जिससे सूर्यके समान कान्तिके धारक होते हुए तुम अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओंके संयोगको प्राप्त हो सको ॥१४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणको विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला साठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६०॥



एकषष्टितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यकवचच्छन्निविग्रहौ । लक्ष्मीश्रीवत्सलक्ष्माणौ तेजोमण्डलमध्यगौ ॥१॥
 नागारिशाहनाखरौ सुकान्तौ पद्मलक्ष्मणौ । सैन्यसागरमध्यस्थौ सैन्हागरुडकेतनौ ॥२॥
 परपक्षक्षयं कर्तुमुद्यतौ परमेश्वरौ । संध्यामधरणोमध्यं तेन सस्त्रतुरुकटौ ॥३॥
 अग्रतस्त्वरितो जातः सौमित्रिमित्रवत्सलः । दिव्यातपत्रविक्षिप्तदूरभास्करदीधितिः ॥४॥
 श्रीशैलप्रमुखैर्वीरैर्वृतः प्लवगकेतनैः । दधानस्त्रैर्दश रूपसशक्यपरिवर्णनम् ॥५॥
 अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन् द्वादशादिव्यभास्वरम् । दृष्टं विभीषणेनेदं जगद्विस्मिततेजसा ॥६॥
 गरुडमस्केतने तस्मिन् संप्राप्ते तत्तथावनम् । अस्त्रं सान्त्वयसं कापि गतं गरुडतेजसा ॥७॥
 गरुडमपक्षवातेन क्षोभितक्षारसिन्धुना । नीता विषधरा नाशं कुभावा इव साधुना ॥८॥
 ताक्ष्यपक्षविनिर्मुक्तमयूखालोकसंगतम् । जाम्बूनदरसेनेव जगदासीद्विनिर्मितम् ॥९॥
 ततो नमश्चराधीशौ गतपन्नगबन्धनौ । प्रभामण्डलसुग्रीवौ समाश्वासनमापनुः ॥१०॥
 सुखेन प्राप्य निद्रां च रत्नांशुकसमावृतौ । अलगर्दलतारेखासमलंकृतविग्रहौ ॥११॥
 अधिकं भासमानाङ्गौ व्यक्तोच्छ्वासविनिर्गमौ । निद्राक्षये परं कान्तौ स्वस्थसुखाविवोत्थितौ ॥१२॥
 ततो विस्मयमापन्नाः श्रीवृक्षप्रथितादयः । विद्याधरगणाधीशाः पप्रच्छुः कृतपूजनाः ॥१३॥
 नाथावापस्व वामेपा दृष्टपूर्वा न जातुचिन् । विभूतिरजुना जाता कुतश्चिदिति कथ्यताम् ॥१४॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिनके शरीर दिव्य कवचोंसे आच्छादित थे, जो लक्ष्मी और श्रीवत्स चिह्नके धारक थे, तेजोमण्डलके मध्यमें गमन कर रहे थे, सिंह तथा गरुड़ वाहनपर आरुढ़ थे, अत्यन्त सुन्दर थे, सेनारूपी सागरके मध्यमें स्थित थे, सिंह तथा गरुड़ चिह्नसे चिह्नित पताकाओंसे युक्त थे, पर-पक्षका क्षय करनेके लिए उद्यत थे और उत्कट बलके धारक थे, ऐसे परममहिमा सम्पन्न राम और लक्ष्मण विभीषणके साथ रणभूमिके मध्यमें आये ॥१-३॥ जिन्होंने दिव्यछत्रके द्वारा सूर्यकी किरणें दूर हटा दी थीं तथा जो मित्रोंके साथ स्नेह करनेवाले थे ऐसे शीघ्रतासे भरे लक्ष्मण आगे हुए ॥४॥ उस समय लक्ष्मण हनुमान् आदि प्रमुख वानरवंशी वीरोंसे घिरे थे तथा जिसका वर्णन करना अशक्य था ऐसे देवसदृश रूपको धारण कर रहे थे ॥५॥ लक्ष्मणके आगे प्रस्थान करनेपर आश्चर्यजनक तेजके धारक विभीषणने देखा कि यह संसार एक साथ उदित हुए बारह सूर्योंसे ही मानो देदीप्यमान हो रहा है ॥६॥ लक्ष्मणके आते ही वह उस प्रकारका सधन तामस अस्त्र गरुड़के तेजसे न जाने कहाँ चला गया ॥७॥ लवण समुद्रके जलको क्षोभित करनेवाली गरुड़के पंखोंकी वायुसे सब नाग इस प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार कि साधुके द्वारा छोटे भाव नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ गरुड़के पंखोंसे छोड़ी हुई किरणोंके प्रकाशसे युक्त संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो स्वर्णरससे ही बना हो ॥९॥

तदनन्तर जिनके नागपाशके बन्धन दूर हो गये थे ऐसे विद्याधरोंके अधिपति सुग्रीव और भामण्डल धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०॥ जो सुखसे निद्रा प्राप्तकर रत्नमयी कम्बलोंसे आवृत थे, सर्परूपी लताओंकी रेखाओंसे जिनके शरीर अलंकृत थे अर्थात् जिनके शरीरमें नागपाशके गड़रा पड़ गये थे, जो पहलेसे कहीं अधिक सुशोभित थे, और जिनके श्वासोच्छ्वासका निकलना अब स्पष्ट हो गया था, ऐसे दोनों ही राजा इस प्रकार उठ बैठे, जिस प्रकार कि सुखसे सोये पुरुष निद्राक्षय होनेपर उठ बैठते हैं ॥११-१२॥ तदनन्तर आश्चर्यको प्राप्त हुए

१. सुकेतो म. । २. दुरु -म. । ३. स्वच्छ म. ।

वाहनावस्त्रसंपत्तिरातपत्रे परा द्युतिः । ध्वजौ रत्नानि चित्राणि श्रूयते दिव्यमौदृशम् ॥१५॥
 पद्मनाभस्ततोऽगादीत्तेभ्यो हिण्डनमात्मनः । उपसर्गं च शैलाग्रे देशगोत्रविभूषयोः ॥१६॥
 चतुराननयोगेन स्थितयोर्देवनिर्मितम् । प्रातिहार्यं समुद्भूतं केवलं च सुरागमम् ॥१७॥
 गरुडेन्द्रस्य तोषं च परिप्राप्तिं वरस्य च । अनुध्यानप्रयोगेन महाविद्यासमागमम् ॥१८॥
 ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा परमां योगिसंकथाम् । इदमृषुः परिप्राप्ताः प्रमोदं विकचाननाः ॥१९॥

वंशस्थवृत्तम्

इहैव लोके विकटं परं यशो मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम् ।
 अत्राप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यार्पितसाधुसेवया ॥२०॥
 तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणां प्रियम् ।
 प्रदाय धर्मं मतिमुत्तमां यथा हितं परं साधुजनः शुभोदयाम् ॥२१॥
 इतिप्रशंसार्षितमाविताश्चिरं जिनेन्द्रमार्गोन्नतिविस्मिताः परम् ।
 बलं सनारायणमाश्रिता बभुर्महाविभूत्या समुपाश्रिता नृपाः ॥२२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

भव्याभोजमहासंमुखचकरीं श्रुत्वा पवित्रां कथां
 सर्वे हर्षमहारसोदधिगताः प्रीतिं दधानाः पराम् ।
 तौ निद्रोज्झितपुण्डरीकनयनौ संप्राप्तदेवार्चनौ
 ते विद्याधरपुंगवाः सुरसमाः सर्वात्मनापूजयन् ॥२३॥

श्रीवृक्ष आदि विद्याधर राजाओंने पूजा कर राम लक्ष्मणसे पूछा कि हे नाथ ! आप दोनोंकी विपत्तिके समय जो पहले कभी देखनेमें नहीं आयी ऐसी यह अद्भुत विभूति किस कारण प्राप्त हुई है सो कहिए ॥१३-१४॥ वाहन, अस्त्ररूपी सम्पत्ति, छत्र, परम कान्ति, ध्वजाएँ और नाना प्रकारके रत्न जो कुछ आपको प्राप्त हुए हैं वे सब दिव्य हैं, देवोपनीत हैं ऐसा सुना जाता है ॥१५॥ तदनन्तर रामने उन सबके लिए कहा कि एक बार वंशस्थविल पर्वतके अग्रभागपर देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंको उपसर्ग हो रहा था सो मैं वहाँ पहुँच गया ॥१६॥ मैंने उपसर्ग दूर किया, उसी समय दोनों मुनिराजोंको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, चतुर्मुखाकार होकर दोनों विराजमान हुए, देवनिर्मित प्रातिहार्य उत्पन्न हुए, देवोंका आगमन हुआ, गरुडेन्द्र हमसे सन्तुष्ट हुआ और उससे हमें धरकी प्राप्ति हुई । इस समय उसी गरुडेन्द्रके ध्यानसे इन महाविद्याओंकी प्राप्ति हुई ॥१७-१८॥ तदनन्तर सावधान हो मुनियोंकी उत्तम कथा श्रवण कर, जो परम प्रमोदको प्राप्त हो रहे थे और जिनके मुखकमल हर्षसे विकसित हो रहे थे ऐसे उन सब विद्याधर राजाओंने कहा कि ॥१९॥ भक्तिपूर्वक की हुई साधुसेवाके प्रभावसे मनुष्य इसी भवमें विशाल उत्तम यश, बुद्धिकी प्रगल्भता, उदार चेष्टा और निर्मल पुण्य विधिको प्राप्त होता है ॥२०॥ मुनिजन उत्तम बुद्धिकी धर्ममें लगाकर मनुष्योंका जैसा शुभोदयसे सम्पन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित न माता करती है, न पिता करता है, न मित्र करता है और न सगा भाई ही करता है ॥२१॥ इस प्रकार चिरकाल तक प्रशंसा कर जिन्होंने अपना भावनाएँ समर्पित की थीं और जिनेन्द्रमार्गकी उन्नतिसे जो परम आश्चर्यकी प्राप्ति हो रहे थे, ऐसे महावैभवसे युक्त राजा, राम और लक्ष्मणका आश्रय पाकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥२२॥ इस तरह भव्य जीवरूपी कमलोंके उत्तमवकी करनेवाली

वंशस्थवृत्तम्

उपासपुण्यो जननान्तरे जनः करोति योगं परमैरिहोत्सवैः ।

न केवलं स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥२४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सुग्रीवभामण्डलसमाश्वासनं नामैकषष्टितमं पर्व ॥६१॥



पवित्र कथा सुनकर जो हर्षरूपी महारसके सागरमें निमग्न हो परम प्रीतिको धारण कर रहे थे, ऐसे देवोंके समान समस्त विद्याधर राजाओंने, विकसित कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले उन देवपूजित राम-लक्ष्मणकी सब प्रकारसे पूजा को ॥२३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जन्मान्तरमें पुण्यका संचय करनेवाला मनुष्य, इस संसारमें न केवल अपने आपका ही उत्तम उत्सवोंसे संयोग करता है किन्तु सूर्यके समान समस्त पदार्थोंको दिखाकर अन्य लोगोंका भी अत्यधिक वैभवके साथ संयोग करता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्य स्वयं वैभवको प्राप्त होता है और दूसरोंको भी वैभव प्राप्त कराता है ॥२४॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें सुग्रीव और भामण्डलका नागपाश-से युक्त हो आश्वासन प्राप्ति का वर्णन करनेवाला इकसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६१॥



द्वाषष्टितमं पर्व

अपरेद्युर्महोद्भूतविक्रमोक्रमकोविदाः । युद्धार्थोपात्तसंभारा रणशौण्डाः समुद्ययुः ॥१॥
 वानरीयैः खमालोक्त्य सैन्यैर्व्याप्तं निरन्तरम् । शङ्खदुन्दुभिसंमिश्रं श्रुत्वेमाश्वघ्वनिं तथा ॥२॥
 अभ्यूजितमतिमानी सादरोऽमरविभ्रमः । सत्त्वप्रतापसंयुक्तः सैन्यार्णवसमावृतः ॥३॥
 तेजसा शस्त्रज्ञातेन ज्वलयन्निव विष्टम् । कैलासोद्धारवीरोऽपि निरैद्भ्रात्रादिभिः समम् ॥४॥
 उद्गता बद्धकवचाः संग्रामार्थं लालसाः । नानायातनसमारूढा नानाविधमहायुधाः ॥५॥
 पूर्वानुबन्धसंक्रोधमहारौरवसंनिभाः । परस्परं मदा धीराः लग्नास्ताडनकर्मणि ॥६॥
 चक्रक्रकचपाशसियष्ट्याष्टिघनमुद्गरैः । कनकैः परिधाद्यैश्च गगनं गहनीकृतम् ॥७॥
 लग्नमश्वीयमश्वीयैर्गजता गजतामगात् । रथिनश्च महाधीरा उद्यता रथिभिः समम् ॥८॥
 सैहं सैहेन पादात् पादातेन च चञ्चलम् । समं महाहवं कर्तुं मुद्यतं समविक्रमम् ॥९॥
 ततः कपिध्वजं सैन्यं रक्षोयोधैः पराजितम् । नीलादिभिः पुनर्नीतं शस्त्रसंपातयोग्यताम् ॥१०॥
 भूयो जलधिकलोललोललङ्घेन्दुपार्थिवाः । इमे समुद्ययुर्दृष्ट्वा निजसैन्यपराभवम् ॥११॥
 विद्युद्गदनमारीचचन्द्रार्कशुक्रमारणाः । कृतान्तमृत्युजीमूतनादसंक्रोधनादयः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन जिन्हें महापराक्रम उत्पन्न हुआ था, जो क्रमको जाननेमें निपुण थे, एवं युद्धके लिए जिन्होंने सब सामग्री ग्रहण की थी ऐसे रणबाँकुरे वीर युद्धके लिए उद्यत हुए ॥१॥ वानरोंकी सेनासे समस्त आकाशको निरन्तर व्याप्त देख तथा शंखों और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे मिली हाथियों और घोड़ोंकी आवाज सुन कैलासको उठानेवाला वीर रावण भी भाइयों आदिके साथ निकला । रावण अत्यन्त बलवती बुद्धिका धारक था, मानी था, आदरसे युक्त था, देवोंके समान शोभासे सहित था, सत्त्व और प्रतापसे युक्त था, सेनारूपी सागरसे घिरा हुआ था, और शस्त्रसे उत्पन्न तेजके द्वारा संसारको जलाता हुआ-सा जान पड़ता था ॥२॥ तदनन्तर जिन्होंने उठकर कवच बाँध रखे थे, जिन्हें संग्रामकी उत्कट लालसा भरी हुई थी, जो नाना प्रकारके वाहनोपर आरूढ़ थे, नाना प्रकारके बड़े-बड़े शस्त्र जिन्होंने धारण कर रखे थे और जो पूर्वानुबद्ध क्रोधके कारण महानारकीके समान जान पड़ते थे, ऐसे धीर-वीर योद्धा परस्पर मार-काट करनेमें लग गये ॥५-६॥ चक्र, क्रकच, पाश, खड्ग, यष्टि, वज्र, घन, मुद्गर, कनक तथा परिघ आदि शस्त्रोंसे आकाश सघन हो गया ॥७॥ घोड़ोंका समूह घोड़ोंके साथ जुट पड़ा, हाथियोंका समूह हाथियोंके समूहके सम्मुख गया, महाधीर-वीर रथोंके सवार रथसवारोंके साथ खड़े हो गये ॥८॥ सिंहोंके सवार सिंहोंके सवारोंके साथ और चंचल तथा समान पराक्रमको धारण करनेवाला पैदल सैनिकोंका समूह पैदल सैनिकोंके साथ महायुद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया ॥९॥

तदनन्तर प्रथम तो राक्षस योद्धाओंने वानरोंकी सेनाको पराजित कर दो, परन्तु उसके बाद नील आदि वानरोंने उसे पुनः शस्त्रवर्षा करनेकी योग्यता प्राप्त करा दी अर्थात् वानरोंकी सेना पहले तो कुछ पीछे हटी, परन्तु ज्योंही नील आदि वानर आगे आये कि वह पुनः राक्षसोंपर शस्त्र वर्षा करने लगी ॥१०॥ पश्चात् अपनी सेनाका पराभव देख, समुद्रकी तरंगोंके समान चंचल लंकाके निम्नांकित राजा पुनः युद्धके लिए उद्यत हुए ॥११॥ विद्युद्गवन, मारीच, चन्द्र, अर्क, शुक्र,

१. विक्रमक्रम म. । २. अश्वानां समूहः । ३. गजानां समूहः । ४. सोद्योगं म. । ५. कपिध्वजसैन्यं म. । ६. विद्युद्गवन म. ।

भज्यमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य तैः राक्षसोत्तमैः । कपिध्वजमहायोधः परिप्रापुः सहस्रशः ॥१३॥
 प्रस्ता राक्षससैन्यास्तैरुच्छ्रितैर्विविधायुधैः । महाप्रतिभयैर्वीरैस्त्युदात्तविचेष्टितैः ॥१४॥
 निजसैन्यार्णवं दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविलासेन कपिप्रलयवह्निना ॥१५॥
 लङ्केशः कोपनी योद्धुं बलवान् स्वयमुत्थितः । शुष्कपत्रोपमान् दूरं विक्षिपन् शत्रुसैनिकान् ॥१६॥
 ततः पलायनोद्युक्तान् परिपालय तदा द्रुतम् । स्थितो विभीषणो योद्धुं महायोधविभीषणः ॥१७॥
 आहवेऽभिमुखोभूतं भ्रातरं वीक्ष्य रावणः । बभ्राण पृथुकक्रोधो वाक्यमादरवर्जितः ॥१८॥
 कनीयानसि स त्वं मे भ्राता हन्तुं न युज्यते । अपसर्पाप्रतो मास्थाः न त्वां शक्तोऽस्मि वीक्षितुम् ॥१९॥
 विभीषणकुमारेण जगदे पूर्वजस्ततः । कालेन गोचरत्वं मे नीतः किमवसर्प्यते ॥२०॥
 ततः कुमारकोपस्तं पुनरप्याह रावणः । क्लीबं क्लिष्टं धिगस्तु त्वां नरकाक कुचेष्टितम् ॥२१॥
 त्वया व्यापादितेनापि नैव मे जन्यते हृतिः । भवद्विधा हि नो योग्याः कर्तुं हर्षं न दीनताम् ॥२२॥
 यद्विद्याधरसंतानं त्यक्त्वा मूढोऽन्यमाश्रितः । कर्मणामतिदौरात्म्याज्जनं त्यक्त्वेव शासनम् ॥२३॥
 ततो विभीषणोऽवोचत् किमत्र बहुभाषितैः । शृणु रावण कल्याणं भण्यमानमनुत्तमम् ॥२४॥
 एवं गतोऽपि चेत् कर्तुं स्वस्य श्रेयः समिच्छसि । राघवेण समं प्रीतिं कुरु सीतां समर्पय ॥२५॥
 अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमम् । सा कलङ्कं स्ववंशस्य कार्षीर्योषिन्निमित्तकम् ॥२६॥
 अथवा मर्तुमिष्टं ते कुरुषे यन्न मद्ब्रूवः । मोहस्य दुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ॥२७॥

सारण, कृतान्त, मृत्यु, मेघनाद और संक्रोधन आदि ॥१२॥ इन राक्षस योद्धाओंके द्वारा अपनी सेनाको नष्ट होते देख वानर पक्षके हजारों महायोद्धा आ पहुँचे ॥१३॥ और आते ही उन्नत, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले, महाभयंकर, वीर और अत्यन्त उदात्त चेष्टाओंके धारक उन वानर योद्धाओंने राक्षसोंकी सेनाको धर दबाया ॥१४॥ तदनन्तर शस्त्ररूपी ज्वालाओंसे सुशोभित वानररूपी प्रलयाग्निके द्वारा अपनी सेनारूपी सागरको सब ओरसे पिया जाता देख क्रोधसे भरा बलवान् रावण, शत्रु सैनिकोंको सूखे पत्तोंके समान दूर फेंकता हुआ युद्ध करनेके लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥१५-१६॥ तदनन्तर महायोद्धाओंको भयभीत करनेवाला विभीषण भागनेमें तत्पर वानरोंकी शीघ्र ही रक्षा कर युद्ध करनेके लिए खड़ा हुआ ॥१७॥ युद्धमें भाईको सम्मुख खड़ा देख जिसका क्रोध भड़क उठा था ऐसा रावण निरादरताके साथ यह वचन बोला कि तू छोटा भाई है अतः मुझे तेरा मारना योग्य नहीं है, तू सामनेसे हट जा, खड़ा मत रह, मैं तुझे देखनेके लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१८-१९॥ तदनन्तर विभीषणने बड़े भाई—रावणसे कहा कि तू यमके द्वारा मेरे सामने भेजा गया है अतः अब पीछे क्यों हटता है ? ॥२०॥ पश्चात् विभीषणकुमारपर क्रोध प्रकट करते हुए रावणने उससे पुनः कहा कि रे नपुंसक ! संक्लिष्ट ! नरकाक ! तुझ कुचेष्टीको धिक्कार है ॥२१॥ तुझे मार डालनेपर भी मेरा यश नहीं होगा, क्योंकि तेरे समान तुच्छ मनुष्य न मुझे हर्ष उत्पन्न कर सकते हैं और न दीनता ही उत्पन्न करनेके योग्य हैं ॥२२॥ जिस प्रकार कोई, कर्मोंका अत्यन्त अशुभ उदय होनेसे जिनशासनको छोड़ अन्य शासनको ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुझ मूर्खने भी विद्याधरकी सन्तानको छोड़ अन्य भूमिगोचरीको ग्रहण किया है ॥२३॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हे रावण ! तेरे कल्याणके लिए जो उत्तम वचन कहे जा रहे हैं उन्हें सुन ॥२४॥ इस स्थितिमें आनेपर भी यदि तू अपना भला करना चाहता है तो रामके साथ मित्रता कर और सीताको समर्पित कर दे ॥२५॥ अहंकार छोड़कर रामको प्रसन्न कर स्त्रीके निमित्त अपने वंशकी कलंकित मत कर ॥२६॥ अथवा तुझे मरना ही इष्ट है इसीलिए मेरी बात नहीं मान रहा है सो ठीक ही है क्योंकि बलवान् मनुष्योंको

विनिशम्य वचस्तस्य तरुणक्रोधसंगतः । निशांतं बाणमुद्धृत्य समधावत रावणः ॥२८॥
 रथाश्ववारणारूढाः स्वामितोषे हि तत्पराः । अन्येऽपि पार्थिवा लग्ना रणे सुभटदारुणे ॥२९॥
 आयातोऽभिसुखं तस्य राक्षसेन्द्रस्य रहसा । अष्टमीचन्द्रवक्रेण ध्वजं आन्तेषुणाऽच्छिनत् ॥३०॥
 तेनापि तस्य संरम्भसंभाराक्रान्तचेतसा । धनुर्द्विधाकृतं क्षिप्त्वा सायकं निशिताननम् ॥३१॥
 ततोऽपरमुपादाय चापमाशु विभीषणः । द्विधाकरोद्धनुस्तस्य प्रतिकारविचक्षणः ॥३२॥
 एवं तयोर्महायुद्धे प्रवृत्ते वीरसंक्षये । जनकस्य परं भक्तः शक्रजिघोषुमुद्ययौ ॥३३॥
 लक्ष्मीधरेण रुद्धोऽसौ पर्वतेनैव सागरः । पद्मनेत्रेण पद्मेन भानुकर्णोऽग्रतः कृतः ॥३४॥
 ययौ सिंहकटिं नीलो युद्धशम्भुं तथा नलः । स्वयंभुं दुर्मतिः क्रुद्धो दुर्मणोऽपि घटोदरम् ॥३५॥
 दुष्टः शक्राशनिं कालिस्तथा चन्द्रनखं नृपम् । स्कन्दो भिन्नाञ्जनं विघ्नं विराधितनराधिपः ॥३६॥
 रुष्यतं मथमहादैत्यमङ्गदो भासुराङ्गदः । कुम्भकर्णसुतं कुम्भं समीरणसमुद्रवः ॥३७॥
 किष्किन्धेशः समालयाख्यं केतुं जनकनन्दनः । कामं दूहरथः क्षुब्धः क्षोभणाभिख्यमूर्जितम् ॥३८॥
 अन्येऽप्येवं महायोधा यथायोग्यं परस्परम् । आरेभिरे रणं कर्तुं माह्वानमुखराननाः ॥३९॥
 गृहाण प्रहरागच्छ जहि व्यापादयोद्गिरः । छिन्धि मिन्धि क्षिपोत्तिष्ठ तिष्ठ दारय धारय ॥४०॥
 बभान स्फोटयाकर्षं मुञ्च चूर्णय नाशय । सहस्व दस्व निःसर्पं संधास्वोच्छ्रय कल्पय ॥४१॥
 किं भीतोऽसि न हन्मि त्वां धिक्त्वां कातरको भवान् । कस्त्वं विभेसि नष्टोऽसि मा कम्पिष्टा क गम्यते ॥४२॥

भी इस बलवान् मोहका तिरना अत्यन्त कठिन है ॥२७॥ तदनन्तर विभीषणके वचन सुन तीव्र क्रोधसे युक्त हुआ रावण तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर दौड़ा ॥२८॥ स्वामीको सन्तुष्ट करनेमें तत्पर रहने-वाले, रथों, घोड़ों और हाथियोंपर बैठे हुए अन्य राजा लोग भी योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाले युद्धमें लग गये ॥२९॥ तदनन्तर बड़े वेगसे सम्मुख जाकर विभीषणने अष्टमी के चन्द्रके समान कुटिल घूमनेवाले बाणसे रावणकी ध्वजा छेद डाली ॥३०॥ और क्रोधके भारसे जिसका चित्त व्याप्त था ऐसे रावणने भी एक तीक्ष्णमुख बाण चलाकर विभीषणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३१॥ पश्चात् प्रतिकार करनेमें निपुण विभीषणने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर रावणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३२॥ इस प्रकार जब रावण और विभीषणके बीच अनेक वीरोंका क्षय करनेवाला महायुद्ध चल रहा था तब पिताका परमभक्त इन्द्रजित् युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३३॥ सो जिस प्रकार पर्वत समुद्रको रोकता है उसी प्रकार लक्ष्मणने उसे रोका और कमललोचन रामने भानुकर्णको अपने आगे किया अर्थात् उससे युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३४॥ नील, सिंहकटि (सिंहजघन) के सम्मुख गया, नलने युद्ध शम्भुका, दुर्मतिने स्वयम्भुका, क्रोधसे भरे दुर्मर्षने कुम्भोदरका, दुष्टने इन्द्रवज्रका, कान्तिने चन्द्रनखका, स्कन्धने भिन्नाञ्जनका, विराधित राजाने विघ्नका, देदीप्यमान केयूरके धारक अंगदने प्रसिद्ध मय नामक महादैत्यका, हनुमान्ने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भका, सुग्रीवने सुमालीका, भामण्डलने केतुका, दूहरथने कामका और क्षुब्धने क्षोभण नामक बलवान् सामन्तका सामना किया ॥३५-३८॥ इनके सिवाय बुलानेके शब्दसे जिनके मुख शब्दायमान हो रहे थे ऐसे अन्य महायोधाओंने भी परस्पर यथायोग्य युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३९॥ उस समय योद्धाओंमें परस्पर इस प्रकारके शब्द हो रहे थे कोई किसीसे कहता था कि लो, इसके उत्तरमें दूसरा कहता था कि मारो, आओ, मारो, जानसे मार डालो, छोड़ो, भेदो, फेंक दो, उठो, बैठो, खड़े रहो, विदारण करो और धारण करो ॥४०॥ बांधो, फोड़ डालो, घसीटो, छोड़ो, चूर-चूर कर डालो, छोड़ो, नष्ट करो, सहन करो, देओ, पीछे हटो, सन्धि करो, उन्नत होओ, समर्थ बनो । तू क्यों डर रहा है ? मैं तुझे नहीं मारता, तुझे धिक्कार है, तू बड़ा कातर है, तुझे

१. संरम्भं संभाराक्रान्तसाधनम् म. । २. किष्किन्धेशं म. ।

अयं स वर्तते कालः शूराशूरविचारकः । भुज्यतेऽन्नं यथा मृष्टं न तथा युध्यते रणे ॥४३॥
 गर्जितैरिति धीराणां तूर्यनादैस्तथोन्नतैः । नर्दन्तीव दिशो मत्ताः क्षतजातान्धकारिताः ॥४४॥
 चक्रशक्तिगदायष्टिकनकाष्टिघनादिभिः । दंष्ट्रालमिव संजातं गगनं मीषणं परम् ॥४५॥
 रक्ताशोकवनं किं तत् किं वा किंशुकाननम् । परिभैद्रुमारण्यमुत जातं क्षतं बलम् ॥४६॥
 कश्चिद्विघटितं दृष्ट्वा कङ्कटं छिन्नबन्धनम् । संधत्ते त्वरितं भूयः स्नेहं साधुजनो यथा ॥४७॥
 कश्चिस्संधार्य दन्ताग्रैः खड्गं परिकरं दृढम् । बध्वा दीप्रः पुनर्योद्धुं श्रमसुकः प्रवर्तते ॥४८॥
 मत्तवारणदन्ताप्रक्षतवक्षस्थलोऽपरः । चलत्कर्णसमुद्धूतैर्वीजितः कर्णचामरैः ॥४९॥
 उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो निराकुलमतिः परम् । दन्तोत्संगे ततः शिश्ये संप्रसार्य भुजद्वयम् ॥५०॥
 धातुपर्वतसंकाशाः केचित् क्षतजनिउर्जराः । सुमुचुः शीकरासारसेकबोधितमूर्च्छिताम् ॥५१॥
 पर्यस्ता भूतले केचिद्विघ्नैः शस्त्रपाणयः । कुञ्चितभ्रूदुरीक्ष्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥५२॥
 उपसंहृत्य संरम्भं त्यक्तशस्त्रास्तथापरे । मुञ्चन्ति जीवितं धीरा ध्यायन्तः परमाक्षरम् ॥५३॥
 विषाणकोटिसंस्तुपाणयः केचिदुत्कटाः । आन्दोलनं गजेन्द्राणामग्रतः समुपासिरे ॥५४॥
 रक्तच्छटा विमुञ्चन्तश्चल्लाः शस्त्रपाणयः । कवन्धा नर्तनं चक्रुः शतशोऽतिभयानकम् ॥५५॥
 केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता जर्जरीभूतकङ्कटाः । प्रविष्टाः सलिलं क्लिष्टा जीविताशपराङ्मुखाः ॥५६॥

धक्कार है, तू क्यों कम्पित हुआ जा रहा है ? क्या तू भूल गया है ? कम्पित मत हो, तू अकेला कहां जायेगा ? ॥४१-४२॥ यह वह समय है जिसमें शूर और कायरका विचार किया जाता है । जैसा मीठा अन्न खाया है वैसा रणमें युद्ध नहीं कर रहे हो ॥४३॥

इस प्रकार धीर-वीरोंकी गर्जना और तुरहीके उन्नत शब्दोंसे दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो रुधिरकी वर्षासे अन्धकारयुक्त तथा पागल हो चिल्ला ही रही हों ॥४४॥ चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक, आष्टि और घन आदि शस्त्रोंसे आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो गया मानो सबको निगलनेके लिए दाँढ़ी ही धारण कर रहा हो ॥४५॥ खूनसे लथपथ घायल सेनाको देखकर ऐसा सन्देह होता था कि क्या यह अशोकका लाल वन है ? या पलाशका कानन है, या पारिभद्र वृक्षोंका वन है ? ॥४६॥ किसीका कवच टूट गया तथा उसके बन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही दूसरा कवच उस प्रकार धारण किया जिस प्रकार कि साधु पुरुष एक बार स्नेहके दूट जानेपर उसे शीघ्र ही पुनः धारण कर लेते हैं ॥४७॥ कोई तेजस्वी योद्धा दाँतोंके अग्रभागसे तलवार दबा तथा हाथोंसे कमर कसकर श्रमरहित हो फिरसे युद्ध करनेके लिए तैयार हो गया ॥४८॥ मदोन्मत्त हाथीके दन्ताग्रसे जिसका वक्षःस्थल घायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथीके चंचल कानोंसे ऊपर उठे हुए कर्णचामरीसे वीजित हो रहा था ॥४९॥ जिसने स्वामीका कर्तव्य पूरा किया था ऐसा कोई एक योद्धा निराकुल चित्त हो दोनों हाथ पसारकर हाथीके दाँतोंके बीच सो रहा था ॥५०॥ जिनसे खूनके निर्झर झर रहे थे तथा जो गेरूके पर्वतके समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाओंने जलकणोंकी वर्षाके सिंचनसे सचेत हो मूर्च्छा छोड़ी थी ॥५१॥ जो ओठ डँस रहे थे, हाथोंमें शस्त्र लिये थे और टेढ़ी भीहोंसे जिनके मुख भयंकर दिख रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथिवीपर पड़कर प्राण छोड़ रहे थे ॥५२॥ कितने ही धीर-वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोधका संकोच तथा शस्त्रोंका त्याग कर परब्रह्माका ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे ॥५३॥ कितने ही प्रचण्ड वीर वीरोंके अग्रभागको हाथोंसे पकड़कर हाथियोंके आगे झूला झूल रहे थे ॥५४॥ जो रक्तकी छटा छोड़ रहे थे तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, ऐसे सैकड़ों उछलते कवन्ध—शिररहित धड़ अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे ॥५५॥ जिनके कवच जर्जर हो

१. भुज्यतेऽन्नं म. । २. तदुन्नतैः म. । ३. पारिभद्रकुमाराणां म. । ४. समुद्भूतैः म. । ५. विमुञ्चन्ति म. ।

ईदृशो समरे जाते लोकसन्त्रासकारिणि । परस्परसमुद्भूतमहामदपरिक्षये ॥५७॥
 महेन्द्रजिदसौ बाणैर्लक्ष्मीमन्तं सिताननैः । लग्नश्छादयितुं वीरस्तथा तमपि लक्ष्मणः ॥५८॥
 महातामसशस्त्रं च भोमं शक्रजिदक्षिपत् । विनाशं मानवीयेन तदस्त्रेणानयदिपुः ॥५९॥
 तमुग्रैः शक्रजिद्भूयः शरैराशीविषात्मकैः । आरब्धो वेष्टितुं कुद्मः सरथं शस्त्रवाहनम् ॥६०॥
 नैनतेयास्त्रयोगेन नागास्त्रं स निराकरोत् । पूर्वोपात्तं यथा पापजालं योगी महातपाः ॥६१॥
 ततोऽमात्यगणान्तस्थं हस्तिवृन्दस्थलावृतम् । विरथं लक्ष्मणश्चक्रे दशवक्त्रसमुद्भवम् ॥६२॥
 पालयन् स निजं सैन्यं वचसा कर्मणा तथा । प्रायुङ्क्तास्त्रं महाध्वान्तपिहितारिदशास्यकम् ॥६३॥
 विजया तपनास्त्रं च हत्वा सस्य विचिन्तितम् । चिक्षेपेच्छाघृताकारानासीमुखशिलीमुखान् ॥६४॥
 संग्रामामिमुखो नागैः कुटिलं व्यासविग्रहः । इन्द्रजित्पतितो भूमौ पुरा भामण्डलो यथा ॥६५॥
 पद्मेनाऽऽदिष्यकर्णोऽपि सुयुद्धे^१ विरथीकृतः । आदिष्यास्त्र शनैर्हत्वा नागास्त्रं संप्रयुज्य च ॥६६॥
 संवेष्ट्य सर्वतो नागैः पतितो धरणीतले । पुरेव बाहुबलिना श्रीकण्ठो नमिनन्दनः ॥६७॥
 चित्रं श्रेणिक ते बाणाः भवन्ति धनुराश्रिताः । उल्कामुखास्तु गच्छन्तः शरीरे नागमूर्त्तयः ॥६८॥
 क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः क्षणं पाशस्त्वमागताः । आमरा ह्यस्त्रमेदास्ते यथा चिन्तितरूपगाः ॥६९॥
 कर्मपाशैर्यथा जीवो नागराशैः स वेष्टितः । भामण्डलेन पञ्चाज्ञां प्राप्याऽऽस्मीये रथे कृतः ॥७०॥

गये थे ऐसे कितने ही दुःखी योद्धा, जीवनकी आशासे विमुख हो शस्त्र छोड़ पानीमें घुस गये ॥५६॥
 इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओंका क्षय करनेवाला, लोकसन्त्रासकारी महायुद्ध हो रहा था तब
 इन्द्रजित् तीक्ष्ण बाणोंसे लक्ष्मणको और लक्ष्मण इन्द्रजित्को आच्छादित करनेमें लीन थे ॥५७-५८॥
 इन्द्रजित्ने अत्यन्त भयंकर महातामस नामक शस्त्र छोड़ा जिसे लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके द्वारा नष्ट कर
 दिया ॥५९॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे इन्द्रजित्ने नाग बाणोंके द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहनके साथ
 लक्ष्मणको वेष्टित करना प्रारम्भ किया । तब लक्ष्मणने गरुडास्त्रके द्वारा उस नागास्त्रको उस तरह
 दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपस्वी योगी पूर्वोपाजित पापोंके समूहको दूर कर देता है
 ॥६०-६१॥ तदनन्तर मन्त्रिसमूहके मध्यमें स्थित तथा हाथियोंके समूहसे वेष्टित इन्द्रजित्को लक्ष्मण-
 ने रथरहित कर दिया ॥६२॥ तब वचन तथा क्रियासे अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए इन्द्रजित्ने
 ऐसा तामसास्त्र छोड़ा कि जिसने महाअन्धकारसे रावणको छिपा लिया ॥६३॥ इसके बदले लक्ष्मण-
 ने सूर्यास्त्र छोड़कर इन्द्रजित्का मनोरथ नष्ट कर दिया और इच्छानुसार आकृतिको धारण करने-
 वाले नागबाण छोड़े ॥६४॥ इनके फलस्वरूप संग्रामके लिए आते हुए इन्द्रजित्का समस्त शरीर
 नागोंके द्वारा व्याप्त हो गया और उनके कारण जिस प्रकार पहले भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा
 था उसी प्रकार वह भी पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६५॥ उधर रामने भी धीरेसे सूर्यास्त्रको नष्ट कर
 तथा नागास्त्रको चलाकर युद्धमें भानुकर्णको रथरहित कर दिया ॥६६॥ पहले जिस प्रकार
 बाहुबलीने नमिके पुत्र श्रीकण्ठको जीतकर नागपाशसे बाँध लिया था, उसी प्रकार रामने भी
 भानुकर्णको सब ओरसे नागपाशसे वेष्टित कर लिया जिससे वह पृथिवीतलपर गिर पड़ा ॥६७॥
 गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वे बाण बड़े ही विचित्र थे । जब वे धनुषपर चढ़ाये जाते थे
 तब बाणरूप रहते थे, चलते समय उल्काके समान मुखवाले हो जाते थे और शरीरपर जाकर
 नागरूप हो जाते थे ॥६८॥ वे बाण क्षण भरके लिए बाण हो जाते थे, क्षण-भरमें दण्डरूप हो जाते
 थे और क्षण-भरमें नागपाशरूप हो जाते थे, यथार्थमें ये सब शस्त्रोंके भेद देवोपनीत थे तथा मन-
 चाहे रूपको धारण करनेवाले थे ॥६९॥ आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार संसारी प्राणी कर्मरूपी

१. रिपुम् म. । २. हत्वा म. । ३. मुमुद्धो म. । ४. म. पुस्तके ६८-६९ तमश्लोकयोर्मध्ये 'निजसैन्याणं व दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविलासेन कपिप्रलयवह्निना ॥' एष श्लोकोऽधिको वर्तते ।

मन्दोदरीसुतोऽप्येष बद्धो नारायणाज्ञया । विराधितेन याने स्वे स्थापितः क्लान्तविग्रहः ॥७१॥
 तावद्रणमुखेऽभाणीद् दशवक्त्रो विभीषणम् । संक्रुद्धोऽभिमुखीभूतं चिरं सोढारणक्रियम् ॥७२॥
 प्रहारमिममेकं मे प्रतीच्छ यदि मन्यसे । सत्यं पुरुषमात्मानं रणकण्डूप्रचण्डकम् ॥७३॥
 इत्युक्त्वा विस्फुरत्पिङ्गस्फुल्लिङ्गालिङ्गिताम्बरम् । शूलं चिक्षेप लुप्तोऽसौ लक्ष्मणेनान्तरे शरैः ॥७४॥
 तं भस्मीकृतमालोक्य शूलमव्युग्रमायुधम् । अधिकं रावणः क्रुद्धः शक्तिं जग्राह दारुणाम् ॥७५॥
 यावत्पश्यति संजातमग्रतो गरुडध्वजम् । प्रौढेन्द्रीवरसंकाशं मासुरं पुरुषोत्तमम् ॥७६॥
 प्रलयाभ्योदसंभारगंभीरोदारनिस्वनः । विशत्यर्द्धमुखोऽवोचत् तमेवं ताडयन्निव ॥७७॥
 अन्यस्यैव मया शस्त्रमुद्यतं वधकारणम् । यदि तत्कोऽधिकारस्ते स्थातुमासंनतो मम ॥७८॥
 अभिवाञ्छसि मत्तुं वा यदि दुर्मतं लक्ष्मण । प्रतीच्छेमं प्रहारं मे तिष्ठ प्रगुणविग्रहः ॥७९॥
 विभीषणं समुत्सायं सोऽपि कृच्छ्रेण मानवान् । दशास्यमभिदुद्वाव चिरं संग्रामखेदितम् ॥८०॥
 निःसर्पत्तारकाकारस्फुलिङ्गनिकरो ततः । चिक्षेप रावणः शक्तिं कोपसंमारसंगतः ॥८१॥
 वक्षस्तस्य तथा भिन्नं महाशैलतटोपमम् । अमोवक्षेपया शक्त्या दिव्यायात्यन्तदीपया ॥८२॥
 लक्ष्मणोऽसि सा सक्ता मासुराङ्गमनोहरा । परमप्रेमसंबद्धा शोभते स्म वधूरिव ॥८३॥
 गाढप्रहारदुःखार्त्तः स परायत्तविग्रहः । महीतलं परिप्राप्तो गिरिर्वज्राहतो यथा ॥८४॥

पाशसे वेष्टित रहता है, उसी प्रकार भानुकर्ण भी नागपाशसे वेष्टित हो गया । तदनन्तर रामकी आज्ञा पाकर भामण्डलने उसे अपने रथपर डाल लिया ॥७०॥ उधर जिसका शरीर बेचैन हो रहा था ऐसे नागपाशसे बँधे हुए इन्द्रजित्को भी लक्ष्मणकी आज्ञासे विराधितने अपने रथपर रख लिया ॥७१॥

उसी समय रणके मैदानमें क्रोधसे भरे रावणने, चिरकाल तक रणक्रियाको सहन करनेवाले विभीषणने कहा कि ॥७२॥ यदि तू अपने आपको सचमुच ही रणकी खाजसे प्रचण्ड पुरुष मानता है तो मेरे इस एक प्रहारको झेल ॥७३॥ इतना कहकर उसने निकलते हुए पीले तिलगोंसे आकाशको व्याप्त करनेवाला शूल चलाया, सो लक्ष्मणने उसे अपने बाणोंसे बीचमें ही समाप्त कर दिया ॥७४॥ उस अत्यन्त भयंकर शूल नामक शस्त्रको भस्मीकृत देख रावणने अत्यन्त कुपित हो भयानक शक्ति उठायी ॥७५॥ रावण शक्ति उठाकर ज्यों ही सामने देखता है तो उसे आगे खड़े हुए, तरुण नील कमलके समान श्याम, देदीप्यमान पुरुषोत्तम, लक्ष्मण दिखाई दिये ॥७६॥ लक्ष्मणको देख प्रलयकालीन मेघसमूहके समान गम्भीर शब्द करनेवाला रावण ताड़न करते हुए के समान इस प्रकार बोला ॥७७॥ कि जब मैंने दूसरेका ही वध करनेके लिए शस्त्र उठाया है तब तुझे मेरे निकट खड़े होनेका क्या अधिकार है ? ॥७८॥ अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण ! यदि तू मरना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार झेल ॥७९॥ यह सुन मानी लक्ष्मण भी कठिनाईसे विभीषणको अलग कर जो चिरकाल तक युद्ध करनेसे खेदखिन्न हो गया था ऐसे रावणके सम्मुख दौड़ा ॥८०॥

तदनन्तर क्राधके भारसे भरे रावणने जिससे ताराओंके समान तिलगोंका समूह निकल रहा था ऐसी शक्ति चलायी और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाता तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान था ऐसी उस शक्तिसे महापर्वतके तटके समान लक्ष्मणका वक्षःस्थल खण्डित हो गया ॥८१-८२॥ लक्ष्मणके वक्षस्थलपर लगी देदीप्यमान आकृतिसे मनोहर वह शक्ति, परम प्रेमसे लिपटी स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी ॥८३॥ जो गाढ़ प्रहारजन्य दुःखसे दुःखी थे तथा

१. सोढा रणक्रियम् म. ।

दृष्ट्वा तं पतितं ममो पद्मः पद्माभलोचनः । विनियम्य परं शोकं शत्रुघातार्थमुद्यतः ॥८५॥
 सिंहयुक्तं समाकूटः स्यन्दनं क्रोधपूरितः । शत्रुमाथातमात्रेण चकार विरथं बली ॥८६॥
 रथान्तरं समारूढश्छिन्नपूर्वशरासनः । यावच्चापं समादत्ते भूयोऽथ विरथीकृतः ॥८७॥
 पद्माभस्य शरैर्ग्रस्तो दशास्यो विह्वलीकृतः । न समर्थो बभूवेषु ग्रहीतुं न च काशुकम् ॥८८॥
 लोडितोऽपि शरैस्तीव्रैस्तथापि धरणीतले । रथे विलोक्यते भूयो रावणः खेदसंगतः ॥८९॥
 विच्छिन्नचापकवचः पट्वारं विरथीकृतः । तथापि शक्यते नैव स साधयितुमनुतः ॥९०॥
 प्रोक्तश्च पद्मनाभेन परं प्राप्तेन विस्मयम् । नाल्पायुष्को मवानेव यो न प्राप्तोऽसि पद्मताम् ॥९१॥
 मद्बाहुप्रेरितैर्बाणैर्वैगवद्भिः शिताननैः । महीभृतोऽपि शीर्यन्ते मन्येऽन्यत्र किमुच्यताम् ॥९२॥
 तथापि रक्षितः पुण्यैर्जन्मान्तरसमर्जितैः । शृणु जल्पामि किञ्चित्ते वचनं खेचराधिप ॥९३॥
 संग्रामेऽभिमुखो आता यो मे शक्त्या त्वया हतः । प्रेतस्याभिमुखं तस्य वीक्षे यद्यनुमन्यसे ॥९४॥
 एवमस्त्विति संभाष्य प्रार्थनामङ्गदुर्विधः । ययौ दशाननो लङ्कामुद्घाऽऽखण्डलसंनिभः ॥९५॥
 एकस्तावदयं ध्वस्तो मया शत्रुर्महोत्कटः । इति किञ्चिद्वृत्तिं प्राप्तो विवेश भवनं निजम् ॥९६॥
 अन्विष्य विश्वतास्तत्र योधान् विक्रान्तवत्सलः । विवेशान्तःपुरं धीरो दर्शनश्रमनोदनः ॥९७॥
 निरुद्धं आतरं श्रुत्वा पुत्राचरणकारिणौ । शोचन् प्रियजनं पश्यन्नाशां चक्रे दशाननः ॥९८॥

जिनका शरीर विवश हो गया था ऐसे लक्ष्मण वज्रसे ताड़ित पर्वतके समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥८४॥ उन्हें भूमिपर पड़े देख कमल लोचन राम, तीव्र शोकको रोककर शत्रुका घात करनेके लिए उद्यत हुए ॥८५॥ सिंहजुते रथपर बैठे एवं क्रोधसे भरे बलवान् रामने सामने जाते ही शत्रुको रथरहित कर दिया ॥८६॥ जबतक वह दूसरे रथपर चढ़ता है तबतक रामने उसका धनुष तोड़ दिया । तदनन्तर वह जबतक दूसरा धनुष उठाता है तबतक उसे पुनः रथरहित कर दिया ॥८७॥ रामके बाणोंसे ग्रस्त हुआ रावण इतना विह्वल हो गया कि वह न तो बाण ग्रहण करनेके लिए समर्थ था और न धनुष हो ॥८८॥ यद्यपि रामने तीव्र बाणोंके द्वारा रावणको पृथिवीपर लिटा दिया था तथापि वह खेद-खिन्न हो पुनः दूसरे रथपर आरूढ़ हो गया ॥८९॥ इस प्रकार यद्यपि रामने छह बार उसका धनुष तोड़ा तथा छह बार उसे रथरहित किया तथापि आश्चर्यसे भरा रावण जीता नहीं जा सका ॥९०॥ तब परम आश्चर्यको प्राप्त हुए रामने उससे कहा कि आप जब इस तरह मृत्युको प्राप्त नहीं हुए तब अल्पायुष्क नहीं हो, यह निश्चित है ॥९१॥ मैं समझता हूँ कि मेरी भुजाओंसे छोड़े हुए वेगशाली तीक्ष्णमुख बाणोंसे पहाड़ भी ढह जाते हैं फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ॥९२॥ इतना होनेपर भी जन्मान्तरमें संचित पुण्य कर्मने तेरी रक्षा की है । अब हे विद्याधरराज ! सुन, मैं तुझसे कुछ वचन कहता हूँ ॥९३॥ संग्राममें सामने आये हुए मेरे जिस भाईकी तूने शक्तिके द्वारा घायल किया है वह मरनेके सम्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देख लूँ ॥९४॥ तदनन्तर जो प्रार्थना भंग करनेमें दरिद्र था और इन्द्रके समान जिसकी शोभा बढ़ रही थी ऐसा रावण 'एवमस्तु' कहकर वैभवके साथ लंकाकी ओर चला गया ॥९५॥ 'यह एक महाबलवान् शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया' इस प्रकार हृदयमें कुछ घैर्यको प्राप्त हुए रावणने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥९६॥ पराक्रमी मनुष्योंके साथ स्नेह रखनेवाले धीर-वीर रावणने घायल योद्धाओंकी खोज कराकर उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा तथा इस तरह उनका खेद दूर कर अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥९७॥ भाई कुम्भकर्ण और युद्ध करनेवाले इन्द्रजित् तथा मेघवाहन नामक दो पुत्रोंकी शत्रुके पास रुका सुन रावण शोक करने लगा परन्तु प्रियजनोंकी

मालिनीवृत्तम्

इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतोर्व्यतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
इह जनुषु विचित्रं कर्मणो भावयन्ते फलमविरतयोगाजन्तवो भूरिभावाः ॥९९॥
व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं हतरिपुरपरश्च स्वं पदं याति धीरः ।
विफलतृथुशक्तिर्वन्धनं सेवतेऽन्यो रविरुचितपदार्थोद्भासने हि प्रवीणः ॥१००॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिसंतापाभिधानं नाम द्वाषष्टितमं पर्व ॥६२॥



ओर देखते हुए उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़ानेकी आशा की ॥९८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाना प्रकारके भावोंको धारण करनेवाले जीव, अपने विविध आचरणोंके अनुरूप पूर्वभवोंमें जो कर्मका संचय करते हैं उन्हें उसका उदय अवश्य ही भोगना पड़ता है और उसके उदयके अनुरूप ही वे इस जन्ममें निरन्तर नाना प्रकारका फल भोगते हैं ॥९९॥ इस संसारमें कर्मयोगसे कोई नाशको प्राप्त होता है, कोई धीर-वीर शत्रुको नष्ट कर अपने पदको प्राप्त होता है, कोई अपनी विशाल शक्तिके निष्फल हो जानेसे बन्धनको प्राप्त होता है और कोई सूर्यके समान योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होता है ॥१००॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके शक्ति लगनेके दुःखका वर्णन करनेवाला बासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६२॥



त्रिषष्टितमं पर्व

ततः समाकुलस्वान्तः पद्मः शोकेन ताडितः ।^१ परिप्राप तमुद्देशं यत्र तिष्ठति लक्ष्मणः ॥१॥
निर्विघ्ने तमालोक्य क्षितिमण्डलमण्डनम् । शक्त्याऽऽलिङ्गितवक्षस्कं पद्मो मूर्च्छासुपागतः ॥२॥
संप्राप्य च चिरात् संज्ञां महाशोकसमन्वितः । दुःखाग्निदीपितोऽत्यन्तं विप्रलापमसेवत ॥३॥
हा वत्स विधियोगेन महादुर्लभ्यमर्णवम् । उत्तार्य संगतोऽस्येतामवस्थामतिदारुणाम् ॥४॥
अयि मद्भक्तिसच्चेष्टो मदर्थं सततोद्यतः । क्षिप्रं प्रयच्छ मे वाचं किं मौनेनावतिष्ठसे ॥५॥
जानास्येव वियोगं ते मुहुर्त्तमपि नो महे । कुर्वालिङ्गनमुत्तिष्ठ क गतोऽसौ तत्रादरः ॥६॥
अद्य केयूरदर्शो मे भुजावेतो महायतो । मावमात्रकरौ जातौ निष्क्रियो निष्प्रयोजनौ ॥७॥
निक्षेपो गुरुमिस्त्र्वं मे प्रयत्नेन समर्पितः । गत्वा किमुत्तरं तेभ्यो दास्यामि त्रययोश्चितः ॥८॥
क सौमित्रिः क सौमित्रिरिति गाढं ससुसुकः । लोकोऽपि हि रामस्तो मे प्रक्षयति प्रेमनिर्भरः ॥९॥
रत्नं पुरुषवीराणां हारयित्वा त्वकामहम् । मन्ये जीवितमास्मीयं हतं निहतपौरुषः ॥१०॥
दुष्कृतस्योदयस्थस्य रचितस्य सवान्तरे । फलमेतन्मया प्राप्तं सीतया मे किमन्यथा ॥११॥
यस्याः कृते क्षतोरस्कं शक्त्या निर्दयनुज्ञया । सवन्तं भूतले सुप्तं पश्यामि वृद्धमानसः ॥१२॥
कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा । विविधाश्चैव संवन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३॥
पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तन्ननु । यस्मिन्नवाप्यते आता जननी जनकोऽपि वा ॥१४॥

अथानन्तर जिनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था तथा जो शोकसे पीड़ित हो रहे थे ऐसे श्रीराम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे ॥१॥ जिनका वक्षःस्थल शक्तिसे आलिंगित था ऐसे पृथिवीतलके अलंकारस्वरूप लक्ष्मणको निश्चेष्ट देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२॥ चिरकाल बाद जब सचेत हुए तब महाशोकसे युक्त एवं दुःखरूपी अग्निसे जलते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥३॥ वे कहने लगे कि हाय वत्स ! तू कर्मयोगसे इतना दुर्लभ सागर को उल्लंघ कर अब इस अत्यन्त कठिन दशाको प्राप्त हुआ है ॥४॥ अये वत्स ! तू सदा मेरी भक्तिमें सचेष्ट रहता था और मेरे कार्यके लिए सदा तत्पर रहता था, अतः शीघ्र ही मुझे वचन दे-भुझसे वार्तालाप कर, मौनसे क्यों बैठा है ? ॥५॥ तू यह तो जानता ही है कि मैं तेरा वियोग मूर्त-भरके लिए भी सहन नहीं कर सकता हूँ अतः उठ आलिंगन कर, तेरा वह आदर कहाँ गया ? ॥६॥ आज बाजूबन्दसे सुशोभित मेरी ये लम्बी भुजाएँ नाममात्रकी रह गयीं, तेरे बिना सर्वथा निष्फल और निष्क्रिय हो गयीं ॥७॥ माता-पिता आदि गुरुजनोंने तुझे घराहृरके रूपमें प्रयत्नपूर्वक मेरे लिए सौंपा था, अब मैं लज्जारहित हुआ जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? ॥८॥ प्रेमसे भरे गमस्त लोग अत्यन्त उत्सुक हो भुझसे पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है ? लक्ष्मण कहाँ है ? ॥९॥ तू वीर पुरुषोंमें रत्नके समान था सो तुझे हराकर मैं पुरुषार्थहीन हुआ अपने जीवनको नष्ट हुआ समझता हूँ ॥१०॥ भवान्तरमें जो मैंने दुष्कृत-पाप कर्म किया था वह इस समय उदयमें आ रहा है । और उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ है, हे भाई ! मुझे तेरे बिना सीतासे क्या प्रयोजन है ? ॥११॥ मुझे उस सीतासे क्या प्रयोजन है जिसके लिए निर्दय-रावणके द्वारा चलायी हुई शक्तिसे तेरा वक्षःस्थल विदीर्ण हुआ है तथा मैं कठोर हृदय हो तुझे पृथिवीपर सोया हुआ देख रहा हूँ ॥१२॥ इस संसारमें पुरुषको काम और अर्थ तथा नाना प्रकारके सम्बन्ध सर्वत्र सुलभ हैं ॥१३॥ समस्त पृथिवीमें घूमकर मैं वह स्थान नहीं देख सका जिसमें भाई, माता तथा पिता पुनः प्राप्त हो सकते हों ॥१४॥

१. परिप्रातस्तमुद्देशं म. । २. -क्षितो रक्तं म. । ३. द्विविधा- म. ।

हे सुग्रीव सुहृत्वं ते दर्शितं स्नेहराधिप । व्रजाऽधुना निजं देशं भामण्डलं भवानपि ॥१५॥
 जीविताशां परित्यज्य दयितां जानकीमिव । ज्वलनं श्वः प्रवेष्टास्मि समं भ्रात्रा विसंशयम् ॥१६॥
 विभीषण न मे शोकस्तथा सीताऽनुजोद्धवः । यथा निरुपकारित्वं मम संवाधते त्वयि ॥१७॥
 उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्वं पश्चात्तु मध्यमाः । पश्चादपि न ये तेषामधमत्वं हतात्मनाम् ॥१८॥
 कृतपूर्वोपकारस्य साधोर्वन्धुविरोधिनः । यत्ते नोपकृतं किञ्चित्तेन दद्येतरामहम् ॥१९॥
 भो भामण्डलसुग्रीवौ चित्तां रचयतां द्रुतम् । परलोकं गमिष्यामि कुरुतं युक्तमात्मनः ॥२०॥
 ततो लक्ष्मीधरं स्पृष्टुमिच्छन्तं रघुनन्दनम् । अवारयन्महाबुद्धिर्जाम्बूनदमहत्तरः ॥२१॥
 मा स्त्राक्षीर्लक्ष्मणं देव दिव्यास्त्रपरिमूर्च्छितम् । प्रमादो जायते ह्येवं प्रायो हि स्थितिरीदृशी ॥२२॥
 प्रपद्यस्व च धीरत्वं कातस्त्वं परित्यज । भवन्तीह प्रतीकाराः प्रायो विपदमीयुषाम् ॥२३॥
 प्रतीकारो विलाषोऽत्र नानुदात्तजनोचितः । परमार्थानुसारेण क्रियतां धीरमानसम् ॥२४॥
 उपायः सर्वथा कश्चिद्दिह देव भविष्यति । जीविष्यति तव भ्राता ननु नारायणो ह्ययम् ॥२५॥
 ततो विषादिनः सर्वे परं विद्याधराधिपाः । उपायचिन्तनासक्ताश्चक्रुस्त्यन्तरात्मनि ॥२६॥
 दिव्या शक्तिरियं शक्या न निराकर्तुमौषधैः । उदगते ज्योतिषामीको दुःखं जीवति लक्ष्मणः ॥२७॥
 अथोत्सायं कवन्धादीन्निमिषाद्देन सा मही । किङ्करैर्विहितोत्तुङ्गदूष्यप्राकारमण्डपा ॥२८॥

हे विद्याधरोंके राजा सुग्रीव ! तुमने अपनी मित्रता दिखायी । अब अपने देश जाओ । इसी तरह हे भामण्डल ! तुम भी अपने देश जाओ ॥१५॥ इसमें संशय नहीं कि मैं प्रिया जानकीके समान जीवनकी आशा छोड़ कल भाईके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥१६॥ हे विभीषण ! मुझे सीता तथा छोटे भाईके वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक उस प्रकार पीड़ा नहीं पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि तुम्हारा कुछ उपकार नहीं कर सकना ॥१७॥ उत्तम मनुष्य कार्यके पूर्व तथा मध्यम मनुष्य कार्यके पश्चात् उपकार करते हैं परन्तु जो कार्यके पीछे भी उपकार नहीं करते हैं उन दुष्टोंमें नीचताका ही निवास समझना चाहिए ॥१८॥ हे विभीषण ! तू साधु पुरुष है । तूने मेरा पहले उपकार किया और मेरे पीछे बन्धुसे विरोध किया है फिर भी मैं तेरा कुछ भी उपकार नहीं कर सका इससे मन ही मन जल रहा हूँ ॥१९॥ हे भामण्डल और सुग्रीव ! शीघ्र ही चिन्ता बनाओ । मैं परलोक जाऊँगा, आप दोनों अपने योग्य कार्य करो । जिसमें तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥२०॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके स्पर्श करनेकी इच्छा की सो उन्हें महाबुद्धिमान् जाम्बूनदने मना किया ॥२१॥ उसने कहा कि हे देव ! दिव्य अस्त्रसे मूर्च्छित लक्ष्मणको मत छुओ क्योंकि ऐसा करनेसे प्रायः प्रमाद हो जाता है । इन दिव्य अस्त्रोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२२॥ आप धीरताको प्राप्त होओ, कातरता जोड़ो, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके प्रतीकार इस संसारमें अधिकांश विद्यमान हैं ॥२३॥ क्षुद्र मनुष्योंके योग्य विलाप करना इसका प्रतीकार नहीं है, हृदयको यथार्थमें धैर्ययुक्त किया जाये ॥२४॥ हे देव ! इसका कोई न कोई उपाय अवश्य होगा और तुम्हारा भाई जीवित होगा क्योंकि यह नारायण है, नारायणका असमयमें मरण नहीं होता ॥२५॥ तदनन्तर विषादसे भरे सब विद्याधर राजा उपायके चिन्तनमें तत्पर हो मनमें इस प्रकार विचार करने लगे कि यह दिव्य शक्ति औषधियोंके द्वारा दूर नहीं की जा सकती और सूर्योदय होनेपर लक्ष्मण बड़ी कठिनाईसे जीवित रह सकेंगे अर्थात् सूर्योदयके पूर्व इसका प्रतीकार नहीं किया गया तो जीवित रहना कठिन हो जायेगा ॥२६-२७॥

तदनन्तर किंकरोंने आधे निमेषमें ही शिररहित धड़ आदिको हटाकर उस युद्धभूमिको शुद्ध किया और वहाँ कपड़ेके ऊँचे-ऊँचे डेरे-कनातें तथा मण्डप आदि खड़े कर दिये ॥२८॥

१. सूर्य । २. दृश्य म. ।

सप्तकक्ष्यादृशसंपन्ना कृतदिव्ययनिर्गमा^२ । बहिः कवचित्तैर्योधैर्गुप्ता कामुकधारिणिः ॥२९॥
 प्रथमे गोपुरे नीलश्रावपाणिः प्रतिष्ठितः । द्वितीये तु नलस्तस्थौ गदाहस्तो घनोपमः ॥३०॥
 विभीषणस्तृतीये तु शूलपाणिमहामनाः । सङ्ख्यात्यचित्ररत्नांशुरीशानवदशोमत ॥३१॥
 संनद्धबद्धतूणीरस्तुरीये कुमुदः स्थितः । सुषेणः पञ्चमे ज्ञेयः कुन्तहस्तः प्रतापवान् ॥३२॥
 सुपीवरभुजो वीरः सुग्रीवः स्वयमेव च । रराज भिण्डिमालेन पष्ठे वज्रधरोपमः ॥३३॥
 प्रदेशे सप्तमे राजमहारिपुबलान्तकः । मण्डलाग्रं समाकृष्य स्वयं भामण्डलः स्थितः ॥३४॥
 पूर्वद्वारेण संचारे शरभः शरमध्वजः । रराज पश्चिमे द्वारे कुमारो जाम्बवो यथा ॥३५॥
 प्रदेशमौत्तरद्वारं व्याप्यामाल्यौघसंकुलम् । स्थितश्चन्द्रमरीचिश्च बालिपुत्रो महाबलः ॥३६॥
 एवं विरचिता क्षोणी खेचरेशैः प्रयत्निभिः । रराज द्यौरिवात्यर्थं निर्मलैरुडुमण्डलैः ॥३७॥
 यावन्तः केचिदन्ये तु समरादनिवर्त्तिनः । ते स्थिता दक्षिणामाशां व्याप्य वानरकेतवः ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं प्रयत्नाः कृतयोग्यरक्षाः संदेहिनो लक्ष्मणजीवयोगे ।
 सविस्मयाः सोरुशुचः सम्मानाः स्थिताः समस्ता गगनायनेशाः ॥३९॥
 न तन्नरा नो ययवो न नागा न चापि देवा विनिवारयन्ति ।
 यदात्मना संजनितस्य लभ्य-फलं नृणां कर्मरवेः प्रकाशम् ॥४०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पञ्चपुराणे शक्तिभेदरामविलापाभिधानं नाम त्रिषष्टितमं पर्व ॥६३॥

उस भूमिको सात चौकियोंसे युक्त किया, दिशाओंमें आवागमन बन्द किया और कवच तथा धनुषको धारण करनेवाले योद्धाओंमें बाहर खड़े रह उसकी रक्षा की ॥२९॥ पहले गोपुरपर धनुष हाथमें लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुरमें गदा हाथमें धारण करनेवाला मेघतुल्य नल खड़ा हुआ, तीसरे गोपुरमें हाथमें शूल धारण करनेवाला उदारचेता विभीषण खड़ा हुआ । वहाँ जिसकी मालाओंमें लगे नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणें सब ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण ऐशानेन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३०-३१॥ कवच और तरकसको धारण करनेवाला कुमुद चौथे गोपुरपर खड़ा हुआ । पांचवें गोपुरमें भाला हाथमें लिये प्रतापी सुषेण खड़ा हुआ ॥३२॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल थीं और भिण्डिमाल नामक शस्त्रसे इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुग्रीव स्वयं छठवें गोपुरमें सुशोभित हो रहा था । तथा सातवें गोपुरमें बड़े-बड़े शत्रुराजाओंकी सेनाको मौतके घाट उतारनेवाला भामण्डल स्वयं तलवार खींचकर खड़ा था ॥३३-३४॥ पूर्व द्वारके मार्गमें शरभ चिह्नसे चिह्नित ध्वजाको धारण करनेवाला शरभ पहरा दे रहा था, पश्चिम द्वारमें जाम्बव कुमार सुशोभित हो रहा था और मन्त्रिसमूहसे युक्त उत्तर द्वारको घेरकर चन्द्ररश्मि नामका बालिका महाबलवान् पुत्र खड़ा हुआ था ॥३५-३६॥ इस प्रकार प्रयत्नशील विद्याधर राजाओंके द्वारा रची हुई वह भूमि, निर्मल नक्षत्रोंके समूहसे आकाशके समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥३७॥ इनके सिवाय युद्धसे नहीं लौटनेवाले जो अन्य वानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशाको व्याप्त कर खड़े हो गये ॥३८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने इस प्रकार प्रयत्न कर योग्य रक्षा की थी, जिन्हें लक्ष्मणके जीवित होनेमें सन्देह था, जो आश्चर्यसे युक्त थे, बहुत भारी शोकसे सहित थे एवं मानी थे ऐसे सब विद्याधर राजा यथास्थान खड़े हो गये ॥३९॥ अपने ही द्वारा अर्जित कर्मरूपी सूर्यके प्रकाशस्वरूप जो फल मनुष्योंको प्राप्त होनेवाला है उसे न मनुष्य दूर कर सकते हैं, न छोड़ें, न हाथी, और न देव भी ॥४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पञ्चपुराणमें शक्तिभेद एवं रामविलापका वर्णन करनेवाला त्रिसप्ततौ पर्व समाप्त हुआ ॥६३॥

चतुःषष्टितमं पर्व

नियतं मरणं ज्ञात्वा लक्ष्मणस्य दशाननः । पुत्रभ्रातृवधं बुद्धौ चकारात्यन्तदुःखितः ॥१॥
 हा भ्रातः परमोदार ममात्यन्तहितोद्यतः । कथमेतामवाप्नोषि बन्धवस्थामसंगताम् ॥२॥
 हा पुत्रौ सुमहावीर्यौ भुजाविध दृढौ मम । विधेर्नियोगतः प्राप्तौ भवन्तौ बन्धनं नवम् ॥३॥
 किं करिष्यति वः शत्रुरित्याकुलितमानसः । न वेद्मि दुरितात्माहं विरसं वा करिष्यति ॥४॥
 भवद्भिरुत्तमैः प्रीतैर्बन्धदुःखं समागतैः । बाध्येऽहं नितरां कष्टं किमिदं मम वर्त्तते ॥५॥
 एवं गजेन्द्रवद्धनिजयूथमहागजः । अप्रकाशं परं शोकमसेवत स संततम् ॥६॥
 शक्त्या हतं गतं भूमिं श्रुत्वा लक्ष्मीधरं परम् । संप्राप्ता जानकी शोकमकरोत्परिदेवनम् ॥७॥
 हा मद्र लक्ष्मण प्राष्टस्त्वमवस्थामिमाम् हताम् । कृते मे मन्दभाग्याया विनीत गुणभूषण ॥८॥
 ईदृक्षमपि वाल्म्यामि भवन्तमहमक्षितुम् । विमुक्ता हतदैवेन न लभे पापकारिणी ॥९॥
 सवन्तं तादृशं वीरं धृता पापेन शत्रुणा । क मे कृतो न संदेहः प्रवीरे मरणं प्रति ॥१०॥
 वियुक्तो बन्धुभिः भ्रातृरिष्टे संसक्तमानसः । अवस्थामागतोऽस्येतां कृच्छ्रादुत्तीर्य सागरम् ॥११॥
 अपि नाम पुनः क्रीडाकोविदं विनयान्वितम् । पश्येयं चारुवाक्यं त्वा परमाद्भुतकारिणम् ॥१२॥

अथानन्तर रावण लक्ष्मणका मरण निश्चित जान अत्यन्त दुखी होता हुआ मनमें पुत्रों और भाईके बधका विचार करने लगा । भावार्थ—रावणको यह निश्चय हो गया कि शक्तिके प्रहारसे लक्ष्मण अवश्य मर गया होगा और उसके प्रतिकारस्वरूप रामपक्षके लोगोंने कैद किये हुए इन्द्रजित् तथा मेघवाहन इन दो पुत्रों और कुम्भकर्ण भाईको अवश्य मार डाला होगा । इस विचारसे वह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ ॥१॥ वह विलाप करने लगा कि हाय भाई ! तू अत्यन्त उदार था और मेरा हित करनेमें सदा उद्यत रहता था सो इस अयुक्त बन्धनकी अवस्थाको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥२॥ हाय पुत्रो ! तुम तो महाबलवान् और मेरी भुजाओंके समान दृढ़ थे । कर्मके नियोगसे ही तुम इस नूतन बन्धनको प्राप्त हुए हो ॥३॥ शत्रु तुम लोगोंका क्या करेगा ? यह सोचकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है । मैं पापी शत्रुके कर्तव्यको नहीं जानता हूँ अथवा निश्चित ही है कि वह अनिष्ट ही करेगा अर्थात् तुम्हें मारेगा ही ॥४॥ आप-जैसे उत्तम, प्रीतिके पात्र पुरुष बन्धनके दुःखको प्राप्त हुए हैं इसलिए मैं अत्यधिक पीड़ाको प्राप्त हो रहा हूँ । हाय, यह कष्ट मुझे क्यों रहा है ? ॥५॥ इस प्रकार जिसके यूथ—झुण्डका महागज पकड़ लिया गया है ऐसे अन्य गजराजकी तरह वह रावण निरन्तर अप्रकट रूपसे मन ही मन शोकका अनुभव करने लगा ॥६॥

तदनन्तर जब सीताने सुना कि लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो पृथिवीपर गिर पड़े हैं तब वह शोकको प्राप्त हो विलाप करने लगी ॥७॥ वह कहने लगी कि हाय भाई लक्ष्मण ! हाय विनीत ! हाय गुण रूपी आभूषणसे सहित ! तुम मुझ अभागिनीके लिए इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥८॥ यद्यपि मैं इस तरह संकटमें पड़ी हुई भी तुम्हारा दर्शन करना चाहती हूँ तथापि मैं अभागिनी पापिनी आपका दर्शन नहीं पा रही हूँ ॥९॥ आप-जैसे वीरको मारते हुए पापी शत्रुने किस वीरके मारनेका सन्देह मुझे उत्पन्न नहीं किया है ? अर्थात् जब उसने आप-जैसे वीरको मार डाला है तब वह प्रत्येक वीरको मार सकता है ॥१०॥ तुम भाईका भला करनेमें चिन्ता लगा पहले बन्धुजनोंसे बिछोहको प्राप्त हुए और अब बड़ी कठिनाईसे समुद्रको पार कर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥११॥ क्या मैं क्रीड़ा करनेमें निपुण विनयी, सुन्दर वचन बोलनेवाले एवं परम

कुर्वन्तु सर्वथा देवास्तव जीवितपालनम् । विशल्यतां द्रुतं गच्छ सर्वलोकमनोहर ॥१३॥
 एवं विलापिनी कृच्छ्राच्छोकिनी जनकात्मजा । भावप्रीतिभिरानीता खेचरीभिः प्रसान्त्वनम् ॥१४॥
 ज्ञायते देवि नाद्यापि निश्चयो देवरस्य ते । अतो न वर्तते कर्तुमेतस्मिन् परिदेवनम् ॥१५॥
 भव धीरा प्रवीराणां भवत्येवेदृशी गतिः । भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्रं हि जगतीहितम् ॥१६॥
 इति विद्याधरीवाक्यात्किञ्चित्साऽभूदनाकुला । शृण्विदानीं यदेतस्मिज्जातं लक्ष्मणपर्वणि ॥१७॥
 प्राप्तो दूष्यगृहद्वारं पुरुषश्चारुदर्शनः । प्रमामण्डलवीरेण प्रविशन्निति नोदिता ॥१८॥
 कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि किमर्थं वा विविक्षसि । तिष्ठ तिष्ठ^१ समाचक्ष्व नात्राविदितसंगमः ॥१९॥
 सोऽवोचदद्य मे मासः साप्रः प्राप्तस्य वर्तते । पशं समाश्रयामीति प्रस्तावो^२ न स्वलभ्यत ॥२०॥
 अधुना दर्शये शीघ्रं जीवन्तं यदि लक्ष्मणम् । द्रष्टुं भवति वाञ्छा वस्तत्रोपायं वदाम्यहम् ॥२१॥
 इत्युक्ते परितुष्टेन भामण्डलमहीभृता । दत्त्वा प्रतिनिधिं द्वारे नीतोऽसौ पद्मगोचरम् ॥२२॥
 संप्रयुज्य प्रणामं च स जगाद महादरः । मा^३ खिन्त्वास्त्वं महाराज कुमारो जावति ध्रुवम् ॥२३॥
 सुप्रभा नाम मे माता जनकः शशिमण्डलः । देवगीते पुरेऽहं च चन्द्रप्रतिमसंज्ञकः ॥२४॥
 जातुचिद्विचरन् व्योम्नि वेलाध्यक्षस्य सूनुना । सहस्रविजयाख्येन बैरिगाऽहं निरीक्षितः ॥२५॥
 ततो मैथुनिकावैरं स्मृत्वा क्रोधं समीयुषः । तस्य जातं मया सादृ^४ रणं^५ सुभटदारुणम् ॥२६॥

आश्चर्यके कार्य करनेवाले तुम्हें फिर भी देख सकूंगी ? ॥१२॥ देव सब प्रकारसे तुम्हारे जीवनक-
 रक्षा करें और सब लोगोंके मनकी हरण करनेवाले तुम शीघ्र ही शल्यरहित अवस्थाको प्राप्त
 होओ ॥१३॥ इस प्रकार विलाप करनेवाली शोकवती सीताको भावसे स्नेह रखनेवाली विद्याधरियोंने
 सान्त्वना प्राप्त करायी ॥१४॥ उन्होंने समझाते हुए कहा कि हे देवि ! तुम्हारे देवरका अभी तक
 निश्चय नहीं जान पड़ा है इसलिए इसके विषयमें विलाप करना उचित नहीं है ॥१५॥ धैर्य धारण
 करो, बीरोको तो ऐसी गति होती ही है । जो हो चुकता है उसके प्रतीकार होते हैं यथार्थमें
 पृथिवीकी चेष्टा विचित्र है ॥१६॥ इस प्रकार विद्याधरियोंके कहनेसे सीता कुछ निराकुल हुई ।
 गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इस लक्ष्मण पर्वमें जो कुछ हुआ उसे श्रवण कर ॥१७॥

अथानन्तर इसी बीचमें एक सुन्दर मनुष्य डेरके द्वारपर आकर भीतर प्रवेश करने लगा
 तब भामण्डलने उसे रोकते हुए कहा कि तू कौन है ? किसका आदमो है ? कहाँसे आया है ?
 और किस लिए प्रवेश करना चाहता है ? खड़ा रह, खड़ा रह, सब बात ठीक-ठीक बता, यहाँ
 अपरिचित लोगोंका आगमन निषिद्ध है ॥१८-१९॥ इसके उत्तरमें उस पुरुषने कहा कि मुझे यहाँ
 आये कुछ अधिक एक मास हो गया । मैं रामका दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु अब तक अवसर
 ही प्राप्त नहीं हुआ ॥२०॥ इस समय उनका दर्शन करता हूँ । यदि आप लोगोंकी लक्ष्मणकी शीघ्र
 ही जीवित देखनेकी इच्छा है तो मैं आपको इसका उपाय बताता हूँ ॥२१॥ उसके इतना कहते ही
 राजा भामण्डल बहुत सन्तुष्ट हुआ । वह द्वार पर अपना प्रतिनिधि बैठाकर उसे रामके समीप ले
 गया ॥२२॥ उस पुरुषने बड़े आदरसे रामको प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! खेद मत कीजिए,
 कुमार निश्चित ही जीवित हैं ॥२३॥ मेरी माताका नाम सुप्रभा तथा पिताका नाम चन्द्रमण्डल
 है । मैं देवगीतपुरका रहनेवाला हूँ तथा चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है ॥२४॥ किसी समय मैं आकाशमें
 धूम रहा था उसी समय राजा वेलाध्यक्षके पुत्र सहस्रविजयने जो कि हमारा शत्रु था मुझे देख
 लिया ॥२५॥ तदनन्तर रत्नी सम्बन्धी वैरका स्मरण कर वह क्रोधको प्राप्त हो गया जिससे उसका

१. दुःखग्रहद्वारं म. । २. विविक्षसि म. । ३. समन्वश्च (?) म. । ४. ननु लभ्यते म. । त तु लभ्यते ।
 ५. विद्यास्त्वं ख. । ६. रणे म. ।

ततोऽहं चण्डरचया शक्त्या तेन समाहतः । खान्महेन्द्रोदयोद्याने नक्तं निपतितो बने ॥२७॥
 पतन्तं मां समालोक्य तारकाबिम्बसन्निभम् । साकेताधिपतिस्तर्की^१ भरतः समदौकृत ॥२८॥
 शक्तिशलियतवक्षाश्च सिक्तश्चन्दनवारिणा । तेनाहं करुणात्तेन साधुना जीवदायिना ॥२९॥
 शक्तिः पलायिता काऽपि^२ जातं रूपं च पूर्वकम् । अधिकं च सुखं जातं तेन मे गन्धवारिणा ॥३०॥
 तेन मे पुरुषेन्द्रेण भरतेन महात्मना । जन्मान्तरमिदं दत्तं फलं यस्य त्वदीक्षणम्^३ ॥३१॥
 अत्रान्तरे स संभ्रान्तः सुरूपो रघुनन्दनः । प्रच्छ^४ भद्रं जानासि तद्गन्धोदकसंभवम् ॥३२॥
 सोऽवोऽहमेव जानामि श्रूयतां वेदयामि ते । पृष्टो हि स मया राजा तेन चेति निवेदितम् ॥३३॥
 यथा किल समस्तोऽयं देशः पुरसमन्वितः । अभिभूतो महारोगैरासीदप्रतिकारकैः ॥३४॥
 उरोघातमहादाहज्वरलालापस्त्रिधाः । सर्वशूलारुचिच्छर्दिश्वयथुस्फोटकादयः ॥३५॥
 क्रुद्धा इव परं तीव्राः सर्वे रोगास्तदाऽभवन् । यैरत्र विषये प्राणी नैकोऽप्यस्ति न पातितः ॥३६॥
 केवलो द्रोणमेघाह्वः स्यामात्यपशुबान्धवः । नृपो देव इवारोगः श्रुतो निजपुरे मया ॥३७॥
 आह्वाय स मयाऽवाचि माम् त्वं नीरुजो यथा । कालक्षेत्रविनिर्मुक्तं तथा मां कर्तुमर्हसि ॥३८॥
 ततः सौरभसंरुद्धदूरदिग्बलथं जलम् । तेन सिक्तोऽहमानाख्य प्राप्तश्चोह्लाघतां पराम् ॥३९॥

मेरे साथ योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाला—कठिन युद्ध हुआ ॥२६॥ तत्पश्चात् उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्तिसे मारा जिससे मैं रात्रिके समय आकाशसे अयोध्याके महेन्द्रोदय नामक सघन वनमें गिरा ॥२७॥ आकाशसे पड़ते हुए ताराबिम्बके समान मुझे देख अयोध्याके राजा भरत तर्क करते हुए मेरे समीप आये ॥२८॥ शक्ति लगनेसे जिसका वक्षःस्थल शल्ययुक्त था ऐसे मुझको देख राजा भरत दयासे दुखी हो उठे । तदनन्तर जीवन दान देनेवाले उन सत्पुरुषने मुझे चन्दनके जलसे सींचा ॥२९॥ उसी समय शक्ति कहीं भाग गयी और मेरा रूप पहलेके समान हो गया तथा उस सुगन्धित जलसे मुझे अत्यधिक सुख उत्पन्न हुआ ॥३०॥ पुरुषोंमें इन्द्रके समान श्रेष्ठ उन महात्मा भरतने मुझे यह दूसरा जन्म दिया है जिसका कि फल आपका दर्शन करना है । भावार्थ—शक्ति निकालकर उन्होंने मुझे जीवित किया उसीके फलस्वरूप आपके दर्शन पा सका हूँ ॥३१॥ इसी बीचमें परम हर्षको प्राप्त हुए, सुन्दर रूपके धारक रामने उससे पूछा कि हे भद्र ! उस गन्धोदककी उत्पत्ति भी जानते हो ? ॥३२॥ इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे देव ! जानता हूँ सुनिए, मैं आपके लिए बताता हूँ । मैंने राजा भरतसे पूछा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा था ॥३३॥ कि नगर-ग्रामादिसे सहित यह देश एक बार जिनका प्रतिकार नहीं किया जा सकता था ऐसे अनेक महारोगोंसे आक्रान्त हो गया ॥३४॥ उरोघात—जिसमें वक्षःस्थल-पसली आदिमें दर्द होने लगता है, महादाहज्वर—जिसमें महादाह उत्पन्न होता है, लालापस्त्रिधा—जिसमें मुँहसे लार बहने लगती है, सर्वशूल—जिसमें सर्वांगमें पीड़ा होती है, अरुचि—जिसमें भोजनादिकी रुचि नष्ट हो जाती है, छर्दि—जिसमें वमन होने लगते हैं, श्वयथु—जिसमें शरीर-पर सूजन आ जाता है, और स्फोटक—जिसमें शरीरपर फोड़े निकल आते हैं, इत्यादि समस्त रोग उस समय मानो परम क्रुद्ध हो रहे थे । इस देशमें ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था जो कि इन रोगों द्वारा गिराया न गया हो ॥३५-३६॥ केवल द्रोणमेघ नामका राजा मन्त्रियों, पशुओं तथा बन्धु आदि परिवारके साथ अपने नगरमें देवके समान नीरोग बचा था ऐसा मेरे सुननेमें आया ॥३७॥ मैंने उसे बुलाकर कहा कि हे माम ! जिस प्रकार तुम नीरोग हो उसी प्रकार मुझे भी अविलम्ब नीरोग करनेके योग्य हो ॥३८॥ तदनन्तर उसने बुलाकर अपनी सुगन्धिसे दूर-दूर तकके दिङ्मण्डलको व्याप्त करनेवाला जल मुझपर सींचा और मुझे परम नीरोगता प्राप्त करा

१. तार्की म. । २. कापि म. । ३. त्वदीक्षणे म. । ४. प्रयच्छ म. ।

न केवलमहं तेन वारिणाऽन्तःपुरं मम । पुरं देशश्च संजातं सर्वरोगविवर्जितम् ॥४०॥
 कर्ता रोगसहस्राणां वायुरत्यन्तदुःसहः । प्रणष्टो वारिणा तेन मर्मसंभेदकोविदः ॥४१॥
 मयैवं सततं पृष्टो मामेतदुदकं कुतः । येनाऽऽश्चर्यमिदं शीघ्रं कृतं रोगविनाशनम् ॥४२॥
 सोऽव्योचच्छ्रुत्वा राजन्नस्ति मे गुणशालिनी । विशल्या नाम दुहिता सर्वविज्ञानकोविदा ॥४३॥
 यस्यां गर्भप्रपन्नायामनेकव्याधिर्षोडिता । देवी समोपकाराऽभूत्सर्वरोगविवर्जिता ॥४४॥
 जिनेन्द्रशासनासक्ता नित्यं पूजासमुद्यता । शेषेव सर्वबन्धूनां पूजनीया मनोहरा ॥४५॥
 स्नानोदकमिदं तस्या महासौरभ्यसंगतम् । कुरुते सर्वरोगाणां तत्क्षणेन विनाशनम् ॥४६॥
 तदस्तदहमाकर्ण्य द्रोणमेघस्य सापितम् । परं विस्मयमापन्नैः संपदा तामपूजयम् ॥४७॥
 नगरीतश्च निष्क्रम्य नाम्ना सत्त्वहितं भुजिम् । गणेश्वरं समप्राक्षं प्रणम्य चिनयान्वितः ॥४८॥
 ततः खेचरपृष्टोऽसौ समाख्यासीन्महायतिः । वैशलयं चरितं दिव्यं चतुर्जानी सुवत्सलः ॥४९॥
 विदेहे पौण्डरीकाख्ये विषये स्वर्गसंनिभे । चक्री त्रिभुवनानन्दः पुरे चैक्रधरोऽभवत् ॥५०॥
 नाम्नाऽनङ्गशरा तस्य तनया गुणमण्डना । अपूर्वा कर्मणां सृष्टिर्लिवण्यप्लवकारिणी ॥५१॥
 तां प्रतिष्ठपुराधीशः सामन्तोऽस्य पुनर्वसुः । दुर्धाराहरदारोप्य विमानं स्मरचोदितः ॥५२॥
 कुन्दाच्चक्रधरादाज्ञां संप्राप्यामुष्य किङ्करैः । चिरं कृतवतो युद्धं विमानं चूर्णितं भृशम् ॥५३॥
 चूर्णमानविमानेन मुक्ता तेनाकुलात्मना । पपात नमसः कान्तिरिव चन्द्रस्य शारदी ॥५४॥

दी ॥३९॥ उस जलसे न केवल मैं ही नीरोग हुआ किन्तु मेरा अन्तःपुर, नगर और समस्त देश रोगरहित हो गया ॥४०॥ हजारों रोगोंको उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त दुःसह, एवं मर्मघात करनेमें निपुण दूषित वायु ही उस जलसे नष्ट हो गयी ॥४१॥ मैंने राजा द्रोणमेघसे बार-बार पूछा कि हे माम ! यह जल कहाँसे प्राप्त हुआ है जिसने शीघ्र ही रोगोंको नष्ट करनेवाला यह आश्चर्य उत्पन्न किया है ॥४२॥ इसके उत्तरमें द्रोणमेघने कहा कि हे राजन् ! सुनिए, मेरी गुणोंसे सुशो-भित तथा सब प्रकारके विज्ञानमें निपुण विशल्या नामकी पुत्री है ॥४३॥ जिसके गर्भमें आते ही अनेक रोगोंसे पीड़ित मेरी स्त्री सर्व रोगोंसे रहित हो मेरा उपकार करनेवाली हुई थी ॥४४॥ वह जिन-शासनमें आसक्त है, निरन्तर पूजा करनेमें तत्पर रहती है, मनोहारिणी है और शेषाक्षतके समान सर्व बन्धु जनोंकी पूज्या है ॥४५॥ यह महासुगन्धिसे सहित उसीका स्नान-जल है जो कि क्षण-भरमें सब रोगोंको नाश कर देता है ॥४६॥ तदनन्तर द्रोणमेघके वह वचन सुन मैं परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और बड़े वैभवसे मैंने उस पुत्रीकी पूजा की ॥४७॥ नगरीसे निकलकर जब वापस आ रहा था तब सत्यहित नामक मुनिराज जो कि मुनिसंघके स्वामी थे वे मिले । मैंने विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे विशल्याका चरित्र पूछा ॥४८॥ राजा भरत विद्याधरसे कहते हैं कि हे विद्याधर ! तदनन्तर मेरे पूछनेपर चार ज्ञानके धारी, महास्नेही मुनिराज विशल्याका दिव्य चरित्र इस प्रकार कहने लगे कि—॥४९॥

विदेह क्षेत्रमें स्वर्गके समान पुण्डरीक नामक देश है । उसके चक्रधर नामक नगरमें त्रिभुवनानन्द नामका चक्रवर्ती रहता था ॥५०॥ उसकी अर्नगशरा नामकी एक कन्या थी जो गुण-रूपी आभूषणोंसे सहित थी, कर्मोंकी अपूर्व सृष्टि थी और सौन्दर्यका प्रवाह बहानेवाली थी ॥५१॥ चक्रवर्ती त्रिभुवनानन्दका एक पुनर्वसु नामका सामन्त था जो कि प्रतिष्ठपुर नगरका स्वामी था । कामसे प्रेरित हो उस दुर्बुद्धिने विमानपर चढ़ाकर उस कन्याका अपहरण किया ॥५२॥ क्रोधसे भरे चक्रवर्तीकी आज्ञा पाकर सेवकोंने उसका पीछा किया और बहुत काल तक युद्ध कर उसके विमानको अत्यधिक चूर कर डाला ॥५३॥ तदनन्तर जिसका विमान चूर-चूर किया जा रहा था

१. मापन्ता: म. । २. विजये म., ज. । ३. चक्रधरोऽभवत् म. । ४. गुणमण्डला म. ।

विद्यया पर्णलध्व्याऽसौ पुनर्वसुनियुक्तया । अटवीमागता स्वैरं नाम्ना श्वापदरौरवाम् ॥५५॥
 महाप्रतिभयाकारं महाविद्याभूतामपि । दुःप्रवेशां कृतध्वान्तां महाविटपसंकटैः ॥५६॥
 नानावल्लीसमाश्लिष्टविधोत्तुङ्गपादपाम् । पल्लवोद्भासितैर्मुक्तां भीतैरिव रवेः करैः ॥५७॥
 तरक्षुशरमङ्गीपिण्याग्रसिंहादिसेविताम् । उच्चावचखरक्षोणीं महाविध्वरसंगताम् ॥५८॥
 अरण्यानीं गता सेर्यं महाभयसमागता । कान्ता शिखेव दीपस्य सीदति स्म चराकिका ॥५९॥
 नदीतीरं समागम्य कृत्वा दिगवलोकनम् । महाखेदसमायुक्ता स्मृतबन्धुः स्म रोदिति ॥६०॥
 तेनाहं लोकपालेन देवेन्द्रप्रतिभासिता । सुचक्रवर्तिना जाता महादुर्लभितात्मिका ॥६१॥
 विधिना वारुणेनेमामवस्थामनुसारिता । किं करोमि परिप्राप्ता वनं दुःखनिरोक्षणम् ॥६२॥
 हा मात सकलं लोकं त्वं पालयसि विक्रमी । कथं मामपरित्राणां विधिने नानुकम्पसे ॥६३॥
 हा मातस्तादृशं दुःखं कुक्षियारणपूर्वकम् । निषद्य सांप्रतं कस्मात् कुरुषे नानुकम्पनम् ॥६४॥
 हो मेऽन्तःकरणच्छायपरिवर्गगुणोत्तम । अमुक्तां क्षणमप्येकं कथं त्यजसि सांप्रतम् ॥६५॥
 जातमात्रा मृता नाऽहं कस्माद्दुःखस्य भूमिका । अथवा न विना पुण्यैरभिवाञ्छितमाप्न्यते ॥६६॥
 किं करोमि क गच्छामि दुःखिनी संश्रयामि कम् । कं पश्यामि महाऽरण्ये कथं तिष्ठामि पापिनी ॥६७॥
 स्वप्नः किमेष संप्राप्तं जन्मेदं नरके मया । सैव किं स्यादहं कोऽयं प्रकारः सहस्रोद्गतः ॥६८॥
 एवमादि विरं कृत्वा विप्रलार्पं सुविह्वला । पशूनामपि तीव्राणां मनोद्वचकारणम् ॥६९॥

ऐसे उस पुनर्वसुने कन्याको विमानसे छोड़ दिया जिससे वह चन्द्रमाकी शरद्कालीन कान्तिके समान आकाशसे नीचे गिरी ॥५४॥ पुनर्वसुके द्वारा नियुक्त की हुई पर्णलध्वी नामक विद्याके सहारे स्वेच्छासे उतरती हुई वह श्वापद नामक अटवीमें आयी ॥५५॥

तदनन्तर जो बड़े-बड़े विद्याधरोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाली थी, जिसमें प्रवेश करना कठिन था, बड़े-बड़े वृक्षोंकी सघन झाड़ियोंसे जिसमें अन्धकार फैल रहा था, जहाँ विविध प्रकारके ऊँचे वृक्ष नाना लताओंसे आलिंगित थे, पल्लवोंकी सघन छायासे दूर की हुई सूर्यके किरणोंने भयभीत होकर ही मानो जिसे छोड़ दिया था, जो भेड़िये, शरभ, चीते, तेंदुए तथा सिंहों आदिसे सेवित थी, जहाँकी कठोर भूमि ऊँची-नीची थी, और जो बड़े-बड़े बिलोंसे सहित थी ऐसी उस महाअटवीमें जाकर महाभयको प्राप्त हुई बेचारी अनंगसेना दीपककी शिखाके समान कांपने लगी ॥५६-५९॥ नदीके तीर आकर और सब दिशाओंकी ओर देख महाखेदसे युक्त होती हुई वह कुटुम्बीजनोंको चितार-चितारकर रोने लगी ॥६०॥ वह कहती थी कि हाय मैं लोककी रक्षा करनेवाले, इन्द्रके समान सुशोभित उन चक्रवर्ती पितासे उत्पन्न हुई और महास्नेहसे लालित हुई । आज प्रतिफूल देवसे—भाग्यकी विपरीततासे इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ । हाय, जिसका देखना भी कठिन है ऐसे इस वनमें आ पड़ी हूँ क्या करूँ ? ॥६१-६२॥ हाय पिता ! तुम तो महापराक्रमी, सब लोककी रक्षा करते हो फिर वनमें असहाय पड़ी हुई मुझपर दया क्यों नहीं करते हो ? ॥६३॥ हाय माता ! गर्भ धारणका वैसा दुःख सहकर इस समय दया क्यों नहीं कर रही हो ? ॥६४॥ हाय मेरे अन्तःकरणके समान प्रवृत्ति करनेवाले तथा उत्तम गुणोंसे युक्त परिजन ! तुमने तो मुझे एक क्षणके लिए भी कभी नहीं छोड़ा फिर इस समय क्यों छोड़ रहे हो ? ॥६५॥ मैं दुखिया क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसका आश्रय लूँ ? किसे देखूँ और इस महावनमें मैं पापिनी कैसे रहूँ ? ॥६६॥ क्या यह स्वप्न है ? अथवा नरकमें मेरा जन्म हुआ है ? क्या मैं वही हूँ अथवा यह कौन-सी दशा सहसा प्रकट हुई है ? ॥६७-६८॥ इस प्रकार चिरकाल तक विलापकर वह अत्यन्त विह्वल हो गयी । उसका वह विलाप क्रूर पशुओंके भी मनको पिघला देनेवाला

१. हा मातः करणच्छायपरिवर्गं गुणोत्तमाम् म. ।

क्षुत्तृष्णापरिदग्धाङ्गा शोकसागरवर्त्तिनी । फलपर्णादिभिर्वृत्तिमकरोदीनमानसा ॥७०॥
 अरण्याम्बुजखण्डानां शोभासर्वस्वमर्दनः । हिमकालस्तथा निन्ये ध्रुवं कर्मानुभावतः ॥७१॥
 श्वसत्पशुगणस्तीव्रः शोषितानेकपादपः । सोढस्तथैव रुक्षाङ्गो ग्रीष्मसूर्यातपस्तथा ॥७२॥
 स्फुरच्चण्डाचिरञ्ज्योतिः शीतधाराम्भकारितः । वनकालोऽपि निस्तोर्णः प्रवृत्तौवो यथा तथा ॥७३॥
 निश्छाये स्फुटितं क्षामं शीर्णकेशं मलावृतम् । वर्षोपहतचित्रामं स्थितं तस्याः शरीरकम् ॥७४॥
 सूर्यालोकहतच्छाया क्षीणेव शशिनः कला । जाता तन्वी तनुस्तस्या लावण्यपरिवर्जिता ॥७५॥
 कपित्थवनमानघ्नं फलैः पाकामिधूसरैः । श्रित्वा तातमनुध्याय करुणं सा स्म रोदिति ॥७६॥
 जाता चक्रधरेणाऽहं प्राप्तावस्थामिमाम् वने । ध्रुवं कर्मानुभावेन सुपापेनान्यजन्मनः ॥७७॥
 इत्यश्रुदुर्दिनोभूतयदना वीक्षितक्षितिः । फलान्यादाय सा शान्ता पतितानि स्वपाकतः ॥७८॥
 उपवासैः कृशीभूता परं वष्टाष्टमादिभिः । अम्बुना वाकरोद् बाला पारणामेकवेलिकाम् ॥७९॥
 शयनीयगतैः पुष्पैर्था स्वकेशच्युतैरपि । अग्रहीत् खेदमेवासौ स्थण्डिलेऽशेत केवले ॥८०॥
 पितुः संगीतकं श्रुत्वा या प्रबोधमसेवत । सेर्यं शिवादिनिर्मुक्तैरधुना मीषणैः स्वनैः ॥८१॥
 एवं वर्षसहस्राणि त्रीणि दुःखमहासहा । अकरोत्सा तपो बाह्यं प्रासुकाहारपारणा ॥८२॥
 ततो निर्वेदमापन्ना त्यक्त्वाहारं चतुर्विधम् । निराशतां गता धीरा श्रिता सल्लेखनामसौ ॥८३॥

था ॥६९॥ तदनन्तर भूख-प्यासकी बाधासे जिसका शरीर झुलस गया था, जो निरन्तर शोकरूपी सागरमें निमग्न रहती थी और जिसका मन अत्यन्त दीन हो गया था ऐसी अनंगसेना फल तथा पत्रोंसे निर्वाह करने लगी ॥७०॥ वनके कमलसमूहकी शोभाका सर्वस्व हरनेवाला शीत काल आया सो उसने कर्मोंका फल भोगते हुए व्यतीत किया ॥७१॥ जिसमें पशुओंके समूह साँसें भरते थे, अनेक वृक्ष सूख गये थे, तथा जिससे शरीर अत्यन्त रुक्ष पड़ गया था ऐसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यका आतप उसने उसी प्रकार सहन किया ॥७२॥ जिसमें तीक्ष्ण बिजली कौंध रही थी, शीतल जलधारासे अन्धकार फैल रहा था, और नदियोंके प्रवाह बढ़ रहे थे ऐसा वर्षा काल भी उसने जिस किसी तरह पूर्ण किया ॥७३॥ कान्तिहीन, फटा, दुबला, बिखरे बालोंसे युक्त एवं मलसे आवृत उसका शरीर वर्षासे भीगे चित्रके समान निष्प्रभ हो गया था ॥७४॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी क्षीण कला सूर्यके प्रकाशसे निष्प्रभ हो जाती है उसी प्रकार उसका दुर्बल शरीर लावण्यसे रहित हो गया ॥७५॥ परिपाकके कारण धूसर वर्णसे युक्त फलोंसे झुके हुए कैथाओंके वनमें जाकर वह बार-बार पिताका स्मरण कर रोने लगती थी ॥७६॥ मैं चक्रवर्तीसे उत्पन्न हो वनमें इस दशाको प्राप्त हो रही हूँ सो निश्चित ही जन्मान्तरमें किये हुए पापकर्मके उदयसे मेरी यह दशा हुई है ॥७७॥ इस प्रकार अविरल अश्रुवर्षासे जिसका मुख दुर्दिनके समान हो गया था ऐसी वह अनंगसेना नीची दृष्टिसे पृथिवीकी ओर देख पक जानेके कारण अपने आप गिरे हुए फल लेकर शान्त हो जाती थी ॥७८॥ वेला-तेला आदि उपवासोंसे जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था ऐसी वह बाला जब कभी केवल पानीसे ही पारणा करती थी सो भी एक ही बार ॥७९॥ जो अनंगसेना पहले अपने केशोंसे च्युत हो शय्या पर पड़े फूलोंसे भी खेदको प्राप्त होती थी आज वह मात्र पृथिवीपर शयन करती थी ॥८०॥ जो पहले पिताका संगीत सुन जागती थी वह आज शृगाल आदिके द्वारा छोड़े हुए भयंकर शब्द सुनकर जागती थी ॥८१॥ इस प्रकार महादुःख सहन करती तथा बीच-बीचमें प्रासुक आहारकी पारणा करती हुई उस अनंगसेनाने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया ॥८२॥ तदनन्तर जब वह निराशताको प्राप्त हो गयी तब विरक्त हो उस धीर-वीराने चारों प्रकारका आहार त्यागकर सल्लेखना धारण कर ली ॥८३॥

१. एष श्लोको म. पुस्तके नास्ति । २. श्वेतकेवले । ३. त्यक्त्वाहारं ।

बाह्यं हस्तशताद्भूमिं न गन्तव्यं मयेति च । जग्राह नियमं पूर्वं श्रुतं जैनेन्द्रशासने ॥८४॥
नियमावधितोऽस्तीति षड्रात्रेऽथ तमश्चरः । लब्धिदास इति ख्यातो वन्दित्वा मेरुमात्रजत् ॥८५॥
तामपश्यत्ततो नेतुमारभे तां समुद्यतः । पितुः स्थानं निषिद्धश्च तया सल्लेखनोक्तिः ॥८६॥
लब्धिदामो लघु प्राप्तः सकाशं चक्रवर्त्तिनः । समं तेन समायातस्तमुद्देशमसौ गतः ॥८७॥
अथ तामतिरीद्रेण शोयुनाऽतिस्थवीयसा । भक्ष्यमाणासौ दृष्ट्वा समाधानप्रदोऽभवत् ॥८८॥
प्राप्तः सल्लेखनां क्षीणां संवृत्तामपरामिव । तादृशीं तां सुतां दृष्ट्वा चक्री निर्वेदमागतः ॥८९॥
समं पुत्रतहस्त्राणां द्वाविंशत्या गतस्त्रहः । महावैराग्यसंपन्नः श्रमणत्वमुपागतः ॥९०॥
कन्या त्वर्थं क्षुधात्तेन प्राप्तेनातिस्थवीयसा । भक्षिताऽजगरेणागात्सती सान्त्कुमारताम् ॥९१॥
जानत्याशुपि तया मृत्युं न समुत्सारितः शत्रुः । माभूत्स्वल्पापि पीडाऽस्य काविदित्यनुकम्पया ॥९२॥
उत्सायं खेचरान् संख्ये समस्तांश्च पुनर्वसुः । तदानङ्गशरामिष्टामपश्यन्विरहावनौ ॥९३॥
द्रुमसेनमुनेः पार्श्वं गृहीतं श्रमणव्रतम् । अत्यन्तदुःखितस्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥९४॥
कृत्वा निदानमेतस्याः कृतेऽयं प्राप्तपञ्चतः । सुरो जातश्च्युतश्चायं जातो लक्ष्मणसुन्दरः ॥९५॥
प्रभ्रष्टा सुरलोकाच्च जाताऽनङ्गशराचरी । सुतेयं द्रोणमेघस्य विशल्येति प्रकीर्त्तिता ॥९६॥
सैतस्मिन्नगरे देशे भरते वा महागुणा । पूर्वकर्मानुभावेन संजाताऽत्यन्तमुत्तमा ॥९७॥
परमं स्नानवारीदं तेन तस्या महागुणम् । सोपसर्गं कृतं पूर्वं तया येन महातपः ॥९८॥

उसने जिन-शासनमें पहले जैसा सुन रखा था वैसा नियम ग्रहण किया कि मैं सौ हाथसे बाहरकी भूमिमें नहीं जाऊँगी ॥८४॥

अथानन्तर उसे सल्लेखनाका नियम लिये हुए जब छह रात्रियाँ व्यतीत हो चुकीं तब लब्धिदास नामक एक पुरुष मेरु पर्वतकी वन्दना कर लौट रहा था सो उसने उस कन्याको देखा । तदनन्तर जब लब्धिदास उसे पिताके घर ले जानेके लिए उद्यत हुआ तब उसने यह कहकर मना कर दिया कि मैं सल्लेखना धारण कर चुकी हूँ ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् लब्धिदास शीघ्र ही चक्रवर्तीके पास गया और उसके साथ पुनः उस स्थानपर आया ॥८७॥ जब वह आया तब अत्यन्त भयंकर एक बड़ा मोटा अजगर उसे खा रहा था यह देख उसे समाधान करनेमें तत्पर हुआ ॥८८॥ तदनन्तर जिसने सल्लेखना धारण की थी, और दुर्बलताके कारण जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दूसरी ही हो ऐसी उस पुत्रीको देख चक्रवर्ती वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥८९॥ जिससे उसने सब प्रकारकी इच्छा छोड़ महावैराग्यसे युक्त हो बाईस हजार पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥९०॥ भूखसे पीड़ित होनेके कारण सामने आये हुए उस अत्यन्त स्थूल अजगरके द्वारा खायी हुई वह कन्या मरकर ईशान स्वर्गमें गयी ॥९१॥ यद्यपि वह जानती थी कि इस अजगरसे मेरी मृत्यु होगी तथापि उसने उसे इस दया भावसे कि इसे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हो दूर नहीं हटाया था ॥९२॥

तदनन्तर जब पुनर्वसु युद्धमें समस्त विद्याधरोंको परास्त कर आया तब वह अपनी प्रेमपात्र अनंगशराकी नहीं देख विरहकी भूमिमें पड़ बहुत दुखी हुआ । अन्तमें उसने द्रुमसेन नामक मुनिराजके समीप दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली और अत्यन्त कठिन तप तप कर इसीका निदान करता हुआ मरा जिससे स्वर्गमें देव हुआ और वहाँसे च्युत हो यह अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मण हुआ है ॥९३-९५॥ पहलेकी अनंगशरा देवलोकसे च्युत हो राजा द्रोणमेघकी यह विशल्या नामकी पुत्री हुई है ॥९६॥ महागुणोंको धारण करनेवाली विशल्या इस नगर-देश अथवा भरत क्षेत्रमें पूर्वकर्माके प्रभावसे अत्यन्त उत्तम हुई ॥९७॥ यतश्च उसने पूर्व भवमें उत्सर्ग सहित महातप किया था

१. अजगरेण । २. चाय म. । ३. प्राप्तमरणः ।

अनेन वारिणाऽमुस्मिन्देशेऽयं विषमोऽनिलः । महारोगकरो यातः क्षयं शासितविष्टपः ॥९९॥
 कुतोऽयमीदृशो वायुरिति पृष्टेन भाषितम् । मुनिना मरतायैवं तदा कौतुकयोगिने ॥१००॥
 गजाह्वाननगरादेत्य विन्ध्यो नामा महाधनः । अयोध्यां सार्थवाहेषः स्वरोष्ट्रमहिषादिभिः ॥१०१॥
 मासानेकादशासु^१ त्वन्ने^२गर्ग्यमसौ स्थितः । तस्यैकमहिषस्तीव्ररोगमारणे पीडितः ॥१०२॥
 पुरमध्ये महादुःखं कृत्वा कालं व्रणान्वितः । अकामनिर्जरायोगाद्देवभूयमशिश्रियत् ॥१०३॥
 जातो वायुकुमारोऽसावश्वकेतुर्महाबलः । वाय्वावर्त इति ख्यातो वायुदेवमहेश्वरः ॥१०४॥
 श्रेयस्करपुरस्वामी रसातलगतो महान् । असुरो भासुरः क्रूरो मनोयातक्रियासहः ॥१०५॥
 अज्ञासीत्सावधिज्ञानः प्राप्तपूर्वपरामवम् । सोऽहं महिषकोऽभूवं प्राप्नोऽयोध्यां तदा व्रणो ॥१०६॥
 क्षुत्तृष्णापरिदिग्धाज्ञो महारोगनिपीडितः । रथ्याकर्दमनिर्मग्नस्ताडितो जनसंपदा ॥१०७॥
 कृत्वा मे मस्तके पादं तदाऽयासीज्जनोऽखिलः । पतितस्य विचेष्टस्य निर्दयो विड्मलान्वितम् ॥१०८॥
 अचिरान्निग्रहं घोरं तस्य चेन्न करोम्यहम् । अनर्थकं सुरश्वं मे तदेवं जायते महत् ॥१०९॥
 इति ध्वात्वा पुरेऽमुष्मिन् सदृशे क्रोधपूरितः । प्रावर्त्तयदसौ वायुं नानारोगसमावहम् ॥११०॥
 सोऽयं^३ नीतो विशल्याया वारिणा प्रलयं क्षणात् । भवन्ति हि बलीयांसो बलिनामपि विष्टपे ॥१११॥
 यथा सत्त्वहितेनेदं भरताय निवेदितम् । भरतेनापि मे तद्वन्मया ते पद्म वेदितम् ॥११२॥

इसलिए उसका स्नानजल महागुणोंसे सहित है ॥९८॥ इस देशमें जिसने सब लोगोंपर शासन जमा रखा था तथा जो महारोग उत्पन्न करनेवाली थी ऐसी विषम वायु इस जलसे क्षयको प्राप्त हो गयी है ॥९९॥ 'यह वायु ऐसी क्यों हो गयी?' इस प्रकार पूछनेपर उस समय मुनिराजने कौतूहलको धारण करनेवाले भरतके लिए इस प्रकार कहा कि ॥१००॥

विन्ध्या नामका एक महा धनवान् व्यापारी गधे, ऊँट तथा भैंसे आदि जानवर लदाकर गजपुर नगरसे आया और तुम्हारी उस अयोध्यानगरीमें ग्यारह माह तक रहा। अनेक वर्षोंसे सहित उसका एक भैंसा तीव्र रोगके भारसे पीडित हो नगरके बीच मरा और अकाम निर्जराके योगसे देव हुआ ॥१०१-१०३॥ वह अश्वचिह्नसे चिह्नित महाबलवान् वायुकुमार जातिका देव हुआ। वाय्वावर्त उसका नाम था, वह वायुकुमार देवोंका स्वामी था, श्रेयस्करपुर नगरका स्वामी, रसातलमें निवास करनेवाला देदीप्यमान, क्रूर और इच्छानुसार क्रियाओंको करनेवाला वह बहुत बड़ा भवनवासी देव था ॥१०४-१०५॥

अवधिज्ञानसे सहित होनेके कारण उसने पूर्वभवंमें प्राप्त हुए पराभवको जान लिया। उसे विदित हो गया कि मैं पहले भैंसा था और अयोध्यामें आकर रहा था। उस समय मेरे शरीरपर अनेक घाव थे। भूख-प्यास आदिसे मेरा शरीर लिप्त था, अनेक रोगोंसे पीडित हुआ मैं मार्गकी कीचड़में पड़ा था, लोग मुझे पीटते थे। उस समय मैं गोबर आदि मलसे व्याप्त हुआ निश्चेष्ट पड़ा था और सब लोग मेरे मस्तकपर पैर रखकर जाते थे ॥१०६-१०८॥ अब यदि मैं शीघ्र ही उसका भयंकर निग्रह नहीं करता हूँ—बदला नहीं चुकाता हूँ तो मेरा यह इस प्रकारका बड़प्पनयुक्त देवपर्याय पाना व्यर्थ है ॥१०९॥ इस प्रकार विचारकर उसने क्रोधसे पूरित हो उस देशमें नाना रोगोंको उत्पन्न करनेवाली वायु चलायी ॥११०॥ यह वही देव विशल्याके स्नान-जलके द्वारा क्षण-भरमें विनाशको प्राप्त कराया गया है सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें बलवानोंके लिए भी उनसे अधिक बलवान् होते हैं ॥१११॥ चन्द्रप्रतिम विद्याधर, रामसे कहता है कि यह कथा सत्त्वहित नामा मुनिने राजा भरतसे जिस प्रकार कही और भरतने जिस प्रकार मुझसे कही उसी

अभिषेकजलं तस्या तदा नेतुमतिथ्वरम् । यत्नं कुरुत नास्त्यन्या गतिलक्ष्मणजीविते ॥११३॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैश्शेषैरपि निश्चितानाम् ।

महात्मना पुण्यफलोदयेन भवन्त्युपायो विदितोऽसुंदायी ॥११४॥

उपजातिः

अहो महान्तः परमा जनास्ते येषां महापत्तिसमागतानाम् ।

जनो वदत्युद्भवनाभ्युपायं रवेः समस्तत्त्वनिवेदनेन ॥११५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विशल्यापूर्वभवाभिधानं नाम चतुःषष्टितमं पर्व ॥६४॥



प्रकार हे राम ! मैंने आपसे कही हैं ॥११२॥ इसलिए शीघ्र ही विशल्याका स्नान जल लानेका यत्न करो । लक्ष्मणके जीवित होनेका और दूसरा उपाय नहीं है ॥११३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो इस तरह मृत्युके मार्गमें स्थित हैं तथा समस्त लोग जिनके मरणका निश्चय कर चुके हैं ऐसे महापुरुषोंके पुण्यकर्मके उदयसे जीवन प्रदान करनेवाला कोई न कोई उपाय विदित हो हो जाता है ॥११४॥ अहो ! वे पुरुष अत्यन्त महान् तथा उत्कृष्ट हैं कि महाविपत्तिमें पड़े हुए जिनके लिए सूर्यके समान उज्ज्वल पुरुष यथार्थ तत्त्वका निवेदन कर विपत्तिसे निकलनेका उपाय बतलाते हैं—प्रकट करते हैं ॥११५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें विशल्याके

पूर्वभवका वर्णन करनेवाला चौंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥



पञ्चषष्टितमं पर्व

प्रतीन्दोर्वचनं श्रुत्वा राघवोऽत्यन्तसंमदः । समं विद्याधराधीशैर्विस्मृतस्तमपूजयत् ॥१॥
 अञ्जनाजविदेहाजसुताराजास्ततः कृताः । अयोध्यां गमिनः कृत्वा संमन्त्रं निश्चितं द्रुतम् ॥२॥
 ततश्चिन्तितमात्रेण ते ययुर्यत्र पार्थिवः । भरतः प्रवरः कीर्त्या प्रतापी गुणसंगतः ॥३॥
 सुप्तस्योत्थाप्यमानस्य सहसास्यासुखासिका । मा भूदिति सुखं गीतं वैदेहादिभिराश्रितम् ॥४॥
 ततः संगीतमाकर्ण्य दिव्यं श्रुतिमनोहरम् । शनैर्भाविसमारुढमुत्तस्थौ कोशलेश्वरः ॥५॥
 ज्ञापिताः सेवितद्वारास्ततस्तस्मै समागताः । वैदेह्या हरणं प्रोत्तुर्निपातं लक्ष्मणस्य च ॥६॥
 अथ शोकरसादुग्रात् क्षणमात्रभुवः परम् । राजा क्रोधरसं भेजे परमं भरतश्रुतिः ॥७॥
 महाभैरोध्वनिं चाशु रणप्रीतिकारयत् । सकला येन साकेता संप्राप्ताऽऽकुलतां परम् ॥८॥
 लोको जगद् किं न्वेतद्वर्त्तते राजसद्वनि । महान् कलकलः शब्दः श्रूयतेऽत्यन्तभीषणः ॥९॥
 किन्तु रात्रौ निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टमतिः परः । अतिवीर्यसुतः प्राप्तो भवेदापातपण्डितः ॥१०॥
 कश्चिदङ्गतां कान्तां त्यक्त्वा सज्जदधुमुद्यतः । सन्नाहनरेपक्षोऽन्यः सायके करमर्पयत् ॥११॥
 सुग्धबालकमादाय काचिदङ्गे मृगक्षणा । हस्तं स्तनतटे न्यस्य चक्रे दिग्वलोकनम् ॥१२॥
 काचिदीर्ष्यावृत्तं त्यक्त्वा निद्रारहितलोचना । सुप्तमाश्रयते कान्तं शयनीयैकपार्श्वगम् ॥१३॥

अथानन्तर प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचन सुन जिन्हें अत्यन्त हर्ष हो रहा था ऐसे श्रीरामने आश्चर्यचकित हो विद्याधर राजाओंके साथ-साथ उसका बहुत आदर किया ॥१॥ और शीघ्र ही निश्चित मन्त्रणाकर हनुमान् भामण्डल तथा अंगदको अयोध्याकी ओर रवाना किया ॥२॥ तदनन्तर इच्छा करते ही वे सब वहाँ पहुँच गये जहाँ उत्तम कीर्तिके धारक प्रतापी एवं गुणवान् राजा भरत विराजमान थे ॥३॥ उस समय भरत सोये हुए थे इसलिए सहसा उठानेसे उन्हें दुःख न हो ऐसा विचार कर भामण्डल आदिने सुखदायी संगीत प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर कर्ण और मनको हरण करनेवाले उस भावपूर्ण दिव्य संगीतको सुनकर भरत महाराज धीरे-धीरे जाग उठे ॥५॥ हनुमान आदि द्वारके पास तो खड़े ही थे इसलिए जागते ही खबर देकर उनके पास जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताका हरा जाना तथा शक्ति लगनेसे लक्ष्मणका गिर जाना यह समाचार कहा ॥६॥ अथानन्तर क्षणमात्रमें उत्पन्न हुए, अतिशय उग्र शोकरससे राजा भरत परम क्रोधको प्राप्त हुए ॥७॥ उन्होंने उसी समय रणमें प्रीति उत्पन्न करानेवाली रणभेरीका महाशब्द कराया जिसे सुनकर समस्त अयोध्या परम आकुलताको प्राप्त हो गयी ॥८॥ लोग कहने लगे कि राजभवनमें अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाला महान् कल-कल शब्द सुनाई पड़ रहा है सो यह क्या कारण है ? ॥९॥ क्या इस अर्धरात्रिके समय दुष्ट बुद्धिका धारक तथा आक्रमण करनेमें निपुण अतिवीर्यका पुत्र आ पहुँचा है ? ॥१०॥ कोई एक योद्धा अंकमें स्थित कान्ताको छोड़ कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ और कोई दूसरा योद्धा कवचसे निरपेक्ष हो तलवार पर हाथ रखने लगा ॥११॥ कोई मृगनयनी स्त्री, सुन्दर बालकको गोदमें ले तथा स्तन तट पर हाथ रखकर दिशाओंका अवलोकन करने लगी अर्थात् भयसे इधर-उधर देखने लगी ॥१२॥ कोई एक स्त्री ईर्ष्या वश पतिसे हटकर पड़ी हुई थी और उसके नेत्रोंमें नींद नहीं आ रही थी । रणभेरीका शब्द सुन वह इतनी भयभीत हुई कि ईर्ष्याभाव छोड़ शय्याके एक ओर पड़े हुए निद्रातिमग्न पतिसे जा मिली—उससे

पार्थिवप्रतिमः^१ कश्चिद्धनी कान्तामुदाहरत्^२ । कान्ते बुद्धयस्व किं शेषे किमपीदमशोभनम् ॥१४॥
 राजालये समुद्योतो लक्ष्यते जात्वलक्षितः । सन्नद्धा रथिनो मत्ता करिणोऽमी च संहिताः ॥१५॥
 नीतिज्ञैः सततं भाग्यमप्रमत्तैः सुपण्डितैः^३ । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोपाय स्वापतेयं प्रयत्नतः ॥१६॥
 शातकौम्भानिमान्कुम्भान् कलधौतमयांस्तथा । मणिरत्नकरण्डांश्च कुरु भूमिगृहान्तरे ॥१७॥
 पट्टवस्त्रादिसंपूर्णनिमान् गर्भालयान् वृतम् । तालयान्यदपि द्रव्यं दुःस्थितं सुस्थितं कुरु ॥१८॥
 शत्रुघ्नोऽपि सुसंभ्रान्तो निद्रारुणितलोचनः । आरुह्य द्विरदं शीघ्रं घण्टाटङ्कारनादिनम् ॥१९॥
 सचिवैः परमैर्युक्तैः शस्त्राधिष्ठितपाणिभिः । विमुञ्चन् बकुलामोदं चलदम्बरपल्लवः ॥२०॥
 भरतस्यालर्यं प्राप्तस्तथाऽन्ये नरपुङ्गवाः । शस्त्रहस्ताः सुसंनद्धा नरेन्द्र हिततत्पराः ॥२१॥
 यच्छन्नाज्ञां नरेशानां युद्धाय स्वयमुद्यतः । विनीताधिपतिः प्रोक्तो नत्वा भामण्डलादिभिः ॥२२॥
 दूरे लङ्कापुरी देव गन्तुं नार्हति तां विभुः । श्रुग्धोर्मिजलजो घोरो वृत्तं मागरोऽन्तरे^४ ॥२३॥
 मया किं तर्हि कर्तव्यमिति राज्ञि कृतस्वने । उच्चारितं विशल्यायाश्चरितं तैर्मनोहरम् ॥२४॥
 अवप्रमथनं नाथ पुण्यं जीवितपालनम् । द्रोणमेघसुतास्नानवारिदानं वृतं भज ॥२५॥
 प्रसादं कुरु यास्यामो यावन्नोदेति मास्करः । हतोऽरिमथनः शक्यता दुःखं तिष्ठति लक्ष्मणः ॥२६॥
 भरतेन ततोऽवाचि किं वा ग्रहणमम्मसा । स्वयं सा सुभगा तत्र यातु द्रोणवनात्मजा ॥२७॥
 सुनीशेन समादिष्टा तस्यैवासौ सुभाभिनी । स्त्रीरत्नमुत्तमं सा हि कस्य वाऽन्यस्य युज्यते ॥२८॥

सटकर पड़ रही ॥१३॥ राजाकी तुलना प्राप्त करनेवाला कोई धनी मनुष्य अपनी स्त्रीसे कहने लगा कि हे प्रिये ! जागो, क्यों सो रही हो ? यह कोई अशोभनीय बात है ॥१४॥ राजभवनमें जो कभी दिखाई नहीं दिया ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है । रथोंके सवार तैयार खड़े हैं और ये मदोन्मत्त हाथी भी एकत्रित हैं ॥१५॥ नीतिके जानकार पण्डित जनोंको सदा सावधान रहना चाहिए । उठो उठो धनको प्रयत्नपूर्वक छिपा दो ॥१६॥ ये सुवर्ण और चाँदीके घट तथा मणि और रत्नोंके पिटारे तलगृहके भीतर कर दो ॥१७॥ रेशमी वस्त्र आदिसे भरे हुए इन गर्भगृहोंको शीघ्र ही बन्द कर दो तथा और जो दूसरा सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है उसे ठीक तरहसे रख दो ॥१८॥ जिसके नेत्र निद्रासे लाल-लाल हो रहे थे ऐसा घबड़ाया हुआ शत्रुघ्न भी घंटाका शब्द करनेवाले हाथी पर शीघ्र ही सवार हो भरतके महलमें जा पहुँचा । शत्रुघ्न, हाथोंमें शस्त्र धारण करनेवाले उत्तमोत्तम मन्त्रियोंसे सहित था, बकुलकी सुगन्धिको छोड़ रहा था तथा उसका वस्त्र चंचल-चंचल हो रहा था । शत्रुघ्नके सिवाय दूसरे अन्य राजा भी जो हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, कवचोंसे युक्त थे तथा राजाका हित करनेमें तत्पर थे भरतके महलमें जा पहुँचे ॥१९-२१॥ अयोध्याके स्वामी भरत, राजाओंको आज्ञा देते हुए स्वयं युद्धके लिए उद्यत हो गये तब भामण्डल आदिने नमस्कार कर कहा कि ॥२२॥ हे देव ! लंकापुरी दूर है, वहाँ जानेके लिए आप समर्थ नहीं हैं, जिसकी लहरें और शंख क्षोभको प्राप्त हो रहे हैं ऐसा भयंकर समुद्र बीचमें पड़ा है ॥२३॥ तो मुझे क्या करना चाहिए, इस प्रकार राजा भरतके कहने पर उन सबने विशल्याका मनोहर चरित कहा ॥२४॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! द्रोणमेघकी पुत्रीका स्नानजल पापको नष्ट करनेवाला, पवित्र और जीवनकी रक्षा करनेवाला है सो उसे शीघ्र ही दिलाओ ॥२५॥ प्रसाद करो, जब तक सूर्य उदित नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जायेंगे । शत्रुओंका संहार करनेवाले लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो दुःखमें पड़े हैं ॥२६॥ तब भरतने कहा कि जलका क्या ले जाना, वह द्रोणमेघकी सुन्दरी पुत्री स्वयं ही वहाँ जावे अर्थात् उसे ही ले जाओ ॥२७॥ मुनिराजने कहा है कि यह उन्हींकी वल्लभा होगी । यथार्थमें वह उत्तम स्त्रीरत्न है सो अन्य किसके योग्य हो सकती है ? ॥२८॥

१. पार्थिवं प्रथमः म. । २. -मुदाहरन् म. । ३. सपण्डितैः ज. । ४. सागरोत्तरे म. ।

ततो द्रोणघनाहस्य सकाशं प्रेषितो निजः । स चापि कुपितो योद्धुं मानस्तस्मिन्समुद्यतः ॥२९॥
 संक्षुब्धास्तनयास्तस्य सन्नद्धाः सचिवैः सह । परमाकुलतां प्राप्तां महादुर्लभितक्रियाः ॥३०॥
 भरतस्य ततो भात्रा स्वयं गत्वा महादरम् । प्रतिबोधमुपानीतः स^१ तेन तनयामदात् ॥३१॥
 सा भामण्डलचन्द्रेण विमानशिखरं निजम् । आरोपिता महारथ्यं कान्तिपूरितदिङ्मुखा ॥३२॥
 सहस्रमधिकं चान्यस्कन्यानां सुमनोहरम् । राजगोत्रप्रसूतानां कृतं गामि समं तथा ॥३३॥
 ततो निमेषमात्रेण प्राप्ता संयाममेदिनीम् । अर्घ्यादिभिः कृताभ्यर्च्यैः सर्वैः खेचरपुङ्गवैः ॥३४॥
 अवतीर्णा विमानप्राततः कन्याभिरावृता । चारुचामरसंघातैः वीज्यमाना शनैः सुखम् ॥३५॥
 पश्यन्ती तुरगान् द्वारे मत्तान्श्च वरवारणान् । महत्तरैः कृतानुज्ञा पुण्डरीकनिमानता^२ ॥३६॥
 यथा यथा महाभाग्या विशल्या सोपसर्पति । तथा तथामजसौम्यं सुमित्रातनयोऽद्भुतम् ॥३७॥
 प्रभापरिकरौ शक्तिस्ततो लक्ष्मणवक्षसः । चकिता दुष्टयोषेव कामुकात् परिनिःसृता ॥३८॥
 स्फुरत्स्फुलिङ्गज्वाला च लङ्घयन्ती द्रुतं नमः । उत्पस्थ वायुपुत्रेण गृहीता वेगशालिना ॥३९॥
 दिव्यस्त्रीरूपसंपन्ना ततः संगतपाणिका । सा जगाद् हनूमन्तं संभ्रान्ता बद्धवेपथुः ॥४०॥
 प्रसीद नाथ मुञ्चस्व न मे दोषोऽस्ति कश्चन । कुत्सितास्मद्विधानां हि प्रेष्याणां स्थितिरीदृशी ॥४१॥
 अमोघविजया नाम प्रज्ञप्तेरहकं स्वसा । विद्या लोकत्रये ख्याता रावणेन प्रसाधिता ॥४२॥
 कैलासपर्वते पूर्वं बालौ प्रतिमथा स्थिते । सन्निधौ जिनविम्बानां गायता भावितात्मना ॥४३॥

तदनन्तर भरतने द्रोणमेघके पास अपना आदमी भेजा सो मान दमन करनेमें उद्यत वह द्रोणमेघ भी युद्ध करनेके लिए कुपित हुआ ॥२९॥ प्रचण्ड बलको धारण करनेवाले उसके जो पुत्र थे वे भी परम आकुलताको प्राप्त हो क्षुभित हो उठे तथा युद्ध करनेके लिए मन्त्रियोंके साथ साथ तैयार हो गये ॥३०॥ तब भरतकी माता केकयीने स्वयं जाकर उसे बड़े आदरसे समझाया जिससे उसने अपनी पुत्री दे दी ॥३१॥ कान्तिसे दिशाओंको पूर्ण करनेवाली उस कन्याको भामण्डलने अपने शीघ्रगामी विमानके अग्रभाग पर बैठाया ॥३२॥ इसके सिवाय राजकुलमें उत्पन्न हुई एक हजारसे भी अधिक दूसरी मनोहर कन्याएँ विशल्याके साथ भेजीं ॥३३॥ तदनन्तर निमेष मात्रमें वह युद्धभूमिमें पहुँच गयी सो समस्त विद्याधरोंने अर्घ्य आदिसे उसका योग्य सन्मान किया ॥३४॥ तत्पश्चात् जो कन्याओंसे घिरी थी और जिसपर सुन्दर चमरोंके समूह धीरे-धीरे सुख पूर्वक झेले जा रहे थे ऐसी विशल्या विमानके अग्रभागसे नीचे उतरी ॥३५॥ द्वार पर खड़े घोड़ों और मदोन्मत्त हाथियोंको देखती हुई वह आगे बढ़ी । बड़े-बड़े लोग उसकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर थे तथा कमलके समान उसका मुख था ॥३६॥ महाभाग्यशालिनी विशल्या जैसे-जैसे पास आती जाती थी वैसे-वैसे लक्ष्मण आश्चर्यकारी सुखदशाको प्राप्त होते जाते थे ॥३७॥

तदनन्तर जिस प्रकार दुष्ट स्त्री चकित हो पतिके घरसे निकल जाती है उसी प्रकार कान्तिके मण्डलको धारण करनेवाली शक्ति लक्ष्मणके वक्षःस्थलसे बाहर निकल गयी ॥३८॥ जिससे तिलगे और ज्वालाएँ निकल रही थीं ऐसी वह शक्ति, शीघ्र ही आकाशको लांघती हुई जाने लगी सो वेगशाली हनुमान्ने उछलकर उसे पकड़ लिया ॥३९॥ तब वह दिव्यस्त्रीके रूपमें परिणत हो हाथ जोड़कर हनुमान्से बोली । उस समय वह घबड़ायी हुई थी तथा उसके शरीरसे कैपकैपी छूट रही थी ॥४०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! प्रसन्न होओ, मुझे छोड़ो, इसमें मेरा दोष नहीं है, हमारे जैसे सेवकोंकी ऐसी ही निन्द्य दशा है ॥४१॥ मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध अमोघ-विजया नामकी विद्या हूँ, प्रज्ञातिकी बहन हूँ और रावणने मुझे सिद्ध किया है ॥४२॥ कैलास पर्वत पर पहले जब

निजे भुजे समुत्कृत्य शिरातन्त्रीं मनोहराम् । उपवीणयता दिव्यं जिनेन्द्रचरितं शुभम् ॥४४॥
 लब्धाऽहं दशवक्त्रेण धरणान्नागराजतः । कम्पितासनतः^१ प्राप्ताप्रमोदं विभ्रतः^२ परम् ॥४५॥
 अनिच्छन्नप्यसौ तेन रक्षसां परमेस्वरः । मां परिग्राहितः कृच्छ्रात् स हि ग्रहणदुर्विधः ॥४६॥
 साहं न कस्यचिच्छक्या मुवनेऽत्र व्यपोहितुम् । विशल्यासुन्दरीमेकां मुक्त्वा दुःसहतेजसम्^३ ॥४७॥
 मन्ये पराजये देवान् बलिनो नितरामपि । अनया तु विक्रीर्णाहं महत्या दूर्गोचरा ॥४८॥
 अनुष्णं भास्करं कुर्यादशीतं शशलक्ष्मणम् । अनया हि तपोऽस्युग्रं चरितं पूर्वजन्मनि ॥४९॥
 शिरीषकुसुमासारं शरीरमनया पुरा । निर्युक्तं तपसि प्रायो मुनीनामपि दुःसहे ॥५०॥
 एतावतैव संसारः सुसारः प्रतिभाति मे । ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तपांसीह जन्तुभिः ॥५१॥
 वर्षाशीतातपैर्घोरैर्महाबातसुदुःसहैः । एषा न कम्पिता तन्वी मन्दरस्येव चूलिका ॥५२॥
 अहो रूपमहो सत्त्वमहो धर्मदृढं मनः । अशक्यं ध्यातुमप्यस्याः सुतपोऽन्याङ्गनाजनेः ॥५३॥
 सर्वथा जिनचन्द्राणां मतेनोद्ब्रूहते तनः । लोकात्रये जयत्येकं यस्येदं फलमीदृशम् ॥५४॥
 अथवा नैव विज्ञेयमाश्रयमिदमीदृशम् । प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यत्तस्य दुष्करम् ॥५५॥
 पराधीनक्रिया साहं तपसा निर्जितानया । ब्रजामि स्वं पदं साधो^४ क्षम्यतां दुर्विचेष्टितम् ॥५६॥
 एवं कृतसमालापां तत्त्वज्ञः शक्तिदेवताम् । त्रिसृज्यावस्थितो वीतिः स्वसैन्येऽद्भुतचेष्टितः ॥५७॥

बालिमुनि प्रतिमा योगसे विराजमान थे तब रावणने जिन-प्रतिमाओंके समीप भुजाकी नाड़ी रूपी मनोहर तन्त्री निकाल कर जिनेन्द्र भगवान्का दिव्य एवं शुभचरित वीणाद्वारा गाया था । रावणकी भक्तिके प्रभावसे धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ था जिससे परम प्रमोदको धारण करते हुए उसने वहाँ आकर रावणके लिए मुझे दिया था । यद्यपि राक्षसोंका इन्द्र रावण मुझे नहीं चाहता था तथापि धरणेन्द्रने प्रेरणाकर बड़ी कठिनाईसे मुझे स्वीकृत कराया था । यथार्थमें रावण किसीसे वस्तुग्रहण करनेमें सदा संकुचित रहता था ॥४३-४६॥ वह मैं, इस संसारमें दुःसह तेजकी धारक एक विशल्याको छोड़ और किसीकी पकड़में नहीं आ सकती ॥४७॥ मैं अतिशय बलवान् देवोंको भी पराजित कर देती हूँ किन्तु इस विशल्याने दूर रहने पर भी मुझे पृथक् कर दिया ॥४८॥ यह सूर्यको ठण्डा और चन्द्रमाको गरम कर सकती है क्योंकि इसने पूर्वभवमें ऐसा ही अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया है ॥४९॥ इसने पूर्वभवमें अपना शिरीषके फूलके समान सुकुमार शरीर ऐसे तपमें लगाया था कि जो प्रायः मुनियोंके लिए भी कठिन था ॥५०॥ मुझे इतने ही कार्यसे संसार सारभूत जान पड़ता है कि इसमें जीवों द्वारा ऐसे-ऐसे कठिन तप सिद्ध किये जाते हैं ॥५१॥ तीव्र वायुसे जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयंकर वर्षा शीत और घामसे यह कृशांगी सुमेरुकी चूलिकाके समान रंचमात्र भी कम्पित नहीं हुई ॥५२॥ अहो इसका रूप धन्य है, अहो इसका धैर्य धन्य है और अहो धर्ममें दृढ़ रहनेवाला इसका मन धन्य है । इसने जो तप किया है अन्य स्त्रियाँ उसका ध्यान भी नहीं कर सकतीं ॥५३॥ सर्वथा जिनेन्द्र भगवान्के मतमें ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका इस प्रकारका फल तीनों लोकोंमें एक जुदा ही जयवन्त रहता है ॥५४॥ अथवा इसे कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त हो सकता है उसके लिए और दूसरा कौन कार्य कठिन है ? ॥५५॥ मेरा काम तो पराधीन है देखिए न, इसने मुझे तपसे जीत लिया । हे सत्पुरुष ! अब मैं अपने स्थान पर जाती हूँ—मेरी दुश्चेष्टा क्षमा की जाय ॥५६॥ इस प्रकार वार्तालाप करनेवाली उस शक्तिरूपी देवताको छोड़कर तत्त्वका जानकार तथा अद्भुत चेष्टाका धारक हनुमान् अपनी सेनामें स्थित हो गया ॥५७॥

१. कम्पितासनकं म. । २. विभ्रता म. । ३. तेजसाम् म. । ४. सान्ये म. । ५. हनुमान् ।

सुता तु द्रोणमेघस्य हियालंकृतदेहिका । पादपद्मद्वयं पार्श्वं प्रणम्य विहिताञ्जलिः ॥५८॥
 विद्याधरमहामन्त्रिवचोभिः कृतशंसना । वन्दिता खेचरैरन्यैराशीभिरभिनन्दिता ॥५९॥
 शक्रस्येव शची पार्श्वे लक्ष्मणस्य सुलक्षणा । अवस्थिता महाभाग्या सखीवचनकारिणी ॥६०॥
 मुग्धा मुग्धमृगीनेत्रा पूर्णचन्द्रनिभानना । महानुरागसंभारप्रेरितोदारमानसा ॥६१॥
 परिष्वज्य रहो नाथं सुखसुप्तं महीतले । सुकुमारकराम्भोजसंवाहनसुचारुणा ॥६२॥
 गोशीर्षचन्दनैवमन्बलिम्पत सर्वतः । तथा पद्ममपि व्रीडाकिंचित्कम्पितपाणिका ॥६३॥
 शेषाः कन्या यथायोग्यं शेषाणां खेचरेशिनाम् । चन्दनेनास्पृशन्नात्रं विशल्याहस्तसंगिना ॥६४॥
 विशल्याहस्तसंस्पृष्टं चन्दनं पद्मवाक्यतः । कान्तमिन्द्रजितादीनामुपनीतं यथाक्रमम् ॥६५॥
 शीतलं तं समाप्राप्य कृत्वाङ्गेषु च सादरम् । निर्वृतिं परमां प्राप्ताः शुद्धात्मानो गतज्वराः ॥६६॥

उपजातिवृत्तम्

अन्ये च योधाः क्षतविक्षताङ्गा द्विपास्तुरङ्गाः पदचारिणश्च^१ ।
 अभ्युक्षितास्तत्सलिलेन जाता प्रणष्टशल्या नवमास्कराङ्गाः ॥६७॥
 जन्मान्तरं प्राप्त इवाथ कान्तः स्वभावनिद्रामिव सेवमानः ।
 उत्थाप्यते स्म प्रवरैर्नितान्तं संगीतकैर्वैष्णुनिनादगीतैः ॥६८॥
 ततः शनैश्छवसितोरुवक्षा नेत्रे समुन्मील्य तिगिच्छताम्ने ।
 विश्लिषबाहुः शनैर्निकुञ्च्य लक्ष्मीधरोऽमुञ्चत मोहशय्याम् ॥६९॥

अथानन्तर जिसका शरीर लज्जासे अलंकृत था, जिसने श्रीरामके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर हाथ जोड़े थे, विद्याधर महामन्त्रियोंके वचनोंसे जिसकी प्रशंसा की गयी थी, अन्य विद्याधरों ने जिसे वन्दना कर शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित किया था, जो उत्तम लक्षणोंको धारण करनेवाली थी; महाभाग्यवती थी, और सखियोंकी आज्ञाकारिणी थी ऐसी द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या लक्ष्मणके पास जाकर उस प्रकार खड़ी हो गयी जिस प्रकार मानो इन्द्रके पास इन्द्राणी ही खड़ी हो ॥५८-६०॥ जो अत्यन्त सुन्दरी थी, भोली मृगीके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, और महा अनुरागके भारसे जिसका उदार हृदय प्रेरित था ऐसी विशल्याने एकान्तमें पृथिवी तल पर सुखसे सोये हुए प्राणनाथ लक्ष्मणका आलिंगन कर उन्हें सुकोमल हस्त-कमलमें स्थित होनेसे अत्यन्त सुन्दर दिखनेवाले गोशीर्ष चन्दनसे खूब अनुलिप्त किया तथा लज्जासे कुछ-कुछ कांपते हुए हाथसे श्रीरामको भी चन्दनका लेप लगाया ॥६१-६३॥ शेष कन्याओंने विशल्याके हाथमें स्थित चन्दनके द्वारा अन्य विद्याधरोंके शरीरका स्पर्श किया ॥६४॥ श्रीरामके आज्ञानुसार विशल्याके हाथका छुआ सुन्दर चन्दन यथाक्रमसे इन्द्रजित आदिके पास भी भेजा गया ॥६५॥ सो उस शीतल चन्दनको सूँघकर तथा आदरके साथ शरीर पर लगाकर वे सब परम सुखको प्राप्त हुए । सबकी आत्माएँ शुद्ध हो गयीं तथा सबका ज्वर जाता रहा ॥६६॥

इन सबके सिवाय क्षत-विक्षत शरीरके धारक जो अन्य योधा, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे वे सब उसके जलसे सींचे जाकर शल्यरहित तथा नूतन सूर्य—प्रातःकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान शरीरसे युक्त हो गये ॥६७॥ अथानन्तर जो दूसरे जन्मको प्राप्त हुए के समान सुन्दर थे और मानो स्वाभाविक निद्राका ही सेवन कर रहे थे ऐसे लक्ष्मणको बाँसुरीकी मधुर तानसे मिश्रित उत्तम संगीतके द्वारा उठाया गया ॥६८॥ तदनन्तर जिनका विशाल वक्षःस्थल धीरे-धीरे उच्छ्वसित हो रहा था और जिनकी भुजाएँ फैली हुई थीं ऐसे लक्ष्मणने कमलके समान लाल नेत्र खोलकर तथा भुजाओंको संकोचित कर मोहुरूपी शय्याका परित्याग किया ॥६९॥ जिस

१. पद्मस्येदं पादं रामसम्बन्धि, पद्मं म., व. । २. पदचारिणश्च म., ज. ।

१ त्वत्कोपपादाङ्गशिलामिवासौ रणक्षितिं देव इवोद्यकायः ।
 उत्थाय रुष्टः ककुभो निरीक्ष्य कासौ गतो रावण इत्युवाच ॥७०॥
 ततः प्रफुल्लाम्बुजलोचनेन महाभिनन्दं भजताऽग्रजेन ।
 उदाररोमाञ्चसुकर्कशेन प्रोक्तः परिप्लव्य लसद्भुजेन ॥७१॥
 कृतार्थवृत्तात् दशाननोऽसौ हत्वा भवन्तं त्रिजहार शक्या ।
 त्वमप्यमुष्याश्चरितेन जीवं भूयोऽभर्जेः संस्तुतकन्यकायाः ॥७२॥
 निःशेषतश्चास्य निवेदितं तच्छक्याहतिप्रेरणवस्तुवृत्तम् ।
 अपूर्वमाश्चर्यमुदारभावं सुविस्मितैर्जम्बवसुन्दराद्यैः ॥७३॥
 तावन् त्रिवर्णज्ज्विलासिनेत्रा शरस्समृद्धेन्दुसमानवक्त्राम् ।
 शतोदरीं दिग्गजकुम्भशोभिस्तनूयौ नूतनयौवनस्थाम् ॥७४॥
 शरीरबद्धामिव मन्मथस्य क्रीडां विशालालससञ्चितम्बाम् ।
 संगृह्य शोभामिव सार्वलोकां विनिर्मितां कर्मभिरकतायैः ॥७५॥
 तां वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयोऽन्तिकस्थामचिन्तयद् विस्मयरुद्धचित्तः ।
 लक्ष्मीरियं किन्तु सुरेश्वरस्य कान्तिर्नु चन्द्रस्य नु मानुदीप्तिः ॥७६॥
 ध्यायन्तमेवं परिगम्य शोषास्तमेवमूखः कुशलप्रधानाः ।
 स्वामिन् विवाहोत्सवमेतया ते दृष्टं जनो वाञ्छति संगतोऽयम् ॥७७॥
 कृतस्मितोऽसावगदत् समीपे ससंशये युक्तमिदं कथं नु ।
 उखुः पुनस्ते ननु वृत्त एव स्पर्शोऽनया ते प्रकटस्तु नासीत् ॥७८॥

प्रकार उपपाद शय्याको छोड़कर उत्तम शरीरका धारक देव उठकर खड़ा होता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी रणभूमिको छोड़ खड़े हो गये और दिशाओंकी ओर देख रुष्ट होते हुए बोले कि वह रावण कहाँ गया ? ॥७०॥ तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे जो महान् आनन्दको प्राप्त थे, उत्कट रोमाञ्चोंसे जिनका शरीर कर्कश हो रहा था और जिनकी भुजाएँ अतिशय शोभायमान थीं ऐसे बड़े भाई श्रीरामने आलिंगन कर कहा कि हे तात ! रावण तौ शक्तिके द्वारा आपको मार कृतकृत्यकी तरह चला गया है और तुम भी इस प्रशस्त कन्याके चरित्रसे पुनर्जन्मको प्राप्त हुए हो ॥७१-७२॥ तत्पश्चात् अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए जाम्बव और सुन्दर आदिने शक्ति लगनेसे लेकर समस्त वृत्तान्त लक्ष्मणके लिए निवेदन किया-सुनाया तथा उदार भावनासे युक्त अपूर्व आश्चर्य प्रकट किया ॥७३॥

तदनन्तर जिसके नेत्र लाल सफेद और नीले इन तीन रंगके कमलोंके समान सुशोभित थे, जिसका मुख शरद्वृक्षतुके पूर्णचन्द्रमाके समान था, जिसका उदर कुश था, जिसके दोनों स्तन दिग्गजके गण्डस्थलके समान सुशोभित थे, जो नूतन यौवन अवस्थामें स्थित थी जो, मानो शरीर-धारिणी कामकी क्रीड़ा ही थी, जिसके उत्तम नितम्ब विशाल तथा अलसाये हुए थे, और जिसे कर्मोंने एकाग्र चित्त हो सर्व संसारकी शोभा ग्रहण कर ही मानो बनाया था ॥७४-७५॥ ऐसी समीपमें स्थित उस विशल्याको देख लक्ष्मणने आश्चर्यसे अवरुद्ध चित्त हो विचार किया कि क्या यह इन्द्रकी लक्ष्मी है ? या चन्द्रमाकी कान्ति है ? अथवा सूर्यकी प्रभा है ? ॥७६॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए लक्ष्मणकी देख, मंगलाचार करनेमें निपुण स्त्रियाँ उनसे बोलीं कि हे स्वामिन् ! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग इसके साथ आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं ॥७७॥ यह सुन

भवत्प्रभावक्षतसर्वविघ्नं पाणिग्रहं नाथ भज त्वमस्थाः ।
इत्यर्थनाद्गौरवतश्च वाक्यादियेष लक्ष्मीनिलयो विवाहम् ॥७९॥

मालिनीवृत्तम्

क्षणविरचितसर्वइलाध्यकर्तव्ययोगः पवनपथविहारिस्फीतभूतिप्रपञ्चः ।
त्वमवदमरसंपत्कल्पितानन्दतुल्यः प्रधनभुवि विशल्यालक्ष्मणोद्वाहकल्पः ॥८०॥
इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मन्युदाराः परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
द्रुतमुपगतचारुद्रव्यसंबन्धमाजो विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां मजन्ते ॥८१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मचरिते विशल्यासमागमाभिधानं नाम पञ्चषष्ठितमं पर्व ॥६५॥



लक्ष्मणने मुसकराते हुए कहा कि जहाँ प्राणोंका संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्रमें यह किस प्रकार उचित हो सकता है ? इसके उत्तरमें सबने पुनः कहा कि इसके द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है परन्तु आपको प्रकट नहीं हुआ है ॥७८॥ हे नाथ ! आपके प्रभावसे जिसके समस्त विघ्न नष्ट हो चुके हैं ऐसा इसका पाणिग्रहण आप स्वीकृत करो । इस प्रकार लोगोंकी प्रार्थना तथा गौरव-पूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणने विवाह करनेकी इच्छा की ॥७९॥ तदनन्तर जिसमें क्षणभरमें समस्त प्रशंसनीय कार्योंका योग किया गया था, विद्याधरोंने जिसमें विशाल वैभवका विस्तार प्रदर्शित किया था, और जो देव-सम्पदासे कल्पित आनन्दके समान था ऐसा विशल्या और लक्ष्मणका विवाहोत्सव युद्धभूमिमें ही सम्पन्न हुआ ॥८०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है ऐसे उदार पुरुष प्राप्त हुए मरणको भी जीतकर शीघ्र ही उत्तम पदार्थोंके समागमको प्राप्त होते हैं और चन्द्रमा तथा सूर्यके गुणोंके समान अपनी अवस्था को प्राप्त करते हैं ॥८१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें विशल्याके समागमका वर्णन करनेवाला पैसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६५॥

द्वितीयो भागः समाप्तः ।



श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

[अ]		अचिन्तयच्च शौरिषा	१३७	अतिधन्योऽहमप्यद्य	१०८
अंशकान्तेन हृदयं	२६५	अचिन्तयच्च नो साध्वी	४५	अतिप्रकटयोर्यस्य	३५६
अंशुकेन वरं कण्ठं	१४८	अचिन्तयच्च पद्मोऽतः	२७५	अतिभूतिप्रभृतयो	६३
अंशुकेन समालम्ब्य	१४६	अचिन्तयच्च पश्यामि	२३	अतिभूतिश्च तद्धेतोः	६२
अशुकेनाभ्युवर्णेन	१४६	अचिन्तयच्च मे कास्था	२३८	अतिमत्ताङ्गनापाङ्ग-	५०
अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च	२७४	अचिन्तयच्च रामस्त्री	२५३	अतिमधुररवं करामिघातै-	२२०
अकलमर्षं स्वभावेन	२६१	अचिन्तयच्च सम्भ्रान्त-	३०३	अतिमूढहतात्मानो	३३१
अकस्मात् सेयमुत्तुङ्ग	१३७	अचिन्तयच्च सुव्यक्तं	२७४	अतिमृदुभुजमाला	१४
अकीर्तिरिति निन्द्येय-	२७३	अचिन्तयच्च हा कष्टं काम	२६५	अतिवीर्यः समस्तेषु	१५५
अकृष्टपच्यवीजेन	१०१	अचिन्तयच्च हा कष्टं प्राप्नो	२३	अतिवीर्यं किमेतत्ते	१६३
अक्षीणसर्वकोशोसा-	६४	अचिन्तयच्च ही साधु	१५२	अतिवीर्यमुनिं दृष्ट्वा	१६८
अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीरं	३०३	अचिन्तयच्च वार्ता	३४२	अतिवीर्यस्ततोऽवोचञ्च	१६५
अक्षौहिण्यस्ततः सप्त	२७४	अचिन्तयच्च मुष्याद्रे	२४१	अतिवीर्यं तथा बुद्धौ	१५७
अक्षौहिण्यां प्रकीर्त्यानि	३५८	अचिरात्त्रिग्रहं धोरं	४०६	अतिवीर्योऽतिदुर्वार-	१५६
अक्षौहिणीसहस्राणि	३५७	अजातचिन्तिता नून-	१४६	अतिवीर्योऽतिवीर्योऽयं	१५६
अगायदिव भृङ्गाणां	२१२	अजानानो विशेषं वा	२७०	अतिवीर्योऽत्र पद्मेन	१६४
अगृहीत्वैव सन्नाहं	३६३	अजिघ्रमामरं गन्धं	२२३	अतिवीर्योऽपि दूतेन	१५८
अग्निकेतुर्वियोगेन	२०७	अज्ञातमिदमप्राप्तं	१४१	अतिवीर्यो महाधन्य-	१६७
अग्रतः पृष्ठतश्चास्य	३०१	अज्ञातलोकवृत्तान्तो	५	अतिवीर्यो रमा कम्पा	१६४
अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन्	३८५	अज्ञाता एव ये कार्यं	१६१	अतिवेगसमुत्पाताः	३६६
अग्रतस्त्वरितो जातः	३८५	अज्ञातरिदमस्माभिः	१५६	अतिशयपरमं विनिहत-	३१
अग्रतो भृगुरत्युग्रः	१८५	अज्ञातो मन्त्रिर्वर्गस्य	२७२	अतीतागामिशोकाभ्या-	३८
अग्रतोऽवग्रहं तस्य	६६	अज्ञानदोषतो नाशं	२७७	अतीते गणरात्रे च	२०३
अग्रप्रयाणकन्यस्ताः	३५६	अज्ञानयोगमेतस्य	१६१	अतीत्य त्रीनितः कोशा-	१०२
अग्राह्यं यदभव्यानां	७३	अज्ञानोऽसौ विलङ्घः सं	२०७	अतृप्तः परमाहारैः	३४१
अग्रप्रमथनं नाथ	४०६	अज्ञासीत्सावधिज्ञानः	४०६	अतृप्तः स्त्रीसहस्रोन्वै-	३४१
अङ्गः कृत्रिमसुग्रीवं	२७३	अङ्गनाजविदेहाज	४०८	अतो जनकसम्बन्धं	१
अङ्गनाजनदृष्टीनां	४६	अङ्गनातनयस्ताव-	३७५	अतो न तां स्वयं देवि	२५६
अङ्गारकेतुना तेन	३१५	अङ्गहासान् विमुञ्चन्तः	२६१	अतो नम्रव्रणन्यस्त-	३६१
अचलो नाम विख्यातो	२०६	अणुव्रतधरः साधु	११५	अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां	१६
अचिन्तयच्च किं नाम	२३६	अणुव्रतधरो यो ना	१३८	अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां यदी-	१०८
अचिन्तयच्च किं न्वेत-	२६	अणुव्रतानि संगृह्य	६१	अत्यन्तं तदङ्गं मन्ये	३०६
अचिन्तयच्च किं सीता	२८१	अतः सत्यमसिद्दिश्य	३२१	अत्यन्तं दुर्योगादिष्टा	७५
अचिन्तयच्च को न्वेष	५८	अतस्तन्निर्जये ताव-	१५६	अत्यन्तं यद्यधीरस्यं	३५२
अचिन्तयच्च खिन्नात्मा	२३०	अतिजवमिह काले	२२१	अत्यन्तान्तुद्र निर्लज्ज	२४५
अचिन्तयच्च ते नून-	३१	अतिदीनकृतारावां	२२६	अत्यन्तधनवन्धनेन	३४

अत्यन्तदीनवदनः	२४२	अथ रत्नजटी व्रस्तः	२४८	अथाशालिकविद्याया	३१८
अत्यन्तदुर्लभा लोके	२७३	अथ राजसुतासमीरितं	२१६	अथाससाद कैष्किन्धं	३४४
अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा	६६	अथ लङ्केश्वरं वीरं	३५१	अथासन्नत्वमागच्छद्	२३५
अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः	१२८	अथ लब्धवान्नुदव्रात-	१७५	अथासावाञ्जनो गच्छ	३०८
अत्यन्तविषमीभावं	४३	अथवा किं मनो व्यर्थं	४२	अथासौ ज्ञातसद्भावा	२
अत्यन्तस्निग्धया तन्व्या	१२७	अथवा क्षयमप्राप्ते	१८	अथासौ साधुयुगलं	३१३
अभ्युग्रकर्मनिर्माकै-	६८	अथवात्यन्तमेवेदं	११३	अथास्य व्रजतो व्योम्नि	३१७
अत्यूर्जितौ महासैन्यौ	३८२	अथवा दयितो रत्या	२४६	अथास्य वायुपुत्रेण	३७६
अत्र किं क्रियते साधो	१०७	अथवा न मुनेर्वाक्यं	३१५	अथास्य शतदुःखेन	२०४
अत्र विभाति व्योमगवृन्दं	२१८	अथवा निखिले लोके	२५५	अथाहूतः पुनः प्राप्तः	२७७
अत्राग्निहोत्रशालाया-	१३३	अथवानेकशो दृष्टो	२६६	अथेक्ष्वाचकिरे तस्य	३४७
अत्रान्तरे जगादैवं	८	अथवा नैव विज्ञेय-	४११	अथेक्ष्वाचकिरे तुङ्गं	६०
अत्रान्तरे तमुद्देशं	२६१	अथवा मयि विश्वस्ते	३८	अथेन्द्रजितवीरेण	३३६
अत्रान्तरे नृपो मूर्खः	७६	अथवा मर्तुमिष्टं ते	३८६	अथेषुवारिधाराभि-	२३६
अत्रान्तरे परिप्राप्तः	२३६	अथवा रामशोकेन	२६८	अथैकान्ते गृहस्यास्य	२५१
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता	४७	अथवा विरहव्याघ्रं	१२३	अथैनमूर्चिरे वृद्धाः	२६०
अत्रान्तरे विदेहाजः	६२	अथवा शुद्धतत्त्वस्य	१२१	अथैवं दुःखमापन्ने	६३
अत्रान्तरे समागत्य	२३७	अथवा सर्वसैन्येन	१६	अथैवमिति तत्सर्वं	१७
अत्रान्तरे स सम्भ्रान्तः	४०१	अथ शोकरसादुग्रान्	४०८	अथाचे सिहनादाख्यो	३४६
अत्रान्तरे सुरूपाढ्यो	१२५	अथ सुग्रीवमाहत्य	२७६	अथोत्सार्य कबन्धादीन्	३६७
अत्रावसीदतो देव	१२१	अथ सद्ग्यानमारूढौ	१८०	अथोद्यानगतानार्य	३३५
अथ कूटभट्टाटोपः	२६६	अथ सेनापतिर्नाम्ना	२४६	अथोद्यानस्य सम्भ्रान्ताः	१८५
अथ गेहेऽपि लभ्येत	७७	अथाग्रकीर्तिमाध्वीक-	३६४	अथोपलालनं तस्य	२८१
अथ तं त्वरितस्मानं	३२२	अथाञ्जनात्मजोऽपृच्छ-	३१४	अथोद्धत्यं चिरं पादौ	१८१
अथ तत्क्षणसम्भूत-	१८३	अथातस्थौ सनिर्ग्रन्थौ	३१३	अदः पश्यसि कैलास-	१७२
अथ तत्र क्षणं नीत्वा	८६	अथात्र नगरे राजा	१४७	अदत्तादाननिर्मुक्तौ	६६
अथ तामतिरौद्रेण	४०५	अथात्रैव वनोद्देशे	२०१	अदीर्घोपेक्षिता तेन	२२८
अथ ते त्रिदशभिस्त्रयाः	१३३	अथानरण्यनप्तारौ	१६६	अदुष्टमानसः पश्यन्	२४
अथ तौ परमारण्ये	६४	अथानरण्यराजस्य	६१	अदृष्टतनुमिदं वै-	३३५
अथ त्वं साधयस्येयं	१६१	अथान्तरिक्षे देवानां	२६६	अदृष्टवानिचर्यार्थं	५६
अथ दक्षिणतो दृष्टा	३६५	अथान्ते तस्य निस्त्रिंशं	२२७	अद्भुतैर्जितमूर्धानो	६४
अथ नात्यन्तदूरस्थ-	२४१	अथाग्न्येकविहारस्य	६१	अद्य केयूरदष्टौ मे	३६६
अथ नानाद्रुमदमासु	१७८	अथाभ्यर्णस्थितं ज्ञात्वा	३५१	अद्य ते निशितैर्वागै-	२४५
अथ पद्मं समालोक्य	२७७	अथार्कजटिनः सूनु-	२४८	अद्य ते रावणः क्रुद्धो	३१६
अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य	१६७	अथावश्यमिदं वस्तु	१८८	अद्यश्वीनममुं कार्यं	४६
अथ प्रशान्तवैरासा-	३२१	अथावाचत सीतेशः	२२७	अद्याप्यस्योरुदावस्य	२०५
अथ प्रत्येपि नो राजन्	११२	अथावाचततः पद्मो	११४	अद्येन्द्रगृहमः कस्य	२३२
अथ मीतिपरिव्रस्ताः	२८८	अथावाचततः सीता	१२६	अद्यैव तं दुराचारं	२३२
अथ भेरीभिनादेन	५२	अथाशङ्काविमुक्तात्मा	२७२	अद्राष्टां च सुरास्त्राणि	३८३

अधस्त यः पुरा शक्तिं	४६	अनिच्छयाथ विध्वस्ते	२३२	अन्नं च परमं ताभ्यां	३३५
अधर्मपरिणामेन	३७१	अनिवार्यं समालोक्य	१६	अन्नं वरगुणं भुक्त्वा	१७१
अधस्तस्याः क्षितेरन्या	७	अनीक्रियो दश प्रोक्ता	३५८	अन्यच्च खलु कौशल्या	३५५
अधस्तात् स्फुटिता वाप्यः	३३८	अनुकूलारिभिः पापै-	२०१	अन्यजन्मसु ये दारा	६२
अधावदिपुमुद्धृत्य	३१६	अनुगत्य सुदूरं तौ	१६७	अन्यथा क्व महीचारा	२५४
अधावल्लक्ष्मणस्तेषां	२०	अनुजो लक्ष्मणो यस्य	३५	अन्यदा तिथिवेलायां	१६६
अधिकं भासमानाङ्गौ	३८५	अनुद्धरो दृढरथः	३६७	अन्यदाथ तमुद्देशं	२४
अधिल्ये न कृते तस्मिन्	३७	अनुत्तरस्तु विहरं-	१६०	अन्यदाथ महीपाल	१६७
अधिष्ठिते देवगणैश्च चापे	६६	अनुपमगुणधरमनुपमकार्यं	३२	अन्यदाथ सुखासीनं	१५५
अधीश्वरः स यन्त्राणां	१३६	अनुपालितमर्यादाः	३४१	अन्यदा परिपृष्टश्च	३१५
अधुना त्वं मया ज्ञातः	१४४	अनुपप्राप्तुकामस्य	८३	अन्यदा प्रथितः क्षोण्यां	१८६
अधुना त्वयि दाप्यादये	३२२	अनुबन्धमहादाहा	२६४	अन्यदा योगमाश्रित्य	६१
अधुना दर्शये शीघ्रं	४००	अनुबन्धमिदं द्वास्थ्यं	२६२	अन्यदा रतिशैलस्य	३३४
अधुना धेनुमिव्याप्तं	१४५	अनुमन्वस्व मां तात	७७	अन्यदा वज्रकर्णोऽयं	१०६
अधुना भज लोकेशं	३२६	अनुरागोत्कटैर्भृत्यैः	३५६	अन्यदावधिना ज्ञात्वा	१६३
अधुना रावणे क्रुद्धे	३४६	अनुलग्नश्च तस्याग्नि-	२०४	अन्यदा सा पुरः सख्या	१११
अध्यर्द्धं तस्य पत्नीनां	६६	अनुष्ठितं त्वया मातुः	२२८	अन्यदा सिंहनगरं	६६
अध्याप्यमानं गुरुणा	६३	अनुष्णं भास्करं कुर्या-	४११	अन्यस्यैव मया शस्त्र-	३६३
अध्रुवं देहभोगादि	६२	अनुद्धरेति विख्याता	१८५	अन्या गुणवती नाम	२७६
अध्वायं घटकैर्भग्नैः	१०४	अनुसस्यश्च तं नाना	६०	अन्यायमीदृशं कर्तुं	८१
अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रा	३००	अनेकगोत्रचरणा	३५७	अन्या सुखती नाम	२७६
अनङ्गकुसुमा लब्धा	३३०	अनेकयुद्धनिर्भग्न-	२६५	अन्यास्तत्रोचुरे कोऽपि	११८
अनतिप्रौढिका काञ्चि-	३६२	अनेकलसम्पूर्णां	२२०	अन्ये च योधा क्षत-	४१२
अनत्युच्चैर्धनच्छाद्यैः	१६६	अनेकशो मया प्राप्ता	६२	अन्ये जगुरियं किमस्माकं	४०
अनन्तफलमानोति	६८	अनेकाकारवक्त्रादयं-	३१७	अन्ये जगुरियं नून-	४०
अनन्तरं नृपादेशात्	११२	अनेन भृशता श्रेष्ठै-	१६७	अन्येद्युः सन्ततक्रोधाः	३७४
अनन्तवीर्यनामाथ	१६३	अनेन वारिणाऽमुष्मिन्	४०६	अन्येद्युर्दूतमाहूय	३००
अनन्तवीर्ययोगीन्द्र-	२६४	अनेन साधुना पश्य	१०६	अन्येऽपि शकुनाः क्रूरं	३६५
अनन्तवीर्यसम्पन्नान्	२६५	अनेनामृतकल्पेन	११५	अन्येऽप्येवं महायोधा	३६०
अनन्यमानसोऽसौ हि	२८१	अनेनैव ततो युक्ताः	३०२	अन्योन्यं दत्तनेत्रं च	५६
अनन्यशरणत्वेन	५७	अन्तः कृत्वा शिशुगण-	२१४	अन्योन्यमक्षणादीनि	६२
अनरण्ये च राज्यस्थे	४	अन्तरं वित्त्य शूरया-	३५६	अन्योन्यमभिमन्त्र्यैवं	२६७
अनर्घ्यरत्नसदृशं	६६	अन्तरङ्गः प्रतीहारी	१२६	अन्योन्यस्य वयं द्रोह-	२७६
अनर्थोद्यतचित्तेन	३५३	अन्तरेण प्रभोराज्ञां	३३४	अन्योन्याहूतमेतेषां-	३७४
अनाहतः प्रभूतं च	२३०	अन्तर्द्धौ सेविते ताभ्यां	३८२	अन्वगायदिमं लक्ष्मी-	१८१
अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं	६८	अन्तर्हृत्य च संक्रुद्धा	२३०	अन्वयव्रतमस्माक-	५०
अनापृच्छापि तत्काले	३६४	अन्ते तस्या महारण्ये	७६	अन्वर्थसंज्ञकास्ते च	२६२
अनारतमिति ध्यायन्	२६	अन्ते लक्ष्मणस्तत्र	१२७	अन्विष्यन्ती प्रभाते नौ	१७६
अनिच्छन्नप्यसौ तेन	४११	अन्धीभूतो दशास्यस्य	३६१	अन्विष्य विद्वतांस्तत्र	३६४

अपकारिणि कारुण्यं	१२२	अब्रवीदस्ति कौशाम्बी	१३०	अमुष्मिन् वस्त्रभवने	१२६
अपमानेन दम्भस्य व्याकुलस्य	११२	अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्ते	१३४	अमुष्य व्यसनं कृत्वा	२३७
अपमानेन दम्भस्य हृदयस्या-	४६	अब्रवीत् पद्मनाभश्च	२६०	अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य	१८४
अपरः कृतसंकेता	८६	अब्रवील्लब्धसंज्ञश्च	२७७	अमृतादपि सुखादैः	२६४
अपराधविमुक्तस्य	११५	अभग्नमानशृङ्गेयं	१७३	अमोघविजया नाम	४१०
अपराधानिमान् श्रुत्वा	३४०	अभव्यानां गतिः क्लिष्टा	६८	अम्ब मा गाद् विषादं	७६
अपराधान्निमग्नः सन्	२६८	अभाव्यी च तथा भाव्यी	६७	अम्बरं भानुकर्णस्य	३८२
अपरे त्रयया केचि-	८८	अभिज्ञानादिकं सर्वं	३४४	अम्भोविहारविज्ञान-	८६
अपरेद्युर्महोद्भूत-	३८८	अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा	३८६	अयं कुक्कुपङ्केन	२२७
अपरे शवरा रेजु-	२०	अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा	२८८	अयं क्वचित्फलभरनम्रपादपः	२१६
अपरोत्तरदिग्भागे	१४७	अभिलक्ष्य शिराजाल-	४८	अयं प्रयत्नादिव चित्रिताङ्गको	२१४
अपरो मानमुत्सृज्य	८६	अभिलष्यति सन्तापो	३७४	अयं प्राप्तोऽयमायातो	११६
अपश्यंश्च समुत्थाय	१५०	अभिवाञ्छसि मनु वा	३६३	अयं मदालसेक्ष्णः	२१३
अपश्यच्च तच्छृङ्खलं	२२६	अभिषिञ्चते मे पुत्रं	७३	अयं मृग इवोद्विग्नो	१५०
अपश्यच्च नरश्रेष्ठं	३०२	अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा	६७	अयं शरणमायातो	२७५
अपश्यच्च परिस्फ्रीताः	२६	अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय	६७	अयं स वर्तते कालः	२६१
अपश्यच्च मनश्चौरी	४६	अभिषेकजलं तस्या	४०७	अयं स लक्ष्मणः खयातो	२३७
अपश्यच्च महामोह-	२३६	अभिषेकप्रभावेण	६८	अयं सस्यभुवं मुक्त्वा	२२१
अपश्यच्च लताजालै-	३२४	अभीतिदानपुण्येन	६७	अयत्नेनेव सा तेन	१७४
अपश्यच्च विसाराणां	२२७	अमृत सर्वशोक्तव-	२२५	अयमन्यश्च विवशो	१४५
अपश्यतां च तस्यान्ते	१७८	अमृतां चूर्णने देव	४८	अयमस्य महान् लाभो	२३६
अवसर्पामृतो देशा-	११६	अभ्यङ्गोद्वर्त्य सुस्नातं	१३१	अयमायामि देवेति	१५०
अपि चानुकमान्मुक्ति-	७७	अभ्युत्थानादिकात्मस्य	२७२	अयमिद्वान्कुसम्भूतो	३६
अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी	१४	अभ्युत्थानाभियानाभि-	२००	अयास्यद्यदि नैताभ्यां	८७
अपि द्रष्टुं न ये शक्ये	५५	अभ्यूजितमतिमानी	३८८	अयि देवि क्व यातासि	२३६
अपि नाम पुनः क्रीडा	३६६	अमन्त्रयन्त सम्भूय	३५४	अयि पापे किमित्येषा	१३४
अपीड्यन्त प्रजाः सर्वाः	३३	अमात्यं धूर्तमाहूय	३	अयि मद्भक्तिसखेष्टो	३६६
अपुण्यया मया नून-	२२८	अमात्यवदनं वीक्ष्य	१७३	अयि सुग्धे सुकण्ठेऽस्मिन्	१४६
अपूर्वलोकास्तृप्ता	२६६	अमी ततः समागत्य	३३६	अयि मूढे न पुण्येन	१७०
अपृच्छच्च परिष्वज्य	३४५	अमी निरागसः क्षुद्रा	१०८	अयि सुन्दरि हर्षस्य	२५७
अपृच्छत् ततः पद्मः	१०६	अमी भयाकुला म्लेच्छा	२१	अयोगमोहितं चेत-	२३१
अपृच्छत्तस्य वृत्तान्त-	६५	अमीभिरनुयातोऽहं	१५६	अयोमयामिदं तेनं	२६२
अप्येकाक्षरनिष्पत्तिं	४८	अमीभिरक्षरैः पद्मः	२७६	अरण्यदेवतापूजा	१४८
अप्रतर्क्य गगनगै-	२२४	अमी लङ्काश्रिता राजन्	२२५	अरण्यमपि रम्यत्वं	२५०
अग्रमत्तेन गन्तव्यं	३०६	अमीषामन्य आकारो	२६६	अरण्यात् पिङ्गलः प्राप्नो	६१
अग्रमेयगुणाधारान्	२६५	अमीषु स्वादचारुणि	१६६	अरण्यानां गिरेर्मूर्धनि	१५२
अप्राप्तानेव धीरोऽसौ	११७	अमी समीरणेरिते धरोष्ठि-	२१६	अरण्यानीं गता सेयं	४०३
अवालेन्दुमुखा बाला	५५	अमुस्मिन्नीलवर्णं	२१३	अरण्याम्बुजखण्डानां	४०४
अब्रवीत् तौ युवां नाथा	१३१	अमुष्य पुस्तकर्मापि चित्रं	२८६	अरण्ये तत्र निस्तोचे	१३३

अरण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्	२४१	अवतीर्य ततो वृक्षाद्	२६	अद्याविमे गताः ख्यातिं	३५८
अरत्या कर्षिताङ्गोऽसौ	५४	अवतीर्य तुरङ्गाच्च	६४	अष्टाहोपोषितं कृत्वा	४५
अरुणं धवलं कपिलं हरितं	२१५	अवतीर्याम्बराच्चारु	२७	अष्टौ शतानि सप्तत्या	३५८
अर्ककीर्तिसमो भूत्या	३६५	अवतीर्याम्बरादाशु	६५	असंख्या अपि मातङ्गा	३४
अर्कामस्यन्दनः सोऽपि	३०६	अवतेरुः समीपे च	२६४	असक्त इव तं ब्रह्म-	८३
अर्णवाह्वं धनुर्यस्य	३५३	अवद्वारस्ततोऽवोचद्	२५	असमासव्रताः ताश्च	३१३
अर्थेन विप्रहीनस्य	१४४	अवद्वारेण निर्गत्य	८७	असमासेन्द्रियसुखं	८४
अर्थोऽयं दुस्तरोऽत्यन्तं	२७१	अवनौ पूर्णकलशाः	१६५	असमातोपयोगस्य	२२६
अर्थदग्धतरुच्छायं	४	अवरुद्धा च सचेष्टा	१६१	असावुत्थितमात्रश्च	३७६
अर्धरात्रे तदा स्पष्टे	१५०	अवरोहंस्ततो देशा-	३३६	असारोऽयमहोऽत्यन्तं	१६०
अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा	३६८	अवलोक्य मुनीनित्यं	१८६	असिताभिः सिताभिश्च	१३६
अर्पितः पोषणायासौ	१२	अवश्यं यदि भोक्तव्या	१६६	असिपत्रवनं याता	७
अर्द्धबाहुलिकां दृष्ट्वा	३६३	अवसर्प ममाङ्गानि	२५२	असिपत्रवनच्छृङ्गाः	७
अर्द्धसन्नाहनामायं	३६३	अवसीदस्ततो दृष्ट्वा	३७५	असौ दूतोऽन्यदा राज्ञा	१८४
अर्द्धस्वर्गोदयश्चान्ये	२८६	अवस्थां वा गतामेतां	३२८	असौ पवनपुत्रोऽपि	३१७
अर्पितः पुष्पवत्यै च	६०	अवस्थितोऽयमत्रेति	१४३	असौ प्रसन्नकीर्तिर्मे	३११
अर्भकं च ददर्शाति-	११	अवाचि च प्रिये कस्मात्	४६	असौ मोचयिता तस्य	३७१
अर्हच्छासनदेवीव	६६	अवार्यवीर्यसंप्राप्तः	१५६	अस्ति क्रौञ्चधरं नाम	२८३
अर्हन्तं समतिक्रम्य	१४०	अविनृप्तं भयी काचिन्नर्तु-	३६२	अस्ति ते तुहिता राजन्	३२
अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्या	३५	अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन	२३१	अस्ति वेणातटे मेही	२६०
अर्हन्तो मङ्गलं सन्तु	२६६	अविदित्वानयोर्भेद-	२७५	अस्त्यत्र कनको नाम	४२
अलं कान्ते रुदित्वा ते	३८	अवोचज्ज्यायसी तासां	३१४	अस्त्यत्र प्रवरो नाम	२०७
अलंध्यवचनं तस्य	२६८	अवोचल्लक्ष्मणः पद्मं	१२०	अस्त्यत्र मिथिला नाम	२५
अलं तथापि सद्बक्त्रे	३०६	अव्यापारेण तातस्य	७४	अस्त्यत्र लवणाम्भोधौ	२८८
अलं प्रतिभयाकारा	१८२	अशंसिषं ततः किञ्चिदी-	३३४	अस्त्रं घनौघनिर्घोषं	३८०
अलं रुदित्वा नान्येव	२३२	अशुचिः सर्वमासादो	२०२	अस्त्रवाहनसन्नाह-	३५७
अलं वत्से रुदित्वा ते	२५४	अशुचेः कायतोऽन्योऽहं	६३	अस्मद्द्वारसमायातो	३१४
अलङ्कारोदयं नाम	२२४	अशेषवस्तुसम्पन्ना	१३६	अस्मरच्च भवं पूर्वं	६०
अलातचक्रसंकाशः	४१	अशोकमालिनी नाम	२६३	अस्माकं बहवः सन्ति	३४६
अवगत्य ततस्तस्मात्	१३०	अश्रद्धाघाना संरंभ-	६८	अस्माकमत्र वसतां	१६७
अवगम्य कुमारैवं	५५	अश्रुदुर्दिनवक्त्रायाः	१५२	अस्माकमपि नारीणां-	८२
अवगम्य ततो धर्मं	१३८	अश्वग्रीवो महासैन्यः	२६७	अस्माभिः सह युष्माक-	८८
अवगाहनधर्मोक्ता	२६५	अश्वत्यैस्तित्तिङ्गीकाभि-	२११	अस्मिन् जगत्त्रये राजन्	६७
अवग्रहोऽस्मदीयः क्व	२०६	अश्वस्थान् शालन्यग्रोधा	३३७	अस्मिन् महीधरे रम्ये	१७६
अवतारितमौर्वीकं	४१	अश्वारूढः स तं दृष्ट्वा	१०७	अस्मिन् राघव नाकामे	१३४
अवतीर्णः किमेषः स्था-	३५५	अश्वैरश्वा समं लग्नाः	३७६	अस्मिन् सुगहनेऽरण्ये	२०६
अवतीर्णा विमानाग्रा-	४१०	अष्टमोऽनीकनीसंज्ञ-	३५८	अस्मिन्नगोचरेऽन्येषा-	२२०
अवतीर्य गजात्तत्र	१६४	अष्टादशसहस्राणि धेनूनां	१४६	अस्मिन्नुच्चैर्निर्जराः	२१५
अवतीर्य ततः क्रुद्धो	३८०	अष्टादशसहस्राणि पत्नीनां	३५६	अस्य गङ्गादेशेषु	२१५

अस्य पोरसमुद्रस्य	३३०	अम्बष्ठः प्रोष्ठिलो राजा-	१५६	आत्मीयबलगुप्तश्च-	२५१
अस्याः पुरः समासनां	१३८	आकारमात्रमत्रैत-	२५	आत्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा	३७७
अस्याः शृणु यदाकृत-	१६०	आकुलां रक्षतां चैतां	२४८	आदरेण च तैः पृष्ठः	२५
अस्यां च ये गताः सिद्धिं	२६५	आकुलो मन्त्रिभिः साकं	२६५	आदरेणानुयुक्तश्च	१३६
अस्यां भगवता तेन	३०८	आकूपारसमं तेन	३३७	आदित्यश्रवणेनासौ	३८१
अस्या द्वारत्रयं पुर्याः	१३८	आकृष्टो नगरीमध्यं	१५८	अद्रिणेव स रामेण	२७७
अस्योद्देशाः शुभ्राः केचित्	२१६	आकृष्य कर्मुकं कूरं	४१	आनयाम्येष सत्कन्यां	५६
अस्योपरि परिक्रन्दं	२४८	आकृष्य छुरिकां केचि	११७	आनयेयमितः क्षिप्रं	१०५
अहं त्वां खेचरध्वान्	२८३	आकृष्य सागरजलं	३१४	आनायिकगृहीतोऽसौ	३५५
अहं पुनरनुतात्मा	१०६	आक्रोशः सारणं पापः	३७४	आनायितः पिता भूत्या	१२३
अहंयुरयमत्यन्तं	३०८	आख्यातं च कृमात् सर्वं	३१६	आनन्दं सर्वलोकस्य	१६६
अहं स लक्ष्मणो मुञ्च	१४६	आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा	१५६	आनन्दोद्यानमाश्रित्य	२७८
अहमार्यं गमिष्यामि	३११	आगच्छाशु ममाभ्याशं	११३	आपातरमणीयानि	५०
अहरत् पिङ्गलः कन्यां	६३	आगतं जनकं शात्वा	३०	आपूर्यमाणपर्यन्तौ	८७
अहिंसानिर्मल सार-	१४०	आगतश्च द्रुतं भूयः	२३३	आपृच्छ्या न मे किञ्चि-	७४
अहिंसा प्रवरं मूलं	८	आगतो यश्च सैन्येन	२१	आप्तप्रधारणन्याय-	३८
अहिसारलमादाय	६६	आगत्य नाकतः केऽपि	१३५	अभिमुख्यगतं मृत्युं	३६१
अहिदेवमहोदेवौ	३५५	आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या	१५६	आम्नाम्रातकांक्षोप्रा-	३३७
अहो कान्तिरमुष्येयं	८६	आगमिष्यति मे पुत्रो	२२६	आयातोऽभिमुखं तस्य	३६०
अहो जिनेश्वरे भक्ति-	३१४	आघ्रातः स चिरामोदो	६२	आयान्त्येव सती कस्माद्	२३०
अहो ते वत्स माहात्म्यं	३१०	आचार्यमार्यगुप्तं च	३	आयान्बहुविधा म्लेच्छा-	१५५
अहोऽद्यैकादशं जातं	३२४	आचार्यस्तु विविक्षौषी	५१	आरण्यकस्तदा हस्ती	३३४
अहो धैर्यमहो त्यागो	३०५	आचार्येणैवमित्युक्ते-	१६६	आरण्यतृणपानीय-	१०८
अहो परमधन्येयं	८२	आज्ञादानेन चाशेषान्	३५६	आरब्धं प्रसमं कार्यं	२३६
अहो परममाहात्म्यो	३	आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ	२७	आरुह्य च रथं सिंहै-	३७६
अहो परमिदं चित्रं	३३०	आज्ञापयति नगरे	१५५	आरुह्य तेन मुक्तः सो-	२६१
अहो पराक्रमो भद्र	३११	आज्ञापयत्यसौ देवो-	११६	आरुह्य वासितां भद्रां	५२
अहो प्रीतिरहो भक्ति-	८२	आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्त-	१५७	आरूढा विचरन्त्येते	२११
अहो प्रौढकुमार्या	४२	आज्ञानेन ततः सीता	३३२	आरोह देवि मे स्कन्धे	३३३
अहो महानुभावोऽयं	८१	आटोपमीदृशं दृष्ट्वा	१७	आरोहन्ती गिरिं देवी	१८०
अहो महान्तः परमा जनास्ते	४०७	आडुढौकन् द्रुतं चारु-	८१	आर्तस्तेन सदुःखेन	३००
अहो मे ययुना तेन	३०	आतिथेयाः स्वभावेन	१०१	आर्यदेशाः परिध्वस्ता	१६
अहो रूपमहो सत्त्व-	४११	आतोद्यानुगतं नृत्यं	१६२	आर्यनेताञ्जनपदान्	१५
अहो रूपमिदं लोके	३२५	आत्मश्रेयः समः पक्षः	२६३	आर्ये विद्याभूतां कन्याः	२७
अहो वीर्यमहो रूपं	१७५	आत्मश्रेयस्ततो वृद्ध-	२६३	आलम्बे यदि नो यष्टि-	४६
अहो वो विमला बुद्धि-	३१६	आत्मश्रेयोऽभिधानश्च-	२६२	आलस्योपहतो मूढो	११६
अहो शक्तिरहो रूप-	३०५	आत्मार्यं कुर्वतः कर्म	२५७	आलिङ्गिता मनश्चोर्वा	६२
		आत्मार्यनिरतस्त्यक्त-	१६६	आलीयमानमात्राणां	३३८
		आत्मीयं राज्यमापाय	५८	आलोक्य शम्भसङ्घातं	११६
आः पाप दयितादुःख-	२८२				

[आ]

आः पाप दयितादुःख-

२८२

आलोक्यावधिनेत्रेण	३८३	आस्तां स्वाभिनि ते वाक्या-	१६५	इति तां कुर्वतीमुच्चै-	१२
आवयोः किल दाराथं	१८६	आस्तुणद् वीक्ष्य तत्सैन्य-	३६७	इति ता वचनं श्रुत्वा	३२६
आवयारधुना भ्रात्रोः	२०७	आस्तुणानमथो दृष्ट्वा	११८	इति दीनमना गच्छन्	१३१
आवासाभिर्गतोऽपश्य-	१६१	आस्त्राल्यमारयाम्येनं	१०	इति ध्यात्वा पुरेऽमुष्मिन्	४०६
आवृतास्ते समुद्युक्तैः	३६५	आस्वादितं महावीर्य-	६२	इति ध्यात्वावलोकित्या	२३७
आशां च भजमानस्ता-	२४८	आस्वादमानो निजयेच्छयासौ	२१०	इति ध्यात्वाऽवहीरुर्ष	२४७
आशापरायणं नित्य-	१४१	आहवेऽभिमुखीभूतं	३८६	इति ध्यायन् महाभीत्या	१०५
आशीविषाग्निभूतेयं	२६०	आहारं भोक्तुकामस्य	३३०	इति ध्यायन् विनिश्चित्य	६१
आशुकारासुराकारा-	३७२	आहारदानपुण्येन	६७	इति निगदति पद्मे केकयी-	२२२
आश्चर्यं मोहतः कष्ट-	१६२	आहारो वायुपुत्रेण	३३३	इति निगदति रात्रवोत्तमे	२१८
आश्लिष्य जानकीं देवि	१७५	आहार्यैर्विविधैः शास्त्र-	२००	इति निजचरितस्थानेकरूप-	३६५
आश्वासं गच्छ विश्रब्धः	२०६	आहिताग्निद्विजस्तत्र	१३३	इति निर्यूहदेशेषु	८७
आश्वासितश्च प्राणौघै-	१८	आहुरन्ये समुद्धारः	२६६	इति निर्वैदमापन्ना	६०
आश्रयितोत्तरं तीरं	२२४	आहूतोऽथ हितैः पुष्पिभिः	१२०	इति पूर्वभवं ध्यानात्	२०१
आश्रयाश इव स्वस्य	३५३	आहो वंशस्थलं क्षित्वा	२३५	इति पृष्ठः समाधानो	३२८
आषाढध्वलाष्टम्याः	४५	आह्वयन्तः सुसन्नदाः	३६६	इति पृष्ठो महातेजः	६७
आसँल्लौकिकमर्यादाः	३७१	आह्वय स मयाऽवाचि	४०१	इति प्रशंसार्पितभाविता-	३८६
आसन्नं च परिज्ञाय	२८६	इ		इति प्रशस्य तं स्नेहा-	३११
आसन्नानां च वल्लीनां	१८१	इक्षां चक्रे च देवेन्द्र	५६	इति प्रसन्नतां प्राप्ते	२२३
आसन्नोऽयं महाभ्रामो	१३३	इक्ष्वाकुवंशसम्भूता	३५	इति बहुविधवाचां	३६०
आसन्नमहेन्द्रसंग्रामे	२५५	इक्ष्वाकूणां कुलं श्रीमद्	७६	इति मङ्गलनिस्त्वानै-	२६६
आसीच्च नन्दनच्छाये	३३४	इच्छामात्रादपि क्षुद्र-	२५३	इति मंत्रयमाणस्य	१६१
आसीत् दृष्टेरवष्टम्भ-	४८	इच्छामि विशदं श्रोतु-	१५७	इति राज्ञः पुरः कृत्वा	५
आसीदतिशुभे तस्मिन्	४०	इतः क्षमापटलं मेरो-	६	इति वनगहनान्यपि प्रयाताः	१५४
आसीदस्तु कुमारेषु	४०	इतराऽपि खलीकतुं	१६५	इति विज्ञाय विरसं	२०५
आसीदनन्तवीर्यस्य	२५६	इतश्चेतश्च विस्तीर्ण-	११८	इति विद्याधरी वाक्या-	४००
आसीदनुसमालोक्य	२८६	इतश्चेतश्च विस्तीर्णां	५६	इति विस्मयमापन्नः	३०३
आसीद् गृहपतिः ख्यातः	२६२	इतस्ततश्च तत्रार्चा	२५१	इति विहितसुचेष्टाः	४१४
आसीद्देवेन्द्रयुद्धेऽपि	३१०	इति कृत्वा स्तुतिं जानु-	१४२	इति संवेगमापन्नः	३०३
आसीद्वस्याधिमाहात्म्यं	३०४	इति केचित् समाधाय	१४१	इति संचिन्तयन् क्रुद्धः	१०
आसीद् स्थोपशोभाख्या	३२२	इति गत्या गतीः श्रुत्वा	१६४	इति सञ्चिन्तयन्ती सा	१५०
आसीनमञ्जलावेनं	३४५	इति गायति दैत्येन्द्रे	३२	इति सञ्चिन्त्य कामार्तः	२३७
आसीन् मम वपुः शैल-	४८	इति चावेदयन्नाथ	१५४	इति सञ्चिन्त्य जग्राह	१०६
आसीनमया कृता वाङ्मा	१६५	इति चिन्तयतस्तस्य कुमारौ	१८	इति सञ्चिन्त्य जायायै	१५२
आसीन्मे शीर्णपतित-	१४५	इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्ने	११०	इति सञ्चिन्त्य तामङ्गा-	२३६
आस्तां तावदिदं राज्यं	६४	इति चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो	२८६	इति सञ्चिन्त्य निर्याता	३८२
आस्तां तावदिदं वक्ष्ये	४	इति ज्ञात्वा क्षमं कर्तुं	१०	इति सञ्चिन्त्य निश्शब्दो	१४६
आस्तां तावद्वानवत्र	१४४	इति ज्ञात्वा महादुःखं	८	इति सञ्चिन्त्य संसाधु	२२६
आस्तां तावन्मनुब्रजनिताः	३८४	इति तद्वचनं श्रुत्वा	३२७	इति सञ्चिन्त्य सन्त्यज्य	१६०

इति सञ्चिन्त्य सम्भ्रान्त-	२४८	इत्युक्ते परिषत्सर्वा	११७	इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं	१३५
इति सञ्चिन्त्य सा बाला	१४८	इत्युक्ते पादयोर्दूतो	१५८	इत्युक्त्वा रथमारुह्य	१५६
इति सञ्जातचेष्टासु	३६२	इत्युक्ते पार्थिवोऽवोचत्	३७	इत्युक्त्वालिङ्गितुं क्षिप्रं	१६२
इति सम्भाषिते तस्याः	१६२	इत्युक्तेऽभिदधे तात किं	७६	इत्युक्त्वावस्थितं व्योम्नि	२४५
इति सुविमललीलः	२२०	इत्युक्तेऽभिदधे तात हृषीक	७७	इत्युक्त्वा वायुसम्भूतः	३११
इति सुविहितवृत्ताः	३४३	इत्युक्ते मुञ्चती वाष्प-	७५	इत्युक्त्वावार्यमाणानि	१३३
इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे	४०७	इत्युक्ते रघुचन्द्रेण	३००	इत्युक्त्वावार्यमाणोऽपि	२३७
इतो दृष्टावितो दृष्टौ	६४	इत्युक्ते रहसि स्थित्वा	३५	इत्युक्त्वा विकथाः कर्तुं	२६१
इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यै-	३७३	इत्युक्ते रामदेवोऽपि	१४७	इत्युक्त्वा विररामासौ	५७
इत्यश्रुदुर्दिनीभूत-	४०४	इत्युक्ते रुदतीं सीतां	३३५	इत्युक्त्वा विस्फुरत्पिङ्ग-	३६३
इत्याचार्यस्य वचनं	६	इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्यः	१२२	इत्युक्त्वा शिरसा पादौ	१३६
इत्यादिवर्णनायुक्ता	३६	इत्युक्ते वचनं वाति-	३३०	इत्युक्त्वा समिधाभारं	१३७
इत्याद्यालपसंसक्तं	१७०	इत्युक्ते वचनं सीता	३३१	इत्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा	१६८
इत्यार्तध्यानयुक्तस्य	५४	इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता	६२	इत्युक्त्वासी सुसन्नह्य	५६
इत्यासनं तयोरासी-	२४५	इत्युक्ते वैरसम्पन्नो	२४४	इत्युक्त्वा स्पष्टुकामं तं	२५८
इत्युक्तः करुणं यावत्	२२७	इत्युक्ते सीतया सार्धं	१२६	इत्युक्त्वा स्वगृहं गत्वा	१६१
इत्युक्तः कुपितो राजा	१७३	इत्युक्तो धृतिमासाद्य	६३	इदं कर्मविचित्रत्वाद्	२०६
इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः	३४१	इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन	२८७	इदं च प्रत्ययोत्पादि	३०६
इत्युक्तः प्रकटक्रोधः	११६	इत्युक्तोऽप्यपरित्यक्त-	११३	इदं जनो यः सुविशुद्धचेताः	६६
इत्युक्तः साञ्जलिः पत्नी	२०६	इत्युक्तोऽभिदधे तात	७७	इदं तद्गण्डकारण्यं	२१५
इत्युक्तस्तेन यातोऽसौ	२२४	इत्युक्तो मस्तके कृत्वा	१६५	इदं ते कथितं देव	११३
इत्युक्ताः सम्मदोषेताः	२४८	इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभाणीत्	२४७	इदं नाथ महाश्चर्यं	२२५
इत्युक्ता कुपितावोच-	३२६	इत्युक्त्वा कङ्कटच्छन्नः	२३५	इदं परं चेष्टितमाति-	१६६
इत्युक्ता लिखती क्षोणी	७५	इत्युक्त्वा क्षमयित्वा तं	१६६	इदं वाच्यमिदं वाच्य-	११५
इत्युक्ता वाष्पसम्भार-	२५७	इत्युक्त्वा चरितार्थः सन्	२६	इदं शिलरिणो मूर्ध्नि	३०८
इत्युक्तास्ते गता मोहं	२८८	इत्युक्त्वा दह्यमानोरु	१५८	इदमेव शरीरं मे	२५७
इत्युक्ते करुणाविलम्बः	११३	इत्युक्त्वा दुःखभारेण	१२८	इन्दीवरनिभेनाद्य	३७६
इत्युक्ते कोपमायातः	११७	इत्युक्त्वा दौषणं सैन्यं	२४४	इन्दुरश्मिर्जयस्कन्द-	३७७
इत्युक्ते कोपसम्भारं	३७६	इत्युक्त्वानन्दवाष्पेण	६५	इन्द्रायुधो गतत्वातः	३६७
इत्युक्ते कोऽपि नोऽत्यर्थं	३४	इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ	८६	इन्द्रियप्रभवं सौख्यं	१०८
इत्युक्ते चतुरैरश्वै-	२५०	इत्युक्त्वा परमं भिन्न-	२३४	इन्द्रियाण्यप्रमत्तः सन्	२०६
इत्युक्ते जनकेनैता	३२	इत्युक्त्वा परमोद्दिग्धो	२४१	इन्द्रियैर्वचितान् पृच्छ	१०७
इत्युक्तेऽत्यन्तसद्भक्तिः	६६	इत्युक्त्वा पादयोः कान्तां	१८३	इन्द्रेण साधितो यो न	३५६
इत्युक्ते द्विज उत्थाय	३	इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः	१४६	इन्धकः पल्लवश्चैव	३७१
इत्युक्तेन मया देवि	२५६	इत्युक्त्वा पुनरध्यासीत्	२४१	इभकर्णौ गणस्तेषा-	१३५
इत्युक्ते संयतं नत्वा	२८५	इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य	६५	इमं चन्द्रगतिः श्रुत्वा	५८
इत्युक्ते निश्चितं शात्वा	७३	इत्युक्त्वा प्रणतिं कुर्वन्	१३१	इमकं वनिता दृष्ट्वा	३४२
इत्युक्ते परमं तोषं	१२८	इत्युक्त्वा भावतः पादौ	७६	इमकैर्दुःकुलोत्पन्नैः	११४
इत्युक्ते परितुष्टेन	४००	इत्युक्त्वा मुदितोऽत्यन्त-	३७८	इमामप्रतिमाकारां	२३६

इमामप्रतिमाकारां	२३६	उक्तोऽपि मुख्य मुञ्जेति	२३३	उत्साहं परमं विभ्र-	२७४
इमे प्रिये फलकुसुमैरल-	२१८	उग्रनादस्तथा सुन्दरः	३६४	उत्साहयन् छुलोद्वृत्तं	१५६
इमे वाणासने कर्तु-	३६	उचितं किमिदं कर्तुं	३२४	उत्सेहे रावणो योद्धुं	३७८
इमैर्निगदितैः क्रोधात्	३४०	उच्चारयति नो शब्द-	१७२	उदात्ततेजसस्तस्य	३६०
इयं च तव शोकेन	७८	उच्चावचां क्षितिं वेगात्	४८	उदारभट्टकामिन्यो	११८
इयं च पुत्रशोकेन	७५	उज्जगाम ततो लोक	१६४	उदारे विजिते देव	३८१
इयं च शाक्तताङ्गा	७८	उज्जयिन्यां ददावर्ध-	१२२	उदारे सति सौभाग्ये	३७
इयं ते प्राणतुल्येति	२४१	उड्डपातः किमेष स्याद्	११	उदाहृतमिदं श्रुत्वा	७१
इयं नः सुमती माता	८७	उत्किरन्नितरां दृष्टो	३४८	उदीचीनं प्रतीचीनं	२५४
इयं मनोहराकारा	३२०	उत्तमलक्षणलक्षितदेहं	३१	उद्गतं भवने वह्निं	३५२
इयं यमालयं पापं	३१६	उत्तमस्त्रीसहस्राणां	३२७	उद्गता बद्धकवचाः	३८८
इयतं यस्य मे कालं	१३०	उत्तमा उपकुर्वन्ति	३६७	उद्गीर्णमानने नैव	६४
इयमेतदयं चल्ली	१७८	उत्तरीयांशुकस्योर्ध्वं	२६३	उद्घाटितकपाटानि	२५६
इरा नाम ततस्तेन	३३२	उत्तिष्ठति पुनः शून्यः	२६४	उद्दामानं मनोवेगं	२७
इष्टवस्तुविघातेन	२३८	उत्तिष्ठ भज निःशेषाः	३७	उद्दामाऽसौ महानाग-	३३४
इह चमरीगणोऽयमति-	२१६	उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः	६४	उद्धैरित्युपदेशोद्यै-	१०८
इह तावदलं भोगै-	१६७	उत्तिष्ठैवं गृहाणैवं	१४१	उद्धिन्नदन्तिदन्ताग्र-	३६२
इह-यत् क्रियते कर्म	१६७	उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्वं	१०५	उद्यन्तमन्यदा भानुं	३३४
इह संप्रेरितः कालः	१६७	उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषी	१३१	उद्यम्य नर्तकी खड्गं	१६४
इहायदि महाभाग	३१५	उत्तीर्णः सरितं पद्मो	८६	उद्यानं सुमहावृत्तं	५१
इहापि निखिले लोके	३०४	उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो	३६१	उद्यानमिव निर्याता	१०३
इहासीद् भारते वास्ये	७०	उत्तीर्य प्रसृतः सप्ते	१०८	उद्यानानि सुरम्याणि	१३७
इहैव लोके विकटं पयं यशो	३८६	उत्तीर्य विद्वित्क्रीडा-	१२६	उद्याने निकटे तस्य	१७०

[ई]

ईदकाराक्रमाकृत्यो	२३	उत्तीर्य स्वरथाद्वीर-	३८२	उद्धृत्तनकसूकार-	८८
ईदक्षीलगुणापेतो	११५	उत्तीर्य पद्मनाभेन	३००	उद्धृत्तोऽयमसौ पापः	३४०
ईदक्षमपि वाञ्छामि	३६६	उत्थाय सहसा दृष्ट्वा	२४६	उद्देगकारणं भद्र-	५
ईदशामपि श्लाघां	६०	उत्थायान्तिकमागत्य	२२६	उद्देगविपुलावर्ते	५४
ईदशो नाम नाथस्य	४७	उत्थायान्यापदेशेन	२३०	उद्देगानन्दसम्पन्नं	३०१
ईदशो चरिते कृत्ये	३२२	उत्पत्त्य च रथे तस्य	३१०	उद्देष्टव्यं दयितावाहु-	३६१
ईदशो समरे जाते	३६२	उत्पन्नः कनकाभायां	१८८	उन्मज्जत्प्रबलग्राह-	८८
ईष्टकाचिदभिज्ञाय	३३६	उत्पन्नो विमलाख्यायां	१८६	उन्मत्तवारणस्कन्ध-	१०२
ईर्ष्याक्रोधपरीतश्च	५६	उत्पात्य वायुपुत्रोऽपि	३३७	उन्मूलयन्निदं यन्त्रं	३१८

[उ]

उक्तं च गुरुणा भद्र	२०८	उत्फुल्लमुखराजीवाः	१६२	उपकारः कृतस्तस्याः	२२८
उक्तं च स्वामिना तस्य	१२८	उत्सवः स महाज्ञाता	१५३	उपगम्य ततः सीतां	३२७
उक्तं तातेन यस्तस्य	६५	उत्सार्य खेचरान् संख्ये	४०५	उपचारो यथायोग्यं	१५३
उक्तप्रत्युक्तमालाभिः	५५	उत्सार्य चोरलग्नां तां	१०४	उपनिन्ये शुभां कन्यां	१६७

एतस्मिन् कुसुमैः पूर्णा	३३४	एवं चिन्तयतस्तस्य	२८२	एवं स गदितो दध्यौ	११०
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः	२४४	एवं चिन्ता परे तस्मिन्	३१	एवं सङ्गान् सावसानान्	२५१
एतस्मिन्नन्तरे जाते	२५८	एवं चिन्तामुपेतायाः	७४	एवं सुदुःखितमतिः	३
एतस्मिन्नन्तरे दिव्य-	३८५	एवं जनः परां भक्तिं	४५	एवं हि बोधिता तेन	३३२
एतस्मिन्नन्तरे प्राप	२७२	एवं तयोः समालापं	५६	एवमस्तु शुचं मुञ्च	७१
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः पञ्चः	१८	एवं तयोर्महायुद्धे	३६०	एवमस्त्विति तेनोक्ते तारं	५८
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः स्वय-	२५८	एवं तिरस्कृतो मायां	२५८	एवमस्त्विति तेनोक्ते दध्मुः	१६४
एतस्मिन्नन्तरे साधु	६	एवं तौ चारुधानानि	१८८	एवमस्त्विति भाषित्वा	१२२
एतस्य वचनस्यान्ते	२७१	एवं तौ विहितालापौ	१८७	एवमस्त्विति संभाष्य तं	३०६
एतस्यां स निषण्णेति	२८१	एवं दुर्गते जाते	२६७	एवमस्त्विति संभाष्य देवी	१२
एतस्याकृतिमाश्रित्य	२७१	एवं धर्मिणि देहेऽस्मिन्	१८६	एवमस्त्विति संभाष्य नृपो	११४
एताभिरपराभिश्च	३१६	एवं ध्यात्वानुराधाद्यैः	२७५	एवमस्त्विति संभाष्य प्र-	३६४
एतामनायकीभूतां	३८१	एवं नानाविधैर्ब्रह्मै-	२५६	एवमस्त्विति सम्भाष्य	
एतावतैव संसारः	४११	एवं निगद्य शास्त्रायां	१४६	प्रणम्य	२०७
एतास्त्वया परित्यक्ता	१६३	एवं निश्चितचित्तो	८५	एवमस्त्वित्यभीष्टायां	१६७
एते किं लोचने तस्या	२८२	एवं परममाहार-	३३३	एवमादिकृतालापाः	११६
एते खण्डवयाधीशा	२६७	एवं प्रभातसमये	५२	एवमादि गदन्तस्ते	८८
एते चान्ये च भूयांसश्चारु	१६५	एवं प्रभो करोमीति	१३१	एवमादि चिरं कृत्वा	४०३
एते ध्वजोपरिन्यस्त-	३४८	एवं प्रयत्नीकृतयोग्य-	३६८	एवमादितरं भूरि	३०१
एतेऽन्ये च महासत्त्वा-	१५६	एवं प्रवदमानं तं	३५३	एवमादिभिरालापैः	३६३
एतेऽन्ये च महासत्त्वा महा-	३६	एवं प्रशान्तसंरम्भे	१६५	एवमादिमहादोषा	६६
एतेऽपि बलिनः सर्वे	२६६	एवं भगवतो वक्त्र-	२५६	एवमादीनि वस्तूनि	१४२
एतेऽपि वातरंहोभी	३६४	एवंभूतापि नो यावत्	२३०	एवमाद्याः क्रिया क्लिष्टा	२६५
एते वाजियुतैः कान्तै-	३६८	एवं मनोरथं सिद्धं	२२६	एवमाद्याः पुराभिख्याः	३५७
एतैरन्यैश्च विविधै-	३१०	एवं मोहपरीतानां	२०८	एवमाद्याः सुबहवः	२८६
एतौ प्रयामि शरणं	२०१	एवं युक्तो महाभूत्या	३०७	एवमाद्या महायोधा	२५०
एवं कुरु न चेदेवं	१६३	एवं वर्षसहस्राणि	४०४	एवमित्युदिते याता	११४
एवं कृतध्वनिध्रम्यन्	२३६	एवं वायुगतिः पृष्ठो	१५७	एवमिन्द्रजितेनापि	३८१
एवं कृतसमालापां	४११	एवं विचिन्तयन्तीभिः	१२३	एवमुक्तः स तैरुचे	११६
एवं कृते न ते भेदं	१६७	एवं विदिततत्त्वानां	३५६	एवमुक्तं त्वया नाथ	१४६
एवं गजेन्द्रवद्बद्ध	३६६	एवंविधममुं युद्धे	२८६	एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धः	२६०
एवं गतेऽपि विश्राणः	१६३	एवं विध्वंसयन् यावत्	११७	एवमुक्तं समाकर्ण्य सीता	२६०
एवं गतोऽपि चेत् कर्तुं	३८६	एवं विनिर्गता योधाः	३६३	एवमुक्तस्तया साकं	१६२
एवं च चिन्तां सततं प्रपन्नो	१००	एवं विमृश्य विद्वांसः	२६८	एवमुक्ता विस्वज्यासौ	२३२
एवं च पर्युगस्येतौ	२०१	एवं विमृश्य सज्जात-	२७०	एवमुक्ता सती सीता	२५२
एवं च मानसे चक्रे	७१	एवं विरचिता क्षोणी	३६८	एवमुक्ते कुमारीणां	१२३
एवं च वाचिते लेखे	१५६	एवं विलापिनी कुञ्जरा	४०७	एवमुक्ते तथा स्वैरं	१३३
एवं च सुचिरं स्तुत्वा	२६६	एवं विषमतां प्राप्ते	३०१	एवमुक्ते विमुक्तः सन्	८०
		एवं संख्यब्रह्मोपेतं	३५८	एवमुक्तेऽस्रसंपूर्ण-	३८

एवमुक्तो जगादासौ	७५	कदम्बविटपौ भीमो	३६४	कर्मभारगुरुभूता	१४१
एवमुक्त्वा तथा कृत्वा	१४२	कदम्बैस्तिलकैर्लोभै-	२११	कर्मविच्छेदितमेतदमुस्मिन्	३२३
एवमुक्त्वाभिमानेन	१६३	कदाचारसमुद्रे त्वं	३४१	कर्मानुभावतस्तच्च	३७
एवमुक्त्वा मरुत्पुत्र-	३२३	कदानु विषयास्त्यक्त्वा	५०	कलं प्रवरनारीभि-	५८
एवमुक्त्वा शुचा ग्रस्तं	१४५	कनकस्याग्रजो राजा	५८	कलाकलापनिष्णातो	४२
एवमुग्रान् विमुञ्चन्तं	२८३	कानने सीतया साक-	१२५	कल्पोद्यानसमच्छाद्य-	१८५
एवमुद्गतसदृष्टि-	१४१	कनीयास्तस्य धर्मोऽय-	६६	कल्पिताः पुरुशोभादयाः	३४६
एवमुद्देगमापन्नो	१४३	कनीयानसि स त्वं मे	३८६	कल्लोला इव निर्जग्मुः	१२७
एवमेकाकिना तेन	११७	कन्दमूलफलाहारा	२१	कश्चित् परगृहं प्रातो	८६
एवमेवेति सोऽनोचद्यद्	३२२	कन्याया मुदितश्चौरः	२	कश्चित् सुरतखिन्नाङ्गो	८६
एष खङ्गधनुच्छाय-	११८	कन्या त्वय ह्युधात्तेन	४०५	कश्चित् सन्धार्य दन्ताग्रैः	३६१
एष प्रत्युपकारं मे	२७५	कन्याभिर्घटकैः स्वादु	१०१	कश्चिदङ्गतां कान्तां	४०८
एष ममोपकरोति सुचेताः	३७३	कन्यामेकामुपादाय	१६७	कश्चिद्विघटितं हृष्टा	३६१
एषां मध्ये न पश्यामि	२६८	कन्या स्वयंवरा साध्वी	५५	कष्टं चिन्तितमेतन्मे	२६६
एषा क्रौञ्चरवा नाम	२१६	कपिकेतुरुवाचेदं	२७६	कष्टमेककयोर्जाते	१६०
एषा गन्तासि वैधव्यं	३३२	कपित्थवनमानम्रं	४०४	कष्टावस्थां ततः प्राप्तं	१३१
एषा नीला शिला स्यात्तिमिर-	२१६	कपिध्वजबलं तेन	३७८	कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि	४००
एषा यातानेकविलासा-	२१८	कपिमौलिभृतामीशं	३४२	कस्त्वसौ भविता लोके	३१५
एषाऽसौ विजनेऽरण्ये	३०८	कपोतभृङ्गराजश्च	२१२	कस्मादयं जनोऽस्माकं	२७२
एषोऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः	१६८	कमण्डलुशिखाकूर्च-	१३३	कस्मैचित् पूर्ववैगुण्यं	८६
एहि वत्स निजं रूपं	२२८	कमलजालकराजितमस्तकः	२१४	कस्य पुण्यवतो गोत्र-	१७०
एह्यागच्छ क्व यातोऽसि	१५०	कमलनिकरैर्ध्वज स्वेच्छं कृता-	२१७	कांश्चिच्चिच्छेद बाणोद्यैः	२०
एह्यागच्छ (प्र) यातोऽस्मि	२३६	कम्बोजेन सताकारि	७०	कांश्चिदन्योन्यघातेन	११७
[ओ]		कयानः कमशो भूत्वा	६३	कांश्चिदश्रुतवृत्तान्तान्	२८५
ओदनच्छादिते हेम-	३५५	कयानोऽयं सुरो हर्ता	६३	कांश्चिद् विशातवृत्तान्तान्	२८५
[क]		करञ्जकुष्ठकालीयै-	२१२	काको नदा इति ख्याता	१३०
कचिद्वावेन निर्दग्ध-	१२६	करवालीकराक्रूर-	१८२	का क्व कामिस्त्वया दृष्टा	३६
कचेषु कांश्चिदाद्ध्य	११७	कराञ्जकुड्मलाङ्गेन	१६६	काचिजगाद ते नाथ	३६१
कटकस्य प्रसादेन	२६३	करिबालककर्णान्त-	१८६	काचित् सन्नाहरुदस्य	३६३
कटिसूत्रमणिप्रायाः	१६	करुणं बहु कुर्वन्त्यः	१२०	काचिदिन्दुमुखी वामे	३३६
कथं जानासि देवीति	१५०	करेण हृदयं मार्ष्टि	२६४	काचिदीर्घा कृतं त्यक्त्वा	४०८
कथं त्रिभुवनख्यातो	३४	करेणोरवतीर्याऽसौ	५२	कचिदुत्तानितं भर्तु-	३६२
कथं निरुत्तरा यूय-	२४०	कर्णकुण्डलनद्याश्च	३३५	काचिद्बुधे यथैतरो	३६२
कथं मे न भवेद्धर्ता	७४	कर्णकुण्डलनामात्र	२०३	काचिद्वत्सुते भर्तुः	३६२
कथं वा तव मन्त्रोऽयं	१११	कर्णयोरतिदुःखानि	१४३	काचिन्निवर्त्यमानापि	३६३
कथं वा मुच्यते पापै-	६	कर्ता रोगसहस्राणां	४०२	कातरस्य विषादोऽस्ति	५६
कथाभिः स्मितयुक्ताभिः	१५१	कर्तुं प्रत्युपकारं यो	३०५	का तस्य बुद्धिर्न्यायेषु	३०५
कथितं ते महाराज	२८५	कर्मपाशैर्यथा जीवो	३६२	कान्ताविशोगदावेन	२७५
		कर्मभक्त्या जिनेन्द्राणां	६८	कान्तिभासि मुखं दृष्ट्वा	३२७

कान्ते रामपुरी किं नो	१४१	किं वा दुर्गं समाश्रित्य	१६	किष्किन्वेशस्ततो भ्राग्यन्	२६६
कामदाहरहीतात्मा	२३७	किं वा दुष्ट द्विजा केचि-	२३५	किष्किन्वेशस्ततोऽवोचत्	३७६
कामाग्निः कामराशिश्च	३६४	किं वा मद्विरहादुग्र-	३२८	कीदृश्वामं मया नाथ	३८
कामार्चिषा परं दाहं	७७	किं वृथा गर्जसि क्षुद्र	२४५	कीदृशी वा सती सीता	३२२
कामार्थाः सुलभाः सर्वे	३६६	किं स्यादसुरनाथोऽयं	३१७	कीर्तयन्ती गुणान् भूयः	२३८
कायं भ्लेच्छो महाशत्रुः	१३१	किङ्कराणामतः पत्न्यो	३६१	कीर्तिरस्य निजा पाल्या	३३०
कारणं यदतिक्रान्तं	५६	किङ्किणीजालयुक्तानि	१६५	कुक्षिजातोऽपि पुत्रस्य	१२
कारयाभूर्मिकां स्वार्णी	११०	किञ्चित् किल त्रपाभाजं	२२६	कुङ्कुमप्रविलिताङ्गा	७२
कामुर्कं क्षिप सुञ्चाश्चं	११६	किञ्चित् पद्मवियोगेन	६१	कुटुम्भमेदने दक्षैः	११३
कालः कर्मेश्वरो दैवं	८२	किञ्चित् सम्भ्रान्तधीर्वाति	३३६	कुतः किं राजपुत्रीति	२१२
कालं देशे च विज्ञाय	१७६	किञ्चिदाहृत्यते दत्त-	२६४	कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य	६८
काले तत्रैव नेष्यन्ते	१२३	किन्तु त्वद्विरहोदार-	३४५	कुतः समागतः कस्त्वं	१७३
कालेनाथ सुतं देवी	१०	किन्तु रात्रौ निशीथेऽस्मि-	४०८	कुतः समागतावेतौ	१७०
काले महत्यतिक्रान्ते	२०५	किन्त्वयं वर्ततेऽत्रैव	१६१	कुतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं	१६०
कालो नाम यमो वायुः	११६	किमङ्गदो गतो मेरुं	२७२	कुतोऽयमीदृशो वायु-	४०३
कालो नैष विषादस्य	२४६	किमञ्जनासुतं गत्वा	२६६	कुन्तासितोमरच्छत्र	२६१
काश्चिदुत्कण्ठया युक्ता	१०२	किमत्र बहुनोक्तेन प्र-	३१८	कुन्दातिमुत्कलता	१६५
काषायप्रावृता चाहं	१६२	किमत्र बहुनोक्तेन समु०	३३१	कुनतेस्तव धीरेषा	१२१
काष्ठाद्यानयनासक्ता	७२	किमद्यैव करोम्यन्यां	८१	कुमाराः परमोत्साहा	३६
किं करिष्यति वः शत्रु-	३६६	किमधीतैरिहानर्यां	१८८	कुमाराभ्यां समं गन्तु-	८२
किं करोमि क्व गच्छामि	४०३	किमनेन विचारेण	८१	कुमारे च हता माता	१६३
किं करोमि क्व गच्छामि		किमयं वनदेवीभिः	१५०	कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्यै-	३५३
विवरं	१४३	किमयं शक्रजिज्ञायं	३७८	कुम्भीपाकाख्यमाख्यातं	७
किं कार्यं पशुसंज्ञैस्ते-	१७	किमिति स्वविनाशाय	१६३	कुरुगदाकरावा	७
किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि	१३६	किमिदमिह मनो मे किं	२३१	कुर्वन्तीव लतालीलां	२६३
किं किमेतदहो नाथ	२३४	किमियं जानकी नैषा	२८१	कुर्वन्ती सा महाक्रन्दं	२८७
किं तद्धर्मार्थकामेषु	१६२	किमेतदिति प्रष्टश्च	२६६	कुर्वन्तु सर्वथा देवा	४००
किं तिष्ठत सुविश्रब्धाः	३३६	किमेष रमते युद्धे	११६	कुर्वेनं मुक्तकं भद्र	१६५
किं त्वमिच्छसि वैदेहीं	२६७	किमेषा नगरी नाका-	१३७	कुलं गोत्रं च संश्राव्य	३२७
किं न प्रतिभये शीघ्रं	२८६	किमेषा नर्दति क्षोणी	२४६	कुलपर्वतकुञ्जेषु	२८५
किं न स्पृष्टं न किं दृष्टं	६२	कियन्तः कथयिष्यन्ते	३६५	कुलपर्वतसंयुक्तां	२५२
किं नाथाकुलतां धत्से	२५४	कियत्यपि ततोऽतीते	५०	कुलपातं निमज्जन्तं	८४
किं नु दुःखेचरैः संख्ये	३२८	किष्किन्धं च पुरं गत्वा	३१६	कुलमेकं पिताप्येक-	४२
किं नो गृहेण किं भोगैः	८६	किष्किन्धस्वामिनोऽन्येऽपि	३४७	कुलिशोदरनामा च	४६३
किं पुनस्तस्य माहात्म्यं	१५	किष्किन्धाधिपतिर्वातिः	३४८	कुशाग्रनगरेऽयं	१३६
किं भीतोऽसि न हन्मि त्वां	३६०	किष्किन्धाधिपतेः सैन्ये	३७८	कुसम्बन्धं परित्यज्य	३४
किं वा कृतार्थतां प्राप्तः	२८२	किष्किन्धास्त्रिपुरारत्न	३५३	कुसुमप्रहणव्याजात्	१६१
किं वाऽत्यन्तक्षुधात्तैन	२४२	किष्किन्धेन्द्रेन्द्रजिह्वीरौ	२५०	कूर्चाच्छादितवक्ष्को	१०५
किं वाच कृत्यं बहुभाषिते	२२	किष्किन्वेशः समाल्याख्यं	३६०	कूर्मपृष्ठमहातेजः	३०३

कूलेषु सरितामद्रेः	१३५	केचिज्ज्वराकुलाः पेतुः	४०	क्रमेण मानिनस्ते च	४०
कृच्छ्रान्नियम्य शोकं च	१२६	केचित् केवलमासाद्य	६०	क्रमेणातीत्य शिविरं	११६
कृतं कृतमहो साधु	३०१	केचित्पन्नगवातेन	४०	क्रमेलकमहारावा	३६८
कृतं तैरात्तनः श्रेयो	१०८	केचिदध्वजखेदेन	८७	क्रम्यादा विरसं रेसुः	१८२
कृतं परेणाप्युपकारयोगं	३०७	केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता	३६१	क्रीडास्वपि त्वया देव	८६
कृतं सौमित्रिणा नूनं	१७५	केचिदूर्चुर्यदि स्थानं	४०	क्रुद्धः सिंहोदरो यत्ते	११०
कृतपूर्वोपकारस्य	३६७	केचिद्विज्ञाञ्जनच्छायाः	१६	क्रुद्धा इव परं तीव्राः	४०१
कृतप्रचिन्तनामेवं	३२५	केतकीसुतिरजसा	२२३	क्रुद्धाच्चकधरादाहां	४०२
कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः	४४	केतुकल्पनदृष्टेन	३७६	क्रुद्धेन कुम्भकर्णेन	३७८
कृतसान्त्वनमप्युच्चै-	६१	केतुतोरणमालाभि-	४३	क्रुद्धो जगज्ज सुग्रीवः	२७३
कृतस्मितोऽसावगदत्समीपे	४१३	केयूररत्नजटिलै-	२५५	क्रूरकर्मभिरन्यैश्च	२०४
कृतस्यास्योपकारस्य	३२६	केवलज्ञानसम्भूति-	१८३	क्रूरश्वापदयुक्तेषु	१६६
कृतान्तेमेव निरुद्ध-	३७	केवलो द्रोणमेघाहुः	४०१	क्रोधसंस्पृष्टचित्तेन	३३६
कृतान्तापकृतं किं ते	२२८	केवलयास्यात् समुद्भूता	१८८	क्रोशं क्रोशं शनैस्तत्र	१६६
कृतापणमहाशोभं	३०२	केशभारं मयूरीषु	२८२	क्व गतास्ता नु नर्तक्यः	१६८
कृता मया प्रतिज्ञेयं	११३	केशरैश्चन्दनैर्नापै-	२११	क्वचित्सालादिभिर्वृक्षै-	१२६
कृतार्थवत्तातदशाननोऽसौ	४१३	कैकसीनन्दनोऽवोचद्	३२४	क्वचिदिदमतिघनवरनग	२१५
कृतार्धभाषणस्यास्य	२४४	कैकसेयी सुतस्नेहाद्	२२६	क्वचिदुद्धमदगजपातित-	२१५
कृतावग्रहमेवं तमुवाच	६६	कैलासपर्वते पूर्वं	४१०	क्वचिदिनं क्वचित्पक्षं	२११
कृती चपलवेगश्च	३०	कैव वार्ता पृथिव्यां नु	२८	क्वचिद्भ्रमरसङ्घातै-	१७८
कृतौ सुग्रीववैदेहौ	३८१	को दोषः कर्मसामर्थ्या-	१६४	क्वचिद् वह्निशिखाकारः	२१०
कृत्यं किञ्चिद्विशदमनसा	२६८	को दोष इति सञ्चिन्त्य	१२५	क्वचिद्विद्रुमसंकाशं	१७८
कृत्वा करपटं मूर्ध्नि	२५३	कोऽन्धः कूर्पं समापन्नो	२३२	क्वचिद् विभ्रान्तसत्त्वकं	२१५
कृत्वा चैत्ये नमस्कारं	६	कोपकम्पश्लथं चास्य	३४७	क्वचिन्नाय्यं क्वचिद् गीतं	१६६
कृत्वा तं विरथं भूयो	३७५	कोऽपराधो वदास्माकं	८६	क्वचिन्नाशेखरीभाति	१६६
कृत्वा निदानमेतस्याः	४०५	कोपस्मितसमायुक्ता	३४०	क्वचिन्नीलं क्वचित् पीतं	१०३
कृत्वापराधकः पूर्वं	८६	कोपेन तप्यमानस्य	२०४	क्व तत् क तत् प्रिये साध्वि	२००
कृत्वा पुरस्सरान् पद्म-	६४	कोऽप्युद्दामतयोद्यानं	३३६	क्व महासम्पदो देवैः	३४
कृत्वा पुराणवस्तुनि	१६२	कोऽप्येष पुरुषो नाथ	११८	क्व मे पापाधुना याति	२४
कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां	१६१	कोलाहलेन रम्येण	२१२	क्व यातमधुना तत्ते	३३१
कृत्वा बालतपः कष्टं	१८८	को वाज नृपतेर्दधिः	४६	क्व वयं क्षुद्रसामर्थ्याः	२८८
कृत्वा मे मस्तके पादं	४०६	को वा प्रात्रव्यकालोऽस्या	३	क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रि-	३९६
कृत्वा सुनिभृतं भृत्यं	१३२	कोऽसौ नाथेति तेनोक्तं	२०७	क्वासौ महामुनिः क्वासा-	१६७
कृत्वास्य महर्तो पूजां	१६८	कौतुकोत्कलिकाकीर्ण-	१६७	क्वेदानो गम्यते साधु	२४४
कृत्वेदमीदृशं सैन्यं	११६	क्रमाच्च यौवनं विभ्रद्	१११	क्ष्णं चिन्तागतः स्थित्वा	१६४
कृपाणं यावदादत्ते	२०	क्रमादरिज्ये जाता	३७२	क्ष्णं बाणाः क्ष्णं दण्डाः	३६२
कृशोदरि गवाक्षेण	२५२	क्रमेण गच्छतश्चास्य	१७५	क्ष्णं स्थित्वा च वृत्तान्तै-	३२
कृष्णसर्पो मृतस्तस्य	२०३	क्रमेण तालमस्थन्तः	६०	क्ष्णं स्थित्वाऽतिरम्भाणि	१६६
केकयानन्दनः श्रीमान्	१५८	क्रमेण प्रणमन् साधू	१८६	क्ष्णविरचितसर्पश्लाघ्यकर्त्तव्य	४१४

क्षणादग्निमित्रालोक्य	२०२
क्षणास्त्रिवर्तते यावत्	२३६
क्षणेन प्राप्य संज्ञां च	३०
क्षन्तव्यं दुरितं किञ्चि-	१६८
क्षन्तव्यं देव यत्किञ्चि-	१४७
क्षपितारिः समाहृतः	३७५
क्षान्तार्था वृन्दमध्यस्था	३
क्षितिगोचरदूतंऽयं	३४२
क्षिप्रं समर्प्यतां सीता	३५१
क्षीणमस्थमिरामाङ्गं	३४४
क्षुत्तृष्णापरिदग्धाङ्गा	४०४
क्षुत्तृष्णापरिदग्धाङ्गो	४०६
क्षुदतिकुब्धशार्दूल-	१०२
क्षुद्रशक्तिसमासक्ता	२६६
क्षुद्रस्याथ शिखी जातु	२६१
क्षुब्धः स्वासनकम्पेन	१६०
क्षुब्धाकूपारनिर्घोषा	२११
क्षुब्धाकूपाकनिस्वानं	४१
क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः	३७२
क्षेत्रवंशसमुद्भूताः	२२५
क्षेपिष्ठं प्रमदारत्नं	२६
क्षेमङ्करनरेशस्तु	१६०
क्षोणीक्षोभं परं प्राप्ता	३६८
क्षोमणो धुन्धुरुद्धामा	३६४
क्षमागोचरस्य निलयं	२७

[ख]

खञ्जगदस्य खण्डोऽयं	२४२
खड्गांशुलीढदेहश्च	२४५
खड्गि-खड्गसमुज्जोढ	१०३
खरदूषणनामा त्वं	२३३
खरदूषणशोकेन	२५६
खरेण सह संग्रामं	२४५
खर्जूरैरिड्गुदैर्गमै-	२००
खलीकारात्ततः पूर्व-	१८६
खिन्नोऽसौ धरणो दुःखं	६१
खेचरा भूचराश्चैते	५६
ख्यातं मयमहादैत्य-	३६०
ख्याते शशिपुरे स्थाने	६६
ख्यातो घनगतिस्तीव्रो	३४६

[ग]

गच्छन्निप्रं निजं धाम	१३१
गच्छन्तं तं महाभाग्यं	३०१
गच्छतस्तस्य वातेन	२८२
गजदन्ताग्रभिन्नस्य	३६२
गजध्वजसमालक्ष्यौ	३६६
गजवाजिविमानस्था-	३२२
गजवीभत्सनामानौ	३६४
गजाह्वान्नगगदेत्य	४०६
गजोऽयमस्य शैलाम-	३६
गणाधिपसमेतोऽसौ	२०४
गतश्च लक्ष्मणः पद्मं	३२६
गताऽऽगता च सा तस्मै	२६३
गताया व्यसनं घोर-	३२६
गते साधौ तपोयोग्यं	१०६
गत्वा कृत्वाञ्जलिर्दत्तः	१२५
गत्वा कथितसङ्क्षेमः	३८३
गत्वा पवनपुत्रेण	३४६
गत्वा पवनवेगेन	६४
गत्वा प्रबोधविश्यामि	३०५
गत्वा महेन्द्रकेतुश्च	३११
गत्वा स यावदन्विष्यं	४६
गदाप्रहरणं विद्युद्वक्त्रा	३८३
गम्भीरो दीन्दुभो धीरो	३०२
गरुडाधिपतिश्चासौ	१६०
गरुडेन्द्रस्य तोषं च	३८६
गरुत्मकेतने तस्मिन्	३८५
गरुत्मपक्षवातेन	३८५
गर्जितैरिति भीराणां	३६१
गर्भवासपरिक्लेश-	२२५
गर्भस्थ एव चैतस्मिन्	१६३
गर्भे च तौ विदेहाया	६
गले तदंशुकैर्नैव	११६
गवाभरणजातानां	२००
गवेपयत यत्नेन	२४७
गहनान् कोकिलालापान	२६३
गहनेषु समस्तेषु	२८५
गाढप्रहारदुःखात्तः	३६३
गायतोऽक्षगाथेयं	१८१

गिरिः सप्तभिरुद्यानै-	२६२
गीतजल्पितमुक्तानि	२७२
गीतनर्तनवादित्रै-	६८
गीतनृत्यादिसम्प्राप्ता-	७२
गीतानुगमसम्पन्न-	१८२
गीर्वाणकुरुदेशाभं	३२५
गुडेन सर्पिषा दध्ना	१६६
गुणश्रुत्यनुरागेण	२७६
गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्-	३१६
गुणोच्चारणसम्बोद्धः	११५
गुप्ता बहुविधैः सैन्यै-	१५
गुरुः प्रावाच वचनं	६
गुरुणा च यथादिष्टं	२०८
गुरुपूजां परां कृत्वा	६१
गुरुभिर्वार्यमाणोऽपि	२२६
गुरुरुचे न यो मांसं	८
गुरुवाक्यानुरोधेन	२३४
गुरुरूपदेशयुक्तोऽसौ	१३८
गुरुन् परिजनं वृद्धान्	३४१
गुरोस्तस्य प्रसादेन	१०
गृहं प्लावितुमारब्धा	१२७
गृहाण तदिदं देवि	४६
गृहाण प्रहरागच्छ	३६०
गृहाणैतत्तत्तस्तुभ्यं	२६३
गृहाश्रमे महावत्स	७६
गृहिधर्मसमासक्तो	६६
गृहीतगमनक्षेत्रं	३४७
गृहीतबलराज्यं तं	५
गृहीतश्चायमेतेन	२२७
गृहीतसायकं दृष्ट्वा	२२७
गृहीतादरसर्वस्वो	३७८
गृहीत्वा च परां पूजां	३०
गृहीत्वा च प्रमोदेन	११
गृहीत्वा समयेनास्य	१६५
गृहीत्वासीं ततो राज्ञा	१५५
गृहोपकरणं भूरि	११३
गृह्णातु रुचितस्तुभ्यं	१२०
गृह्यतो गृह्यता काऽयं	२३
गोचण्डारवसम्पूर्णं	१०४

गोत्रक्रमसमायात-	४६	चक्षुस्तत्र द्रुतं केचि-	४०	चलिताश्चञ्जलप्रीवाः	२६१
गोपुरं च समासीद	११४	चण्डविक्रमसम्भन्नां	२०३	चान्दनेन द्रवेणैतां	२६६
गोमायुग्रावृत्तान् काश्चित्	२६६	चण्डसौदामिनीदण्ड-	३७६	चापं यावद्वितीयं स	३०६
गोशीर्षचन्दनेनैव	४१२	चण्डातकं समुद्भिद्य	१२७	चारणप्रियमुद्यानं	२६२
गोष्पदप्रमितं क्वैतद्	३५६	चण्डोर्मिमालयाऽत्यन्तं	२४१	चारुनूपुरनिष्ठानां	१७
ग्रस्ताराक्षससैन्यास्तै-	३८६	चतस्रो यस्य सम्पन्नाः	३५	चारुवंशप्रसूतानां	२५८
ग्रस्यमानं निजं सैन्यं	३७६	चन्दनादिभिरालिप्तं	३३३	चारुश्रीरिति विख्याता	२७६
ग्रहणं वा भवद्भिः किं	३५	चन्दनार्चितसर्वाङ्गः	३२७	चित्तोत्सवकरी पद्म-	२४०
ग्रहनक्षत्रपटल-	१३५	चन्दनेन विलिप्तस्य	६५	चित्तोत्सवा समायुक्त-	५
ग्रामखेटमयवेणु	८७	चन्दनेन स दिग्धाङ्गो	२१०	चित्रं श्रेणिक ते वाणाः	३६२
ग्रामाश्चायतवापीभिः	१०५	चन्दनैररङ्गकैश्च	२१२	चित्रं सुग्रीवराजो मां	२७०
ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि	१४५	चन्द्रकान्तेद्रीलान्तः	१८०	चित्रकूटः सुदुर्लङ्घ्यः	१०२
ग्राव्या निश्चूर्ण्य तद्रत्नं	३५५	चन्द्रबिम्बमिवाचूर्ण्य	११५	चित्रपादपसङ्घातै-	२१२
ग्राहसहस्रचारविषमा	२१७	चन्द्रमःकान्तवदनां	२३६	चित्रमासीद्यदश्वानां	३०१
ग्रीष्मढामरकं धारं	१३५	चन्द्रांशुरप्रतीयातो	३६७	चित्रमिदं परमत्र नृलोके	३२३
[घ]		चन्द्रादित्यसमे लङ्घे	३८३	चित्रयस्यादरी सीतां	२६५
घटस्तनविमुक्तेन	३३६	चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या	२७६	चिन्तयत्येवमेतस्मिन्	३२०
घटिता सा ततस्तेन	११०	चन्द्रोदरसुतः सोऽयं	२४७	चिन्तयत्येवमेवास्मिन्	७१
घनकाजस्ततः प्राप्तो	१३५	चन्द्रोदरसुतं प्राप्य	३५६	चिन्तयन्नयमित्यादि	१६६
घनच्छायाकृतश्रद्ध-	२६१	चम्पकैः कर्णिकारैश्च	२११	चिन्तयन्नित्यतिक्रम्य	२७२
घनवाहनवीरोऽपि	३०८	चरमांगधरं दृष्ट्वा	१६३	चिन्तयन्नदमन्यच्च	२६५
घनानामिध सङ्घास्ते	११८	चरितं निरगाराणां	५६	चिन्तयित्वाप्यसावेवं	५०
घृणावान् संप्रभार्थेदं	१०	चविभिर्धातक्रीमिश्च	२१२	चिन्तयेव हतच्छायः	३४४
घृतक्षीरमिदं जातं	११५	चतुःषष्टिसहस्राणि	१६०	चिन्तयित्वा प्रमादेन	१६०
घृतसूपादिभिः काश्चित्	३३३	चतुरङ्गबलं पेतौ	१८	चिन्तास्य नित्यं मगधाधिपा-	६६
[च]		चतुरङ्गस्य देशस्य	१२२	चिन्तितं च मया तच्चे-	१११
चकार व्याकुलीभूता	२३२	चतुराननयोगेन	३८६	चिन्त्यमस्त्यपरं नातः	२६०
चकारोपवने चन्द्र-	२४	चतुर्दशसहस्राणि	२२५	चिरं कृतरणोऽथायं	३७५
चक्रककचकुन्तासि-	३६६	चतुर्दिग्भ्यः समायातैः	३४८	चिरं प्रार्थयमानोऽपि	३१५
चक्रककचपाशासि-	३८८	चतुर्विधमहासैन्य-	२५०	चिरात् कमलिनीगेहं	२२३
चक्रककचसंवर्त-	३२०	चतुर्विधास्ततो देवा	१८३	चिरादुपगतं कञ्चिद्	८६
चक्रतुः परमं युद्धं	३१०	चतुर्विधेन महता	२४७	चिरान्मानुषनिर्मुक्ते	२३०
चक्रवाककृतच्छाया	५४	चतुर्भिर्विशतिं युक्ता	१४२	चिरायति कथं सोऽपि	२८२
चक्रशक्तिगदायष्टि-	३६१	चरितजननकालाऽभ्यस्त-	३६०	चिराय रक्षितं मानं	३६२
चक्रसन्नाहनिष्पेष	३७६	चलता पक्षवेनेयं	२१३	चिह्नानि विटजातस्य	३४०
चक्रेण महता युक्तो	१५८	चलत्कुण्डलविद्योत-	३२७	चूडामणिं सुकल्याणं	१४७
चक्रेणानिलसूनुश्च	३१६	चरत्केतुमहालण्डं	२५३	चूडामणिमिभं चोद्धं	३३५
चक्रे योद्धुममिप्राथं	३७७	चलत्केसरसङ्घातैः	२५६	चूर्ण्यमानविमानेन	४०२
चक्षुस्ततो नियुज्यासा-	३१७	चलन्नीलोत्पलच्छाये	१६१	चैत्याङ्गणं समासाद्य	६८

चैत्यालये प्रमाते तं	१२३	जनमुत्तारयत्येष	१४१	जानत्याऽपि तथा मृत्युं	४०५
चैत्यालयैरलं तुङ्गै-	३४६	जनस्याभ्राविकस्यापि	१८२	जानन् सकलमर्षादां	२६०
च्युतोऽतः पुष्कलावत्यां	६६	जनस्योत्सार्यमाणस्य	८३	जानन्नपि कथं सर्वं	२६१
च्युतौ तौ सुन्दरौ नाका	१८८	जनानां विस्मयकरं	१४५	जानामि नाथ ते भावं	३३५
[छ]		जनोऽविदितपूर्वो यो	२३०	जानास्येव वियोगं ते	३६६
छत्रचामरलम्बूष-	६७	जन्तुरेकक एवायं	७४	जानुं क्षितितले न्यस्य	२४४
छायया तुङ्गयज्ञाणां	१७८	जन्तूनां दुःखभूयिष्ठ-	२५६	जानुन्यस्तमुद्गुःस्त-	१७५
छेकहंशश्चिरं व्रस्ता	१२७	जन्मनः प्रभृति क्रूरः	१०६	जामाता लक्ष्मणोऽयं ते	१५१
[ज]		जन्ममृत्युजरात्युग्र-	२७२	जामात्रेऽपि सुसम्पन्न-	११५
जगतो गुरुभूतस्त्वं	३११	जन्ममृत्युजराव्याधै-	८४	जाम्बूनदमयान् कुम्भान्	१७
जगदुश्चैवमन्योऽन्यं	२५	जन्मान्तरं प्राप्त इवाथ-	४१२	जाम्बूनदमयो यावत्	३५२
जगाद च किमद्यापि	१७३	जन्मान्तरकृतस्यास्य	१६५	जाम्बूनदमुताद्याश्च	३७७
जगाद च कुदूतस्य	१५८	जन्मान्तराजितकांथ-	३७५	जाम्बूनदस्ततोऽबोचत्	२६०
जगाद च न देव त्वां	१२०	जम्बूद्वीपमहीध्रस्य	२८६	जाम्बूनदादयः सर्वे	२६४
जगाद जानकीनाथ	१५६	जम्बूद्वीपस्य जगती	२२४	जाम्बूनदो महाबुद्धिः	२६४
जगाद भद्र नो वेष्टि	२४६	जम्बूमाली शिखावीरो	३६४	जायते ज्ञानदानेन	६७
जगाद प्रणतो वातिः	३४५	जय वर्धस्व नन्देति	२५३	जायते प्राप्तकम्पात्तां	५१
जगाद मुनिमुख्यस्त-	१८६	जयशब्दसमुद्घोष्य	२६५	जायां न्यग्रोधजां श्रित्वा	१०४
जगाद राघवः किं नु	२३५	जराधीनस्य मे नाथ	४८	जायावैरप्रदीतोऽय-	२३७
जगाद वज्रकर्णश्च	११४	जरारोगविहीनाश्च	२२५	जिघांसन्तं तमालोक्य	१८७
जगाद वाऽतिदृष्टां	१३६	जलं प्रार्थयमानानां	७	जितपद्मां ततो भीतां	१७६
जगाद विहसन् भूमृद-	१०७	जलमुद्बुदनिस्सारं	५०	जितपद्मा ततः प्राप	१७४
जगाद व्याकुलः किञ्चि-	२५६	जवनाश्चरथारुढा	३१६	जितहंसगतिं कान्तं	२१०
जगाद श्रेणिको नाथ	१	जातमात्रा मृता नाहं	४०३	जित्वा तमपि सङ्ग्रामे	३४६
जगादाथ यथावृत्तं	२६६	जातमुर्वीतलं सम्यक्	५१	जिनमार्गप्रवीणासौ	३००
जगादासौ समक्षं भो	७३	जातरूपधरौ कान्ति-	१८०	जिनशासनवर्गेण	११३
जगादेति च तत्रैकः	३	जातश्चाभिमुखः शक्तोः	१७१	जिनानर्चति यो भक्त्या	६६
जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः	३७६	जातस्य नियतो मृत्यु-	६२	जिनेन्द्रविहिते मार्गे	३२८
जगाम च तमुद्देशं	२४१	जाता चक्रधरेणाऽहं	४०४	जिनेन्द्रशासनासक्ता	४०२
जगौ च वाष्पपूर्णास्या	२६०	जाता मनस्विनीदेव्याः	६३	जिनेन्द्रसमतां याताः	२६५
जगान जानुना काश्चित्	११७	जातायां सुप्रसन्नायां	१४७	जोमूतमलनिर्मुक्तं	२२३
जङ्गावेगास्समुद्यद्भौ	३३८	जाता विशुद्धवशेषु	१६३	जीवं जीवकभेरुण्ड-	२१२
जनकः कनकं हृष्टा	१८	जाता सा विपये कस्मिन्	२३१	जीवन् पश्यति भद्राणि	२४६
जनकः कृत्रिमाश्चैन	६०	जातुचिद्विचरन् व्योम्नि	४००	जीवत्येवानरण्यस्य	१६३
जनकस्तु सखेदाङ्गः	३६	जातेन ननु पुत्रेण	७६	जीवराशिरनन्तोऽयं	६८
जनकेन च साकेतां	१५	जातेऽस्य वाग्वर्तिनि रौद्र-	१३२	जीवलोकादिमिमां वेष्टि	२४२
जनकेन ममासंख्यै-	१११	जातो वायुकुमारोऽसा-	४०६	जीवितं वनितामिष्टं	७७
जनको बालकन्याया	५५	जातो हेमप्रभौ पद्मौ	२०२	जीवितस्नेहमुत्सृज्य	२०४
जनकोऽयोचदत्यन्त-	३४	जानक्या सह सम्मन्य	१६६	जीवितस्य स्वमेवैकः	८०

जीविताशां परित्यज्य	३६७	तं लङ्कासुन्दरी भूयो	३२०	ततः क्षणमसौ सङ्ग-	२०४
जीविताशां समालम्ब्य	१८७	तं विसर्पमदामोदं	११०	ततः क्षणात् परित्यज्य	२२६
जीर्णवस्त्रावशेषाङ्गा	६२	तं दृष्ट्वा सुन्दराकारं	१७३	ततः क्षुब्धापमानाथ	१७५
जृम्भोत्तानीकृतोरस्को	२६५	तर्क धूसरसर्वाङ्ग-	२८६	ततः खेचरपृष्ठोऽसौ	४०२
जैनं व्याकरणं श्रुत्वा	१८७	तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै	१६१	ततः पञ्चमुखोऽवोच-	२६६
ज्ञातनिश्शेषकर्तव्या	१५०	तच्छ्रुत्वा रावणोऽवोचत्	२६१	ततः पद्मः समुत्तस्थौ	४०
ज्ञातनिश्शेषवृत्तान्तै-	१५१	तच्छ्रुत्वा वचनं सद्यः	३२४	ततः पद्मप्रभोऽवोच-	२७७
ज्ञातमेव हि देवस्य	३००	तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो	३०१	ततः पद्मो जगादैर्-	८६
ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य	२७१	तच्छ्रुत्वा विविधं विभ्र-	२८७	ततः पद्मो जगादैतां	२२६
ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म	२०४	तच्छ्रुत्वा समुपाख्यानं	२९४	ततः पद्मो जगादैवं किं न	६५
ज्ञात्वापहृतमात्मानं	२३८	तच्छ्रुत्वा सुतरां पद्मी	२०८	ततः पद्मो जगादैवं तां नः	१४३
ज्ञानत्रितयसम्पन्नौ	२००	तज्ज्ञेन कथितं रम्यं	१६८	ततः पद्मो जगादैवं विभ्र-	७६
ज्ञानध्यानहरैः कान्तै-	३२०	ततः कपिध्वजावेवं	२७४	ततः पद्मो निवार्यतां	१६०
ज्ञानविज्ञानरहित-	२	ततः कपिध्वजैर्योधा	३१६	ततः पद्मोऽपि तत्पानौ	७८
ज्ञापिताः सेवितद्वारा-	४०८	ततः कर्मणि निर्दृष्टे	१२६	ततः परं परिप्राप्ता-	३३०
ज्ञायते देवि नाद्यापि	४००	ततः कर्मानुभोवन	१६३	ततः परममित्युक्त्वा धनुषी	३६
ज्योतिर्वरे गते तस्मिन्	१८३	ततः करतलसङ्ग-	१५	ततः परममित्युक्त्वा वार्ता-	४२
ज्योतीरेखेव काप्येषा	१४८	ततः करिणमारुह्य	१६४	ततः पराङ्मुखोभूता	१६
ज्योत्स्नाकृतादृहासायां	६२	ततः कलाकलाप्रशा	७४	ततः परिकरं ब्रध्वा	२६५
ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो	१५१	ततः कल्याणमालया	१२६	ततः पर्यट्य विपिने	२४२
ज्योत्स्नप्रक्रमकरा-	३७४	ततः कान्तकरस्पर्श-	११	ततः पलायनोद्युक्तान्	३८६
ज्वलदङ्गारकुटिले	७	ततः कपिध्वजं सैन्यं	३८८	ततः पल्लवकान्ताभ्यां	१५०
ज्वलद्विशुद्धरक्ताम्बु-	३०२	ततः कार्मुकिकान् दृष्ट्वा	३३६	ततः पुण्योदयारण्यः	३८२
ज्वलत्कुलिङ्गभीमाक्षौ	२५६	ततः कालानलाकारो	२०४	ततः प्रकुपितोऽवोचद्	४७
[भ]		ततः कालो गतः क्वापि	५४	ततः प्रणम्य भूयोऽसौ	२१४
भर्भराहेतुक गुञ्जाश्च	३६८	ततः किञ्चिन्मधुस्वाद	२५७	ततः प्रत्युपकारं कं	३३
[ड]		ततः किलापरैः क्रूरैः	३३७	ततः प्रकुलाम्बुजलोचनेन	४१३
डुडौकिरे च भक्त्याढ्या	१८०	ततः कुमारकोपस्तं	३८६	ततः प्रबुद्धचित्तेन	१५२
[ढ]		ततः कुक्षिगुहां तस्याः	३१८	ततः प्रभृति चारुमाक-	३१५
ढीकितश्च स मायाश्चः	२८	ततः कृतमहाशोभं	३६	ततः प्रभृति सक्तोऽसौ	२०३
ढीकित्वा वज्रकर्णस्ताः	२७४	ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां	३६	ततः प्रमदसम्भार-	२००
[त]		ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां	१६७	ततः प्ररुदती माता	७६
तं कपिध्वजमालोक्य	१२२	ततः कृत्वा रणक्रांदां	२७८	ततः प्रव्रजितुं वाञ्छा	२०८
तं क्रीडन्तं जनो दृष्ट्वा	२८६	ततः कैरपि ते दृष्टाः	१५१	ततः शत्रुदमोऽप्येनं	१७४
तं च विशयं वृत्तान्तं	१४८	ततः क्रोधपरीताङ्गः	१५७	ततः शनैरुच्छ्वसितोरुवक्षा	४१२
तं च सिंहवं श्रुत्वा	२३७	ततः क्रोधपरीताङ्गो	२४६	ततः शरद्वृत्तिश्च	२२३
तं दृष्ट्वा धनुःपाणिं	७०	ततः क्रोधपरीतेन	२४५	ततः शाल्यादनः सूया-	१२५
तं दृष्ट्वा भावतिर्दध्या-	३१८	ततः क्लिष्टेन सन्तापो	३७४	ततः शुद्धप्रमोदः सन्	२८
तं भस्मीकृतमालोक्य	३६३	ततः क्षणं विलाभ्यैतौ	१२६	ततः शोचति निःश्वासान्	२४

ततः शाणितधाराभि-	२३३	ततः सौरभसंरुद्ध	४०१	ततस्तथैवमित्युक्ते	२५५
ततः श्रुत्वा कुमारं त-	२५	ततः स्थित्वा क्षणं किञ्चिद्	३२४	ततस्ता गुणव्यावयय-	८४
ततः श्रेणिक वैदेही	३२६	ततः स्थित्वा पुरस्तस्थ	३६	ततस्तान् राघवोऽवोच-	८८
ततः संशां समासाद्य	२२८	ततः स्यन्दनभारोण्य	१७५	ततस्तापसतां प्राप्य	१६३
ततः संधारयन् सैन्य-	२०	ततः स्वपुरुषासक्त-	२३८	ततस्तिर्यक्तु सुचिरं	३७२
ततः संवेगमापद्य	४	ततः स्वमन्थथाभूत-	२०२	ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ	११४
ततः सख्या विमुक्तामौ	२८४	ततः स्वयं वरोदन्तं	५६	ततस्तुष्टोऽवदत्पद्मः	११५
ततः सङ्गीतमाकर्ण्य	४०८	ततः स्वैरं भयाद् भ्रष्टो	२४	ततस्ते कथयाञ्चकु-	५५
ततः सदनयातानां	४५	ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा	२७	ततस्ते करयुग्माञ्ज	१८१
ततः स पिङ्गलाख्योऽपि	२	ततश्चन्द्रायणोऽवोचदीप-	३२	ततस्तेऽत्यन्तवित्रस्ता	१३०
ततः समिद्धियारूढ-	१५३	ततश्चन्द्रायणोऽवोचद्धीमान्	३२	ततस्तेन सुभृत्येन	५
ततः सभ्रातृकं पद्मं	२७८	ततश्चपलवेगाख्यं	२७	ततस्तेन समुद्दिष्टं	१३८
ततः समन्तादनुपाल्य	३१२	ततश्च माधवीतुङ्ग-	२६	ततस्ते निम्नगां दृष्ट्वा	८८
ततः समाकुलस्वान्तः	३६६	ततश्च श्रुतवृत्तान्ती	३१६	ततस्ते पुनरित्यूजु-	८६
ततः समुत्सुकः पद्म-	२८८	ततश्च विनयी गत्वा	१२१	ततस्ते बहुबलत्वेन	३७७
ततः समुद्रवातेन	२४६	ततश्चामीकरानेक-	२११	ततस्ते भूमहीप्राग्र-	१०२
ततः सम्भाषणं प्राप्य	२२६	ततश्चाळीकसुग्रीवः	२७६	ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा	३८३
ततः सरभसस्तत्र	११८	ततश्चितितमात्रेण	४०८	ततस्ते सुखसम्पन्नं	१३६
ततः सर्वसमृद्धीनां	४५	ततश्चिरं वनं भ्रान्तवा	३२६	ततस्तेः परवैर्वाक्यैः	२४५
ततः सर्वहितोऽवोचन्	६२	ततस्तं तादृशं ज्ञात्वा	२५७	ततस्तैर्विवाहाक्रोशैः	३४२
ततः सर्वान्वकुशलौ	१८	ततस्तं बालकं कान्तं	११४	ततस्तौ तदिगरो ज्ञात्वा	१६०
ततः ससम्भ्रमस्वान्तः	२८२	ततस्तं शोकभारेण	५६	ततस्तौ परया व्युत्था	१८६
ततः ससार पद्माभः	२७७	ततस्तं विद्युदुद्योत-	२८३	ततस्तौ सम्भ्रमी ज्ञात्वा	१८३
ततः स हृष्टरोमाङ्गो	१८	ततस्तदनुभावेन	१३६	ततस्त्वयेति पृष्ठेन	३३५
ततः सागरगम्भीरः	१५८	ततस्तदहमाकर्ण्य	४०२	ततस्त्रासपरीताङ्गो	३००
ततः साध्यससम्पूर्णां	२३०	ततस्तदिङ्गितं ज्ञात्वा	३४६	ततो गणधरोऽवोचच्छृणु	२८३
ततः सादृशगत्याख्यः	३००	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा खेचरा	३४७	तो गणधरोऽवोचच्छृणुत	३७१
ततः सिंहीदरं पद्मो	१२०	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोक-	२३३	ततो गणधरोऽवोचञ्जज्ञात-	२२४
ततः सिंहीदरो मूर्ध्ना	१२०	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मय-	२७५	ततो गत्वा मया साधो	१४०
ततः सिंहीदरोऽवादी-	११६	ततस्तद्वचनाद् गत्वा	११३	ततो ग्रहग्रहीतस्य	२५
ततः सिद्धान्तसम्भ्रदा	५३	ततस्तदुदरीयुर्मुग्ध्वा	३७६	ततो गुरुवचः प्राप्य	२०६
ततः सिद्धान् प्रमोदाब्ज्याः	२६६	ततस्तन्निरदं श्रुत्वा	३१८	ततोऽगुर्जायकं तस्या	३२५
ततः सीताऽव्रवीत्पद्म-	१३४	ततस्तन्मण्डलप्रान्त-	३४०	ततोऽचिन्तयदेताभ्यां	२२६
ततः सुग्रीवतुल्योऽपि	२७३	ततस्तन्मन्त्रिणोऽवोचन्	७३	ततो जनोपमोग्यानां	१०१
ततः सुग्रीवराजेन	३४४	ततस्तमञ्जलिं कृत्वा	२३५	ततो जन्मोत्सवस्तस्य	१२
ततः मुनजने काले रजन्यां	१२८	ततस्तमुद्यदादित्य-	३३७	ततो जयजयस्वानं	२४७
ततः मुनजने काले विदितौ	१७०	ततस्तमेवमित्युक्त्वा	२६३	ततो जिहीर्षयो तस्य	१११
ततः सौमनसाकारं	२१३	ततस्तस्याः समाधाय	१४८	ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा	३३४
ततः सौम्याननं राम	१०६	ततस्तस्या वचः श्रुत्वा	१३८	ततोऽञ्जलिपुटं मूर्ध्नि	३०

ततोऽटनिजटङ्कार	४१	ततोऽनुक्रमतः काले	१४७	ततो लक्ष्मीधरे नम्रे	२२१
ततोऽत्यन्तमृदुस्पर्शे	१०४	ततोऽनेकपमारुह्य	११८	ततो लक्ष्मीधरोऽपृच्छ-	२७०
ततोऽत्यन्तविषण्णात्मा	२३६	ततोऽनेन विपुत्राय	२८४	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचि	१७५
ततो दण्डिनमाहूय	३५६	ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्य	१०४	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचत् किमत्र	११६
ततो दशरथः कृत्वा	५६	ततोऽवमाननिर्दग्धः	१६३	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचत् किमेव	१५६
ततो दशरथः श्रुत्वा	६४	ततोऽपरमुपादाय	३६०	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचत्पन्नार्भं	३८२
ततो दशरथोऽपृच्छत्	६०	ततो बहुविधैः शस्त्रै-	३६६	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचत्परमो	२६२
ततो दशरथोऽवाचद्	७४	ततोऽभवद् भृशं दुःखी	२६६	ततो ललाटभागेन	१५८
ततो दशरथोऽवाचत् प्रिये	७५	ततो भयादिशेषेण	४७	ततो लीलां वहन् रम्यां	३२५
ततो दुन्दुभिनिर्घोषं	२७०	ततोऽभिमुखमेतस्य	३१८	ततो यानं समारुह्य	६५
ततो देवगणाः स्वस्था	१७४	ततो मगधराजेन्द्रः	२२४	ततो विक्रमगर्भेण	२८५
ततो देवत्वमासाद्य	६१	ततो मगधराजेन्द्र-	१५	ततो विदितनिश्शेष-	१८१
ततो धनुर्ग्रहप्रान्ते	३८	ततो मतिस्मुद्रेण	३५४	ततो विनयदत्तस्त-	२६१
ततो दर्पणसंक्रान्तं	२३	ततो मदनदीप्ताग्नि-	२६४	ततो विप्रोषितस्तेन	६४
ततो दशाननोऽप्येन-	२४८	ततो मदनयावाचि	१६१	ततो विभीषणो विद्वान्	३८१
ततो दूरात्समालोक्य	१५२	ततो मन्दोदरी कष्टां	२५५	ततो विभीषणोऽवाचत्	३८६
ततो दृष्टिर्गता तस्य	५६	ततो मन्दोदरीसूनु-	३८०	ततो विभीषणोऽवाचदिति	३५२
ततो द्राणघनाद्धस्त	४१०	ततो महाहवे आते	३३	ततो विमहतां प्राप्ते	२५६
ततो द्विजगणा ऊचुः	२८	ततो महोदधिर्नाम्ना	२६८	ततो विशुद्धया बुद्ध्या	१२३
ततो नगरलोकेन	३३६	ततो महोदरः स्वैरं	२५५	ततो विशेषविज्ञान-	८३
ततो नताननः किञ्चित्	२४७	ततोऽमात्यगणान्तरस्थं	३६२	ततो विप्रमवाधाण-	१६८
ततो नदीर्गिरीन् देशा-	२६	ततो मुक्ताफलस्थूल-	३२८	ततो विपादिनः सर्वे	३६७
ततो नमः समुत्पत्य	२६६	ततो मुदितसम्प्रीतो	३८२	ततो विस्मयभापनाः	३८५
ततो नभश्चरा ऊचु-	३३	ततो मृदुमहामोद-	१५०	ततो विस्मयभापना	४१
ततो नभश्चराधीशौ	३८५	ततो मृष्टानि पक्वानि	१६६	ततोऽशुकेन संवीय	१२७
ततो नभस्वतः सूनु-	३२६	ततो मैथुनिकावैरं	४००	ततोऽश्रुपूर्णेनान्नाणां	१५१
ततो नभो निषद्याया	१४२	ततोऽयं सत्यमुग्रीवो	२७४	ततोऽसाव्रवोदेवं	५३
ततोऽनरण्यसेनान्या	५७	ततो यत्र नभोदेशे	३२२	ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा	१३८
ततो नलेन सख्यं	३४६	ततो यथोचितस्थान-	४२	ततोऽसौ कृतकर्त्तव्या	१४२
ततो नष्टेषु सर्वेषु	३७६	ततो युगमितक्षोणी	२००	ततोऽसौ खड्गमालम्ब्य	२६
ततो नागाश्चविद्वानां	३५६	ततो रत्नरथेनासौ	१८६	ततोऽसौ त्रयया युक्ता	१५०
ततो नादरतस्तेपा-	२६०	ततो रथवरारूढौ	२७६	ततोऽसौ पतितः क्षोःशं	२४५
ततो निमेषमात्रेण	४१०	ततो राजीववननो	१७	ततोऽसौ परमं क्रोधं	१३०
ततो निर्भर्त्सनं स्वस्य	१६३	ततो रामाधरच्छाये	१५२	ततोऽसौ परुषावाताद्	२३८
ततो निर्भर्त्स्य सकलं	१३४	ततो रामोऽभिरामाङ्गः	५६	ततोऽसौ बालचन्द्रेण	५
ततो निर्दुष्टितं सत्तं	१०	ततो रेचकमादाय	१६२	ततोऽसौ मन्त्रिणां मुखये	२७१
ततो निर्दिघ्नमारोप्य	२३८	ततो रोषपरीतेन	१८४	ततोऽसौ मुदितस्तुङ्ग	२८
ततो निर्वेदमापन्ना	४०४	ततो लब्धासनासीनो	१४३	ततोऽसौ विधुरा नाम्ना	२०८
ततो निराश्रयतां वार्ता	२६६	ततो लक्ष्मीधरं स्पृष्टुं	३६७	ततोऽसौ विनयी नित्यं	२८

ततोऽसौ शकुनो मृत्वा	१८८	तत्र सङ्कथया स्थित्वा	१७६	तदाशान्यस्तनेत्रामु	६०
ततोऽसौ सहसा मुक्त-	१२७	तत्राक्षयवने रम्ये	३६४	तदासन्नो मया चैका	१३६
ततोऽसौ स्वसृष्टुःखेन	२७६	तत्राचार्यो द्युतिर्नाम	६६	तद्विव्यमायया सृष्टं	३१०
ततोऽस्मागते सूर्ये	१४७	तत्राज्ञानाद् समालोक्य	२४	तदेव्यपि तयोः पृष्ठा	१५३
ततोऽस्माकं वधं कर्तु-	३१५	तत्रादरनिराकाङ्क्षं	२५४	तद्धि नः पुत्रमायात-	२५०
ततोऽस्य क्रोधसंरुद्ध-	३००	तत्राद्राक्षीद्वयान् भग्नान्	२६६	तद्वशानुक्रमो ज्ञेयो	२२५
ततोऽस्याभिमुखं तस्थौ	३७६	तत्रार्धवर्षो देशो	१५	तनयाद्यैव मे गन्तु-	८०
ततोऽस्मत्सरितश्छेदे	६५	तत्रार्हत्वं प्रतिमां दृष्ट्वा	२५१	तनया वनमालेति	१४८
ततोऽहं कुलिशेनेव	११२	तत्राशोकतण्डुल्यने	२६३	तनुकृत्ये कृते तत्र	१५६
ततोऽहं चण्डरत्रया	४०१	तत्रासावुत्तमे तुङ्गे	२५२	तनूदरी स्वभावेन	३४५
ततोऽहं पायिनी जाता	१२८	तत्र हेमद्रव्यस्त	२६६	तन्निमित्तं महाशोकः	२६१
ततो हरिगजद्वीपि-	३०	तत्रैकां रजनीं स्थित्वा	३४६	तप्यन्ते त्रिविधद्वारं	३१३
ततो हरिगजव्रात-	८८	तत्सङ्गमार्थमन्योन्यं	१८६	तद्वयनामभूद् युद्धं	३७६
ततो हर्म्यतले कान्ते	३६	तथा चास्फाकितं सर्व-	१३०	तमःपिण्डासितैस्तुङ्गै-	२५६
ततो हेमप्रयाम्भोभिः	१४५	तथा जिनमतिनिर्व्यं	२७६	तमन्ततनुं दृष्ट्वा	१७४
ततो ह्रीभारनप्रास्था	२७६	तथा न माता न पिता	३८६	तमाचार्यं परिप्रातः	६३
तत्कान्त्यां भयनं लिप्तं	१२६	तथापरे वचः प्राहुः	२६६	तमुपेत्य नतिं कृत्वा	२८३
तत्किमेतेन खड्गेन	२३८	तथापि देवभाषेऽहं	२५६	तमुग्रैः शक्रजिद्भूयः	३६२
तत्क्षेमङ्करमस्माकं	३२४	तथापि धीर नो भंगः	७८	तमूर्चमन्त्रिणो वृद्धा	२६७
तत्पुत्रो यत्नदत्ताख्यः	२८३	तथापि पुरषशीघ्रेण	२३३	तमेकान्तपरं दृष्ट्वा	२३४
तत्र कलतकच्छाय-	२५४	तथापि भवतो वाक्यान्	३२४	तमेव पादपं साभि	१४६
तत्र कृत्वा नमस्कारं		तथापि रक्षितः पुण्यै-	३६४	तथा कलिस्तथा तस्य	३३
तत्र केचिद्द्रुतं प्रोचुः	२३३	तथापि विहरन् क्षीणं	४	तथा चित्तं समाकुर्वं	२५
तत्र गोपायितं खूर्पं	११३	तथाप्यनिलस्य नुस्तान्	३७७	तथा नानायुधाद्योपैः	३२०
तत्र च प्रमदोद्याने	२६२	तथाप्युत्साहमाश्रित्य	२४७	तथा विरहितः सोऽयं	२४७
तत्र चोत्तमनारीभिः	३६	तथाविधं च तद्वचनं	३४७	तथा सह सुखं रेमे	२
तत्र तावुषितौ ज्ञात्वा	८४	तथाविधं तमालोक्य	१८३	तयोक्तं नाथ कः कोप-	४७
तत्र ते कानने रम्ये	१२८	तथाविधं पुरा राज्यं	२७५	तयोरन्योऽन्यमासङ्गे	३६८
तत्र ते चित्रकूटस्य	१०३	तथाविधो दशास्यत्वं	३४१	तयोरभूमदसंख्यं	३१०
तत्र दूषणसंग्रामे	२५३	तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा	१८१	तयोरभूमदह्युद्धं	३७५
तत्र देवनिवासाम्भे	२५०	तथास्ति भरतक्षेत्रे	१८८	तयोरियं कथा याव-	२७१
तत्र देशे नरा नूनं	११७	तथास्मिन्नियमद्वीपे	६६	तयोश्चित्तोत्सवापत्यं	१
तत्र प्रयातुमस्माकं	१७	तथैव लक्ष्मणस्तत्र	१६	तच्छुद्धतसारङ्ग-	१०३
तत्र प्रीतिं महाप्राप्ता	२१०	तदहं वत्स नो वेष्टि	७६	तच्छुशरभद्वीपि-	४०३
तत्र ग्राम्भ्यभूतस्य	५७	तदाशां प्राप्य सम्पद्भि-	१५७	तर्जयन्निव लोकस्य	५१
तत्र भद्रासने रम्ये	३०४	तदाज्ञापनया मार्गो	११२	तल्पेऽवस्थितमात्मान-	१३६
तत्र भाण्डोरकरणं	१६६	तदातिशोभते सीता	६०	तत्र सोऽयमपुत्रायाः	१२
तत्र लावण्यकिञ्चलक-	१७६	तदा तुष्टेन पत्नीनां	७५	तस्थुर्दूरत एवान्ये	४०
तत्र वंशगिरौ राजन्	१६६	तदा दशरथो भीतो	७२	तस्मात् केनाप्युगायेन	२७

तस्मात्क्षेपविनिर्मुक्त-	२६७	तस्यां बहुलशर्व्यां	८८	तामूलप्रार्थनव्यंगात्	३८३
तस्मात्तद्दुर्गसिद्धौ	२६८	तस्यां सिद्धाजमस्कृत्य	२६५	ताम्रचूडाः खरं रेणु-	५२
तस्मात्तावत् प्रतीक्षेतां	१२६	तस्या एव च वाक्येन	२६०	तार्पते दुःखतो यस्मा-	७७
तस्मात्प्रेषितदूताऽयं	३५५	तस्याभिमुखतां प्राप्य	२६०	तार्क्ष्यपद्मविनिर्मुक्त-	३८५
तस्मादकीर्तिसम्भूति-	२३६	तस्यामीक्षितमात्रायां	२३६	तावच्च गरुडाधीराः	१६४
तस्मादन्यपरित्राण-	११५	तस्यामेवमवस्थायां	३२५	तावच्च तेन दुष्टेन	२३३
तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं	२४६	तस्या रूपेण चक्षूषि	१६२	तावच्च नन्ददस्य	१७५
तस्मादानय तौ क्षिप्रं	६३	तस्या रोषसि विश्रम्य	८८	तावच्चन्द्रनखासूनुं	२५०
तस्मादानीयतां सीतां	२६७	तस्यार्धपाणयो दाराः	२८३	तावच्च समसीतायां	२५६
तस्मादुत्तिष्ठ तत् स्थान-	२५०	तस्या वर्णनमेवाति-	२७८	तावच्चास्तस्थितादित्य-	२२७
तस्मादेकक एवाहं	८०	तस्यास्त्वरितमायान्त्या	३१६	तावच्चिरसि संक्रुद्धो	२४५
तस्माद् बुद्धि रणे त्यक्त्वा	२६७	तस्यै जगाद वृत्तान्त-	३२२	तावत्ताः सिद्धसंसाध्या	३१४
तस्माद् भोगं भुवनविकटं	३५०	तस्यैतद्भवनं मद्रे	१४३	तावत्तोयदवाहेन	३३६
तस्माद्येनैव संग्रामे	२७०	तस्यैवामिमतो भूत्वा	१३१	तावत् त्रिवर्णवज्रविलासि-	४१३
तस्माद् द्रव्यादिलोमेन	३५५	तस्योपरि समारुह्य	२६२	तावत्पदान्तरस्थायां	२५६
तस्मान् महाबलं दीप्तं	२६६	तां प्रतिष्ठ पुराधीराः	४०२	तावत्तरागतं दृष्ट्वा	११२
तस्मिंश्च सूर्यदेवस्य	३५५	तां विनष्टधृतिं दृष्ट्वा	२३२	तावत्समायकं कृत्वा	२७८
तस्मिन् कालगते पद्मः	२३६	तां वीक्ष्य लक्ष्मीमिलयो	४१३	तावद् दुन्दुभयो नेदुर्गगते	२०१
तस्मिन् दशाननांक्ताभिः	२६३	ताडितः कामवाणेन	१२५	तावद् दूषणपञ्चत्वा-	२५४
तस्मिन् देव मया साद्धं	३३४	ताडितः स्मरवाणैश्च	१६१	तावदुत्तिष्ठ गच्छावः	११४
तस्मिन्नमरसम्भामे	२५०	ताडितो वज्रनक्रेण	३७६	तावदेतौ स्वयं गत्वा	३८१
तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते	३५८	तात तात न ते युक्तं	३७८	तावद्रणमुखेऽभाणोद्	३६३
तस्मिन् रणशिरो याते	११८	तात रक्षात्मनः सत्यं	७६	तावन्नुपसृतां सार्वीं	३५२
तस्मिन् विप्रकृष्टे तु	३१३	तातस्यास्य च को भेदो	३८२	तावन्मे नास्ति दुःखस्य	१४६
तस्मिन् विमानतुल्येषु	११३	तातेन पृथिवी दत्ता	७६	तावपि भ्रातरौ तस्मिन्	१८७
तस्मिन् शिलातले रम्ये	५१	तातेन भरतः स्वामी	६६	तावालोक्त्य ततो राजन्	३६६
तस्मिन् सजानकीरामः	११४	तातेन भ्रातरुक्तं यत्	७८	ताश्च निस्सीमसौभाग्या	३१६
तस्मै दत्त्वा स जैनेन्द्रौ	३२६	ता दुःखहेतवः सर्वा	३३२	तासामाकुलिका काचि-	३३६
तस्मै सैकान्तयाताय	१६१	तान् वीक्ष्य शोकसन्तप्तान्	५४	तासामेवोद्धर्माणेषु	२८२
तस्य कूल्यद्रुमैश्चित्रैः	२८८	तान् समापततो दृष्ट्वा	३७४	तित्तिवाकारदेशेऽथ	२७८
तस्य क्रीडाचतुर्भागा-	३१३	तानूचुस्तापसा वृद्धाः	१०२	तित्तिरच्छदनच्छाय-	७२
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा	३१७	तान्यहं शत्रुमिच्छामि	६७	तिभ्यन्तस्ते ततोऽभ्यर्णं	१३५
तस्य राजससैन्यस्य	२३४	तापसप्रमदा दृष्ट्वा	१०२	तिरोधानं गता वसति	७१
तस्य राज्येऽधुना जाते	३३	तापसा जटिलास्तत्र	१०१	तिर्यग्नरकटुःत्वाग्नि-	६०
तस्य स्कुल्लिङ्गसंसर्गा-	३८०	तापस्योऽवश्यमस्माभि-	१०२	तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं	२४६
तस्य स्मरगतिना दीप्तं	२६५	ताभ्यमंगकुमारेण	३८२	तिष्ठ तिष्ठ महापाप	२४८
तस्याः पुरोऽथ रहसि	१६१	तामपश्यत्ततो नेतु-	४०५	तिष्ठ त्वमिह कुर्वाणः	१५६
तस्याः श्रोणीवराहो	२६	तामेव च पुनर्यस्तां	३४७	तिष्ठन्तमिह मृत्युं चेदेत-	३५०
तस्यां प्रयातमात्रायां	२३०	तामेव सरसीं रम्यां	१२५	तिष्ठामि पापो भवदुःख-	

तिसृणां तृणीस्त्रीभि-	४५	ते शिलीमुखसङ्घाताः	३७७	त्रैलोक्यगुणवद्रत्नं	२४०
तीक्ष्णकोटिभिरत्यन्तं	२३८	तेऽस्मदर्थं शिवं क्वापि	३१५	त्रैलोक्येऽपि न मे कश्चि-	१३६
तीक्ष्णायस्कोलसङ्कीर्णा	१०७	तेषां ज्ञात्वा मनःशून्यं	२४६	त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति	६२
तीर्थस्नानानि दानानि	६	तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपर-	२१६	त्वं बालः सुकुमारजङ्गः	१७
तीव्रक्रोधपरीतात्मा	२३४	तेषां निर्दग्धकण्ठानां	८	त्वं मे हृदयसर्वस्वं	४६
तीव्रवेगगिरिस्तातः-	१०३	तेषां बभूव तेजस्वी	३४८	त्वदीक्षाचिन्तया दहो	६५
तुङ्गप्राकारयुक्तां तां	३४६	तेषां महानुभावानां	१३६	त्वया दशास्यजातेन	३४१
तुङ्गया शिखरेभ्यस्य	२१५	तेषु ते तीव्रदुःखानि	७	त्वया मत्तद्वचनाद् वाच्यः	३३४
तुरीयानुन्धरो नाम्ना	२७६	तैः समापतितैः सैन्यं	३७७	त्वया मया च भिक्षार्थं	३३५
तुल्यव्यसनताहेतोः	२७०	तैरसौ व्याप्तसर्वाङ्गो	३८१	त्वया व्यापादितेनापि	३८६
तृणस्यापि न वाञ्छामि	१२२	तैरावृतां दिशं प्रेक्ष्य	१३०	त्वया सह परिज्ञाति-	३२८
तृणस्यापि पुरा दुःखं	१०	तोद्यमानमिमं नूनं	११५	त्वरितं चोदितायासौ	१८४
तृतीये तु जनो द्वारे	८३	तौ च सर्वकलाभिज्ञौ	२०६	दंष्ट्राकरालदशनै-	२५६
तृतीयेऽलं वने रभ्ये	२६२	तौ निरीक्ष्यैव निर्भाता	१२६	दंष्ट्राकरालवदनैः	३७६
तृतीयेऽहनि पञ्चत्वं	२०७	तौ महातेजसौ तत्र	१६६	दक्षवद्धाञ्जलिं भीहं	१७३
तृप्राप्तैर्नैव सतोयं	१३६	तौ विप्राय यथायोग्यं	६५	दक्षिणावर्त्तनिर्धूम-	३४७
ते चक्षुर्गोचरीकृत्य	८७	तौ सीतागतिचिन्तित्वा-	८७	दक्षिणे विजयार्द्धस्य	१५
ते चतुर्विंशतिर्भक्त्या	१६२	त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो	३२७	दण्डकारण्यभागान्तं	२२६
तेजःपटपरीतेन	२६५	त्यक्तमृत्युभयो विभ्रत्	३४१	दण्डपाणिरुवाचैकः	११०
तेजसा राज्ञजातेन	३८८	त्यक्तराज्याधिकारोऽहं	८४	दण्डोपायं परित्यज्य	१६१
ते दृष्ट्वा दुःखिते वाढ-	६३	त्यक्त्वोपपादांगशिलामिवा-	४१३	दत्तप्रेङ्गलाः क्वचित् स्मरैः	१६६
तेन गोधरशब्देन	२६३	त्रयोऽपि ते शुभध्यानाः	६३	दत्त्वा विराधितायाथ	२४६
तेन च भ्रमता तत्र	१०६	त्रस्तं शरणमायातं	३६२	दत्त्वा स्थानं क्षणमवनि-	५३
तेन तेजस्विना सैन्यं	२७७	त्रिंशद्योजनमानेन	२८८	ददर्श च महातुङ्गं	२६
तेन दृष्टान्यदा बाला	२	त्रिंशस्य बलनैर्भांग-	१६२	ददर्श च महाभागान्	१८१
तेन देवेन्द्रवन्द्येन	२५६	त्रिकालगोचरं विश्वं	१८४	दहशुश्च विविक्तेषु	६०
तेन मायातुरंगेण	३७	त्रिकालमरनाथस्य	६५	दधती हृदये कम्पं	३२७
तेन मे पुरुषेन्द्रेण	४०१	त्रिगुप्त इति विख्यातो	२०६	दधाति हृदये पद्मं	२६४
तेन बाणसमूहेन	३७६	त्रिगुप्तस्य मुनेस्तस्य	२०६	दधानः प्रवरं माल्यं	१७१
तेन सम्भाव्यमानोऽसौ	३१८	त्रिजगन्मण्डनाभिख्य-	२६१	दधाना परमं राग-	८३
तेन सुग्रीवरूपेण	३०५	त्रिदशस्तत्समो बुद्ध्या	२८६	दधिक्षुम्भैर्जिनेन्द्राणां	६७
तेनापि कोपवश्येन	३५३	त्रिभुवनवरदमभिष्टुत-	३१	दध्युश्च विस्मयं प्राप्ता	१८०
तेनापि तस्य वज्रेण	३८०	त्रियामान्ते ततोऽस्पष्टे	८७	दध्यौ च मारयाभ्येतं	३२१
तेनापि तस्य संरम्भ-	३६०	त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्यं	१५६	दध्यौ चाहं पुरा यत्र	१४५
तेनापि पवनस्त्रेण	३८०	त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्मं	७३	दध्यौ सज्जातकम्पश्च	१४३
तेनाभ्यागतमात्रेण	२०	त्रिवर्णाभोजनेत्राणां	२६१	दन्तस्थानभवावर्णा	४६
तेनाहं लोकपालेन	४०३	त्रिवर्णाभोजनखण्डेषु	२८२	दन्तिनां जलदाकारां-	१७२
तेनोक्तस्त्वद्रवं श्रुत्वा	२३६	त्रिविष्टपसमे साध्वि	३२७	दन्तिभिश्च समृद्धश्च	१६०
तेनोद्यानसमुत्थेन	५८	त्रिसन्ध्यं सीतया साकं	२१०	दयादानादिना येन	३७३

दयावानोदशः कोऽस्मिन्	२४१	दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य	३४५	दष्टं ब्राह्मणि यातेन	१३६
दयावान् मङ्गवान् योऽपि	८	दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य	२६७	दष्टं मया कदाप्येत-	५६
दयितां रामदेवस्य	२४८	दीर्घसूत्रो भवानेवं	५४	दष्टपूर्वं मनोहारि	२४१
दयितां सान्त्वयिष्वैवं	१३	दुःखं तिष्ठति मे तातः	१२८	दष्टादष्टेति किं वञ्चि	२४१
दयिते क्रियते यावत्	४७	दुःखतापितसर्वाङ्गा	३०८	दष्टान्तः परकीयोऽपि	२०६
दर्पणादिविभूषं तत्	८३	दुःखस्य यावदेकस्य	३८	दष्टिगोचरमात्रे तु	१०५
दर्पणा बुद्बुदावल्यो	१६५	दुःखस्य यावदेकस्य नाव-	२४२	दष्टेन केन कार्येण	४७
दर्पसंपूरितश्चाविन्	१०३	दुःखार्णवतटं प्राप्तो	२४७	दष्टया कश्चित्करेणान्यं	३३८
दर्शयंस्तामथोत्सृष्टां	२४०	दुःखितानां दरिद्राणां	५	दष्ट्या कमलगर्भं च	७०
दर्शनस्य विशुद्धिश्च	१०६	दुःप्रेक्षः पूर्णचन्द्रश्च	३६७	दष्ट्या कलिङ्गराजस्तान्	१६१
दर्शिताशेषवित्तोऽसा-	१६७	दुःश्रुत्य दुर्विमर्शेण	२४०	दष्ट्या गणेश्वरीमृद्धि	६३
दशवर्षसहस्रायुः	६३	दुग्धेव दीधितिर्निन्दोः	११५	दष्ट्या च दूरतः सीता	३२५
दशव्यामायता वृक्षा	२६२	दुरात्मनातिवीर्येण	१६०	दष्ट्या च प्रमदामेकां	१३७
दशाङ्गपुरनाथोऽस्य	१०६	दुर्गसागरमध्यस्था	२६५	दष्ट्या तं कामभोगार्तं	१०७
दशाननसहायत्वं	३३०	दुर्वने विजने राजन्	३१३	दष्ट्या तं पतितं भूमौ	३६४
दशास्यकस्य नगरीं	३४६	दुर्विदग्धैः खगैर्माभूत्	२७६	दष्ट्या तं पुरुषो हृष्ट-	१०५
दशास्यशासनं त्यक्त्वा	३७६	दुर्लभः सङ्गमो भूयः	३०६	दष्ट्या तमीदृशं रामो	२२७
दशास्यस्त्रासितं वीक्ष्य	३७७	दुर्लभादप्यलं तस्मान्	३०६	दष्ट्या तमुत्तमाकारं	२३५
दहति त्वचमेवाकां	२६	दुःशशीलया तथा नूनं	२३५	दष्ट्या तमुदगतं वीरं	३७७
दह्यमानं तथाप्येष	४	दुष्कृतस्योदयस्थस्य	३६६	दष्ट्या तमुद्यतं गन्तुं	८१
दह्यमानान् नृपान् कांश्चित्	२६६	दुष्टचेष्टाभिमां तावत्	१७२	दष्ट्या तस्य सितच्छत्रं	१८
दाम्भिकस्यातिभीतस्य	२६०	दुष्टया किं तथा कृत्यं	६	दष्ट्या तस्मिन् हस्तौन्य-	२०
दारिद्र्यान्मोचितो लोकः	६४	दुष्टविद्याधरः कोऽपि	२७२	दष्ट्या तां वक्ष्यसीदं त्वं	२०७
दारुग्रामे तु विप्रोऽभूद्	६२	दुष्टविद्याधरानेक-	२८६	दष्ट्या तान् कुपितोऽत्यन्त-	१३३
दावानलसमं यस्य	१३३	दुष्टः शक्राशनिं कालि-	३६०	दष्ट्या दैत्याधिपं प्राप्तं	३१
दावेन महता राजन्	३१४	दुष्ट्यप्रतिपन्नेन	१३६	दष्ट्या परमशोकेन	६५
दिक्कुमार इवोदारे	२२५	दूतः पितुः सकाशान्ने	१२६	दष्ट्या प्रतिदिनं खड्गं	२२७
दिदृक्षुस्त्वां महाराज	१७२	दूतत्वेनागतं सीतां	३३१	दष्ट्या वज्रधरं पूर्वं	३०३
दिवसस्य गते यामे	२०७	दूताहृतः समायातः	३३६	दष्ट्या संरक्षकैः पृष्टः	११६
दिवसो द्वादशोऽस्माकं	३१५	दूति सीतां व्रज ब्रूहि	२६३	दष्ट्या सातिशयावेष	२०५
दिव्यगन्धानुलितस्य	२२६	दूतोऽस्मि शक्रतुल्यस्य	१५७	दृश्यते नेक्ष्यते भूयः	१३
दिव्यपीताम्बरधरो	३०४	दूरं देशं यदानायि	२	दृश्यते बन्धुमध्यस्थः	३७३
दिव्यस्त्रीरूपसम्पन्ना	४१०	दूरादुत्थाय दृष्ट्वैवं	३०३	दृश्यते वैरमेतस्मिन्	३५५
दिव्यहारसम्भरं दृष्ट्वा	१७२	दूरादेव च तौ दृष्ट्वा	१३६	देवदुन्दुभिनादोऽसा-	२०२
दिश्या शक्तिरियं शक्त्या	३६७	दूरादेव समालोक्य	१२६	देवदेवं जिहं मुक्त्वा	१०६
दिश्वैः सनत्तनैर्गातै-	२६३	दूराध्वपरिखिन्नाङ्गो	१५५	देवदेवी नृशसेन	२८७
दिशः सर्वाः समास्तीर्य	१५१	दूरे च सरसो दुर्गे	२८	देवाचर्केन सा दृष्टा	२८४
दिशस्तूर्यनिनादेन	१५३	दूरे लङ्कापुरी देव	४०६	देवि तत्कतरदुःख-	४७
दीक्षां श्रुत्वातिवीर्यस्य	१६७	दूषणो भीषणः कोणः	३६७	देवि स्त्रैणास्त्वमस्माकं	१२०

देवी मस्करिणां तस्य	२०३
देवीविटपरित्राजा	२०४
देवेन भरतेनामा	१६३
देवेन सदृशोभोगै-	७५
देवोपगीतसंज्ञे च	२८७
देवोपनीतनिश्शेष-	१७८
देशं जनकराजस्य	१५
देशकालप्रपन्नेभ्यः	६६

धनितैकेन तत्राहं	१३०
धनुरायतमास्थाय	१६
धनुलम्भोदये लब्धः	३०५
धनूरत्नलता तस्य	५५
धन्या पुण्यवती मुक्ती	६५
धन्या मनुष्या धरणीतले ये	६६
धन्या सा श्रीधरा देवी	१११
धन्येयं वनितैताभ्यां	१७

ध्यायन्तमेवं परिगम्य योधा-	४१३
ध्यायन्निति महोक्षेती	१७२
ध्रुवं भवान्तरे कोऽपि	१२
ध्वनिं मासतितूर्यस्य	३०२
ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽयं	१७६
ध्वस्ता ग्रहादयः सर्वे	५२
ध्वनिमश्रुतपूर्वं तं	१६२

[न]

देशघाते यथा जातः	२७
देशकुलभूषणमहामुनिभवं	१६४
देशकुलभूषणमुनी तु	१६४
देशा उद्भासिता तेन	४
देशान् सर्वान् समुल्लंघ्य	१२३
देशे देशे नमस्कुर्वन्	५२
देशोऽयमतिविस्तीर्णः	१०४
देहि पुत्रस्य मे राज्य-	७५
देहेनापि किमेतेन	७४
देहोपकारणव्यग्रं	१३६
द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं	३६१
द्रविणेन तथा लोकः	४३
द्रुमखण्डे क्वचिद् स्थित्वा	१७८
द्रुमसेनमुनेः पार्श्वं	४०५
द्वयमेव ध्रुवं मन्ये	२६
द्वाःस्थमाज्ञापयद्भूमि-	७२
द्वाःस्थेन प्रविशन्नेष	१७२
द्वादशस्य ततः किञ्चि-	६८
द्वारशोभां करोत्यन्यो	४५
द्वारे च रचिताभ्यर्च्ये	३२४
द्वितीयं निःस्वयुगलं	३७१
द्वितीयस्य जिनेन्द्रस्य	२२४
द्वितीयेतरहस्तेन	१७४
द्विरदानां सहस्रेण	१५६
द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते	३५४
द्वेषि लोकविमुक्तोऽसौ	५१

[ध]

धत्ते कहकहं स्वानं	२६५
धनगौरत्नसंपूर्णा	३३
धनवन्धुरद्वेष्टे च-	२६२
धनलोभामिभूतस्य	१३८

धर्मपक्षो महानीतिः	३५४
धर्ममेवं विधानेन	६८
धर्मरत्नोज्ज्वलद्वीपं	२५६
धर्मस्य पश्यतौदार्यं	२१०
धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्या-	३८३
धर्मात्मा सुस्थिरो राम-	७१
धर्माधर्मविवेकशः	३२६
धर्मार्थकाममोक्षाणा-	१६
धर्मार्थकामसंसक्तै-	२१
धर्मादिद्रव्यपर्यन्तं	६८
धर्माद्यतमनस्कस्य	११२
धर्म्यध्यानगतः कृत्वा	६१
धवभिज्ञां प्रयच्छेति	१२०
धातुपर्वतसङ्काशाः	३६१
धारयन्ती परां कान्ति-	२६
धावध्वमसकौ कोऽसौ	३३६
धिक् तं पशुसमं पापं	२३२
धिक् शब्दः प्राप्यते योऽयं	२६०
धिगत्यन्ताशुचिं देहं	१८६
धिगिदं शौर्यमस्माकं	२३४
धिग् धिग् धिगिदमत्यन्तं	१६०
धिग् धिग् नीचसमासङ्गं	१३५
धिङ् मया चिन्तितं सर्वं	१०
धूपं यश्चन्दनाशुभ्रा-	६७
धृतशक्तेः समीपेऽस्य	१७४
धृतार्थिना जलं तेन	२०३
धमाताः शङ्खा जगत्कम्पा	३०६
ध्यात्वेति सोदरस्नेह-	५६
ध्यात्वेन्द्रनगरेशस्य	१४८
ध्यानाशुशुद्धिणाविरे	१४१
ध्यानेन मुनिहृष्टेन	६३

न करोति कथामन्यां	२८१
न करोति यतः पातं	७८
न किञ्चिद् बहुना	२०१
न कृता मन्दभागेन	१४५
न केवलमसौ मानी	११६
न केवलमहं तेन	४०२
नक्तं दिवमशुष्यत् स	५
नक्तं शक्या स्थितेनासा-	११
नक्षत्रगोचरातीतं	५७
नक्षत्रमण्डलालोकं	१८२
नक्षत्रलुब्धसंज्ञश्च	३६७
नखच्छेद्ये तृणे किं वा	३७८
नखविद्धतकक्षोरु	२३२
नखैर्विलुप्य दन्तैश्च	२३३
नगरं साधनं कोपं	११३
नगरीतश्च निष्क्रम्य	४०२
नगर्यां पश्चिनीनाग्नि	१८४
नगानां कोटरेष्वन्ये	५१
नगोऽयं दण्डको नाम	२१५
नग्नतापरिहारेण	६५
न च प्रत्युपकाराय	३२८
न चात्र काचिदापत्ते-	१६५
न चापे सागप्रतं जाते	५५
न जल्पति निपण्णः ज्ञां	२६४
न तथासन्नमृत्योर्मे	४६
न तन्नरा नो ययवो न	३६८
न त्वयैकेन संसारो	६७
न त्वा स्तुत्या च तत्रासौ	५६
नदीतीरं समागम्य	४०३
नदीनां चरडवेगाना-	१६७
नद्याः कर्णरवायास्तु	१६७

नद्यां गिरावरस्ये वा	७८	नवयौवनसंपूर्णा	३३	नानापद्मिकुलकूल-	१०३
नद्येषा विमलजला-	२१८	नवयौवनसंभूत-	२५	नानापुष्पकृतामोदा	२२३
ननाम चाञ्जलिं कृत्वा	१०६	नवयौवनसम्पन्ना	१७२	नानापुष्पफलाकीर्ण	१०३
ननाश भयपूर्णा च	२१	न वर्तते इदं कर्तुं	१६२	नानाप्रकाररत्नांशु	२२४
ननु ते ज्ञातमेवैतद्यथा-	३२१	नवसङ्गमनां कश्चि-	८६	नानाप्रहरणान् वीरान्	१२६
न नो निवर्तते चित्तं	८६	न विष्णः स किमस्माकं	१६४	नानाभूषणयुक्ताङ्गौ	१६६
नन्दिघोषोऽन्यदा धर्म-	६६	न विनश्यन्ति कर्माणि	३७३	नानामृगक्षतजपानसुरक्त-	२१४
नन्दिवर्धनकाले ते	७१	न वृक्षाज्जायते मांसं	६	नानायानविमानास्ते	३४८
नन्द्यावर्तपुरीं रामो	१५६	नवेन संगमेनास्या	१७४	नानायुद्धकृतध्वान्ता	२०
न प्रसादयितुं शक्यः	२३८	नवो बद्धो यथा पत्नी	३८२	नानायुद्धसहस्रेषु	२५०
नभःसमुत्पतन्तौ तौ	२०६	न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद्	२८१	नानायुद्धाश्च संकुद्धा	२७७
नभश्चरसमायोगे	३१६	न शृणोति स्मरग्रस्तो	१६२	नानायुधविचिह्नानां	३५६
नभश्चरैः समं पूजां	५६	नष्टशङ्कस्तमादाय	२२७	नानारत्नांशुसम्पर्क-	१५३
न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं इति तां	२३४	न सा क्षितिर्न तत्तोयं	६२	नानारूपसमाकीर्ण	२६
न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं निवर्त्त-	१४३	न ह्याखूनां विरोधेन	१७	नानाखतोपगूढानि	१७१
नभोऽन्वकारितं कुर्वन्	१३५	नाकाले म्रियते कश्चि-	२५४	नानावर्णविमानाग्र-	३६८
नभोविहरणीं लब्ध्वा	१६०	नागपाशैरिमौ बद्धौ	३८२	नानावस्त्रसमाश्लिष्ट-	४०३
नमस्कारं च कृत्वास्या	१३८	नागा सिंहादयोऽप्यत्र	२०१	नानावृक्षलताकीर्ण	१६६
नमस्कारं जितेन्द्राणां	१६१	नागारिवाहनारूढौ	३८५	नानावृक्षलताकीर्ण	१६५
नमस्कृत्य मुनिं श्रेष्ठं	६४	नागेन्द्र इव हस्तेन	२६४	नानाशस्त्रकरेण्वेषु	११७
नमस्यत जिनं भक्त्या	१८७	नागैरञ्जनशैलभैः	११२	नान्तःपुरं न देशो न	२०५
नमस्त्रिलोकवन्द्येभ्यो	१४२	नातिदूरे ततो दृष्ट्वा	२६	नाम्नाऽनङ्गशरा तस्य	४०२
नयनानां समानन्दं	३०२	नात्रयुक्तमवज्ञातुं	२३५	नारकाग्निभयग्रस्ताः	७
न यस्य जलदध्वान्ते	४	नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चि-	२४४	नारदः परमं विभ्रदभ्य-	२३
न यावदथवा षेति	१६०	नाथ ! युक्तमयुक्तं वा	२७	नारदोऽनुषदं तस्या	२३
न युक्तमथवा चित्तं	८१	नाथ वाह्यायतां ताव-	१५०	नारायणसमेतेन	१६३
न ये भवप्रभवविकार-	२४३	नाथ ! वेदय मे स्थानं	३७	नारिङ्गमातुलिङ्गाद्यैः	२६२
नरकप्रतिमे घोरे	१८३	नाथ शूरस्त्वमेवैकः	१६८	नालिकेरैः कपित्थैश्च	२१२
नरप्रधानदोतिस्ते	१८६	नाथ ! सातिशयोऽयं मे	२०६	नाशकनोदनरण्यस्तं	४
नराणां मानदग्धानां	१६६	नाथाज्ञापय किं कृत्य-	७३	नासावासीज्जनरतत्र	१३
न रात्रौ न दिवा निद्रां	२४	नाथानर्थसमुद्गेन	२६	नारत्यर्घाङ्गुलमात्रोऽपि	७
नरास्ते दयिते श्लाघ्या	३६२	नाथावापत्सु वामेपा	३८५	नारत्येव मरणे हेतु-	२६४
नरेन्द्र पश्य केनापि	२०३	नाथे तथा स्थिते तस्मिन्	६३	निःशङ्क द्विपयिकान्तः	३२७
नरेभकलभौ सत्य-	१७६	नादो वर्वरकः पापो	३६७	निःशेषं दूत यद्वृत्तं	३००
नरशः सुमुखस्तत्र	१६०	नानाजनपदाकीर्णां	१७०	निःशेषतश्चास्य निवेदितं	४१३
नलनीलप्रभृतयः	३०४	नानाजनोपभोग्येषु	१७८	निःसर्पत्तारकाकार-	३६३
नलेनोत्पत्य हस्तो वा	३६६	नानाजन्ममहावर्तां	७३	निःसृताबुपसर्गात्तौ	१८८
नलो नीलो तडिद्वक्त्रो	३४६	नानाजातीश्च वृक्षाणां	२६	निःस्वः क्षमागोचरः कोऽपि	२५७
नन्मेघप्रतीकाशै-	१३	नानानिर्ब्यूहसम्पन्नं	१७२	निक्षिप्यते हि कामामौ	७७

निक्षेपो गुरुभिस्त्वं मे	३६६	निर्दयाः पशुमांसादो	२०	नूनं त्वया न विज्ञाता	१०७
निजसैन्यार्णवं दृष्ट्वा	३८६	निर्दयैश्च गदापातै-	३१८	नूनं दैत्येन केनापि	२४६
निजां शक्तिममुञ्चद्भि-	२४६	निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽसा-	३०६	नूनं न भवितव्यं मे	२७७
निजे भुजे समुत्कृत्ये	४११	निर्दोषभावनो यस्तु	१०	नूनं भवन्तमुद्दिश्य	२८
नितान्तक्रूरकर्माय-	१०६	निर्मात्यैर्जानको सम्यक्	२३७	नूनं सर्वं कृतं कर्म	२४६
नितान्तपटुताभाञ्जि	४६	निर्मुक्तदुःखनिश्वासं	२३०	नृत्यन्तं च समालोक्य	१७५
नितान्तबहुयोद्धृष्टां	३८०	निर्ययौ च पुराद्युक्तः	२७	नृपतिश्चागतो वीक्ष्य	४६
नित्यमर्थयुतं देव	१४४	निर्वाह्य दिवसानष्टौ	३५६	नृपश्चाद्बुधलच्छायां	१६
निद्राधूर्णितनेत्राणां	३७८	निर्विचेष्टं तमालोक्य	३६६	नृपाः शत्रुन्दमाद्याश्च	१७६
निद्राविद्राणसङ्ग्रामा-	३७८	निवर्त्तय द्रुतं चित्तमशुभ-	१६३	नृपाः सिंहोदराद्याश्च	१२२
निद्रावशीकृतान् वीरान्	१६०	निवर्त्तस्व भज स्वास्थ्यं	१७०	नृपाशया नरैः क्रूरै-	३
निधानमधनेनैव	१०६	निवर्त्तस्व महाबुद्धे	३१७	नेक्ष्यते सन्धिरप्यत्र	१६०
निधाय हृदये राम	३३३	निवर्त्यमानवन्धूनां	८२	नेता वानरमौलीनां	२६६
निन्दन्नेवं खलासङ्गं	१३५	निवासमत्र कुर्मोऽत्र	२११	नेत्रचापविनिर्मुक्तै-	३२०
निन्द्योनिषु पर्यट्य	१८८	निवृत्तभोजनविधिः	३३३	नेत्रमानसचौराभ्यां	१७०
निपत्य शिखरादद्रे-	३२५	निवृत्ते मरुतः पुत्रे	२७५	नेत्राभ्यामसमुत्सृज्य	६५
निमग्नं संशयाभ्योधौ	२७५	निवेदितं ततो वृद्धै-	२७१	नैमित्तादिष्टकालस्य	२६३
निमिषान्तरमात्रेण	२१	निवेदयन् गुणांस्ताव-	२३६	नैव वारयितुं शक्या	१८५
नियतं मरणं ज्ञात्वा	३६६	निवेद्यैवमसौ तेभ्यः	२५	नैशं ध्वान्तं समुत्सार्य	२५६
नियमस्त्वत्प्रसादेन	१२२	निशम्य तद्वचो राजा	५०	नैषा सीता समानीता	३५२
नियमावधितोऽतीते	४०५	निशम्य वचनं तस्या	३४२	न्यायेन सङ्गतां साध्वीं	२३०
नियुज्यात्मसमं द्वारे	७२	निशम्यामोघवाक्यस्य	३१५		
निरन्तरं तिरोधाय	२२१	निशम्योक्तमिदं सीता	१७६	[प]	
निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन्	२६१	निशागमे किमस्माकं	१७६	पक्वं फलमिषैतन्मे	४६
निरर्थकं प्रियगतै-	३४१	निशितानि च चक्राणि	१६	पक्षिणः प्रतिबोधार्थं	२०६
निरर्थकमिदं जन्म	५६	निश्चलश्च क्षणं स्थित्वा	२४८	पक्षिणं संयतोऽगादीन्	२०६
निरस्तमपि निर्यन्तं	३७२	निश्चेष्टविग्रहश्चार्यं	२७६	पक्षिमत्स्यमृगान् हत्वा	६
निराश्रयाकुलीभूता	८६	निश्छाद्यं स्फुटितं क्षायं	४०४	पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति	६
निरीक्षस्वैनमुत्पत्य	११६	निश्शब्दपदनिक्षेपा-	१४८	पक्षीभवन्नसौ यस्मा-	१८८
निरीक्ष्य सौम्यया दृष्ट्या	१०८	निषद्याऋषभादीना-	२६६	पक्षौ नैः पञ्चभिर्मसै-	१०३
निरीक्ष्य स्वजनं विप्रो	१४६	निष्क्रान्तेनान्यदा तेन	२०३	पङ्कचन्दनयोर्यद्वद-	२२५
निश्चं भ्रातरं श्रुत्वा	३६४	निष्क्रामत परं गेहान्	१३४	पञ्चकल्याणसम्प्राप्तिः	३५
निरुध्य सर्वशस्त्राणि	२३५	निसर्गकान्तया गत्या	३३६	पञ्चपल्योपमं स्वर्गं	७०
निरुपद्रवसञ्चारे	२६२	निहन्तास्मि न चेदेनं	११२	पञ्चषष्टिसहस्राणि	३५८
निरूपय क्वचित्तावद्	१०४	निहतोऽयमनेनेति	३२१	पञ्चसद्वन्धताम्बूल-	३०४
निर्गच्छन्तीं प्रजां दृष्ट्वा	१७८	नीचानामपि नात्यन्त-	५६	पञ्चसैरावतारयेणु	१४२
निर्ग्रन्थपुङ्गवावेभिः	२०६	नीतिज्ञैः सततं भाव्य-	४०६	पट्टवस्त्रादिसम्पूर्णा	४०६
निर्ग्रन्थसंयतश्छत्रं	३४७	नीत्या द्वादशवर्षाणि	२२६	पट्टविशदं युक्ताः	१०१
निर्जोवः प्रतितः क्षोण्यां	२४६			पततावेशमना तेन	३४२
				पतद्भिस्तोरणैस्तुङ्गैः	३३८

पतन्तं मां समालोक्य	४०१	पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चै-	३६	परितोऽकरोद्भ्रमणमस्य	२२०
पतन् वीक्ष्य तदा रात्रा-	५७	पद्मोऽवदन्न मेऽन्याभिः	२६०	परित्यक्तनरद्वेषा	१७३
पताकातोरणैश्चित्रं	५६	पपात नभसो वृष्टि-	१५१	परित्यक्तावृत्तिर्भाभ्ये	१०६
पतितस्याद्य नो रूपे	१६३	पप्रच्छ परिसांक्ष्यैष	२३२	परित्यक्तोत्सवतिथिः	१४०
पतितोदारवृक्षौघे	३१३	पप्रच्छ मगधाधीशो	२८३	परित्यज्यतिवीर्यस्य	१६४
पत्तनग्रामसंवाह-	२०३	पयसा संस्कृतैः काश्चि-	३३३	परिदेवननिस्वानं	२४८
पत्तयः पत्तिभिर्लग्नाः	२४४	पयोमुचः केचिदमी-	२२१	परिदेवनमारब्धे	२४६
पत्तिः प्रथमभेदोऽत्र	३५८	परं च विस्मयं प्राप्ता	११	परिदेवनमेवं च चक्रे चक्रा-	१२
पत्तिस्त्रिगुणिता सेना	३५८	परं प्राप्य प्रबोधं स	२७०	परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रक-	६५
पत्नीमहानरस्यास्य	२४७	परं विस्मयमापन्ना	१५०	परिदेवनमेवं च चक्रे विह्वल-	३८
पत्न्यां जनकराजस्य	६	परं साधुप्रसादं च	३८३	परिदेवनमेवं तां	७६
पत्युर्मम न तुल्यस्तु	२७३	परचक्रसमा क्रान्तो	२२४	परिध्वस्ताखिलद्वेषं	६५
पदमन्यत्र यच्छामि	४६	परदारान् समार्काक्षन्	२५३	परिप्राप्याश्रमपदं	५
पदातिभो रथैर्नगैः	१५६	परदाराभिलाषोऽय-	२६०	परिषार्य महावीर्यं	२६६
पदार्थान् सर्वजीवादीन्	५३	परपक्षक्षयं कर्तु-	३८५	परिष्वज्य महाप्रीत्या	१५२
पद्मः सीतानुगो भूत्वा	१७६	परमं भोजितश्चाजं	१४५	परिष्वज्य रहो नाथं	४१२
पद्मं लक्ष्मणसंयुक्त-	७५	परमं सर्वभावानां	७३	परिसान्त्वनसूरिभ्यां	८२
पद्मकैर्मुचिलिदैश्च	२११	परमं सुन्दरे तत्र	१२५	परिसान्त्व्य सुतं कान्तां	२७
पद्मगर्भदलाभ्यां च	१०४	परमं स्नानवारीदं	४०५	परिसान्त्व्योत्तमैर्वाक्यै-	२४६
पद्मगर्भदलं यस्मिन्	२३	परमशितिशिलौघरश्मि-	२१७	परुषैश्छदनान्तैश्च	२३८
पद्मगर्भदलच्छाया	४२	परमापदि सीदन्तं	३२६	परेण तेजसा युक्ता	१८०
पद्मश्च सीतया साकं	१५१	परमेऽथ निशीथे ते	१२३	पर्णलब्ध्वीं ततो विद्यां	१०
पद्मनाभः सुमित्राजः	३६८	परयोषित्कृताशस्य	२५८	पर्यटन्तो महीं स्वैरं	१४७
पद्मनाभस्ततोऽगादी-	३८६	परलोकादिहैतस्त्वं	१०८	पर्यटन् वसुधामेतां	२६२
पद्मनाभस्ततोऽयोच-	२६७	परसैन्यसमाश्लेष-	३६१	पर्यट्य पृथिवीं सर्वा	३६६
पद्म पद्म महाबाहो	३८१	परस्परं च दुश्चिन्तां	३५५	पर्यस्ता भूतले केचि-	३६१
पद्मरागाभनेत्रश्च	२०२	परस्परं समालापं	३५५	पर्यस्तानि न किं तानि	७१
पद्मश्च तानुवाचैनं	१२३	परस्परं समालोक्य	३०३	पर्याप्तिर्नास्ति मृष्टाना-	८४
पद्मस्य प्रणतिं कृत्वा	१७६	परस्परकृतं दुःखं	८	परलवस्पर्शदस्ताभ्यां	२०६
पद्मस्याञ्जलियातोऽसौ	३४५	परस्परकृताह्वानै-	२४५	पवनञ्जयराजस्य	२६६
पद्मादिछादितैः स्वच्छैः	३२५	परस्परकृताक्षेपौ	३१०	पवनस्य सुतो न त्वं	३४०
पद्माभस्य शरैर्ग्रस्तो	३६४	परस्पराभिघाताद्वा	३५४	पवस्थात्मजः ख्यातो	२५०
पद्मो नादित्यकर्णोऽपि	३६२	परस्त्रीरूपसस्येषु	१८७	पद्मोभौमैककार्यस्य	२४२
पद्मे द्विरेकवत् सक्तः	१११	पराकारण्ययुक्तोयं	१६२	पश्चात्तापानलेनालं	६४
पद्मेषु चरणाभिख्यां	२८२	पराक्रमेण धैर्येण	३३०	पश्चात् स्तोतः संसक्ताप्र-	२१६
पद्मो जगाद तां देवि	१८३	पराङ्मुखीकृतैः क्लीचैः	२१	पश्चादिदं समाकीर्णं	२०५
पद्मो नाम सुतो यस्य	३५	पराजिता त्वया नाथ	३२१	पश्चान्मस्तकभागस्थ-	४८
पद्मोत्पलवनाढ्याभि-	१६५	पराधीनक्रिया साऽहं	४११	पश्चिमाया इवाशयाः	१२
पद्मोत्पलादिजलज-	५४	परार्थे यः पुरस्कृत्य	३२६	पश्यतः प्रौढया दृष्ट्या	३०८

पश्य तं विभवैर्युक्तं	३३३	पाषाणेनैव ते गात्र-	११६	पुरस्तात् नरेशानां	१७४
पश्यताम्बरयानोद्ध-	३५६	वितरं तादृशं दृष्ट्वा	७४	पुरस्य दक्षिणे भागे	२७४
पश्यतैनं महाभीमं	११८	वितरौ परिवर्गेण	८१	पुरस्यात्यन्तदुर्गत्वात्	११२
पश्यन्ती तुरगान् द्वारे	४१०	पिता तद्वचनं श्रुत्वा	७७	पुरा करिकराकार-	४८
पश्य पश्य नरश्रेष्ठ !	२००	पिता दशरथो यस्य	३०५	पुराकृतादतिनिचितात्	३१६
पश्य पापस्य माहात्म्यं	२२६	पितानाथोऽथवा पुत्रः	८०	पुरातनं च वृत्तान्तं	६७
पश्य मातरमुज्झित्वा	८२	पितुः पालयितुं सत्यं	७८	पुरानेकत्र संग्रामे	२५५
पश्य सीता कथं याति	८२	पितुः सङ्गीतकं श्रुत्वा	४०४	पुरा योऽनेकमांसादो	२१०
पश्यामीयं पतिं युद्धे	३३२	पितुरन्ते ततो नीतः	५६	पुरा विशिष्टं चरितं कृता-	३१२
पश्यामस्तावदित्युक्त्वा	३३६	पितुर्भातुश्च दुःखेन	३००	पुरा संसर्गतः प्रीतिः	१
पश्यामुष्य महानुभाव-	२१३	पिनद्धं कस्यचिद्वर्म	३६३	पुरुषः कोऽन्वसौ लोके	१७१
पश्यामार्कं जुगुप्साभि-	४७	पिनष्टि पञ्चवर्णानि	४५	पुरुषोत्तम मे माता	२२६
पश्येमे निस्त्रया भृष्टाः	१३४	पुण्डरीकातपत्रेण	१३७	पुरे कारयितुं शोभां	२७८
पाण्यंगुलीयकं सीता	३३५	पुण्ड्रेक्षुवाटसम्पन्ना	१०४	पुरो मोक्ष्यामि सेवध्वं	१२०
पातालं किं भवेन्नीता	२४६	पुण्यज्ञयात् परिभ्रष्टौ	३७२	पुरोहितो गजो जातो	७०
पातालादुत्थितः किं वा	३०	पुण्यवत्य इमाः श्लाघ्या	४६	पुण्यकाग्रं समारोप्य	२६१
पात्रदानप्रभावेण	२११	पुण्यवन्तो महोत्साहाः	५०	पुण्यचूडो महारक्तो	३६४
पात्रदानमहो दानं	३३५	पुण्यानुभावेन महानराणां	३५७	पुण्यप्रकरसंपूर्णाः	८२
पात्रदानानुभावेन	२०१	पुण्येन लभ्यते सौख्य-	७२	पुष्पाणि गन्धमाहारं	२४
पात्रदानैः त्रैः शीलैः	३७३	पुत्रः प्रकाशसिंहस्य	२	पुष्पाद्रैस्वतोर्णस्य	३३७
पादताडितभूभागा	३३२	पुत्र राज्यं त्वया लब्धं	९३	पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतै-	१०३
पादन्यासैर्लघुस्फुट-	१६२	पुत्रवत्यो भवत्योऽत्र	८४	पूरिताञ्जलिमंशूना-	३४५
पादपानां किमेतेषां	२२४	पुत्राभ्यां सह सम्मन्त्र्य	८४	पूर्णं जगत्तिष्ठति जन्तु-	३०७
पादमार्गप्रदेशेषु	३३८	पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं यामः	६५	पूर्वं सनत्कुमाराख्यः	१४४
पादमूले ततो नीत्वा	१४१	पुत्रोऽनुरण्यराजस्य	३५	पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरितः	२६२
पादविन्यासमात्रेण	३४२	पुनः पुनः समाहूय	३०६	पूर्वकर्मानुभावेन स्थिति-	३७१
पादावष्टम्भभिन्नेषु	३३८	पुनः पुनरपृच्छच्च	२८८	पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः	२१६
पादोदकप्रभावेण	२०२	पुनः पुनरपृच्छत् सा	१५२	पूर्वजन्मनिवास्येऽस्मिन्	५७
पानकानि विचित्राणि	१२६	पुनरन्यैर्भटैः शीघ्र-	३६६	पूर्वद्वारमदो यत्तु	१३८
पापकर्मपरिक्लिष्टै-	१०८	पुनश्च मारुतेः पार्श्व-	२७४	पूर्वद्वारेण संचारे	३६८
पापघातकरं सर्व-	१०७	पुनश्च राघवोऽवोचत्	१२१	पूर्वमेव तु निर्यातो	१८
पापात्मकमनायुष्य-	२५३	पुनश्चाचित्तयशुद्धे	२४८	पूर्वमेव हृता कस्मा-	५५
पारगः सीतया सार्धं	६०	पुनश्चोवाच भरतं	६५	पूर्वानुबन्धसङ्क्रोध-	३८८
पार्थिवः प्रतिभः कश्चि-	४०६	पुनस्तत्रैव गान्धार्या	७०	पूर्वापरायतज्ञेयार्था	१५
पालयन् स निजं सैन्यं	३६२	पुनाति त्रायते नायं	७६	पूर्वो तु प्रच्युतौ नाकात्	३७२
पाशकोऽत्रान्तरे नत्वा	२८	पुरःकृत्वातिवीर्यस्य	१६६	पूष्णो यस्य करैरुग्रै-	४
पार्श्वस्थः पद्मानभस्य	३४८	पुरःप्रवृत्तसोत्साह-	१५३	पृच्छन्ती श्री धरा तस्य	१११
पार्श्वस्थया तथा रेजे	४१	पुरप्राप्तसमाकीर्णा	१६६	पृथिवीति प्रिया तस्य	१२७
पार्श्वे कमलकान्ताया	६३	पुरमध्ये महादुःखं	४०६	पृथिवी महिषी तोष-	१३२

पृथिव्यः सति सप्ताधो	१०७	प्रतिपद्यस्व तत् क्षिप्रं	२५७	प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं	१७०
पृथुस्थाधिपस्याहं	२६२	प्रतिपन्नैस्ततः सर्वै-	२६८	प्रमापरिकरा शक्ति-	४१०
पृष्ठश्च लक्ष्मणः कृत्स्नं	२२७	प्रतिबुद्धास्तथा तेऽथ	३७८	प्रभामण्डलमादाय	६४
पृष्ठा च सा मथारूपातं	१३६	प्रतिमां यो जिनैन्द्राणां	६८	प्रभामण्डलमायातं	३५६
पृष्ठतश्चास्य सानन्दा	३४२	प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्री	३१७	प्रभावं तपसः पश्य	१६७
पौदने नगरेऽन्विष्य	३	प्रतिमावस्थितान् कांश्चि-	१८४	प्रभिन्नं वारणं तावद्	२०६
प्रकीर्णकं जनानन्दं	२६२	प्रतिसन्ध्येति तज्जाया	१३०	प्रभीष्यते वराकोऽयं	१७६
प्रकीर्णकं महीपृष्ठे	२६२	प्रतीकारो विलापोऽत्र	३६७	प्रभुर्महाबलो भोगी	२७१
प्रकरेणामुना शत्रू-	२६८	प्रतीच्छारिन्दमेदानीं	१७४	प्रभूतदिवसप्रातं	६४
प्रकृतेऽस्मिन् त्वमाख्यानं	३५५	प्रतीच्छेच्छसि मर्तुं चे-	१७३	प्रभ्रासुरलोकाञ्च	४०५
प्रचण्डनिस्वद्वन्दाः	२६१	प्रतीतः प्रणिपत्यासौ	११३	प्रमदमुपगतानां योषिता-	१३
प्रचण्डैर्विगलद्गण्डैः	२५८	प्रतीतां सनमस्कारां	१३२	प्रमदाभिख्यमुद्यानं	२६३
प्रच्छन्नं प्रेषिता वृत्ती	२	प्रतीन्दोर्वचनं श्रुत्वा	४०८	प्रमादरहितस्तत्र	१६१
प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम-	७	प्रतीहारा भयाः शूरा-	१३६	प्रमादाद्भवतो जातो	३३५
प्रजातेन त्वया वत्स	३११	प्रत्यावृत्य च सम्भ्रान्त	२८४	प्रयच्छति स्वयं नान्नं	६८
प्रजात्तरमानन्दा	२१	प्रत्यासन्नं ततः कृत्वा	१३२	प्रयतोऽहि क्षपायां च	२०८
प्रजाभिः पृथिवीपृष्ठे	६२	प्रत्युवाच स तं भीतिः	१८७	प्रययौ परया द्युत्था	३०७
प्रजासु रक्षितास्वेत-	१६	प्रत्येकं पञ्चभिः सप्ति-	१५६	प्रयाणतुर्यसंघातं	३४७
प्रजासु विप्रनष्टासु	१६	प्रत्येति नाधुना लोकः	३३४	प्रयाहि भगवन् भानो-	१४८
प्रजिघाय च सर्वासु	३२५	प्रथमं निर्गतोदात्त-	३६४	प्रयोगकुशलश्चारु	३८०
प्रणम्य केकयां सान्ववं	६५	प्रथमं वातिना हर्ष-	३४४	प्रलम्बाम्बुद्वन्द्वोद	३०६
प्रणम्य च जगौ रामं	२७६	प्रथमा चन्द्रलोकाख्या	३१४	प्रलम्बितमहाबाहू	३१४
प्रणम्य त्रिजगद्वन्धं	१२१	प्रथमाभ्यां ततस्तस्य	२८५	प्रलथाम्भोदसम्भार-	३६३
प्रणम्य पादयोः साधुं	२०२	प्रथमे गोपुरे नील-	३६८	प्रभवति गुणसरयं येन	१३
प्रणम्य भरतायासौ	१६७	प्रथितः सिंहकटिना	३७८	प्रवरं रथमारुह्य	१४८
प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि	३११	प्रदानैर्दिव्यवस्तूनां	२५३	प्रवरभधनकुक्षिष्वत्यु-	१४
प्रणम्य विधिना तत्र	१८३	प्रदोपाः पाण्डुरा जाता	५२	प्रवाच्य चार्पितं लेखं	६४
प्रणम्य शिरसा तस्य	६१	प्रदेशमौत्तरद्वारं	३६८	प्रवाच्य मारुतिर्बाणं	३२१
प्रणम्य श्वसुरं श्वश्रू-	८१	प्रदेशा नगरोपेता	२८६	प्रवातघूर्णिताम्भोज-	४१
प्रणम्य सर्वभावेन	८४	प्रदेशान्तरमेतस्मिन्	३५४	प्रवाहेणामृतस्येव	२७६
प्रणाममात्रसाध्यो हि	२८३	प्रदेशे स त्वया कस्मिन्	३२८	प्रविशन्तं च तं दृष्ट्वा	२७९
प्रणामरहितं दृष्ट्वा	१७३	प्रदेशे सप्तमे राज-	३६८	प्रविशन् विपुलं सैन्यं	१६
प्रणिपत्य गुहं मूर्ध्ना	६	प्रदोषे संस्तरं कृत्वा	१५०	प्रविश्य च पुरं कुर्वा	११२
प्रणिपत्य च भावेन	८७	प्रधानसम्बन्धमिदं हि	३७०	प्रविष्टं नगरं श्रुत्वा	११२
प्रणेमुश्च समं तेन	३१४	प्रपद्यस्व च धीरत्वं	३६७	प्रविष्टे मार्गतेर्गेहं	२६६
प्रतापश्चानुरागश्च	६६	प्रपद्येऽहं जिनेन्द्राणां	४	प्रवेशितस्य चास्थान्यां	३३६
प्रतिज्ञां स्मारयंस्तस्य	२८३	प्रगत्य भूतले भूयो	८	प्रवृत्तश्च महाभीमः	१८
प्रतिज्ञाय तदेदानीं	७५	प्रपीड्यते च यन्त्रेणु	७	प्रशमय स्वयं कोप-	८१
प्रतिपत्नी भवन् साधो	२८७	प्रबुध्य च विशालेन	६५	प्रशशंसुश्च ते सीता	८७

प्रशान्तगुणसम्पूर्णं ३०३
प्रशान्तावस्थितं ह्रस्वा २३३
प्रशान्ता भव मा पीडां २०८
प्रेषितः पद्मनाभश्च ३२६
प्रसन्नवदना भर्तु- २२३
प्रसन्नमानसौ सद्यः १८३
प्रसन्न साधुना हर्तु- ५५
प्रसादः साधुना तस्य १०६
प्रसादं कुरु गच्छाशु ११२
प्रसादं कुरु तच्छाया- १२६
प्रसादं कुरु मा दुःखं १२०
प्रसादं कुरु यास्यामो ४०६
प्रसाद्यतां सुविज्ञानै- २६७
प्रसादायस्य यातोऽसि ३४०
प्रसीद दयितस्यास्य ४७
प्रसीद देवि कोऽद्यापि ४७
प्रसीद देवि भृत्यास्ये २५२
प्रसीद नाथ सुखस्य ४१०
प्रसूतमेककं कृत्वा ६१
प्रस्तरो हिमवान् भङ्गः ३६७
प्रस्थिता च पितुर्गैहं २८४
प्रस्पष्टमिति चोवाच ११६
प्रहस्यावोचतामेता- १७६
प्रहारमिममेकं मे ३६३
प्राकृता कापि सा नारी ३७
प्राकृता परमा सा त्वं ३३१
प्राग्भागेषु स्थिताः केचिद् ५१
प्राग्भारदधिवक्त्राश्च ३५३
प्राग्भारसिंहकर्णस्थ- १०५
प्राणाश्च धारयन्तीनां १२३
प्राणिनां मृत्युभारुणां ६
प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा ७३
प्रातिवेश्मिकयोधाना- ३६१
प्रातिहार्यं कृतं येन १६४
प्रातिहार्यसमायुक्तं ३०
प्रातिहार्यं कृते ताभ्या- १८३
प्रान्तेषु सर्वसामन्ता- ३६
प्राप्तः कर्मानुभावेन १३०
प्राप्तः प्रालेयसं गत- ७१

प्राप्तबोधिरसौ पत्नी २०६
प्राप्तरोधं सुतं दृष्ट्वा ३०६
प्राप्तश्च तामरण्यानी ६४
प्राप्तसल्लेखनां क्षीणां ४०५
प्राप्ते काले कर्मणामानु- ३६६
प्राप्ते विनाशकालेऽपि ३४१
प्राप्तो दूष्यण्डद्वारं ४००
प्राप्तो भवत्प्रसादेन ६२
प्राप्तौ नानारचनभवनो- १२४
प्राप्य च वासमात्मीयं ३४४
प्राप्य तौ गुणसंपूर्णौ ३३
प्रावृट्कालगजो मेघ- २२३
प्रावज्ये यस्य भगवन् ५
प्रासादगिरिभालाभि- १७१
प्रासादप्रवरोत्संगे २७२
प्रासादशिखरच्छाया १६५
प्रियंगुलतिका पश्य २१३
प्रियस्य विरहे प्राणान् १२३
प्रिया जीवति ते भद्रे ३४४
प्रियापरिमलं कश्चि- ३६३
प्रियावास्तदभिज्ञानं ३४५
प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव ८०
प्रिये मा गाः परं शोकं १२
प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य १०६
प्रीतिश्चेन्मयि युष्माकं २६०
प्रीत्या परमया दृष्ट्वा ७४
प्रीत्या विमोचयामि त्वां ३२६
प्रीत्या संवर्धितं भूयः ८०
प्रीतिर्भक्त्यै पूर्णेन ३२१
प्रेषितं भानुमार्गेण ६४
प्रेषितः काशलां दूतः ३८
प्रोक्तश्च पद्मनाभेन ३६४

[फ]

फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य ६८
फलं प्रदक्षिणीकृत्य ६८
फलं यदेतदुद्दिष्टं ६८
फलपुष्पभरानम्रा ३३६
फलभारनतैर्ग्रै- २१२
फलाभि स्वादुहारीणि १०३

फलैर्बहुविधैः पुष्पै- १०१

[ब]

बद्धस्तथाविधो वृत्ते २६१
बद्धान्धतमसा पक्षै- ३६५
बद्ध्वा परिकरं पुष्पिभः १६५
ब्रह्मान स्फोटयार्क्य- ३६०
बन्धयित्वा महावृक्षै- ६४
बन्धुस्तेहमयं बन्धं १०६
बभञ्ज त्वरितं काश्चि- ३३७
बभूव चोदितस्यापि १८४
बलं बाधमुखं दृष्ट्वा ३१८
बलदेवोऽपि कर्तव्य- १४७
बलीयान् गवणः स्वामी २५७
बलिश्चण्डितगङ्गाश्च ३७७
बलेऽस्मिन् मारदेशीयो ३५६
बहिर्निष्क्रान्तकैष्किन्व- ३४४
बहिर्विनिर्गम्यौ हृष्टः ३०९
बहिश्चैत्यालपस्यास्य २७६
बहुकोषो नरेशो यः १६
बहुनात्र किमुक्तेन ११७
बहुनादा महाशैला ३५७
बहुप्रकारैर्मरुणैर्जनो १००
बहुभिः पूज्यमानोऽसौ ३०२
बहुले मार्गशार्पस्य ३४७
बहुश्रुतोऽतिवर्मज्ञो ६६
बाजिनो वारणा मत्ता ३७६
अलः सूर्यस्तमो घोरं १७
बालनीलां तरुमलान- ३७६
बालबुद्धिगणि स्वामिन् २६०
बालानां प्रतिकूलेन १७४
बाळिखिल इति ख्यातः १२७
बालेन्दुद्वतसर्वस्वां ६१
बाल्यात् प्रभृति दुष्कर्म १३०
बाह्यं हस्तशताद् भूमि- ४०५
बाह्यभूमिगतस्तत्र १०४
बाह्यस्थानि पुण्यास्य १६०
बाह्यायां भुवि लङ्कायां ३३६
विभर्ति तावद् दृढनिश्चयं ३७०
विभेति दशवक्त्राहः ३४६

बुद्धिमानसि धन्योऽसि	१२१
बोधिस्तेन दाक्षिण्या-	२६८
ब्रवीत्येवमसौ यावत्	६४
ब्राह्मणो विनिशम्यैतं	१४०
ब्राह्मण्या वसुभूनेश्च	१८४
ब्रुवते नास्ति तृष्णा न	८
ब्रुवत्या अपि सीताया-	१२६
ब्रुवन्निति महादृष्टः	१४३
बुद्धकञ्चुकिनो हस्ते	४५
बृहत्केतुस्ततोऽवोच्चत्	५५
बृहज्जटौ बृहत्कायौ	३७२
बृहद्गतितनूजस्तु	११०
बृहद्वादित्रनिर्वापि-	१६

[भ]

भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि	८३
भक्त्या बल्युपहारं यः	६८
भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि	३१
भगवंस्त्वत्प्रसादेन	५८
भगवन्तौ कुतो नक्तं	१८४
भगवन्नयमत्यन्तं	२०२
भगवान् स हि सर्वत्र	५८
भगिनी दुर्नखा तस्य	२२५
भग्नं पुष्पनगोद्यानं	३३६
भग्नोत्तुङ्गापणश्रेणिः	३३८
भयाः शबरसैन्येऽस्मिन्	१६
भज खेचरनाथानां	५६
भजत सुकृतसङ्गं तेन	३४३
भजता चन्द्रहासेन	२२८
भज तावत्सुखं पुत्र	७६
भजत्येव तथा देवो	१५७
भज सर्वोः क्रियाः पुत्र-	२७
भज्यमानं निजं सैन्यं	३८६
भञ्जनं करशाखानां	२२६
भद्र किं किमयं स्वप्नः	६४
भद्र ते कुशलेनाय	१२१
भद्राः किं किमिति ब्रूये-	१८५
भद्रे कोऽहं प्रसादस्य	१६२
भद्रोत्तिष्ठ जयायुः खं	२२७
भम्भामेयो मृदङ्गाश्च	३६८

भयेन स्वनतस्तस्मा-	१७६
भरतः शिन्धुणीयोऽयं	६५
भरतस्ये विदग्धवाक्ये	६०
भरतस्य किमाकृतं	८२
भरतस्य जयेनात्र	१६०
भरतस्य ततो मात्रा	४१०
भरतस्य त्रिखण्डस्य	२६७
भरतस्य मया नाथ-	४२
भरतस्याखिले राज्ये	७६
भरतस्थालयं प्राप्त-	४०६
भरतायाग्निराचिष्णु-	१५८
भरतेन ततोऽवाचि-	४०६
भरतो जयति श्रीमान्	१६४
भर्तार दुःखयुक्तेव	२५४
भर्तुर्भू भूषिताङ्गस्य	२७३
भवतो या गतिः सैव	३४६
भवत्कीर्तिलताजालै-	२६०
भवत्प्रभावक्षतसर्वविघ्नं	४१४
भवत्या यद्यसौ भ्राता	५६
भवत्या रमणोद्याने	२५२
भवत्या वाञ्छितं कृत्वा	३६२
भवद्भिरुक्तमैः प्रीतै-	३६६
भवद्भक्तस्थलस्त्यान-	३६१
भव धीरा प्रवीराणां	४००
भवनं यस्तु जैनेन्द्रं	९८
भवनेऽवधिना स्मृत्वा	६
भवन्तं तादृशं वीरं	३६६
भवन्तं शरणं भक्तः	३५४
भवन्तमेव पृच्छामि	१०८
भवादारभ्य पूर्वोक्तात्	१६०
भवान्तकस्य भवनं	८३
भवाग्नां मम स्मृत्वा	७३
भवामि छत्रधारस्ते	६४
भवार्णवसमुत्तीर्णा-	२६५
भवितव्यं कृतज्ञेन	३३१
भवितारौ जगत्सारौ	१६३
भव्यजीवा यमासाद्य	६०
भयतां पश्यतामुभ्य-	२६६
भव्य भो यावदायाति	६६

भव्याम्भोजमहासमुत्सव-	३८६
भागं सर्वं परित्यज्य	७८
भागो न भरतस्तस्य	१६०
भागवन्तो महासत्त्वा-	६०
भामण्डलं प्रतिकुद्धाः	३६५
भामण्डलकुमारस्य	५४
भामण्डलेन संभन्ध्य	६४
भामिनी जनकस्यासीद्	१
भारती न विशत्याज्ञा	१६७
भार्या मित्रवती तस्य	२८४
भावपुण्यैर्जिनं यस्तु	६७
भाव प्रतप्यसे किं त्व-	२०१
भाषमाणे गुणानेवं	१७५
भासां भूषणजातानां	३०२
भास्कराभाः पयोदाह्याः	३५६
भास्वद्रक्तिशताकीर्णं	१७२
भिन्नं यैर्ध्यानदण्डेन	१८१
भीमभोगिमहद्भोग-	३३७
भीमो भीमरथो धर्मो	३६७
भीषितानां दरिद्राणा-	२
भुंक्षे देशं मया दत्त-	११३
भुक्त्वा भोगान् दुःखत्वादान्	७७
भुक्त्वा राज्यं निरं कालं	१८६
भुषुण्डीः परशून् वाणान्	३१०
भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा	५८
भूतोऽयं भविता वापि	११६
भूमिगोचरिणो मर्त्या-	१८३
भूमिसम्प्राप्तसौवर्ण-	३४२
भूयो जलधिकलाल-	३८८
भूयो भूयो बहु ध्यायन्	२४२
भूयो विषादमागत्य	२४०
भूरिशोऽवग्रहांश्चक्र-	५२
भूविषयेषु निपातमुपैति	३७३
भृगुपातपरित्रस्तां	१८०
भृत्यानां भक्तिपूर्णानां	८८
भृत्यो भूत्वा विदुष्योऽहं	११०
भेद्यमानं बलं दृष्ट्वा	३६६
मेरीपण्यवीणाद्यै-	५२
मेरीशङ्करवः सिद्धि-	३४८

भोगसागरमग्नोऽसौ	२७८	मद्यपस्यातिवृद्धस्य	२७३	मयायं सदृशो मन्ये	२७१
भोगैर्नास्ति मम प्रयोजन-	१७७	मद्वाक्यादुच्यतां सीता	३०६	मया शिशुतया किञ्चि-	३११
भो भामण्डलसुग्रीवौ	३६७	मद्वियोगेन ततो वा	२८२	मयासीन्मन्दधीभाजा	१४०
भो भो निर्ग्रन्थ मा गास्त्वं	२०४	मधुरं ब्रुवते कारिचद्	१०२	मया स्नेहानुबन्धेन	७०
भो भो महीधराधीश !	२४१	मध्ये च गहनस्थास्य	२२६	मयि स्थिते समीपेऽस्मिन्	७६
भो भो सुविभ्रनाः सर्वे	२८५	मध्ये तस्यापि विपुलं	२२६	मयूरमालनगरे	१५
भो वृद्धाश्चम्पकच्छाया	२४०	मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य	२८८	मयेति गदितं वाक्यं	२५७
भूयस्त्वं दशवक्त्रस्य	३३१	मध्येऽथमस्य सैन्यस्य	३१	मयेदं शासनं जैनं	१३६
भ्रकुटिं कुटिलो यस्य	२८६	मध्ये यस्य नदी भाति	१३३	मयेदमर्जितं पूर्वं	२५४
भ्रमंश्च समिदाद्यर्थ-	१३६	मनुष्यभावसुकरं	२०१	मयैवं सततं पृष्टो	४०२
भ्रमद्भिश्चञ्चलैर्भृगै-	३३४	मनुष्यलोकमासाद्य	१६८	मर्यादा न च नामेयं	७६
भ्रमयित्वा क्षितौ याव-	१३४	मनुष्याणां पशूनां च	२५६	मर्यादानां नृपो मूल-	३२४
भ्रमरप्रावृत्तैर्गुह्यैः	३२५	मनोरथं पुरस्कृत्य	२८६	मर्याधर्मा यथा कश्चित्	३४१
भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च	३२६	मनोरथशतैः पुत्र-	७६	मलयोपत्यकां प्राप्य	१६६
भ्राजते त्रायमानः सन्	७६	मनोविषयमार्गेषु	१८७	महतः सरसस्तस्य	१२५
भ्रातरौ वाऽसुग्रीवौ	२७०	मनोहरैर्गुह्यैर्भाति	२६३	महता शोकभारेण	१४६
भ्राता मम मृगे भीमे	२४२	मन्त्रदोषमस्तकारं	२७०	महतापि प्रयत्नेन	८८
भ्राता ममायं सुहृदेष वश्यो	३५७	मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वान्	८०	महता मोहपंकेन	२५३
भ्राता विभीषणो यस्य	२८६	मन्त्री नाम्बूनदोऽवोचत्	३०६	महदाश्चर्यमेतन्मे	३७१
भ्रातुश्चन्द्रनखा पादौ	२५४	मन्त्री माता च मे वेत्ति	१२८	महाकलोलसङ्काशा-	३७६
भ्रातृबन्धुपरिष्वङ्गं	८०	मन्थरैश्चारुसञ्चारै-	१६२	महाजलधरध्वान-	४१
भ्रातृभिः स पितृभ्यां च	२६२	मन्दमारुतनिक्षिप्तैः	२१२	महातगोरधस्तावत्	२६३
		मन्दोदरि परं गर्वं	३३१	महातामसशस्त्रं च	३६२
[म]		मन्दोदरी कमात्प्राप्य	२५७	महातुरङ्गसंयुक्तैः	३०१
मकरप्राहनक्रादि-	३२८	मन्दोदरी ततोऽवोचत्	३३१	महादेव्यानुमे तस्य	१८८
मकरन्दरसास्वाद-	१२१	मन्दोदरी ततोऽवोचच्छूराः	३३०	महाद्रिकन्दरास्फाल-	८८
मक्षिकाच्छदनच्छात-	४८	मन्दोदरी सुतं तावदभि-	३८२	महानरानिति पुरुदुःख-	२४२
मगधेन्द्र ततो वातिः	३२४	मन्दोदरी सुतोऽप्येष-	३६३	महानिर्भरगम्भीरान्	२११
मगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत्	३५८	मन्मयाकृष्टनिःशेष-	१६२	महान्तश्च पुरस्कारा-	१६
मणितोरणरम्येषु	१३८	मन्ये पराजये देवान्	४११	महान्तस्तस्य सञ्ज्ञाता	२६३
मणिपीठस्थितं सौम्यं	८३	मन्ये तस्य सुरेशोऽपि	३७	महापुरुषयुक्तं ते	१२६
मण्डलाग्रं समाक्षिप्य	१६४	मन्ये यथानुबन्धेन	२४६	महानिधानवल्लंका-	२६३
मतिकान्तोऽब्रवीत्पद्मं	३५४	ममात्मजमुदासीनं	२४५	महापदि निमग्नस्य	३३०
मत्तवारणदन्ताग्र-	३६१	ममापि सहसा दृष्ट्वा	१२१	महापूतमिति श्रुत्वा	१६४
मत्ताः केसरिणोऽरण्ये	३४०	मयदैत्यात्मजा तीव्र-	३३२	महाप्रकृष्टपूरस्य	२३७
मत्तैर्मिरिनिभैर्नागे-	३७२	मया किं तर्हि कर्त्तव्य-	४०६	महाप्रतिभयाकारां	४०३
मदनाङ्कुरसन्ताप-	३७४	मया जन्मानि भूरीणि	६७	महाप्रभावसम्पन्नं	३०३
मदनैर्लदिरैर्निम्बै-	२१२	मयानुमोदितस्तेऽयं	११	महामेरीध्वनिं चाशु	४०८
मदीयं रूपमासाद्य	२७४	मयापि पुत्र जातोऽसि	२२८	महाभोगो महादेजा-	१५५
मद्बाहुपेरितैर्वायै-	३६४				

महामहिषशृङ्गाग्र-	१०२	मातापितृमुहनिमित्र-	२०८	मित्राणि द्रविणं दाराः	१८०
महाम्बुदप्रतीकाशा-	३६८	मातामहं समादाय	३१०	मिथिलानगरीतोऽहं	३२
महायोगेश्वराधोरा	१८१	मातालिङ्ग्यागदन् सीतां	६६	मिथ्यादर्शनयुक्तानां	३७१
महारथवरैर्नाना-	३६८	माता विषेण तौ हन्तु-	३५५	मुक्तमात्रः स पापेन	८
महार्णवरवाभेर्य	३५१	मातुः सहोदरो भ्राता	६	मुक्तावप्यस्वरूपस्य	१०७
महालोचनदेवस्य	३८३	मानवो भव देवो वा	१२०	मुक्ता कन्या स्वशिविरं	३३२
महावष्टम्भसुस्तम्भा	१६६	मानुषत्वं परिभ्रष्टं	२४०	मुक्तादामसमाकीर्ण-	२६६
महाविनयसम्पन्नः	१२५	मानुषद्वीपमासाय	१४०	मुक्तिक्षान्तिगुणैर्युक्ता	१६
महाविनयसम्पन्नो	८१	मानुष्यकमिदं जातं	१६६	मुक्त्वा नानाकृत्यासङ्गं	२१६
महाशक्तिमिमं शत्रुं	२४४	मानन्दतैरिर्मैर्वाक्यै-	२६७	मुक्त्वा त्रिभुवनाधीशं	१०६
महाशीतपरीतस्त्व-	३५२	माभूत्तस्मिन् कृतक्रोधे	२६७	मुग्धबालकमादाय	४०८
महाश्रद्धान्वितस्त्वान्ता	३३३	मा भैषीर्भद्र मा भैषी-	२८७	मुग्धा मुग्धमृगानेत्रा	४१२
महासंवेगयुक्तेन	२०५	माभैष्ट ततो राजा कृत्वा	१८५	मुञ्चते समये यस्मिन्	६
महासाधनसामन्त-	१६८	माप्रयाह्ययच्चैनं	११०	मुञ्चते सुकृतं चासा-	७०
महिमानं परं प्राप्य	३८३	मायां सुग्रीवसन्देह-	२६८	मुञ्चन्नानन्दनेत्राभ्य-	२०२
महीतले समस्तेऽस्मिन्	२८५	मायाविनिहतैः क्षुद्रै-	२३४	मुञ्चैनं त्वरितं क्षुद्रं	१३४
मुहुः प्रेषितदूतोऽयमग्न	३४६	मायासहस्रसम्पन्नो	२७५	मुदितैः किङ्करैर्मैरी	१७
महेन्द्रं निभृतं श्रुत्वा	३११	मा यासीदैवि संत्रासं	२५८	मुनयो यं समाश्रित्य	१४०
महेन्द्रकेतुरत्युग्र-	३४६	मारयामीति तेनोक्त्वा	५७	मुनि निःप्रतिकर्माणं	२०३
महेन्द्रजितसंज्ञश्च	२८६	मारस्यात्यन्तमृदुभि-	२५२	मुनिरायातमात्रः सन्	५२
महेन्द्रजिदसौ बाणै-	३६२	मारितास्मि न किं तेन	१२	मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थै-	१६३
महेन्द्रसदृशैस्ताव-	२५३	मारीचः सिंहजघनः	३७४	मुनिसुव्रतनाथस्य सम्प्राप्य	१४१
महेन्द्रोऽथ महावीर्यो	३१०	मारीचः सिंहजघनः	३६४	मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै	१४२
महेन्द्रोदययातं त-	५८	मारीचोऽमलचन्द्रश्च	३५१	मुनीनां वत्स केषाञ्चि-	७७
महेभकुम्भशिखर-	२३६	मा रोदीः सौम्यवक्त्रे त्व-	३२१	मुनीशेन समादिष्टा	४०६
महोदरस्य वातेश्च	३७७	मार्गं तत्र कियन्तं चि-	१०४	मुनी सुगुप्तिगुताख्या	२००
महोरगाङ्गना किं स्याद्	२५	मार्तण्डमण्डलच्छायो	५१	मुनेश्चारिवशूरस्य	१३८
मह्यामन्वेषितस्ताभ्यां	१३	मालिनं नष्टमालोक्य	३७५	मुनेस्तस्य प्रभावेण	२०५
मांसखण्डाभमग्नाक्षी-	१८२	माली तस्याग्रतो भूतो	३७५	मुमुक्षुश्च घनं शस्त्रं	३३७
मासांशानन्निवृत्तानां	१४४	मा वीवधोऽस्य लदमीमन्	१६४	मुहुस्तामीक्षते कन्यां	२६
माणिक्यशकलाङ्कानि	२३५	मा व्रज्जीरङ्गदैत्यं त्वं	१६५	मुहूर्तं मन्त्रिभिः सार्धं	२७५
मातरं भ्रातरी चैषा	३५५	राश्वसोदीर्घमुष्णं च	७८	मुहूर्तंऽथ चतुर्थे नु	३३३
मातरं शरणं प्राप्तां	३०८	मासमात्रमुषित्वातो	६६	मूर्खानाभिः स्वरैर्ग्रामै-	१६२
मातरौ दुःखिते एते	६३	मासानेकादशामुष्यां	४०६	मूर्तिनिर्मुक्तमेवैत-	२०५
माता च वनमालायाः	१५२	मासोपवासिनौ वीरौ	२००	मूर्तिमन्तमिवानङ्गं	३२०
माता तं मूर्छिता दृष्ट्वा	६५	मास्त्राक्षीर्लक्ष्मणं देव-	३६७	मूर्धारोभुजजङ्घादी-	१८२
माता पिता च ते वत्स	६२	माहात्म्यादमुतो राजन्	२१	मृगध्वजो रण्योर्मिश्र	१५६
माता पिता च पुत्रश्च	६	माहेन्द्रिरथ सम्भ्रान्तो	३०६	मृगोत्वं सरसा प्राप्ता	६३
मातापितृसमायोगं	३११	माहेन्द्रिर्मुदितो भूयो	३०६	मृगेन्द्राधिष्ठितात्मान-	२६७

मृदङ्गवंशमुरज-	१६७	यथा भज समागत्य	१५७	ययुभिर्महपैरन्यै-	३६५
मृदुभरुदीर्घङ्गुरमलं	२१६	यथा भवशतैः खिन्नो	१३३	ययौ सिंहकर्दि नीलो	३६०
मृद्यमाना निपेनुस्ते	२०	यथाभूतो मुनेर्धर्म	१४०	यशोधरमुनेः पार्श्वे	६६
मृत्युकल्लोलसंयुक्तां	७३	यथा मे केचिदेतस्मिन्	१५५	यस्तं सर्पति मृदात्मा	३१७
मृत्युजीवननिःकांक्षा	३१४	यथा यथा मद्भागाया	४१०	यस्त्रिशूलधरः संख्ये	३६०
मेघकाण्डानि वस्त्राणि	१६५	यथा रत्नाकरद्वीपं	६६	यस्मादंशुजटास्तरु	२१०
मेघवाहनवीरेण	३७६	यथावद् विदितं तेन	२८५	यस्मिन् दधिमुखं नाम	३१३
मेरुशृङ्गप्रतीकाशं	३६५	यथावस्थितभावानां	२२५	यस्मिन्न विद्यते पन्था	१६६
मोहारिकण्टकं हित्वा	१८७	यथाश्रुति परिज्ञाय	८७	यस्य चारणकन्याना-	१६४
म्लेच्छनिघाटनात् स्तोत्रं	३४	यथा सत्त्वहितेनेदं	४०६	यस्य देशं समाश्रित्य	१७
म्लेच्छैः किं ग्रहणं क्षुद्रै-	३४	यथा स्पृशामि ते मातः	८०	यस्य सर्पस्य सम्पर्काद्	२०३
म्लेच्छोऽयं हस्तमुद्युक्तो	१८७	यथेष्टं दीयमानेषु	१७५	यस्याः कृते क्षतोरस्कं	३६६
[य]		यथोक्तमाचरन् राज-	२२६	यस्यां गर्भप्रपन्नाया-	४०२
यः करोति विभावर्था-	६७	यदत्र द्रविणं किञ्चि-	१२८	यस्यां रात्रौ वनोद्देशे	१४८
यः पुनः शीलसम्पन्नो	८	यदर्थे मत्तमातङ्ग-	३५२	यस्यातपत्रमालोक्य पूर्ण-	२८६
यः सन्देहकलङ्केन	६८	यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा	४२	यस्यातपत्रमालोक्य शरदि	३६०
यं किलातिथिवेलाया-	१४०	यदाज्ञापयसीत्युक्ते	१६७	यस्यार्थास्तस्य मित्राणि	१४४
यं यं देशं विहितमुकृताः	३४६	यदि दृष्टिप्रसादं मे	२५२	यस्यालोक्य तदा संख्ये	३०३
यं वीक्ष्य जायते कोपो	३७२	यदि नाम न तत्सैन्यं	३३	यस्यासिरत्नमुत्पन्नं	२३७
यं वीक्ष्य जायते चित्तं	३७२	यदि भोगशरीराभ्यां	११०	यस्यास्तयानि रम्याणि	१६६
य इदं कपिलानुकीर्तनं	१४६	यदि मे निश्चयोपेतः	२७६	यात्येष किमुतायाति	१०५
यक्षेणेव कृते तस्मिन्ल-	१५३	यदिमौ शोभिनीं मुग्धे	१७०	यादृक् येन कृतं कर्म	४३
यच्छ नाशां नरेशानां	४०६	यदि वाञ्छसि जीवन्तं	२५५	यामोऽनेन समं दुःख-	८२
यजन्ते भावतः सन्तो	१६	यदि सा वेधसः सृष्टि-	२५५	या येन भाविता बुद्धिः	३४१
यतोऽनया जितं पद्मं	१७१	यदीयं देव नामाप	२८८	यावच्च कुरुते पूजां	३१४
यतोऽयं दण्डको देशः	२०५	यदोपलभ्यते चावीं	३२२	यावत्तस्य च तासां च	२३
यत्तद्वस्तप्रहस्ताभ्यां	३७२	यद् ग्रीष्मातपतसाङ्गौ	१४६	यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र	१३३
यत्प्राप्तव्यं यदा येन	५०	यद्दर्शं दुःखितोऽप्राप्ती-	६१	यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य	२६३
यत्र त्रिलोकपूज्यानां	५७	यद्यनेन समं सत्त्वा	३२१	यावत्पश्यति तं बद्धं	२६१
यत्र यत्र पदन्यासं	१६६	यद्यथा निर्मितं पूर्वं	१८८	यावत्पश्यति तं सुप्तं	२४६
यत्र यत्र समुद्देशे	१६२	यद्यथाशापूर्वकर्मानु-	२५१	यावत्पश्यति सज्जात-	३६३
यथा किल द्वये लोके	३२४	यद्यप्युपशमं यात-	१५८	यावत्प्राप्नोमि नो वार्ता	२५३
यथा किल विनीतानां	११६	यद्येनं वारयामोऽतः	१८३	यावत्सुग्रीवमाचक्रौ	३८१
यथा किल समस्तोऽयं	४०१	यद्विद्याधरसन्तानं	३८६	यावदाहूयते स्वामी	३२६
यथा ज्ञापयसि स्पष्ट-	१५१	यद्वृत्तं दण्डकाख्यस्य	३५६	यावदेवं वदत्येषा	४७
यथा ज्ञापयसीत्युक्त्वा	३०६	यद्रौद्रभूतिः सुचिरं विचित्रं	१३२	यावदेव ध्वनिलोके	२०५
यथा त्वद्विरहे बाला	१४६	यन्त्रेषु श्रमणाः सर्वे	२४०	यावदेवमसौ पद्मं	३८१
यथा नन्दोऽश्वरे द्वीपे	४५	यन्त्रैर्बहुजनक्षोदै-	२६८	यावदेषोऽपनीतो न	२०३
यथाधिपेन रामस्य	१३६	यन्त्रिदीप्य वरागोदे	२००	यावद्दत्तशूरत्युग्रै-	१८०
				यावद्दासः समाधान-	३८२

यावन्न मुञ्चति प्राणान्	२६०	यो भूतिरूपमन्युश्च	७१	रथैः प्रभास्वरैर्दिव्यैः	६६
यावज्जच्छति मां नारी	२५६	यो रतिं परनारीषु	६६	रन्त्रं प्राप्य वने भीमे	२४०
यावन्नोपद्रवः कश्चि-	३३४	यो लोकहितमुद्दिश्य	३५	रन्त्रविन्यस्तचित्तेन	११०
यावन्तः केचिदन्ये तु	३६८	योऽसौ परमया शक्त्या	२०५	रमणांश्च महामोदान्	२६
यावन्तो भुवने केचि-	३१५	योऽसौ विभीषणः ख्यातः	२६८	रमणात्मजपञ्चत्व-	२५४
यावन्मुञ्चामि नो प्राणान्	२५६	योऽसौ विमुचिरित्यासीत्	६३	रमते क्वचिदपि चित्तं	६८०
यियासोः शस्त्रहस्तस्य	३६३	यौ रामलक्ष्मणौ नाम	२५७	रमते जीबन्तपतिः	१८६
युक्तं मुचतुरैरश्वै-	३३६	[र]		रम्यं चैत्यगृहं तत्र	२७८
युक्तमुक्तमलं तात-	१६०	रक्तच्छटां विमुञ्चन्त-	३६१	रम्येष्वद्रिनिताम्बेषु	६०
युक्तमेवातिवीर्यस्य	१५६	रक्तयस्त्रशिरस्त्राणाः	१६	रम्ये सुविपुले तुंगे	६४
युक्त्वा भवन्तमन्यस्य	२६	रक्तशिलौघरश्मिनिचिता	२१७	रवः किमेष सिंहस्य	२३४
युगान्तकालमेघौघ-	३१७	रक्ताशोकप्रकाशेन	२०४	रविणा दिवसस्यान्ते	८३
युद्धार्थमुद्गतावेतौ	३५३	रक्तावनं किं तत्	३६१	रविरश्मिकृतोद्योतं	३३३
युद्धावर्तो वसन्तश्च	३६८	रक्षःप्रभृतिषु श्लक्ष्ये	२२५	रहितश्चानया रामो	२६०
युद्धे च मानसं कृत्वा	३१८	रक्षःसामन्तसङ्घातो	३७५	रहिता शतपत्रेण	३२५
युद्धे हंसरथं तत्र	३४६	रक्षन्निदं व्रतं तस्मात्	२३६	रहस्यमिदमेकं च	२२४
युवगर्वसमाधमाता	१६०	रक्षसां वानराणां च	३५६	रहस्यमेतत्सन्मन्य	२६४
युवत्युज्ज्वलबस्त्रीनां	१७०	रक्षितव्यं पितृवर्गस्य-	१६६	राक्षसानामधीशेन	२२४
युवयोः कुर्वतोर्जल्पं	२०७	रक्षिता येन मे प्राणा-	३३	राक्षसैः परुषारावै-	१८२
युवविद्याभूतालेखं	२८६	रक्षोभिर्वेष्टितं दृष्ट्वा	३७७	राक्षसाकृतनुभास्ते	३४७
युवा विभीषणेनाथ	३५४	रणप्रत्यागतं धीर-	३६१	राक्षसो रथमारुढो	१६
युष्मान् ब्रवीमि संक्षेपा-	२५८	रणभेरीनिनादेन	३५१	राजवैर्यात् कुतोऽप्येष	२३४
ये जन्मान्तरसञ्चिताति-	१७६	रणसंसारचक्रेऽसौ	३७६	राजन्कर्मण्युदयसमयं	२६८
ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः	३५३	रणसञ्जाततोषेण	३६३	राजन् दास्यानङ्गलता-	२७२
येन व्यापादितो ब्रह्मे	२५४	रणाजिरे परं तेजो	२४५	राजन्न साधयित्वा तं	५
येनासीत् समरे भीमे	२८७	रतिं न लभते क्वपि	३	राजन् वज्रमुखः क्रुद्धः	३१८
येनैवेन्दुनखानाथो	३३१	रत्नं पुरुषवीराणां	३६६	राजन् विचित्ररूपोऽयं	१४४
ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः	१५२	रत्नकाञ्चनराशिं च	२०६	राजपुत्रकरं प्राप्ता	२६१
येऽन्यन्येऽन्वेषणं कर्तुं	२४६	रत्नकुण्डलभानूनां	१२	राजपुत्रि परीक्ष्य	३६
ये विवाहोत्सवं द्रष्टुं-	४३	रत्नत्रयापादितचारु-	१६६	राजपुत्र्या समं बालौ	६३
येभूद्रितसितच्छत्रो	६३	रत्नमालिन् किमारुढा-	७०	राजमार्गोऽद्रिसंकाशान्	१४२
येषां न भोजनं हस्ते	१४०	रत्नमाली पुनर्नाना	७१	राजाधिराजताशिलः	१५५
येषां विरतिरेकापि	२५६	रत्नवातायनैर्युक्तं	२६	राजानमागतं शास्त्रा	४६
यैः संसारसमुद्रस्य	१४२	रथाग्राारुढमायान्तं	७०	राजा भूत्वा पुनः शत्रुं	६
योजनस्याष्टमं मार्गं	२२४	रथास्ते विगता शीघ्रा-	३०६	राजालये समुद्योतो	४०६
योजनानां शतेनापि	१५२	रथादुत्तीर्य पद्मास्यः	१७६	राजः पुरोहितस्यास्य	१
यो जिनेन्द्रालये दीपं	६७	रथान्तरं समारुढ-	३६४	राज्ञः च संगृहीतस्य	१८६
यो ना परकलत्राणि	२६०	रथाश्ववारणारुढाः	३६०	राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना	१८६
यो निर्वाणशिलां पुण्या-	२६४	रथे दिवाकरस्यापि	२८	राज्यं पालय वत्स त्व-	७६

राज्यं पुत्रैः निक्षिप्य	१८८	लक्ष्मी कुमुद्रती यस्य	१६४	लोको जगाद किं न्वेत-	४०८
राज्यस्थश्च प्रमादाश्च	२६३	लक्ष्मीधरः समाकार्य	१७२	लोको दुर्लभदर्शन	१३७
राज्ये तथाविधेऽप्यस्य	६५	लक्ष्मीधरं पुरस्कृत्य	२८५	लोको विचित्ररूपोऽयं	६३
रात्रावपि न विन्दन्ति	१०८	लक्ष्मीधरकुमाराद्या	२७१	लोडितोऽपि शरैस्तीव्रै-	३६४
रात्रिमेकां बहिर्नात्वा	२७८	लक्ष्मीधरस्ततोऽवोचद्	१२३	लोभसंज्ञासमासक्तः	१०६
रामः पप्रच्छ तेनैतो	१८७	लक्ष्मीधरस्तदादाय	११४	[व]	
रामकार्यसमुद्युक्ताः	३६७	लक्ष्मीधरेण रुद्धोऽसौ	३६०	वंशस्थलपुरेशश्च	१६५
रामपादरजःपूत-	१५६	लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य	३३१	वंशाद्रिशिखरे रम्ये	१६५
रामलक्ष्मणधोरग्रे	२१०	लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चाय-	३६	वक्त्रारविन्दमेतत्ते	२५२
रामलक्ष्मणयोर्बाहि-	१६६	लक्ष्मीलताविषकाङ्क्षं	३०२	वक्षस्तस्य तथा भिन्नं	३६३
रामे च पञ्चतां प्राप्ते	२६७	लक्ष्यते दीर्घसूत्रत्वं	३४६	वचस्त्वां ज्ञापयामीति	१५७
रामेण यस्मात्परमाणि-	१६८	लग्नमश्वीयमश्वीयै-	३८८	वचोऽगुप्तिं ततो भित्वा	२०६
रावणस्य कुमाराभ्यां	३८२	लङ्कां जिगमिषोरस्य	३०८	वचोभिरेभिरन्यैश्च	३२१
रावणस्य महासैन्यं	३५६	लङ्कां दृष्ट्वा समासज्ञां	३४६	वज्रकर्णस्ततः कृत्वा	१२२
रावणस्य हि तत्तुल्यो	२६६	लङ्का कमलिनीखण्डं	३३८	वज्रकर्णो दुरात्मायं	११६
रिपुचक्रमिहायातं	१७	लङ्काधिपतिना नूनं	२८६	वज्ररागेरिवामुष्य-	३०८
रिपुञ्जयाः शशिस्थानाः	३५७	लङ्कानाथस्य पुत्रेण	३८०	वज्रावर्तधनुषोप-	३३१
रुक्माक्षराभिधानाभिः	२५३	लङ्कानिवासिभिर्यौवै-	३६६	वज्रावर्तमधिज्यं चे-	३७
रुक्माक्षरकुवल्क्ष्यं	६१	लङ्कायाः परिणश्वेषु	२८६	वज्रावर्तमिदं चाप-	४०
रूपमात्रेण यातोऽसि	२५	लङ्कायां तेन विन्यस्तां	३४७	वज्रावर्तं समारोप्य	३६
रूपमेवमलं कान्तं	१४५	लङ्काशालपरिचेषं-	३१७	वज्रोदरी ततोऽवोचत्	३४२
रूपेणाप्रतिमो युक्तः	३२७	लङ्काशः कोपनो योद्धुं	३८६	वज्रोदरोऽयं शक्राभः	३६४
रूपयौवनलावण्य-	२३०	लताग्रहेषु विश्रान्ता	१०३	वण्टने राजदानस्य	३७१
रेजे विराधितस्यापि	३४८	लब्धस्य च पुनर्दानं	२६३	वत्स पूर्वं रणे घोरे	७५
रेजिरे प्रतिमास्तत्र	१६७	लब्धारस्तरयेनैषा	१८६	वद किं कृतमस्माभि-	७५
रोमाञ्छाचितसर्वाणां दधतो-	४१	लब्धाहं दशवक्त्रेण	४११	वदतामिति भृत्यानां	१५१
रोमाञ्छाचितसर्वाङ्गा	५८	लब्धिदासो लघुप्राप्तः	४०५	वद तेषां पशूनां च	३४
शेषतोषविनिर्मुक्तं	१६८	लब्धानुमननं ज्येष्ठा	२२३	वदनजितशशाङ्का-	१३
रौरवाथवटाक्रान्ता	१०७	लब्ध्वापि जैनं समर्थं	१००	वदन्ती पुनरेवं सा	१८०
रौरवारावतौद्रेण	१७६	लघान्तरवशोत्कम्पि-	१८२	वदन्त्यन्योन्यमत्रैते	११८
[ल]		लालितं परमैर्भोगैः	४६	वदन्नेवमसा ऊचे	१२२
लक्ष्मणक्षमाधरं वज्रः	२०	लावण्यं यौवनं रूपं	२५५	वद पुत्रक किन्वेत-	५७
लक्ष्मणश्चानुजस्तस्य	३३	लावण्ययुतिरूपाढ्यः	३२८	वदरं नैकमप्यस्मै	१४४
लक्ष्मणस्तां तथाभूतां	१४६	लिखन्तो भूमिमङ्गुल्या-	७३	वध्वा च तं ततो गेहं	२६०
लक्ष्मणस्योपनीतश्च	२०	लीलया परया युक्ता	१८१	वनमाला गृहं दृष्ट्वा	१७०
लक्ष्मणेनेषुणा तावद्	२४६	लुब्धकेनाद्भुतो जीवः	१८८	वनमाला ततोऽवोच-	१६६
लक्ष्मणेनैव सुग्रीवः	२७७	लुब्धको जीवमोक्षेण	१८८	वनमेतदलं चाह	१६६
लक्ष्मणो दूषणेनामा	३२६	लोकं च विविधं पश्यन्	१७१	वनस्पत्युपजीविन्या-	१४४
लक्ष्मणोऽसि सा सक्ता	३६३	लोकं द्रव्यानुभावांश्च	५३	वनान्तरस्थितं पुत्रं	२३३
लक्ष्मणो विस्मयं प्रातः	२२६				

वनितामृतमेतन्मे	२४०	वहन् परमभावेन	११०	विज्ञताङ्गान् महायोधान्	३४४
वनिते सर्वमेतत्ते	२५७	वाच्यो मद्वचनादेवं	१४६	विग्रहेऽविग्रहे वापि	३७२
वनेऽतिभीषणे कष्टं	३००	वातायनस्थितैषाणि	१६०	विघूर्णमाननयनः	५२
वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्ते	२४०	वातेनापहृते सिन्धोः	२६६	विघृणस्य कथं तस्य	१२
वन्दनं यो जिनेन्द्राणां	६७	वातेहिताम्बरव्याजा-	१६१	विचारेण न वः कृत्यं	३३६
वन्द्यानपि महानागान्	१७५	वानराभोगमुकुटः	३०४	विचित्रधातुरङ्गाश्च	१७१
वपस्त गोधिकारे ते	७८	वानरीयैः खमालोक्य	३८८	विचित्रशिखरा यत्र	२११
वयस्यवनितां तावत्	२३७	वामे भुजे सुषेणश्च	३४८	विचित्रस्वजनस्नेहै-	१४६
वरं तस्तत्रे शीते	१३५	वायसं पृच्छति प्रीत्या	२८१	विचित्रैः कुट्टिमतलै-	३४६
वरं पुष्पफलच्छन्नैः	१२४	वायसा अपि गच्छन्ति	३५	विचिन्त्यैवं द्रुतं गत्वा	२४
वरं सम्प्रति तं यच्छ	७४	वायुतो ह्यिषमाणेन	२१२	विचेष्टितमिदं व्यथं	१८३
वरधर्मापि सर्वेण	१६४	वायुपुत्र द्रुतं गत्वा	३०६	विच्छिन्नकञ्चुकां भ्रष्ट-	२३२
वरप्रासादयातास्तु	७२	वायुशावसमैरश्वै-	३०७	विच्छिन्नचापकवचः	३६४
वरमस्मिन् मृधे मृत्युः	३२०	वारणैः सप्तभिर्गाभि-	१३७	विच्छिन्ननासिकाकर्ण-	७
वरमालाधरौ गन्ध-	१५३	वारणो मेवक्रान्तस्य	३४८	विच्छिन्नार्धभुजान् कांश्चित्	२६६
वरमाहारमुत्सृज्य	१३५	वारुणेन ततोऽस्त्रेण	३८०	विजहार महातपास्ततः	१४६
वरवारणमास्त्र्य	१५२	वार्तान्वेषी गतो याव-	२६०	विज्ञापनवचोयुक्तिः	२६८
वरस्त्रीजनमुद्याने	३३६	वार्ता समागता भर्तु-	३२६	विज्ञापयति देव त्वां	१५
वराङ्जननगाभानां	१५५	वार्थमाणोऽपि यत्नेन	२०२	विज्ञाय कपिलं रक्तं	१४१
वराटकाभदशना	२०	वार्हद्गतप्रसादेन	१२२	विडम्बनमिदं कस्मा-	६४
वराहमहिषव्याघ्र-	२०	वाल्लिखित्यस्तु सम्प्राप्तः	१३२	वितत्य सकलं लोकं	२३६
वर्तते किमिदं मातः	८२	वालीति योऽत्र विख्यातः	२७०	विताविर्विधिना ध्वस्तो	३७५
वर्ततेऽनुचितं वाढं	८२	वासमानो मुहुः क्रूरं	१२६	विदग्धनगरं चाऽ	२
वर्तमानं महाशोक-	३४४	वासयत्युदकं कश्चि-	४५	विदग्धो विजयो मेरुः	६१
वर्धैरेस्तु महासैन्यै-	१८	वाहनावस्त्रसम्पत्ति-	३८६	विदेशगमनोद्युक्तं	८१
वर्षावातविमुक्तानि	२२३	वाहिनी त्रीणि गुल्मानि	३५८	विदेहा तु हृते पुत्रे	१२
वर्षाशोतातपैर्वारै-	४११	वाह्योऽहं भरतस्यापि	१७३	विदेहेति प्रिया तस्य	२५
वलीनां वर्तते वृद्धि-	४६	विशतियोजनान्यस्या-	३५६	विदेहे धातकीखण्डे	६६
वल्लीभिर्गुल्मकैः स्तम्भै	३१३	विशतिर्वासराणां च	३७	विदेहे पौण्डरीकाख्ये	४०२
वधर्षं वायुपुत्रस्य	३१६	विकचास्त्रयुतिं सीतां	३२६	विद्यया तपनास्त्रं च	३६२
वशीभूतेषु सिंहेषु	३७७	विकलीभूतनिर्दोष-	४१	विद्ययाऽनिलपुत्रोऽपि	३६२
वसन्ततिलकाभिख्ये	१८५	विकसत्पुष्पसङ्घातान्	२२३	विद्यया पर्णलब्ध्यासौ	४०३
वसुभूतिः समं तेन	१८४	विकसन्नयनाम्भोज-	२०६	विद्याकवचयुक्तं च	३१८
वसुभूतिचरेणाथ	१८७	विक्स्वरमसौदेहं	३२०	विद्याकौशिकविख्यातिः	३६४
वस्तुना केन हीनोऽहं	२५८	विकालो लोलकः काल	३६७	विद्याधरकुमारीणां	२६०
वस्त्रकान्तिजितेन्द्रानां	२६१	विकीर्णास्तण्डुला मापा	१०४	विद्याधरमहामन्त्रि	४१२
वस्त्रालङ्कारमाल्यानि	१२६	विक्रान्तः स च शस्त्रौघ-	३२०	विद्याधरमहाराजे	२५०
वहन्ती चापमानं तं	२३२	विक्रान्तपुरुषाकृष्ट-	४६	विद्याधरैः समागत्य	४२
वहन्नसौ दर्पमुदारमुखै-	२१३	विक्रान्ताय तथा तस्मै	४२	विद्याधरविधिर्हैर्य-	३०५

विद्याभृतां सुराणां च	२२५	विनीता पृथिवी यस्य	१५७	विमुचिर्दक्षिणाकांक्षी	६२
विद्यामाहात्म्यनिर्मुक्ता-	३४	विनीताभिः कलाशभिः	७२	विम्बप्रवालरक्तोष्ठं	३०२
विद्यार्जनोचितौ तौ च	१८६	विनोदः कण्टकः सत्यः	६१	वियतोऽवतरद् बीज्य	२८६
विद्यालामस्तथोनांसी-	१	विनोदान् प्रस्तुतान् मुक्त्वा	७४	वियत्तलं धरित्री च	३८१
विद्या बाभिमता लब्धुं	२३८	विन्ध्योऽयं निधिभिः पूर्णो	१३१	वियुक्तो बन्धुभिः भ्रातु-	३६६
वियुज्ज्वालाकुले काले	१११	विन्ध्यस्य भक्तिसम्पन्नः	५२	वियोगमरणव्याधि-	६०
वियुज्ज्वालामुल्लैर्भवै-	१८२	विपञ्ची च विधायकै	३१	वियोगवह्निनात्यन्तं	१२८
वियुक्त्वाणो बलः शीलः	३६७	विषादयितुमस्माक-	४७	विरक्ता च सभात्यन्त-	१६३
वियुत्संभावना योग्या	५४	विपुलस्तननम्राङ्गा-	२४१	विराधितः कुमारोऽपि	३०४
वियुदङ्गः सुधी सोऽयं	१२१	विपुले राक्षसद्वीपे	२२४	विराधितनरेन्द्रेण	३७६
वियुदङ्गोऽप्ययं मित्रं	१२१	विप्रलापं ततः कृत्वा	६०	विराधितोऽपरः कोऽपि	२६६
वियुदधनेभवज्रेन्द्र-	३५३	विप्रस्य रुद्धया वाचा	१३४	विलक्षाः पाथिवाः सर्वे	४३
वियुद्वदनमारीच-	३८८	विप्रोऽवोचदुपायेन	१३७	विलक्ष्य च शोकार्चा	२२८
वियुद्वह्निमुवर्णाञ्ज-	२७६	विबुद्धा तानपश्यन्ती	१२६	विलापमिति कुर्वाणा	२२८
वियुद्वाहो मरुद्वाहुः	३६८	विबोध्य केचिदत्रोभु-	६०	विलासायापि ते सर्वे	२०८
विद्ये संप्राप्य सम्मान्य	३८३	विभावयां तमिस्तायां	१६०	विवादो गर्विणोरेवं	१७३
विधातुं महिमानं च	३२६	विभीषणं समुत्तार्य	३६३	विवाहसमये प्राप्ते	२०८
विधातुरद्य सामर्थ्यं	८१	विभीषणकुमारेण	३८६	विविधयानसमाकुल-	४३
विधानदन्तिना सोऽपि	२६६	विभीषण न मे शोक-	३६७	विविधागोभिरापूर्णः	३२२
विधाय जानकीं मध्ये	८६	विभीषणसमायोगे	३५६	विवेकरहितास्ते हि	३३
विधाय तुङ्गानचलान्	२२१	विभीषणस्तृतीये तु	३६८	विवेश चिन्तयन्नेवं	३०
विधाय राज्यं घनपापदिग्धो	१००	विभीषणाममे जाते	३५४	विशन् सिंहोदरस्यासौ	११४
विधाय वृषभादीनां	१६३	विभीषणेन यत्राद्यैः	२६८	विशल्याहस्तसंस्पृष्टं	४१२
विधायायुधशालां च	३६	विभीषणोदितं श्रुत्वा	२६६	विशालसंज्ञमाहूय	४६
विधिच्छलेन केनापि	१४८	विभुः सूरपुरस्याय-	३६	विशालद्युतिनामा च	३७१
विधिना पारणां कृत्वा	२०२	विभूतिं तस्य तां वाप्यः	२६३	विशालपङ्कजवनं	३
विधिना वारुणेनेमा	४०३	विभूतिमतिमुक्ता च	६१	विशालपत्रसञ्चक्रा	१०१
विधिरिव रतिदेवीं	१४	विमलं चरितं लोके	३२४	विशालभूतिसंज्ञश्च	२६०
विधिविस्तापिताऽन्य-	३७५	विमलाम्भसि पद्मिन्ध्या-	३३४	विशुद्धकुलजातानां	१६८
विधूय पद्मयुगले-	२०१	विमानं चारुशिखर-	३०७	विशुद्धराक्षसानूकाः	३६५
विधेः पश्य मया योगं	१४०	विमानं परमच्छाय-	२७४	विश्रब्धं कस्यचिज्जाया-	३६३
विध्वंसं वज्रशालस्य	३३६	विमानं सुमहत्तस्य	३०१	विश्रब्धचेतयोर्थावत्	२४७
विनयाद्यैर्गुणैर्युक्तो	३११	विमानमर्कसङ्काशं	३६५	विषमग्रावसङ्घातं	१८०
विना ताम्यां विनीताभ्यां	६३	विमानमुत्तमाकारं	३६८	विषमानधिकुर्वाणः	६३
विनाशमगमत्तस्याः	२२६	विमानवाहनघण्टाः	३३०	विषयेषु यदायत्तं	५०
विनिमज्ज्य सुदूरयायिन	२१६	विमानसदृशैः रम्यैः	२८८	विषाणकोटिसंसक्त-	३६१
विनिशम्य वचस्तस्य	३६०	विमुक्तं बन्धुभिः कष्टं	२४६	विषादं सङ्गता भूयो	३२७
विनीतं धारयन् वेष-	११६	विमुक्तनिःशेषपरिग्रहाशं	१६६	विषादमतुलं देव-	२४६
विनीतां च परित्यज्य	१५७	विमुक्तहारमुकुटं	१६५	विषिक्तं पातले कचि-	२१७

विषेणात्यन्तपरमं	४६	वैलन्धरपुरस्वामी	३४८	शक्नोति सुखधीः पातुं	२५३
विष्टभानन्दजननी	५२	वेश्यां कामलतां दृष्ट्वा	१११	शक्रपासादसङ्काशं	३४२
विस्तीर्णा प्रवरा सम्प-	३५१	वेश्याचरणयोश्चासी	१६२	शक्रभूतिरयागादी	३५८
विस्तीर्णेन किमुक्तेन	२	वेष्टितः किङ्करैः क्रूरै-	३४२	शक्रस्येव शक्नी पार्श्वे	४१२
विस्मये जगतः शक्ता-	३२०	वैदेहि तव न ज्ञातः	३३०	शक्रायुधश्रुतिर्यत्ते	१२०
विस्मिता गोपुराग्रस्थो	११८	वैदेहि भयसम्पन्ना	१८१	शङ्कितो धातकाद्वीपो	२६७
विस्मित्य सुचिरं रामं	३०४	वैदेही सपरेवोचे	१७६	शच्येव रहितं शक्रं	३०३
विहरन्ती ततः क्षाणीं	१७०	वैदेह्याः शरणं देव	६६	शताभि वरनारीणां	३५
विहाय लौकिकं मार्गं	१४२	वैदेह्या सङ्गता रामः	२२४	शतानि सप्तविस्तीर्णां	२८८
विहितातिथिसन्मानां	१०६	वैनतेयास्त्रयोगेन	३६२	शत्रुघ्नोऽपि सुसंभ्रान्तो	४०६
वीक्षस्व माहात्म्यमिदं	६६	वैराग्यादयवा ताते	१५८	शत्रुन्दमकृतच्छन्दौ	१७६
वीक्षितं परमं रूपं	६२	वैवस्वतः शशाङ्को नु	१०५	शत्रुशब्दममृष्यन्तो	१८
वीक्ष्यध्वं वासरैः स्वल्पैः	२६६	व्याक्षेपो मे कुतः कश्चि-	४६	शनैः प्रसजतां याते	१५३
वीणां च सन्निधायाङ्के	१८१	व्याघ्रयुक्तैरिमैस्तुंगै-	३६४	शनैः शनैस्ततः कम्पं	२४
वीणातन्त्रोसहस्राणां	२६६	व्याघ्रसिंहगजेन्द्रादि	८६	शनैर्विहरमाणो तौ	१७८
वीणादिवादनैस्तासां	२८१	व्याचाननैः कृतोत्पात-	२५६	शब्दोऽयं शोकसम्भूत-	२६०
वीणात्रेणुमुदङ्गादि	१५३	व्यापाद्यते न किं दुष्टः	३४०	शम्बूकः साधिता येन	२३३
वीरपत्नी प्रियं काचि-	३६१	व्यासाशेषजगत्कीर्तिः	१६६	शम्बूकस्य बधं युद्धं	२६६
वीरा योद्धुं दत्तचित्ता	३६६	व्यालज्जलाद्वा विषतो-	६६	शम्बूको नाम सुन्दरश्च	२२५
वृक्षेण मारिता मेघी	२०७	व्रजता बन्धुदत्तेन	२८५	शम्भुः स्वयंमुश्चन्द्रार्का-	३७४
वृक्षैर्वियाजिता वल्य-	३३६	व्रज तावत्त्वमारुह्य	६३	शयनान्यासनैः साकं	१६६
वृताः सामन्तचक्रेण	३४८	व्रजति विधिनिर्वागा-	३६५	शयनासनवादित्र-	२११
वृत्तान्तमिममालोक्य	४२	व्रजतोश्च तयोऽपरा-	१४२	शयनीयगतैः पुण्यै-	४०४
वृत्तान्तमीदृशं श्रुत्वा	२०८	व्रजन्तो लीलया युक्ता	१०३	शयिताश्च यथास्थानं	२६६
वृत्तान्तश्रवणात्समा-	७१	व्रजन्तो वाहनैश्चित्रै-	३५४	शरज्जर्जरितच्छत्र-	३८१
वृत्तान्तेनामुना कस्य	२६६	व्रज स्वास्थ्यमिमं लेखं	१३	शरत्कालः परिप्राप्तः	५४
वृत्तान्तोऽयं च सज्जातो	२०६	व्रजानय जनन्यौ नौ	२२१	शरधारां क्षिपत्यस्मिन्	२७८
वृथा रोदिषि किन्त्वेत-	३२१	व्रतज्ञानतपोदानै	६८	शरशक्तिशतघ्नीभि-	३२०
वृथावो वत मा किञ्चि-	७३	व्रीडां व्रजति मे चेतः	२६६	शरीरच्छायाया तुल्याः	७२
वेगनिक्षिप्तनिःशेष-	२८२	[श]		शरीरबद्धामिव मन्मथस्य	४१३
वेगनिर्मुक्तहुङ्काराः	११७			शरीरमात्रधारी तु	५
वेगेनात्यन्ततस्तस्य	३३८	शकुन्तयो मृगाश्चाभी	१०८	शरीरयातं च विधाय	२२०
वेणीबन्धच्युतिच्छाया-	३४५	शक्तिः पलायिता क्वापि	४०१	शरीररथमुमुक्ताः	१८७
वेणुनन्त्रीसमायुक्तं	३२७	शक्तिं दधतापि परां	२६८	शरीरिसार्थ एतस्मिन्	१८६
वेणुनादादृहासाश्च	३६८	शक्तिं यः पाणिना मुक्तां	१७२	शराः शरैरुपयन्त	३२०
वेत्रैः श्यामलताभिश्च	२१२	शक्तिमुद्गरचक्राणि	२३५	शरे निहितदृष्टिं तं	४१
वेदिकापुण्डरीकभैः	३०८	शक्तिशक्तिवत्क्षश्च	४०१	शर्वरी भण्यतां यास्वा	१४८
वेदितागमनस्तावद्	२६६	शक्त्या मुञ्चत पापानि	२५६	शल्यभूतोऽस्य विश्वस्य	२६७
वेदि निर्मलशीलाद्या	३०६	शक्त्या हतं गतं भूमिं	३६६	शशिमण्डलसङ्काश-	३७६

शस्त्रान्वधारिते जाते	२३७	शैलाभा द्विरदाः पेतु-	२३५	श्रुत्वा धर्मं मुनेः प्रातः	३
शस्त्रिवृन्दावृत्ते तस्मि-	१७२	शोकविस्मरणे हेतु-	१३	श्रुत्वा नरण्यपुत्रस्य	१४८
शाकाम्लवल्काद्यन्त-	७२	शोकाकुलजनाकीर्णं	३००	श्रुत्वा पङ्कजगंगायाः	३०१
शाखाकेपरिचिह्नानां	३७८	शोकावर्तनिमग्नां तां	३८	श्रुत्वा परचमूर्त्य-	३६३
शास्त्रामृगध्वजौ तावत्	३६६	शोको हि नाम कौट्येष-	२४९	श्रुत्वा परचलं प्राप्तं	३०६
शातकौम्भानिमान् कुम्भान्	४०६	शोचत्युन्मुक्तदीर्घांश-	२६४	श्रुत्वा पीदं सुतारोक्तं	२७३
शार्दूलभङ्गतैस्तुङ्गै-	३६७	शोभयापद्धतस्तस्या-	२३०	श्रुत्वा प्राप्तं हनूमन्त-	२७४
शार्दूलस्ताडितः पूर्वं	३७५	शौर्यगर्वाविवाशुक्त-	३६६	श्रुत्वा सिंहस्वनं पद्मा	३२६
शासनं यच्छ्रुतां नाथां	१३१	शौर्यमाहात्म्यसंयुक्तं	३०३	श्रुत्वा स्वं स्वं हतं नाथं	३७४
शासनस्य जिनेन्द्राणा-	५७	शौर्यातिगर्वसंमूढा-	३६५	श्रुत्वैवं कौतुकी कञ्चि-	१७१
शास्त्रानुगतमत्युद्धं	३५१	श्येनयुवैष लघुध्रमपक्षो	२१४	श्रेयस्करपुरस्वामी	४०६
शिथिलीभूतनिःशेष-	३२८	श्रद्धासंवेगहीनानां	६८	श्रेष्ठेन विदुषां तेन	२८७
शिरसो मुण्डनैः स्नानै-	६	श्रमं कृत्वापि भूयांसं	११	श्रोतुं समुद्यतस्यैवं	६७
शिरोषकुसुमासारं	४११	श्रमणा ब्राह्मणा गावः	१३४	श्लान्नामित्यतिवीर्यस्य	१६७
शिलायामिदं ये सिद्धा-	२६६	श्रमादिदुःखपूर्णस्य	६	श्वसत्पशुगणस्तत्रैव	४०४
शिवं सौम्याननो वाक्यं	३५१	श्रावकोऽयं विनीतात्मा	२०६	श्वसुराभ्यां ततो ज्ञात्वा	२८४
शिशोर्विषफले प्रीति-	३४	श्रीनन्धावर्तनगरा-	१५५	[ष]	
शीतलं तं समाप्राप	४१२	श्रीमांस्तावन्मरुत्पुत्रः	३३२	षट्खण्डा यैरपि क्षोणी	१६५
शुच्यङ्गया च वैदेह्या	२००	श्रीमानयमसौ राजा	३०३	षड्भिः संवत्सरैः साग्रै-	३१५
शुद्धात्मा भगवानूचे	६०	श्रीमान् जनकराजस्य	५८	षड्रसं स्वादुसम्पन्नं	७२
शुद्धात्मा श्रूयते सोऽय-	११५	श्रीप्रभामण्डलोऽप्येकं	५६	षड्रसैस्त्वदंशैश्च	३३३
शुभे काश्चित्प्रतीक्ष्य	१२८	श्रीरत्नश्रवसः पुत्रः	३५३	[स]	
शुशुभते तदात्यन्तं	२५०	श्रीवत्सकान्तिस्मरूप-	३०३	संकुदभोगिभोगोभां	१७४
शुश्रूषा भवतः कृत्वा	१६२	श्रीशैलप्रमुखैर्वीरै-	३८५	संस्तुब्धास्तनयास्तस्य	५१०
शुष्कागकृतसंगेहे	३१३	श्रीशैलस्य वियत्युच्चै-	३१३	संस्तुभ्यतीव भूः सर्वा	१७६
शुष्कपत्राशिनस्तत्र	१०१	श्रीसंजयो जयो भानुः	३६	संख्ये पितुर्वर्धं दृष्ट्वा	३१६
शूरकोविदगोष्ठीषु	३३१	श्रुतं केसरिजं कृच्छ्रं	३०८	संगीतेन समुद्युक्ता	१६३
शूराः परम सामन्ताः	३५३	श्रुतं तव न तस्मिन्ना	१३६	संघाग्लम्बिताम्भोद-	३६८
शृणु देवि यतोऽवस्था-	३७	श्रुतं वेत्ति जिनेन्द्राणां	४६	संज्ञां प्राप्य ततो दृष्टि	२३६
शृणु नाथ ! दयाधार !	१६२	श्रुतबुद्धिरिति खयातो	१५७	संदष्टोष्ठौ महासत्त्वौ	२७३
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मां-	६७	श्रुतश्च तेन वृत्तातो	२३	संधानवर्जितान् वर्णान्	४८
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्य-	१५	श्रुताः सङ्गीतनिस्वाना	६२	संध्याभ्रकूटसंकाशान्	२६
शृणु शृण्वति तत्रायं	१७१	श्रुत्वा केवलिनः पद्म-	१६५	सन्नद्धबद्धतृणीर-	३६८
शृणु सारथ्यतुष्टेन	७८	श्रुत्वा चैवंविधं तं च	२०७	संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा	६६
शृणु सुन्दरि सद्भाव-	२५५	श्रुत्वा तं मिथिलाधीशः	१५८	संप्रयुज्य प्रणामं च	४००
शृण्वस्ति मृत्तिकावस्यां	२८४	श्रुत्वा तदिन्द्रजिह्वाक्यं	३५२	संभाषितः स रामेण	६४
शेषं मानृजनं नत्वा	८०	श्रुत्वा तद्वचनं तस्या	२३०	संरक्ष राजपुत्रीं त्वं	२३५
शेषाः कन्या यथायोग्यं	४१२	श्रुत्वा तद्वचनं स्मिन्त्वा	१३५	संरक्ष जनकं प्रीतः	१६
शेषामिव ततो मूर्ध्नि	२८६	श्रुत्वा तावदलं तारं	२४६	संरम्भयशसम्कुल-	३१६

संवृत्तो मासमात्रोऽस्य	२८	स तयोः प्रणतिं कृत्वा	१२१	सन्मानैर्बहुभिः शश्वत्	२६७
संसारधर्मनिर्मुक्तान्	२६५	सतालशब्दं जनकात्मजाया	२१०	सपत्नीभिरपि प्रीत-	४७
संसारेऽतिचिरं भ्रान्त्वा	२०५	स तूर्णं धनुरादाय	७६	सपुरस्कारमारोप्य	२६४
संसारे न परः कश्चि-	७१	सत्यं यदीदृशः स्वातः	२६०	सप्तकक्ष्याद्वसम्पन्ता	३६८
संसारे सुचिरं भ्रान्त्वा	६०	सत्यकेतुगणीशेन	६१	सफेनवलया लसत्प्रकटवीचि-	२१६
संसिद्धसूर्यहासश्चे-	२२८	सत्यव्रतधरः सुग्भि-	६६	सभानुरञ्जनी यावत्कथेयं	७६
संहितामिव कामेन	२३६	सत्यश्री कमला चैव	३४६	सभायां पितुरस्माकं	२०८
सकम्पद्वयया सीता	४१	स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य	१२०	समावापीविमानाना-	३३८
सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः	४३	स त्वं नाथ जराधीनं	५०	सद्भावज्ञापने लज्जां	१२६
सकषायं तपः कृत्वा	६	स त्वं निष्कण्टकं तात	७८	समं करतलैर्हन्तु-	३३२
सखत्कारं मुहुः कुर्वन्	४८	स त्वं भूतिमृगो जातो	७०	समं किं परिवर्गेण	१२४
सखि पश्यास्य वीरस्य	११६	स त्वं रत्नजटी पूर्व-	२८७	समं कुलिशकर्णेन	१२४
सखी त्वं मूर्खया तस्या	७६	सत्त्वत्यागादिदृष्टीनां	१८	समं दशाननेनास्य	२६८
सख्योऽत्र वनमालायाः	१५१	सत्सुग्रीवो भवान्यो वा	२७५	समं पुत्रसहस्राणां	४०५
सख्योऽनेन पथा दृष्टौ	१७०	स दध्यौ नीयमानः सन्	१३१	समं साहसयानेन	२७८
सप्रावभिः करैर्मानो-	१०७	सदपैर्निर्गतैर्योधै	३६६	समक्षं लक्ष्मणस्याथ	२८७
सङ्क्षयेयं तयोर्थावद्	१२१	सदा करोति सर्वस्मै	३२७	समन्तकुसुमं ताव-	२६२
सङ्क्षोत्कटतीक्ष्णाग्र-	३१७	स दृष्ट्वातिशयोपेतौ	२०१	समयं शृणु भूनाथ	३६
सङ्कुलं चलता तेन	३०२	सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं	३३३	समये नारदस्तस्मिन्	२३
सङ्ग्रामाभिमुखो नागैः	३६२	उद्भावात् प्रणयोत्पत्तिः	१	समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते	२२१
सङ्ग्रामे तारको नष्टौ	२६७	सद्भूतगुणसत्कीर्तै-	१२१	समये हि कृते तेन	३५६
सङ्ग्रामेऽभिमुखो भ्राता	३६४	सद्यो विनयनप्राज्ञां	१७४	समयैः सान्त्वयित्वेति	१६६
सङ्ग्रामे विज्ञातः पृष्ठे	३६१	सद्वितीयं ततो दृष्ट्वा	१५०	समर्थितप्रतिज्ञासौ	३३२
सङ्घातमृत्युमस्माक-	३८१	सनत्कुमाररूपोऽपि	२५८	समवगम्य जनाः शुभकर्मणः	४४
स चाहं च सुतस्याशु	१३	स नाजानाद् द्विपं न क्षमां	३८०	समवलोकितुमुत्तमविग्रहे	४३
सचिवाः सचिवैः साकं	३७५	सन्तुष्टोऽङ्गगतं ताम्यो	३२६	समस्तं च समाख्यातं	३११
सचिवैः परमयुक्तः	४०६	सन्त्यस्मिन् विविधा भ्रात-	२२०	समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः	१७१
सच्चेष्टाः पूज्यमानास्ताः	१२३	सन्त्रासकम्पमानाङ्गा	८८	समाकम्पितवृद्धोऽय-	१०५
सजटैर्वटुभिर्मुक्ता	१०१	सन्दधानं शरं वीक्ष्य	१३०	समादधे स्खलत्पाणि-	२४
सजलाविव जीमूतौ	१८३	सन्दिदेश च सुग्रीवं	३०७	समाधानोपदेशेन	१६१
सजायो दृश्यते ज्याया-	१२२	सन्दिहाना निजे नाथे	२७४	समाने जानकी तरिमन्	३५२
सजनागमोदवाक्तोय-	२८३	सन्देहतापविच्छेदि	६०	समासाशनकृत्यञ्च	२०६
सजिता परमा भूमिः	१६५	सन्निधु च्छिद्यमानेषु	६	समायामुपविष्टोऽसौ	३५४
सञ्चरन्ती तमुद्देशं	२२६	सन्ध्या रञ्जिता प्राची	२५६	समालम्ब्य जिनान् गन्धैः	६७
सञ्चिन्त्येति कृतभ्रान्ति-	२३१	सन्ध्याकारः सुवेञ्च	२६६	समालोक्य कुमारस्तां	२६
सञ्छाद्य रोदसी सैन्यै-	३६५	सन्ध्याकालेऽत्र ये केचित्	१६१	समावास्य समीपे च	११२
सततं चिन्तयन्ती स्वां	३४५	सन्ध्यारक्ताभ्रसङ्काशं	३२२	समाश्वास्य च सर्वत्र	२४०
सततारब्धनिःशेष-	१६७	सन्ध्यालोकललामोष्ट्री	५४	समाश्वासमिमं नीत्वा	१४३
स तथा परमां श्रद्धां	२०६	सन्मानविशिखैर्विद्धौ	१४५	समाश्वास्य च संक्रुद्धौ	२४०

समासाद्य च तैः सर्वैः	२७८	सर्वजातिगता जीवा.	६	सशल्यस्य दरिद्रस्य	११२
समाहितमतिर्नाना	३८०	सर्वज्ञोक्तं निशम्यैत-	२६४	ससागरा मही देवि	३३२
समित्यलप्रसूनार्थ	१०२	सर्वतेजस्विमूर्धानं	३५६	सस्पन्दं दक्षिणं चक्षु-	२६६
समितर्थं प्रयातेन	१३६	सर्वतो मरणं दुःख-	४६	सस्यानि कृष्टपच्यानि	१०४
समीपतां च सम्प्राप्तौ	१८७	सर्वत्र जगति ख्यात-	२६५	सस्यानि बहुरूपाणि	८७
समीपीभूय चोवाच	२५८	सर्वथा जिनचन्द्राणां	४११	सस्यैर्बहुप्रकारैश्च	२१२
समीपीभूय दूतश्च	२७६	सर्वथा परमोत्साहो	२३६	सस्मिता लोकिस्तैस्तस्या-	१६२
समुद्यतालकैर्मांमै-	१८०	सर्वथा प्रातरुत्थाय	२६१	सहस्रमतिनामाथ-	२६७
समुद्रजलमध्यस्थं	२४८	सर्वथा शुद्धभावांश्च	२६५	सहस्रमधिकं चान्यत्	४१०
समुद्रावर्तभृत्सूर्य-	३५४	सर्वदा सुलभा पुंसः	२६२	सहस्रसंख्यतूर्याणां	२६१
समुद्रावर्तसंज्ञेन	३७	सर्वप्राणिहितोऽवोच-	६०	सहस्रामरपूज्यस्य	२२६
समेति बन्धुलोकोऽस्य	६५	सर्वभाण्डेन तौ रत्न-	३५५	सहस्रैरागतोऽष्टाभि-	१५६
सम्पद्भिरेवमाद्याभि-	२६१	सर्वभूतहितो नाम	५१	सहायरहितत्वेन	२८४
सम्पूज्य च पुनर्मुक्तः	३४६	सर्वमन्त्रप्रवर्तेषु	१४०	सहायैर्मृगराजस्य	३३७
सम्पूर्णचन्द्रवदनं	८४	सर्वमेतत् समासज-	१२६	स हि रावणराष्ट्रस्थ	२६५
सम्पूर्णानां परममहसा	५३	सर्वलोकस्य नेत्राणि	१६१	सह्यानन्दमतेः शिष्यः	१४६
सम्पूर्णैन्दुसमानोऽपि	२३३	सर्वविद्याधराधीशं परा-	२५७	सांकाश्यपुरनाथोऽय-	३६
सम्प्रहारैस्ततो लग्नै-	३०६	सर्वविद्याधराधीशस्त्रि-	२३३	साकं विजयमुन्दर्या-	१६६
सम्प्रहारो महान्-जातस्तयो-	२७६	सर्वव्यापी समुद्भिन्नो	३४५	साकं विमलया देव्या	१६०
सम्प्राप्तः परमं क्रोध-	१६१	सर्वशास्त्रार्थबोधाभ्यु-	२३०	सागारं निरगारं च	१०६
सम्प्राप्तश्च महाकालः	५१	सर्वसारश्च दुर्बुद्धिः	३६७	सागारधर्ममपरे	२५६
सम्प्राप्य च चिरात् संज्ञा-	३६६	सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य	३०४	सागारधर्मरक्तस्तु	१४१
सम्प्राप्य साध्वसं यस्मा-	१५७	सर्वस्मृतिमहाचार्यो	२३६	सागरान्ता मही यस्य	२८७
सम्भाषणैः कुटोदानैः	१०१	सर्वस्यामवनौ ख्यातः	५७	सागरोदारमत्स्यं	३५६
सम्भ्रान्तमानसः किञ्चि-	३५१	सर्वस्वेनापि यः पूज्यो	३४०	साग्रं योजनमेतस्मा-	१७६
सम्मानो जयमित्रश्च	३६७	सर्वाः प्रियास्तदा तस्य	४५	साग्राभिश्चरुशस्त्राभिः	३५३
सम्मेदं च व्रजन्तौ ता-	१८७	सर्वाकारसमानीतो	२८१	सा जगौ जातु पद्मस्य	१३७
सम्यग्दर्शनमात्रेण	६१	सर्वातिथ्यसमेतास्व	१०२	सार्थो धर्मेण यो युक्तो	१४४
सम्यग्दर्शनरत्नं स-	६६	सर्वादरसमेतश्च	७१	साधनेन तदग्रेण	१५६
सम्यग्दर्शनहीना यां	१६६	सर्वानामन्य विन्यस्य	६६	साधुगोश्रावकाकीर्णा	१६
सम्यग्दृष्टिः पुनर्जन्तुः	८	सर्वासामेव शुद्धीनां	८४	साधुदत्तमुनेः पार्श्वे	१६१
संवेष्ट्य सर्वतो नागैः	३६२	सर्वेषां भूशृतां नाथ	७४	साधु दानाद्धरिच्छेत्रे	३७१
सरस्वाश्च तटे कालं	५१	सर्वेषामेव जीवानां	१५२	साधनानि भटास्तेषां	६१
सरस्थुन्निद्रपद्मादि-	२८१	सर्वोपायविधानेन	२६७	साधुपूर्वभवं श्रुत्वा	१६४
सरांसि पङ्कजाब्जानि	२२३	सखवङ्गादिताम्बूलं	१६६	साधुप्रसादतस्तस्य	१०६
सरांस्थमूनि रम्याणि	१३७	सविमुच्यानुवाच्यैनं	१५५	साधुभ्यामुक्तमित्येतं	२०६
सरित्पर्वतदुर्गेषु	४	स व्रजन् गुरुणावाचि	२०७	साधु साधु त्वया चित्रं	१६५
सर्पन् सीतां समुद्दिश्य	३२७	सशस्त्रनूर्यनिस्वान-	४३	साधु साध्विति देवानां ब्रभूव	४१
सर्पिषा जिननाथानां	६७	सशब्दैरायतैः स्थूलै-	३४२	साधु साध्विति देवानां मधुरो	२०१

साधु साध्विति संस्मित्य	३१६	सिंहोदर इति स्थातो	१०६	सुग्रीवरूपसंयुक्तः	३२६
साधुसेवाप्रसादेन	१६४	सिंहोदरप्रभृतयो	१३२	सुग्रीवरूपसम्पन्नः	३०५
साधूनामग्रतः पूर्वं	२३८	सिंहोदरमहिष्योऽथ	११६	सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा	२७४
साधूपसर्गमथने	३३६	सितकीर्तिसमुत्पत्ति-	८१	सुग्रीवाकृतिचौरेण	३००
साधोः कमलगर्भस्य	७०	सितचन्दनदिग्भागा	२६४	सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तः	२७७
साधो केनासि पृष्टस्त्वं	३५२	सितानामातपत्राणां	३०१	सुग्रीवागमने तेन	२७०
सा निर्वाणशिला येन	२६६	सितासितारुणाम्भोज-	२१२	सुग्रीवाद्याः समासीना	२६७
सानुकम्प्यै स्वभावेन	३७१	सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति	६८	सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च	३०२
सानुजः सानुजं पद्मो	२१	सिन्धवः स्वच्छक्रीलाला	२२३	सुग्रीवोऽप्यभिसक्तात्मा	२७०
साऽब्रवीत् समतिक्रान्तं	३२२	सीतया सह रामस्य	३२२	सुधोरणि प्रसार्यन्तां	२६७
सा भामण्डलचन्द्रेण	४१०	सीतया शोभितं पार्श्व-	१०६	सुचिरं देवभोगोऽपि	७७
सा भामण्डलसञ्ज्ञाय	३२	सीतया सहितस्तस्यौ	१२६	सुचिरं प्रथितं लोके	१२७
सामन्तैरथ सन्नद्धै-	११७	सीता चाबिल्लष्टौभाग्या-	१६६	सुतं स्वैरं समादाय	२८४
सामन्तैर्वहुभिर्गत्वा	६१	सीता तत्र विशुद्धाक्षी	६०	सुतरां तेन वाक्येन	१४७
सामायिकं पुरस्कृत्य	१३८	सीतापतिस्ततोऽवोचदिति	२२०	सुता जनकराजस्य	२६०
सामोरगिञ्च वः श्रुत्वा	३४५	सीतायाः शोक्तताया	२५२	सुता तु द्रोणमेघस्य	४१२
सापोदैर्भूजभेदभूतैः	६७	सीताया वदनाम्भोजं	३०५	सुतारामवनद्वारं यो	२७४
सायके रविहासारख्ये	३२६	सीता लक्ष्मोधरश्चैव	८६	सुतारेति ततोऽवोचत्	२७३
सा यावदगृहीच्छक्तिं	३१६	सीताशरीरसम्पर्क-	२८१	सुतारौ सङ्गतां वल्लीं	१७८
सायाह्वे सौम्यवपुषो	२६६	सीता सीतेति कृत्वास्य	२६४	सुतैर्दशरथोऽमीभि-	३६
सारङ्गदयिताभिश्च	२६३	सीतोवाच कुशीलस्य	२५८	सुतोऽभूद् भद्रचारिण्यो	६६
सारङ्गैरुषितं सार्धं	१३४	सुकुमारशरीरोऽसौ	२६२	सुतो यस्याङ्गदामिख्यः	२७१
सारैरेवंविधैर्याक्यैः	३८	सुकेतुः प्रतिबुद्धः सन्	२०७	सुदीर्घोऽपि तयोः कालो	१७८
सा लक्ष्मणकुमारेण	२६६	सुकेतुरग्निकेतुश्च	२०७	सुदुर्लभमिदं प्राप्य	३५२
सा विद्याचलगम्भीरा	२१६	सुकेशतनयाः पूर्वं	३४८	सुदुष्करं विगेहानां	१०६
सावोचस्त्रिय बन्ध्यास्मि	११	सुकृतं दशवक्त्रस्थ-	३४०	सुनिश्चितानामपि सन्नराणा-	३७०
सावोचदस्तु नामैवं	११	सुखं प्रसादतो यस्य	३३०	सुन्दरि पश्य वराहं	११४
सावोचन्मधुरैर्वर्णैः	१६१	सुखं संवसतास्वेष्टं	२४७	सुग्रीवरभुजो वीरः	३६८
साहं दुःखसहस्राणां	२३३	सुखशीतो वयो वायुः	३३५	सुग्रीवरभुजो वीरो दुर्द्धर-	३६०
साहं न कस्यचिच्छ्रया	४११	सुखेन च प्रसूता सा	५७	सुमं तमसिना हत्वा	१८४
साहं पूर्वकृतात् पापाद्	२२६	सुखेन पालिता क्षोणी	५०	सुमस्योत्थाप्यमानस्य	४०८
साहमस्यामस्यायां	३२८	सुखेन प्राप्य निद्रां च	३८५	सुताजगरनिश्वास-	१०२
सिंहयुक्तं समारूढः	३६४	सुखोदधौ निमग्नस्त्वं	३५१	सुप्रभा नाम मे माता	४००
सिंहवारणशार्दूल-	१३८	सुगन्धिभिर्महाम्भोजैः	२६४	सुभद्रा मुनिभद्रश्च	१५६
सिंहवप्राग्रमुल्लैस्तप्त	१८२	सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यै-	३०४	सुभूमश्चक्रभृद् भूत्वा	१४४
सिंहसम्बुद्धवाहोद-	३७४	सुगुप्तिभ्रमणोऽवोचद्	२०२	सुभूरिचरितं पाप	२०१
सिद्धानां भीतिजननं	२४०	सुग्रीवः सचिवैः सार्कं	३५७	सुभृशं तेन वह्निः स	३१४
सिद्धानां महारोषी	३१०	सुग्रीवं कैष्कुनगर-	२६७	सुमहान् भृगुरेकत्र	१२३
सिद्धे करीन्द्रकीला-	१५८	सुग्रीवमेव सुग्रीवो	२७६	सुमित्राजस्ततोऽवोच-	२४७

सुमित्रातनयोऽपृच्छत्	२७१	सोऽवोचत् कथमित्याख्यं	२८४	सौमित्रिरगद् भद्रं	१६६
सुमित्रानन्दनं क्रुद्धं	३५२	सोऽवोचत् कुन्दनगरे	१११	सौमित्रे किमिदं क्लीबे	१३४
सुमित्रासूनुना चोक्ता	१२८	सोऽवोचत् पश्यतोदारं	१२०	सौम्यः क्रौर्यविनिर्मुक्तः	३२६
सुरतायामखिन्नाङ्गा	८६	सोऽवोचत् सद्य उत्तरत्रो	१७	स्कन्धावारमहासार्थ-	१२६
सुरूगुचिसर्वाङ्गा-	२२५	सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात्	३२	स्तनद्वयसमुपबोद्धं	३६१
सुरेन्द्रकीर्तितोदार-	३५	सोऽवोचत् साहसगतिं	३१५	स्तनेष्वपसरसां पाणि-	६२
सुरेन्द्रगणिकातुल्यं	१६१	सोऽवोचत् सुहृदं प्राप्य	१२२	स्तन्येन वर्धितं यस्या	६
सुशम्पाग्रैर्मृदङ्गानां	२८	सोऽवोचद्य दिवस-	१७६	स्तवकेषु सुजातेषु	२८२
सुशर्मायां समारोप्य	१४६	सोऽवोचदद्य मे मासः	४००	स्त्रियोऽथ नारदं मत्वा	२६
सुपेणो नलनीलौ च	३७७	सोऽवोचदुपलैरम्ब-	८०	स्त्रियो मंगलहस्तास्तं	१७६
सुहृच्चन्द्रगतिरूचे	३२	सोऽवोचद्वयिते जात-	११	स्त्रीणां कुतोऽथवा शक्ति-	१६६
सुहृद्वाशाप्रवृत्तस्य	३०८	सोऽवोचदीयतां मध्यं	२६१	स्त्रीणां परिहरन्तीनां	३६३
सुहृद्भिर्भ्रातृभिः पुत्रैः	२८६	सोऽवोचददूरतः स्थाना-	१०६	स्त्रीदेतोः क्षणमात्रेण	३५१
सूचयत्पथवा तस्य	१५७	सोऽवोचदेव जानामि	४०१	स्थानं दुर्गं समाश्रित्य	४
सूतां तावदियं देवी	६	सोऽवोचदेव पश्यामि	१०४	स्थानभ्रंशं परिकलेश-	३
सुदगेहसमेतानि	१६६	सोऽवोचदेवि नानेन	११	स्थापयित्वा कृती सीतां	१६१
सूर्यक्षपस्तपः कृत्वा	७१	सोऽवोचदेवि निद्रा मे	१११	स्थापयित्वा धनुर्वर्म	८३
सूर्यहासधरेणापि	२६६	सोऽवोचदेवि मा शङ्कां	११	स्थापितो बन्धयित्वाऽसौ	१६३
सूर्यालोकहतच्छाया	४०४	सोऽवोचदेवि विज्ञाप्य	२५५	स्थितं फललनगस्योर्ध्वं	२६२
सूर्योदयामृतामिश्रयाः	३५७	सोऽवोचद् यां समुद्दिश्य	२८४	स्थितश्च यत्र संसिद्ध-	२२७
सेनापुरेऽथ दीपिन्या	६८	सोऽवोचद् यो मया मुक्तां	१७३	स्थितास्त्रैलोक्यशिखरे	२६५
सेयं सिद्धगतिः शुद्धा	६७	सोऽवोचद् विप्रयोगान्मे	१२५	स्थितामूर्द्धसु हर्म्याणां	११६
सेयमत्यन्तशीलाढ्या	२८५	सोऽवोचद् द्रष्टुमिच्छामि	१७२	स्थितास्तत्र यथान्यायं	३२२
सैहं पद्मावदातस्य	३८३	सोऽवोचन्नगरस्थास्य	१७५	स्थितिरेषा जगन्नाथ	१४४
सैहं सैहेन पादातं	३८८	सोऽवोचन्न ममायत्तं	८४	स्थितो द्वादशवर्षाणि	२२८
सैतत्प्रस्था राजति चेदं	२१८	सोऽवोचन्नत्र भुञ्जेऽह-	११४	स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे	११०
सैतस्मिन्नगरे देशे	४०५	सोऽवोचन्मयि निर्वोणं	१६३	स्थूरीपृष्ठं समारुह्य	१६८
सोऽपि तस्याः परं वश्य	२०३	सोऽवोचन्मृत्युकन्या सा-	१७१	स्थूलमुक्ताफलसग्भि-	२११
सोऽपि बह्निप्रभस्तस्मा-	१६३	सोऽहं दर्शनमात्रेण	१३०	स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः	३५
सोऽपि श्रामण्यमासाद्य-	१४४	सोऽहं पुनर्मवाद् भीरु	१६६	स्नसाजालकसंश्लिष्ट-	१८६
सोऽप्यकर्णसमाकृष्टान्	३७६	सोऽहं भवत्प्रसादेन	५७	स्नानक्रीडां चित्ताभ्या	२६२
सोऽब्रवीन्न मया शतं	१४३	सोऽहं महात्मा भुवने	२२	स्नानालंकाररहितैः	१०७
सोऽयं नीतो विशल्याया-	४०६	सोऽहं स्वमानमुन्मूल्य	१६५	स्नानोदकमिदं तस्या	४०२
सोऽयं यथा श्रुतो नाथः	१५०	सौदामिनीत्वरस्यास्य	५०	स्निग्धज्वलनसङ्काशा	३६५
सोऽयं लङ्कापुरीनाथो	३२६	सौधर्मेशानदेवामौ	१५३	स्निग्धेन चक्षुषा पश्यन्	८०
सोऽयं समासाद्य परां विभूतिं	१३२	सौधादवतरन्वेगा-	७६	स्नेहालम्बनमेकैव	२८
सोऽहं हर्मो मया लब्ध-	१४०	सौन्दर्यकारणं नात्र	३५४	स्पष्टमानं समालोक्य	३७८
सोऽवोचच्छ्रूयतां देव-	२७०	सौमित्रिः सद्य पद्मेन	३४१	स्फटिकस्वच्छकलिल	३१३
सोऽवोचच्छ्रूयतां राजन्नसि-	४०२	सौमित्रिभुजनिर्मुक्तै-	१६	स्फीतदेवाचकारामे	२८४

स्फुटं यातोऽसि हा वत्स	२२८	स्वशरीरेऽपि निस्संगा	१४१	हा तात क्व प्रयातोऽसि	३००
स्फुटिताधरपादान्ताः	७२	स्वसंशयमशेषज्ञं	६७	हा देवि किमिदं मुग्धे	४६
स्फुरच्चण्डाचिरञ्जयोतिः	४०४	स्वसारं च समालिङ्ग्य	६६	हानिः पुरुषकारस्य	३२६
स्फुरत्स्फुलिङ्गज्वाला च	४१०	स्वसारमेवमाश्वास्य	२५४	हा पुत्रौ सुमहावीर्यौ	३६६
स्फुरद्भुजगविस्फारि-	३१७	स्वस्ति स्वस्तिलकोदार-	१५५	हा भद्र लक्ष्मण प्राप्त-	३६६
स्मरन् सीतां मनोयात	२६४	स्वस्मिन्नहितचेतस्के	२२०	हा भ्रातः परमोदार	३६६
स्मरप्रालेयनिर्दग्धं	२६४	स्वाध्यायनिरतानन्यान्	१८६	हा भ्रातः प्रथमं दृष्टो	६४
स्मरेषु हतचित्तोऽसौ	२८३	स्वामिने चावदन्नत्वा	३०	हा मया पुण्डरीकाक्षौ	१४५
स्मित्वा च स जगादायं	१४३	स्वामिनो दशवक्त्रस्य	२६६	हा मातः कोऽयमत्रेति	२३
स्मर्यमाणोपदेशोऽसौ	२०६	स्वामिनो दृष्टिमार्गस्थाः	३१६	हा मातः पश्यतामुग्ध	२०२
स्यन्दनैर्वारणैः सिद्धै-	३६५	स्वामी त्वं परमोऽस्वामि-	२४७	हा मातः सकलं लोकं	४०३
स्यन्दनैर्विविधैर्यानैः	३५६	स्वामी भरतखण्डानां	२८७	हा मातस्तादृशं दुःखं	४०३
स्यन्दनोद्वाहिनागाहि	३७६	स्वाहारेण क्वचित्तुताः	१६६	हा मेऽन्तःकरणच्छाया-	४०३
स्वच्छनीलाम्बरधर-	३०४	स्वेच्छया तेषु यातेषु	१४७	हारं स्वयंप्रभाभिर्धुं	१४७
स्वजनं नैव तौ कश्चि-	१८६	स्वेच्छया पर्यन्तस्ते	२११	हारराजितवत्सका	१५३
स्वजनस्योत्सवे जातो	२६१	स्वैरं स्वैरं जनकतनया	१२४	हा वत्स विधियोगेन	३६६
स्वनाथवचनात् साध्वी	३२६	[ह]		हा सीत इति भाषित्वा	२३६
स्वपाकादपि पापीयान्	३०५	हंसकुलाभकेनपटलप्रभिन्न-	२१७	हाहाकारं नृपाः कृत्वा	२८
स्वप्नः किमेष सम्प्राप्तं	४०३	हंसस्ताराक्षसरवि	६३	हा हा मातः किमेतन्नु	२०५
स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं	१८६	हंसीव पद्मिनीखण्डे	२२६	हाहाहीकारगम्भीरः	३३८
स्वप्नमेवं नु पश्यामि	१३७	हतं महोपकारेण	३३	हिसाधर्मविहीनानां	१६
स्वभावमागतं दृष्ट्वा	२७७	हतवान् हन्यते पूर्व	३७२	हिसाया कारणं घोरं	६
स्वभावविद्यासम्पन्ना	२२५	हत्वा शत्रून् समुद्दृत्ता	३५२	हितं करोत्यसौ स्वस्य	१०८
स्वभावार्जवसम्पन्ना	६१	हनूमानप्यलं रेजे	३०४	हिमाहत इवात्यर्थ	४८
स्वयं दुर्मतिना सार्द्धं	३४१	हनूमानिति विख्यातः	३३०	हुताशनशिखागौरं	३०
स्वयंवराभिर्धुं भूयः	४२	हनूमानिषुभिस्तस्य	३०६	हृतभार्यो द्विजो दीन-	२
स्वयमेव गमिष्यामि	२२१	हनूमान्यावदेतेन	३३६	हृता तत्र मया जाया	५७
स्वयमेव च सुग्रीवः	२८६	हन्ता सत्त्वसहस्राणां	१०७	हृदयगारमुद्गीतं	२४१
स्वर्गादिव ततोऽपतत्	१२६	हरिवाहननामाऽयं	३६	हृदये स्थापिताः कृच्छ्रा	४८
स्वर्गे राज्यं ददामीति	१७१	हस्तं हस्तेन संस्पृश्य	२६५	हे सुग्रीव सुहृत्स्व ते	३६७
स्वल्प इत्यनया बुद्ध्या	२६७	हस्तग्रहस्तसद्दीरौ	३७४	हेमकुम्भोपमं गोत्रं	३०१
स्वल्पमप्यर्जितं पापं	१०	हस्तग्रहस्तसामन्ता-	३६६	हेमनानामणिस्फीतः	२८८
स्वल्पेन मुकृतेन त्व-	७१	हा कष्टं देव कस्मात् त्वं	२३६	ह्रियमाणामथ प्रेक्ष्य	२३८
स्वशरीरमपि त्यक्त्वा	३०५	हा कान्त इति कूजंश्च	६१	ह्लादनश्चपलश्चोल-	३६५

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित पुराण, चरित एवं अन्य काव्य-ग्रन्थ

- आदिपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य जिनसेन, भाग 1, 2
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य
- उत्तरपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य गुणभद्र
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य
- पद्मपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य रविषेण, 3 भागों में
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य
- हरिवंशपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य जिनसेन
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य
- समराइच्चकहा (प्राकृत गद्य, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद)
मूल : हरिभद्र सूरि, अनुवाद : डॉ. रमेशचन्द्र जैन
- कथाकोष (संस्कृत) : पण्डिताचार्य
सम्पा.-अनु. : डॉ. आ. ने. उपाध्ये
- वीरवर्धमानचरित (संस्कृत, हिन्दी) : महाकवि सकलकीर्ति
सम्पा.-अनु. : पं. हीरालाल शास्त्री
- धर्मशर्माभ्युदय (संस्कृत, हिन्दी) : महाकवि हरिचन्द्र
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य
- पुरुदेव चम्पू (संस्कृत, हिन्दी) : महाकवि अर्हददास
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य
- वीरजिणिंदचरित (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त
सम्पा.-अनु. : डॉ. हीरालाल जैन
- वड्डमाणचरित (अपभ्रंश, हिन्दी) : विबुध श्रीधर
सम्पा.-अनु. : डॉ. राजाराम जैन
- महापुराण (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त, 5 भागों में
सम्पा.-पी.एल वैद्य, अनु.-डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
- णायकुमारचरित (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त
सम्पा.-अनु. : डॉ. हीरालाल जैन
- जसहरचरित (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त
सम्पा.-अनु. : डॉ. हीरालाल जैन
- सिरिवालचरित (अपभ्रंश, हिन्दी) : नरसेन देव
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
- पउमचरित (अपभ्रंश, हिन्दी) : स्वयम्भू, पाँच भागों में
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
- रिट्ठणेमिचरित (यादवकाण्ड) : स्वयम्भू (अपभ्रंश, हिन्दी)
सम्पा.-अनु. : देवेन्द्रकुमार जैन
- वर्धमानपुराणम् (कन्नड़) : आचण्ण
- आधुनिक कन्नड़ अनुवाद : टी. एस. शामराव, पं. नागराजैया
- रामचन्द्रचरितपुराणम् (कन्नड़) : कवि नागचन्द्र
- आधुनिक कन्नड़ अनुवाद : डॉ. आर. सी. हीरेमठ

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

ज्ञानं प्रबलम
पञ्चचरिते
प्रतिष्ठाचप्रती
सुवेदनीमिराम
यमेवविस्थः
यंकर्मययोचि
दीर्घाकुंनमिडे
सर्वतैकारचू
लोस्त्रपानता
मथातातप्रती
जीये॥ब्रजेन्मु
यवतीतथाय
करिष्यामि
शक्तेवा॥दात
रावयोर्मते॥
ममेवगुणेःमि
दे॥जनैर्दसा
रुते॥१२॥एवमे